मेरा स्वर्णिम भारत

(Note: see sources of discourses can be found on wiki.)

अनुक्रम

1. चार महावाक्य 3
2. धर्म और सद्गुरु 12
3. मन का रूपांतरण 24
4. स्वयं का सत्य 35
5. अंतर -आकाश..44
6. जीवंत धर्म 52
7. अंतर्यात्रा पर निकलो 69
8. चखो, अमृत का स्वाद 75
9. ऋत् है स्वभाव में जीना 84
10. ....शील मुक्ति है , चरित्र बंधन 95
11. ....स्वस्थ हो जाना उपनिषद् है 105
12. ....श्रद्धा और सत्य का मिथुन 116
13. ....वर्तमान क्षण की धन्यता 129
14. ....ध्यान विधि है 138
15. ....दुख से जागो 152
16. ....रसरूप भगवत्ता 160
17. ....तप, ब्रह्मचर्य और सम्यक् ज्ञान 180
18. ....संन्यास : बोध की अवस्था 192
19. ....अहिंसा नहीं , कोमलता 204
20. ....सतां हि सत्यम् 217
21. ....गुरु तीर्थ हैं 226

22...दर्शन : एक आत्मिक संस्पर्श
....244
23...धर्म : मुक्ति का आरोहण
....255
24...अंतःकरण का अतिक्रमण
....272
25...चिंतन नहीं --मौन अनुभूत
....285
26...हृदय -ग्रंथियों से मुक्ति
....294
27...समर्पण ही सत्संग है
....306
28...गुरु स्वयं एक उपाय है
....317
29...इक साधे सब सधै
....327
30...द्वैत भ्रांति है
....336
31...धर्म है परम भोग
....353
32...प्रार्थना या ध्यान ?
....372
33...जीओ--क्षण में , त्वरा से !
....383
34...धर्म का गहन तत्व
....392
35...मनुष्य बीज है भगवत्ता का
....402
36...दो पक्षी : कर्ता और साक्षी
....407
37...धर्म : एकमात्र कीमिया
....421
38...स्वयं का बोध : मुक्ति
....440
39...ऋषि पृथ्वी के नमक हैं
....452
40...चरैवेति , चरैवेति ... ओ स्वर्णयुग !
....465

परिशिष्ट :

1. भारत : एक अनूठी संपदा 482

मेरा स्वर्णिम भारत-1

चार महावाक्य
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #3)

पहला प्रश्न:
भगवान, पैंगल उपनिषद के अनुसार चार महावाक्य हैं।
पहला: तत्वमसि, वह तू है;
दूसरा: त्वं तदसि, तू वह है;
तीसरा: त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म है;
और चौथा: अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं।
भगवान, इन महावाक्यों के अर्थ और अर्थभेद बताने की अनुकंपा करें।

चिदानंद, उपनिषद सदगुरु और शिष्य के बीच शून्य में हुआ संवाद है। आंखों-आंखों में बात हो गई है। हृदय ने हृदय पर गीत गाया है। न तो गुरु ने कुछ कहा है और न शिष्य ने कुछ सुना है, फिर भी गुरु ने सब कह दिया और शिष्य ने सब सुन लिया है।
गुरु के साथ तीन प्रकार के संबंध हो सकते हैं। विद्यार्थी का; तब गुरु केवल शिक्षक होता है। वहां वाणी आवश्यक है। संवाद जरूरी है। क्योंकि बात बुद्धि से बुद्धि तक होगी। वह सबसे ऊपरी नाता है। विद्यार्थी जिज्ञासु है, मुमुक्षु नहीं। जानना चाहता है, होना नहीं। होने के लिए तो न होने की तैयारी चाहिए। जानने में कुछ कीमत चुकानी नहीं पड़ती। जानकारी इकट्ठी करके और भी अहंकार को रस आता है। जैसे-जैसे जानकारी बढ़ती है वैसे-वैसे अहंकार और परिपुष्ट होता है।
इसीलिए तो उपनिषद कहते हैं कि अज्ञान तो थोड़ा ही भटकाता है, ज्ञान बहुत भटका देता है। अज्ञान ले जाता है अंधकार में, ज्ञान ले जाता है महाअंधकार में।
उपनिषद अनूठे हैं। पृथ्वी पर कहीं भी किसी काल, किसी देश में वैसी अपूर्व घटना नहीं घटी है। गुरु और शिष्य के बीच यह जो पहला नाता है, इसमें उपनिषद निर्मित नहीं होते। शास्त्र बन सकते हैं, तर्क निर्मित हो सकता है, दर्शन स्थापित हो सकता है, लेकिन बात ऊपर-ऊपर की ही रहेगी, भीतर की नहीं हो सकती।
दूसरा नाता है गुरु और शिष्य के बीच शिष्यत्व का। विद्यार्थी अब केवल पूछने में उत्सुक नहीं है; प्रश्न ही नहीं है, अब विद्यार्थी स्वयं प्रश्न बन गया। अब जानकारी इकट्ठी नहीं करनी है। अब जानना है। और जो भी कीमत चुकानी पड़े, चुकाने की तैयारी है। जानने में मिट भी जाना पड़े तो भी पीछे पैर नहीं लौटेगा। इतने साहस से ही विद्यार्थी का रूपांतरण शिष्य में होता है।
इसलिए नानक ने अपने सत्संगियों को सिक्ख कहा। वह पंजाबी रूपांतरण है शिष्य का।
शिष्य के साथ ही धर्म की शुरुआत है। विद्यार्थी दर्शन के जंगल में भटकता, शब्दों के जाल में अटकता, शिष्य सुलझने लगता, राह पाने लगता है। राह प्रेम की है, भटकाव तर्क का है। उलझाव बुद्धि का है, सुलझाव हृदय का है। जब ऊर्जा बुद्धि से हृदय में प्रवेश करती है तो विद्यार्थी रूपांतरित होता है। उसके भीतर आत्म-क्रांति घटित होती है। वह शिष्य होता है।
शिष्य और गुरु के बीच पहली बार कुछ सार्थक जन्म पाता है। उसके पहले तो बातचीत ही बातचीत थी। उसके पहले तो संभाषण था, अब कुछ गहराई में उतरना हुआ। अब चले उस प्रगाढ़ता की तरफ। जैसे नमक का पुतला सागर में डुबकी मारे थाह का पता लगाने को, थाह मिलते-मिलते खुद भी खो जाए; थाह मिले, लेकिन खुद न बचे। शिष्य करीब सरकने लगा गुरु के। कुछ-कुछ, दूर जैसे कोयल बोले, ऐसे गुरु की बात समझ में आनी शुरू होगी। शब्द अब भी गुरु बोलेगा, लेकिन शिष्य अब शब्दों के बीच में जो खाली जगह है वह सुनेगा। वह जो विराम है, वह जो विश्राम है, ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठेगा। शब्द उसको उभारने के काम में

आएंगे। शब्द उसे पृष्ठभूमि देंगे। अभी शब्दों की जरूरत रहेगी, लेकिन बड़ी बदली हुई जरूरत।
विद्यार्थी सिर्फ शब्द को सुनता था, लकीरों को पढ़ता था, शिष्य शब्दों
के बीच में जो शून्य है, उसे गुनता है; पंक्तियों के बीच में जो रिक्त स्थान है, उसे सुनता है। गुरु क्या कहता है, यह कम महत्वपूर्ण है, गुरु क्या है, यह ज्यादा महत्वपूर्ण होने लगता है। यह नाता प्रेम का है। यह मामला तर्क, समझ, गणित के पार गया।
इसलिए विद्यार्थी तो दुनिया में सब जगह हुए हैं--स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय विद्यार्थियों से भरे हुए हैं--लेकिन शिष्य कभी-कभी हुए हैं। किसी जीसस के पास, किसी बुद्ध के पास, किसी नानक के पास, किसी कबीर के पास, शिष्य कभी-कभी हुए हैं। शिष्य होने के लिए अहंकार को छोड़ने का साहस चाहिए। क्योंकि जब तक अहंकार है तब तक प्रेम नहीं।
और तीसरा जो संबंध है गुरु और शिष्य के बीच उसे संबंध भी कैसे कहें? क्योंकि जहां दो न बचे वहां कैसा संबंध? मगर वही परम संबंध है। विद्यार्थी से जो यात्रा शुरू हुई थी, वह उसी परम संबंध पर जाकर समाप्त होती है। शिष्य का तो पड़ाव है। इसलिए तीसरा जो रूप है, वह भक्त का है।
विद्यार्थी बाहर-बाहर, परिधि पर, भक्त केंद्र पर; दोनों के मध्य में शिष्य। शिष्य को शब्दों की जरूरत होती है--विद्यार्थी को सिर्फ शब्दों की जरूरत होती है, शिष्य को शब्दों की और शब्दों के साथ शून्य की जरूरत होती है। भक्त को शब्दों की कोई जरूरत नहीं रह जाती, शून्य पर्याप्त होता है। उपनिषद प्रारंभ होता है शिष्य के साथ और पूर्ण होता है भक्त के साथ। बुद्धि विद्यार्थी बनाती है, हृदय शिष्य बनाता है, और हृदय से भी गहरा जो तुम्हारे प्राणों का प्राण है, तुम्हारी आत्मा है, वह भक्त बनाती है। भक्त का संबंध आत्मीय है। संबंध नहीं कहना चाहिए। मजबूरी है भाषा की, इसलिए संबंध कह रहा हूं। दो तो मिट गए, दुई गई, अब तो न गुरु है न शिष्य है, एक सन्नाटा है, एक शून्य है, जिसमें दोनों लीन हैं। और तभी असली गुफ्तगू है। वहीं उपनिषद घटे हैं।
उपनिषदों में सच में ही महावाक्य हैं। महावाक्य कहते हैं उन वाक्यों
को जो महाशून्य में घटे हों। अनुकंपा है कि किन्हीं ने उन्हें संकलित कर लिया है।
ये चारों महावाक्य बड़े महत्वपूर्ण हैं। पहले तीन, गुरु ने शिष्य से कहे हैं; चौथा, शिष्य समझा है गुरु ने जो कहा है, उसे जीआ है, पहचाना है और अपने पहचान की उदघोषणा की है। चौथा वक्तव्य शिष्य का है। तीन वक्तव्य गुरु के हैं। तीन में गुरु तैयारी करवा रहा है, चौथे में शिष्य ने उदघोषणा की अपनी तैयारी की।
पहला है: "तत्वमसि, वह तू है।" दूसरा: "त्वं तदसि, तू वह है।" तीसरा: "त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म है।" और चौथा: "अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं।"
तीन गुरु के द्वारा कहे गए वचन हैं--सीढ़ियां--चौथा मंदिर में प्रवेश है। जो चला था खोजी, वह आ गया मंजिल पर। मंजिल पर आने की घोषणा की है उसने गुरु को। यह उसका निवेदन है गुरु के चरणों में कि जो आपने कहा था, जाना, चखा, पीआ, हुआ--"अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूं।"
फिर ये जो तीन पहले वचन हैं, इनमें भी क्रम है। पहला: "तत्वमसि, वह तू है।"
जोर है वह पर। ताकि तू मिट सके। तू को मिटाना है। जितना तू गलेगा, जितना तू मिटेगा, उतना वह विराट होगा, प्रकट होगा प्रखर रूप से, उदघाटित होगा, अनावृत होगा। तू में आच्छादित है। तू को हटाना है, ताकि उसे निर्बाध जाना जा सके।
इसलिए पहला सूत्र है: "तत्वमसि, वह तू है।"
याद रख, वह है, असली वह है, तू तो बस छाया है। तू उसकी छाया, उसका प्रतिबिंब। वह आकाश में ऊगा पूर्णिमा का चांद, तू झील में बनी उसकी छाईं, परछाईं। जोर वह पर है।
जब गुरु देखता है कि बात समझ में आ गई, तू खो गया, वह ही शेष रहा, तब दूसरे महावाक्य की उदघोषणा है: "त्वं तदसि, तू वह है।"

अब जोर तू पर है। क्योंकि जब तू न रहा, तो वही रहा। जब तू न रहा, तब उसके सिवाय और क्या बचा? तो कहीं भ्रांति न हो जाए कि मुझे छोड़ कर और सब ब्रह्म है। उस भ्रांति को न बनने देने के लिए दूसरा महावाक्य है कि मत घबड़ा; अब तू नहीं है इसलिए इस योग्य हुआ है कि तुझसे कहा जा सकता है कि तू भी वही है। चिंता न कर, यूं न सोच कि और सब परमात्मा है मुझे छोड़ कर। जब सब वही है, तो तू भी सबमें सम्मिलित है। सम्मिलित ही नहीं है, अब यह भी कहा जा सकता है कि तू प्रथम है। क्योंकि सारी यात्रा अपने से ही शुरू होगी। यह जरा बारीक और नाजुक बात है, सूक्ष्म है। जब तू मिट जाए तो फिर तू की बात की जा सकती है। फिर कोई अड़चन नहीं है, फिर कुछ हर्जा नहीं है।
"त्वं तदसि, तू वह है।"
लेकिन अभी इन दोनों महावाक्यों में वह शब्द का प्रयोग हुआ है। वह शब्द दूरी का प्रतीक है। जैसे हम किन्हीं वस्तुओं की बात कर रहे हों, तटस्थ; जैसे अभी जीवंत ब्रह्म की बात नहीं छेड़ी, अभी थोड़ी-सी दूरी बचा रखी है--कहीं भी कोई खतरा न हो जाए। गुरु तो फूंक-फूंक कर कदम रखता है। खतरे की बहुत संभावना है। क्योंकि हम सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से भ्रांति में जीए हैं। हम भ्रांतियों में लिपटे हैं। हमारे रोएं-रोएं में भ्रांति समाई हुई है। हमें धोना है, निखारना है, साफ करना है गुरु को।
कबीर ने कहा है, गुरु तो रंगरेज है। मगर इसके पहले कि वह रंगे, सफाई करेगा, धोएगा, निखारेगा, गंदगी वस्त्र की दूर करेगा। साफ-स्वच्छ हो जाए वस्त्र तो ही रंगा जाए; तो ही रंग अपनी परिपूर्णता में प्रकट होंगे।
जब ये दो बातें पूरी हो गईं, यह बात साफ हो गई कि शिष्य समझ गया कि वह नहीं है, स्वयं नहीं है, अस्तित्व है, तो उससे दूसरी बात कही कि भय मत कर, तू भी वह अस्तित्व है। मगर अभी वह का प्रयोग किया जा रहा है। जब यह भी बात समझ में आ गई कि अस्तित्व, वह सब कुछ है, तो अब बात को थोड़ा और गहराया जा सकता है। अब थोड़ा और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म में प्रवेश कराया जा सकता है। "त्वं ब्रह्मास्मि।" वह ही नहीं है तू, ब्रह्म भी तू है।
ब्रह्म का अर्थ होता है: अब हमने वह को व्यक्तित्व दिया। वह को चेतना दी, वह को जीवन दिया। अब वह कोई वस्तु न रही, कोई मंदिर की प्रतिमा न रही, अब तटस्थ रहने की कोई जरूरत न रही, अब तैयारी इतनी है कि हम उसको व्यक्ति की भांति स्वीकार कर सकते हैं। अब उसे निर्विकार, निराकार ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं है; वह तो खतरा था तुम्हारे साथ।
अगर पहले यह कहा जाता तो मंदिर की मूर्ति पकड़ जाती। अगर पहले तुमसे कहा जाता: त्वं ब्रह्मास्मि, कि तुम ब्रह्म हो, तो बड़ी अकड़ आ जाती। तब तो भ्रांति होने वाली थी। लेकिन क्रम से, आहिस्ता-आहिस्ता, नेति-नेति, धीरे- धीरे; जैसे कि मूर्तिकार मूर्ति को गढ़ता है। छैनी उठा कर धीरे-धीरे पत्थर को तोड़ता है। जो-जो अनावश्यक है, अलग करता जाता है, तब जो प्रकट हो जाती है मूर्ति। ऐसे तो वह छिपी ही पड़ी थी, पत्थर में छिपी थी, लेकिन अनावश्यक से जुड़ी थी। अनावश्यक अलग हो गया, अब मूर्ति अपनी प्रगाढ़ता में प्रकट हो गई है। अब मूर्ति बन सकती है। अब हम वह शब्द का प्रयोग न करें, अब अस्तित्व को अस्तित्व कहना उचित नहीं, अब प्रकृति कहना उचित नहीं, अब परमात्मा शब्द को लाया जा सकता है।
देखना, कितनी समझपूर्वक एक-एक सूत्र आगे बढ़ रहा है! इससे नास्तिक भी बेचैन नहीं होगा। दो सूत्रों से तो नास्तिक भी राजी हो जाएगा। अस्तित्व के सूत्र हैं, परमात्मा की बात ही नहीं उठाई है अभी। तार्किक भी राजी हो जाएगा। क्योंकि अस्तित्व तो है, यह तो दिखाई ही पड़ रहा है, और मैं भी अस्तित्व हूं, सभी कुछ अस्तित्व है। अस्तित्व यानी समग्रता का नाम।
इन दो सूत्रों से कार्ल माक्र्स को एतराज नहीं होगा, चार्वाकों को एतराज नहीं होगा, इपिकुरस को एतराज नहीं होगा; पदार्थवादी को, विज्ञानवादी को, भौतिकवादी को, किसी को एतराज नहीं होगा। और प्रथमतः सभी लोग वहीं हैं, उसी अवस्था में हैं।
तीसरा सूत्र तो केवल उससे कहा जा सकता है, जिसने दो सूत्र पूरे कर लिए हों।
"त्वं ब्रह्मास्मि।"

अब गुरु आहिस्ता से कहता है: अब तू पते की बात सुन! अस्तित्व कोई जड़ पदार्थ मात्र नहीं है, ब्रह्म है, चिदानंद है, चैतन्य है। त्वं ब्रह्मास्मि का अर्थ हुआ: तू शरीर नहीं है, तू मन नहीं है, तू आत्मा है।
ये तीन घोषणाएं गुरु की। फिर गुरु प्रतीक्षा करता है। जब शिष्य समझ लेता है, और समझ का यहां अर्थ होता है कि जब पी लेता है, जब डोलने लगता है, जब मस्ती में आ जाता है--तब उसके भीतर से उदघोष होता है--वह उदघोष करता नहीं, उदघोष होता है: "अहं ब्रह्मास्मि!" अनलहक! मैं ब्रह्म हूं!
इन्हें महावाक्य कहा है, क्योंकि इन चार वाक्यों में सब शास्त्र आ जाते हैं। कुछ शेष नहीं बचता। क्या शेष बचा अब और?
लेकिन शर्तें समझ लेना: मैं जाए, तो ही संभावना है यह जानने की कि मैं कौन हूं। मैं जाए, तो ही ब्रह्म आए। और फिर अदभुत अवस्था हो जाती है। सहजानंद ने पूछा है कि संन्यास उपनिषद में यह श्लोक मिलता है। यह श्लोक, भगवान, बड़ा अटपटा है। यह कैसी आराधना है? क्या इसका अभिप्रेत हमें बताने की कृपा करेंगे?
अगर तुमने यह चिदानंद का पहला प्रश्न समझा तो दूसरे प्रश्न का अर्थ अपने आप प्रकट हो जाएगा।
संन्यास उपनिषद में यह अपूर्व श्लोक है। निश्चित अटपटा लगता है।
क्योंकि वे चार महावाक्य अभी पूरे नहीं हुए, तो अटपटा लगेगा ही।
आत्मनेऽस्तु नमस्तुभ्यमविच्छिन्न चिदात्मने।
परासृष्टोऽस्मि बुद्धिऽस्मि प्रोदितोऽस्म्यस्यचिरादहम्।।
उद्धृतोऽस्मि विकल्पेभ्यो योऽस्मि सोऽस्मि नमोऽस्तुते।
तुभ्यं मह्यमनन्ताय तुभ्यं मह्यं चिदात्मने।
नमस्तुभ्यं परेशाय नमो मह्यं शिवाय च।।
मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है। मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध और उदित हूं। मैं विकल्पों से रहित हूं; मैं जो हूं, सो हूं, मुझे नमस्कार है। तू और मैं अनंत हैं, मैं और तू चिदात्मा हैं; (दोनों को) नमस्कार है। मुझ परमेश्वर और मुझ शिव रूप को नमस्कार है।
सहजानंद ठीक ही पूछते हैं कि कैसा अटपटा सूत्र है! मुझको ही नमस्कार है! यह कोई बात हुई! यह तो बड़े अहंकार की घोषणा मालूम पड़ती है।
"मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है।"
संत नानक और कबीर के समय एक जैन फकीर हुए, संत तारण। उन्होंने एक पूरा
का पूरा शास्त्र ही लिखा: आत्म-पूजा। अपनी ही पूजा। अपनी ही उतारनी है आरती। धूप-दीप जलाना अपने लिए। फूल चढ़ा लेना अपने ही सिर पर।
यूं तो पागलपन लगेगा, लेकिन अगर चार महासूत्र समझ में आ गए तो फिर पागलपन नहीं लगेगा, फिर तो यह बड़ा प्यारा सूत्र है। क्योंकि कौन नमस्कार करे और किसको नमस्कार करे? यहां एक ही है। वही नमस्कार करने वाला है, उसी को नमस्कार किया जाना है। वही एक दो में बंट कर खड़ा है।
इसीलिए तो इस देश ने नमस्कार का एक अदभुत ढंग निकाला। दुनिया में वैसा कहीं भी नहीं है। इस देश ने कुछ दान दिया है मनुष्य की चेतना को, अपूर्व! यह अकेला देश है जहां जब दो व्यक्ति नमस्कार करते हैं तो दो काम करते हैं। एक तो दोनों हाथ जोड़ते हैं। दो हाथ जोड़ने का मतलब होता है: दो नहीं हैं, एक। दो हाथ दुई के प्रतीक हैं, द्वैत के प्रतीक हैं। उन दोनों को जोड़ लेते हैं कि दो नहीं हैं, एक ही है। उस एक का ही स्मरण दिलाने के लिए दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार करते हैं। और, दोनों हाथ जोड़ कर जो भी शब्द उपयोग करते हैं, वह परमात्मा का स्मरण होता है। कहते हैं: राम-राम, जयराम, या कुछ भी, लेकिन वह परमात्मा का नाम होता है। दो को जोड़ा कि परमात्मा का नाम उठा। दुई गई कि परमात्मा आया। दो हाथ जुड़े और एक हुए कि फिर बचा क्या; हे राम!
दुनिया में नमस्कार के बहुत ढंग हैं। कहीं हाथ मिला कर लोग नमस्कार करते हैं, कहीं नाक से नाक रगड़ कर नमस्कार करते हैं। और भी पहुंचे हुए लोग हैं--जीभ से जीभ मिला कर नमस्कार करते हैं। कहीं कहते हैं शुभ संध्या या शुभ प्रभात--गुड माघनग या गुड इवनिंग।
लेकिन यह देश अकेला है जो दूसरे को छूता ही नहीं, सिर्फ अपने दोनों हाथों को जोड़ देता है। ऐसे एक की उदघोषणा कर देता है और फिर राम का स्मरण

करता है। और जय भी बोलता है तो राम की। क्या सुबह की बात करनी! क्या सांझ की बात करनी! सुबहें आती हैं, सांझें आती हैं; सुबहें जाती हैं, सांझें जाती हैं; जो सदा टिका है वह राम है। उसी में सुबह होती है, उसी में सांझ होती है, उसकी बात कर ली तो सबकी बात कर ली। उस एक को मांग लिया तो सब मांग लिया।
एक सम्राट विजयऱ्यात्रा को निकला। सारी दुनिया को विजय करके जब लौटता था, तो उसकी सौ पत्नियां थीं, उसने खबर भिजवाई कि जिसकी जो मांग हो, उसके लिए मैं वही ले आऊं। निन्यानबे पत्नियों ने अपनी-अपनी मांगें भेजीं। किसी ने कहा कोहिनूर ले आना और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। एक पत्नी ने सिर्फ इतनी खबर भेजी कि तुम जल्दी घर लौट आओ, बस! और क्या चाहिए, तुम आ गए तो सब आ गया!
सम्राट सभी के लिए लाया जो जिसने मांगा था। जिन्होंने कोहिनूर मांगे थे, उनके लिए कोहिनूर, हीरे-जवाहरात, सोने-चांदी के जेवर--जो जिसने मांगा था, सबके लिए ले आया। सबको दे दिए। लेकिन गया उस पत्नी के पास जिसने सिर्फ उसे ही मांगा था।
वे निन्यानबे रानियां हैरान हुईं और उन्होंने कहा कि आप आए इतने लंबे दिनों बाद, क्या कारण है कि आप उस एक पत्नी को सौ में से चुन रहे हैं? वह सबसे सुंदर भी नहीं है। वह सबसे युवा भी नहीं है। सम्राट ने कहा, उसका कारण है कि उसने भर मुझे मांगा। तुमने कुछ और मांगा। तुम्हारा मेरा नाता वस्तुओं का नाता। उसका मेरा नाता हृदय का नाता। तुमने जो मांगा, तुम्हें मिल गया। उसने जो मांगा, मुझे उसे देने दो।
क्या सुबह की जय बोलें! क्या सांझ की जय बोलें! जय बोलनी तो उस एक की बोलनी। मगर वह एक पूजा करने वाले में विराजमान है और जिसकी तुम पूजा करते हो उसमें विराजमान है। इस परम उदघोषणा को यह संन्यास उपनिषद का सूत्र कह रहा है--
आत्मनेऽस्तु नमस्तुभ्यमविच्छिन्न चिदात्मने।
"मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है।"
अटपटा लगेगा, क्योंकि वे चार महाकाव्य अभी पूरे नहीं हुए। अभी अहं ब्रह्मास्मि की घड़ी नहीं आई, इसलिए अटपटा लगेगा। नहीं तो बात बिलकुल सीधी- साफ है।
परासृष्टोऽस्मि बुद्धिऽस्मि प्रोदितोऽस्म्यस्यचिरादहम्।।
"मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध और उदित हूं।"
क्या प्यारे शब्द हैं! "मैं सदैव परम!" मुझसे ऊपर और कुछ भी नहीं। मगर "मैं" छूटे, तुम यह तभी जान पाओगे कि मुझसे ऊपर और कुछ भी नहीं। यह "मैं" की अकड़ बन जाए तो तुमसे नीचे और कुछ भी नहीं। यह मैं की घोषणा हो तो मैं से नीचे और कुछ भी नहीं।
मैं एक अदभुत सीढ़ी है। इसी से नर्क में भी उतर सकते हो, इसी से स्वर्ग में भी प्रवेश कर सकते हो। एक ही सीढ़ी है, एक छोर नर्क में लगा है, एक छोर स्वर्ग में लगा है।
"मैं सदैव परम।"
जहां "मैं" नहीं हो, जैसे-जैसे "मैं" को छोड़ते गए, वैसे-वैसे परम अवस्था आती चली गई।
"प्रत्यक्ष...।"
यह शब्द तो बहुत सोचने जैसा है। तुम और सारी चीजों को कहते हो, तुम कहते हो कि मैंने अपनी आंख से देखा, चश्मदीद गवाह हूं, यह बात मेरे सामने हुई, बिलकुल प्रत्यक्ष में हुई। परोक्ष हम कहते हैं जो हमने न देखा; किसी ने कहा। किसी ने तुमसे कहा कि रास्ते पर दो कारें टकरा गईं। यह परोक्ष हुआ। पर के द्वारा खबर मिली। माध्यम से खबर मिली। भरोसे का माध्यम हो तो तुम भरोसा कर लो, भरोसे का माध्यम न हो तो न करो। लेकिन चाहे भरोसा करो चाहे न करो, एक बात साफ रखना कि तुमने नहीं देखा। प्रत्यक्ष नहीं है यह। तुम्हारी आंख के सामने नहीं हुआ।
लेकिन तुम्हारी आंख के सामने भी हो तो भी क्या जरूरी है तुम वही देखो
जो हो रहा है?
एडमंड बर्क बहुत बड़ा इतिहासज्ञ हुआ। वह विश्व का इतिहास लिख रहा था।
उसने इतिहास लिखने में कोई बीस-बाईस वर्ष खर्च किए थे। और बाईसवें वर्ष यह

घटना घटी कि उसके घर के पीछे हत्या हो गई। वह भागा हुआ पहुंचा--शोरगुल सुना, लाश पड़ी थी, अभी आदमी ठंडा भी नहीं हुआ था, अभी खून गर्म था, हत्यारा पकड़ लिया गया था, उसके हाथ में रंगीन छुरा था खून से लहूलुहान, उसके शरीर पर भी खून के दाग थे, राह पर खून की धार बह रही थी और सैकड?ो लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। बर्क पूछने लगा लोगों से कि क्या हुआ? एक ने एक बात कही, दूसरे ने दूसरी बात कही, तीसरे ने तीसरी बात कही। जितने मुंह उतनी बातें। और वे सभी चश्मदीद गवाह थे। उन सबने अपनी आंख के सामने यह घटना देखी थी।
बर्क बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बर्क बड़ी चिंता में पड़ गया। वह घर के भीतर गया और उसने बाईस साल मेहनत करके जो इतिहास लिखा था उसमें आग लगा दी। उसने कहा, मेरे घर के पीछे हत्या हो, आंख से देखने वाले लोगों का समूह हो, और एक आदमी दूसरे से राजी न हो कि हुआ क्या, कैसे हुआ, हर एक की अपनी कथा हो--और मैं इतिहास लिखने बैठा हूं सारी दुनिया का! प्रथम से, शुरुआत से! क्या मेरे इतिहास का अर्थ?
हम वही देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं। उसमें कोई हत्यारे का मित्र था, उसे बात कुछ और दिखाई पड़ी। उसमें कोई जिसकी हत्या की गई थी उसका मित्र था, उसे कुछ बात और दिखाई पड़ी। जो तटस्थ था, उसे कुछ बात और दिखाई पड़ी। सब प्रत्यक्ष गवाह थे। मगर क्या गवाही दे रहे थे!
उपनिषद के हिसाब से, समस्त जाग्रत पुरुषों के हिसाब से प्रत्यक्ष तो सिर्फ एक चीज है, वह तुम्हारी आत्मा है। बाकी सब परोक्ष है। क्यों? क्योंकि मन खबर देगा न! मन तो बीच में आ जाएगा, मन पर है। मन कहेगा, ऐसा हुआ। मन व्याख्या करेगा।
बुद्ध ने एक रात समझाया लोगों को कि तुम जितने लोग यहां हो उतनी ही बातें सुन रहे हो। बोलने वाला तो मैं एक हूं, लेकिन चूंकि सुनने वाले अनेक हैं, इसलिए बातें अनेक हो जाती हैं। जैसे एक ही आदमी खड़ा हो और बहुत दर्पण लगे हों, तो बहुत तस्वीरें बनेंगी। फिर दर्पण-दर्पण अपने ढंग से तस्वीर बनाएगा।
तुमने कभी वे दर्पण देखे होंगे किसी सर्कस में, किसी म्यूजियम में, कोई दर्पण तुम्हें लंबा कर देता है, कोई मोटा कर देता है, कोई छोटा कर देता है, कोई तिरछा कर देता है। किसी में तुम अष्टावक्र मालूम पड़ते हो। किसी में आदमी कम, ऊंट ज्यादा मालूम पड़ते हो। किसी में एकदम बिजली का खंबा हो जाते हो। और किसी में इतने मोटे, इतने ठिगने, कि तुम्हें भरोसा ही न आए कि यह क्या हुआ? और सभी दर्पण हैं। और सभी एक ही कक्ष में सजे हैं। सब अलग-अलग बता रहे हैं।
मन तो दर्पण है। और हर एक के पास अलग मन है।
बुद्ध ने कहा, जितने तुम यहां लोग हो, उतनी ही बातें सुन रहे हो। दूसरे दिन सुबह आनंद ने पूछा कि यह बात मेरी कुछ समझ में आई नहीं। जब आप कहने वाले एक हैं और शब्द आपके हम सुन रहे हैं, तो वही शब्द तो सुनेंगे न जो आपने कहे हैं!
बुद्ध ने कहा, पागल, तू यूं समझ! कल रात--तू जा पता लगा ले--कल रात की सभा में जब मैंने यह कहा तो मेरे जो भिक्षु थे, उन्होंने एक बात समझी; एक चोर भी आया था, उसने दूसरी बात समझी; एक वेश्या भी आई थी, उसने तीसरी बात समझी।
बुद्ध का नियम था कि रोज रात को प्रवचन के अंत में वे कहते थे, अब जाओ, दिन का अंतिम कार्य पूरा करो। भिक्षुओं ने समझा कि अब जाएं और ध्यान करें; क्योंकि वह दिन का अंतिम कार्य था। समाधिस्थ हों और फिर उसी समाधि में डूबते-डूबते निद्रा में डूब जाएं। ध्यान करते-करते नींद में उतर जाना सारी नींद को समाधि बना लेना है। तो छह घंटे सोओ, आठ घंटे सोओ, वे आठ घंटे परम समाधि में गए। तुमने उनका उपयोग कर लिया। तुमने नींद को भी व्यर्थ न जाने दिया। लोग तो यहां जागरण को भी व्यर्थ जाने दे रहे हैं, तुमने नींद का भी उपयोग कर लिया। तुमने नींद के समय में भी अमृत ढाल लिया।
तो मेरे भिक्षुओं ने, बुद्ध ने कहा, समझा कि अब हम उठें; वे उठे कि अब जाएं ध्यान करें, सोने का समय हो गया। चोर एकदम से चौंका, उसने कहा कि मैं भी कहां की बातों में पड़ा हूं! अरे, जाऊं अपने काम में लगूं! और वेश्या ने

कहा कि अदभुत हैं ये बुद्ध भी! इन्हें कैसे पता चल गया कि मैं भी आई हुई हूं? क्या कहते हैं कि जाओ, अपने काम में लगो! अब अपना आखिरी काम करो! वेश्या अपने धंधे पर गई, चोर अपने धंधे पर गया, भिक्षु अपने धंधे पर चले गए।
बुद्ध ने आनंद से कहा, तू न माने तो जाकर पूछ ले। आनंद बड़ा जिज्ञासु था! वह अंत तक विद्यार्थी बना रहा। बहुत साथ रहा बुद्ध के, लेकिन शिष्यत्व सधा उसका बुद्ध की मृत्यु के बाद। कभी-कभी निकटता भी बाधा हो जाती है। आदमी बड़ा अजीब है! कभी-कभी दूरी सहयोगी हो जाती है, निकटता बाधा हो जाती है। वह चचेरा भाई था बुद्ध का। यही खतरा हो गया। चचेरा भाई ही नहीं था, बड़ा भाई भी था। तो वह अकड़ उसमें बनी ही रही कि अरे, है तो मेरा ही भाई! और फिर मैं बड़ा भाई! दोनों साथ पढ़े, दोनों साथ बढ़े; शिकार खेला, लड़े-झगड़े; कभी उसने बुद्ध को चारों खाने चित भी कर दिया होगा। भाई ही थे! एक ही महल में बड़े हुए थे।
फिर बुद्ध जब ज्ञान को उपलब्ध हुए, तब भी उसने अपनी अकड़ न छोड़ी। आया तो, झुका तो, लेकिन झुकने के पहले उसने कहा कि तू सुन; सिद्धार्थ, तू सुन! जब तक मैं तेरा भिक्षु नहीं हुआ हूं तब तक मैं तेरा बड़ा भाई हूं, तू मेरा छोटा भाई है; तब तक मैं जो कहूं, उसको सुन और मैं जो कहूं, उसको मान। फिर तो मैं भिक्षु हो जाऊंगा, तेरा शिष्य हो जाऊंगा, फिर पुराना नाता तो समाप्त हो जाएगा, फिर मैं तेरी सुनूंगा और तेरी मानूंगा। इसके पहले कुछ बातें तय हो जानी चाहिए। देख, ये मेरी कुछ शर्तें हैं।
पहली शर्त तो यह कि भिक्षु हो जाने के बाद मुझे कभी तू अपने से दूर न भेज सकेगा। यह मेरी आज्ञा है। तू छोटा भाई है, तुझे माननी ही होगी। तू मुझे कभी भेज न सकेगा दूर। तू यह न कह सकेगा कि आनंद, अब तू जा और कहीं प्रचार कर, प्रसार कर। मैं तो साथ ही रहूंगा। दूसरी बात, मैं तो उसी कमरे में सोऊंगा जिसमें तू सोएगा। मैं रत्ती-पल को भी दूर नहीं होना चाहता। तीसरी बात, मैं जो भी पूछूंगा, उसका तुझे उत्तर देना होगा। जैसा तू औरों से कहता है कि साल भर बाद पूछना, कि दो साल चुप रहो, फिर पूछना, यह मेरे साथ न चलेगा। आखिर मैं तेरा भाई! आखिर तेरा बड़ा भाई! और चौथी बात कि अगर आधी रात को भी मैं किसी को ले आऊं, तो तुझे मिलना पड़ेगा। क्योंकि मैं तेरे साथ रहूंगा, लोग मुझसे प्रार्थना करेंगे कि मिलवा दो; अगर मुझे लगा कि किसी को मिलवाना जरूरी है, तू मुझे रोक न सकेगा। आधी रात जगा कर भी, तो भी तू यह न कह सकेगा कि यह क्या करते हो? ये चार तू वचन दे दे; फिर मैं दीक्षा ले लेता हूं, फिर मैं समर्पण कर देता हूं।
तो बुद्ध ने ये चार वचन दिए। उनकी करुणा, इसलिए चार वचन दिए, कि चल, इस बहाने ही सही, मगर तू दीक्षित तो हो, फिर पीछे निपट लेंगे। मगर वह अकड़ जो बनी रही बनी रही। बुद्ध के जीते-जी न मिटी। वह जिज्ञासु ही रहा, विद्यार्थी ही रहा; ज्यादा से ज्यादा नाता उसका उतना ही बना।
उसने पूछा जाकर--आम्रपाली नाम की वेश्या के पास गया जो रात आई थी और उसने पूछा कि क्या तेरे मन में ऐसा हुआ था? आम्रपाली ने कहा, यह तो हद हो गई। एक तो उन्हें कैसे पता चला कि मैं आई हूं! और यह कैसे पता चला कि मेरे मन में भी ये विचार उठे! सच कहते हैं वे। यही विचार उठे। जैसे ही उन्होंने कहा कि जाओ, अब रात्रि का अंतिम कार्य करो, मैं एकदम कपड़े झाड़ कर खड़ी हो गई। मैंने कहा, मैं भी कहां रात गंवाए दे रही हूं, प्यारी रात है, ग्राहक आ गए होंगे।
आम्रपाली बड़ी सुंदरी थी। नगरवधू थी। दूर-दूर से राजा और सम्राट उसके द्वार पर आते थे। वह अपने रथ पर बैठी और वापस गई। और सच में वहां मेहमान खड़े थे आकर। गुहार मची थी कि आम्रपाली कहां है? आज कहां गई आम्रपाली? आनंद ने जब उससे जाकर यह पूछा कि क्या तेरे मन में ऐसा हुआ था और उसने कहा, हां, हुआ था, तो आनंद के साथ-साथ वह खुद भी आई बुद्ध के चरणों में, उसने दीक्षा ले ली। उसने कहा कि आपने रात भी मुझे पहचान लिया और पकड़ लिया। और इतना ही नहीं कि बाहर से पहचाना और पकड़ा, भीतर से भी पहचाना और पकड़ा। अब इन चरणों के सिवाय मेरे लिए कहीं और कोई शरण नहीं है। अब कहीं नहीं जाना है। अब सब धंधा समाप्त; अब सब काम समाप्त। मुझ अपात्र को स्वीकार कर लें।

आनंद तो उस चोर के पास भी गया। और वह चोर भी दीक्षित हो गया। और आनंद
ने बुद्ध से कहा कि आपने भी हद कर दी! कहीं ऐसा तो नहीं है कि मुझे जो यह जो जिज्ञासा हुई कि मैं जा-जा कर पूछूं इस चोर से, इस वेश्या से, वह भी आपकी ही तरकीब रही हो! क्योंकि ये दोनों आ गए और डूब गए! और मैं तो अभी भी किनारे पर खड़ा हूं सो किनारे पर खड़ा हूं! भौचक्क, कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ?
वह आखिर तक भौचक्क रहा।
प्रत्यक्ष तो सिर्फ आत्मा ही हो सकती है। शेष सब में तो मन आ जाएगा। इसलिए यह सूत्र प्यारा है: "मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध!"
क्या अदभुत बात है! लब्ध अर्थात सदा उपलब्ध। ऐसा एक क्षण भी न था जब तुम परमात्मा न थे। ऐसा एक भी क्षण कभी नहीं होगा जब तुम परमात्मा न होओगे। अभी भी तुम परमात्मा हो--जानो, न जानो! पहचानो, न पहचानो! भूलो, भटको! मगर बदल नहीं सकते। लाख उपाय करो, तुम जो हो सो हो।
यह संन्यास उपनिषद का श्लोक कहता है: "लब्ध और उदित हूं।"
और भीतर सूर्य निकला ही हुआ है। जरा आंख भीतर ले जाओ, और रोशनी ही रोशनी है। कहीं कोई अंधकार नहीं है।
"मैं विकल्पों से रहित हूं; मैं जो हूं सो हूं"--उससे अन्यथा न हुआ हूं,
न हो सकता हूं--"मुझे नमस्कार है।"
अब ऐसी अदभुत रहस्य की अनुभूति को नमस्कार न करोगे? क्या सिर्फ इस कारण रुक जाओगे कि कैसे अपने को नमस्कार करूं? अरे, कहां अपना, कहां पराया, ऐसी अपूर्व अनुभूति को तो नमन करना ही होगा, झुकना ही होगा।
"तू और मैं अनंत हैं, मैं और तू चिदात्मा हैं; (दोनों को) नमस्कार है। मुझ परमेश्वर और मुझ शिवरूप को नमस्कार है।"
अगर उपनिषद के चार महावाक्य समझ में आ गए, तो फिर संन्यास उपनिषद का
यह अटपटा-सा सूत्र भी कठिन नहीं रह जाता है। इन पर ध्यान करना। इनमें डूबना। इनमें सीढ़ी-सीढ़ी उतरना। क्योंकि यही है मार्ग।
और जब तक इस मार्ग पर कोई चले न और जब तक अहं ब्रह्मास्मि की अंतिम उदघोषणा न हो जाए, तब तक अतृप्ति रहेगी, असंतोष रहेगा, विषाद रहेगा, संताप रहेगा; तब तक नर्क है और नर्क ही रहेगा। इस उदघोषणा के साथ ही तुम्हारे जीवन के फूल खिल जाएंगे, सुगंध ही सुगंध हो जाएगी, वीणा बज उठेगी; अनाहत का नाद होने लगेगा, अमृत की झड़ी लग जाएगी। एक नहीं, जैसे हजार सूर्य एक साथ उदित हो गए हों। और झड़ी ऐसी नहीं कि एक दफा शुरू हुई तो बंद हो जाए। फिर अमृत बरसता ही रहता है। वेद कहते हैं: अमृतस्य पुत्रः! तुम हो अमृत के पुत्र। मगर भूल गए हो, भटक गए हो, सो गए हो। नींद में हो, जागो!

उनसे जब दिल की बात होती है
बज्म में कायनात होती है

लब को महसूस तक नहीं होता
आंखों आंखों में बात होती है

भूल जाते हैं सिर्फ अपनी ही
वरना दुनिया की बात होती है

एक रात उनकी है--खुदा रखे एक अपनी भी रात होती है

उनसे जब दिल की बात होती है बज्म में कायनात होती है

उपनिषद दिल की बातें हैं।
लब को महसूस तक नहीं होता ओंठों को पता भी नहीं चलता।
लब को महसूस तक नहीं होता आंखों आंखों में बात होती है

शिष्य और गुरु के बीच कुछ हो जाता है।
लब को महसूस तक नहीं होता
आंखों आंखों में बात होती है
उनसे जब दिल की...
यह नाता प्रेम का है, परम प्रेम का है। सब प्रेम छोटे पड़ जाते हैं इस नाते के समक्ष। सब प्रेम बड़े क्षुद्र हैं, बड़े सीमित हैं, सिर्फ गुरु और शिष्य के बीच जो घटित होता है वह विराट है, विशाल है, असीम है।

धर्म और सद्गुरु

(Note: from Jo Bole To Harikatha (जो बोलैं तो हरिकथा) #7)

पहला प्रश्न: भगवान, गुरु पूर्णिमा के इस पुनीत अवसर पर हम सभी शिष्यों के अत्यंत प्रेम व अहोभावपूर्वक दंडवत प्रमाण स्वीकार करें। साथ ही गुरु-प्रार्थना के निम्नलिखित श्लोक में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों का रूप बताया है, परंतु इसके आगे उसे साक्षात परब्रह्म भी कहा है! कृपा करके गुरु के इन विविध रूपों को हमें समझाने की अनुकंपा करें।

श्लोक है:

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

सत्य वेदांत!

यह सूत्र अपूर्व है। थोड़े से शब्दों में इतने राजों को एक साथ रख देने की कला सदियों-सदियों में निखरती है। यह सूत्र किसी एक व्यक्ति ने निर्माण किया हो, ऐसा नहीं। अनंत काल में न मालूम कितने लोगों की जीवन-चेतना से गुजर कर इस सूत्र ने यह रूप पाया होगा। इसलिए कौन इसका रचयिता है, कहा नहीं जा सकता।

यह सूत्र किसी एक व्यक्ति का अनुदान नहीं है, सदियों के अनुभव का निचोड़। जैसे लाखों-लाखों गुलाब के फूल से कोई इत्र की एक बूंद निचोड़े, ऐसा यह अपूर्व, अद्वितीय सूत्र है। सुना तुमने बहुत बार है, इसलिए शायद समझना भी भूल गए होओगे। यह भ्रांति होती है। जिस बात को हम बहुत बार सुन लेते हैं, लगता है: समझ गए--बिना समझे!

और यह सूत्र तो कंठ-कंठ पर है। और आज तो इस देश के कोने-कोने में दोहराया जाएगा। लेकिन अकसर लोग इन सूत्रों को बस तोतों की भांति दोहराते हैं। तोतों से ज्यादा उनके दोहराने में अर्थ नहीं होता। तोतों को तो जो सिखा दो, वही दोहराने लगते हैं।

और इस सूत्र को समझने के लिए प्रज्ञा चाहिए, बोध चाहिए, निखार चाहिए चेतना का; ध्यान की गरिमा चाहिए। समझने की कोशिश करो।

ईसाइयत ने परमात्मा को तीन रूप वाला कहा है। पता नहीं क्यों! लेकिन पृथ्वी के कोने-कोने में, जहां भी धर्म का कभी भी अभ्युदय हुआ है, तीन का आंकड़ा किसी न किसी कोने से उभर ही आया है।

ईसाई कहते हैं उसे ट्रिनिटि। वह पिता-रूप है, पुत्र-रूप है और दोनों के मध्य में पवित्र-आत्मा-रूप है। लेकिन तीन का आंकड़ा तो ठीक पकड़ में आया। मगर तीन को जो शब्द दिए, वे बहुत बचकाने हैं। जैसे छोटा-सा बच्चा परमात्मा के संबंध में सोचता हो, तो वह पिता के अर्थों में ही सोच सकता है। उसकी कल्पना उसकी मनो-चेतना से बहुत दूर नहीं जा सकती। इसलिए ईसाइयत में थोड़ा बचकानापन है। उसकी धारणाओं में वह परिष्कार नहीं है...।

भारत ने भी इस तीन के आंकड़े को निखारा है! सदियों-सदियों में इस पर धार रखी है। हम परमात्मा को त्रिमूर्ति कहते हैं। उसके तीन चेहरे हैं। वह तो एक है, लेकिन उसके तीन पहलू हैं। वह तो एक है, लेकिन उसके तीन आयाम हैं। उसके मंदिर के तीन द्वार हैं।

और त्रिमूर्ति की धारणा में और विकास नहीं किया जा सकता। वह पराकाष्ठा है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश--ये तीन परमात्मा के चेहरे हैं। ब्रह्मा का अर्थ होता है, सर्जक, स्रष्टा। विष्णु का अर्थ होता है--सम्हालने वाला। और महेश का अर्थ होता है--विध्वंसक।

यह विध्वंस की धारणा भी परमात्मा में समाविष्ट की जा सकती है, यह सिवाय इस देश के और कहीं भी घटी नहीं। स्रष्टा तो सभी संस्कृतियों ने उसे कहा है, लेकिन विध्वंसक केवल हम कह सके। सृजन तो आधी बात है; एक पहलू है। जो

बनाएगा, वह मिटाने में भी समर्थ होना चाहिए। सच तो यह है: जो मिटा न सके, वह बना भी न सकेगा। जैसे कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाए। तो मूर्ति का निर्माण ही विध्वंस से शुरू होता है। उठाता है छेनी-हथौड़ी, तोड़ता है पत्थर को! अगर पत्थर में प्राण होते, तो चीखता कि क्यों मुझे तोड़ते हो! यूं टूट-टूट कर पत्थर में से प्रतिमा प्रकट होती है--बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की। विध्वंस के बिना सृजन नहीं है। और जो चीज भी बनेगी, उसे मिटना भी होगा। क्योंकि बनने की घटना समय में घटती है, और समय में शाश्वत कुछ भी नहीं हो सकता। जो बना है, उसे मिटना ही होगा।
होने में एक तरह की थकान है। हर चीज थक जाती है! यह जानकर तुम चकित होओगे कि आधुनिक विज्ञान कहता है कि धातुएं भी थक जाती हैं। सर जगदीशचंद्र बसु की बहुत-सी खोजों में एक खोज यह भी थी, जिन पर उनको नोबल पुरस्कार मिला था, कि धातुएं भी थक जाती हैं। जैसे कलम से तुम लिखते हो, तो तुम्हारा हाथ ही नहीं थकता; कलम भी थक जाती है। जगदीशचंद्र बसु ने तो इसे मापने की भी व्यवस्था खोज ली थी। और अब तो जगदीशचंद्र को हुए काफी समय हो गया, आधी सदी बीत गई। इस आधी सदी में बहुत परिष्कार हुआ विज्ञान का। अब तो पता चला है, हर चीज थक जाती है; मशीनें थक जाती हैं, उनको भी विश्राम चाहिए! विध्वंस विश्राम है। जन्म एक पहलू। जीवन दूसरा पहलू। मृत्यु तीसरा पहलू। जीवन तो थकाएगा। इसलिए मृत्यु को कभी हमने बुरे भाव से नहीं देखा। हमने यम को भी देवता कहा। हमने उसे भी शैतान नहीं कहा। वह भी दिव्य है। मृत्यु भी दिव्य है।
कठोपनिषद की तो प्यारी कथा है कि नचिकेता अपने पिता के पास बैठा है। छोटा-सा बच्चा है। और पिता ने एक महान यज्ञ किया है और वह गौवें बांट रहा है। पिता तो बूढ़ा होगा, तो बेईमान होगा! बूढ़ा आदमी--और बेईमान न हो, जरा मुश्किल! बेटा--और बेईमान हो, यह भी जरा मुश्किल। छोटा बच्चा--अभी अनुभव ही क्या है कि बेईमान हो जाए! बेईमानी के लिए अनुभव चाहिए। ईमानदारी के लिए अनुभव की कोई जरूरत नहीं। ईमानदारी स्वाभाविक है। इसलिए हर बच्चा ईमानदार पैदा होता है। और धन्यभागी हैं वे, जो मरते समय पुनः ईमानदारी को उपलब्ध हो जाते हैं। वही ऋषि हैं, वही संत हैं। वही गुरु हैं--जो पुनः बच्चे जैसी सरलता को उपलब्ध हो जाते हैं।
ऐसी सरलता तथाकथित अनुभवी आदमी में नहीं होती। अनुभव का अर्थ ही यह होता है कि देखीं दुनिया की चालबाजियां; पहचाने दुनिया के ढंग। और हर ढंग से, हर पहचान से चतुरता सीखी। चतुरता का मतलब होता है कि अब हम भी गला काटने में कुशल हो गए! यूं कटेंगे कि कानों कान पता भी न चले! यूं काटेंगे कि जिसका गला काटें, उसे भी पता न चले!
बाप तो बूढ़ा था, सम्राट था, गौवें बांट रहा था। बेटा देख रहा था। बेटे
को समझ नहीं आ रहा था! बिलकुल मर गई सी गौवें, जिन्होंने वर्षों हो गए, तब से दूध देना बंद किया। ये क्यों बांटी जा रही हैं! तो वह पूछने लगा अपने पिता से कि इन मुरदा गौवों को बांट रहे हो! न ये दूध देती हैं, न ये दूध देने वाली हैं! न बच्चे इनके पैदा होंगे! और जिनको तुम दे रहे हो, इन गरीबों को तुम सोच रहे हो, दान दे रहे हो! ये इतना पालन-पोषण करने में और दीन-हीन हो जाएंगे! ये मृत गौवें किसलिए भेंट कर रहे हो?
छोटे बच्चों को बहुत-सी बातें दिखाई पड़ जाती हैं, जो बूढ़ों को नहीं दिखाई पड़तीं। बूढ़ों की आंख पर तो धुंध की पर्त हो जाती है!
इसलिए जो संस्कृति, जो देश जितना बूढ़ा हो जाता है, उतना बेईमान हो जाता है। इस देश की बेईमानी का बुनियादी आधार यही है। हमसे पुराना कोई देश नहीं; हमसे बढ़ा कोई देश नहीं। हम मरना ही भूल गए हैं। हम ब्रह्मा में ही अटके हैं; हमें महेश की याद ही नहीं रही।
कितनी संस्कृतियां पैदा हुईं! बेबीलोन, असीरिया, मिश्र, रोम, एथेंस--
सब खो गए!
मेरे पास भारत के एक राजनीतिज्ञ सेठ गोविंददास अकसर आते थे। तो वे अकसर कहते थे: हमारी संस्कृति अदभुत है! सारी संस्कृतियां पैदा हुईं और मर गईं; सिर्फ हम जिंदा हैं! बहुत बार मैंने सुना। बूढ़े आदमी थे। मैंने उनसे कहा कि इसको गौरव मत समझो। जीना जितना महत्वपूर्ण है, मरना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। मरना भी आना चाहिए उसकी भी कला होती है। इस देश को मरना ही

भूल गया है। और जब कोई देश मरना भूल जाए, तो थक जाता है, ऊब जाता है, बेईमान हो जाता है। उदास हो जाता है। उसका नृत्य खो जाता है। उसके पैरों में घूंघर नहीं बजते। उसके ओठों से बांसुरी छिन जाती है। यौवन ही गया, तो बांसुरी कहां! घूंघर कैसे बंधें? लाश रह जाती है, जिसमें से सिर्फ दुर्गंध उठती है। मरना भी चाहिए, क्योंकि मरने के बाद पुनर्जन्म है।
मृत्यु तुम्हें छुटकारा दिला देती है सब सड़े-गले से, सब बेईमानियों से, सब पाखंड से; फिर तुम्हें नया कर देती है। मृत्यु की कला यही है; मृत्यु का वरदान यही है। मृत्यु अभिशाप नहीं है।
जरा सोचो, अगर सारे लोग मरना भूल जाएं, तो किसी भी घर में जीना मुश्किल
हो जाएगा। यूं ही हो गया है। अगर घर में बूढ़े ही बूढ़े इकट्ठे हो जाएं, यूं तुम रोते हो पितृपक्ष में; जो मर गए, उनको तुम भेंट चढ़ा देते हो, मगर जरा सोचो कि अगर जिंदा होते, तो गरदनें काटनी पड़तीं! एक घर में अगर हजार, दो हजार साल से कोई मरा ही न होता, तो क्या गति हो जाती! क्या दुर्गति हो जाती! महा गौरव नर्क पैदा हो जाता। उस घर में बच्चे तो फिर सांस ही नहीं ले सकते थे। वे तो सांस लेते ही मर जाते। इतने बूढ़े जहां सांस ले रहे हों...! मुल्ला नसरुद्दीन अखबार पढ़ रहा था। अखबार में खबर छपी थी। किसी वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया था कि जब भी तुम सांस लेते हो, उतनी देर में पृथ्वी पर पांच आदमी मर जाते हैं!
मुल्ला ने अपनी पत्नी को कहा, जो भोजन पका रही थी, कि सुनती हो, फजलू की मां, जब भी मैं एक बार सांस लेता हूं, पांच आदमी मर जाते हैं!
फजलू की मां ने कहा, मैंने तो कई दफे कहा कि तुम सांस लेना बंद क्यों नहीं करते! अब कब तक सांस लेते रहोगे और लोगों को मारते रहोगे?
जिस घर में हजारों साल से बूढ़े सांस ले रहे हों, उस घर में हवाओं में जहर होगा। हमारे घर में तो यह हो गई है हालत। यहां बूढ़े सांस ले रहे हैं; मरते ही नहीं! विदा ही नहीं होते!
हम तो अतीत को ऐसा छाती से लगाए हुए हैं। कब्रों को ढो रहे हैं। कब्रों के नीचे दबे जा रहे हैं! लाशों को ढो रहे हैं। लाशों के नीचे जो जीवित है, वह कहां खो गया, पता लगाना मुश्किल हो गया!
हम ऐसे परंपरावादी! हम ऐसे जड़वादी!
मृत्यु उपयोगी है उतनी ही, जितना जन्म। जन्म जगाता है तुम्हें; मिट्टी में प्राण फूंक देता है। फिर थक जाओगे--सत्तर साल, अस्सी साल, नब्बे साल, सौ साल...! फिर वापस लौट जाना है मूलस्रोत को। हवा हवा में मिल जाए। पानी पानी में मिल जाए। मिट्टी मिट्टी में मिल जाए। आकाश आकाश में मिल जाए। प्राण महाप्राण में मिल जाए--मूल स्रोत में, ताकि तुम फिर पुनरुज्जीवित हो सको, नई ऊर्जा ले कर।
ये सारी संस्कृतियां जो मर गईं, ये फिर से पुनरुज्जीवित होती रहीं।
हम मरे नहीं, तो सड़े। हम पुनरुज्जीवित नहीं हो पाए।
मैं चाहूंगा कि भारत मरना सीखे, ताकि फिर से जीवित हो सके; ताकि फिर से यौवन का संचरण हो; ताकि फिर बच्चों की किलकारी सुनाई पड़े। बूढ़ों की बकवास सुनते-सुनते बहुत समय हो गया।
हम लेकिन अकेले हैं, जिन्होंने यह बात पहचानी थी कि जीवन मूल्यवान है, जन्म मूल्यवान है--मृत्यु भी मूल्यवान है। और इन तीनों को दिव्य कहा; परमात्मा के तीन रूप कहा--ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि भारत में, पूरे भारत में, ब्रह्मा को समर्पित केवल एक मंदिर है! यह बात महत्वपूर्ण है। क्योंकि ब्रह्मा का काम तो हो चुका। यह तो प्रतीकरूप से एक मंदिर समर्पित कर दिया है; यूं ब्रह्मा का काम पूरा हो चुका।
हां, विष्णु के बहुत मंदिर हैं। सारे अवतार विष्णु के हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, परशु-राम--ये सब विष्णु के अवतार हैं। इनमें कोई भी ब्रह्मा का अवतार नहीं है। ये सम्हालने वाले हैं। जैसे घर में कोई बीमार हो, तो डाक्टर को बुलाना पड़ता है, ऐसे आदमी बीमार है, तो जीवन के विराट स्रोत से चिकित्सक पैदा होते रहे। बुद्ध ने कहा है कि मैं वैद्य हूं--विद्वान नहीं। और नानक ने भी कहा है कि मैं वैद्य हूं। मेरा काम है, तुम्हारे जीवन को

रोगों से मुक्त कर देना; तुम्हारे जीवन को स्वास्थ्य दे देना; तुम्हें जीवन को जीने की जो कला है, वह सिखा देना।
तो विष्णु के बहुत मंदिर हैं। राम का मंदिर हो, कि कृष्ण का मंदिर हो,
कि बुद्ध का मंदिर हो--सब विष्णु के मंदिर हैं। ये सब विष्णु के अवतार हैं। विष्णु का काम बड़ा है। क्योंकि जन्म एक क्षण में घट जाता है; मृत्यु भी एक क्षण में घट जाती है; जीवन तो वर्षों लंबा होता है!
और तीसरी बात भी खयाल रखना कि विष्णु से भी ज्यादा मंदिर शिव के हैं, महेश के हैं। इतने मंदिर हैं कि मंदिर बनाना भी हमें बंद करना पड़ा। अब तो कहीं भी एक शंकर की पिंडी रख दी झाड़ के नीचे--मंदिर बन गया! कहीं से भी गोल-मटोल शंकर को ढूंढ लाए; बिठा दिया; दो फूल चढ़ा दिए! फूल भी कितने चढ़ाओगे! इसलिए शंकर पर पत्तियां ही चढ़ा देते हैं, बेल पत्री! फूल भी कहां से लाओगे! इतने शंकर के मंदिर हैं--हर झाड़ के नीचे! गांव-गांव में! वह भी प्रतीक उपयोग है।
जन्म हो चुका; सृष्टि हो चुकी; ब्रह्मा का काम निपट गया। जीवन चल रहा है, इसलिए विष्णु का काम जारी है। लेकिन बड़ा काम तो होने को है, वह महेश का है; वह है जीवन को फिर से निमज्जित कर देना; असृष्टि; जीवन को विसर्जित कर देना; महा प्रलय, जिसमें कि सब खो जाएगा, और फिर सब जागेगा--ताजा होकर जागेगा।
हम निद्रा को भी छोटी मृत्यु कहते हैं। उसका भी कारण यही है कि प्रति रात्रि, जब तुम गहरी निद्रा में होते हो, तो छोटी-सी मृत्यु घटती हैं; छोटी- सी आण्विक। जब चित्त बिलकुल शून्य हो जाता है, निर्विचार, इतना निर्विचार कि स्वप्न की झलक भी नहीं रह जाती, तब तुम कहां चले जाते हो! तब तुम मृत्यु में लीन हो जाते हो; तुम वहीं पहुंच जाते हो, जहां मर कर लोग पहुंचते हैं। सुषुप्ति छोटी-सी मृत्यु है, इसीलिए तो सुबह तुम ताजे मालूम पड़ते हो।
वह ताजगी, रात तुम जो मरे, उसके कारण होती है। सुबह तुम जो प्रसन्न उठते हो, प्रमुदित--चेहरे पर जो झलक होती है, फिर जीवन में रस आ गया होता है, फिर पैरों में गति आ गई होती है, फिर तुम काम-धाम के लिए तत्पर हो गए होते हो-- वह इसीलिए कि रात तुम मर गए।
जो व्यक्ति रात स्वप्न ही स्वप्न देखता रहा है, वह सुबह थका-मांदा उठता है। वह सुबह और भी थका होता है। जितना कि रात जब सोने गया था--उससे भी ज्यादा थका होता है क्योंकि रात भर और सपने देखे! सपनों में जूझा। दुख-स्वप्न! पहाड़ों से पटका गया, घसीटा गया! भूत-प्रेतों ने सताया! छाती पर राक्षस नाचे! क्या-क्या नहीं हुआ!
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है और सपना देख रहा है कि भाग रहा हूं, भाग रहा हूं, भाग रहा हूं--तेजी से भाग रहा हूं! एक सिंह पीछे लगा हुआ है! और वह करीब आता जा रहा है! इतना करीब कि उसकी सांस पीठ पर मालूम पड़ने लगी। तब तो मुल्ला ने सोचा कि मारे गए! अब बचना मुश्किल है। और जब सिंह ने पंजा भी उसकी पीठ पर रख दिया, तो घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई। देखा, तो और कोई नहीं--पत्नी...! हाथ उसकी पीठ पर रखे है...!
पत्नियां नींद में भी ध्यान रखती हैं कि कहीं भाग तो नहीं गए! कहीं पड़ोसी के घर में तो नहीं पहुंच गए!
मुल्ला ने कहा कि माई! कम से कम रात तो सो लेने दिया कर! दिन में जो करना हो, कर। और क्या मेरी पीठ पर सांसें ले रही थीं कि मेरी जान निकली जा रही थी! यह कोई ढंग है!
एक दिन सुबह-सुबह बैठ कर अपने मित्रों को सुना रहा था कि शेर के शिकार
को गया था। घंटों हो गए, शिकार मिले ही नहीं। सब मित्र थक गए। मैंने कहा, मत घबड़ाओ। मुझे आवाज देनी आती है, जानवरों की। तो मैंने सिंह की आवाज की, गर्जना की। क्या मेरी गर्जना करनी थी कि फौरन एक गुफा में से सिंहनी निकल कर बाहर आ गई! धड़ा-धड़ हमने बंदूक मारी, सिंहनी का फैसला किया।
मित्रों ने कहा, अरे, तो तुम्हें इस तरह की आवाज करनी आती है! जरा यहां करके हमें बताओ तो, कैसी आवाज की थी!
मुल्ला ने कहा, भाई, यहां न करवाओ तो अच्छा।
नहीं माने मित्र कि नहीं, जरा करके जरा-सा तो बता दो।

जोश चढ़ा दिया, तो उसने कर दी आवाज। और तत्काल उसकी पत्नी ने दरवाजा खोला और कहा, क्यों रे, अब तुझे क्या तकलीफ हो गई?
मुल्ला बोला, देखो! सिंहनी हाजिर! इधर आवाज दी, तुम देख लो; खुद अपनी आंखों से देख लो! पत्नी खड़ी है विकराल रूप लिए वहां! हाथ में अभी भी बेलन उसके!
मुल्ला ने कहा, अब तो मानते हो! कि मुझे आती है जानवरों की आवाज!
रात तुम अगर ऐसे सपने देखोगे, ऐसी आवाजें बोलोगे, ऐसी आवाजें निकालोगे...रात देखो, लोग क्या-क्या आवाजें निकालते हैं! कभी उठकर बैठ कर निरीक्षण करने जैसा होता है!
मैं वर्षों तक सफर करता रहा, तो मुझे अकसर यह झंझट आ जाती थी। रात एक
ही डिब्बे में किसी के साथ सोना! एक बार तो यूं हुआ, चार आदमी डिब्बे में, मगर अदभुत संयोग था, चमत्कार कहना चाहिए, कि पहले आदमी ने जो गुर्राहट शुरू की, तो मैंने कहा कि आज सोना मुश्किल। मगर उसके ऊपर की बर्थ वाले ने जवाब दिया तो मैंने कहा, पहला तो कुछ नहीं है--नाबालिग! दूसरा तो गजब का था! मैंने कहा, आज की रात तो बिलकुल गई!
और उनमें ऐसे जवाब-सवाल होने लगे! संगत छिड़ गई! तीसरा थोड़ी देर चुप रहा, जो मेरे ऊपर की बर्थ पर था, जब उसने आवाज दी, तब तो मैं उठकर बैठ गया। मैंने कहा, अब बेकार है; अब चेष्टा ही करनी बेकार है। और उन तीनों में क्या साज-सिंगार छिड़ा!
थोड़ी देर तक तो मैंने सुना। मैंने कहा कि यह तो मुश्किल मामला है; यह पूरी रात चलने वाला है। तो मैंने भी आंखें बंद कीं और फिर मैं भी जोर से दहाड़ा। वे तीनों उठ कर बैठ गए! बोले कि भाईजान, अगर आप इतनी जोर से नींद में और गुर्राएंगे, तो हम सोएंगे कैसे?
मैंने कहा, सो कौन रहा है मूरख! मैं जग रहा हूं। और तुम्हें चेतावनी दे रहा हूं कि अगर तुमने हरकत की--न मैं सोऊंगा, न तुम्हें सोने दूंगा। सो तुम रहे हो, मैं जग रहा हूं। मैं बिलकुल जग कर आवाज कर रहा हूं। नींद में मैं आवाज नहीं करता। तुम सम्हल कर रहो, नहीं तो मैं...रात भर मैं भी तुम्हें नहीं सोने दूंगा!
लोग सोते क्या हैं, रात में भी सुर-सिंगार चलता है। और क्या जवाब-सवाल!
और फिर उनके भीतर क्या चल रहा है, वह तुम सोच सकते हो। कैसी-कैसी मुसीबतों में से गुजर रहे होंगे! फिर सुबह अगर थके-मांदे उठें, तो आश्चर्य क्या! सोए ही नहीं।
सुषुप्ति! स्वप्नरहित निद्रा अगर सिर्फ आधा घड़ी को भी रात मिल जाए, तो पर्याप्त है; तो तुम्हें चौबीस घंटे के लिए ताजा कर जाती है। रात वृक्ष भी सो जाते हैं, तभी तो सुबह उनके फूल फिर खिल आते हैं, और फिर सुगंध उड़ने लगती है। रात पक्षी भी सो जाते हैं, तभी तो सुबह फिर उनके कंठों से गीत झरने लगते हैं। उन गीतों को मैं साधारण गीत नहीं कहता; श्रीमदभगवदगीता कहता हूं। वे वह गीत हैं, जो कृष्ण के। उनके कंठों से कुरान की आयतें उठने लगती हैं। लेकिन यह सारा चमत्कार घटता है, रात छोटी-सी मृत्यु के कारण।
तुम देखते हो, जब छोटे बच्चे पैदा होते हैं, उनकी सरलता, उनका सौंदर्य, उनकी सौम्यता, उनका प्रसाद! यह कहां से आया! ये भी बूढ़े थे; मर गए; फिर पुनरुज्जीवित हुए हैं।
धर्म जीते जी मरने की और पुनरुज्जीवित होने की कला है। इसलिए गुरु को हमने तीनों नाम दिए हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा का अर्थ है: जो बनाए। विष्णु का अर्थ है, जो सम्हाले। महेश का अर्थ है--जो मिटाए। सदगुरु वही है, जो तीनों कलाएं जानता हो।
तुम तो उन गुरुओं को खोजते हो, जो तुम्हें मिटाएं ना--जो तुम्हें संवारें। मगर जिसे मिटाना नहीं आता, वह क्या खाक संवारेगा? बिना मिटाए, इस जीवन में कुछ निर्मित होता है?
तुम तो उन गुरुओं के पास जाते हो, जो तुम्हें सांत्वना दें। सांत्वना यानी सम्हालें। तुम्हारी मलहम-पट्टी करें। तुम्हें इस तरह के विश्वास दें, जिससे तुम्हारे भय कम हो जाएं, चिंताएं कम हो जाएं। ये सदगुरु नहीं हैं।

सदगुरु तो वह है, जो तुम्हें नया जन्म दे। लेकिन नया जन्म तो तभी संभव है, जब गुरु पहले तुम्हें मारे, मिटाए, तोड़े।
एक बहुत प्राचीन सूत्र है: आचार्यो मृत्युः। वह जो आचार्य है, वह जो गुरु है, वह मृत्यु है। जिसने भी कहा होगा, जान कर कहा होगा, जी कर कहा होगा। पृथ्वी के किसी और कोने में किसी ने भी गुरु को मृत्यु नहीं कहा है। हम ने गुरु को मृत्यु कहा; मृत्यु को गुरु कहा।
नचिकेता की मैं तुमसे कहानी कह रहा था। जब उसने पिता से कहा कि क्या
इन मुरदा गौवों को तुम दे रहे हो? उसे साफ दिखाई पड़ने लगा, कि यह क्या मजाक हो रहा है! इसको दान कहा जा रहा है! और मूढ़ पुरोहित बड़ी प्रशंसा और स्तुति कर रहे हैं उसके पिता की कि अहा, महादानी हो तुम! महादाता हो! तुम जैसा दाता कब हुआ, कब होगा! अरे सदियों में ऐसा आदमी होता है! और दे रहा है--मरी- मराई गौवें!
बच्चे तो जल्दी पहचान लेते हैं। उनमें अभी कोई चालबाजी नहीं है। आंख साफ-सुथरी होती है। धुआं नहीं है अभी। अभी न विचारों का धुआं है, न धारणाओं का धुआं है। न अभी हिंदू हैं, न मुसलमान हैं, न ईसाई हैं। अभी कुछ उपद्रव हुआ नहीं। अभी तो स्लेट कोरी है। इसलिए साफ उन्हें दिखाई पड़ता है।
एक बच्चा अपने चाचा के घर रहता था। चाचा उसे खाना न दे। या इतना कम दे
कि बस, किसी तरह जी रहा था। फटे-पुराने कपड़े पहनाए। खरीद लाए पुराने, चोर-बाजार से। पैजामे की टांगें लंबी, कोट के हाथ छोटे; टोपी ऐसी कि जिसकी खोपड़ी पर बिठा दो, वही सरदार हो जाए! खोपड़ी बिलकुल बंद ही कर दे! यह कस कर साफा बांधने से ही तो आदमी सरदार होता है। नहीं तो कोई हो सकता है! ऐसा कस कर बांधते हैं कि भीतर कुछ बचता ही नहीं फिर!
तो बच्चा बड़ी तकलीफ में था। लेकिन अब करे क्या! बाप मर गया; मां मर गई; चाचा के पास, चाचा के पल्ले पड़ गया।
एक दिन दोनों बैठे थे। यह गरीब बच्चा भी बैठा था और चाचा भी अखबार पढ़ रहे थे और हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। तभी एक बिलकुल मुरदा कुत्ता, बिलकुल मुरदा, खांसता-खखारता, खुजली-खुजली, शरीर बिलकुल हड्डी-हड्डी--घर में घुस आया। चाचा ने कहा कि अरे भगा इसको! यह मुरदा कुत्ता यहां कहां से आ गया! हड्डी-हड्डी हो रहा है!
उस बेटे कहा कि मालूम होता है, यह भी अपने चाचा के पास रहता है! इसकी हालत तो देखो!
छोटे बच्चों को चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं कि अब यह मामला साफ ही है! हुक्का गुड़गुड़ा रहे हो; इसका मुरदापन दिखाई पड़ रहा है; मेरी हालत नहीं देख रहे!
ऐसा ही नचिकेता ने अपने पिता से पूछा कि मरी हुई, मुरदा गौवों को तुम भेंट कर रहे हो, शर्म नहीं आती!
बाप को गुस्सा आ गया। बाप ही क्या, जिसको गुस्सा न आ जाए!
उसने कहा, तू चुप रह! नहीं तो तुझको भी भेंट कर दूंगा!
तो बेटे को तो बड़ा आनंद आया। बेटे ने सोचा: यह बड़े मजे की बात है! उसको
तो मन में बड़ा कुतूहल जगा, जिज्ञासा जगी कि किसको भेंट करेगा! सो वह पूछने लगा बार-बार कि अब फिर कब भेंट करिएगा! अब तो महोत्सव भी समाप्त हुआ जा रहा है; मुझको कब भेंट करिएगा? मुझको किसको भेंट करिएगा?
बाप और गुस्से में आ गया! कहा कि तुझे तो मृत्यु को ही भेंट कर दूंगा।
यम को दे दूंगा तुझे।
तो उसने कहा, दे ही दो!
ऐसी यह नचिकेता की प्यारी कथा है कि बाप ने कहा, जा, दिया तुझे मृत्यु को। यह तो वह गुस्से में ही कह रहा था। कौन किसको मृत्यु को देता है! कब नहीं मां-बाप गुस्से में आ कर बेटे से कह देते हैं कि तू पैदा ही न होता तो अच्छा था। अरे, जा मर ही जा! शकल मत दिखाना अब दुबारा!
मगर नचिकेता भी एक था। वह चल पड़ा मृत्यु की तलाश में, कि बाप ने तो भेंट कर दिया; मृत्यु है कहा? और कहती है कहानी कि वह पहुंच गया यम के द्वार पर। यह बाहर गए थे। फुर्सत कहां उनको; इतने लोग मरते रहते हैं! जगह-जगह लटके हैं अस्पतालों में! तरहत्तरह की तरकीबें कर रहे हैं--मरने की, जीने की! भागते फिरते हैं! पुराने जमाने में तो वे भैंसे पर ही चलते थे; अब

लेकिन हवाई जहाज में जाते होंगे, क्योंकि अब तो--भैंसों पर जाओगे, तो कहां पूरा कर पाओगे! एक को ढोकर पहुंचोगे, तब तक लाख यहां मर जाएंगे! वह पुरानी बात--भैंसे पर चलते थे; अब नहीं! अब चलते भी होंगे तो, अगर तुमको काला ही रंग पसंद हो, और भैंसे ही जैसा--तो रेलगाड़ी समझो! और नए ढंग की रेलगाड़ी नहीं--वही पुरानी कोयले से चलने वाली। उसका इंजिन लगता भी यमदूत जैसा था! एकदम छाती दहलाता हुआ आता।
पहली बार तो जब रेलगाड़ी चली, तो इंग्लैंड में कोई सवार होने को राजी नहीं था, कि लोगों ने अफवाह उड़ा दी कि यह शैतान की ईजाद है! इसकी शकल ही देख लो! और लोग शकल देखकर भाग गए, कि अरे, बिलकुल सच कह रहे हैं। कोई आदमी ऐसी चीज ईजाद करे, जिसकी शकल तो देखो पहले! और पादरियों ने ही यह अफवाह उड़ा दी कि जो इसमें बैठेगा, वह समझ ले कि गया! क्योंकि यह चलेगी, तो फिर रुकेगी नहीं! कोई बैठने को राजी नहीं था।
पहली दफे जो लोग रेल में बैठे थे, कुल बीस-पच्चीस आदमी। रेल थी तीन सौ आदमियों को बिठालने वाली, और बीस-पच्चीस को भी जबर्दस्ती बिठाया गया था। कुछ तो उसमें अपराधी थे, जिनको मजिस्ट्रेटों ने कहा कि जाओ, रेल में बैठो। तुमको सजा नहीं होगा। उन्होंने कहा, चलो मरना ही है। जेल में मरे कि इसमें मरे! यात्रा भी हो जाएगी। चलो देखें! कुछ ऐसे थे, जिनको देश-निकाला दिया जाने वाला था। उनसे कहा कि तुम बैठ जाओ रेलगाड़ी में, तो देश-निकाला नहीं दिया जाएगा। मतलब प्रयोग करके देखना था कि होता क्या है!
और कुछ हिम्मतवर लोग थे, मगर उनने भी पैसा लिया था बैठने का। कि भई, अपनी जान जोखम में डाल रहे हैं; अगर हम मर जाएं, या रेलगाड़ी न रुके, तो हमारे पत्नी-बच्चों की कौन देख-भाल करेगा! तो उनको गारंटी लिख कर दी गई थी कि उसकी देख-भाल की फिक्र सरकार की होगी। तब कहीं बीस-पच्चीस आदमी रेलगाड़ी में चले। और उनके घर वाले उन्हें विदा करने आए थे, तो बिलकुल आखिरी विदा दे गए थे, कि भैया, अब जा ही रहे हो, अब क्या मिलना होगा! अब के बिछड़े पता नहीं कब मिलें! जैसे किताबों में सूखे हुए गुलाब मिलें...। पता नहीं कब--अब यह कब घटना घटेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। आखिरी नमस्कार करके चले गए थे। रो रही थीं पत्नियां; बच्चे रो रहे थे। क्या करें!
और रेलगाड़ी जिस गांव से निकली, उस गांव से लोग भाग गए! कि रेलगाड़ी जा रही है! बामुश्किल जब रेलगाड़ी रुक गई, तब लोगों को भरोसा आया कि अरे, नहीं, यह रुकना भी जानती है!
यमदूत तीन दिन बाद लौटे। भैंसे की यात्रा, और ढोते-फिरते रहे होंगे।
यम की पत्नी ने बहुत समझाया नचिकेता को कि बेटा, तू भोजन तो कर ले। उसने कहा कि मैं भोजन न करूंगा। जब तक यम से मेरा मिलना न हो जाए, मैं ऐसा ही भूखा बैठा रहूंगा। वह बैठा ही रहा। वह पहला सत्याग्रही था!
यमदूत थके हुए आए। भैंसे से उतरे। देखा, यह लड़का बिलकुल सूखा जा रहा है, तीन दिन से। कहा, तुझे क्या हुआ बेटा?
कहा, मेरे बाप ने कहा कि मौत को देता हूं, तो मैं आपकी बड़ी तलाश करके यहां तक पहुंचा। आप मिले नहीं। न मिले--तो मैंने भोजन नहीं किया। सोचा, जब मिलेंगे तभी भोजन करूंगा।
यह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि तू तीन वर मांग ले। तू तीन वरदान मांग ले। धन मांग ले, पद मांग ले, प्रतिष्ठा मांग ले।
उसने कहा कि उस सब में तो कुछ सार नहीं। वह मैं पिता के पास देख चुका।
धन भी देख चुका; पद भी देख चुका; प्रतिष्ठा भी देख चुका। उससे अक्ल भी नहीं आती, और तो क्या खाक आएगा! मुझे तो मृत्यु का राज समझा दो। मुझे तो बता दो, यह मृत्यु क्या है!
यम ने कहा कि यह जरा कठिन है, क्योंकि मृत्यु का जिसने राज जान लिया, उसने अमृत का राज जान लिया! तू तो बड़ा होशियार है! तू पूछ तो रहा है मृत्यु के लिए, लेकिन मृत्यु की बताने में मुझे तुझे अमृत की बतानी पड़े!
लेकिन नचिकेता तो रुका ही रहा। उसने कहा, फिर मैं भोजन नहीं करूंगा। मैं यूं ही मर जाऊंगा। यहीं सत्याग्रह करता हुआ मर जाऊंगा!
यम को बहुत दया आई। उसे मृत्यु का राज बताया। मृत्यु का राज जानते ही उसे अमृत का सूत्र उपलब्ध हो गया।
मृत्यु को जिसने पहचान लिया, उसने अमृत को पहचान लिया।

सदगुरु के पास मृत्यु को जानना, मृत्यु को जीना, मृत्यु में गुजरना-- यही साधना है।
हमने ये तीनों रूप सदगुरु को दिए। वह बनाता है; वह सम्हालता है, वह मिटाता है। वह मिटा ही नहीं डालता। वह सिर्फ बना कर ही नहीं छोड़ देता। वह सिर्फ सम्हालता ही नहीं रहता। इसलिए तो सदगुरु के पास तो सिर्फ हिम्मतवर लोग ही जा सकते हैं, जिनके मरने की तैयारी हो, जो मिटने को राजी हों। सांत्वना के लिए जो जाते हैं सदगुरु के पास उनको पंडित-पुरोहितों के पास जाना चाहिए। वह उनका धंधा है। कि तुम रोते गए, उन्होंने तुम्हारे आंसू पोंछ दिए, पीठ थपथपा दी कि मत घबड़ाओ, सब ठीक हो जाएगा! कुछ सिद्धांत पकड़ा दिए कि यह तो दुख था, कट गया। अच्छा ही हुआ। पिछले जन्म का कर्म कट गया। एक कर्म से छुटकारा हो गया। और आगे सब ठीक ही ठीक है। और यह ले जाओ, हनुमान चालीसा पढ़ना। और बजरंगबली प्रसन्न रहें, तो सब ठीक है! कुछ मंत्र वगैरह पकड़ा दिया कि राम-राम जपते रहना। यह माला फेरते रहना। यह रामनाम की चदरिया ओढ़ लो। घबड़ाओ मत। अगर मरते दम भी उसका एक दफे नाम ले लिया, तो अजामिल जैसे पापी भी तर गए। तुमने क्या पाप किया होगा! बस, एक दफे नाम ले लेना मरते वक्त। गंगाजल पी लेना मरते वक्त। बोतल में बंद रख लो गंगाजल घर में। नहीं तो काशी करवट ले लेना। चले गए काशी, वहीं मर जाना। कुछ भी न हो सके, तो मरते वक्त किसी पंडित से कान में गायत्री पढ़वा लेना; नमोकार मंत्र पढ़वा लेना। तुमसे न कहते बने अब, जबान लड़खड़ाए जाए, बिलकुल मौत दरवाजे पर खड़ी हो गई हो, तो पंडित तो कान में दोहरा देगा, वही सुन लेना। तुमने तो नहीं कहा जिंदगी में कभी कि बुद्धं शरणं गचछामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। कोई तुम्हारे कान में कह देगा, वही सुन लेना! उससे ही काम हो जाएगा!
ये सब तरकीबें हैं--बेईमानों की, बेईमानों के लिए ईजाद की गई। ये जीवन
के रूपांतरण की कीमिया नहीं हैं।
सदगुरु के पास तो मरना भी सीखना होता है, और जीना भी सीखना होता है। और जीते जी मर जाना--यही ध्यान है; यही संन्यास है। जीते जी ऐसे जीना जैसे यह जीवन खेल है, अभिनय है, इससे ज्यादा नहीं। नाटक है, इससे ज्यादा नहीं। इसको गंभीरता से न लेना।
लेकिन बड़ी अजीब दुनिया है! यहां जिनको तुम भोगी कहते हो, वे भी बड़ी गंभीरता से लिए हैं। और जिनको तुम योगी कहते हो, वे भी बड़ी गंभीरता से लिए हुए हैं! दोनों बड़े गंभीर हैं! योगी और भी गंभीर हैं। भोगी तो कभी हंसे भी, योगी तो बिलकुल ही हंसता नहीं। उसको तो भव-सागर से पार होना है! हंसने की फुर्सत कहां है! और जोर से हंस दे--और भव-सागर का पानी भीतर चला जाए। तो यही खात्मा! तो वह तो बिलकुल मुंह बंद रखता है! मुस्कुराता ही नहीं! उसकी तो जान बिलकुल अटकी है। वह तो किसी तरह राम-राम कह कर समय गुजार रहा है कि हे प्रभु कब उठाओगे! कब इस संसार-सागर से छुटकारा होगा! कब आवागमन बंद करवाओगे! और प्रभु भी एक है कि वह आवागमन करवाए ही जाता है! तुम्हारे महात्माओं की सुनता ही नहीं! महात्मा लाख चिल्लाएं, वह फिर आवागमन करवा देता है!
परमात्मा सृष्टि के विरोध में नहीं है। सृष्टि उसकी है, कैसे विरोध में हो सकता है? सृष्टि तो एक अवसर है, मंच है, जिस पर तुम जीवन के अभिनय की कला सीखो--और यूं जीओ, जैसे कमल के पत्ते पानी में--पानी में भी और पानी छुए भी ना।
सदगुरु तुम्हें यही सिखाता है। और ये तीन घटनाएं सदगुरु के पास घट जाएं, तो चौथी घटना तुम्हारे भीतर घटती है। इसलिए उस चौथे को भी हमने सदगुरु के लिए स्मरण में कहा है।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। ये तो तीन चरण हुए। फिर जो अनुभूति तुम्हारे भीतर इन तीन चरणों से होगी...। ये तो तीन द्वार हुए। इनसे प्रवेश करके मंदिर की जो प्रतिमा का मिलन होगा, वह चौथा, तुरीय, चौथी अवस्था--गुरुः साक्षात परब्रह्म। तब तुम जानोगे कि जिसके पास बैठे थे, वह कोई व्यक्ति नहीं था। जिसने सम्हाला, मारा-पीटात्तोड़ा, जगाया-- वह कोई व्यक्ति नहीं था। वह तो था ही नहीं; उसके भीतर परमात्मा ही था।

और जिस दिन तुम अपने गुरु के भीतर परमात्मा को देख लोगे, उस दिन अपने भीतर भी परमात्मा को देख लोगे। क्योंकि गुरु तो दर्पण है, उसमें तुम्हें अपनी ही झलक दिखाई पड? जाएगी। आंख निर्मल हुई कि झलक दिखाई पड़ी।
तीन चरण हैं, चौथी मंजिल है। और सदगुरु के पास चारों कदम पूरे हो जाते हैं। तस्मै श्री गुरुवे नमः--इसलिए गुरु को नमस्कार। इसलिए गुरु को नमन। इसलिए झुकते हैं उसके लिए।
और पूर्णिमा का दिन ही चुना है उसके लिए, सत्य वेदांत, क्योंकि हमारा जीवन दिन की तरह नहीं है--रात की तरह है। और रात में सूरज नहीं उगा करते। रात में चांद उगता है। हम हैं रात--अंधेरी रात। और गुरु हमारे जीवन में जब आ जाता है, तो जैसे पूर्णिमा की रात आ गई। जैसे पूनम का चांद उतर आया। चंद्रमा प्रतीक है बहुत-सी चीजों का। एक तो यह कि वह रात में रोशनी देता है। और तुम अंधेरी रात हो, और तुम्हें चांद चाहिए--सूरज नहीं। सूरज का क्या करोगे! सूरज से तो तुम्हारा मिलन ही नहीं होगा। तुम तो अंधेरी रात हो, तुम्हें तो सूरज की कोई खबर नहीं। तुम्हें तो चांद ही मिल सकता है।
और चांद की कई खूबियां हैं। पहली तो खूबी यह कि चांद की रोशनी चांद की नहीं होती; सूरज की होती है। दिन भर चांद सूरज की रोशनी पीता है, और रात भर सूरज की रोशनी को बिखेरता है। चांद की कोई अपनी रोशनी नहीं होती। जैसे तुम एक दीया जलाओ और दर्पण में से दीया रोशनी फेंके। दर्पण की कोई रोशनी नहीं होती; रोशनी तो दीए की है। मगर तुम्हारा दीए से अभी मिलना नहीं हो सकता। और अभी दीए को देखोगे, तो जल पाओगे। आंखें जल जाएंगी। अभी रोशनी को सामने से तुम सीधा देखोगे, सूरज को, तो आंखें फूट जाएंगी। यूं ही अंधे हो--और आंखें फूट जाएंगी!
अभी परमात्मा से तुम्हारा सीधा मिलन नहीं हो सकता। अभी तो परमात्मा
का बहुत सौम्यरूप चाहिए, जिसको तुम पचा सको। चंद्रमा सौम्य है। रोशनी तो सूरज की ही है। गुरु में जो प्रकट हो रहा है, वह तो सूरज ही है, परमात्मा ही है। मगर गुरु के माध्यम से सौम्य हो जाता है।
चंद्रमा की वही कला है, कीमिया है। वह उसका जादू! कि सूरज कि रोशनी को पीकर और शीतल कर देता है। सूरज को देखोगे, तो गर्म है, उत्तप्त है; और चांद को देखोगे, तो तुम शीतलता से भर जाओगे।
सूरज पुरुष है, पुरुष है। चंद्रमा स्त्रैण है, मधुर है, प्रसादपूर्ण है। परमात्मा तो पुरुष है, कठोर है, सूरज जैसा है। उसको पचाना सीधा-सीधा, आसान नहीं। उसे पचाने के लिए सदगुरु से गुजरना जरूरी है। सदगुरु तुम्हें वही रोशनी दे देता है, लेकिन इस ढंग से कि तुम उसे पी लो। जैसे सागर से कोई पानी पीए, तो मर जाए। हालांकि कुएं में भी जो पानी है, है सागर का ही। मगर बदलियों में उठ कर आता है। नदियों में झर कर आता है। पहाड़ों पर से गिर कर आता है। है तो सागर का ही। पानी तो सब सागर का है। गंगा में हो, कि यमुना में हो, कि नर्मदा में हो, कि तुम्हारे कुएं में हो, किसी पहाड़ के झरने में हो, है तो सब सागर का। लेकिन सागर का पानी पीओगे, तो मर जाओगे। लेकिन झरने में कुछ बात है, कुछ राज है; उसी पानी को तुम्हारे पचाने के योग्य बना देता है!
सदगुरु की वही कला है। उसके भीतर से परमात्मा गुजर कर सौम्य हो जाता है; स्त्रैण हो जाता है; मधुर हो जाता है; प्रीतिकर हो जाता है। उसके भीतर से तुम्हारे पास आता है, तो तुम पचा सकते हो। और एक बार पचाने की कला आ गई, तो गुरु बीच से हट जाता है।
गुरु तो था ही नहीं, सिर्फ यह रूपांतरण की एक प्रक्रिया थी। जिस दिन तुमने पहचान लिया गुरु की अंतरात्मा को, उस दिन तुमने सूरज को पहचान लिया। तुमने चांद में सूरज को देख लिया; फिर रात मिट गई, फिर दिन हो गया।
इसलिए गुरु पूर्णिमा को हमने चुना है प्रतीक की तरह। ये सारे प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का एक पहलू और खयाल में ले लो।
तुम जब सदगुरु के पास जाओ, तो जाने के चार ढंग हैं। एक तो है कुतूहलवश; यूं ही जिज्ञासा से कि देखें, क्या है! देखें क्या हो रहा है! देखें क्या कहा जा रहा है! वह सबसे उथला पहलू है।

दूसरा पहलू विद्यार्थी का, कि कुछ सीख कर आएं; कुछ सूचनाएं ग्रहण करें; कुछ ज्ञान संगृहीत करें। वह थोड़ा गहरा है, मगर बहुत गहरा नहीं। चमड़ी जितनी गहरी, बस इतना गहरा है। तुम कुछ सूचनाएं इकट्ठी करोगे और लौट जाओगे। तीसरा पहलू है शिष्य का। जिज्ञासु को जोड़ो ब्रह्मा से। विद्यार्थी को जोड़ो विष्णु से। शिष्य को जोड़ो महेश से।
शिष्य वह है, जो मिटने को तैयार है। विद्यार्थी वह है, जो अपने को सजाने-संवारने में लगा है। थोड़ा ज्ञान और, थोड़ी जानकारी और, थोड़ी पदवियां और, थोड़ी डिग्रियां और। थोड़े सर्टिफिकेट, थोड़े प्रमाणपत्र, थोड़े तगमे! जिज्ञासु तो वह है, जो अपने को संवारने में लगा है। और जो कुतूहल से भरा है, उसने तो अभी यात्रा ही शुरू की; अभी तो ब्रह्मा का ही काम शुरू हुआ; बीज बोया गया। अभी सृजन की शुरुआत हुई। विद्यार्थी जरा आगे बढ़ा, उसमें दो पत्ते टूटे; अंकुर फूटे। शिष्य वह है, जो मिटने को तैयार है, मरने को तैयार है; जो कहता कि गुरु के लिए सब कुछ समर्पित करने को तैयार हूं। उस तैयारी से शिष्य बनता है।
सभी विद्यार्थी शिष्य नहीं होते। विद्यार्थी की उत्सुकता ज्ञान में होती है; शिष्य की उत्सुकता ध्यान में होती है। ज्ञान से तुम्हारा अहंकार भरता है और संवरता है। ध्यान से तुम्हारा अहंकार मरता है और मिटता है।
और चौथी अवस्था है भक्त की। भक्त का अर्थ होता है, जो मिट ही चुका। शिष्य ने शुरुआत की; भक्त ने पूर्णता कर दी। भक्त जान पाता है परब्रह्म की अवस्था को। जो गुरु के सामने मिट ही गया; मिटने को भी कुछ न बचा अब; जो यह भी नहीं कह सकता कि मैं मिटना चाहता हूं; जो इतना भी नहीं है, वही भक्त है। और जहां भक्ति है, वहां परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार है।
इसका तीसरा अर्थ भी समझ लो।
मनुष्य के जीवन की तीन अवस्थाएं हैं। एक जागरण, एक स्वप्न, एक सुषुप्ति और चौथी समाधि। जागरण का संबंध ब्रह्मा से। क्योंकि जाग कर तुम काम-धाम में लगते हो; निर्माण में लगते हो, सृजन में लगते हो। यह बनाना, वह बनाना, मकान बनाना, दुकान चलाना, धन कमाना! स्वप्न में तुम संवारने में लगते हो; जो-जो दिन में रह गया है अधूरा, स्वप्न में तुम्हारे संवरता है। इसलिए हर आदमी के स्वप्न अलग-अलग होते हैं। मनोवैज्ञानिक लोगों की जानकारी के लिए उनके स्वप्नों का निरीक्षण करते हैं। उनके स्वप्नों को जानना चाहते हैं। क्योंकि स्वप्न बताते हैं, क्या-क्या अधूरा है; कहां- कहां सम्हाल की जरूरत है!
अब जो आदमी रात-रात धन ही धन के सपने देख रहा है, वह खबर दे रहा है एक बात की कि उसकी जिंदगी में धन की कमी है। जिसकी कमी है, उसके स्वप्न होते हैं। जिसको कोई कमी नहीं रह जाती, उसके स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं। उसको स्वप्न बचते ही नहीं। बुद्धपुरुष स्वप्न नहीं देखते। क्या है देखने को वहां!
जिसके स्वप्न में स्त्रियां ही स्त्रियां तैर रही हैं, अप्सराएं उतरती हैं, उर्वशियां और मेनकाएं उतरती हैं, उसका अर्थ है कि उसके जीवन में अभी स्त्री के अनुभव से तृप्ति नहीं हुई, या पुरुष के अनुभव से तृप्ति नहीं हुई। अभी वहां अतृप्ति है, वासना दमित पड़ी है, इसलिए वासना सपने में सिर उठा रही है। सपना कहता है--यहां सम्हालो! यहां कमी है।
मनोवैज्ञानिक कहता है कि तुम्हारा सपना मैं जान लूं, तो तुम्हें जान लूं। क्योंकि तुम्हारी कमी पता चल जाए, तो मैं तुमसे कह सकूं कि कहां भरो; गङ्ढा कहां है; कहां मुश्किल आ रही है।
और तीसरी अवस्था है सुषुप्ति। सुषुप्ति यानी महेश, मृत्यु। छोटी-सी मृत्यु रात घट जाती है, जब स्वप्न भी खो जाते हैं, तुम भी नहीं बचते। तुम कहां चले जाते हो, कुछ पता नहीं! होते ही नहीं। सब शून्य हो जाता है।
और चौथी अवस्था को हमने तुरीय कहा है। तुरीय का अर्थ ही होता है, सिर्फ चौथी अवस्था। उस शब्द का और कोई अर्थ नहीं होता; चौथी--इतना ही अर्थ होता है--द फोर्थ, तुरीय, समाधि।
जो व्यक्ति सुषुप्ति में जाग जाता है, सपने चले गए, गहरी नींद आ गई, सपने बिलकुल नहीं हैं, लेकिन होश का दीया जल रहा है, उसको समाधि मिलती है।
उस चौथी अवस्था में परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

सदगुरु के पास तुम जब जाते हो, तो पहले तो तुम जाग्रत अवस्था में जाते हो, जिसको तुम जागरण कहते हो। उसमें कुतूहल होता है। अगर उसके पास रुके थोड़ी देर, तो विद्यार्थी बने बिना नहीं लौटोगे। उसमें सपने होते हैं। ज्ञान क्या है? सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं है! पानी पर खींची गई लकीरें, कि कागज पर खींची गई लकीरें। ज्ञान सिर्फ सपना है।
अगर और रुक गए, तो सब सपने मिट जाते हैं, ज्ञान मिट जाता है; ध्यान का आविर्भाव होता है। ध्यान सुषुप्ति है। अगर और रुके रहे, तो सुषुप्ति भी खो जाती है; फिर बोध का, बुद्धत्व का जन्म होता है। और जब बुद्धत्व का जन्म होता है, तब तुम जान पाते हो कि जो गुरु बाहर था, वही तुम्हारे भीतर है। जो तुम्हारे भीतर है, वही समस्त में व्याप्त है। वही परब्रह्म फूलों में है, वही पक्षियों में है, वही पत्थरों में है, वही लोगों में है--वही सब में व्याप्त है। सारी तरंगें उसी एक सागर की हैं। और जिन्होंने इस अनुभव को जान लिया, वे धन्यभागी हैं। वे ही धार्मिक हैं। वे न हिंदू हैं, न मुसलमान, न ईसाई, न बौद्ध, न जैन--वे सिर्फ धार्मिक हैं।
और मैं चाहूंगा कि जो लोग मेरे पास इकट्ठे हुए हैं, वे सिर्फ धार्मिक हों। ये हिंदू; मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी की बीमारियां विदा करो। ये सब बीमारियां हैं।
आ गए हो अगर वैद्य के पास, तो इन सारी बीमारियों से मुक्त हो जाओ; स्वस्थ बनो। और तब तुम्हारे भीतर नमन उठेगा--तस्मै श्री गुरुवे नमः। तब तुम्हारे भीतर पहली दहा अहोभाव में, धन्यवाद में नमन उठेगा। तुम पहली बार झुकोगे इस विश्व के प्रति, इस अस्तित्व के प्रति। तुम्हारा प्राण गदगद हो उठेगा। कृतज्ञता से, अनुग्रह से। तुम्हारे जीवन में एक सुगंध उठेगी, जो समर्पित हो जाएगी अस्तित्व के चरणों में।
यह जीवन का चरम शिखर है। जो यहां तक बिना पहुंचे मर गया, वह यूं ही जीया, यूं ही मर गया। न जीया--न मरा! व्यर्थ ही धक्के खाए! व्यर्थ धक्के मत खाते रहना। तुम्हारे जीवन में भी यह पूनम आ सकती है। तुम इस पूनम के अधिकारी हो। पुकारो। आह्वान करो। यह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।

मेरा स्वर्णिम भारत-3

मन का रूपांतरण
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #4)

पहला प्रश्न: भगवान,
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।
अर्थात मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है। जो मन विषयों में आसक्त होगा वह बंधन का तथा जो विषयों से पराङ्मुख होगा वह मोक्ष का कारण होगा।
शाटयायनीय उपनिषद का यह सूत्र काफी प्रचलित है। इस उपनिषद के अतिरिक्त अनेक अन्य शास्त्रों में भी इसे स्थान मिला हुआ है।
भगवान, क्या हमारे लिए इस सूत्र की व्याख्या करने की कृपा करेंगे?

चिदानंद, यह सूत्र तो मूल्यवान है, लेकिन नासमझों के हाथ में पड़ कर मूल्यवान से मूल्यवान चीज दो कौड़ी की हो जाती है। कोहिनूर भी पत्थर हो जाता है। उपनिषद के ये अमृत वचन जिनके हाथों में पड़े उन्होंने जहर कर दिया। सारी बात ही उलटी हो गई। कुछ का कुछ हो गया। यह पूरा देश उसी पीड़ा में सड़ रहा है।
उपनिषद तो बुद्ध पुरुषों के प्राणों से निकले हुए स्वर हैं। यह तो जब वीणा बजी है अनाहत की तब ऐसा अपूर्व संगीत पैदा हुआ है। लेकिन फिर पंडित जब व्याख्या करते हैं तो कमल को कीचड़ में घसीट डालते हैं। कमल यूं तो कीचड़ से ही पैदा होता है, लेकिन कमल कीचड़ ही नहीं है, कीचड़ का अतिक्रमण है। कीचड़ के भीतर जो कीचड़ नहीं है उसकी अभिव्यक्ति है। लेकिन फिर उसे कीचड़ में लथोड़ देना सुंदर को असुंदर कर देना है, सत्य को असत्य कर देना है। व्याख्याओं ने सत्यों को उभारा नहीं है, निखारा नहीं है, उन पर धार न दी, व्याख्याओं के कारण सत्य की तलवार चमकी नहीं, उस पर और धूल जमी, और जंग जमी।
ऐसा ही इस सूत्र के साथ भी हुआ। इस सूत्र का मौलिक अर्थ बहुत सरल और सीधा है। व्याख्या की जैसे कोई जरूरत ही नहीं है। मनुष्य शब्द भी इस बात का इंगित करता है कि मन ही सब कुछ है। मनुष्य शब्द ही मन से बना है। यूं तो दुनिया में मनुष्य के लिए अलग-अलग भाषाओं में बहुत से शब्द हैं। जैसे उर्दू में आदमी। वह भी प्यारा शब्द है। मगर वह कीचड़ की खबर देता है, कमल की नहीं। आदमी शब्द बनता है मिट्टी से। जो मिट्टी से बनाया गया, ऐसा आदमी का अर्थ है।
यहूदियों में, ईसाइयों में, मुसलमानों में यह कहानी है कि परमात्मा
ने मिट्टी का पुतला बनाया और उसमें सांसें फूंक दीं। ऐसे पहले आदमी का, आदम का जन्म हुआ। आदम का अर्थ है: मिट्टी का पुतला। सच है यह बात, लेकिन बहुत अधूरी-अधूरी। यह केवल मनुष्य का बाहरी रूप है। निश्चित ही मिट्टी है आदमी, लेकिन मिट्टी से ज्यादा भी है। हमारा शब्द मनुष्य उस ज्यादा की खबर देता है। मिट्टी है, मगर मिट्टी ही नहीं। मिट्टीमय है, मगर मिट्टी से भिन्न भी है। मनुष्य मन है।
अंग्रेजी का शब्द "मैन" मन का ही रूपांतरण है। वह मनुष्य का ही भिन्न रूप है। दोनों का उदगम एक ही सूत्र से हुआ है: मन से।
मन का अर्थ होता है: मनन की प्रक्रिया, मनन की क्षमता, सोच-विचार की संभावना। मिट्टी तो क्या खाक सोचेगी! मिट्टी तो सोचना भी चाहे तो क्या सोचेगी! कौन है जो मनुष्य के भीतर सोचता और विचारता? कौन है जो मनुष्य के भीतर मनन बनता है? वह चैतन्य है। इसलिए मन सिर्फ मिट्टी से ज्यादा नहीं है और भी कुछ है; मिट्टी के जो पार है, उसके भी जो पार है, उसकी तरफ इंगित है, इशारा है।
मनन की प्रक्रिया तो चैतन्य की संभावना है। चैतन्य हो तो ही मनन हो सकता है। इसलिए कोमा में विक्षिप्त पड़े हुए मनुष्य को मनुष्य नहीं कहना चाहिए। वहां तो मनन की क्रिया नहीं हो रही है, मनन की क्रिया समाप्त हो गई

है। वहां तो मिट्टी का आकाश से संबंध टूटा-टूटा है, उखड़ा-उखड़ा है--बीच की सीढ़ी ही गिर गई है।
तो मन है सीढ़ी। एक छोर लगा है मिट्टी से और दूसरा छोर छू रहा है अमृत को। सीढ़ी एक ही है। जिस सीढ़ी से तुम नीचे आते हो, उसी से ऊपर भी जाते हो। ऊपर और नीचे आने के लिए दो सीढ़ियों की जरूरत नहीं होती। सिर्फ दिशा बदल जाती है। यूं भी हो सकता है कि तुम सीढ़ी पर चढ़ते हुए आधी यात्रा पूरी कर लिए हो और एक सोपान पर खड़े हो, और दूसरा आदमी सीढ़ी से उतर रहा है, वह भी उसी सोपान पर खड़ा है; दोनों एक ही सोपान पर हैं--एक चढ़ रहा है, एक उतर रहा है--एक ही सोपान पर हैं, फिर भी बहुत भिन्न हैं। क्योंकि एक चढ़ रहा है, एक उतर रहा है। एक ही जगह हैं, मगर उनका एक ही कोटि में स्थान नहीं बनाया जा सकता। एक उतर रहा है, गिर रहा है, एक चढ़ रहा है, ऊर्ध्वगामी हो रहा है।
मन तो सीढ?ी है। अगर विषयों से आसक्त हो जाए तो उतरना शुरू हो जाता है। विषय अर्थात पृथ्वी, मिट्टी। और अगर विषयों से अनासक्त हो जाए, तो चढ़ना शुरू हो जाता है। सीढ़ी वही है। जो विषयों में जीता है, वह रोज-रोज नीचे की तरफ ढलान पर खिसलता जाता, फिसलता जाता।
और ध्यान रहे, खिसलना आसान है, फिसलना आसान है। उतार हमेशा आसान होते हैं। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण ही खींच लेता है, तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। चढ़ाव कठिन होते हैं। जैसे कोई गौरीशंकर पर चढ़ रहा हो। जैसे-जैसे ऊंचाई पर पहुंचता है वैसे-वैसे कठिनाई होती है। तब छोटा-सा भार भी बहुत भार मालूम होता है। एक छोटा-सा झोला भी कंधे पर लटका कर चढ़ना मुश्किल होने लगता है। तो जैसे-जैसे यात्री ऊपर पहुंचता है वैसे-वैसे वजन उसे छोड़ने पड़ते हैं। वही अनासक्ति है। वजन छोड़ना।
जमीन पर चल रहे हो तो ढोओ जितना ढोना हो; लदे रहो गधों की भांति, कोई चिंता की बात नहीं। लेकिन अगर चढ़ना है पहाड़, तो फिर छांटना होगा, फिर असार को छोड़ना होगा। और ऐसी भी घड़ी आएगी जब सब छोड़ना होगा। अंतिम शिखर पर जब पहुंचोगे तो सब छोड़ कर ही पहुंचोगे। सीढ़ी वही है। एक में बोझ बढ़ता जाता है, एक में निर्बोझ बढ़ता जाता है। एक में विषय बढ़ते जाते हैं, एक में घटते जाते हैं। एक में विचारों का जाल फैलता जाता है, एक में क्षीण होता चला जाता है। इसलिए यह सूत्र ठीक कहता है कि मन ही कारण है संसार का और मन ही कारण
है मोक्ष का। मन ही बांधता है, मन ही मुक्त करता है। आदमी प्रज्ञावान हो तो मन से ही रास्ता खोज लेता है अ-मन का।
अ-मन शब्द बड़ा प्यारा है। नानक ने उसका बहुत उपयोग किया है। कबीर ने भी। समाधि को अ-मनी दशा कहा है। उर्दू और उर्दू से संबंधित भाषाओं में अमन का अर्थ होता है: शांति। वह भी प्यारी बात है! क्योंकि जैसे-जैसे ही मन से तुम पार जाने लगोगे, अ-मन होने लगोगे, वैसे-वैसे जीवन में शांति की फुहार, बरखा होने लगेगी। फूल खिलेंगे मौन के। आनंद के स्वर फूटेंगे। जीवन के झरने बहेंगे।
इस सूत्र को अब समझने की कोशिश करो।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
"मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है।"
लेकिन न मालूम ऐसे अदभुत सूत्र जिनके हाथ में थे कैसी उन्हें विक्षिप्तता पैदा हुई, कैसा पागलपन पैदा हुआ, कि मन को तो न छोड़ा, घर को छोड़ा, दुकान को छोड़ा, बच्चे छोड़े, पत्नियां छोड़ीं, जंगलों की तरफ भागे! मगर मन तो तुम्हारे साथ ही जाएगा, तुम जहां भी जाओ; मन तो भीतर है। मन
था बंधन का कारण, उसे छोड़ा नहीं। कारण तो छोड़ा नहीं, कारण तो साथ ही ले गए, जहर के बीज तो सम्हाल कर ले गए। और संसार का सारा विस्तार तो उन्हीं बीजों से पैदा हुआ था, उसको छोड़ कर भागे! बीज जहां रहेंगे, फिर विस्तार हो जाएगा। फिर वही उलझन खड़ी हो जाएगी। फिर-फिर होगी उलझन। मेरा मकान था, "मेरा" मकान से जुड़ा था; फिर मेरी कुटी हो जाएगी, फिर "मेरा" कुटी से जुड़ जाएगा। मेरा साम्राज्य था, ममत्व साम्राज्य से बंधा था; छोड़ दो साम्राज्य, ममत्व को कुछ भेद नहीं पड़ता, लंगोटी से बंध जाएगा--मेरी लंगोटी, मेरा मंदिर, मेरा शास्त्र, मेरा धर्म।
आदमी इतना अदभुत है और इतना अंधा कि जिनको तुम धार्मिक कहते हो उनका
भी दावा है: मेरा धर्म! मैं हिंदू हूं, मैं जैन हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं

ईसाई हूं। धार्मिक आदमी का "मेरा" हो सकता है! और जहां मेरात्तेरा है वहां कैसा धर्म! वहां तो धर्म की कोई संभावना नहीं है। वही तो अधर्म है। मेरा शास्त्र! सब छोड़ देते हैं लोग...।
एक जैन मुनि से, देशभूषण महाराज से मेरा मिलना हुआ। मिलना चाहते थे,
तो मैंने कहा कि जरूर। नग्न हैं, दिगंबर हैं, सब छोड़ दिया। मुझसे बोले कि आप गीता पर बोले, आप उपनिषद पर बोले, आप धम्मपद पर बोले, लेकिन कुंदकुंद के "समयसार" पर क्यों नहीं बोले? उमास्वाति के "तत्वार्थ-सूत्र" पर क्यों नहीं बोले? अरे, अपने शास्त्रों पर क्यों नहीं बोलते हो?
मैंने उनसे पूछा: अपने और पराए! आप तो सब छोड़ आए, वस्त्र भी छोड़ दिए, और अभी भी अपना-पराया मौजूद है! अभी गीता पराई! अभी धम्मपद पराया! अभी कुंदकुंद का "समयसार" अपना! अभी उमास्वाति का "तत्वार्थ-सूत्र" अपना!
वही मेरा, वही तेरा। दुकानों में बंटा था, अब मंदिरों में बंटा। बही- खातों में बंटा था, अब शास्त्रों में बंटा। मगर शास्त्र सिवाय बही-खाते के और क्या हैं? ऐसे आदमियों के हाथ में शास्त्र भी बही-खाते ही हैं।
आदमी आश्चर्यचकित कर देता है अगर उसके संबंध में सोचो! पत्ते छांटता रहता है, जड़ें नहीं काटता। और पत्ते छांटने से कहीं कोई क्रांति होने वाली है! जड़ें काटनी होंगी। जड़ है मन।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
कुछ मत छोड़ो, कहीं भागो मत। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं: जहां हो वहीं जागो। भागने वाले जाग नहीं पाते। भागने वाले तो भयभीत हैं, कायर हैं। मगर हम कायरों को भी बड़े प्यारे नाम दे देते हैं, उनको कहते हैं-- रणछोड़दास जी! रण छोड़ भागे!
मेरे गांव में एक मंदिर था--रणछोड़दास जी का मंदिर। मैंने उस गांव के पुजारी को जाकर कहा कि देख, इस मंदिर का नाम बदल! उसने कहा, क्यों? नाम कैसा प्यारा है: रणछोड़दास जी! मैंने कहा, तूने कभी सोचा भी कि रणछोड़दास जी का मतलब क्या हुआ? भगोड़े! जिन्होंने पीठ दिखा दी जीवन को। वह थोड़ा चौंका, उसने कहा कि तुझे भी उलटी-सीधी बातें सूझती हैं! मुझे जिंदगी हो गई पूजा करते इस मंदिर में, मैंने कभी यह सोचा ही नहीं कि रणछोड़दास जी का यह मतलब होता है! बात तो तेरी ठीक, मगर अब तो दूर-दूर तक इस मंदिर की ख्याति है: रणछोड़दास जी का मंदिर। नाम बदला नहीं जा सकता है। मगर तूने एक अड़चन मेरे लिए पैदा कर दी। यह शब्द तो गलत है।
कोई अगर युद्ध के क्षेत्र से पीठ दिखा दे, तो हम कायर कहते हैं उसे, और जीवन के संघर्ष से पीठ दिखा दे तो उसको महात्मा कहते हैं! कैसा बेईमानी का गणित है!
मुझसे लोग पूछते हैं कि आपके संन्यासी कैसे हैं, क्योंकि न घर छोड़ते,
न द्वार छोड़ते, न दुकान छोड़ते, न बाजार छोड़ते! मैं उनसे कहता हूं: मेरे संन्यासी ही संन्यासी हैं। क्योंकि छोड़ना है मन, और कुछ भी नहीं छोड़ना है। काटनी हैं जड़ें।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
और क्या सिर पटकते रहते हो उपनिषदों पर, कुछ भी तुम्हारी समझ में नहीं आया। अब यह उपनिषद सीधा-सीधा कह रहा है कि मन है कारण, पत्नी कारण नहीं है।
पत्नी को छोड़ कर भाग जाओगे, कुछ भी न होगा। फिर कहीं किसी और को पत्नी बना कर बैठ जाओगे। न होगी पत्नी, शिष्या होगी, सेविका होगी--नाम कुछ भी रख लेना। मगर वही मन और वही जाल। लेबल बदल जाएंगे, मगर भीतर जो भरा है सो भरा है।
क्या-क्या तरकीबें निकाली हैं लोगों ने! हिंदू शास्त्रों में जिस भांति आदमी को पकड़ने की कोशिश की है ब्राह्मण पंडितों ने, पुरोहितों ने, महात्माओं ने, उस भांति दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं हुआ। यहूदी भी पकड़ते हैं, मुसलमान भी पकड़ते हैं, ईसाई भी पकड़ते हैं, मगर जरा देर-अबेर करते हैं, मगर हिंदू तो गजब कर दिए! यहूदियों के बच्चे पैदा हुए कि उनको फिक्र पड़ती है: खतना करवाओ। जल्दी खतना करवाओ! बड़ा हो जाए, इनकार करने लगे कि नहीं करवाऊंगा, झंझट खड़ी करे, तो छोटे बच्चे का खतना कर देते हैं। बना दिया यहूदी उसको। ईसाई हो तो बप्तिस्मा करवाओ।

लेकिन हिंदुओं ने सबको मात कर दिया। कारण भी साफ है। सबसे पुरानी पंडितों की, पुरोहितों की परंपरा है। ये आदमी को पकड़ते हैं बिलकुल प्रथम से और अंत तक नहीं छोड़ते, अंत के बाद भी नहीं छोड़ते। जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों की व्यवस्था कर रखी है। आदमी मरेगा तो अंतिम संस्कार। और मर गया उसके बाद भी उसके बच्चों को सताएंगे। पितृपक्ष आएगा, जो मर गए हैं पुरखे, उनके नाम से श्राद्ध करवाएंगे, तर्पण करवाएंगे। मर गए उनका भी अभी शोषण, उनके नाम पर भी शोषण जारी है।
और तुम जान कर चकित होओगे कि यह संस्कारों की यात्रा शुरू कब होती है? हिंदू धर्म में शुरू होती है गर्भधारण से। सब धर्मों को मात कर दिया! बच्चे का जब गर्भधारण होता है तब से संस्कार की विधि। पहली विधि है: गर्भधारण-विधि, गर्भधारण-संस्कार।
और तुम अगर गर्भधारण-संस्कार को पूरा समझोगे तो बड़े हैरान होओगे कि क्या-क्या बेईमानियां! जब पति और पत्नी संभोग करें तो चार ब्राह्मण महात्मा चारों दिशाओं में खड़े रहें। देखी जालसाजी? अश्लीलता का विरोध करेंगे; नग्न स्त्री का चित्र भी मत देखना! अरे, स्त्री का ही चित्र मत देखना! स्त्रियों का स्मरण ही मत करना! अनुभव में आई हुई पुरानी स्त्रियों को बिलकुल विस्मृत कर देना, भूल कर भी याद न करना! और ये महात्मा क्या कर रहे हैं? ये ऋषि-मुनि क्या कर रहे हैं? धर्म की आड़ में यह क्या खेल चल रहा है?
अभी-अभी पश्चिम के बड़े-बड़े होटलों में यह खेल शुरू हुआ है, मगर कम से
कम ईमानदारी से भरा हुआ है; कम से कम इतनी बेईमानी तो नहीं, धर्म की आड़ तो नहीं। पश्चिम के बड़े होटलों में यह व्यवस्था है कि छोटी-छोटी खिड़कियां उन्होंने बना रखी हैं, जिनमें ऐसे कांच लगे हैं कि भीतर से बाहर दिखाई नहीं पड़ता, बाहर से भीतर दिखाई पड़ता है। तो अंदर तो स्त्री-पुरुष संभोग कर रहे हैं और खिड़कियों पर भी टिकट खरीद कर लोग बैठे हुए हैं। वे खिड़कियों से देख रहे हैं स्त्री-पुरुष को संभोग करते हुए।
इनको तुम अश्लील कहोगे। इनको तुम कहोगे, भौतिकवादी। मगर तुम्हारे महात्माओं ने इनको भी मात कर दिया। क्या गजब के लोग थे, क्या तरकीब निकाली! स्त्री-पुरुष संभोग करें, चार महात्मा चारों दिशाओं में खड़े हों और महात्माओं के हिसाब से संभोग चलेगा। महात्मा मंत्र पढ़ेंगे, स्त्री के एक-एक अंग को छूकर वे मंत्र पढ़ेंगे, और मंत्रों के हिसाब से संभोग चलेगा।
यह तो जालसाजी हुई। अरे, तुम्हें किसी स्त्री को नग्न देखना था तो देख लेते, कौन मना करता था, मगर यूं धर्म का आडंबर क्यों खड़ा करना! भाग गए संसार को छोड़ कर, महात्मा बन कर बैठे हो और अब संसार को पीछे के रास्ते से वापस ला रहे हो। कम से कम इतनी ईमानदारी तो होनी चाहिए कि अपने जीवन को जैसा है वैसा स्वीकार करो। भगोड़ों के जीवन में ये बातें आ जाएंगी। अब उस स्त्री की क्या दशा होती होगी, यह भी तो सोचो! उस पर मंत्रत्तंत्र पढ़े जा रहे हैं, यज्ञ-हवन किया जा रहा है!
और दयानंद ने तो और गजब कर दिया! उन्होंने उसमें यज्ञ-हवन भी जोड़ दिया। मूल विधि में तो यज्ञ-हवन नहीं था। आहुति भी चढ़ाई जा रही है, धुआं भी पैदा किया जा रहा है, घी और गेहूं और चावल फेंके जा रहे हैं और मंत्र पढ़े जा रहे हैं--और बेचारी गरीब स्त्री नग्न पड़ी है, और नग्न उसके पतिदेव खड़े हैं, क्या दृश्य उपस्थित किया! और संसार को छोड़ कर आ गए हैं। मगर संसार ने नहीं छोड़ा है इन्हें, संसार पीछे के रास्ते से वापस आ रहा है।
मैं संसार के छोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मन को ही रूपांतरित करना है। और तुम्हारे सूत्र साफ कह रहे हैं कि मन कारण है। काश, हमने यह समझा होता और मन को ही कारण समझ कर रूपांतरित किया होता, तो आज इस देश की ऐसी दुर्गति न होती। यह इतना पाखंडी न होता जितना यह पाखंडी है। शायद पृथ्वी पर कहीं ऐसा पाखंड नहीं है जैसा हमारे देश में है। धन का विरोध करेंगे--और सारे शास्त्र समझा रहे हैं कि धन का दान करो; दान ही पुण्य है, दान ही धर्म है। और धन है पाप! पाप से कैसे पुण्य हो जाता है, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है!
फिर हिंदू कहते हैं कि दान देना तो ब्राह्मण को। क्या ब्राह्मण से पाप करवाना है? और जैन कहते हैं कि दान देना तो जैन ऋषि-मुनियों को। और

बौद्ध कहते हैं, दान देना तो बौद्ध भिक्षुओं को। और धन को तीनों कहते हैं पाप। और पाप के लिए ही दान मांग रहे हैं। और इसकी भी वर्जना करते हैं कि दूसरों को दान मत देना, क्योंकि वह दान व्यर्थ जाएगा। धन है पाप। तो एक बात तो तय है कि अगर धन पाप है तो ब्राह्मण को पाप करने का उपाय मत देना--भूल कर मत देना। भ्रष्ट करना है ब्राह्मणों को! मगर हम भी अंधे हैं। धन को पाप भी मानते हैं और धन को दान भी करते हैं--और दान को पुण्य मानते हैं। अब पाप से पुण्य को निकाल रहे हो। जालसाजी कर रहे हो। षडयंत्र रच रहे हो।
इसलिए इस देश में...सबसे ज्यादा धनलोलुप हम हैं, सबसे ज्यादा कामलोलुप
हम हैं। खजुराहो और कोणार्क जैसे मंदिर हमने बनाए, दुनिया में किसी जाति ने नहीं बनाए। और हमारे शास्त्रों में पंडितों ने इस तरह की अश्लील कहानियां लिखी हैं कि कोई फिल्म इतनी अश्लील न बनी है न बन सकती है। मगर धर्म के नाम पर चलती हो बात तो अंगीकार है, तो स्वीकार है। हमने धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति चलाई, देवदासियां बनाईं। देवदासी हो गई--करेगी वेश्यागिरी, लेकिन मंदिर में करेगी अब। मंदिर को भी वेश्यालय बना दिया। और अब यह काम पुण्य का हो गया। अब इसमें कुछ पाप न रहा। हम पापों को पुण्यों में बदलने में बड़े होशियार हैं।
मगर इस सबके पीछे जाल का, इस सारे उपद्रव का कारण क्या है? कारण यह है
कि हम ठीक-ठीक समझ नहीं पाए। जिन्होंने जाना उन्होंने कुछ और कहा, और जिन्होंने हमें समझाया उन्होंने कुछ और कहा। इस सूत्र के अनुवाद में भी, चिदानंद, तुम खयाल करो तो तुम्हें पता चल जाएगा कि कहां से भ्रांतियां घुस जाती हैं।
सूत्र का अनुवाद है: "मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है। जो
मन विषयों में आसक्त होगा वह बंधन का और जो विषयों से पराङ्मुख होगा वह मोक्ष का कारण होगा।"
यह पराङ्मुख कहां से आ गया? मूल सूत्र में कहीं भी नहीं है। मूल सूत्र है:
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
संस्कृत जानना भी जरूरी नहीं, मैं तो संस्कृत जानता नहीं।
"मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण मन है।"
बंधाय विषयासक्तं...।
"विषय में आसक्त रहना बंधन है।"
मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।
"और जब तुम्हारी स्मृति विषय से मुक्त हो जाए, शून्य हो जाए, तो मोक्ष।"
इसमें पराङ्मुख होना कहां से आया? पराङ्मुख में तो भगोड़ापन आ जाएगा। वही रणछोड़दास जी! पराङ्मुख यानी पीठ कर दो, भाग जाओ, पीठ दिखा दो, मुंह फेर लो! इस तरह की गलत व्याख्या का परिणाम यह हुआ कि इस देश में लाखों स्त्रियां पतियों के होते विधवा हो गईं। क्योंकि वे पराङ्मुख हो गए। और इसका विरोध भी न कर सकीं, क्योंकि यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था। उन्हीं पतियों के चरण भी छुए उन्होंने, क्योंकि वे महात्मा हो गए थे अब। हालांकि उनको दयनीय कर गए थे, उनको भिखमंगा कर गए थे, उनका महात्मापन महंगा पड़ा था स्त्रियों के लिए। अब उनकी स्त्रियां या तो भीख मांगेंगी या आटा पीसेंगी या वेश्यागिरी करेंगी। क्या होगा? उनके बच्चे अनाथ हो गए। भिखारी होंगे, चोरी करेंगे, लुटेरे बनेंगे--पता नहीं क्या होगा। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन विषाक्त हुआ है पराङ्मुखता के कारण। और सूत्र में कहीं पराङ्मुखता नहीं है। सूत्र तो बड़ा सीधा-साफ है।
निर्विषय चित्त--जिस चित्त में विषयों की तरंगें नहीं उठती हैं। और विषयासक्तं का भी अर्थ हमने गलत किया। विषय में आसक्ति का यह अर्थ नहीं होता कि विषय से भाग जाओ। क्योंकि भागने से आसक्ति नहीं मिटेगी। अगर ऐसा होता तो गरीबों को महलों में कोई आसक्ति न होती। अगर ऐसा होता तो गरीबों को धन में कोई आसक्ति न होती। अगर ऐसा होता तो दीन-दरिद्र धन्यभागी थे! अभागे थे वे जो दीन-दरिद्र नहीं हैं।
मगर सचाई उलटी है। सचाई यह है कि धन के अनुभव से आदमी की आसक्ति छूटती है। और विषय के अनुभव से विषय से मुक्ति होती है। क्योंकि अनुभव कर-करके

पाया जाता है: कुछ भी तो नहीं, हाथ कुछ भी तो नहीं लगता। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। वही झोली खाली की खाली। विषय के अनुभव से आदमी अपने आप निर्विषय होता है। सिर्फ जागरूकता से विषय का अनुभव करना है। बस जागरूकता की शर्त जुड़ जाए तो तुम निर्विषय हो जाओगे। जागरूकता का एक सूत्र समझ लो तो विचार से निर्विचार हो जाओगे, मन से अ-मन हो जाओगे।
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया
दिल बहुत कुछ जला के देख लिया
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया

और क्या देखने को बाकी है
आपसे दिल लगा के देख लिया
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया

वो मेरे हो के भी मेरे न हुए उनको अपना बना के देख लिया राजे-उल्फत छुपा के देख लिया

"फैज" तकमील हम भी हो न सके इश्क को आजमा के देख लिया राजे-उल्फत छुपा के देख लिया
दिल बहुत कुछ जला के देख लिया

"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इश्क को आजमा के देख लिया

कोई कभी तकमील नहीं हुआ।
"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इस जगत में कोई भी संतुष्ट कभी हुआ है! कोई कभी तकमील हुआ है! कोई कभी पूर्णता को उपलब्ध हुआ है!
"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इश्क को आजमा के देख लिया
इस जगत के सारे प्यार, सारी प्रीतियां, सारे लगाव, सारी आसक्तियां अनुभव करना जरूरी है। अनुभव के सिवाय और कोई मुक्ति नहीं है। मन की पीड़ा से गुजरना ही होगा। मन के विषाद को सहना ही होगा। मन की हार को अनुभव करना ही होगा। कोई सस्ता रास्ता नहीं है। और भगोड़े सस्ता रास्ता खोज रहे हैं। वे अनुभव से वंचित रह जाएंगे। और जो अनुभव से वंचित रह जाएगा, वह मुक्त नहीं हो सकेगा। उसके भीतर वासना दबी ही रह जाएगी।
और दबी हुई वासना और भी खतरनाक है; क्योंकि उभरेगी, बार-बार उभरेगी, फिर-फिर उभरेगी। तुम दबाओगे और उभरेगी। इधर से दबाओगे, उधर से उभरेगी। एक दरवाजा बंद करोगे, दूसरा दरवाजा खोलेगी। और हर दरवाजा पहले दरवाजे से ज्यादा सूक्ष्म होगा। अच्छा यही है कि वासना को उसके सहज प्राकृतिक रूप में जान लिया जाए, पहचान लिया जाए।
मुक्त हो जाना कठिन नहीं है, वासना से मुक्त हो जाना कठिन नहीं है, लेकिन दमित वासना से मुक्त होना बहुत कठिन है।

मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां है हयात
तेरा गम है तो गमे-दहर का झगड़ा क्या है
तेरी सूरत से है आलम में बहारां-ओ-शबाब
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है
तू जो मिल जाए तो तकदीर में रूह आ जाए
यूं न था, मैंने फकत चाहा था यूं हो जाए मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग

अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म रेशमो-अतलसो-कमखाब में बुनवाए हुए जां-ब-जां बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्म खाक में लिथड़े हुए खून में नहलाए हुए
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजै
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग

तुम जिंदगी को अनुभव करो--उसके सारे फूल, उसके सारे कांटे; उसके सारे दिन, उसकी सारी रातें; उसके सारे सुख, उसके सारे दुख। चुनाव नहीं किया जा सकता! कोई यह कहे कि मैं तो फूल ही फूल का अनुभव करूंगा, कांटों का नहीं; कि मैं तो दिन ही दिन जीऊंगा, रातें नहीं; कि मैं तो सफलताएं ही भोगूंगा, विफलताएं नहीं; तो ऐसा व्यक्ति जीवन के अनुभव से वंचित रह जाएगा।
ये तो जीवन के दोनों पहलू हैं। यहां हर चीज जो आशा में शुरू होती है, निराशा में परिणत हो जाती है। यहां हर सुबह सांझ होती है। यहां जिंदगी के सब सुख धीरे-धीरे कड़वे हो जाते हैं और दुख बन जाते हैं। यह सारा अनुभव जरूरी है। यही अनुभव पकाता है। इसी अनुभव की आंच में जो पकता है, एक दिन मन से मुक्त हो पाता है। वह पक जाना ही मुक्ति है।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
मन है कारण बंध का और मोक्ष का। कच्चा मन बंध का कारण, पक गया मन मोक्ष
का कारण। मगर मन पके कैसे? संसार की आंच के सिवाय मन को पकने का और कोई उपाय नहीं है। इसीलिए तो संसार है। इसीलिए तो इस संसार को परमात्मा के द्वारा दी गई चुनौती समझो। यह परमात्मा के द्वारा दी गई एक परीक्षा है। यहां सभी बड़ी आशाओं से यात्रा शुरू करते हैं--कुछ बुरा नहीं है--और यहां सभी आज नहीं कल, कल नहीं परसों, असफलताओं के गङ्ढों में गिर जाते हैं।

मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां है हयात
तेरा गम है तो गमे-दहर का झगड़ा क्या है
तेरी सूरत से है आलम में बहारां-ओ-शबाब
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है
तू जो मिल जाए तो तकदीर में रूह आ जाए
यूं न था, मैंने फकत चाहा था यूं हो जाए मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग

अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म रेशमो-अतलसो-कमखाब में बुनवाए हुए जां-ब-जां बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्म खाक में लिथड़े हुए खून में नहलाए हुए
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजै
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग

लेकिन मुहब्बत को जानना होगा, पहचानना होगा, जीना होगा, भोगना होगा। इसलिए मैं अपने संन्यासी को भोग से भागने को नहीं कहता, भोग में पकने
को कहता हूं। भोग में ही योग का फल पकता है। यह विरोधाभास है। लेकिन जिंदगी के सारे राज विरोधाभासों में हैं। यहां जो भूलें नहीं करता, वह कभी सीखता नहीं। जो भूलों से बचेगा, सीखने से बच जाएगा। अगर सीखना हो तो भूलें करना, डरना नहीं। हां, एक ही भूल दुबारा मत करना।
बंधाय विषयासक्तं...।

"विषय में आसक्ति बंधन है।"
आसक्ति कैसे छूटेगी? जबरदस्ती न छुड़ा सकोगे। छुड़ा-छुड़ा कर भागोगे, आसक्ति लौट-लौट आएगी। क्योंकि बाहर नहीं है आसक्ति, भीतर है--कैसे छूटेगी? तुम्हें दिखाई पड़ रहा है कि यह हीरा है और तुम भाग खड़े हुए, तो तुम्हारे सपनों में आएगा हीरा। तुम्हें पुकारेगा। तुम्हें खींचेगा। तुम देख ही लो कि यह हीरा नहीं है। किसी और की मत मान लेना। अपने अनुभव के सिवाय और कोई जानना नहीं है। न कभी था, न कभी होगा। तुम इस हीरे को परख ही लो। इस हीरे को उठा ही लो। इसका हार बना ही लो। जब यह तुम्हीं को पत्थर हो जाएगा, तो यूं गिर जाएगा जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से गिर जाते हैं। न वृक्ष को छोड़ना पड़ता, न उन्हें छूटना पड़ता। और जब इस संसार में जो व्यर्थ है वह सूखे पत्तों की तरह गिर जाता है, तो जो सार्थक है उसके नए अंकुर तुम्हारे भीतर उग आते हैं।
बंधन हमारा अज्ञान है। मगर ज्ञान कैसे हो? अनुभव से ही होगा। ठोकरें खानी होंगी, दर-दर की ठोकरें खानी होंगी; बहुत बार गिरना पड़ेगा, बहुत बार उठना पड़ेगा। उठ-उठ कर ही तो तुम सीखोगे चलना। अगर छोटे-से बच्चों को तुम्हारे महात्मा मिल जाएं और कहें कि बेटा, गिरना मत! और बच्चा सोच ले, तय कर ले कि गिरूंगा नहीं, तो फिर घिसटता ही रहेगा जिंदगी भर, कभी खड़ा न हो पाएगा। चल ही न पाएगा। क्योंकि गिरने का डर चलने न देगा। जो चलेगा बच्चा, उसको गिरना ही पड़ेगा।
तो बच्चे सौभाग्य से मां-बाप की सुनते ही नहीं! मां-बाप तो बहुत कहते हैं कि बेटा, सम्हल कर, सम्हल कर, मगर बेटे के भीतर तो प्रकृति की ऊर्जा तूफान ले रही है, वह खड़ा होना चाहता है। एक दफा बच्चा खड़ा हो जाता है, दो कदम चल लेता है, कि उसको एकदम पागलपन चढ़ जाता है। चलने ही चलने की धुन रहती है उसको। जरा मौका पाया कि "चलूं"! गिर-गिर पड़ता है, घुटने टूट जाते हैं, लहूलुहान हो जाता है, मगर फिर-फिर उठ आता है। अगर सयाना हो, तो पड़ा ही रह जाए। अगर सयानों की मान ले, तो बचपन में ही बूढ़ा हो जाए। और बचपन में ही बूढ़ा हो जाना दुर्भाग्य है। वैसा ही दुर्भाग्य जैसे कुछ बूढ़े बुढ़ापे में भी बचकाने रह जाते हैं।
न बच्चों को बूढ़ा होने की जरूरत है, न बूढ़ों को बचकाना रहने की जरूरत है। जिंदगी में सहज विकास होना चाहिए। एक संतुलन होना चाहिए। सीखो! सीखने का एक ही उपाय है: भूल से मत डरना। आसक्ति को अनुभव करो। कांटे चुभेंगे, यह मैं कहे देता हूं। मगर मेरे कहने से कि कांटे चुभेंगे, तुम रुकना मत! क्योंकि मेरी बात तुम्हारे किस काम की? तुम्हें कांटे चुभने चाहिए। वह कांटे की चुभन तुम्हारे जीवन के पकाव में अनिवार्य है, अपरिहार्य है। बंधाय विषयासक्तं...।
विषयों से वे ही बंधे रह जाते हैं जिन्होंने ठीक-ठीक उनका अनुभव नहीं किया। जिन्होंने अनुभव कर लिया, वे तो मुक्त हो जाते हैं।
मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।
कौन होता है मुक्त? जिसकी स्मृति से, जिसके अंतःस्मरण के लोक से विषयों की खींचत्तान समाप्त हो जाती है। जिसने धन को भोगा, वह धन से मुक्त हो जाता है। जिसने काम को भोगा, वह काम से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने का एक ही उपाय है: जी लो, सारा कड़वा-मीठा अनुभव ले लो। और समय रहते ले लेना, नहीं तो पीछे बड़ा पछतावा होता है। जब समय था तब ज्ञान की बातों में उलझ गए। और उधार ज्ञान तो उधार ही रहेगा।
अब जिसने भी इस सूत्र का हिंदी में अनुवाद किया, चिदानंद, उसने समझा
ही नहीं। उसने बात को बिगाड़ दिया। उसने कह दिया, "जो विषयों से पराङ्मुख होगा, वह मोक्ष का कारण होगा।"
पराङ्मुख जो होगा, वह तो बंधा ही रह जाएगा। बुरी तरह बंधा रह जाएगा। विकृत हो जाएगा। मोक्ष नहीं मिलेगा। हां, विषयों का जो अतिक्रमण करता है, विषयों को जान लेता, पहचान लेता, उसके भीतर ही अब इतनी बात साफ हो जाती है, स्वच्छ हो जाती है कि कुछ भी सार नहीं है। वह चिल्लाता भी नहीं फिरता कि विषय असार हैं। जो अभी चिल्ला रहा है कि विषय असार हैं, जो दूसरों को समझा रहा है कि सावधान धन से, पद से; सावधान स्त्रियों से, स्त्री नर्क का द्वार

है, समझ लेना एक बात पक्की कि अभी यह स्वयं मुक्त नहीं हुआ है। नहीं तो इसे क्या स्त्री नर्क का द्वार दिखाई पड़ेगी!
कहानी मैंने सुनी है कि मीरा जब वृंदावन पहुंची तो वृंदावन में जो कृष्ण का सबसे प्रमुख मंदिर था, उसका जो पुजारी था, उसने तीस वर्षों से किसी स्त्री को नहीं देखा था। वह बाहर नहीं निकलता था और स्त्रियों को मंदिर में आने की मनाही थी। द्वारपाल थे, जो स्त्रियों को रोक देते थे। कैसी अजीब दुनिया है! कृष्ण का भक्त और कृष्ण के मंदिर में स्त्रियों
को न घुसने दे! और कृष्ण का जीवन किसी पलायनवादी संन्यासी का जीवन नहीं है, मेरे संन्यासी का जीवन है! सोलह हजार स्त्रियों के बीच यह नृत्य चलता रहा कृष्ण का! अगर नर्क ही जाना है तो कृष्ण जितने गहरे नर्क में गए होंगे, तुम क्या जाओगे! कैसे जाओगे! इतनी सुविधा तुम न जुटा पाओगे। इतनी लंबी सीढ़ी न लगा पाओगे। सोलह हजार पायदान! अरे, एकाध पायदान, दो पायदान बिठाल लिए, उतने में तो जिंदगी उखड़ जाती है! एकाध-दो नर्क के द्वार खोज लिए, उतना ही तो काफी है! उन्हीं दोनों के बीच में ऐसी घिसान, ऐसी पिटान हो जाती है! सोलह हजार स्त्रियां!
मगर यह सज्जन जो पुरोहित थे, इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी महात्मा की तरह! प्रतिष्ठा का कुल कारण इतना था कि वे स्त्री को नहीं देखते थे। हम अजीब बातों को आदर देते हैं! हम मूढ़ताओं को आदर देते हैं। हम रुग्णताओं को आदर देते हैं। हम विक्षिप्तताओं को आदर देते हैं। हमने कभी किसी सृजनात्मक मूल्य को आदर दिया ही नहीं। हमने यह नहीं कहा कि इस महात्मा ने एक सुंदर मूर्ति बनाई थी, कि एक सुंदर गीत रचा था, कि इसने सुंदर वीणा बजाई थी, कि बांसुरी पर आनंद का राग गाया था। नहीं, यह सब कुछ नहीं; इसने स्त्री नहीं देखी तीस साल तक। बहुत गजब का काम किया था!
मीरा आई। मीरा तो इस तरह के व्यर्थ के आग्रहों को मानती नहीं थी। फक्कड़ थी। वह नाचती हुई वृंदावन के मंदिर में पहुंच गई। द्वारपालों को सचेत कर दिया गया था, क्योंकि मंदिर का प्रधान बहुत घबड़ाया हुआ था कि मीरा आई है, गांव में नाच रही है, उसके गीत की खबरें आ रही हैं, उसकी मस्ती की खबरें आ रही हैं, कृष्ण की भक्त है, जरूर मंदिर आएगी, तो द्वार पर पहरेदार बढ़ा दिए थे। नंगी तलवारें लिए खड़े थे, कि रोक देना उसे। भीतर प्रवेश करने मत देना। दीवानी है, पागल है, सुनेगी नहीं, जबरदस्ती करनी पड़े तो करना, मगर मंदिर में प्रवेश नहीं करने देना।
यही सज्जन मालूम होता है स्वामी नारायण संप्रदाय में पैदा हो गए हैं, श्री प्रमुख स्वामी के नाम से। यह स्त्रियां नहीं देखते। हवाई जहाज पर चलते हैं तो इनके चारों तरफ एक बुर्का ओढ़ा दिया जाता है। क्योंकि एयर होस्टेस वगैरह, उनको देख कर कहीं इनको भ्रम हो जाए कि उर्वशी, मेनका-- अप्सराएं आ गईं, क्या हो रहा है! क्या इंद्र डर गया श्री प्रमुख स्वामी से? छोटे-मोटे स्वामी नहीं, श्री प्रमुख स्वामी! नाम भी क्या चुना है! यह वही सज्जन मालूम होते हैं।
मीरा नाचती गई। द्वार पर नाचने लगी, भीड़ लग गई। नाच ऐसा था, ऐसा रस भरा
था कि मस्त हो गए द्वारपाल भी, भूल ही गए कि रोकना है। तलवारें तो हाथ में रहीं मगर स्मरण न रहा तलवारों का। और मीरा नाचती हुई भीतर प्रवेश कर गई। पुजारी पूजा कर रहा था, मीरा को देख कर उसके हाथ से थाल छूट गया पूजा का। झनझना कर थाल नीचे गिर पड़ा। चिल्लाया क्रोध से कि ऐ स्त्री, तू भीतर कैसे आई? बाहर निकल!
मीरा ने जो उत्तर दिया, बड़ा प्यारा है। मीरा ने कहा, मैंने तो सुना था
कि एक ही पुरुष है--परमात्मा, कृष्ण--और हम सब तो उसकी ही सखियां हैं, मगर आज पता चला कि दो पुरुष हैं। एक तुम भी हो! तो तुम सखी नहीं हो! तुम क्यों ये शृंगार किए खड़े हो, निकलो बाहर! इस मंदिर का पुरोहित होने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। यह पूजा की थाली अच्छा हुआ तुम्हारे हाथ से गिर गई। यह पूजा की थाली तुम्हारे हाथ में होनी नहीं चाहिए। तुम्हें अभी स्त्री दिखाई पड़ती है? तीस साल से स्त्री नहीं देखी तो तुम मुझे पहचान कैसे गए कि यह स्त्री है?

यूं न देखी हो, सपनों में तो बहुत देखी होगी! जो दिन में बचते हैं, वे रात में देखते हैं। इधर से बचते हैं तो उधर से देखते हैं। कोई न कोई उपाय खोज लेते हैं।
और मीरा ने कहा कि यह जो कृष्ण की मूर्ति है, इसके बगल में ही राधा की मूर्ति है--यह स्त्री नहीं है? और अगर तुम यह कहो कि मूर्ति तो मूर्ति है, तो फिर तुम्हारे कृष्ण की मूर्ति भी बस मूर्ति है, क्यों मूर्खता कर रहे हो? किसलिए यह पूजा का थाल और यह अर्चना और यह धूप-दीप और यह सब उपद्रव, यह सब आडंबर? और अगर कृष्ण की मूर्ति मूर्ति नहीं है, तो फिर यह राधा? राधा पुरुष है? तो मेरे आने में क्या अड़चन हो गई? मैं सम्हाल लूंगी अब इस मंदिर को, तुम रास्ते पर लगो!
मीरा ने ठीक कहा।
जीवन को अगर कोई पलायन करेगा तो परिणाम बुरे होंगे। पराङ्मुख मत होना। जीओ जीवन को, क्योंकि जीने से ही मुक्ति का अपने आप द्वार खुलता है। मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।
चिदानंद, सूत्र तो प्यारा है! सूत्र तो अदभुत है! बहुत रस भरा है! मगर व्याख्याओं से जरा सावधान रहना! यह अनुवाद तक गलत है। मैं संस्कृत नहीं जानता, याद रहे! लेकिन मैं उपनिषद जानता हूं। मेरा अपना अनुभव मैं जानता हूं। इसलिए मैं फिकर नहीं करता भाषा वगैरह की, भाषा से मुझे क्या लेना- देना, अगर मेरी अनुभूति के अनुकूल पड़ता है तो ठीक, अगर नहीं अनुकूल पड़ता तो गलत! मेरे लिए और दूसरा कोई मापदंड नहीं है।
प्रत्येक को अपनी अनुभूति के ही मापदंड पर, अपनी अनुभूति की कसौटी पर
ही कसना चाहिए, तभी तुम जीवन में असार को सार से अलग कर पाओगे, नीर-क्षीर-विवेक कर पाओगे।
यह सूत्र प्यारा है, मगर व्याख्याओं से सावधान!

मेरा स्वर्णिम भारत-4

स्वयं का सत्य
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #3)

पहला प्रश्न: भगवान, शह श्लोक मुंडकोपनिषद का है:
सत्यं एक जयते नानृतम
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषियो ह्याप्तकामा
यत्र तत्र सत्सस्य परम निधानम।।
अर्थात सत्य की जय होती है, असत्य की नहीं। जिस मार्ग से आप्तकम ऋषिगण जाते हैं और जहां उस सत्य का परम निधान है, ऐसा देवों का वह मार्ग हमारे लिए सत्य के द्वारा ही खुलता है।
भगवान, क्या सत्य साध्य और साधन दोनों है? हमें दिशा बोध देने की अनुकंपा करें!

सहजानंद! धर्म के सूत्रों के संबंध में एक प्राथमिक बात सदा स्मरण रखना: वे अंतर्यात्रा के सूत्र हैं, बहिर्यात्रा के नहीं। यह भूल जाए तो फिर सूत्रों की व्याख्या गलत हो जाती है। यह सूत्र धर्म का प्राण है, लेकिन राजनीति का नहीं। धर्म में तो निश्चित ही सत्य जीतता है और असत्य हारता है, राजनीति में बात बहुत भिन है। वहां जो जीते, वह सत्य, जो हारे वह असत्य। वहां निर्णय जीत और हार से होता है, सत्य और असत्य से नहीं। राम अगर हार गये होते रावण से, तो तुम दशहरा पर राम की होली जलाते, रावण की नहीं। रावण अगर जीत गया होता, तो तुम्हारे तुलसीदासों ने रावण की स्तुति और प्रशंसा में गीत लिखे होते।
राजनीति का जगत अर्थात बहिर्यात्रा बेईमानी जीतती है, असत्य जीतता है, पाखंड जीतता है, चालबाजी जीतती है, कपट जीतता है। और फिर जो जीतता है, वह सत्य मालूम होता है। वहां सरलता हारती है। वहां सत्य पराजित होता है। वहां ईमानदारी को कोई गति नहीं है। वहां सीधा, साफ-सुथरा होना हारने के लिए पर्याप्त कारण है। वहां धोखे बाज, उनकी गति है।
यह सूत्र अंतर्यात्रा का सूत्र है। लेकिन राजनीतिज्ञ भी इसका उपयोग करते हैं। भारत ने तो अपना राष्ट्रीय घोषणापत्र ही इस सूत्र को बना लिया है: सत्यमेव जयते। सत्य की सदा विजय होती है। मगर जिसके पास भी आंखें हैं, वह देख सकता है। क्या तुम सोचते हो स्टेलिन सत्य था, इसलिए हिटलर से जीत गया? दोनों एक-दूसरे से बढ़ कर असत्य थे। हिटलर इसलिए नहीं हारा कि असत्य था और चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टेलिन इसलिए नहीं जीते कि सत्य थे। इसलिए जीते कि ये सारे असत्य इकट्ठे हो गये थे एक असत्य के खिलाफ। एक असत्य कमजोर पड़ गया इन सारे असत्यों के मुकाबले। असत्य ही जीता।
एडोल्फ हिटलर जीत सकता था। तो सारा इतिहास और ढंग से लिखा जाता यही इतिहास जो अभी उसकी निंदा में लिख रहे हैं, उसकी प्रशंसा में लिखते इतिहास तुम्हारा सरासर झूठ है। इतिहास का कोई संबंध तथ्यों से नहीं है। इतिहास का संबंध है लिखने वालों से। और वाले उसकी खुशामद में लिखते हैं जो जीता है। हारे को तो पूछता कौन? डूबते सूरज को तो कौन नमस्कार करता है? ऊगते सूर्यों को नमस्कार किया जाता है। अंग्रेजों ने एक ढंग का इतिहास लिखा था और जब हिंदुओं ने इतिहास लिखना शुरू किया, उन्होंने दूसरे ढंग का इतिहास लिखा। मुसलमान तीसरे ढंग का इतिहास लिखेंगे।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा इतिहास एडमंड बर्क मनुष्य-जाति का इतिहास लिख रहा था--पूरी मनुष्य-जाति का। उसने कोई बीस वर्ष के इस महान कार्य लिख रहा थे। और उसकी किताब करीब होने को आ रही थी, बस आखिरी अध्याय लिख रहा था और एक दिन यूं घटना घटी कि उसने अपनी बीस साल की मेहनत को आगे लगा दी। बात ऐसी हुई, उसके घर के पिछवाड़े ही एक हत्या हो गयी। दो आदमियों में झगड़ा हुआ और एक आदमी मार डाला गया--उसको गोली मार दी गयी। यह गोली कोई रात के अंधेरे में एकांत में नहीं मारी गयी थी। भरी दोपहरी में, भीड़ खड़ी थी। सारा

मोहल्ला इकट्ठा था, सैकड़ों लोग मौजूद थे जब यह झगड़ा हुआ। जब एडमंड बर्क को गोली की आवाज सुनायी पड़ी, वह भागा हुआ पहुंचा भीड़ इकट्ठी थी, आदमी मरने के करीब था--लहूलुहान था--जिसने मारा था, वह भी मौजूद था। उसने अलग-अलग लोगों से पूछा, क्या हुआ? और जितने मुंह उतनी बातें। घर के पिछवाड़े हत्या हुई, अभी मरने वाला मरा भी नहीं है--मर रहा है--अभी मारने वाला भाग भी नहीं गया है--मौजूद है--चश्मदीद गवाह मौजूद हैं--एक नहीं, अनेक--सबने देखा है, लेकिन सबकी व्याख्या अलग है। जो मरने वाले के पक्षपाती हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। जो मारने वाले के पक्षपाती हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। जो तटस्थ हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। एडमंड बर्क ने बहुत कोशिश की जानने की कि तथ्य क्या है, नहीं जान पाया। लौट कर उसने अपने बीस वर्षों का जो श्रम था उसमें आग लगा दी। उसने कहा, जब मैं अपने घर के पिछवाड़े अभी-अभी घटी ताजी घटना को तय नहीं कर पाता कि तथ्य क्या है, और मैं मनुष्य-जाति का इतिहास लिखने चला हूं! कि पांच हजार वर्ष पहले क्या हुआ? मैंने ये बीस वर्ष व्यर्थ ही गंवाए! मैं पानी पर लकीरें खींचता रहा।
इतिहास कौन लिखता है; कौन लिखवाता है? और फिर सदियों तक जो बात लिखी गयी, उसे हम दोहराते चले जाते हैं।
राजनीति बहिर्यात्रा है। राजनीति का अर्थ है: दूसरे पर विजय पाना। और जहां दूसरे पर विजय पाना है, वहां सत्य का क्या प्रयोजन! सत्य कोई उपयोग भी नहीं किया जा सकता दूसरे पर विजय पाने के लिए। यह बात की गलत है। दूसरे पर विजय पाने की आकांक्षा ही गलत है। इसके लिए सत्य का साधन की तरह उपयोग नहीं किया जा सकता। सत्य और दूसरे पर विजय पाना, इन दोनों के बीच क्या संबंध हो सकता है! हां, अंतर्यात्रा के जगत में यह सूत्र जरूर सत्य है। वहां सत्य ही जीतता है। सत्य ही जीत सकता है। वहां असत्य की हार सुनिश्चित है। वहां असत्य को हारना कैसे? मगर वह जीत और है। वह आत्म-विजय है। अपने पर विजय है। और अपने पर विजय में किसको धोखा देना है? और क्या सार है धोखा देने का? खुद को ही धोखा देने से मिलेगा भी क्या? और धोखा देना भी चाहोगे तो कैसे दोगे? तुम तो जानते ही रहोगे कि धोखा दे रहे हो।
तो इस भेद को ख्याल में ले लेना। इस सूत्र की व्याख्या तो बहुत बार की गयी, क्योंकि प्यारा सूत्र है, मगर यह बुनियादी भेद कभी साफ नहीं किया गया कि यह सूत्र बाहर के जगत मग लागू नहीं होता। वहां सब तरह की तिकड़म, चालबाजी, पाखंड, मुखौटे उपयोगी हैं। वहां सत्य तुम्हें हरा देगा। वहां तुम सत्य बोले कि गये। राजनीति में कहीं सत्य चल सकता है। राजनीति में तो चाणक्य का शास्त्र चलता है, मुंडकोपनिषद नहीं चलते। राजनीति में तो मेक्यावेली चलता है, बुद्ध और महावीर की वहां कोई गति नहीं है। फिर चाणक्य हों कि मेक्यावेली, इनकी आधारशिला एक है; धोखा देने की कुशलता। हां, जरूर सत्य को तो नहीं जिताया जा सकता बाहर के जगत में, लेकिन असत्य को भी जिताना हो तो सत्य की तरह प्रतिपादित करना होता है। असत्य को भी चलना हो तो सत्य का रंग-रोगन करना होता है। सत्य की कम से कम झूठी प्रतीति खड़ी करनी पड़ती है। क्योंकि लोग सत्य से प्रभावित होते हैं। फिर सत्य हो या न हो, यह और बात है। भ्रम काफी है। झूठ को भी यूं सजाना होता है कि वह सच जैसा मालूम पड़े। कम से कम मालूम पड़े। जैसे खेत में हम पशु-पक्षियों को डराने के लिए एक झूठा आदमी बना कर खड़ा कर देते हैं; एक डंडे रख देते हैं, दूसरे डंडा बांध कर हाथ बना देते हैं, फिर कुर्ता पहना दो और गांधी टोपी लगा दो; चाहो चूड़ीदार पाजामा--और मोरारजी देसाई तैयार! और चाहिए क्या? पशु-पक्षियों को भगाने के काम में कम से कम आ ही जाएंगे। और तो किसी काम के हैं भी नहीं!
खलील जिब्रान की एक प्रसिद्ध कथा है, कि मैं निकलता था एक खेत के करीब
से और मैंने वहां एक धोखे के आदमी को खड़ा देखा। वर्षा हो, धूप हो, सर्दी हो, यह बेचारा सतत पहरी की तरह खड़ा रहता। न थकता, न ऊबता, न बैठता, ने सुस्ताता, न लेटता। अथक इसकी साधना है। महायोगी है। तो मैंने पूछा कि कभी थक नहीं जाते हो? कि भाई, कभी सुस्ताते भी नहीं! कि मैं पूछता हूं, ऊबते नहीं हो? यही जगह, वही काम रोज सुबह-शाम, दिन और रात, कभी तो ऊब पैदा हो जाती होगी? वह खेत में खड़ा झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा कि पशु-पक्षियों का भगाने में ऐसा मजा आता है, डराने में ऐसा मजा आता है, कि ऊब का सवाल कहां उठता है?

दूसरों को डराने का एक मजा है! राजनीति वही मजा है। दूसरों पर हावी होने का एक मजा है! इससे तुम राजनीतिज्ञ को देखो, हमेशा प्रफुल्लित मालूम होता है। हजार उपद्रव के बीच, झंझटों के बीच ताजा लगता है। राजनीतिज्ञ लंबे जीते हैं। किसी और कारण से नहीं, दूसरों को डराने का मजा, धमकाने का मजा! मरना ही नहीं चाहते। जीते ही रहना चाहते हैं। छोड़ते नहीं बनता यह मजा! जैसे ही कोई राजनीतिज्ञ पद से उतरता है कि बस, जीवन-ऊर्जा क्षीण होने लगती है। अब तक पद पर होता है, तब तक जीवन-ऊर्जा बड़ी अभिव्यक्त होती है। ये सब झूठे आदमी हैं, खेत के आदमी हैं। अब खेत में डराने के लिए कोई असली आदमी थोड़े ही खड़ा करना जरूरी है। लेकिन असली आदमी का धोखा होना चाहिए। पशु- पक्षियों को ऐसा लगना चाहिए कि है असली। तो गांधी टोपी, खादी, का कुरता, शेरवानी, चमचमाते जूते--इतना पर्याप्त है।
राजनीति में सत्य नहीं जीता, कभी नहीं जीता। कभी जीतेगा भी नहीं। जिस दिन राजनीति में सत्य जीतने लगेगा, उस दिन राजनीति राजनीति न रह जाएगी उस दिन नीति हो जाएगी। सिर्फ नीति, शुद्ध नीति। उस दिन जगत से राजनीति विदा हो जाएगी। उस दिन धर्म ही होगा। लेकिन तब राजनीति की व्याख्या और होगी, उसकी गुणवत्ता और होगी--उसमें भगवत्ता होगी। आशा करना करीब-करीब दुराशा है; ऐसा हो नहीं पाएगा।
लेकिन भीतर के जगत में यह सूत्र बिलकुल सत्य है, सौ प्रतिशत--
सत्यं एव जयते नानृतम
सत्य जीतता है, असत्य नहीं।
असत्य का अर्थ समझ लो। जो नहीं है। जैसे अंधेरा। अब दीया जलाओगे तो क्या अंधेरा जीत सकता है? कितना ही पुराना हो, सदियों पुराना हो, तो भी यह नहीं कह सकता दीये से छोकरे, तू तो अभी-अभी जला, अभी घड़ी भी नहीं हुई तुझे और इतनी अकड़ दिखला रहा है! और हम सदियों से यहां हैं, यूं हम मिट जाएंगे क्या? इतनी पुरानी हमारी परंपरा, इस घर में हमारा अड्डा पुराना और तू अभी- अभी आया, मेहमान की तरह, और यूं इतरा है! अभी तुझे बुझा कर रख देंगे! नहीं, अंधेरा एक छोटे-से दीये को भी नहीं बुझा सकता। क्योंकि अंधेरा है नहीं, असत्य है।
असत्य का अर्थ है: जो नहीं है, जिसका अस्तित्व नहीं है; जो सिर्फ प्रतीत होता है; जो वस्तुतः अभाव है, अनुपस्थिति है। प्रकाश के अभाव का नाम अंधकार है। और सत्य के अभाव का नाम असत्य है। तो जैसे ही प्रकाश आया, फिर अभाव कैसे रह जाएगा?...मैं जब तक नहीं आया था, यह कुर्सी खाली थी। अब मैं इस कुर्सी पर आ गया, अब यह कुर्सी खाली नहीं है। मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं, तो यह कुर्सी खाली कैसे हो सकती है? यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। वह जो खालीपन था, वह सिर्फ अभाव था। ऐसा अंधकार है। ऐसा असत्य है। दीया जला कि--अंधकार मिटता है ऐसा कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जब हम कहते हैं मिटता है, तो यह भ्रांति होती है कि रहा होगा। यह भाषा की मजबूरी है। मिटता कहना ठीक नहीं है। युक्तियुक्त नहीं है। सत्य के अनुकूल नहीं है। क्योंकि मिटती तो वह चीज है जो रही हो। और अंधकार तो था ही नहीं, तो मिटेगा कैसे? जो नहीं था, वह मिट नहीं सकता। यह कहना भी कि अंधकार चला गया, ठीक नहीं है। क्योंकि जो था ही नहीं जाएगा चल कर कहां? क्या उसके पैर हो सकते हैं? तुम दरवाजे पर खड़े हो जाओ, भीतर कोई दीया जलाए, क्या तुम सोचते हो अंधेरा दरवाजे से भागता हुआ दिखाई पड़ेगा? तुम द्वार-दरवाजे बंद कर दो, रंध्र-रंध्र गंद कर दो, जरा-सी संध न छोड़ो, तब दीया जलाओगे तो अंधकार कहां से भागेगा, कहां जाएगा भाग कर? संध भी तो नहीं है जाने को।
तो अंधकार कहीं जाता नहीं। है ही नहीं तो जाएगा कैसे? मिटता नहीं। है
ही नहीं तो मिटेगा कैसे? फिर क्या हो जाता है? प्रकाश की अनुपस्थिति थी, प्रकाश आ गया, अनुपस्थित समाप्त हो गयी। उपस्थिति अनुपस्थिति को पोंछ डाली।
बस, ऐसी ही सत्य और असत्य का संबंध है। असत्य अर्थात जो नहीं है। सत्य
आ जाए, तो असत्य तिरोहित हो जाता है।
सत्य कैसे आ जाए, इसलिए महत्वपूर्ण सवाल यह है। दीया कैसे जले, महत्वपूर्ण सवाल यह है।

इस सूत्र से गलती हो सकती है, वह गलती होती रही है, तुमसे न हो जाए, इसलिए सावधान करना चाहता हूं। लोग सोचते हैं, सत्य को शास्त्रों से सीखा जा सकता है। यह यूं हुआ जैसे कि कोई की तस्वीर बना ले और अंधेरे में ले जाए और दीये की तस्वीर रख दे। क्या तुम सोचते हो दीये की तस्वीर से अंधेरा मिटेगा? शास्त्रों में सिर्फ दीये की तस्वीरें हैं। दीये की तस्वीरों से अंधकार नहीं मिटेगा। या कोई दिया खूब चर्चा करने लगे, गुणगान करने लगे, दीये की स्तुति में गीत गुन-गुनाए, तो अभी अंधकार नहीं मिटेगा। दीया ही लाना होगा। ज्योति ही जलानी होगी।
इस सूत्र से यह भ्रांति भी पैदा होती है कि चूंकि असत्य जीतता नहीं, इसलिए असत्य को निकाल बाहर करो। असत्य को त्यागो यह वैसा ही हुआ जैसे कोई अंधकार को त्याग की बात करे। कैसे त्यागोगे अंधकार को? धक्के देकर निकालोगे अंधकार को? लड़ोगे अंधकार से? संघर्ष करोगे? क्योंकि यह विजय शब्द खतरनाक है। इससे ऐसा लगता है, लड़ना पड़ेगा, घूंसाबाजी होगी, पहलवानी होगी। दांव-पेंच लगेंगे, तलवारें चलेंगी, कृपाणें उठेंगी--"बोले सो निहाल, सत श्री अकाल"--कुछ उपद्रव होने वाला है; कि या-अली--या बजरंगबली, कुछ-न-कुछ--लंगोट कस कर और जूझ पड़ना है! कि दंड-बैठक लगाने होंगे! कि हाथ-पैर मजबूत करने होंगे! अंधकार से लड़ना है! असत्य से लड़ना तो है!
यह सब पागलपन की बातें हैं।
मगर इन बातों का बड़ा आकर्षण है। लोग असत्य से लड़ रहे हैं। अनाचरण से
लड़ रहे हैं, दुराचरण से लड़ रहे हैं, बुराइयों से लड़ रहे हैं, अनीति से लड़ रहे हैं, दुष्चरित्रता से लड़ रहे हैं। लड़ कर खुद ही टूट जाएंगे और कुछ भी नहीं होगा। लड़ने में खुद ही आत्मघात कर लेंगे, अपनी ही शक्ति को व्यर्थ कर देंगे। यह सवाल लड़ाई का नहीं है। अंधकार के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। न तो तुम लड़ सकते हो, न तलवार से उसे काट सकते हो, न फौजें ला कर उसे हटा सकते हो। जो नहीं है, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। हां, अगर उसके साथ कुछ करना हो, तो प्रत्यक्ष मार्ग नहीं है, परोक्ष मार्ग है। अंधकार के साथ कुछ करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करो। अगर चाहते हो अंधकार हटे, तो प्रकाश जलाओ। और अगर चाहते हो अंधकार रहे, तो प्रकाश बुझाओ करना होगा, प्रकाश के साथ। क्योंकि जो है, उसी के साथ कुछ किया जा सकता है।
इसलिए मेरा जोर आचरण पर नहीं है, मेरा जोर ध्यान पर है। ध्यान है प्रक्रिया स्वयं के भीतर प्रकाश को चला लेने की। ध्यान है प्रक्रिया स्वयं के भीतर सत्य को आमंत्रित कर लेने की। सत्य में उत्सुक हो गये तो शास्त्रों में उलझ जाओगे। ध्यान में उत्सुक होना। नहीं तो तस्वीरों में पड़े रह जाओगे। और तस्वीरें काम नहीं आती। दीये को चर्चा से कुछ नहीं होता, दीया चाहिए।
सत्यं एव जयते नानृतम
निश्चय ही सत्य जीतता है, असत्य नहीं। मगर सत्य लाओगे कहां से? ध्यान
के अतिरिक्त न कभी सत्य आया है, न आ सकता है। शास्त्र से नहीं आता, सिद्धांतों से नहीं आता, सिर्फ अपने भीतर परम मौन, पूर्ण शून्यता में उतरता है। निर्विचार अवस्था में सत्य का बोध होता है। लेकिन लोग अजीब है! लोग सत्य के संबंध में विचार में लगे हैं कि सत्य क्या है! यूं वे दर्शनशास्त्र में भटक जाते हैं।
इसी जगह से दर्शन और धर्म का रास्ता अलग होता है। दर्शनशास्त्र सोचने लगता है: सत्य क्या है, सत्य को कैसे पाएं, सत्य की रूपरेखा क्या है, व्याख्या क्या है, परिभाषा क्या है, सत्य है या नहीं? और धर्म ध्यान की यात्रा पर निकल जाता है। निर्विचार की यात्रा पर। और दर्शनशास्त्र कहीं भी नहीं पहुंचा, किसी निष्पत्ति पर नहीं।
दर्शनशास्त्र से ज्यादा असफल पृथ्वी पर कोई प्रयोग नहीं हुआ है। और कितनी प्रतिभाएं डूब गयी प्रयोग में! कितने अदभुत लोग नष्ट हो गये! और ध्यानियों के पास भी बैठ कर लोग दर्शन की यात्रा पर निकल जाते हैं। सुकरात ध्यानी है, लेकिन उसका शिष्य प्लेटो भटक गया। बैठा सुकरात के पास, सुना सुकरात को, लेकिन सुन-सुन कर सोचने-विचारने में लग गया। और जब सुकरात के पास बैठ कर प्लेटो भटक गया, तो प्लेटो शिष्य अरस्तू तो और भी भटक गया! बात

ही गड़बड़ हो गयी। अगर सुकरात और अरस्तू का मिलन हो जाए तो दोनों को एक-दूसरे की बात ही समझ में न आएगी। जमीन-आसमान का फर्क हो गया।
और यह करीब-करीब पृथ्वी के हर देश में हुआ है, हर परंपरा में हुआ है।
बुद्ध के मरते ही उनके संघ में बत्तीस दार्शनिकों के संप्रदाय पैदा
हो गये। लोग चल पड़े सोचने की दुनिया में अलग-अलग। और सोचने में विवाद है। सोचने में कोई निष्कर्ष तो मिलता नहीं, लेकिन भारी आपाधापी, ऊहापोह मच जाता है। अंधे सोचने लगते हैं हाथी के संबंध में।
पांच अंधों की कहानी तुमने सुनी ही है पंचतंत्र में, कि गये थे अंधे हाथी को देखने। जिसने कान छुआ, उसने कहा कि हाथी सूप की भांति है। और जिसने पैर छुआ था, उसने कहा...अंधा क्या समझेगा और,...उसने सोचा, हाथी खंभे की भांति है, स्तंभ की भांति है। और पांचों अंधों ने अलग-अलग वक्तव्य दिये। उनमें भारी विवाद मच गया। अंधे अक्सर दार्शनिक होते हैं। दार्शनिक अक्सर अंधे होते हैं। इनमें कुछ बहुत भेद नहीं होता। अंधे ही दार्शनिक हो सकते हैं। जिनके पास आंखें नहीं हैं, वे ही सोचते हैं प्रकाश क्या है? नहीं तो सोचेंगे क्यों? जिसके पास आंख है, वह देखता है, सोचेगा क्यों?
ख्याल रखना, दार्शनिक और द्रष्टा में बड़ा भेद है। यह सूत्र द्रष्टा
के लिए है, दार्शनिक के लिए नहीं। सोचने मत बैठ जाना कि सत्य क्या है। निर्विचार होना है। सोचने से मुक्त होना है। वही भूमिका है। जब तुम परिपूर्ण शून्य होते हो, तुम मंदिर हो जाते हो। तुम तीर्थ बन जाते हो। सत्य अपने से अवतरित होता है, उतरता है। क्योंकि तुम जब शून्य होते हो, तुम्हारे द्वार-दरवाजे सब खुले होते हैं--अस्तित्व तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकता है।
सत्यं एव जयते नानृतम
सत्य जीतता है, असत्य नहीं।
सत्येन पन्था विततो देवनानः।
और यह सत्य का जो पंथ है, यही है देवयान, यही है दिव्यमार्ग। विचार का नहीं, शास्त्र का नहीं, दिव्या का।
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
सत्य मार्ग है। वही देवयान है।
दो यानों को समझ लो। एक को कहा है परंपरा में: पितृयान और दूसरे को कहा है: देवयान। यान का अर्थ होता है: नाव। पितृयान का अर्थ होता है: हमारे बुजुर्ग, हमारे बाप-दादे जो करते रहे, वही हम करें। पितृयान यानी परंपरा। जिससे सदियों से लोग चलते रहे, उन्हीं लकीरों पर हम भी फकीर बने रहें। और देवयान का अर्थ होता है: क्रांति। परंपरा से मुक्ति। अपनी दिव्यता की खोज। औरों के पीछे न चलना। उदघोषणा। बगावत। विद्रोह।
मैं तुम्हें देवयान दे रहा हूं। संन्यास का अर्थ है: देवयान। तुम हिंदू नहीं हो, मुसलमान नहीं हो, ईसाई नहीं हो, जैन नहीं हो, बौद्ध नहीं हो, तुम सिर्फ धार्मिक हो।
मैं अपने संन्यासी को चाहता हूं वह सारे विशेषणों से मुक्त हो जाए। क्योंकि वह सब पितृयान है। तुम्हारे पिता हिंदू थे, इसलिए तुम हिंदू हो। और तो तुम्हारे हिंदू होने का कोई कारण नहीं है। अगर बचपन से ही तुम्हें मुसलमान घर में बड़ा किया गया होता, तुम मुसलमान होते। चाहे हिंदू घर में ही पैदा हुए होते, लेकिन अगर मुसलमान मां-बाप ने बड़ा किया होता, तो मस्जिद जाते, मंदिर नहीं; कुरान पढ़ते, गीता नहीं; जरूरत पड़ जाती तो मंदिर को आग लगाते, और मस्जिद को बचाने के लिए प्राण दे देते।
यह तुम नहीं हो, यह तुम्हारे भीतर से सड़ा-गला अतीत बोल रहा है।
जो व्यक्ति अपने को हिंदू या मुसलमान या ईसाई या जैन कहता है, वह अपने व्यक्तित्व को नकार रहा है, अपनी आत्मा को इनकार कर रहा है। वह कह रहा है: मेरा कोई मूल्य नहीं है; कब्रों का मूल्य है, मुर्दों का मूल्य है। देवयान का अर्थ होता है: अपनी दिव्यता की अनुभूति और घोषणा; परंपरा से मुक्ति; अतीत से मुक्ति और वर्तमान में जीने की कला। "सत्येन पन्था विततो देवयान;"। यह जो सत्य का मार्ग है, यह देवयान है; यह बगावत का रास्ता है; यह विद्रोह है। यह पितृयान नहीं है। तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पिता मानते थे, इसलिए मैं मानता हूं। नहीं, तुम्हें जानना होगा। जानना पहले। और जिसने

जान लिया उसे मानने की जरूरत ही नहीं आती। और जिसने माना, उसके जीवन में जानने का सौभाग्य कभी पैदा नहीं होता। जिसने माना, वह तो मर ही गया। जिस दिन माना, उसी दिन मर गया। क्योंकि उसी दिन खोज समाप्त हो गयी, अन्वेषण बंद हो गया। मानने का अर्थ ही होता है कि अब क्या करना है, मैंने तो मान लिया। और तुम्हें यहीं सिखाया गधा है कि मानो, विश्वास करो। और इस भांति सारी पृथ्वी पर थोथे धार्मिक लोग पैदा किये गये हैं। विश्वासी हैं, मगर धार्मिक नहीं।
विश्वास थोथा ही होगा। जो तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है, वह कैसे सत्य
हो सकता है? मैं कहूं, वह मेरा अनुभव है, तुम उसे दोहराओ, तुम्हारे लिये असत्य हो गया। जिस दिन तुम भी जानोगे, अपनी निजता में, उस दिन तुम्हारे लिये सत्य होगा। और स्वयं का सत्य ही मुक्त करता है। दूसरों के सत्य बंधन बन जाते हैं, जंजीरें बन जाते हैं।
इसलिए मेरा कोई संन्यासी मेरा अनुयायी नहीं है। मेरा संगी है, मेरा साथी है, लेकिन मेरा अनुयायी नहीं है। मैं कोई सिद्धांत दे भी नहीं रहा। तुम चाहो भी मेरा अनुगमन करना तो न कर सकोगे। मैं तुम्हें सिर्फ इशारे दे रहा हूं। इशारे अंतर्यात्रा के। मैं तुम्हें कुछ सिद्धांत नहीं दे रहा कि तुम पकड़ लो और मान लो। मैं तुमसे सारे सिद्धांत छीन रहा हूं। यह देवयान की प्रक्रिया है।
सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येनाक्रमंति ऋषयो ह्याप्तकामा
इस सत्य-मार्ग से जो जाते हैं, वे हैं आप्तकाम। जिसने सत्य को जाना, उसकी कामना मर जाती है। कामना बाहर कुछ पाने की दौड़ है। कामना राजनीति है। कामना का अर्थ है: धन मिले, प्रतिष्ठा मिले, यश मिले। कामना का अर्थ है: दूसरों पर मैं हावी हो जाऊं; दूसरों के सिरों पर बैठ जाऊं। आप्तकाम का अर्थ है: जिसने देख ली मूढ़ता इस दौड़ की; जो इस दौड़ से मुक्त हो गया; जिसको भ्रांति टूट गयी, जिसको यह बात समझ में आ गयी कि मैं अपना मालिक नहीं हूं, किसी और का मालिक कैसे हो सकूंगा? यह असंभव है। अपना ही मालिक हो जाऊं, इतना ही काफी है। काफी से ज्यादा है। क्योंकि जो अपना मालिक हुआ, उसके जीवन में भीतर के खजानों के द्वार खुल जाते हैं। इस सत्य-मार्ग से जो जाते हैं, वे ही आप्तकाम हैं। वे ही ऋषि हैं, वे ही द्रष्टा हैं।
ऋषि शब्द बड़ा प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं। ऋषि
का यूं तो अर्थ होता है: कवि। लेकिन, एक गुणात्मक भेद है कवि और ऋषि में।
दुनिया की सभी भाषाओं में कवि के लिए शब्द हैं, लेकिन ऋषि के लिए नहीं।
कारण है।
हमने इस देश में कोई पांच हजार वर्षों से निरंतर भीतर की शोध की है। जैसे आज पश्चिम विज्ञान के शिखर पर है, ऐसे हमने धर्म के शिखर पर पहुंचने का सतत अभियान किया है। जरूर कोई सारा पश्चिम वैज्ञानिक नहीं है, लेकिन विज्ञान की एक खूबी है; अगर एक व्यक्ति ने बिजली खोज ली और बिजली का बल्ब बना लिया--जैसे एडीसन ने--तो एक दफा बिजली का बल्ब बन गया और बिजली खोज ली गयी, तो सभी उसके हकदार हो जाते हैं। फिर घर-घर में बिजली जलती है। फिर ऐसा नहीं है कि एडीसन के घर में ही बिजली जलेगी। एक दफा बात जान ली गयी, तो बाहर के जगत की सारी बातें एक बार जान। ली गयीं तो सबकी हो जाती हैं।
इससे विज्ञान में एक भ्रांति बड़े स्वाभाविक रूप से पैदा हो जाती है, वैज्ञानिक तो थोड़े ही होते हैं--कोई एडीसन, कोई आइंस्टीन, कोई रदरफोर्ड, थोड़े-से वैज्ञानिक--लेकिन एक वैज्ञानिक जो भी खोजता है, जैसे एडीसन ने एक हजार आविष्कार किये, लेकिन वे सारे आविष्कार सबके हो गये।
धर्म के संबंध में एक अड़चन है। धर्म भी थोड़े लोगों ने ही अनुभव किया-- बुद्ध ने, महावीर ने, कृष्ण ने, पतंजलि ने, गोरख ने, नानक ने, कबीर ने, मीरा ने, थोड़े-से लोगों ने--मगर धर्म के साथ एक अड़चन है, जो अनुभव करता है, बस उसके ही भीतर ज्योति जगती है। इसको हर घर में नहीं जलाया जा सकता। बुद्ध ने जाना तो बुद्ध मुक्त होते हैं। मीरा ने पाया, तो मीरा नाचती है मग्न होकर; पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! मगर तुम कैसे पद में घुंघरू बांधोगे? और तुम कैसे नाचोगे? तुमने तो पाया नहीं। और तुम नाचे तो नकल करोगे। तुम नकलची हो जाओगे। तुम कार्बन कापी हो जाओगे। और इस दुनिया में इससे बड़ा कोई

पाप नहीं है: कार्बन कापी हो जाना। अपनी मौलिकता को भूल जाना जघन्य अपराध है, आत्मघात है।
थोड़े-से लोगों ने धर्म के शिखर को छुआ। लेकिन जिन्होंने धर्म के शिखर
को छुआ, उन्होंने हमारी भाषा पर भी छाप छोड़ दी। हमारी भाषा को उन्होंने नया शृंगार दे दिया। हमारी भाषा को नये अर्थ, नयी अभिव्यंजनाएं दे दीं। जैसे ऋषि शब्द दिया।
कवि का अर्थ होता है: जिसके पास बाहर की आंखें हैं, जो बाहर के सौंदर्य
को देखने में समर्थ है, जिसके पास बाहर के सौंदर्य को अनुभव करने की संवेदनशीलता है। सूर्योदय के सौंदर्य को देखता है, सूर्यास्त के सौंदर्य को देखता है; पक्षियों के गीत, फूलों के रंग, रात तारों से भरा हुआ आकाश, किसी की आंखों का सौंदर्य, किसी के चेहरे का सौंदर्य, लेकिन उसकी आंख बाहर के सौंदर्य को देखती है, वह कवि। वह इस सौंदर्य के गीत गाता है। लेकिन यह सौंदर्य कुछ भी नहीं है उस सौंदर्य के मुकाबले जो भीतर है। जिसकी भीतर की आंख खुल जाती है--प्रतीकात्मक रूप से हमने उसको तृतीय नेत्र कहा है। यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। बाहर देखने वाली दो आंखें हैं और भीतर देखने वाली एक आंख है।
क्यों?
क्योंकि बाहर देखने का जो ढंग है वह द्वंद्व का है, द्वैत का है। वह हर चीज को दो में तोड़ देने का है। और भीतर जो देखने का ढंग है, वह हर चीज को एक में जोड़ देने का है। बाहर विश्लेषण है और भीतर संश्लेषण।
विज्ञान विश्लेषण है, क्योंकि वह बाहर की आंख है। और धर्म संश्लेषण है, क्योंकि वह भीतर की आंख है। वहां दो आंखें मिल कर एक आंख हो जाती है। वहां एक ही दृष्टि रह जाती है। वहां कोई द्वैत नहीं बचता। इसलिए हमने उसे तीसरा नेत्र कहा है। वह भीतर की आंख है। और जिसे भीतर का सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वह ऋषि।
लेकिन भीतर का सौंदर्य तो तब दिखाई पड़ेगा जब भीतर का दीया जले। बाहर
का सौंदर्य दिखाई पड़ता है, क्योंकि बाहर रोशनी है। रात के अंधेरे में तो फूलों के रंग दिखाई नहीं पड़ते! दिन के प्रकाश में फूलों के रंग दिखाई पड़ते हैं। रात में इंद्रधनुष दिखाई नहीं पड़ता--बन ही नहीं सकता, दिखाई कैसे पड़ेगा! उसके लिए सूरज तो चाहिए ही चाहिए। हां, दिन की रोशनी में कभी इंद्रधनुष बनता है। सारे रंग! अपूर्व सौंदर्य के साथ पृथ्वी और आकाश को जोड़ देता है, सेतु बन जाता है। तुम्हारे कमरे में कितनी ही सुंदर तस्वीरें टंगी हों, बड़े से बड़े चित्रकारों की--पिकासो की, डाली की, वानगाग की--मगर रात के अंधेरे में तुम उन्हें देख न पाओगे। रोशनी चाहिए। सुबह जब सूरज ऊगेगा और खिड़कियों से किरणें झांकेंगी तब तुम अचानक चकित होओगे कि कितने अदभुत कलात्मक कृतियां कमरे में मौजूद हैं। हो सकता है बुद्ध की मूर्ति रखी हो। किसी अदभुत मूर्तिकार का सृजन हो! हो सकता है माइकेल एंजिलो की जीसस की प्रतिमा रखी हो! मगर रात के अंधेरे में कैसे देखोगे?
भीतर अंधेरा है, इसलिए के सौंदर्य का तुम्हें पता नहीं। भीतर भी फूल खिलते हैं। हमने कहा कि भीतर सहस्रदल कमल खिलता है। बाहर के फूलों में क्या रखा है। क्षण भर को होते हैं; अभी हैं, अभी नहीं; आ भी नहीं पाते कि जाने की तैयारी शुरू हो जाती है; झूले में और अर्थी में बहुत भेद नहीं होता; सुबह खिला फूल, सांझ मर जाता है; सुबह झूले में था, सांझ अर्थी बंध जाती है, राम नाम सत्य हो जाता है; सुबह किस शान से उठा था, किस गरिमा और गौरव से, किस दंभ से घोषणा की थी और सांझ पंखुड़ियां बिखर गयी हैं। किसी हताशा है! मिट्टी में गिर गया है! सुबह सोचा भी न होगा कि यह अंत होगा, कि यूं खाक में पड़ जाना होगा!
बाहर का सौंदर्य क्षणभर है, पानी में बने बबूले जैसा है। कवि उसी सौंदर्य की चर्चा करता है। ऋषि उस सौंदर्य की चर्चा करता है, जो शाश्वत है। जिस एक बार जाना तो सदा के लिए जाना। वही सौंदर्य तृप्ति दे सकता है। कवि भी गीत गाता है। लेकिन कवि के गीत क्षणभंगुर की ही छाया होते हैं। ऋषि भी गीत गाता है। लेकिन ऋषि के गीत शाश्वत की अनुगूंज होते हैं, अनाहत का नाद होते हैं।

सूफी फकीर स्त्री हुई राबिया। उसके घर मेहमान था हसन। सुबह हुई, हसन बाहर गया, सूरज ऊगता था, पक्षी गति गाते थे, दूर अमराई से कोई कोयल कूकती थी, बड़ी प्यारी सुबह थी, अभी की बूंदें घास पर जमी थीं, मोतिया जैसी चमकती थी, फूलों की गंध हवा को भर रही थी, उसने आवाज दी राबिया को कि राबिया, तू भीतर झोपड़े में बैठी क्या कर रही है? बाहर आ, परमात्मा ने एक बहुत सुंदर सुबह को जन्म दिया है, इसे देखने से चूकना उचित नहीं । तू जल्दी बाहर आ! राबिया खिलखिला कर हंसी और उसने कहा, हसन, कब तक बाहर के सौंदर्य में उलझे रहोगे? मैं तुमसे कहती हूं, भीतर आओ! क्योंकि जिसने उस बाहर की सुबह को बनाया है, मैं उसे देख रही हूं। तुम सिर्फ चित्र देख रहे हो, मैं चित्रकार को देख रही हूं। तुम्हीं भीतर आ जाओ! सुनो मेरी, मानो मेरी, तुम्हीं भीतर आ जाओ!
हसन ने यह सोचा था कि बात यूं हो जाएगी। मगर ऋषियों के हाथ में कंकड़ भी
पड़ जाएं तो हीरे हो जाते हैं। हसन ने तो यूं ही कहा था कि राबिया, बाहर आ! सोचा भी न था कि इसमें कुछ आध्यात्मिक संदेश राबिया दे देगी। मगर राबिया जैसे अनुभूति से भरे के जीवन में तुम कुछ भी कहो, वे उसमें से कुछ न कुछ शाश्वत का इशारा खोज लेंगे।
कल कृष्णतीर्थ ने मुझसे पूछा था कि आप जब उत्तर देते हैं किसी के प्रश्न का तो प्रश्नकर्ता महत्वपूर्ण होता है या प्रश्न महत्वपूर्ण होता है?
कृष्णतीर्थ, न तो प्रश्न महत्वपूर्ण होता है, न प्रश्नकर्ता होता है, महत्वपूर्ण तो हमेशा उत्तर देने वाला होता है, उत्तर होता है। उत्तर से भी ज्यादा उत्तर देने वाला होता है। अब हसन ने क्या पूछा था? हसन ने यह बात ही न की थी, हसन तो कुछ और ही पूछ रहा था, साधारण-सी बात कर रहा था। राबिया ने क्या मोड़ दे दिया! हालात बदल दिये! हसन को चौंका दिया! हसन के प्रश्न में तो कुछ भी न था, तुमसे अगर यह बात किसी ने कहीं होती तो तुम यह उत्तर नहीं दे सकते थे जो राबिया ने दिया। और अगर राबिया का उत्तर सुन कर देते भी तो झूठा होता। और जहां झूठा है, वहां बल नहीं होता। लचर-पचन तुमने कहां होता, हकलाते हुए कहा होता। तुम्हारी बात में प्राण न होते, श्वास न होती। लेकिन राबिया ने जिस ढंग से बात कही, हसन को भीतर खिंच कर आ जाना पड़ा। पड़ी रह गयी सुबह बाहर। पड़े रह गये फूल और कोयल की पुकार। और पड़ा रह गया सूरज और ओस की चमकती हुई बूंदें--सब पड़ा रहा गया।
हसन भीतर आया और हसन ने कहा, राबिया, यह तूने क्या कहा! राबिया ने कहा,
जो कहना उचित था वही मैंने कहा। कब तक उलझे रहोगे, हसन? बहुत दिन हो गये मुझे देखते, तुम बाहर ही उलझे हो। माना कि बाहर सुंदर है जगत, मगर बनाने वाले को देखो; उस मूलस्रोत्र को देखो जहां से यह सारा सौंदर्य निकलता है, यह सौंदर्य उसके सामने कुछ भी नहीं है, बूंद भी नहीं है! जब सागर भीतर मौजूद है, तो क्यों बूंदों में अटके हो?
और हसन के जीवन में यह घटना क्रांति की हो गयी। उस दिन से हसन की आंखें बंद हो गयीं। अब तक हसन एक कवि था, अब उसके जीवन में ऋषि की यात्रा शुरू हुई।
ऋषि का अर्थ है: जो बाहर विजय करनी है, इस बात की मूढ़ता को पहचान लिया
और अंतर्विजय के लिए निकल पड़ा है। और ऋषि का अर्थ है: जिसने भीतर के सौंदर्य को देखा है और उसे गाया है। वह भी कवि है, लेकिन आंख बाला; अंधा नहीं। भीतर की आंख वाला। वह भी कवि है, लेकिन उसके भीतर दीया जल रहा है। और इसलिए उसके प्रत्येक शब्द में ज्योति है। उसके शब्द-शब्द में आग है। उसके शब्द-शब्द आग्नेय हैं। और जिनके भीतर थोड़ी भी क्षमता है जागने की, वे उसके शब्दों को सुन कर जाग ही जाएंगे।
येनाक्रमंति ऋषयो ह्याप्तकामा
जहां सत्य है, वहीं परम द्वार है। और एक बार तुमने अपने सत्य को जाना
कि परमात्मा दूर नहीं, निकट से भी निकट है। एक बार तुमसे अपने सत्य को जाना कि उसी सत्य के केंद्र पर विराजमान तुम परमात्मा को पाओगे। सत्य परमात्मा का द्वार है। और जिसने और परमात्मा को जाना, वही विजयी है। उसको हमने जिन कहा है। जैन दो कौड़ी के हैं, लेकिन जिन! महावीर को हमने जिन कहा। महावीर

जैन नहीं हैं, ख्याल रखना, कोई भूल कर यह दावा न करे कि महावीर जैन हैं; महावीर जिन हैं।
जिन का अर्थ है: जिसने जीता, जिसने जाना। और जैन कौन है? जैन वह है, जिसने जीते हुए लोगों के शब्द तोतों की तरह रट लिये हैं, जो उनको दोहरा रहा है यंत्रवत, लेकिन उन शब्दों पर उसके हस्ताक्षर नहीं हैं, उन शब्दों पर उसके प्राणों की कोई छाप नहीं है। वे शब्द उधार हैं, बासे हैं, झूठे हैं। और गंदे हो गये हैं, क्योंकि हजारों ओठों से चल चुके हैं।
सहजानंद, यह सूत्र तो प्यारा है। मगर इतनी सारी बातों को ख्याल में रखना तो ही तुम इस सूत्र में छिपे अमृत का स्वाद ले पाओगे। सोचने-विचारने में मत पड़ जाना। जाओ! भीतर का दीया जलाओ! ध्यान की थोड़ी-सी ज्योति पर्याप्त है।

मेरा स्वर्णिम भारत-5

अंतर-आकाश
(Note: from Sahaj Asiki Nahin (सहज आसिकी नाहिं) #10)

पहला प्रश्न: भगवान,
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् दद् विदुस्त इमे समासते।।
जिसमें सब देवता भलीभांति स्थित हैं उसी अविनाशी परम व्योम में सब वेदों का निवास है। जो उसे नहीं जानता वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा? परंतु जो जानता है
उसे वह उसी में से भलीभांति मिल जाता है।
भगवान, श्वेताश्वर उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए खोलने की अनुकंपा करें।

सत्यानंद,
यह सूत्र उन थोड़े-से अदभुत सूत्रों में से एक है जिन्हें गलत समझना तो आसान, सही समझना बहुत मुश्किल। एक-एक शब्द की गहराई में उतरना जरूरी है। एक-एक शब्द जैसे जीवन-अनुभव का निचोड़ है। हजारों गुलाबों से जैसे इत्र की कुछ बूंदें बनें, ऐसे हजारों समाधि के अनुभव इस एक सूत्र में पिरोए हुए हैं।
पहले एक-एक शब्द को अलग-अलग समझ लें, फिर उनकी माला बना लेना कठिन न होगा। पहला शब्द है: ऋचा। विश्व की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है। ऋचा का साधारण अर्थ तो होता है कविता, मगर वह तो कविता से ही प्रकट हो जाता है, उसके लिए ऋचा शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है। कविता के पर्यायवाची शब्द दुनिया की सभी भाषाओं में हैं। संस्कृत अकेली भाषा है, जिसमें कविता के लिए दो शब्द हैं--कविता और ऋचा। कविता वह, जो मनुष्य निर्मित करता है, बांधता है छंद में, राग में, गीत में, सौंदर्य देता है, निखारता है, रूप देता है, रंग देता है।
जैसे कोई चित्रकार तितली बनाए; प्यारे हों रंग, सुंदर हो आकृति; अब उड़ी तब उड़ी ऐसा लगे--मगर उड़े कभी भी नहीं, उड़ सके ही नहीं। कैनवास पर ही रहेगी; न कहीं आएगी न कहीं जाएगी। बगीचे में फूल भी खिलेंगे तो भी वह तितली कैनवास पर ही रहेगी। सूरज भी निकलेगा, किरणें संदेश भी लाएंगी कि चलो यात्रा पर चलो, हवाएं भी आएंगी, शायद कैनवास भी फड़फड़ाएगा; लेकिन तितली के पंख नहीं खुलेंगे। नहीं खुल सकते हैं। वह तो केवल तस्वीर है।
कविता मात्र आदमी के द्वारा बनाई गई तस्वीर है; कितनी ही प्यारी हो फिर भी तस्वीर है। और ऋचा--जब मनुष्य मिट जाता है। मन मिट जाता है तो मनुष्य मिट जाता है। मन नहीं तब ध्यान। उस ध्यान में जो उतरता है आकाश से, अंतरिक्ष से, वह है ऋचा। उसके छंद नहीं बिठाने होते। उसके बंध नहीं बिठाने होते। उसकी मात्राएं नहीं जुटानी होतीं। वह गीत जीवित है। वह जीवंत काव्य है। वह बहता है। जैसे तितली उड़ती है। जैसे असली फूल खिलते हैं। वह कागज का फूल नहीं है, गुलाब की झाड़ी पर खिला फूल है। वह तस्वीर नहीं है दीए की, सच में ही दीया है।
ऋचा उतरती है समाधिस्थ चेतना में। काव्य है सौंदर्य की संवेदनशीलता।
और ऋचा है परमात्मा को अपने में से बहने देना। जब कोई बांस की पोंगरी की तरह हो जाता है, शून्य, खाली, तो बस परमात्मा के ओंठों पर बांसुरी बन जाता है।
इसलिए कविता तो कवि की होती है, ऋचा ऋषि की होती है। दोनों ही गाते हैं, दोनों ही गुनगुनाते हैं; मगर दोनों की गुनगुनाहट के स्रोत अलग हैं। ऋषि वह है जो परमात्मा के साथ एक हो गया। उस एकता से जो आनंद की लहरें उठती हैं, उस एकता से जो नृत्य उठता है, जो घूंघर बज उठते हैं--वह है ऋचा। उस एकता

के बिना मनुष्य अपने सौंदर्य-बोध से, अपने मन से, जो निर्मित करता है-- कितना ही प्रीतिकर हो, मगर रहेगा मुर्दा। परमात्मा के बनाए बिना किसी चीज में कोई जीवन नहीं होता है। आदमी केवल लाशें गढ़ सकता है, मूर्तियां बना सकता है, लेकिन उनमें प्राण का संचरण नहीं कर सकता, उनमें श्वास नहीं फूंक सकता।
ऋचा है सांस लेती हुई कविता। ऋचा है सप्राण काव्य। कविता है केवल देह,
जब देह में आत्मा भी विराजित होती है तो ऋचा।
दूसरा शब्द है: अक्षर। वर्णमाला को हम--केवल हम सारी पृथ्वी पर--अक्षर
से शुरू करते हैं। अ अक्षर का प्रतीक है। अच्छा नहीं किया लोगों ने कि अभी कुछ वर्षों से वर्णमाला क ख ग से शुरू होने लगी। वह अ से ही शुरू होनी चाहिए। अ यानी अक्षर। अक्षर परमात्मा का दूसरा नाम है। सभी यात्रा उसी से शुरू होनी चाहिए। शब्द की यात्रा के पहले कदम में ही अक्षर की झलक होनी चाहिए। इसलिए हमारी वर्णमाला अक्षरमाला है। हम ही हैं केवल पृथ्वी पर जो अक्षर जैसे अनूठे भाव का प्रयोग कर रहे हैं वर्णमाला के लिए। और वर्णमाला की यात्रा का जो पहला कदम है, अ, वह अक्षर का संकेत है--जिसका क्षय न हो; जो कभी झरे न; जो कभी मिटे न; जो है, सदा था, सदा रहेगा।
तीसरा शब्द है: व्योम। आकाश ही कहने से चल जाता। लेकिन आकाश वह है जो हमारे बाहर फैला है। और व्योम आकाश से भी बड़ा है। व्योम का अर्थ है: बाहर का आकाश + भीतर का आकाश। एक तो अस्तित्व है जो हमारे बाहर फैलता चला गया है; कहो संसार, कहो विश्व, ब्रह्मांड। और एक है अस्तित्व जो हमारे भीतर फैलता चला गया है। दोनों असीम हैं। दोनों के जोड़ का नाम व्योम है। व्योम का अर्थ होता है जो सदा विस्तीर्ण ही होता चला जा रहा है, फैलता ही चला जा रहा है, जिसकी कोई सीमा नहीं आती। कितना ही चलो, लेकिन कभी ऐसा क्षण न आएगा कि कह सको कि बस, अब आगे और कुछ भी नहीं है। फिर भी शेष है। फिर भी शेष है। जो सदा शेष है; कितनी ही डुबकी मारो, जिसकी थाह नहीं मिलती; और कितना ही विचार करो, जिसका वर्णन नहीं होता है; और कितने ही गीत गाओ, जो अनगाया ही रह जाता है--उसका नाम है, व्योम। व्योम में अंतर-आकाश सम्मिलित है।
अब तुम्हें पहली पंक्ति का अर्थ समझ में आ सकता है।
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्।
ऋचा अविनाशी परम व्योम में झरती है। वह फूल उस अंतर-आकाश में खिलता है। वह कमल चैतन्य की झील में उमगता है। और उस कमल की गंध ही ऋचा बन जाती है, वेद बन जाती है। वेद से तुम अर्थ न लेना उन चार वेदों का। उनमें तो निन्यानबे प्रतिशत व्यर्थ की बातें हैं। कहीं भूले-चूके कोई हीरा मिल जाए, मिल जाए, नहीं तो सब कंकड़-पत्थर हैं। वेद का अर्थ होता है: तुम्हारे भीतर जो जानने की क्षमता है, उसका परम निखार--विद का परम निखार। विद यानी ज्ञान, बोध। बुद्धत्व है वेद का अर्थ। इसलिए बुद्ध ने चारों वेदों को इनकार कर दिया, क्योंकि जिसे पांचवां वेद उपलब्ध हो उसे चारों को इनकार करना ही होगा। उन चार में जो खो जाता है वह पांचवें को नहीं पा पाता है। यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
और इस व्योम में ही विश्व के सारे देवताओं का निवास है।
देवता शब्द भी समझने जैसा है, नहीं तो भ्रांति हो जाएगी। क्योंकि तुमने देवता शब्द सुना कि तुमने समझा श्री गणेशाय नमः! कि गणेश जी, कि हनुमान जी, कि इंद्र महाराज, कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश। इन सबसे देवता का कोई संबंध नहीं है।
देवता शब्द बड़ा वैज्ञानिक शब्द है। देवता बनता है दिव से। दिव का अर्थ होता है: प्रकाश। उसी से दिवस बना है, दिन। उसी से अंग्रेजी का डे बना है--दिव से। उसी से अंग्रेजी का डिवाइन बना है। उसी से हिंदी का दिव्य बना है। और तुम चकित होओगे जान कर, उसी से अंग्रेजी का डेविल बना है। दिव्य भी उसी से और अदिव्य भी उसी से। क्योंकि वही है, और कोई भी नहीं है। उठो तो उसमें, गिरो तो उसमें। जागो तो उसमें, सोओ तो उसमें। डेविल का अर्थ होता है जो सोया है; जो गिर गया है; जो सिर के बल खड़ा है। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है? है तो उसकी ऊर्जा भी दिव्य।
यूं समझोगे तो तुम्हें यह बात समझ में आ जाएगी कि क्यों चांद को देवता कहा गया है, क्यों सूरज को देवता कहा गया है। इसीलिए कि वे प्रकाश के स्रोत

हैं। प्रकाश के कारण ही उन्हें देवता कहा गया है। इसीलिए अग्नि को देवता कहा गया है।
लेकिन लोग तो नासमझ हैं। वे अग्नि की पूजा करने लगे। वे सूर्य-नमस्कार करने लगे। उन्होंने समझा कि सूर्य देवता है। जैन मुनि बहुत नाराज थे जब पहली दफे अमरीकी यात्री चांद पर उतरे। जैन मुनियों ने तो एक भारी संगठन खड़ा किया कि ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि देवता के ऊपर और मनुष्य के चरण पड़ें! आदमी और देवता पर चले, यह बात शोभा देती है? क्योंकि हमने देवता का अर्थ ही गलत समझ लिया है।
यूं तो पृथ्वी भी देवता है। जिन्होंने चांद पर खड़े होकर पृथ्वी को देखा वे चकित हुए, क्योंकि देखा कि पृथ्वी भी इतनी ही ज्योतिर्मय है, जैसा चांद। चांद से पृथ्वी ज्योतिर्मय मालूम होती है, चांद मिट्टी रह जाता है। दूर के ढोल सुहावने! जमीन से चांद लगता है प्रकाशित, चांद से पृथ्वी लगती है प्रकाशित। क्योंकि प्रकाशित लगने का कारण सूर्य की किरणों का वापिस लौटना है। सूर्य की किरणें चांद पर पड़ कर वापिस लौटती हैं, वापिस लौटती किरणें जब तुम्हारी आंखों को मिलती हैं तो लगता है कि चांद प्रकाशित है। चांद पर खड़े होकर देखोगे तो पृथ्वी से सूरज की किरणें वापिस लौट रही हैं। वे तुम्हारी आंखों से मिलती हैं तो लगता है पृथ्वी प्रकाशित है।
जैसे कि कोई टार्च को दर्पण के ऊपर मारे तो दर्पण से ज्योति निकलनी शुरू हो जाए; दर्पण प्रतिफलित कर देगा प्रकाश को और तुम्हें लगेगा कि शायद दर्पण से ज्योति आ रही है। ठीक ऐसा ही चांद है, ऐसी ही पृथ्वी है, ऐसा ही मंगल है। ये कोई व्यक्ति नहीं हैं। लेकिन देवता शब्द से व्यक्ति की भ्रांति पैदा होती है। सिर्फ अर्थ है: इस जगत में जो भी प्रकाशित है, इस जगत में जो भी प्रकाश है, आलोक है, वह सब इसी परम अविनाशी व्योम में, इसी भीतर के महाशून्य में, उसका स्रोत है।
"जिसमें सब देवता भलीभांति स्थित हैं उसी अविनाशी परम व्योम में सब वेदों का निवास है।"
और जहां से यह प्रकाश आ रहा है, जहां से तुम्हारी चेतना आ रही है-- क्योंकि चेतना से ज्यादा प्रकाशित इस जगत में और कुछ भी नहीं है, न चांद, न सूरज, न तारे; चेतना इस जगत में सबसे ज्योतिर्मय है, सर्वाधिक प्रकाशोज्ज्वल अनुभूति है--इस चेतना में ही सब वेदों का निवास है, अर्थात सारे ज्ञान का निवास है।
यही मैं तुमसे कह रहा हूं रोज कि खोदो अपने भीतर। कहीं और जाना नहीं है--न वेद में, न गीता में, न कुरान में, न बाइबिल में। खोदो अपने भीतर। लो ध्यान की कुदाली और खोदो अपने भीतर। जो अपने भीतर खोदता है उसी को मैं संन्यासी कहता हूं। जो बाहर की खुदाई में लगा है वह संसारी है। जो भीतर की खुदाई में लग गया है वह संन्यासी है। और जिसने भीतर खोदा है उसने सब वेद पा लिए, सब कुरान पा लिए, सब बाइबिलें पा लीं। उसके भीतर बुद्ध भी मिल गए, महावीर भी मिल गए, कृष्ण भी मिल गए, जरथुस्त्र भी, जीसस भी। उसके भीतर मोहम्मद भी बोले, फरीद भी बोले, नानक भी बोले, कबीर भी बोले, पलटू भी बोले। उसके भीतर सारे संतों का समागम हो गया। सारे देवता वहां विराजमान हैं।
सारे वेद वहां विराजमान हैं। क्योंकि बोध वहां विराजमान है।
"जो उसे नहीं जानता वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा?"
सूत्र बड़ा प्यारा है।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति।
और जिसने भीतर के वेद को नहीं पहचाना वह पागल बाहर के वेदों के अर्थ
कर रहा है! पंडित लगे हैं व्याख्याएं करने में। अपना पता नहीं है और शास्त्रों के अर्थ कर रहे हैं। अर्थ क्या करेंगे, अनर्थ कर रहे हैं! अर्थ कर ही नहीं सकते। उनसे अर्थ हो ही नहीं सकता, केवल अनर्थ ही हो सकता है। मगर मजे से करते चले जाते हैं।
चैतन्य कीर्ति ने पूछा है कि एक जैन मुनि श्री मधुकर ने आपके खिलाफ एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने लिखा है कि संभोग से समाधि असंभव है।
जहां तक मुझे याद पड़ता है, मधुकर मुनि मुझे मिले हैं। राजस्थान में ब्यावर में तीन दिन तक मुझे रोज मिले हैं। और एक ही उनकी जिज्ञासा थी कि ध्यान कैसे लगे।

ध्यान का पता नहीं है और संभोग और समाधि की व्याख्या में लगे हैं! दोनों शब्द एक ही बीज से निकले हैं: सम। संभोग भी और समाधि भी। जहां समता है, जहां सब सम्यक हो गया, वहीं संभोग है। क्षण भर को होगा, लेकिन उस क्षण भर को सब ठहर गया, सब सम हो गया, कुछ विषम न रहा। कोई विचार न रहा, कोई चिंता न रही, कोई मैंत्तू का भाव न रहा, ऐसी ही घड़ी को तो संभोग कहते हैं। वह एक क्षण को ठहरेगी, फिर खो जाएगी। समाधि ऐसा संभोग है जो आया तो आया, फिर जाता नहीं है। अगर संभोग बूंद है तो समाधि सागर है। मगर दोनों सम से ही बने हैं, खयाल रहे। संभोग शब्द को गाली मत देना। उसे गाली दी तो तुम सम शब्द को गाली दे रहे हो।
लेकिन उन्हें ध्यान का तो कुछ पता नहीं, न समाधि का कुछ पता है। लेकिन पंडित हैं तो उन्होंने व्याख्या कर दी समाधि की: सम + आधि। और संभोग रहेगा तब तो आधि रहेगी, आधि से व्याधि पैदा होगी, व्याधि से उपाधि पैदा होगी। चले! अब शब्द में से शब्द निकलते जाएंगे। समाधि का कोई अनुभव नहीं है। समाधि की कोई झलक नहीं है। लेकिन समाधि शब्द की व्याख्या शुरू हो गई। और फिर व्याख्या में अनर्थ तो होने वाला है।
समाधि की क्या व्याख्या की! कि जो आधियों के बीच अपने मन को संतुलित रखता है। सुख आए कि दुख आए--आधियां आती हैं--सफलता मिले कि असफलता मिले, जो दोनों के बीच अपने मन को सम रखता है वह समाधिस्थ।
मन को सम रखता है! मन कभी सम होता ही नहीं। मन है ही विषमता का नाम। जब
तक यह दिखाई पड़ रहा है कि यह सफलता है और यह असफलता, क्या खाक मन को सम रखोगे? जिस दिन मन नहीं रहता उस दिन समता आती है। मन का अभाव है समता। मन कभी सम नहीं होता। मन का तो स्वरूप विषम है। मन तो डांवाडोल ही रहेगा, नहीं तो मन ही न रहेगा।
लेकिन भाषा में हम इस तरह के उपयोग करते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक होटल खोली और पहला ही आदमी भीतर आया--चंदूलाल मारवाड़ी। मुल्ला ने तो सिर पीट लिया कि यह कहां सुबह-सुबह मारवाड़ी दिखाई पड़ गया! और पहले ही दिन होटल खोली है, हो गया बंटाढार! लेकिन अब क्या कर सकता था? कहा कि विराजिए; क्या सेवा करूं?
चंदूलाल बोले कि बड़ी गर्मी है, बड़ी धूप पड़ रही है, एक पानी का गिलास। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, पानी का गिलास असंभव। पानी का गिलास यहां
है ही नहीं। गिलास में पानी दे सकता हूं, लेकिन पानी का गिलास कहीं और खोजो। रास्ता पकड़ो।
भाषा में चल जाता है--पानी का गिलास। मगर मुल्ला नसरुद्दीन भी मुल्ला है, मौलवी है। अरे किसी मुनि से पीछे थोड़े ही है! किसी मधुकर मुनि से पीछे थोड़े ही है! आधि से व्याधि, व्याधि से उपाधि--चले! उसने वहीं तरकीब निकाल ली। मारवाड़ी को वहीं ठंडा कर दिया कि जा भाग, कहां पानी का गिलास मांग रहा है! पानी का कहीं गिलास होता है?
तूफान आता है, सागर में लहरें ही लहरें उठ आती हैं; उत्तुंग लहरें, जैसे आकाश को छू लेंगी। नावें डांवाडोल होती हैं, डूबती हैं, जहाज टकराते हैं। फिर तूफान चला गया। तुम कहते हो, तूफान शांत हो गया। लेकिन यह सिर्फ उसी तरह का शाब्दिक उपयोग है, जैसे पानी का गिलास। तूफान शांत हो गया या नहीं हो गया? तूफान शांत होने का अर्थ तो यह हुआ कि तूफान है तो, मगर अभी शांत है। अगर शब्द को ही पकड़ो--और पंडित के पास कुछ और तो पकड़ने को होता नहीं, सिर्फ शब्द ही पकड़ने को होते हैं। तूफान शांत है, इसका अर्थ है कि तूफान तो है मगर शांत है। अब कब अशांत हो जाएगा, क्या पता! जंजीरें डाल दी हैं, शांत बैठा है। है तो। लेकिन जब तुम कहते हो तूफान शांत हो गया तो असल में तुम्हारा मतलब यह है कि तूफान नहीं हो गया, अब तूफान नहीं है।
मन शांत नहीं होता। मन को शांत कहने का कोई अर्थ नहीं है। मन को शांत कहने का अर्थ है: अमनी दशा। नानक ने कहा: अमनी दशा। मन नहीं रहा। वही शांत है मन का होना। जहां मन नहीं है वहां समाधि है।
मगर मधुकर मुनि व्याख्या कर रहे हैं: सफलता में असफलता में, सुख में दुख में, हार में जीत में--समभाव रखना। मगर अभी हार और जीत दिखाई तो पड़ती है न! जब दिखाई पड़ती है तो समभाव कैसे रहेगा? हार हार है, जीत जीत है। मिट्टी पड़ी है, सोना पड़ा है, दोनों के बीच समभाव से बैठे हैं मधुकर मुनि कि समभाव

रखना है। सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है, अपने को क्या लेना-देना? मगर जब तक सोना सोना दिखाई पड़ रहा है और मिट्टी मिट्टी दिखाई पड़ रही है, तब तक तुम लाख अपने को समझा कर बिठाए रखो, यह जबरदस्ती थोपा गया संयम तो हो सकता है, लेकिन समाधि नहीं। समाधि तो बड़ी और बात है।
कबीर का बेटा था: कमाल। कबीर ने उसे नाम ही कमाल दिया--इसीलिए कि कबीर
से भी एक कदम आगे छलांग ली उसने। कबीर का ही बेटा था, आगे जाना ही चाहिए। वह बेटा ही क्या जो बाप को पीछे न छोड़े! हर बाप की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि मेरा बेटा मुझे पीछे छोड़ दे। हर गुरु की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि मेरा शिष्य मुझे पीछे छोड़ दे। यही उसकी सफलता है। यही उसका सौभाग्य है।
कबीर के पास लोग धन ले आते चढ़ाने, सोना ले आते। कबीर कहते, नहीं भाई, यह
सब तो मिट्टी है। इस मिट्टी को क्या करेंगे, ले जाओ! कमाल कबीर के झोपड़े के बाहर ही बैठा रहता। वह कहता, भैया, मिट्टी लाए और मिट्टी फिर ले जा रहे! अरे रख जाओ, मिट्टी ही है! जब मिट्टी ही है तो कहां ले जा रहे हो? एक तो लाने की भूल की, अब कम से कम दूसरी भूल तो न करो। रख दे, रख दे!
कबीर को लोगों ने शिकायत की कि आप ऐसे महात्यागी और यह लड़का तो शैतान है! आप तो भीतर से कह देते हो लोगों को कि यह मिट्टी है, ले जा भाई, हम क्या करेंगे, हम तो फकीर आदमी हैं; और यह लोगों से कहता है कि अरे मिट्टी है, कहां ले जा रहे हो? एक तो यहां तक ढोई, यह कष्ट सहा; अभी भी अज्ञान में ही पड़े हो? अरे छोड़ दे, रख दे! यहीं रख दे! रखवा लेता है।
कबीर ने कहा, यह बात तो ठीक नहीं। कमाल को कहा कि यह बात ठीक नहीं। कमाल ने कहा, आप ही कहते हो कि मिट्टी है, तो फिर बात ठीक क्यों नहीं? बेचारों ने यहां तक ढोया, अब उनको फिर वापिस ढोने के लिए कह रहे हो! कुछ तो दया करो! अरे दया-ममता तो होनी ही चाहिए फकीर में, संन्यासी में!
कबीर ने कहा कि मेरीत्तेरी न बनेगी, तू अलग ही एक झोपड़ा बना ले। तो उसने अलग ही झोपड़ा बना लिया। काशी-नरेश कबीर के पास आते थे। उन्होंने पूछा, बहुत दिन से कमाल नहीं दिखाई पड़ता, वह तो बाहर ही बैठा रहता था। कबीर ने कहा, उसे अलग कर दिया, क्योंकि वह लोगों से धन-पैसा ले लेता था। काशी-नरेश ने कहा कि देखें, परीक्षा करें। वे गए एक बड़ा बहुमूल्य हीरा लेकर। कमाल बैठा था अपने झोपड़े में। उन्होंने हीरा चढ़ाया। कमाल ने कहा, अरे, क्या पत्थर लाए! न खा सकते, न पी सकते, क्या पत्थर लाए! कुछ लाते काम की चीज।
काशी-नरेश ने सोचा कि यह तो बात बड़ी गजब की कह रहा है और इसको कबीर ने अलग कर दिया! सो उठा कर वह अपने हीरे को वापिस जेब में रखने लगे। अरे--कमाल ने कहा--अब छोड़ रे! अरे मूर्ख! यहां तक ढोया पत्थर को, अब कहां ले जा रहा है? रख!
तब काशी-नरेश ने समझा कि यह तो आदमी होशियार है! यह तो बड़ा...अब इससे कुछ कह भी नहीं सकते, क्योंकि इनकार ही अगर करना था कि पत्थर नहीं है तो पहले ही करना था। पहले तो हां भर ली कि हां भई है तो पत्थर ही, अब कैसे इनकार करें? किस मुंह से इनकार करें? इसने तो खूब फंसाया।
तो काशी-नरेश ने पूछा, कहां रख दूं?
कमाल ने कहा, वही गलती, वही गलती, गलती पर गलती। अरे पत्थर को कोई पूछता है कहां रख दूं? अभी भी तुम हीरा ही मान रहे हो? अरे कहीं भी रख दो, जहां रखना हो। या पड़ा रहने दो जहां पड़ा है। रखना क्या?
मगर काशी-नरेश भी तय ही करके आया था कि परीक्षा पूरी कर लेनी उचित है।
तो उसने--बहुमूल्य हीरा था, मुश्किल था उसको पड़ा रहने देना--छप्पर में खोंस दिया। पंद्रह दिन बाद लौटा। सोचा उसने कि मैं इधर बाहर निकला कि इसने हीरा निकाला।
पंद्रह दिन बाद वापिस लौटा, इधर-उधर की बात की, आया तो पता लगाने था हीरे का। पूछा कि मैं पंद्रह दिन पहले हीरा लाया था, क्या हुआ? हीरे का क्या हुआ?
कमाल ने कहा, गजब करते हो! कैसा हीरा? कब लाए थे? मैंने तो नहीं देखा। काशी-नरेश ने कहा, अरे हद! मेरे सामने ही झूठ बोल रहे हो! मेरा वजीर भी मौजूद था, मैं उसको साथ लेकर आया हूं गवाह। तो कबीर ठीक ही कहते हैं कि यह आदमी गड़बड़ है।

कमाल ने कहा, अरे तुम उस पत्थर की बात तो नहीं कर रहे जो एक दिन लाए थे पंद्रह-बीस दिन पहले? उसी पत्थर को हीरा कह रहे हो, अभी भी हीरा कह रहे हो? यह तो तय हो गया था, यह तो निर्णय हो चुका था पत्थर है।
काशी-नरेश ने कहा, हां निर्णय हो गया था, मैं उसको खोंस गया था झोपड़े में। तूने निकाला होगा।
कमाल ने कहा, मुझे क्या पड़ी निकालने की? तुम देख लो। अगर कोई और निकाल
कर ले गया हो तो मैं कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि मैं कोई पहरेदार नहीं हूं यहां तुम्हारे पत्थरों का। और अगर किसी ने न निकाला हो तो होगा झोपड़े में। नरेश चकित हुआ देख कर हीरा वहीं के वहीं छप्पर में खुंसा हुआ था। पैरों पर गिर पड़ा कमाल के और कहा, मुझे क्षमा कर दो।
पर, उसने कहा, इसमें क्षमा करने की बात ही क्या है? तुम गलती ही गलती किए चले जा रहे हो। अरे पत्थर है, उसको मैंने नहीं निकाला, तो इसमें खूबी की क्या बात है? पत्थर तो बाहर बहुत पड़े हैं। कोई पत्थर बीनने के लिए यहां बैठा हूं। यहां पैरों पर किसलिए पड़ रहे हो? अगर तुम उसे हीरा ही मानते हो तो भैया ले जाओ और दुबारा इस तरह की चीजें यहां मत लाना।
हिम्मत तो नहीं पड़ी ले जाने की काशी-नरेश की। लेकिन यह कमाल कबीर से
भी गहरी बात कह रहा है। अगर तुम्हें दिखाई पड़ने लगा कि सोना मिट्टी है तो फिर मिट्टी और सोने में फर्क कहां रह जाएगा? फिर समता का सवाल कहां है? अगर सफलता और असफलता सच में ही समान हो गए तो किसको सफलता कहोगे, किसको असफलता कहोगे? किसको प्रशंसा, किसको अपमान?
ये मधुकर मुनि सिर्फ लफ्फाजी कर रहे हैं। न इन्हें संभोग शब्द का अर्थ पता है, क्योंकि अनुभव नहीं, समता का कोई अनुभव ही नहीं। एक क्षण नहीं जाना समता का। मेरे सामने गिड़गिड़ाते थे, पूछते थे कि ध्यान कैसे लगे? और उस लेख में उन्होंने ध्यान समझाया है--चित्त की एकाग्रता ध्यान है। और धारणा ध्यान बन जाती है जब मजबूत होती है। और जब ध्यान मजबूत होता है तो समाधि बन जाती है।
मजबूत! जैसे धारणा डंड-बैठक लगाए तो ध्यान बने, फिर ध्यान अखाड़ाबाजी करे तो समाधि बने! मजबूत! कौन करेगा धारणा? धारणा तो मन में होती है। अगर धारणा मजबूत होगी तो मन मजबूत होगा, ध्यान मजबूत नहीं होगा। और चित्त की एकाग्रता से तो चित्त ही मजबूत होगा, इससे समाधि कैसे आ जाएगी? मगर यही चलता है।
यह सूत्र ठीक कहता है कि जो उसे नहीं जानता, जो स्वयं के भीतर के वेद
को नहीं पढ़ा है अभी, वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा? मगर वे ही लोग व्याख्याएं कर रहे हैं, टीकाएं कर रहे हैं, बड़ी विस्तीर्ण व्याख्याएं लिखते हैं। ब्रह्म का कोई अनुभव नहीं है और ब्रह्म-सूत्र पर भाष्य लिखते हैं। योग की कोई झलक भी नहीं मिली। योग मतलब जोड़। परमात्मा से मिलने की कोई प्रतीति ही नहीं हुई और पतंजलि के योग-सूत्र पर लिखे चले जाते हैं। अभी भगवान ने कोई गीत भीतर गाया नहीं, अभी भगवतगीता जन्मी नहीं। हां, मगर वह जो बाहर की गीता है उस पर कितनी टीकाएं हैं! एक हजार तो प्रसिद्ध टीकाएं हैं और अनेक हजार अप्रसिद्ध टीकाएं होंगी।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति।
पहले भीतर के वेद को तो खोल लो। वह कोरी किताब तो पढ़ लो। उसे पढ़ते ही
सब समझ में आ जाता है। क्यों? क्यों सब समझ में आ जाता है? इसलिए कि--
य इत् दद् विदुस्त इमे समासते।
क्योंकि जो भीतर को जानता है वह भीतर के साथ एक हो जाता है। जो उसे जानता है, जो चैतन्य को जानता है, वह चैतन्य की परिपूर्णता को उपलब्ध हो जाता है, वह चैतन्य के साथ तदाकार हो जाता है। बूंद सागर को जानने जाएगी, सागर में उतरेगी कि सागर हो जाएगी। और जानने का एकमात्र यही उपाय है--वही हो जाओ। बाकी सब जानना बाहर-बाहर से है।
यही विज्ञान और धर्म का भेद है। विज्ञान यूं है जैसे फूल के चारों तरफ चक्कर लगाओ, लगाए जाओ चक्कर। इधर से जानो, उधर से जानो। इस कोने से देखो, उस कोने से देखो। इधर से परखो, उधर से परखो। बाहर-बाहर। और धर्म है: फूल में प्रवेश कर जाओ।

चीन की एक बहुत पुरानी झेन कथा है। एक सम्राट ने, जिसे हिमालय से बहुत प्रेम था, एक झेन फकीर को कहा, जो उस समय का सर्वाधिक बड़ा कलाविद था, चित्रकार था--कि क्या तुम मेरे लिए हिमालय की छबि उतार दोगे? मेरे सोने के कमरे में, पूरी दीवार पर हिमालय की वे उत्तुंग आकाश को छूते हुए शिखर! वे हिमाच्छादित शिखर! वे कुंवारे हिमाच्छादित शिखर, जिन पर कोई कभी चला नहीं! उनकी तुम छबि बना दो।
उस चित्रकार ने कहा, बनाऊंगा। लेकिन समय बहुत लगेगा। और जब तक पूरी बात न हो जाए, पूरा चित्र न बन जाए, भीतर किसी को आने की आज्ञा न होगी। सम्राट राजी हुआ। तीन वर्ष लगे। प्रतीक्षा बढ़ती गई, उत्सुकता बढ़ती गई
कि तीन वर्ष झेन फकीर क्या कर रहा है! तीन वर्ष बाद उसने एक दिन कहा कि बस आज आप आएं। दरवाजा खोला, सम्राट भीतर गया। उसके दरबारी भीतर गए, उसकी रानी भीतर गई।
अवाक खड़ा रह गया, आंख की पलकों ने झपकना बंद कर दिया। हिमालय देखा था, मगर इस फकीर ने तो गजब कर दिया था। ऐसा सजीव हो उठा था हिमालय दीवार पर कि वह भूल ही गया कि यह चित्र है! वह पूछने लगा, यह कौन-सा शिखर है? यह कौन-सा शिखर है? यह कौन-सी नदी बह रही है? और तभी उसने पूछा, यह पहाड़ के पास से एक पगडंडी जाती है, यह कहां जाती है?
उस फकीर ने कहा कि इस पगडंडी पर जाकर मैंने देखा नहीं। मैं जरा जाकर देखूं।
और कहते हैं कि वह फकीर उस पगडंडी पर जो गया सो गया, लौटा ही नहीं।
अब यह कहानी बड़ी बेबूझ हो गई। कहीं कोई चित्र की पगडंडी पर जा सकता है!
और जाए भी तो लौटे ही नहीं! थोड़ी दूर तक तो सम्राट को दिखाई पड़ता रहा, फिर पहाड़ की ओट में चली गई थी पगडंडी, पीछे की तरफ मुड़ गई थी, फिर उसका कोई पता न चला।
मगर यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। यह कहानी यही कह रही है कि धर्म के जानने का ढंग विज्ञान के जानने के ढंग से भिन्न है। विज्ञान बाहर से जानता है, चारों तरफ चक्कर मारता है। इसलिए विज्ञान में ज्ञान नहीं है, केवल परिचय है, पहचान है। धर्म ज्ञान है, वेद है, बोध है। व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता है। यूं प्रविष्ट हो जाता है कि लौटने की जगह ही नहीं बचती। अब बूंद सागर में उतरेगी तो फिर क्या लौटेगी? यही कह रही है यह कहानी।
ठीक कहता है सूत्र, "जो उसे जानता है वह उसी में भलीभांति मिल जाता है।"
और जब तक हम एकाकार न हो जाएं अस्तित्व से तब तक हमने जाना नहीं। बुद्ध ने इसी व्योम को शून्य कहा है। कबीर ने भी इसी व्योम को सुन्न गगन कहा है। निर्वाण कहो इसे। लेकिन बात एक ही है। इस तरह मिट जाना है कि खोजने से भी अपना पता न चले।
जिस दिन तुम इस भांति मिट जाओगे कि अपना कोई पता न चलेगा, उसी दिन पता चलेगा कि परमात्मा क्या है। और उसी दिन पता चलेगा जीवन का अर्थ, जीवन का गीत, जीवन का नृत्य, जीवन का उत्सव!
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् दद् विदुस्त इमे समासते।।

मेरा स्वर्णिम भारत-6

जीवंत धर्म
(Note: from Jo Bole To Harikatha (जो बोलैं तो हरिकथा) #2)

पहला प्रश्न: भगवान, मनुस्मृति में यह श्लोक है:
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत।।
(मारा हुआ धर्म मार डालता है; रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। इसलिए धर्म को न मारना चाहिए, जिससे मारा हुआ धर्म हमको न मार सके।)

सहजानंद!
यह श्लोक प्रीतिकर है। ऐसे तो मनुस्मृति बहुत कुछ कचरे से भरी है, लेकिन खोजो तो राख में भी कभी-कभी कोई अंगारा मिल जाता है। कचरे में भी कभी-कभी कोई हीरा हाथ लग जाता है।
मनुस्मृति निन्यानबे प्रतिशत तो कभी की व्यर्थ हो चुकी है। भारत की छाती से उसका बोझ उतर जाए, तो अच्छा। उसमें ही जड़ें हैं भारत के बहुत से रोगों की। भारत की वर्ण-व्यवस्था; अछूतों के साथ अनाचार; स्त्रियों का अपमान, जिसकी अंतिम परिणति स्वभावतः बलात्कार में होती है; ब्राह्मणों की उच्चता का गुणगान--जिसका परिणाम पांडित्य के बढ़ने में तो होता है, लेकिन बुद्धत्व के विकसित होने में नहीं।
लेकिन फिर भी कभी-कभी कोई सूत्र हाथ लग जा सकता है, जो अपूर्व हो। यह
उन थोड़े से सूत्रों में से एक है। इस सूत्र को ठीक से समझो, तो मैंने जो अभी कहा कि निन्यानबे प्रतिशत मनुस्मृति कचरा है, वह भी समझ में आ जाएगी बात-- इस सूत्र को समझने से।
यह सूत्र निश्चित ही मनु का नहीं हो सकता; मनु से प्राचीन होगा। क्योंकि मनु ने जो भी कहा है, वह इसके बिलकुल विपरीत है। मनु के सारे वक्तव्य धर्म की हत्या करने वाले वक्तव्य हैं। मनु जैसे व्यक्तियों ने ही तो धर्म की हत्या की है।
यह सूत्र किसी बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति से आया होगा। लेकिन पुराने समय में एक ही ग्रंथ में सब कुछ समाहित कर लिया जाता था। जैसे अभी भी विश्वकोश निर्मित करते हैं--इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका--तो सभी कुछ, जो भी खोजा गया है, जो भी आज की समझ है, उसका संकलन कर लेते हैं। ऐसे ही पुराने शास्त्र संकलित थे। इसलिए उन्हें संहिताएं कहा जाता है।
वेद को हम संहिता कहते हैं। संहिता का अर्थ होता है--संकलन। वेद में किसी एक व्यक्ति के वचन नहीं हैं। अनेक-अनेक ऋषियों के वचन हैं। और उनके साथ-साथ बहुत से अंधों के वचन भी हैं! इसलिए वेद को पढ़ते समय बहुत होश चाहिए। क्योंकि अंधे हमेशा आंख वालों से ज्यादा होते हैं। हीरे तो मुश्किल से ही मिलते हैं। कंकड़-पत्थर तो गली-कूचे, जगह-जगह मिल जाते हैं। उनकी कोई खदानें थोड़े ही खोजनी पड़ती हैं।
मनुस्मृति का अर्थ भी यही होता है कि जो-जो मनु उस समय स्मरण कर सके, जो-जो चारों तरफ व्याप्त था, जो-जो हवा में रोशनी छूट गई थी, सदियों पुरानी हो सकती है; मनु उसके लेखक नहीं हैं, केवल स्मृतिकार हैं। मनु उसके रचयिता नहीं हैं, सिर्फ संग्राहक हैं। उन्होंने उस सब को स्मृति में बांध दिया है, जो बिखरा पड़ा था।
यह सूत्र मनु का नहीं हो सकता। और अगर यह सूत्र मनु का है, तो फिर पूरी मनुस्मृति मनु की नहीं हो सकती । यह मैं इसलिए कहता हूं--आंतरिक साक्षी के आधार पर। यूं तो मनुस्मृति में यह सूत्र है, इसलिए शोधकर्ता मेरे विरोध में हो सकते हैं। लेकिन मेरे देखने-सोचने-समझने के ढंग और हैं। शोधकर्ता के वे ढंग नहीं हैं।
अंतःसाक्षी का अर्थ होता है: यह वक्तव्य इतना विपरीत है बाकी सारे वक्तव्यों से कि या तो यह ठीक होगा या फिर बाकी सब ठीक हो सकते हैं। इस एक को हटा लो, तो मनुस्मृति में से सार की बात ही निकल जाती है।

और इस सूत्र को समझना जरूरी है। फिर किसी का हो। किसने कहा, यह बात मूल्यवान नहीं है; मगर जो कहा है, अपूर्व है, अद्वितीय है। शायद भूल-चूक से मनु से ही निकल गया हो! कभी-कभी तो विक्षिप्त भी पते की बातें कह जाते हैं! कभी-कभी पागल भी बड़े दूर की खोज लाते हैं। कहावत है: अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी!
कभी-कभी टटोलते-टटोलते भी अंधे को भी दरवाजा हाथ लग जाता है। अपवाद है वह, नियम नहीं।
यह भी हो सकता है कि मनु ने ही यह सूत्र कहा हो। लेकिन मनु ने किसी ऐसी अवस्था में कहा होगा, जो साधारण मनु से बिलकुल भिन्न है। कोई झरोखा खुल गया होगा; किसी मस्ती में होंगे। कोई क्षण ध्यान का उतर आया होगा। मगर मनु की प्रकृति के अनुकूल नहीं है यह।
मनु की गिनती बुद्धों में नहीं है। वे भारतीय नीति-नियम के सर्जक हैं। उन्होंने भारत को नैतिक व्यवस्था दी। और नैतिक व्यवस्था अकसर ही राजनीति का अंग होती है। राजनीति में भी जो नीति शब्द है, वह ध्यान रखने योग्य है। व्यक्ति की नीति होती है, तो उसको हम नैतिकता कहते हैं। और राज्य की नीति होती है, तो उसको राजनीति कहते हैं। दोनों में तालमेल है। लेकिन दोनों ऊपर-ऊपर होती हैं, सतही होती हैं। धर्म होता है आंतरिक--भीतर का दीया जले तो। फिर उसके अनुसार जो जीवन में क्रांति होती है, वह क्रांति किन्हीं नियमों के आधार पर नहीं होती, किसी शास्त्र के अनुसार नहीं होती। इसलिए उस क्रांति की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। कोई नहीं कह सकता कि उस क्रांति का अंतिम निखार क्या होगा। एक बात सुनिश्चित जरूर कही जा सकती है कि वह क्रांति कभी भी पुनरुक्ति नहीं करती। बुद्ध जैसा व्यक्ति फिर दुबारा उस क्रांति से पैदा नहीं होता। न महावीर जैसा, न कृष्ण जैसा, न कबीर जैसा, न मोहम्मद जैसा। उस क्रांति से हमेशा मौलिक प्रतिभा का जन्म होता है। पुनरुक्ति नहीं होती। इतनी बात भर कही जा सकती है।
नीति हमेशा पुनरुक्ति करती है। नीति तो यूं है, जैसे कार्बन कापी करते हैं हम। किसी के पीछे चलो। किसी की मान कर चलो। अपने ऊपर जैसे वस्त्र ओढ़ते हो, ऐसे ही शास्त्रों को ओढ़ लो, तो तुम नैतिक हो जाओगे, लेकिन धार्मिक नहीं।
नीति ऐसे है, जैसे अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में बातें करने लगे। बातें करने में क्या अड़चन है! प्रकाश के संबंध में अंधा आदमी सारी जानकारी इकट्ठी कर सकता है। लेकिन फिर भी उसने प्रकाश देखा नहीं है। और जिसने देखा नहीं, उसकी कितनी ही बड़ी जानकारी हो, हिमालय के पहाड़ जैसा ढेर हो जानकारी का, तो भी दो कौड़ी उसका मूल्य है। और जिसने प्रकाश देखा है, शायद प्रकाश के संबंध में और कुछ भी न जानता हो, तो भी क्या बात है। प्रकाश देख लिया, तो सब जान लिया। न समझे प्रकाश का भौतिकशास्त्र, न समझे प्रकाश का रसायनशास्त्र, न समझे प्रकाश का गणित, पर करना क्या है! फूल देख लिए, रंग देख लिए, इंद्रधनुष देख लिए, तितलियों के पंख देख लिए, हरियाली देख ली, लोगों के चेहरे देख लिए, चांदत्तारे देख लिए, सूर्योदय-सूर्यास्त देख लिए, रोशनी के अनंत-अनंत खेल और लीलाएं देख लीं--अब क्या करना है, कि न समझे प्रकाश का विज्ञान!
लेकिन कुछ मूढ़ प्रेम को समझते रहते हैं, प्रेम नहीं करते! प्रकाश को समझते रहते हैं, आंख नहीं खोलते! उधार, बासी बातों को गुनते रहते हैं, कभी अपने जीवन की किरण को जगाते नहीं। कभी अपने सोए हुए प्राणों को पुकारते नहीं।
यह सूत्र जिससे भी आया हो, आंख वाले से आया होगा। और मनु सबूत नहीं देते--आंख वाले का। आंख वाला आदमी, आदमी आदमी को ब्राह्मण और शूद्र में नहीं बांट सकता। आंख वाले आदमी के लिए सारे विभाजन गिर जाते हैं। न कोई काला रह जाता, न कोई गोरा। न कोई ब्राह्मण, न कोई शूद्र। न कोई स्त्री, न कोई पुरुष।
यूं हुआ कि कुछ शराबी युवक धनाडय थे, एक सुंदर वेश्या को लेकर और खूब शराब लेकर जंगल गए। पूर्णिमा की रात थी; मजा करेंगे। खूब डट कर उन्होंने शराब पी और नशे में ऐसे धुत हो गए कि वेश्या के सारे कपड़े छीन कर उसे नग्न कर दिया। वेश्या तो घबड़ा गई, उनका नशा देखकर, कि इन्होंने कपड़े ही छीने,

यही बहुत है। ये चमड़ी तक नोच ले सकते हैं। उनको नशे में धुत्त देखकर वह भाग खड़ी हुई। कपड़े तो उसके पास थे नहीं, तो नंगी ही भाग गई वह। उसने सोचा: जान बची और लाखों पाए। अब किसी तरह पहुंच ही जाऊंगी घर, रात का वक्त है, नंगी भी पहुंचती तो किसको पता चलेगा!
सुबह-सुबह भोर होने के करीब होती होगी, जब ठंडी हवाएं चलीं, उन युवकों
को थोड़ा होश आया। वे रात भर उन कपड़ों को ही छाती से लगाए रहे थे! होश आया, तो पता चला: वेश्या तो नदारद है। किसी के हाथ में साड़ी, किसी के हाथ में चोली है, किसी के हाथ में कुछ है। वेश्या तो नदारद है; वेश्या तो किसी के हाथ में नहीं है! वे उसकी तलाश में निकले।
जिस रास्ते से वे आए थे, वह एक ही रास्ता था, उसी रास्ते पर उन्हें याद आया कि जब वे आए थे, तो उन्होंने एक संन्यासी को वृक्ष के नीचे बैठा देखा था। शायद वह अब भी बैठा हो! अगर वह बैठा हो, तो वह पता दे सकता है, क्योंकि इसी रास्ते से भागी होगी। और तो कोई रास्ता नहीं है।
वह संन्यासी कोई साधारण संन्यासी न था; स्वयं गौतम बुद्ध थे। वे बैठे
थे अब भी। डोल रहे थे अपनी मस्ती में। सुबह की ताजी हवाएं उठने लगी थीं; फूलों की सुगंध बिखरने लगी थी; पक्षियों के गीत गूंजने लगे थे। सारा वन-प्रांत सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहा था। अभिनंदन कर रहा था। बंदनवार सजाए बैठा था।
उन्होंने जाकर उनको हिलाया। बुद्ध ने आंखें खोलीं। उन्होंने पूछा कि आपने जरूर यहां से एक नग्न स्त्री को भागते देखा होगा। बहुत सुंदर है; युवा है। ऐसा नाक-नक्श है, जैसे अप्सरा हो। क्या उर्वशी होगी! क्या मेनका होगी! सोने जैसी देह है उसकी। नागिन जैसे उसके बाल हैं। मछलियों जैसी उसकी आंखें हैं! कवियों ने जिसका वर्णन किया है, सब उसमें मौजूद है। और नग्न भागी है, जरूर आपने देखा होगा।
बुद्ध ने कहा, तुम अगर मुझे पहले ही कह गए होते, क्योंकि तुम जब गए थे,
तब मैंने भीड़-भाड़ देखी थी; शोरगुल सुना था कि तुम जा रहे हो। तुम अगर तभी मुझे कह गए होते, कि जरा ध्यान रखना, खयाल रखना, तो मैं खयाल रखता। कोई निकला जरूर था, कोई गुजरा जरूर था, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि वह स्त्री थी या पुरुष! और यूं भी नहीं कि मैंने न देखा हो। मगर जब से मेरे भीतर की वासना गिर गई, तब से मेरे भीतर यह फासला भी नहीं उठता कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष। तुम मुझे क्षमा करो। तुमने कहा होता, तो मैं खयाल करता; ध्यानपूर्वक देखता। और अब तुम मुझसे यह भी मत पूछो कि वह सुंदर थी या असुंदर। जब से वासना गई, तब से कौन सुंदर है--कौन असुंदर है! वह तो हमारे ही भीतर की भूख होती है, जो सौंदर्य-असौंदर्य के मापदंड बनाती है; स्त्री- पुरुष के मापदंड बनाती है। कोई निकला जरूर था। किस दिशा में गया, यह भी मत पूछो, क्योंकि मैं अपने में डूबा बैठा हूं, मैं किस-किस की फिक्र करूं कि कौन किस दिशा में जा रहा है! मैं भीतर की दिशा में जा रहा हूं। और सब दिशाएं बाहर हैं। मैंने बाहर की दिशाएं छोड़ दीं, तो अब बाहर की दिशाओं में जाने वाले लोग...। यूं कान में भनक मेरे पड़ी थी कि कोई गुजरा है, जरूर गुजरा है। मगर यूं तो यहां से हिरण भी गुजरते हैं, हाथी भी गुजरते हैं; कभी सिंह भी गुजर जाता है। यह जंगल है। कोई गुजरा जरूर, मगर मैं तुम्हें ठीक-ठीक न कह सकूंगा--कौन गुजरा!
यह बुद्धत्व की दशा है, जहां स्त्री और पुरुष का भेद भी गिर जाता है। लेकिन मनु के लिए ये भेद गिरे नहीं। स्त्री नरक का द्वार है। यह पुरुष का दंभ!
स्त्रियों की जब चर्चा करते हैं मनु जैसे लोग, तो उसके भीतर की हड्डी, मांस-मज्जा, मवाद, खून, इत्यादि-इत्यादि की बातें करते हैं, जैसे खुद के शरीर में सोना-चांदी भरा हो!
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ये महात्मागण स्त्रियों के शरीर का वर्णन करने में जैसे बेहूदे, भद्दे, अभद्र शब्दों का उपयोग करते हैं, उस समय बिलकुल भूल ही जाते हैं कि खुद भी स्त्री से पैदा हुए हैं! उनकी देह भी उसी मांस-मज्जा से बनी है, स्त्री की ही मांस-मज्जा से बनी है। तुम्हारे पिता का दान तो ना-कुछ के बराबर है। वह तो काम एक इंजेक्शन कर सकता है, जो

तुम्हारे पिता ने किया! वह कोई खास काम नहीं है। और भविष्य में इंजेक्शन ही करेगा। जानवरों की दुनिया में तो इंजेक्शन करने ही लगा है।
लेकिन तुम्हारी देह की पूरी की पूरी जीवन ऊर्जा तो स्त्री से आती है, मां से आती है। तुम्हारी देह में वही सब है, जो स्त्री की देह में है। लेकिन स्त्री की देह को गाली देते वक्त, गंदगी का ढेर बताते वक्त पता नहीं महात्मा भूल ही जाते हैं कि उनकी भी देह उसी से बनी है; वैसी ही गंदगी से। फिर गंदगी क्या गंदगी का वर्णन कर रही है! फिर पुरुष की देह में ऐसी क्या खूबी है, ऐसा कौन-सा स्वर्ग है--जो स्त्री की देह नरक का द्वार है!
स्त्री की जैसी अवमानना मनु ने की है, और फिर बाबा तुलसीदास तक मनु के पीछे चलने वालों की जो कतार है, वह सब उन्हीं गालियों को दोहराती रही है। शूद्रों को तो पशुओं से भी गया-बीता माना है। गाय की हत्या करो, तो महापाप है। लेकिन शूद्र की हत्या में कोई पाप नहीं बताया! जैसे गाय से भी ज्यादा गर्हित, गिरा हुआ शूद्र है। यह मनु जैसे ही लोगों की बात मान कर तो राम ने एक शूद्र के कान में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया, क्योंकि उसने वेद के वचन सुन लिए थे! पशु-पक्षी सुनते रहते हैं, तो किसी को एतराज नहीं। कुत्ते- बिल्लियां सुनते रहें, चूहे-मच्छड़ सुनते रहें--किसी को एतराज नहीं। कितने चूहों ने नहीं सुना होगा वेद! सुना क्या--पचा गए! चूहों के हाथ जब भी वेद पड़ गया है, तो पचा ही गए उसको। कितने चूहों के कान में राम ने सीसा पिघलवा कर भरवा दिया! और ऋषि-मुनि जहां वेद का पाठ कर रहे हों, वहां तुम सोचते हो-- मच्छड़ भाग जाते हैं! वहीं गुन-गुन मचाते हैं।
महावीर ने तो अपने मुनियों के लिए कहा है कि कैसी जगह में बैठ कर ध्यान करना: ऊंची-नीची जगह न हो; कंकड़-पत्थर वाली न हो; मच्छड़ों इत्यादि से भरी हुई न हो--यह भी उसमें उल्लेख है! निश्चित ही महावीर को मच्छड़ों ने खूब सताया होगा। निश्चित सताया होगा। एक तो नंग-धड़ंग आदमी और फिर भारतीय मच्छड़! और ये क्या फिक्र करें कि कौन महावीर है और कौन कौन है! ऐसा शुभ अवसर ये छोड़ें! ऐसी मीठी देह; ऐसा सुस्वादु भोजन ये छोड़ें! अरे तीर्थंकर मिलता हो भोजन को, तो फिर ये साधारण मनुष्यों की फिक्र करें! महावीर को बहुत सताया होगा। सताया होगा, इसीलिए उल्लेख किया है अपने जैन मुनियों को कि जहां मच्छड़ इत्यादि हों, वहां ध्यान करने मत बैठना। नहीं तो वे ध्यान करने नहीं देंगे।
बुद्ध ने भी उल्लेख किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मच्छड़ ध्यानियों के सदा से दुश्मन रहे हैं! राक्षस वगैरह ध्यान में बाधा डालते हैं कि नहीं, यह तो कपोल-कल्पना मालूम पड़ती है, मगर मच्छड़--यह यथार्थ मालूम होता है।
मैं सारनाथ में मेहमान था। मच्छड़ मैंने बहुत देखे, लेकिन जैसे सारनाथ में हैं, वैसे कहीं नहीं हैं। हो भी क्यों न--वह पहला स्थल है जहां बुद्ध ने पहला प्रवचन दिया। उसकी महिमा ही और है। यूं तो जबलपुर जब मैं रहता था, तो जबलपुर में भी बड़े मच्छड़ हैं। तो मैं सोचता था कि जबलपुरी मच्छड़ का कोई मुकाबला नहीं। मगर जब सारनाथ गया, तब मुझे पता चला कि मच्छड़ हैं तो सारनाथ के!
भिक्षु जगदीश काश्यप के घर में मैं मेहमान था। रात हम दोनों ने किस तरह गुजारी--मत पूछो! वे तो अभ्यासी भी थे, क्योंकि वहीं रह रहे थे वर्षों से। मैंने उनसे पूछा कि इतने मच्छड़ों के बीच कैसे गुजार रहे हो? उन्होंने कहा, मत पूछिए। पूछिए ही मत यह बात! खुद भगवान बुद्ध एक ही बार आए; एक ही रात रुके हैं सारनाथ! फिर नहीं आए। हालांकि और सभी स्थानों पर वे कई बार गए। वैशाली, कहते हैं, चालीस बार गए। मगर सारनाथ, बस एक ही बार आए!
तो मैंने कहा, अब मैं भी समझा राज कि क्यों एक ही बार आए! मैं भी दुबारा आने वाला नहीं हूं! और दुबारा गया भी नहीं। उन्होंने बहुत निमंत्रण दिए; मैंने कहा, क्षमा करो। सारनाथ छोड़ कहीं और मिलना हो जाएगा। मगर सारनाथ नहीं आना है! दिन में भी मच्छड़दानी के भीतर बैठे रहो! बाहर निकले कि वे तैयार हैं! तो बुद्ध बेचारे कोई मच्छरदानी वगैरह लेकर चलते भी नहीं थे! उन दिनों शायद मच्छड़दानी थी भी नहीं। और होती भी, तो संन्यासी मच्छड़दानी लेकर चले, तो बदनाम हो जाए! मेरा जैसा कोई संन्यासी हो, उसकी बात और--जो

बदनामी से डरता ही नहीं! एक मच्छड़दानी नहीं, कई मच्छड़दानी लेकर चल सकता हूं; पूरी दुकान लेकर चल सकता हूं! कोई हर्जा नहीं।
लेकिन राम ने शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया। यह मनु के
ही इशारों पर सारा काम चला। इस देश में जो आज भी अत्याचार हो रहा है शूद्रों पर उसमें मनु महाराज का हाथ है।
अभी भी मनुस्मृति हिंदू-मानस का आधार-स्तंभ है। अभी भी हम उससे छूट नहीं पाए।
मगर यह सूत्र बड़ा प्यारा है। यह सूत्र अकेला ही होता, तो मनुस्मृति अदभुत होती। मगर यह सूत्र तो दबा पड़ा है। यह सहजानंद ने कैसे खोज लिया, यह भी आश्चर्य है! क्योंकि मनुस्मृति--बहुत से सूत्र हैं, बहुत श्लोक हैं। पूरे पढ़े होंगे, तब कभी इस सूत्र पर हाथ लगा होगा। मगर यह सूत्र...जब मैं मनुस्मृति को देख रहा था--उलट-पलट रहा था--तब मेरी आंखों में भी जगमगाते दीए की तरह बैठा रह गया था। मैं इसे भूला नहीं। इस सूत्र का अर्थ तुम समझो। अर्थ बिलकुल मनु के विपरीत जाता है। अर्थ ब्राह्मणों के विपरीत जाता है। अर्थ पंडितों के विपरीत जाता है। पुरोहितों के विपरीत जाता है। क्योंकि धर्म को मारता कौन है!
यह सूत्र कहता है: धर्म एव हतो हन्ति--मारा हुआ धर्म मार डालता है।
निश्चित ही इसके प्रमाण ही चारों तरफ दिखाई पड़ेंगे। हिंदू धर्म ने हिंदुओं को मार डाला है। मुसलमान धर्म ने मुसलमानों को मार डाला है। जैन धर्म ने जैनों को मार डाला है। बौद्ध धर्म ने बौद्धों को मार डाला है। ईसाई धर्म ने ईसाइयों को मार डाला है। यह पृथ्वी मरे हुए लोगों से भरी है। इसमें मुरदों के अलग-अलग मरघट हैं। कोई हिंदुओं का, कोई मुसलमानों का, कोई जैनों का--वह बात और--मगर सब मरघट हैं!
मारता कौन है धर्म को! तुम सोचते हो कि अधार्मिक लोग धर्म को मारते हैं, तो गलत। अधार्मिक की क्या हैसियत है कि धर्म को मारे।
तुमने कभी देखा: अंधेरे ने आकर और दीए को बुझा दिया हो! अंधेरे की क्या हैसियत कि दीए को बुझाए! अंधेरा दीए को नहीं बुझा सकता। अंधेरा धोखा भी नहीं दे सकता आलोक होने का। इसलिए इस बात को बहुत गांठ में बांध लेना, भूलना ही मत कभी।
इस दुनिया में धर्म को खतरा अधर्म से नहीं होता; झूठे धर्म से होता है। असली सिक्कों को खतरा कंकड़-पत्थरों से नहीं होता; नकली सिक्कों से होता है। नकली सिक्के चूंकि असली सिक्कों जैसे मालूम पड़ते हैं, इसलिए असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं।
अर्थशास्त्र की यह मान्य धारणा है, और उचित मालूम होती है: कि असली सिक्कों को चलन के बाहर करने की क्षमता केवल नकली सिक्कों में होती है। तुम्हारी जेब में भी अगर सौ-सौ रुपए के दो नोट हों--एक नकली और एक असली--तो तुम पहले किसको चलाओगे? तुम पहले नकली को चलाओगे। क्योंकि असली तो कभी भी चल जाएगा। तुम नकली को किसी भी बहाने चलाओगे। अखबार ही खरीद लोगे, चाहे पढ़ना हो या न पढ़ना हो! कुछ भी खरीद लोगे--रुपए दो रुपए की चीज, चार-छह आने की चीज। सौ रुपए का नकली सिक्का चल जाए! और जिसके हाथ में वह पड़ेगा, जैसे ही वह पहचानेगा कि नकली है, वह भी पहला काम यही करेगा कि इससे निपटारा हो। क्योंकि नकली को रखना खतरे से खाली नहीं है। चले न चले, तो जल्दी चला दो। असली तो कभी चल सकता है। इसलिए जब नकली सिक्के बाजार में होते हैं, तो असली सिक्के तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं, और नकली सिक्के चलने लगते हैं। यही नियम धर्म के जगत में भी लागू होता है। बुद्धों को चलन के बाहर कर देते हैं--पंडित-पुरोहित। ये नकली सिक्के हैं। ईसा को चलन के बाहर कर दिया--ईसाई पादरियों ने, पोपों ने। महावीर को चलन के बाहर कर दिया जैन मुनियों ने। कृष्ण को चलन के बाहर कर दिया तथाकथित कृष्ण के उपासक, पुजारी, पंडित--इन्होंने चलन के बाहर कर दिया।
नकली सिक्के सस्ते भी मिलते हैं। असली सिक्कों के लिए कीमत चुकानी पड़ती है! और बड़े मजे की बातें हैं कि नकली सिक्के के लिए कोई श्रम ही नहीं उठाना पड़ता। असली सिक्के के लिए बहुत श्रम से गुजरना पड़ता है।
धर्म को मारता कौन है?

पहले समझें कि धर्म को जिलाता कौन है? क्योंकि अगर हम जिलाने वाले को पहचान लें, तो मारने वाले को भी पहचान जाएंगे।
धर्म को जिलाते हैं, इस जगत में जीवंत करते हैं वे लोग जो धर्म के अनुभव से गुजरते हैं। बुद्ध, जीसस, कृष्ण, मोहम्मद, जलालुद्दीन, नानक, कबीर--ये धर्म के मृत प्राणों में पुनरुज्जीवन फूंक देने वाले लोग हैं। फिर बांसुरी बज उठती है, जो सदियों से न बजी हो। ठूंठ फिर हरे पत्तों से भर जाते हैं, और फूलों से लद जाते हैं--जिन पर सदियों से पत्ते न आए हों। बुद्ध के जीवन में कहानी आती है...। कहानी ही कहूंगा, क्योंकि मैं नहीं मानता कि यह कोई तथ्य है; मगर प्रतीकात्मक है। बहुमूल्य है। सत्य है--तथ्य नहीं।
कहानी कहती है कि बुद्ध जब निकलते हैं--अगर किसी ठूंठ के पास से निकल जाएं, तो ठूंठ हरा हो जाता है। और किसी बांझ वृक्ष के पास से निकल जाएं, जिसमें फल न लगते हों, तो फल लग जाते हैं। असमय में फूल खिल जाते हैं।
कथा है कि एक गांव में बुद्ध ठहरे। सुबह-सुबह एक शूद्र चमार--उसका नाम था--सुदास, वह उठा; अपने घर के पीछे गया। काम-धाम में लगने का वक्त हो गया। घर के पीछे उसका पोखर था, छोटी-सी तलैया। चमार था; गांव में उसे कोई पानी भरने न दे, तो अपनी ही तलैया से अपना गुजारा करता था।
देखकर उसकी आंखें ठगी रह गईं! बे-मौसम कमल का फूल खिला। उसने अपनी पत्नी को पुकारा, सुन। यह क्या हुआ! यह कभी नहीं हुआ! मेरी जिंदगी हो गई। यह कोई मौसम है, यह कोई समय है! कली भी न थी रात तक, और सुबह इतना बड़ा फूल खिला! इतना बड़ा फूल कि कभी खिला नहीं देखा! यह कैसे हुआ?
उसकी पत्नी ने कहा, हो न हो बुद्ध पास से गुजरे होंगे। क्योंकि मैंने सुना है--जब बुद्ध गुजरते हैं, तो असमय फूल खिल जाते हैं।
सुदास हंसने लगा। उसने कहा कि पागल! यहां कहां बुद्ध गुजरेंगे! इस चमार के झोपड़े के पास से कहां बुद्ध गुजरेंगे! उसने आसपास खबर की। पता चला कि यह सच है; सांझ ही बुद्ध का आगमन हुआ है। वे इसी रास्ते से गुजरे हैं। और आगे जा कर एक अमराई में रुके हैं।
तो सुदास ने कहा कि फिर क्या करूं इस फूल! यह तो बड़ा शुभ अवसर है। इस फूल को तो तोड़कर मैं सम्राट को बेच दूं। सौ-पचास रुपए जरूर इनाम में मिल जाएंगे। क्योंकि असमय का कमल!
तो वह फूल को तोड़कर राजमहल की तरफ जाता था। चकित हुआ। राजा का रथ ही आ रहा था! अभी सूरज उग रहा था और राजा का रथ--स्वर्ण रथ--सूरज में यूं चमक रहा था, जैसे दूसरा सूरज उग रहा हो। वह ठिठक कर राह पर ही खड़ा हो गया।
माजरा क्या है! रात इस गरीब के झोपड़े के सामने से बुद्ध गुजरे; सुबह सम्राट का स्वर्ण-रथ आ रहा है! इस रास्ते पर कभी आया ही नहीं। यह चमारों की बस्ती, यहां सम्राट आएं किसलिए! ठिठक कर खड़ा रह गया। हिम्मत ही न पड़ी कहने कि कि मैं फूल लेकर राजमहल की तरफ आ रहा था। लेकिन रथ खुद ही रुका। सम्राट ने सारथी को कहा--रुको। इस सुदास को बुलाओ।
सुदास सम्राट के जूते बनाता था। सुदास का नाम सम्राट को मालूम था। सुदास डरते हुए गया और कहा कि फूल लेकर आपकी तरफ ही आ रहा था। असमय का फूल है, मैंने सोचा--किसको भेंट करूं! आपके ही योग्य है।
सम्राट ने कहा, मांग, क्या मांगता है? जो मांगेगा इसके बदले में-- दूंगा।
सुदास ने कहा कि जो आप दे देंगे।
नहीं, सम्राट ने कहा, तू मांग। क्योंकि यह फूल मैं बुद्ध को चढ़ाने ले जाऊंगा। तू जो मांगेगा, दूंगा। बुद्ध प्रसन्न होंगे देखकर--ऐसे असमय का फूल! इतना सुंदर--इतना बड़ा फूल कमल का!
सुदास के गरीब मन में भी एक अमीर चाह उठी कि क्यों नहीं मैं ही न चढ़ा दूं जा कर फूल! रोटी-रोजी तो चल ही जाती है। मगर लालच भी मन में उठा कि आज सम्राट कहता है--जो मांगता हो, मांग ले!
लेकिन इसके पहले कि वह कुछ कहे, वह सोच रहा था कि कहूं--एक हजार स्वर्ण अशर्फिया; हिम्मत नहीं बंध रही थी कि एक हजार स्वर्ण अशर्फियां मांग रहा हूं, एक फूल के लिए! तो थोड़ा झिझक रहा था। तभी सम्राट के रथ के पीछे ही उसके वजीर का रथ आ कर रुका। और वजीर ने कहा, सुदास, बेच मत देना; मैं भी खरीददार

हूं। मैं चढ़ाऊंगा बुद्ध को। और सम्राट तो औपचारिकतावश जा रहे हैं। इनको बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है। जाना चाहिए, इसलिए जा रहे हैं। मैं बुद्ध का प्रेमी हूं। इसलिए सम्राट को कहा कि देखें, आप बीच में न आएं। आप प्रतिस्पर्धा में न पड़ें। निश्चित ही मैं कैसे आप से जीतूंगा, अगर प्रतिस्पर्धा हो जाए। मगर आप बीच में न आएं, क्योंकि आपके लिए तो सिर्फ औपचारिक है जाना; मेरे हृदय की बात है। सुदास, तू मांग, जो मांगेगा दे दूंगा।
सुदास ने सोचा, जब बात यूं है, तो अब एक हजार अशर्फियां क्या मांगनी;
दो हजार अशर्फियां मांग लूं! मगर उसकी जबान न खुले। दो अशर्फियां मांगने में भी बात ज्यादा होती थी; दो हजार अशर्फियां!
और तभी नगरसेठ का भी रथ आ कर रुका। उसने कहा, सुदास, बेचना मत। मैं भी खरीददार हूं। नगरसेठ तो इतना बड़ा सेठ था कि सम्राट को भी खरीद सकता था। सम्राट को जब जरूरत पड़ती थी, तो उससे ही उधार मांगता था। और इस अकेले सम्राट को ही नहीं, आसपास के और बड़े सम्राट भी इस नगरसेठ से धन उधार लेते थे। कहते थे कि इस नगरसेठ के पास धन तौला जाता था--गिना नहीं जाता था। क्योंकि गिनने की फुर्सत किसको थी! तो फावड़े से भर-भर कर टोकरियों में अशर्फियां गिनी जाती थीं, कि कितनी टोकरियां! कौन गिने एक-एक दो-दो! ऐसे गिनती करने की फुर्सत किसको थी!
उस सेठ ने कहा कि तू जो कहेगा। लाख अशर्फियां मांगना हो, लाख अशर्फियां मांग। लेकिन फूल मैं चढ़ाऊंगा।
सुदास ठिठका खड़ा रह गया। उसने कहा कि फूल बेचना नहीं है।
उन तीनों ने एक साथ पूछा--क्यों!
सुदास ने कहा कि जिस फूल के लिए एक लाख अशर्फियां देने के लिए कोई तैयार हो, गरीब आदमी हूं, मगर मेरे मन में भी गहन भाव उठा कि फिर मैं ही क्यों न इस फूल को बुद्ध के चरणों में चढ़ा दूं। जरूर उन चरणों में चढ़ाने का मजा लाख अशर्फियों से ज्यादा होगा। नहीं तो तुम एक अशर्फी न देते, नगरसेठ से उसने कहा, मुझे। लाख अशर्फियां दे रहे हो! सम्राट राजी है; वजीर राजी है; तुम राजी हो। और मुझे ऐसा लगता है कि अगर गांव में जाऊं, तो और भी लोग राजी हो जाएंगे। मुझे इसके जितने दाम चाहिए, उतने मिल सकते हैं। लेकिन अब बेचना ही नहीं है।
नगरसेठ ने कहा, दो लाख अशर्फियां देता हूं। तू जो मांग--मुंहमांगा।
उसने कहा, अब बेचना ही नहीं है। सुदास गरीब है, मगर इतना गरीब नहीं। चमार है। काम तो चल ही जाता है मुझ गरीब का--जूते सीने से ही। यह मौका मैं नहीं छोडूंगा। यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा।
और सुदास ने जा कर वह फूल बुद्ध के चरणों में स्वयं चढ़ाया। और बुद्ध
ने उस सुबह अपने प्रवचन में कहा कि सुदास ने आज इतना कमाया है, जितना कि सदियों में सम्राट नहीं कमा सकते। पूछो इस सम्राट से, पूछो इस वजीर से, पूछो इस नगरसेठ से! आज इन सब को हरा दिया सुदास ने। आज इस शूद्र ने अपने को परम श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया। आज लात मार दी धन पर। आज इसका अपरिग्रही रूप प्रकट हुआ है। यह धन्यभागी है।
और सुदास पर ऐसी वर्षा हुई उस दिन अमृत की कि फिर लौटा नहीं। उसने कहा,
अब जाना क्या! जब फूल चढ़ाने से इतना मिला, तो अपने को भी चढ़ाता हूं। सुदास भिक्षु हो गया। फूल ही नहीं चढ़ा; खुद भी चढ़ गया।
यूं कहानियां हैं कि असमय, बुद्ध के पास से गुजरने से फूल खिल जाते हैं। ऐसा होता हो न होता हो...हो नहीं सकता ऐतिहासिक अर्थों में। क्योंकि समय कोई नियम नहीं बदलता। होना चाहिए, मगर होता नहीं है। प्रकृति तो निरपवाद रूप से चलती है। कुछ भेद नहीं करती। लेकिन प्रतीकात्मक हैं ये बातें। बुद्धों की मौजूदगी में सदियों से निष्प्राण पड़े धर्म में पुनः प्राण की प्रतिष्ठा होती है।
जिस व्यक्ति ने स्वयं सत्य को जाना है, वह धर्म को जीवित करता है।
सिर्फ वही--केवल वही। उसके छूने से ही धर्म जीवित हो उठता है।
और धर्म को मारने वाले वे लोग हैं, जिन्होंने स्वयं तो अनुभव नहीं किया है, लेकिन जो दूसरों के उधार वचनों को दोहराने में कुशल होते हैं।

पंडित और पुरोहित का व्यवसाय क्या है! उनका व्यवसाय है कि बुद्धों के वचनों को दोहराते रहें; बुद्धों की साख का मजा लूटते रहें। बुद्धों को लगे सूली, बुद्धों को मिले जहर, बुद्धों पर पड़ें पत्थर--और पंडितों पर, पुजारियों पर, पोपों पर फूलों की वर्षा!
अभी तुम देखते हो--पोप किसी देश में जाते हैं, तो इतने लोग देखने को इकट्ठे होते हैं कि अभी ब्राजील में सात आदमी भीड़ में दब कर मर गए; और जीसस को सूली लगी, तब सात आदमी भी जीसस को प्रेम करने वाले भीड़ में इकट्ठे नहीं थे। सात यहां दब कर मर गए--साधारण आदमी को देखने के लिए, जिसमें कुछ भी नहीं है! जिसके पोप होने के पहले कोई एक आदमी देखने न आता। अभी साल भर पहले जब यह आदमी पोप नहीं हुआ था, तो कितने आदमी...! आदमी तो छोड़ो, कितनी चीटियां-चींटे देखकर इसको मरे? कहां भीड़ इकट्ठी हुई! किसी को नाम का भी पता नहीं था! किसी को प्रयोजन भी नहीं था। और ऐसा इस आदमी में कुछ भी नहीं है। लेकिन लाखों लोग इकट्ठे होंगे। इतने लोग इकट्ठे होंगे, कि सात आदमी भीड़ में दब कर मर जाएं! और यह पहली घटना नहीं है। ऐसी और घटनाएं घट चुकी हैं पहले। कहीं तीन आदमी मरे, कहीं दो आदमी मरे भीड़ में दब कर! देखने का ऐसा पागलपन! और जीसस को कितने लोग देखने गए थे!
जब जीसस को सूली लगने का वक्त आया, तो उनके बारह शिष्य भी भाग खड़े हुए थे। सिर्फ एक पीछे चला। जीसस ने उसको इंगित करके कहा; नाम तो लिया नहीं, क्योंकि नाम लेना खतरे से खाली न था। पकड़ लिया जाए बेचारा। जोर से इतना ही कहा कि भाई लौट जा। लौट ही जा!
जो लोग जीसस को पकड़ कर ले जा रहे थे, उन्होंने पूछा, किससे आप कह रहे हैं? क्या कोई जीसस का संगी-साथी यहां भीड़ में है? उन्होंने मशालें घुमा कर देखा। एक आदमी पकड़ा गया, जो आदमी अजनबी लग रहा था। उन्होंने पूछा, क्या तुम जीसस के साथी हो? उसने कहा कि नहीं। और जीसस ने कहा, देख, मैं कहता था लौट जा। मुर्गा सुबह की बांग दे, उसके पहले तीन बार कम से कम तू मुझे इनकार कर चुका होगा।
और यही हुआ। मुरगे की बांग देने के पहले तीन बार वह आदमी पकड़ गया। दुश्मनों ने बार-बार देखा कि कौन है! तो वह हर बार बदल जाए कि मैं! मैं तो अजनबी हूं। बाहर के गांव से आया हूं। गांव का पता मुझे मालूम नहीं। आप सब गांव की तरफ जा रहे हैं, मशालें हैं आपके हाथ में, तो सोचा, मैं भी साथ हो लूं।
उन्होंने पूछा, तू पहचानता है, यह आदमी कौन है, जिसको हम बांधे हैं?
उसने कहा, नहीं। कभी देखा नहीं! मैं बिलकुल पहचानता नहीं। मुझे क्या पता! कौन है यह आदमी? क्यों इसको बांध कर ले जा रहे हो? चोर होगा, बदमाश होगा!
सुबह मुरगे के बांग देने के पहले एक शिष्य साथ गया था, वह भी इनकार कर गया था! हालांकि भीड़ इकट्ठी हुई थी, कोई एक लाख लोग इकट्ठे हुए थे। लेकिन वे एक लाख लोग जीसस को देखने इकट्ठे नहीं हुए थे...गालियां देने, पत्थर फेंकने, सड़े-गले केले-टमाटर फेंकने; जीसस का मखौल उड़ाने, मजाक करने--कि यह देखो ईश्वर का बेटा, सूली पर लटक रहा है! अब पुकारो अपने बाप को। अब कहो अपने बाप से जो आकाश में है, जिसकी तुम बातें करते थे सदा, कि अब बचाए। बड़े चमत्कार तुम दिखाते थे, कहते हैं--मुर्दों को जिलाते थे; कहते हैं--लंगड़ों को चला दिया; कहते हैं--अंधों को दिखा दिया; अब कुछ करो!
लोगों ने भाले-भोंक कर जीसस को कहा, अरे, अब कुछ चमत्कार दिखाओ! अब क्या हो गया! कैसे गुमसुम खड़े हो? अब भूल गई चौकड़ी!
आए थे लाख लोग देखने तमाशा--हंसी-मजाक करने! यह जीसस जैसे व्यक्तियों
के साथ हमारा व्यवहार है। और फिर जीसस के पादरी-पुरोहितों के साथ हमारा व्यवहार बिलकुल बदल जाता है। बड़ी अजीब दुनिया है! बड़ा अजीब रिवाज है! यहां झूठे पूजे जाते हैं, यहां सच्चे मारे जाते हैं! सत्य को यहां सूली लगती है--झूठ को सिंहासन मिलता है!
धर्म को कौन मार डालता है?
धर्म एव हतो हन्ति--और निश्चित ही अगर धर्म मरा हुआ होगा, तो वह तुम्हारी क्या खाक रक्षा करेगा! तुम उसके बोझ के नीचे दब कर मर जाओगे। तुम उसकी लाश के नीचे सड़ कर मर जाओगे।

मारा हुआ धर्म मार डालता है। मगर धर्म को कौन मारता है? नास्तिक तो नहीं मार सकते। नास्तिक की क्या बिसात! लेकिन झूठे आस्तिक मार डालते हैं। और झूठे आस्तिकों से पृथ्वी भरी है। झूठे धार्मिक मार डालते हैं। और झूठे धार्मिकों का बड़ा बोल-बाला है। मंदिर उनके, मसजिद उनके, गिरजे उनके, गुरुद्वारे उनके। झूठे धार्मिक की बड़ी सत्ता है! राजनीति पर बल उसका; पद उसका, प्रतिष्ठा उसकी; सम्मान-सत्कार उसका!
किसी जैन मुनि के कानों में तुमने खीले ठोंके जाते देखे! महावीर के कानों में खीले ठोंके गए! और जैन मुनि आते हैं, तो उनके पावों में तुम आंखें बिछा देते हो! कि आओ महाराज! पधारो। धन्यभाग कि पधारे! और महावीर को तुमने ठीक उलटा व्यवहार किया था। तुमने पागल कुत्ते महावीर के पीछे छोड़े, कि लोंच डालो, चीथ डालो इस आदमी को!
तुमने बुद्ध को मारने की हर तरह कोशिश की। पहाड़ से पत्थर की शिलाएं सरकाईं कि दब कर मर जाए। पागल हाथी छोड़ा। जहर पिलाया।
तुमने मीरा को जहर पिलाया! और अब भजन गाते फिरते हो! कि ऐ रे मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाने कोय! और दरद तुमने दिया मीरा को; तुम क्या खाक दरद जानोगे! दरद जाने मीरा। और मीरा जाने कि प्रेम का दीवानापन क्या है।
क्या तुमने व्यवहार किया मीरा के साथ! तुमने सब तरह से दर्ुव्यवहार किया। आज तो तुम मीरा के गुणगान गाते हो, लेकिन वृंदावन में कृष्ण के बड़े मंदिर में मीरा को घुसने नहीं दिया गया। रुकावट डाली गई। क्योंकि उस कृष्ण-मंदिर का जो बड़ा पुजारी था...रहा होगा उन्हीं विक्षिप्तों की जमात में से एक जो स्त्रियों को नहीं देखते, जो स्त्रियों को देखने में डरते हैं। जिनके प्राण स्त्रियों को देखने ही से निकल जाते हैं! जिनका धर्म ही मर जाता है--स्त्री देखी कि धर्म गया उनका! कि एकदम अधर्म हो जाता है उनके जीवन में; पाप ही पाप हो जाता है!
उसने कसम ले रखी थी कि स्त्री को नहीं देखेगा। तो वह मीरा को कैसे घुसने दे! जैसे ही खबर आई वृंदावन में कि मीरा आ रही है, वह घबड़ाया। उसने पहरेदार लगा दिए कि मीरा को अंदर मत आने देना, क्योंकि उसके मंदिर में स्त्रियां आ ही नहीं सकती थीं।
मगर मीरा तो मस्त थी। वह इतनी मस्ती थी कि जब वह नाचने लगी मंदिर के द्वार पर जा कर, तो मंदिर के पहरेदार भी उसकी मस्ती में डोलने लगे। और यूं नाचते-नाचते वह भीतर प्रवेश हो गई! जब वह भीतर प्रवेश हो गई, तब द्वारपालों को पता चला कि यह क्या हो गया! अब तो बड़ी मुश्किल हुई!
ब्रह्मचारी महाराज भीतर अपना पूजा का थाल लिए आरती उतार रहे थे। उनके हाथ से थाली गिर पड़ी। स्त्री सामने आ जाए! कैसे-कैसे लोग इस दुनिया में हुए! और ऐसे लोग अभी भी हैं!
अभी इंग्लैंड में श्री प्रमुख स्वामी स्त्रियों को नहीं देखते! तो बहुत तहलका मचा हुआ है। वे कैंटरबरी के प्रमुख बिशप से मिलने गए, तो उसको बेचारे को पता नहीं था। जब मिलने की घड़ी आई, तब खबर पहुंची कि कोई स्त्री मौजूद नहीं होनी चाहिए। अब बिशप की सेक्रेटरी ही स्त्री! टाइपिस्ट स्त्री! और कई स्त्रियां पत्रकार-फोटोग्राफर--वे सब आई हुई थीं। उन सब को हटाना पड़ा। इंग्लैंड में बहुत चर्चा हुई इस बात की, कि यह स्त्रियों का अपमान है। वे स्त्रियों को नहीं देख सकते!
ऐसा ही वह आदमी रहा होगा--ऐसा ही विक्षिप्त। उसके हाथ से थाली गिर पड़ी। और वह एकदम नाराज हो गया, आगबबूला हो गया। ऐसे लोगों के भीतर आग तो सुलगती रहती है। ये तो ज्वालामुखी पर बैठे हुए लोग हैं। कब भभक उठे इनकी आग--जरा-सा अवसर, बस काफी है।
चिल्लाया-चीखा कि स्त्री! तुझे तमीज नहीं! जब तुझे मालूम है--और बार-बार दरवाजे पर लिखा हुआ है कि स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है--तू कैसे प्रवेश की? मेरा पूजा का थाल गिर गया; मेरे तीस वर्ष की साधना भ्रष्ट हो गई!
स्त्री को देखने से इनकी साधना भ्रष्ट हो गई! इनकी पूजा का थाल गिर गया! कृष्ण ने भी अपना माथा ठोंक लिया होगा--यह मेरा भक्त है! और कृष्ण की

साधना भ्रष्ट न हुई! और सोलह हजार सखियां नाचती रहीं चारों तरफ। और ये उनके भक्त हैं!
ये कृष्ण--जीवंत धर्म। जिसके पास सोलह हजार स्त्रियां नाचें, तो कुछ नहीं बिगड़ता। और यह मुरदों का धर्म--कि एक स्त्री आ जाए--वह भी मीरा जैसी स्त्री, जिसको देखकर भी इस अंधे को आंखें खुल सकती थीं, इस मुरदे में प्राण पड़ सकते थे--उसके हाथ की थाली गिर गई!
लेकिन मीरा ने जो वचन कहे, प्यारे हैं। मीरा ने कहा कि क्षमा करें। मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के भक्त मानते हैं--कृष्ण के अलावा और कोई पुरुष नहीं। तो दो पुरुष हैं: एक कृष्ण और एक आप? मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के भक्तों की यह धारणा है कि हम सब स्त्रियां ही हैं; पुरुष तो एक परमात्मा है; हम सब उसकी प्रेमिकाएं हैं। उसकी सखियां हैं, उसकी गोपियां हैं। आज पता चला कि वह धारणा गलत थी। दो पुरुष हैं। एक कृष्ण और एक ब्रह्मचारी महाराज आप! मगर आप क्यों पूजा का थाल उठा कर प्रार्थना कर रहे हैं! आप तो स्वयं परमात्मा हैं! आप तो स्वयं पुरुष हैं! और परमात्मा होकर आपके हाथ से थाली गिर गई--स्त्री को देख कर आप ऐसे विचलित, ऐसे उद्विग्न हो उठे!
इस दुनिया में सबसे बड़ी दुश्मनी बुद्धों और पंडितों के बीच है। मगर मजा यह है कि जब तक बुद्ध जिंदा होते हैं, पंडित उनका विरोध करते हैं। और जैसे ही बुद्ध विदा होते हैं, पंडित बुद्धों की जो छाप छूट जाती है, उसका शोषण करने लगते हैं। तत्क्षण चींटों की तरह इकट्ठे हो जाते हैं! क्योंकि बुद्धों का जीवन ऐसी मिठास छोड़ जाता है कि सब तरफ से चींटे भागे चले आते हैं! जैसे शक्कर के ढेर पर चींटे इकट्ठे हो जाएं।
बुद्धों की मौजूदगी में तो उन्हें विरोध करना पड़ता है। क्योंकि बुद्ध
का एक-एक वचन, जाग्रत व्यक्ति का एक-एक वचन उनके लिए प्राणघाती तीर जैसा लगता है। लेकिन जैसे ही बुद्ध विदा हुए, वैसे ही वे कब्जा कर लेते हैं। बुद्ध जो अपने आसपास हजारों लोगों को प्रभावित छोड़ जाते हैं, अपनी आभा से मंडित छोड़ जाते हैं--ये पंडित जल्दी से उनकी उस विराट प्रतिभा का शोषण करने में तल्लीन हो जाते हैं। ऐसे धर्म निर्मित होते हैं--तथाकथित धर्म। ईसा के पीछे ईसाइयत; इसका ईसा से कुछ लेना-देना नहीं है। और बुद्ध के पीछे बौद्ध धर्म--इसका बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है। और महावीर के पीछे जैन धर्म--इसका महावीर से कुछ लेना-देना नहीं है। मगर इनकी घबड़ाहटें बड़ी अजीब हैं! एक से एक हैरानी की घबड़ाहटें! इनकी बेचैनी!
पंडितों की हमेशा एक बेचैनी रहती है: कहीं फिर कोई बुद्ध न पैदा हो जाए! नहीं तो इनका जमाया हुआ अखाड़ा फिर उखड़ जाए! मगर सौभाग्य से बुद्ध आते रहते हैं। कभी कहीं न कहीं कोई दीया जल जाता है। और बुझे दीयों की छाती कंप जाती है।
धर्म एव हतो हंति--मारा हुआ धर्म मार डालता है।
सहजानंद! बात तो बड़े पते की है। धर्म को पंडित मारते हैं, पुजारी मारते हैं। फिर मारा हुआ धर्म, तुम जो उस मुरदा धर्म के पीछे चलते हो, तुम्हें मार डालता है। मुरदे को ढोओगे, तो मरोगे नहीं तो क्या होगा और! रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। लेकिन रक्षा धर्म की कौन करेगा? धर्म की रक्षा तो वही करे, जिसे धर्म का अनुभव हुआ हो। जिसने धर्म को जीया हो, पिया हो, पचाया हो; जिसके लिए धर्म उसका रोआं-रोआं हो गया हो; जिसकी धड़कन-धड़कन में धर्म समाया हो--वह व्यक्ति धर्म की रक्षा करेगा। और धर्म की रक्षा अगर की जाए, तो धर्म तुम्हारी रक्षा करता है। स्वभावतः।
तस्माद धर्मो न हंतव्यो--इसलिए धर्म को मत मारो।
इसलिए पंडित-पुजारियों से बचो; धर्म को मत मारो। मंदिर-मसजिद कब्रें हैं धर्म की। इनसे बचो। कभी किसी सदगुरु के मयखाने में बैठो, मयकदे में बैठो--जहां अभी जीवंत शराब ढाली जाती हो, पी जाती हो, पिलाई जाती हो--जहां दीवाने जुड़ते हों, जहां परवाने इकट्ठे होते हों। जहां दीया जलता है, वहां परवाने इकट्ठे होते हैं। मंदिर-मस्जिदों में क्या है अब! हां, दीए की तस्वीरें हैं। मगर दीयों की तस्वीरों को तुम सोचते हो--परवाने आएंगे!
जरा एक दीए की तस्वीर लगा कर तो बैठो घर में और राह देखो कि कोई परवाना
आ जाए! परवाने इतने मूरख नहीं--जितना मूरख आदमी होता है! परवाने पर भी न

मारेंगे वहां। कितनी ही सुंदर तस्वीर हो दीए की, कितनी ही चमचमाती तस्वीर हो दीए की--सोने की बना लो--तो भी परवानों को धोखा न दे पाओगे।
सोलोमन के जीवन में उल्लेख है। ईथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गई। क्योंकि उसने सुन रखा था कि सोलोमन पृथ्वी पर आज सर्वाधिक ज्ञानी व्यक्ति है। ईथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गई। उसने एक हाथ में नकली फूल लिए, जो बड़े कलाकारों से बनवाए थे। और दूसरे हाथ में असली फूल लिए। नकली फूल इतने सुंदर बने थे कि असली को मात करते लगते थे! वह दोनों फूलों को लेकर सोलोमन के दरबार में गई। सोलोमन से थोड़ी दूर खड़े होकर उसने कहा कि सोलोमन, मैंने सुना है कि तुम पृथ्वी के सबसे बड़े ज्ञानी हो। जरा-सा मेरे प्रश्न का उत्तर दे दो। मेरे किस हाथ में असली फूल हैं? और किस हाथ में नकली फूल हैं?
सोलोमन भी बहुत हैरान हुआ! देखे दोनों हाथ में फूल; तय करना मुश्किल था। मैं होता तो तय कर लेता। जो असली से भी ज्यादा असली मालूम हो रहे थे, उनको नकली कह देता। क्योंकि असली से कहीं ज्यादा असली कुछ होता है!
मगर सोलोमन ने जल्दी से तय करना ठीक न सोचा। उसने कहा कि जरा अंधेरा है; मैं बूढ़ा भी हो गया; जरा द्वार-खिड़कियां खोल दो सब, ताकि रोशनी आए, ताकि मैं देख तो सकूं ठीक से। सारे द्वार-खिड़कियां खोल दी गईं। और वह थोड़ी देर चुपचाप रहा और उसने कहा, तेरे बाएं हाथ में असली फूल हैं।
ईथोपिया की रानी हैरान हुई। उसके वजीर हैरान हुए। दरबारी हैरान हुए। उन्होंने कहा, आपने कैसे पहचाना! क्योंकि हम भी देख रहे हैं रोशनी में भी। मगर कुछ पहचान में नहीं आता कि कौन असली है!
उसने कहा, मैंने नहीं पहचाना। मैं तो सिर्फ राह देखता रहा कि कोई मधुमक्खी भीतर आ जाए। और एक मधुमक्खी खिड़की से भीतर आ गई। अब मधुमक्खी को तुम धोखा नहीं दे सकते, चाहे कितने ही बड़े चित्रकारों ने फूल बनाए हों। मधुमक्खी जिस फूल पर बैठ गई, वे असली फूल हैं।
परवानों को धोखा न दे सकोगे। मुझे भी धोखा नहीं होता। मैं फौरन पहचान जाता; जो असली से ज्यादा असली मालूम होते।
एक आदमी सेठ चंदूलाल के पास दान मांगने गया था। चंदूलाल यूं किसी को दान देते नहीं। उनके घर के सामने से भिखारी यूं निकल जाते हैं कि यह तो चंदूलालजी का मकान है! मांगते ही नहीं। अगर कोई भिखारी उनके घर के सामने भीख मांगता है, तो दूसरे लोग कहते हैं, मालूम होते हो, अजनबी हो; इस गांव में नए हो। अरे यह चंदूलाल का मकान है! जल्दी करो, निकल जाओ। हाथ में होगा कुछ, छीन लेगा और! चंदूलाल से मिला कभी किसी को नहीं है। जो ले गया--पा गया सो पा गया!
लेकिन गांव में कुछ बहुत जरूरत पड़ गई थी और गांव के कुछ लोगों ने सोचा,
एक दफे कोशिश करनी चाहिए। कई सालों से कोशिश की भी नहीं। आदमी बदल भी जाता है! अब कौन जाने बदल गया हो। बुढ़ापा भी करीब आ रहा है; तो मौत के पास आते- आते आदमी के हृदय में भी बदलाहट होने लगती है। आदमी धार्मिक होने लगता है। कौन जाने दया-भाव जगा हो, दान जगा हो! चलो, एक कोशिश करने में हमारा क्या बिगड़ जाएगा! बहुत से बहुत मना ही करेगा न। तो हमारा क्या ले लेगा!
वे गए। चंदूलाल ने बड़े प्रेम से बिठाया। चंदूलाल ने कहा कि जरूर, जरूर दान दूंगा! बड़े हैरान हुए। खुद भी भरोसा न आया कि क्या सुन रहे हैं! फिर सोचा कि ठीक ही हमने सोचा था कि आदमी बूढ़ा होता है, तो बदलाहट होती है।
पर, चंदूलाल ने कहा, एक शर्त है। मेरी दोनों आंखों को देख कर बताओ कि कौन-सी असली--कौन-सी नकली। अगर बता सके सही-सही, तो जो मांगोगे वह दान दूंगा।
बहुत गौर से उन्होंने देखा। आखिर उन्होंने कहा, आपकी बाई आंख नकली है। चंदूलाल ने कहा, गजब कर दिया! मार डाला मुझ गरीब को! कैसे पहचाने कि मेरी बाईं आंख नकली है?
उन्होंने कहा, इसलिए पहचाने कि बाईं आंख में थोड़ा दया-भाव मालूम पड़ता है! दाईं आंख तो असली होनी चाहिए; उसमें तो कोई दया-भाव नहीं!
परवानों को धोखा नहीं दिया जा सकता। लेकिन मंदिरों में, गिरजों में, गुरुद्वारों में, जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, ये परवाने नहीं हैं; नहीं तो

इनको धोखा नहीं हो सकता था। परवाने तो मयकदों में इकट्ठे होते हैं। और मयकदा वहां होता है, जहां कोई जीवित सदगुरु होता है।
मगर जीवित सदगुरु के खिलाफ सदा भीड़ होगी। क्योंकि भीड़ तो पंडित-पुरोहितों से ही चलती है। और भीड़ के पास तो झूठा और सस्ता धर्म है। और भीड़ अपने सस्ते धर्म को, और झूठे धर्म को झूठ मानने को राजी नहीं होना चाहती। क्योंकि उसे झूठ मान ले, तो छोड़ना पड़ेगा। और उसे छोड़ना अर्थात फिर सच्चे को खोजना भी पड़ेगा। और फिर बच्चे को खोजना कठिन हो सकता है, दुरूह हो सकता है। साधना करनी होगी; ध्यान करना होगा।
यह झूठा धर्म तो सत्यनारायण की कथा करवाने से मिल जाता है! खुद करनी
भी नहीं पड़ती! कोई और कर जाता है! एक दस-पांच रुपए का खर्चा हो जाता है। एक उधार नौकर को ले आते हैं, वह कर देता है!
जार्ज बर्नार्ड शा ने लिखा है कि दुर्भाग्य के वे दिन भी एक दिन आएंगे, जब धनपति अपनी पत्नियों के पास भी नौकरों को भेज दिया करेंगे कि जा मेरी पत्नी को चुंबन दे आ। कहना--पति ने भेजा है; उनको जरा फुर्सत नहीं है काम में। और ये छोटे-मोटे काम तो नौकर ही कर सकते हैं। इसके लिए मेरे आने की क्या जरूरत है! लेकिन तुम धर्म के साथ
यही कर रहे हो।
तुम एक पुजारी से कहते हो कि आ कर रोज हमारे घर में मंदिर की घंटी बजा जाया कर। पूजा चढ़ा जाया कर। दो फूल चढ़ा जाया कर। तीस रुपए महीने लगा दिए। वह भी दस-पच्चीस घरों में जाकर घंटी बजा आता है। उसको भी घंटी बजाने में कोई मतलब नहीं है। इससे मतलब नहीं है कि भगवान ने घंटी सुनी कि नहीं। वह जो तीस रुपए महीने देता है, उसको सुनाई पड़ जानी चाहिए। बस। जल्दी से सिर पटकता है। कुछ भी बक-बका कर भागता है, क्योंकि उसको और दस-पच्चीस जगह जाना है। कोई एक ही भगवान है! कोई मंदिरों में पूजा करनी है! जगह-जगह जाकर किसी तरह क्रियाकर्म करके भागता है।
उधार! तुम प्रार्थना उधार करवा रहे हो! तो तुम प्रेम भी उधार करवा सकते हो। आखिर प्रार्थना प्रेम ही तो है। परमात्मा से भी तुम सीधी बात नहीं करते; बीच में दलाल रखते हो। परमात्मा के भी आमने-सामने कभी नहीं बैठते! अरे, फूल चढ़ाने हों--खुद चढ़ाओ। अगर दीप जलाने हैं--खुद जलाओ। अगर नाचना-गाना हो, तो खुद नाचो-गाओ। ये किराए के टट्टू, इनको लाकर तुम पूजा करवा रहे हो! यह पूजा झूठी है। इनको पूजा से प्रयोजन नहीं है; इनको पैसे से प्रयोजन है। तुमको इससे प्रयोजन है कि भगवान कभी होगा, कहीं मरने के बाद मिलेगा, तो कहने को रहेगा कि भाई पूजा करवाते थे। तीस रुपया महीना खर्चा किया था। कुछ तो खयाल रखो। आखिर उस सब का कुछ तो बदला दो! बहुत सुनते आए थे कि पुण्य का फल मिलता है, कहां है फल! अब मिल जाए।
लेकिन न तुमने पूजा की; न तुम्हारे पुजारी ने पूजा की। पुजारी को पैसे
से मतलब था; तुम कुछ आगे के लोभ का इंतजाम कर रहे हो। तुम आगे के लिए बीमा कर रहे हो! तुम कुशल व्यवसायी हो।
धर्म को मार डाला है, इस तरह के लोगों ने।
और क्या-क्या मजे की बातें फिर निकालते हैं! कल एक व्यक्ति का पत्र पढ़ रहा था अखबार में। उसने लिखा है कि मेरे घर एक साधु बाबा मेहमान हुए। सुबह उठकर उन्होंने ध्यान-स्नान इत्यादि किया। मैंने कहा कि कुछ नाश्ता करें। उन्होंने नाश्ता नहीं लिया। चले गए कुछ काम से बाहर। सांझ को लौटे। फिर स्नान-ध्यान किया। मैंने कहा, कुछ भोजन करें। उन्होंने कहा, नहीं बच्चा। मैंने पूछा कि साधु बाबा, आप न भोजन सुबह किए, न सांझ! कुछ सत्संग ही हो जाए; कुछ दो शब्द मुझे कह दें। तो उन्होंने कहा, जो असली साधु है, वह मुलाकात नहीं देता। जो असली साधु है, वह जमात इकट्ठी नहीं करता। जो असली साधु है, वह करामात नहीं दिखाता। यह तीन उन्होंने व्याख्या की असली साधु की। मुलाकात नहीं देता। जमात नहीं जुटाता। करामात नहीं दिखाता। और उसी रात वे चले गए।
उन सज्जन ने लिखा है कि मुझे तो उनका नाम भी पता नहीं, लेकिन उनकी परिभाषा याद रह गई। इस परिभाषा के अनुसार आजकल का कोई महात्मा, कोई साधु, सच्चा साधु नहीं है, न सच्चा महात्मा है।

कोई सज्जन को कहे, तो फिर कृष्ण भी सच्चे महात्मा नहीं हैं! मुलाकात
दी अर्जुन को, नहीं तो गीता कैसे पैदा होती! फिर बुद्ध भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--जमात इकट्ठी की, नहीं तो भिक्षुओं का संघ कैसे निर्मित होता! फिर तो महावीर भी सच्चे महात्मा नहीं है; मुलाकात भी दी; जमात भी इकट्ठी की। फिर तो जीसस भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--और मोहम्मद भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--करामात--मुलाकात--जमात--सभी कुछ किया!
तो इनके हिसाब से कौन सच्चा महात्मा है? न कृष्ण, न लाओत्सू, न जरथुस्त्र, न महावीर, न बुद्ध, न मोहम्मद, न क्राइस्ट, न नानक, न कबीर। इनके हिसाब से वह एक आदमी जो इनके घर में ठहरा था, जिसका इनको नाम भी पता नहीं, उसके सिवाय कोई महात्मा नहीं है!
खूब इनको पकड़ा गया परिभाषा! अब उसी परिभाषा को पकड़े बैठे रहना। मगर इस तरह की बातें लोग पकड़ कर बैठ जाते हैं। और फिर सोचते हैं कि बड़ा ज्ञान हाथ लग गया। अब ये किसी कृष्ण के पास पहुंच जाएंगे, तो अपनी परिभाषा से ये बच जाएंगे। बुद्ध के पास से गुजर जाएंगे--अपनी परिभाषा से बच जाएंगे, कि अरे, इसने जमात इकट्ठी की! अगर जीसस के पास जाएंगे, तो फौरन बच जाएंगे--अरे, यह तो करामात दिखा रहा है! इनके पास बचने के लिए इंतजाम हो गया! और वह कौन आवारा आदमी, जो इनके घर में ठहरा था, जो इनको परिभाषा दे गया...और ठहरा भी कि नहीं ठहरा, कि किसी सपने में इन्होंने देख लिया! मगर इनके पास एक परिभाषा है, जो इनको सब से बचा देगी। नानक मिलेंगे--बचा देगी! कबीर मिलेंगे--बचा देगी। कृष्ण मिलेंगे--बचा देगी।
पंडित भी तुम्हें क्या-क्या चीजें दे जाते हैं, क्या-क्या चीजें पकड़ा जाते हैं; क्या-क्या मूर्खतापूर्ण विवरण तुम्हारे हाथ में थमा देते हैं, कसौटियां थमा देते हैं--और फिर उनके हिसाब से तुम चलने लगते हो।
दिगंबर जैन सोचता है कि तब तक कोई आदमी भगवान को उपलब्ध नहीं होता है,
जब तक नग्न न हो। इसलिए वह बुद्ध को भगवान नहीं मानता, कृष्ण को भगवान नहीं मानता, क्राइस्ट को भगवान नहीं मानता, मोहम्मद को भगवान नहीं मानता। उसके पास एक परिभाषा है।
जीसस को मानने वाला मानता है कि जब तक कोई आदमी अंधों को आंख न दे, बहरों को कान न दे, मुरदों को जिलाए न--तब तक वह महात्मा नहीं है! तब तक वह भगवान का असली बेटा नहीं है! तो न तो महावीर ने किसी अंधे को आंख दी; न कृष्ण ने किसी अंधे को आंख दी। न कबीर ने किसी अंधे की आंखें ठीक की, न किसी मुरदे को जिलाया। ये सब कोई महात्मा न रहे! ये सब व्यर्थ हो गए। इनका ईश्वर से कुछ संबंध न रहा!
अपनी-अपनी परिभाषाएं लिए लोग बैठे हैं! और परिभाषाएं तुम्हें कौन पकड़ा देता है? दो कौड़ी के लोग परिभाषाएं पकड़ाने को तैयार हैं! लेकिन उन दो कौड़ी के लोगों की बातें तुम्हारी समझ में आ जाती हैं, क्योंकि उतनी ही तुम्हारे पास समझ भी है। जितनी ओछी बात हो, उतनी जल्दी तुम्हारी समझ में आ जाती है। और कितना शोरगुल तुम मचाने लगते हो फिर!
मारा हुआ धर्म मार डालता है। और पंडित धर्म को मारते हैं। फिर मारा हुआ धर्म तुम्हें मारता है।
रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। बुद्धपुरुष धर्म की रक्षा करते हैं। बुद्धों के साथ होना, स्वयं की रक्षा पा लेना है। बुद्ध में ही शरण है।
इसलिए धर्म को न मारना चाहिए। पंडितों से साथ अलग कर लो अपना। उनके साथ रहना, उनके साथ अपना संबंध जोड़ना धर्म को मारने में भागीदार होना है।...जिससे मारा हुआ धर्म हमको न मार सके।
पृथ्वी को बड़ी जरूरत है आज धर्म के पुनरुज्जीवित होने की, नहीं तो आदमी मर ही चुका; उसकी ऊर्जा खो गई, आनंद खो गया, उत्सव खो गया, नृत्य खो गया। बांसुरी यूं पड़ी है! दर्पण पर धूल जमी है। न कोई गीत उठता है; न सत्य की कोई छवि बनती है।
अब कब तक राह देखोगे! झाड़ो यह धूल। साफ करो इस बांसुरी को, कि फिर गीत उतर सकें। फिर सत्य की छवि बन सके, फिर कोयल तुम्हारे भीतर कूके और पपीहा तुम्हारे भीतर पुकारे।

लेकिन यह तभी संभव है जब किसी सदगुरु के साथ हो जाओ। किसी जलते हुए दीए के पास ही अपने दीए को ले जाओ, तो तुम्हारा दीया जल सकता है। लेकिन जिनके दीए खुद ही बुझे हैं, उनके पास तुम अपना दीया लिए बैठे हो! बैठे रहो जन्मों-जन्मों, तुम्हारे दीए के जलने की कोई संभावना नहीं है। लेकिन सस्ता है यह काम।
पंडितों के पास होने में कुछ हर्ज नहीं, कुछ खर्च नहीं। और तुम्हारे
ही जैसे लोग हैं वे, इसलिए उनसे तालमेल बैठ जाता है, उनसे समझौता बैठ जाता है। बुद्धों से तालमेल बिठालने के लिए क्रांति से गुजरना जरूरी है, आग से गुजरना जरूरी है।
अब मेरे साथ जो आज संन्यासी हैं, उन्हें सब तरह की आग से गुजरना पड़ रहा है, गुजरना पड़ेगा। इसी आग से गुजर कर वे कुंदन बनेंगे।
हर छोटी-मोटी बात पर उपद्रव है! हर छोटी-मोटी बात पर बाधा है! और कितना शोर-शराबा मचता है! अब मैं कच्छ के रेगिस्तान में बस जाना चाहता था, ताकि लोगों को मुझसे परेशानी न हो। तो कच्छ के रेगिस्तान में भी बसने देना कठिन है! भारी शोरगुल मचा हुआ है! कच्छियों के प्राण निकले जा रहे हैं! जैसे मैं कच्छ पहुंच जाऊंगा, तो कच्छ डूब ही जाएगा! जैसे मैं कच्छ पहुंच जाऊंगा, तो कच्छ एकदम लुट जाएगा! जैसे मेरे बिना कच्छ में बहुत कुछ है, जो एकदम बरबाद ही हो जाएगा! एकदम प्राणों पर बन आई है!
जैन मुनि इकट्ठे हो रहे हैं! जैनियों से आह्वान किया जा रहा है। भद्रगुप्त मुनि ने--किस तरह की भद्रता है, पता नहीं--और किस तरह का जैन-धर्म है, पता नहीं--आह्वान किया है सारे जैनों को, कि अब सब कुछ बलिदान करना पड़े, तो भी करने की तैयारी रखो। मगर इस व्यक्ति को कच्छ में प्रवेश नहीं करने देना है।
मैं कच्छ का क्या बिगाडूंगा!
कल खबर थी कि बंबई में सारे कच्छियों की सभा होने वाली है। सभा का निमंत्रण छापा गया है, उसमें यह साफ लिखा हुआ है कि जो लोग विरोध करना चाहते हों, केवल वे ही आएं! तो मतलब, जो विरोध नहीं करना चाहता है, उसको तो आने भी नहीं देना है! सभा में भी नहीं आने देना है, ताकि विरोध नहीं करने की तो बात ही न उठे। जो लोग विरोध करना चाहते हैं, केवल उनके लिए निमंत्रण है। और फिर घोषणा मचाएंगे कि देखो, जितने लोग आए, सब ने विरोध किया। एक भी तो पक्ष में होता! एक भी आदमी पक्ष में नहीं है। और निमंत्रण में ही जाहिर है, कि फिर निमंत्रण ही उनके लिए दिया गया है, जो विरोध में हैं।
अब बंबई के कच्छियों के प्राण क्यों संकट में पड़े हैं! मैं कच्छ जा रहा हूं; तुम कच्छ छोड़ कर बंबई बस गए हो! तुम कच्छ कब का छोड़ चुके। कच्छ में है कौन अब? मैं भी एक दीवाना हूं कि कच्छ को चुना हूं, जहां से सब भाग गए! मैं इस लिहाज से चुना कि अब यहां किसी को परेशानी न होगी। यहां है ही कौन! पूरे कच्छ की आबादी सात लाख है। सैकड़ों मील खाली पड़े हैं।
कभी डेढ़ सौ साल पहले कच्छ आबाद हुआ करता था, तब सिंध नदी कच्छ के पास
से गुजरती थी। फिर सिंध ने अपना रास्ता बदल लिया। सिंध भी भाग खड़ी हुई! उसने भी कच्छ छोड़ दिया! डेढ़ सौ साल पहले सिंध ने भी कहा कि क्षमा करो। हे कच्छ महाराज, आप ऐसे ही रहो! सिंध ने जब से छोड़ दिया, कच्छ रेगिस्तान है। और जिस दिन से सिंध ने छोड़ा, कच्छ का व्यवसाय मर गया, कच्छ का उत्पादन मर गया। कच्छ के लोगों को हट जाना पड़ा। कच्छ बरबाद हो गया। कच्छ में कुछ भी न बचा। लेकिन कच्छ पर भारी संकट आ गया है; उससे भी बड़ा संकट जो सिंध के हटने
से आया था; उससे भी बड़ा संकट आ रहा है--मेरे वहां जाने से!
मैं कभी-कभी चकित होता हूं कि कैसे मूढ़ों की जमात है! कैसे अजीब लोग हैं! इनको क्या इतनी बेचैनी हो रही है! आखिर जैन-धर्म को क्या खतरा आ गया होगा, कि सातों जैन धर्मों के अलग-अलग पंथ इकट्ठे हो गए और सातों ने मिल कर निर्णय किया। इनको क्या खतरा आ गया होगा! इनको क्या बेचैनी हो रही है! बंबई के सारे उद्योगपति इकट्ठे हो गए, जैसे इनके उद्योग को मैं कोई खतरा पहुंचा रहा हूं! कि कच्छ मैं चला जाऊंगा, तो इनके उद्योग खतम हो जाएंगे, या इनके कारखाने बंद हो जाएंगे। कच्छ में तो कोई कारखाने हैं नहीं। इनको क्या बेचैनी आ रही है!

एक से एक घबड़ाहटें! अब उन्होंने एक नया शिगुफा खड़ा किया कि मेरे कच्छ में पहुंचने से देश की सुरक्षा को खतरा हो जाएगा! उस रेगिस्तान में मैं अपने मित्रों को लेकर बैठ जाऊंगा--देश को खतरा--देश की सुरक्षा को खतरा हो जाएगा! देश फिर बच नहीं सकता! फिर देश का बचना मुश्किल है!
अजीब बातें लोग उठाते हैं! लेकिन ये सारे बहाने हैं। ये सब बहाने ऊपर-ऊपर--भीतरी बात कुछ और। भीतरी डर! डर एक बात का कि तुम जिस धर्म को पकड़े बैठे हो, मेरी मौजूदगी में तुम उसे पकड़े न रह सकोगे।
तो इस आश्रम के खिलाफ कितनी अफवाहें उड़ाई जाती हैं! और जब अफवाहें चलती हैं, छपती हैं अखबारों में, तो लोग तो छपे हुए अखबार को मानते हैं। छपी हुई बात तो सच होनी ही चाहिए! लिखे पर हमारा ऐसा भरोसा है! और छापाखाने का छपा हो, फिर तो कहना ही क्या! फिर तो सत्य होना ही चाहिए। फिर उन्हें कोई फिक्र नहीं है यहां आने की। यहां आकर देखने की, यहां आकर परिचित होने की। यहां तो आने में भी डर होता है।
मेरे पास पत्र आते हैं कि हम आना तो चाहते हैं, लेकिन हमने सुना है, जो
भी आता है--सम्मोहित हो जाता है! तो यह भी आने में एक डर है, कि वहां जो जाता है; वह सम्मोहित हो जाता है!
एक व्यक्ति ने विरोध में पत्र लिखा है। अखबार में छपा है, कि मेरे पक्ष में सिवाय मेरे अनुयायियों के और कोई भी नहीं है। बाकी सब लोग मेरे विरोध में हैं।
बात बड़ी पते की है! तो तुम सोचते हो, कृष्ण के पक्ष में कृष्ण के अनुयायियों के सिवा कोई और है! कि बुद्ध के पक्ष में बुद्ध के अनुयायियों के सिवा कोई और है? कि क्राइस्ट के पक्ष में क्राइस्ट के अनुयायियों के सिवा कोई और है? मेरे ऊपर ही सिर्फ यह नियम लागू होगा!
और बड़े मजे का तर्क है: जो मेरे पक्ष में है, वह मेरा अनुयायी। और अनुयायी तो पक्ष में होगा ही! इसलिए जो मेरे पक्ष में है, उसकी तो बात सुननी ही मत, क्योंकि वह अनुयायी है। और जो मेरे विपक्ष में है, वह सच कह रहा होगा, क्योंकि वह अनुयायी नहीं है! अब यह तो बड़ा मुश्किल हो गया मामला। मेरे पक्ष में कहना चाहिए--और मेरे अनुयायी होना नहीं चाहिए, तब उसकी बात में कुछ बल होगा। मगर यह कैसे होगा? जिसे मेरी बात सही लगेगी, वह मेरा अनुयायी हो गया। सही लगी, और फिर अनुयायी न हुआ, तो क्या खाक सही लगी! सही भी लगी, और अनुयायी भी न हुआ, तो सही कैसे लगी?
तो जो मेरे पक्ष में बोले, वह मेरा अनुयायी है, इसलिए इसकी बात का तो कोई मूल्य नहीं है। और जो मेरे विपक्ष में बोले, उसकी बात का मूल्य है, क्योंकि वह मेरा अनुयायी नहीं है! अगर यह मापदंड एक-सा ही लागू करना है, तो अगर मेरे पक्ष वाला मेरे पक्ष में बोले, उसकी बात का कोई मूल्य नहीं; तो जो मेरे विपक्ष में है, उसकी बात का भी कोई मूल्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह विपक्ष में है, इसलिए विपक्ष में बोलेगा। तब उस तीसरे आदमी को खोजो जो न पक्ष में है, न विपक्ष में है। मगर ऐसा आदमी तुम्हें मिलना मुश्किल है, जो न पक्ष में है--न विपक्ष में। जो पक्ष में, विपक्ष में नहीं है, उसका मतलब हुआ कि वह उदासीन है; उसे प्रयोजन ही नहीं है। वह क्यों बोलेगा? किसलिए बोलेगा? और बोलने के पहले उसको विचार करना पड़ेगा कि ठीक है या गलत! और उसी में तो गड़बड़ हो जाएगी। या तो पक्ष में हो जाएगा, या विपक्ष में हो जाएगा। लोग अजीब-अजीब तर्क ईजाद करते हैं! लेकिन असली बात तो छिपाने के लिए।
और ये वही पुराने तर्क हैं, जो सदा से वे ईजाद करते रहे।
बौद्धों को भारत में टिकने नहीं दिया। आखिर भारत में एक समय था, कि बुद्ध की छाया में और प्रभाव में और फिर अशोक की गर्जना में पूरा का पूरा भारत बौद्ध हो गया था। फिर सारे बौद्ध गए कहां! फिर उनका हुआ क्या? लाखों संन्यासी थे बौद्धों के भारत में, उनको कड़ाहों में जलाया गया; उनको मारा गया, काटा गया। उनको खदेड़ा गया मुल्क के बाहर। उनको भारत छोड़ देना पड़ा। तिब्बत में बसे। लंका में बसे। बर्मा से बसे। जापान गए। चीन गए। कोरिया गए। पूरा एशिया बौद्ध हो गया। सिर्फ भारत को छोड़ना पड़ा उन्हें। इतनी उनको मजबूरियां कर दीं खड़ी!
उनकी सारी चेष्टा यही है कि वे इतनी मजबूरियां मेरे लिए खड़ी कर दें कि मुझे भारत छोड़ना पड़े। उनकी आकांक्षा यही है। लेकिन मैं भारत छोड़ने वाला

नहीं हूं। मैं तो यहीं शराब ढालूंगा। यहीं पीऊंगा, यहीं पिलाऊंगा। यहीं दीवानगी फैलाऊंगा। क्योंकि मेरे हिसाब में भारत के पास ठीक-ठीक भूमि है।
बुद्धों ने इस भूमि को निर्मित किया है। महावीरों ने इस भूमि को सींचा है।
कृष्णों ने इस भूमि पर बीज बोए हैं। इस भूमि को यूं छोड़ देने वाला मैं नहीं हूं।
इस भूमि का पूरा-पूरा उपयोग कर लेना है, क्योंकि इसी भूमि से सारी मनुष्यता को बचाने वाले धर्म का अभ्युदय हो सकता है, पुनरोदय हो सकता है। अभागे होंगे भारतवासी, अगर वे न लाभाविंत हों। वे जानें।
और यह तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो गया है कि सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं। लेकिन भारतीयों को क्या हो रहा है! मुझे पत्र लिख कर पूछते हैं कि क्या बात है--सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं, फिर भारतीय क्यों नहीं आ रहे हैं?
अभागे हैं। किस्मत खराब है। दो हजार साल से गुलाम रहे हैं। भूमि तो बुद्धों की है, लेकिन बुद्धुओं के हाथ में पड़ गई है। तो जिनमें भी थोड़ी बुद्धि है, वे आ रहे हैं। बुद्धू तो इकट्ठे हो कर किस तरह से, जो सूर्य उदय हो सकता है उसको न उदय होने दिया जाए, उसकी चेष्टा में संलग्न हैं!
मगर यह सूरज उगेगा। यह उग ही चुका है। ये गैरिक वस्त्र पूरब में फैल
गई लाली के प्रतीक हैं। सूरज को आने में देर नहीं है। पूरब लाल हो रहा है; उठ रहा है।
यह काम जारी रहेगा। ये बाधाएं बिलकुल स्वाभाविक हैं। ये बाधाएं किसी
और के लिए नहीं हैं भारत में। न सत्य साईं बाबा के लिए ये बाधाएं हैं; न बाबा मुक्तानंद के लिए बाधाएं हैं; न स्वामी अखंडानंद के लिए ये बाधाएं हैं। तुम जरा सोचते हो कि ये बाधाएं सिर्फ एक आदमी के लिए हैं! मेरे लिए हैं। और किसी के लिए ये बाधाएं नहीं हैं। इससे कुछ सोचो, इससे कुछ विचारो, कि मामला क्या है? जरूर कुछ राज है इस बाधा में।
मरे हुए धर्म को जो भी पोषण देने वाले लोग हैं, और उसको मुरदा ही रखने वाले लोग हैं, मरी लाश को ही जो सम्हालने वाले लोग हैं, उनको कोई बाधा नहीं है। मैं कहता हूं--आग लगाओ इस लाश को। जो मर गया है, उसे जलाओ, ताकि हम नए के लिए जगह बना सकें। इसलिए बाधा है।
यह श्लोक प्रीतिकर है। धर्म एव हतो हंति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद धर्मो न हंतव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत।

मेरा स्वर्णिम भारत-7

अंतर्यात्रा पर निकलो
(Note: from Jyun Machhli Bin Neer (ज्यूं मछली बिन नीर) #3)

पहला प्रश्न: भगवान,
अथर्ववेद में एक ऋचा है--
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्
अन्तरिक्षाद्दि विमारूहम्, दिवोनाकस्य
सर्वज्योतिरगामहम्।
अर्थात हम पार्थिव लोक से उठ कर अंतरिक्ष लोक में आरोहण करें, अंतरिक्ष लोक से ज्योतिष्मान् देवलोक के शिखर पर पहुंचें, और ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं।
भगवान कृपया बताएं कि ये लोक क्या हैं और कहां हैं?

चैतन्य कीर्ति,
लोक शब्द से भ्रांति हो सकती है--हुई है। सदियों तक शब्दों की भ्रांतियों के दुष्परिणाम होते हैं। लोक शब्द से ऐसा लगता है कि कहीं बाहर, कहीं दूर--यात्रा करनी है किसी गन्तव्य की ओर। लोक से भौगोलिक बोध होता है, जबकि ऋषि का मन्तव्य बिलकुल भिन्न है। यह तुम्हारे भीतर की बात है--तुम्हारे अंतरलोक की।
जो जानता है, वह बात ही भीतर की करता है। बाहर कर बात तो सिर्फ इसलिए
की जा सकती है, ताकि भीतर की बात का स्मरण दिलाया जा सके। तुम तो बाहर की भाषा समझते हो, इसलिए मजबूरी है ऋषियों की। उन्हें बाहर की भाषा बोलनी पड़ती है। तुम जो समझ रहे हो वही तुमसे कहा जा सकता है। लेकिन फिर खतरा है। खतरा यह है कि तुम वही समझोगे जो तुम समझ सकते हो।
ऋषि जब जीवित होता है, तब तो वह तुम्हारी भ्रांतियों को रोकने के उपाय
कर लेता है, तुम्हें सम्हाल लेता है, शब्दों के जाल में नहीं पड़ने देता।
लेकिन जब ऋषि मौजूद नहीं रह जाता और ऋषि की जगह पंडित-पुरोहित ले लेते हैं जिनका की सारा आयाम ही शब्दों का है--तब ठीक वह होना शुरू हो जाता है जो ऋषि के विपरीत है।
जीसस ने बहुत बार दोहराया कि वह ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है। लेकिन फिर भी ईसाई जब हाथ जोड़ते हैं तो आकाश की तरफ। वह ईश्वर तुम्हारे भीतर है--थक गये बुद्धपुरुष कह-कह कर, लेकिन जब भी तुम पूजा करते हो तो किसी मूर्ति की। और अगर मूर्ति की भी न की, अगर मस्जिद में भी गये, तो पुकार भी लगाते हो तो बाहर के किसी परमात्मा के लिए। सारी अंगुलियां भीतर की तरफ इशारा कर रही हैं और तुम जब भी देखते हो बाहर की तरफ देखते हो।
मत पूछो कि ये लोक कहां हैं। कहां से उपद्रव शुरू होता है? तुमने पूछा
कि कोई बताने वाला मिल जाएगा कि कहां हैं। नक्शे टंगे हैं मंदिरों में इन लोकों के। ये लोक तुम्हारी चेतना के भिन्न आयामों के नाम हैं। और इतना साफ है, फिर भी आदमी इतना अंधा है। सारी बातें इतनी रोशन हैं, फिर भी अंधे को तो कैसे दिखाई पड़े! रोशनी ही दिखाई नहीं पड़ती, रोशनी में लिखे गये ये सूत्र हैं। इसलिए हमने इनको ऋचा कहा है, साधारण कविता नहीं।
कविता और ऋचा में भेद है। कविता अज्ञानी की ही व्यवस्था है, जोड़त्तोड़ है, शब्दों का जमाव है। राग में बांध ले, छंद में बांध ले, तुक बिठा दे--वह सब ठीक, लेकिन अंधेरा और अंधा टटोले, बस ऐसी ही कविता है। ऋषि हम उसे कहते हैं जिसने देखा और जो देखा, उसे गुनगुनाया, उसे गाया।
ऋषियों से जो वचन झरते हैं, बुद्धपुरुषों से जो वचन झरते हैं, उनके लिए हमने अलग ही नाम दिया--ऋचा। ऋषि से आए तो ऋचा। और ऋषि वह जो देखने में समर्थ हो गया, जिसके भीतर की आंख खुल गयी। भीतर की आंख खुलेगी तो भीतर की ही बात होगी। तुम्हारी तो बाहर की आंखें हैं, भीतर की आंख बंद है। ऋषि भीतर की कहते हैं, तुम बाहर की समझते हो।

इसलिए हर शास्त्र गलत समझा गया है और हर शास्त्र की गलत टीकाएं और व्याख्याएं की गयी हैं। कोई ऋषि ही किसी दूसरे ऋषि के मंतव्य को प्रगट कर सकता है। यह काम पांडित्य का नहीं, शास्त्रीयता का नहीं।
पार्थिव लोक से अर्थ है--तुम्हारी देह, तुम्हारा शरीर। अंतरिक्ष लोक
से अर्थ है--तुम्हारा मन! ज्योतिष्मान देवलोक के शिखर से अर्थ है--आत्मा। और प्रकाशमान ज्योतिपुंज में अंततः सब विलीन हो जाता है, वह है अस्तित्व का नाम--चौथी अवस्था, तुरीय, समाधि, निर्वाण। तीन को पार करना है, चौथे को पाना है। न केवल शरीर के पार जाना है, न केवल मन के पार जाना है--आत्मा के भी पार जाना है, क्योंकि आत्मा भी सूक्ष्म रूप में अहंकार ही है। मैं-भाव अभी भी मौजूद है। आत्मा का अर्थ ही होता है: मैं। इसलिए बुद्ध ने "अनत्ता" शब्द का उपयोग किया। "अत्ता" यानी आत्मा, मैं। अनत्ता यानी "न-मैं", अनात्मा। बुद्ध को समझा नहीं जा सका। अथर्ववेद की टीका करने वाले भी नहीं समझे, कैसा मजा है! ब्राह्मण, पंडित-पुरोहित नहीं समझे। जो दोहराते हैं ऋचाओं को निरंतर सुबह-सांझ, वे भी नहीं समझे। उनको तो लगा ये बुद्ध नास्तिक हैं, आत्मा भी नहीं! और यह अथर्ववेद का सूत्र यही कह रहा है कि "ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं", जहां सब विलीन हो जाता है। इस "विलीन" के लिए बुद्ध ने जो शब्द चुना, बड़ा प्यारा है--"निर्वाण"। निर्वाण का अर्थ होता है: दीये का बुझ जाना। जैसे दीया जला हो और तुम फूंक मार दो और दीया बुझ जाए और कोई पूछे कि कहां गयी ज्योति। कहां बताओगे? कहां विलीन हो गयी। इतना ही कह सकते हो। अब न बता सकोगे कहां है पता ठिकाना; विलीन हो गयी, अस्तित्व में एक हो गयी।
जैसे दीये का बुझ जाना है, ऐसे ही व्यक्ति का बुझ जाना है--तब समष्टि
के साथ एकता सधती है। व्यक्ति का होना एक तरह का त्रैत है। शरीर, मन, आत्मा--यह त्रिकोण है। इस त्रिकोण से तुम निर्मित हो। इस त्रिकोण के मध्य में वह बिंदु है, जहां त्रिकोण शून्य हो जाता है। ये तीनों कोने मिट जाते हैं: निराकार प्रगट होता है, सब आकार खो जाता है।
बहुत स्पष्ट है ऋचा--"हम पार्थिव लोक से उठ कर अंतरिक्ष लोक में आरोहण करें।" हम उठें शरीर से। अधिक लोग तो शरीर में ही खोये हैं। जो शरीर में खोया है वह पशु। जो शरीर में खोया है वह शूद्र। फिर चाहे वह ब्राह्मण घर में पैदा हुआ हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जो शरीर में है वह शूद्र। और अधिकतम लोग शरीर में हैं। शरीर ही उनका सब कुछ है। खाओ पीओ मौज करो--बस इतना ही उनके जीवन का अर्थ है। यही उनके जीवन का गणित है। काम उनके जीवन की सारी अर्थवत्ता है। वासना उनका सारा विस्तार है। भोग--बस इतिश्री आ गयी! भोजन, वस्त्र, काम, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा--बस यहीं समाप्त हो जाता है।
और रोज देखते हैं लोगों को गिरते। रोज देखते हैं लोगों को कब्रों में उतरते। रोज देखते हैं लोगों को चिताओं पर जलते। फिर भी होश नहीं आता। जैसे तय ही कर रखा है कि होश को आने न देंगे! बेटियां हैं, परिवार है, मित्र हैं प्रियजन हैं--और कौन अपना है? कहां कौन किसका है? मगर जीवन भर यही आकांक्षा रहती है--किसी तरह खोज लें, शायद कहीं कोई मिल जाए। अभी तक नहीं मिला, आज तक नहीं मिला, कल मिल सकता है--आशा बनी रहती है। आशा की टिमटिमाती मोमबत्ती में हम चले चले जाते हैं।
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
जो भी मिला असीर-जमानो-मकां मिला
जो भी मिला...
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश सौ बार बिजलियों को मिरा आशियां मिला सौ बार बिजलियों को...
उकता गया हूं जादा-ए नौ की तलाश में उकता गया हूं जादा-ए नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
हर राह में...
किन हौसलों के कितने दीये बुझ के रह गये

किन हौसलों के कितने दीये बुझ के रह गये ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
ऐ सोजे-आशिकी...
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला
लेकिन वो राजदारे...
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
अब तक मुझे न कोई...
कहां मिलता है कोई संगी-साथी, राजदां? असंभव है मिलना। मगर आशा मिट-मिट कर भी नहीं मिटती। गिर जाती है, फिर उठा लेते हैं। हर बार गिरती है, फिर सम्हाल लेते हैं। नये सहारे, नयी बैसाखियां खोज लेते हैं। कितनी बार तुम्हारा आशियां नहीं जल चुका! कितनी बार बिजलियां नहीं गिरीं तुम्हारे आशियां पर! देह में पहली बार तो नहीं हो, अनंत बार रह चुके हो। यह अनुभव कोई नया नहीं, मगर भूल-भूल जाते हो, विस्मरण करते चले जाते हो।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
पता नहीं कैसा है आदमी कि फिर-फिर भरोसा कर लेता है! वही भूलें, वही भरोसे, कुछ नया नहीं। वर्तुल में घूमता रहता है--कोल्हू के बैल की भांति घूमता रहता है।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
सौ बार बिजलियां को मिरा आशियां मिला
और फिर भी सौ बार बिजलियां गिर चुकीं, बार-बार मौत आयी, बार-बार आशियां मिटा। फिर-फिर चार तिनके जोड़ कर तुम आशियां बना लेते हो--फिर इस आशा में कि अब नहीं बिजलियां गिरेंगी।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
सौ बार बिजलियों को मेरा आशियां मिला
उकता जाते हो, ऊब जाते हो, घबड़ा जाते हो, बेचैन हो जाते हो--फिर कोई सांत्वना खोज लेते हो। नहीं मिलती तो गढ़ लेते हो, ईजाद कर लेते हो।
उकता गया हूं जादा-ए-नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
और तुमने देखा, तुम अकेले ही नहीं चल रहे हो--किसी भी राह पर जाओ, धन के पीछे दौड़ो, पद के पीछे दौड़ो, यश के पीछे दौड़ो--हर जगह तुम करोड़ों लोगों की भीड़ को जाते देखोगे।
उकता गया हूं जादा-ए-नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
कारवां चले जा रहे हैं। तुम अकेले नहीं हो। इससे और भ्रांति होती है। ऐसा लगता है जहां इतने लोग जा रहे हैं वहां कुछ जरूर होगा, इतने लोग गलती में नहीं हो सकते। तो फिर अपने को सम्हाल लेते हो। जागते-जागते रुक जाते हो, फिर सपने में पड़ जाते हो।
किन हौसलों के कितने दीये बुझ के रह गये
ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
और क्या-क्या हौसले ले कर आदमी चलता है! क्या-क्या स्वप्न संजोता है!
हर बार दीये बुझ जाते हैं। जरा सा हवा का झोंका और दीया बुझा। फिर हम जला लेते हैं। दूसरों से मांग लेते हैं तेल-बाती। दूसरों से मांग लेते हैं ज्योति। फिर-फिर दीये जला लेते हैं। दीये बुझते जाते हैं, हम जलाते चले जाते हैं।
ि हौसलों के कितने दीये बुझके रह गये
ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
मगर यह हमारी वासना का विस्तार कुछ ऐसा है,टूटता ही नहीं। होश आता ही नहीं। अपने को सम्हाल ही नहीं पाते।
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला
आशा भर रहती है कि कोई मिल जाएगा अपना, कि कोई मिल जाएगा प्रेमी, कि कोई मित्र। इसी आशा में सोचते हैं जिंदगी में रस आ जाएगा, फूल खिल जाएंगे।

था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला
सोचो तो, कितने जमाने हो गये खोजते-खोजते--वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला।
अब तक न मुझे कोई मिरा राजदां मिला
जो भी मिला असीरे-जमानो-मकां मिला
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
यहां शरीर के तल पर सिवाय असफलता के और कुछ भी नहीं, सिवाय विषाद के और कुछ भी नहीं। शरीर से ऊपर उठो। तुम शरीर ही नहीं हो, तुम्हारे भीतर और बहुत है।
शरीर तो यूं समझो कि अपने घर के कोई बाहर ही बाहर जी रहा हो, अपने घर के भीतर ही नहीं प्रवेश किया हो। यूं बाहर ही चक्कर काट रहे हो। चलो जरा भीतर चलो। शरीर से थोड़े भीतर, शरीर से थोड़े ऊपर। और भीतर और ऊपर का एक ही अर्थ है। भाषाकोश में कुछ भी हो, जीवन के कोश में एक ही अर्थ है। जितने भीतर गये उतने ऊपर गये। जितने बाहर आये उतने नीचे गये।
भीतर चलो तो मन है। मन अंतर्यात्रा का पहला पड़ाव है। मन अर्थात मनन की क्षमता, सोचने-विचारने की कला। मनन पैदा हो तो इतना तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि शरीर के जगत में सिर्फ भ्रांतियां हैं, मोह है, आसक्तियां हैं, बंधन हैं, पाश हैं। इसलिए मैंने कहा कि जो शरीर में जीता है वह पशु--बंधा हुआ पशु। पाश से बंधा हुआ, जकड़ा हुआ।
भोजन, यौन--ये दो छोर हैं जिनके बीच घड़ी के पेण्डुलम की तरह शरीर में बंधा आदमी घूमता रहता है--एक से दूसरे की तरफ। इसे समझ लेना। जो लोग अपनी कामवासना को दबा लेंगे उनका भोजन में बहुत रस हो जाएगा, क्योंकि पेण्डुलम उनका भोजन में अटक रहेगा। जो लोग अपने भोजन पर दबाव डालेंगे, रुकावट डालेंगे, उनके जीवन में कामवासना ही कामवासना रह जाएगी।
मन अर्थात मनन। जरा सोचना अपने जीवन के संबंध में कि यह क्या है, मैं क्या कर रहा हूं, क्या मेरे हाथ लग रहा है, क्या किसी और के हाथ लग रहा है? इतने लोग दौड़ते रहे, इतने लोग सदियों-सदियों तक खोजते रहे, किसी को कुछ भी नहीं मिला है, मुझे कैसे मिल जाएगा? एक व्यक्ति नहीं है पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में, जिसने यह कहा हो--बाहर मैंने खोजा और पाया। जिन्होंने पाया वे थोड़े से लोग यही कहते हैं: भीतर खोजा और पाया। बाहर खोजने वाला तो एक नहीं कह सका कि मैंने पाया। है ही नहीं तो कोई कहेगा भी कैसे? किस मुंह से कहेगा? किस बल पर कहेगा? किस आधार पर कहेगा?
सोचो तो थोड़ा सा शरीर के ऊपर उठना शुरू होता है। लेकिन फिर सोच-विचार में ही उलझे न रह जाना नहीं तो उठे थोड़े ऊपर, गये थोड़े भीतर, लेकिन फिर अटकाव खड़ा हो जाता है। कुछ लोग जो शरीर से थोड़े ऊपर उठते हैं, वे मन में उलझे रह जाते हैं। उनका रस बदल जाता है, शरीर के रस से बेहतर हो जाता है। संगीत में उनका रस होगा, काव्य में उनका रस होगा, कला में उनका रस होगा। कोई पशु, कोई पक्षी उत्सुक नहीं हैं--कला में, दर्शन में, काव्य में, मूर्तियों में, चित्रों में, संगीत में। मनुष्य केवल उस दिशा में यात्रा कर पाता है।
"मनुष्य" शब्द भी मनन से ही बनता है, मन से ही बनता है जब तुम देह के ऊपर उठते हो तो तुम पशु नहीं रह जाते। मन में आते हो तो मनुष्य हो जाते हो। लेकिन बस मनुष्य। उतना होना काफी नहीं है। वह शुरुआत है सिर्फ यात्रा की; अंत नहीं, बस प्रारंभ है। फिर जल्दी ही सोच-विचार करने वाले व्यक्ति को यह ही दिखाई पड़ेगा कि सोच-विचार भी हवा में महल बनाना है, इससे भी कुछ उपलब्धि नहीं है। कितना ही तर्कयुक्त सोचो, कोई निष्कर्ष हाथ नहीं लगता। दर्शनशास्त्र के पास कोई निष्कर्ष नहीं है, कोई निष्पत्ति नहीं है।
फिर मन ही मन के ऊपर उठने का पहला बोध देता है, कि शरीर से ऊपर उठे, थोड़ा मुक्त आकाश मिला--अंतरिक्ष मिला, अंतर-आकाश मिला! एक कदम और उठ कर देखें।
मन से ऊपर उठने की कला का नाम ध्यान है। शरीर से ऊपर उठने की कला का नाम ध्यान है। ध्यान से आत्मा मिलेगी। और आत्मा में बहुत सुख है, बहुत अर्थ है, गरिमा है, महिमा है। और इसलिए खतरा भी बहुत है। बहुत से धार्मिक

व्यक्ति आत्मा पर ही अटके रह गये। इतना सुख था कि उन्होंने सोचा, इससे ज्यादा और क्या हो सकता है? आत्मा में जितना मिलता है उससे ज्यादा की कल्पना करना भी असंभव है। लेकिन कुछ हिम्मतवर आत्मा के भी पार गये। उन्होंने कहा: शरीर को छोड़ा, इतना पाया; मन को छोड़ा, और बहुत पाया। काश, आत्मा को भी छोड़ सकें तो पता नहीं कितना मिले! बड़े साहस की जरूरत है।
और बद्धत्व केवल उनको उपलब्ध होता है जो आत्मा को भी छोड़ देते हैं। कुछ हिम्मतवर लोगों ने वह अंतिम कदम भी उठाया। खतरनाक कदम है। किसी अतल अज्ञात में गिरना है, जिसका कोई ओर छोर नहीं होगा। उसी को अथर्ववेद कह रहा है: "और फिर ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं।" फिर विलीन हो जाने के सिवा कुछ भी नहीं है।
थोड़े से तुम बचते हो आत्मा में, बस थोड़े से--अस्मि, मैं-भाव। जरा सी आखिरी रेखा, जैसे पुच्छल तारा गुजर जाता है और पीछे थोड़ी सी रेखा छूट जाती है। थोड़ी देर जगमगाती रहती है, फिर विलीन हो जाती है। या जैसे जैट गुजरता है तो उसके पीछे धुएं की एक रेखा बनी रह जाती है। फिर थोड़ी देर में वह भी बिखर जाती है।
आत्मा भी धुएं की एक रेखा मात्र है--मगर बहुत सुखद, बहुत फूलों से भरी, बहुत सुगंधित। इसलिए अटकाने में बहुत समर्थ। और जिन्होंने सिर्फ शरीर ही जाना है, मन ही जाना है, उनके लिए तो यूं हो जाता है कि मिल गया धनों का धन। इसलिए बहुत से धार्मिक व्यक्ति आत्मा पर रुक जाते हैं, सोचते हैं बस आ गया पड़ाव, अंतिम मंजिल आ गयी, अब कहीं जाना नहीं।
अभी एक कदम और है: तुरीय। अभी चतुर्थ को पाना है। जब तक हो तब तक समझना
कि अभी और कुछ पाने को शेष है। मिट जाना है, तल्लीन हो जाना है, विलीन हो जाना है। जैसे सरिता सागर में विलीन हो जाती है--ऐसे! तुम्हारी जो ज्योति है अलग-थलग वह महाज्योति में एक हो जाए। तब मैं बचता ही नहीं।
ऐसा नहीं है कि बुद्धों ने मैं शब्द का उपयोग नहीं किया--करना पड़ता है लेकिन बस उपयोगिता की द्रष्टि से, क्योंकि तुमसे बात करनी है। अन्यथा उनके भीतर कोई मैं नहीं है।
यह सूत्र प्यारा है। लेकिन चैतन्य कीर्ति, मत पूछो कि ये लोक कहां हैं। ये तुम्हारे भीतर हैं। ये तुम्हारी निज की संपदाएं हैं। अंतर्यात्रा पर निकलो! अथर्ववेद का यह सूत्र तुम्हारी पूरी अंतर्यात्रा के मार्ग को आलोकित कर सकता है।
तीसरा प्रवचन; दिनांक २३ सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-8

चखो, अमृत का स्वाद
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #2)

यह मयकदा है

पहला प्रश्न: भगवान, मुंडकोपनिषद में यह श्लोक आता है:
नायं आत्मा प्रवचने लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यं एवैष वृणुतं तेन लभ्यस
तस्यैष आत्मा विवृणुते स्वाम।।
अर्थात यह आत्मा वेदों के अध्ययन से नहीं मिलता, न मेधा की बारीकी या बहुत शास्त्र सुनने से मिलता है। यह आत्मा जिस व्यक्ति का वरण करता है उसीको इसकी प्राप्ति होती--आत्मा उसीको अपना स्वरूप दिखाता है।
भगवान, उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद! यह सूत्र उन थोड़े-से सूत्रों में से एक है, जिनमें अमृत भरा है। जितना पीओ, उतना थोड़ा।
नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
यह आत्मा शब्दों से उपलब्ध नहीं। वे शब्द फिर वेद के हों कि कुरान के हों कि बाइबिल के, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। यह आत्मा सुनकर उपलब्ध नहीं। फिर चाहे वे वचन बुद्ध के हों, महावीर के, लाओत्सू के, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। क्यों? क्यों आत्मा प्रवचन सुनकर उपलब्ध नहीं हो कसता? क्योंकि आत्मा बाहर की कोई वस्तु नहीं, अंतर्तम का अनुभव है। आत्मा अमृत का स्वाद है। जैसे अंधे को कोई लाश समझाए प्रकाश के संबंध में, अंधा कैसे समझेगा? उसने प्रकाश देखा नहीं; उसकी कोई प्रतीति नहीं, कोई साक्षात्कार नहीं। कुछ का कुछ समझ लेगा।
रामकृष्ण निरंतर यह प्यारी कथा कहते थे--कि एक अंधे मित्र को उसके साथियों ने भोजन पर आमंत्रित किया। गरीब था अंधा। खीर परोसी। उस अंधे ने अपने पास में बैठे हुए मित्र को पूछा, बहुत स्वादिष्ट है, यह क्या है? मित्र ने कहा, यह खीर है। दूध की बनी है। एक मिष्ठान्न है। अंधा पूछने लगा, दूध कैसा होता है? मित्र ने कहा, दूध कैसा होता है! शुभ्र होता है, श्वेत होता है। अंधे ने पूछा, उलझाओ मत पहेली को और। बात बनती नहीं, बिगड़ती चली जाती है। मुझे खीर का पता नहीं, तुमने दूध की बात कही। मुझे दूध का पता नहीं, तुमने श्वेत की बात कही। मुझे श्वेत का भी कुछ पता नहीं। यह श्वेत क्या?
मित्र ने कहा, तुम समझे नहीं? अरे, कभी बगुला देखा है? जैसे बगुला होता है, शुभ्र, श्वेत।...पुरानी कहानी है, नहीं तो मित्र कहता, नेता देखा है? सफेद, शुद्ध खद्दर। और बगुले और नेता में ऐसी भी बहुत संबंध है। बगुले ही नेता होता हैं। और बगुला पुराना नेता है, बड़ा अभ्यासी नेता है। बगुले को कभी खड़ा देखा है, सरोवर के तट पर, एक टांग पर? ऐसा आसन साधता है! पुराना योगी है। तपस्वी है। एक ही टांग पर,खड़ा रहता है--बिना हिले, बिना डुले। एकाग्रचित्त से। क्योंकि हिले-डुले तो पानी हिल-डुल जाए। पानी हिल-डुल जाए तो मछलियां सजग हो जाएं। फिर उसके पास न आएं। यूं खड़ा रहता है कि जैसे ही नहीं। तभी मछलियां फंसती हैं। यूं ही नेता भी खड़ा रहता है, तभी मछलियां फंसती हैं। वह धंधा एक ही है। मगर कहानी पुरानी है रामकृष्ण के समय में अभी यह गांधीवादी नेता आया नहीं था। अब थोड़ी रद्दोबदल कर लेनी चाहिए कहानी में; थोड़ा आधुनिक बना लेना चाहिए।...उस मित्र ने कहा कि बगुले को देखा है? जैसा बगुला होता है।
मित्र भी पंडित रहा होगा। पंडित यानी अंधे से भी गया-गुजरा। नहीं तो अंधे को कोई समझाने बैठे रंग की बात! अंधे को जो रंग की बात समझाने बैठे, वह

महा अंधा होना ही चाहिए। अंधे ने कहा, अब मैं कुछ और पूछूं, ठीक नहीं, क्योंकि बात दूर से दूर हुई चली जाती है। मैंने बगुला कभी देखा नहीं। कुछ इस ढंग से कहो कि मेरी भी समझ में आ सके। मैं अंधा हूं, यह देखकर कहो। तब उसे होश आया। उसने कहा, तो फिर ऐसा करो, यह मेरा हाथ है, मेरे हाथ पर हाथ फेरो। उसने अपने हाथ को इस ढंग से मोड़ा जैसे बगुले की गर्दन हो। अंधे ने हाथ पर हाथ फेरा और मित्र ने कहा, देखते हो, इस तरह बगुले की गर्दन होती है। वह अंधा प्रसन्न हो गया, आह्लादित हो गया, उसने कहा, धन्यवाद! तुम्हारे कष्ट के लिए बहुत अनुगृहीत हूं। अब समझा कि खीर कैसी होती है। मुड़े हुए हाथ जैसी।
स्वाभाविक। अंधे पर हंसना उचित नहीं। अंधे की मजबूरी समझो। और जहां
तक आत्मा का संबंध है, करीब-करीब सभी अंधे हैं। क्योंकि भीतर की आंख तो खुली नहीं है। तो जो भी आत्मा के संबंध में कहा जाएगा, वह गल समझा जाएगा। तुम तक पहुंचते-पहुंचते बुद्धों के वचन कुछ के कुछ हो जाते हैं। बुद्ध कहते एक बात, तुम सुनते दूसरी बात। और यह-स्वाभाविक है। क्योंकि बुद्ध जो कहते हैं, वही समझने के लिए तुम्हें भी प्रबुद्ध होना होगा। उसी जीवन तल पर होना होगा। उसी चैतन्य की कोटि में होगा। वही बोध, वही समाधि, वही ध्यान। वही अंतराकाश--ज्योतिर्मय। वही आह्लाद। वही शून्यता। वही मौन। तभी तो बुद्ध अपने स्वाद को तुम तक पहुंचा सकेंगे। मगर जिसको ऐसी अवस्था हो गयी हो, उसे समझने को ही कुछ नहीं बचा।
एक बुद्ध को तो दूसरे बुद्ध से बोलने की कोई जरूरत नहीं होती। बिन बोले बात समझ में आ जाती है। क्योंकि दोनों ही एक जगह खड़े होते हैं, एक ही चैतन्य की अवस्था में। दो होते ही नहीं। जहां दो बुद्ध मिलते हैं, वहां एक ही रह जाता है। हजार बुद्ध भी मिलें तो वहां बुद्धत्व तो एक ही होता है। जैसे हजार नदियां गिर जाएं सागर में, क्या फर्क पड़ता है! सब जाकर सागर के साथ एक हो जाती हैं। सब खारी हो जाती हैं। सबका स्वाद सागर का स्वाद हो जाता है। हजार बुद्ध इकट्ठे हों तो वहां हजार बुद्ध नहीं होते। जैसे हजार दीये तुम जला दो तो रोशनी एक होती है--दीये हजार होंगे। हजार देहों में बुद्धत्व का दीया जलेगा, मगर रोशनी एक होगी। और सबकी रोशनी एक है। किससे कहना? क्या कहना? दो बुद्धों के पास एक-दूसरे से कहने को कुछ भी नहीं होता। जो बोल सकते थे, जो एक दूसरे को समझ सकते थे, वे बोलते नहीं--बोलने को कुछ नहीं बचता। और दो बुद्धुओं के पास बहुत बोलने को होता है, मगर समझने को कोई भी नहीं होता वहां। दोनों बुद्धू हैं, समझने वाला कहां कौन? इस दुनिया में कितनी बकवास चलती है! जानें चली जाती हैं, तलवारें खिंच जाती हैं। दो बुद्धू बहुत बोलते हैं, समझ में किसी के कुछ नहीं आता। दो बुद्ध बोलते नहीं, समझ में सब आ जाता है।
तो न तो बुद्धों के बीच संवाद होता है न बुद्धुओं के बीच संवाद होता है। बुद्धुओं के बीच विवाद होता है, बुद्धों के बीच मौन होता है।
फिर बोलना कहां सार्थक है? जब कोई बुद्धपुरुष अबुद्धों से बोलता है,
बस यहीं केवल बोलने की कोई सार्थकता है; थोड़ी-बहुत; वह भी बहुत ज्यादा नहीं। क्योंकि यह सूत्र बहुत स्पष्ट है।
नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
नहीं मिलेगी यह आत्मा प्रवचन से। फिर बुद्ध क्यों बोलते हैं? फिर उपनिषद का यह ऋषि भी क्यों बोला? इतना भी कहने की क्या बात थी? बुद्ध बोलते हैं इस आशा में--इस आशा में हनीं कि तुम समझ पाओगे वरन इस आशा में कि शायद तुम्हारे भीतर जानने की प्यास जग जाए, अभीप्सा पैदा हो जाए। तुम्हारे भीतर सोयी पड़ी है अभीप्सा। आग दबी पड़ी है, जरा उकसाने की बात है। जरा राख झाड़ देने की बात है और ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।
बुद्ध इसलिए नहीं बोलते तुमसे, इस आशा में नहीं बोलते कि तुम समझ लोगे, इस आशा में बोलते हैं कि शायद समझने की यात्रा पर निकल जाओ; शायद तुम्हारे जीवन में खोज पैदा हो जाए; एक अभीप्सा जग जाए जानने की कि यह क्या है? क्या है आत्मा? क्या है हमारे जीवन का सत्य? हम कौन हैं, कहां से हैं, कहां जा रहे हैं? यह कौन है जो हमारे भीतर है; बोलता है, सुनता है, जीता है? यह जीवन क्या है?
देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना

शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना देखना भी तो.
उनको यां वादे पै आ लेने दे ऐ अब्रे बहार जिस तरह चाहना फिर बाद में बरसा करना देखना भी तो उन्हें दूर से देख करना शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना देखना भी तो.
कुछ समझ में नहीं आता कि ये क्या है हसरत
उनसे मिलकर भी न इजहारे तमन्ना करना
देखना भी तो उन्हें दूर देखा करना
शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना
देखना भी तो.
बुद्ध बोलते हैं इसलिए कि तुम्हारे भीतर पड़ी कोई सोयी याद जग जाए। अभी तो दूर से ही देखोगे। जैसे आकाश मेघाच्छादित न हो और कोई सैकड़ों मील दूर से हिमालय के उत्तुंग को देखे। उन जमी हुई बर्फ को देखे। देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना।
शाम हो या कि सहर याद उन्हीं की रखनी
दिन हो या रात हमें जिक्र उन्हीं का करना
देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना देखना भी तो.
बुद्धों के बोलने का प्रयोजन यह नहीं है कि तुमने सुन लिये शब्द और तुम्हें ज्ञान हो जाएगा। इतना ही है कि शायद शब्द तुम्हारे भीतर किसी भूली-बिसरी प्यास को जगा दें। शायद बुद्धों की मौजूदगी तुम्हारे भीतर कुतूहल बने, जिज्ञासा बने, मुमुक्षा बने। वे बोलते हैं इसलिए कि शायद उनके वचनों की चोट तुम्हारे हृदय की वीणा को छेड़ दे। नहीं कि तुम सत्य को जान लोगे, लेकिन सत्य को जानना है, इतना स्मरण आ जाए तो बहुत। बस, इतना ही स्मरण आ सकता है। जागे हुए व्यक्तियों ने सिर्फ इसीलिए बात की है गैर-जागे हुए व्यक्तियों से कि देखो, हम जाग गये; देखो, हमारे देख मिट गये; देखो, हमारा संताप झड़ गया; देखो, हमारे जीवन में फूल खिल गये; देखो ये सुगंध, यह तुम्हारी भी सुगंध है! यह तुम्हारे भी भीतर छिपा हुआ खजाना है। यह तुम्हारी भी संपदा है। जरा खोदो और पा लोगे।
लेकिन जो मूढ़ हैं, वे केवल शब्दों को पकड़कर बैठ जाता हैं। जैसे तोते राम-राम दोहराते रहते हैं, ऐसे ही वे भी वेदों को दोहराते हैं, उपनिषदों को दोहराते हैं। जब यह बड़े मजे की बात है, मुंडकोपनिषद में यह शह श्लोक है, और मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो जीवन भर से मुंडकोपनिषद पढ़ रहे हैं, जिनको उसका शब्द-शब्द याद है और जिनको जरा भी बेचैनी नहीं होती इस श्लोक को उद्धरण करने में और जिन्होंने जाना नहीं और जिनकी आंखें खुली नहीं।
नायं आत्मा प्रवचने लभ्यो। थोड़े-से शब्दों में कितनी बात कह दी। बूंद में जैसे सागर को समा दिया। नहीं, प्रवचन से यह उपलब्ध नहीं है। सुनना जरूर उनको जो जानते हैं, लेकिन उनके शब्दों को मत पकड़ लेना। बुद्ध ने कहा है: मैं जो कहता हूं, उस पर ज्यादा ध्यान मत दो, मैं जो हूं, उस पर ध्यान दो। मैं जो कहता हूं, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं, मैं जहां से कहता हूं, वह स्रोत महत्वपूर्ण है। और, मैं कहूं, इसलिए मत मानना। मैं कहूं, इसलिए तो केवल प्रयोग करना जानने का। हां, जिस दिन जान लो, उस दिन मानना।
न मेधयां न बहुना श्रुतेन।
न तो बड़ी मेधा से, प्रतिभा से, तर्क से, बुद्धि से यह आत्मा मिलती है। तर्क के हाथ बहुत छोटे हैं। आकाश के तारों को तर्क से नहीं छुआ जा सकता। तर्क के लिए तो आत्मा वैसे ही है जैसे तुमने ईसप की कहानी में पढ़ा है कि लोमड़ी उछली, कूदी, अंगूरों तक पहुंची नहीं। फिर चारों तरफ उसने देखा कि कोई देखता तो नहीं है। और फिर यह कहती हुई कि अगर किसीने देख भी लिया हो तो सुन ले कि अभी अंगूर कच्चे हैं, अभी अंगूर खट्टे हैं, चल पड़ी। एक खरगोश छिपा यह देख रहा था झाड़ी में से; उसने कहा, चाची, आप पहुंच नहीं पायीं। लेकिन लोमड़ी ने कहा, चुप, बदतमीज, पहुंच कर करूंगी क्या, अभी अंगूर कच्चे हैं, अभी अंगूर खट्टे हैं। पक जाने दे, फिर पहुंचूंगी, अभी तो तोड़ने से सार

क्या है! उछल कर मैंने देख लिया कि अंगूर अभी कच्चे हैं और खट्टे हैं। अभी चखा नहीं, छुआ भी नहीं और जान लिया कि अंगूर खट्टे हैं!
तर्क की छलांग बहुत छोटी है। इतनी छोटी। लेकिन तर्क का अहंकार बहुत बड़ा है। तो तर्क के पास एक ही उपाय है कि वह कह दे, आत्मा होती नहीं। अंगूर कच्चे, अंगूर खट्टे। तर्क की पकड़ में नहीं आती आत्मा हो कैसे सकती है; इसलिए नहीं है। ऐसा इनकार करके तर्क अपने अहंकार को बचा लेता है।
जरूर तर्क के हाथ कुछ चीजों तक पहुंचते हैं--विज्ञान में सार्थक है तर्क, क्योंकि वस्तुओं को पकड़ लेता है, खोज लेता है। लेकिन आत्मा कोई वस्तु नहीं। आत्मा तो तर्क के पीछे है, तर्कातीत है। तर्क के आगे जो है, उसको तर्क छू सकता है, लेकिन तर्क के पीछे जो है, उसके लिए तर्क क्या करे! दर्पण के सामने जो है, वह दर्पण में दिखायी पड़ जाएगा, लेकिन दर्पण के पीछे जो है, वह दर्पण में कैसे दिखायी पड़ेगा। लेकिन अगर दर्पण का भी अहंकार हो तो दर्पण भी कहेगा कि जो मेरे पीछे है, वह है ही नहीं।अगर होता तो दिखायी पड़ता। जो मुझमें दिखायी न पड़े वह है ही नहीं।
तर्क के सामने संसार है और पीछे तुम हो। और तुम्हारा होना आत्मा है। तर्क में तुम्हारा कोई प्रतिफलन नहीं बनता। इसलिए तर्क निश्चित रूप से नास्तिक होता है।
"न मेधया"। बुद्धि से नहीं पाया जा सकता। और बुद्धि है क्या? विचार की शृंखला। और विचार से कभी किसीने अज्ञेय को जाना है? विचार की तो सीमा है, ज्ञात। जो जाना है, विचार उसी की जुगाली करता है। तुमने भैंसों को जुगाली करते देखा? बस, विचार उतना ही करता है, जुगाली करता है। जो सुना है, जो पढ़ा है, उसीकी जुगाली करता है। लेकिन आत्मा को न तो जाना जा सकता है, न सुना जा सकता है, न पढ़ा जा सकता है, उसकी जुगाली कैसे करोगे? उसके लिए तर्कातीत होना जरूरी है। आत्मा को जानने के लिए विचार के पार जाना जरूरी है। निर्विचार होना जरूरी है। यही तो समाधि की परिभाषा है, निर्विचार, निर्विकल्प, मनातींत। वह जो मनातीत अवस्था है समाधि की, उसमें ही जाना जाता है आत्मा।
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
और बहुत सुन लोगे तुम, बहुत जानकारी भी इकट्ठी कर लोगे, सारे शास्त्र तुम्हें कंठस्थ हो जाएं, तो भी तुम्हारे अनुभव में कुछ न आएगा। गीता कंठस्थ है लोगों को लेकिन इससे वे कृष्ण नहीं हो गये हैं। धम्मपद कंठस्थ है लोगों को, इससे वे बुद्ध नहीं हो गये हैं। कितने लोग कुरान की आयातों को दोहराते हैं, मगर इससे वह मुहम्मद नहीं हो गये हैं। काश, इतना आसान होता! कि हम शास्त्रों को दोहरा देते यंत्रवत और शास्त्रों में जो छिपा पड़ा है, वह हमारी संपदा हो जाता। तब तो हम विश्वविद्यालयों में धर्म सिखा सकते थे।
मैं तुमसे कहता हूं, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। लेकिन मैं हैरान होता हूं, जो लोग मुंडकोपनिषद के इस सूत्र को उद्धरण देते हैं, वे भी धार्मिक शिक्षा की बात करते हैं। तब मैं देखता हूं कि चूक गये वे, यह सूत्र भी उनकी पकड़ में नहीं आया। आत्मा तो बहुत देर, आत्मा के संबंध में यह सूत्र भी उनकी समझ में नहीं आया। धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए! पंडित, पुरोहित, मौलवी, पादरी, सबकी एक इच्छा है; संत महात्मा, मुनि, सबकी एक इच्छा है: धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए। धर्म की शिक्षा हो सकती है--सवाल यह है!
मैं विश्वविद्यालय में जब प्रोफेसर था तो दिल्ली में मंत्रालय ने भारत से कोई बीस प्रोफेसरों को आमंत्रित किया था--धार्मिक शिक्षा के ऊपर एक संगोष्ठी आयोजित थी--भूल-चूक से वे मुझे भी बुला बैठे। भूल-चूक से ही कहूंगा, क्योंकि उन्होंने आशा की होगी कि मैं धार्मिक शिक्षा के संबंध में कुछ सुझाव दूंगा कि कैसे धार्मिक शिक्षा दी जाए और मैंने मुंडकोपनिषद का यह सूत्र ही कहा--
नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधयां न बहुना श्रुतेन।
धर्म की शिक्षा हो ही नहीं सकती। और जिसकी शिक्षा हो सकती है, वह धर्म नहीं है। इसलिए कोई विश्वविद्यालय कभी धर्म की शिक्षा नहीं दे सकेगा। धर्म के संबंध में शिक्षा दे सकता है, कि हिंदू क्या कहते हैं, मुसलमान

क्या कहते हैं, ईसाई क्या कहते हैं, लेकिन कोई विश्वविद्यालय जीसस को, महावीर को, जरथुस्त्र को पैदा नहीं कर सकेगा। हां, गणित की शिक्षा हो सकती है। विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, भूगोल की, इतिहास की शिक्षा हो सकती है, लेकिन धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती है। धर्म के संबंध में शिक्षा हो सकती है, लेकिन स्मरण रखना भेद को: प्रेम के संबंध कभी प्रेम नहीं किया। पुस्तकालयों में हजारों किताबें हैं। और ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। ईश्वर के संबंध में तो कोई भी जान सकता है। लेकिन संबंध में जानना और सत्य को जानना दो भिन्न बातें हैं। खतरा यही है कि कहीं सूचनाओं में ही न भटक जाना, कहीं सूचनाओं में ही न अटक जाना। बहुत लोग अटके हैं। जिनको तुम पंडित कहते हो, वे इसी तरह के अटके हुए लोग हैं।
न मेधयां न बहुना श्रुतेन।
कितना ही श्रुति को पढ़ो, कितना ही स्मृतियों को पढ़ो, कितने ही सुंदर-सुंदर शब्दों के संग्रह बना लो, कितने ही सुभाषित कंठस्थ कर लो, इससे कुछ भी न होगा। तुम जितने अज्ञानी थे, उतने ही रहोगे। हां, एक खतरा है कि तुम्हें यह भ्रांति पैदा हो सकती है कि तुम ज्ञानी हो गया। और यह सबसे बड़ा खतरा है। अज्ञानी को भ्रांति हो जाए कि ज्ञानी हो गया, अब इसकी जीवन-स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी। अब इसके सुधार का उपाय भी न रहा।
सदगुरु तुम्हें यह नहीं सिखाता कि आत्मा क्या है, सदगुरु तुम्हें यह नहीं बताता कि परमात्मा क्या है। सदगुरु तुम्हें ज्ञान नहीं देता, सदगुरु तुम्हें ध्यान देता है। और ध्यान का अर्थ है: निर्विचार होना, निर्विकल्प होना; शास्त्र से मुक्त होना, शब्द से मुक्त होना, सिद्धांत से मुक्त होना, सूचना से मुक्त होना। ध्यान का पहला अर्थ है: अपने अज्ञान को स्वीकार करना, अंगीकार करना। सुकरात सही है। सुकरात कहता है, मैं बस इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। यह ज्ञान की तरफ पहला कदम है। और जिसको यह भ्रांति है मैं जानता हूं--और भ्रांति पैदा हो जाती है सुंदर वचनों से--वह भटक गया। ज्ञान जितने लोगों को डुबाता है, अज्ञान नहीं डुबाता। अज्ञान ज्यादा खतरनाक है। उपनिषद का प्रसिद्ध वचन है कि अज्ञानी तो अंधेरे में भटकते ही हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। मगर मजा यह है, इस सूत्र को भी पंडित याद कर लेते हैं। इस सूत्र का भी तोतों की तरह उद्धरण देते हैं
यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस
यह आत्मा तो जिसका वरण करता है, उसीको मिलता है। यह महत्वपूर्ण सूचना है, मगर इसके बड़े गलत अर्थ किये गये हैं--होने ही थे गलत अर्थ। जितनी महत्वपूर्ण बात हो उतने गलत अर्थ होंगे। क्योंकि जितनी महत्वपूर्ण बात हो, तुम्हारे अनुभव से उतनी ही दूर हो जाती है। तुम्हारे और उसके बीच फासला बड़ा होता जाता है। तुम्हें वे ही बातें समझ में आती हैं जो तुम्हारे अनुभव के करीब पड़ती है। और सत्य तो बहुत दूर। तुम्हारे और उसके बीच तो कोई नाता ही नहीं रहा है। जन्मों से काई नाता नहीं है। फासला बढ़ता ही गया है। इस सूत्र का यह अर्थ किया गया है अब तक और मैं तुमसे कहना चाहता हूं,
वह अर्थ बुनियादी रूप से गलत है। अर्थ किया गया है कि यह तो परमात्मा की जिस पर कृपा होती है, उसको आत्मा का बोध होता है। न तो प्रवचन से मिलती, न बुद्धि से मिलती, न जानकारी से मिलती। तो फिर कैसे मिलती है? परमात्मा की जिस पर कृपा होती है। यह सरल अर्थ निकाल लिया लोगों ने। तो करना क्या है? फिर करने को कुछ बचा नहीं। फिर तो परमात्मा की जब कृपा होगी तब होगी। इस देश की काहिलता इसी तरह के अर्थों पर निर्भर है। इस देश की सुस्ती, मुर्दगी, इस देश का मरा-मरा होना, इस देश की दयनीयता, दीनता, इस देश की बाईस सौ वर्ष पुरानी गुलामी इसी तरह के अर्थों पर आधारित है। इसी तरह की हमने बेवकूफियां कर ली हैं। जब पत्ता भी उसकी मर्जी है, तो हम क्या कर सकते हैं? इसलिए अब गुलाम होना ही ठीक है। उसकी मर्जी से राजी होना ही ठीक है।
उसकी बिना मर्जी के पत्ता नहीं हिलता तो बीमारी कैसे हो जाएगी? तो अब क्या कर सकते हैं? इसलिए बीमारी को अंगीकार कर लेना ठीक है। घसीटते रहो बीमारियों को। जीते रहो किसी तरह, सड़ते रहो, कुछ करो मत--क्या कर सकते हैं हम! जब उसकी इच्छा होगी।

यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस। आत्मा को भी हम तो पा नहीं सकते--शास्त्र में है नहीं, वचनों में है नहीं, ज्ञान में है नहीं, बुद्धि में है नहीं; अब क्या करें? अब तो प्रतीक्षा के सिवाय कोई रास्ता न रहा। अब तो जब उसकी कृपा होगी!
इसका तो यह भी मतलब हुआ कि किसी पर उसकी कृपा होती है और किसी पर उसकी कृपा नहीं होती। ज्यादा तो कृपा होती ही नहीं; कभी किसी पर हो जाती है कृपा। मतलब यह हुआ कि परमात्मा की तरफ से भी बड़ा अन्याय चल रहा है। किसी बुद्ध पर हो गयी कृपा, किसी महावीर पर हो गयी कृपा, किसी याज्ञवल्क्य पर हो गयी कृपा, किसी कबीर पर हो गयी कृपा, ठीक! बाकी लोग क्या कर सकते हैं! वे राह देखेंगे, जब जन्मों-जन्मों में कभी उन पर भी कृपा होगी, कभी उन पर भी नजर पड़ेगी, तो ठीक। और नहीं पड़ी तो यूं ही घसीटना है। यूं ही मरना है, यूं ही गलना है।
नहीं, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। ये भाग्यवादी अर्थ इस पर थोप दिया गया। मगर अज्ञानियों के हाथ में अमृत भी पड़ जाए तो जहर हो जाता है। इस सूत्र का बड़ा और अर्थ है: यह तो जिसका वरण करता है, उसीको मिलता है। लेकिन किसका वरण है? परमात्मा की कृपा तो सभी पर बराबर बरसती है--बरसनी ही चाहिए। अगर परमात्मा भी भेदभाव करता हो कि किसी पर थोड़ा ज्यादा बरसे और किसी पर थोड़ा कम बरसे; ब्राह्मण पर थोड़ा ज्यादा और शूद्र पर थोड़ा कम; जनेऊ पहन लो तो थोड़ा ज्यादा और जनेऊ न पहनो तो थोड़ा कम; चुटैया बढ़ा लो तो थोड़ा ज्यादा और चुटैया कटा लो तो थोड़ा कम; अगर ऐसी मूढ़ताएं ईश्वर को भी हों--उपवास कर लो तो थोड़ा ज्यादा और भरे पेट होओ तो थोड़ा कम; सिर के बल खड़े हो जाओ तो थोड़ा ज्यादा और पैर पर चलो, आदमी की तरह, भले आदमी की तरह तो कम। यह क्या पागलपन हुआ कि मंदिरों में घंटियां बजाओ तो थोड़ा ज्यादा और घंटियां न बजाओ तो बस, नाराज हो गये! परमात्मा की कृपा तो सभी पर बराबर बरसती है। लेकिन कुछ पात्र हैं जो उलटे रखे हैं। वर्षा तो होती रहती है अमृत की लेकिन पात्र खाली के खाली रह जाते हैं।
वर्षा में कुछ भेद नहीं। तुम देखो रखकर, एक मटके को उलटा रख दो, वर्षा
हो रही हो, धुआंधार वर्षा हो रही हो, मूसलाधार वर्षा हो रही हो और बर्तन न को उलटा रख दो, कैसे भरेगा! वर्षा क्या करे! वर्षा की तरफ से कोई कंजूसी नहीं है, मगर पात्र तो सीधा होना चाहिए! फिर पात्र भी सीधा हो, लेकिन फटा हो, तो भरता हुआ मालूम पड़ेगा लेकिन भर कभी पाएगा नहीं। इधर भरेगा उधर खाली जमाने भर की गंदगी से भरा हो, तो वर्षा तो हो भी जाए, भर भी जाए मगर वह जल पीने योग्य नहीं होगा। वह तुम्हारे तृषा को मिटा न सकेगा।
तो ये तीन बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं।
पहली बात, पात्र सीधा हो। पात्र सीधा हो, इसका अर्थ है: तुम्हारा हृदय अंगीकार करने को राजी हो। इसको श्रद्धा कहा है। श्रद्धा का अर्थ है: अंगीकार करने की तत्परता। स्वागत, अभिनंदन, वंदनवार। जैसे मेहमान आता है और तुम द्वार पर खड़े होकर पलक-पांवड़े बिछाए प्रतीक्षा करते हो, राह देखते हो। दरवाजा बंद करके नहीं बैठते, दरवाजा खुला रखते हो कि कहीं मेहमान लौट न जाए। द्वार पर ही खड़े रहते हो कि आए तो स्वागत की आरती उतारनी है। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि तुम आओगे तो मेरे द्वार बंद न पाओगे। पात्र सीधा हो।
संदेह से भरा हुआ व्यक्ति उलटा पात्र है। बंद अंगीकार करने को राजी नहीं, इनकार करने को तत्पर।
फिर, छिद्र नहीं होने चाहिए। पात्र सीधा हो और छिद्र न हों। तुम्हारे जीवन में कितने छिद्र हैं! तुम्हारी ऊर्जा कितने छेदों से बही जा रही है! क्रोध से तुम कितनी ऊर्जा को बहाते हो! पाते क्या हो? पाते कुछ भी नहीं, गंवाते बहुत हो। कमाते क्या हो? क्रोध करके कभी किसीने कुछ कमाया है? हजार तरह की वासनाएं तुम्हारे छिद्र हैं। कोई धन के पीछे दौड़ रहा है, कोई पद के पीछे दौड़ रहा है, सभी मृगमरीचिकाओं के पीछे दौड़ रहे हैं, लेकिन दौड़ने में ऊर्जा समाप्त होती है। दौड़ने में तुम्हारी शक्ति क्षीण होती है। और जिन चीजों के पीछे भाग रहे हो वहां कुछ पाने को नहीं; सिर्फ मौत मिलेगी। हर आदमी अपनी कब्र में गिर जाता है जाकर। कहीं से जाओ, किसी दिशा में भागो--पद

चाहो कि यश चाहो कि धन चाहो--एक दिन पहुंच जाओगे कब्र में। और कहीं तो पहुंचने को नहीं है।
इसके पहले कि कब्र तुम्हें अपने में समा ले, इन छिद्रों को बंद करो।
ये आपाधापी छोड़ो। किसने धन को पाकर पाया है? बड़े से बड़े धनी से भी पूछो तो वह निर्धन है। भीतर अभी रो रहा है। बाहर तो अंबार लग गया धन का, लेकिन भीतर? भीतर तो सब खाली का खाली है। बाहर का धन भीतर के खालीपन को नहीं भर सकता। और बाहर का धन तो मौत छीन लेगी। तुम खाली हाथ आए और खाली हाथ जाओगे। आए थे तब कम से कम मुट्ठी बंधी थी, जाओगे तब मुट्ठी भी खुल जाएगी।...बच्चे आते हैं तो मुट्ठी बंधी होती है, और बूढ़े मरते हैं तो मुट्ठी भी खुल गयी होती है। और भद्द हो गयी होती है! मुट्ठी कम से कम बंद होती है तो पता तो लगता है कि कुछ होगा भीतर। हो या न हो। बंधी मुट्ठी लाख की--समझदार लोग कहते हैं--खुली तो खाक की। बच्चा कम से कम आशाएं लेकर तो आता है, संभावनाएं लेकर आता है, इसलिए मुट्ठी बंद होती है। अभी जिंदगी में हीरे बरस सकते हैं, इसलिए मुट्ठी बंद होती है। बूढ़ा तो सब गंवाकर जाता है, कुछ बरसा नहीं; कुछ हाथ न लगा; उसके हाथ खाली होते हैं; उसके हाथ उसके जीवन की कथा कहते हैं, उसके जीवन की व्यथा कहते हैं।
छिद्र नहीं होने चाहिए। वासनाएं छिद्र हैं।
और फिर छिद्र भी न हों और भीतर अगर गंदगी भरी हो--घड़ा खाली होना चाहिए; घड़ा पहले ही से भरा हो, कूड़ा-करकट से भरा हो, तो भी फिर जलधार बरसती रहेगी मगर तुम खाली के खाली रह जाओगे। और तुम्हारे भीतर कितना कूड़ा-करकट भरा है!--कभी सोचो तो, कभी विचारो तो, कभी एकांत में बैठकर एक खाली कागज लेकर सिर्फ लिखते चले जाओ जो भी तुम्हारे मन में उठ रहा हो--जो भी। किसी को बताना तो है नहीं, दरवाजा बंद कर देना, ताला लगा देना, कि कोई झांक न ले; किसी को बताना नहीं है, इसलिए ईमानदारी बरतना; ईमान से लिख डालना, और फिर आग लगाकर जला देना ताकि किसी को पता भी न चले, अगर तुम्हें तो कम से कम साफ हो जाएगा; दस मिनट लिखने बैठोगे और तुम चकित हो जाओगे कि कौन-सा कचरा तुम्हारी खोपड़ी में भरा हुआ है। क्या-क्या चल रहा है! और कहां-कहां से चला आ रहा है! संगत-असंगत, प्रासंगिक-अप्रासंगिक; एक कड़ी भजन की आती है, दूसरी कड़ी किसी फिल्मी गीत की आ जाती है; पड़ोस में कुत्ता भौंकता है, उसके भौंकने को सुनकर तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद आ जाती है जिसके पास एक कुत्ता था। अब चले! और प्रेयसी को याद आती है तो पत्नी की याद आ जाती है, कि इसी दुष्ट ने तो सब गड़बड़ करवा दिया! अब लगे कोसने अपने को कि किस दुर्दिन में... मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि स्त्रियां आपको नमस्कार करती हैं,
आप जवाब क्यों नहीं देते? उन्होंने कहा, बीस साल पहले एक स्त्री को जवाब दिया था, उसका फल तो अभी तक भोग रहा हूं। अब नहीं! अब जवाब नहीं देता! एक दफा भूल कर ली, वही बहुत है! अब उससे तो किसी तरह बच जाऊं तो काफी है! दिखती नहीं, कोई आशा नहीं! यह मेरी पत्नी मुझे मारकर ही मरेगी!
स्त्रियां जीती भी पुरुषों से पांच साल ज्यादा हैं। उनकी औसत उम्र ज्यादा है--सारी दुनिया में। परमात्मा ने भी क्या इंतजाम किया है! कि तुम आशा ही करते रहो, आशा ही करते रहो!
मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते पर कोई भी ट्रक देखता, बस देखता, एकदम कंपने लगता। पसीना-पसीना हो जाता, चाहे सर्द सुबह ही क्यों न हो! मैंने उससे पूछा कि क्या बात है, कुछ दिन से तुम जब भी कोई बस निकलती है या ट्रक निकलता है, एकदम पसीना-पसीना हो जाते हो, तुम्हें घबड़ाहट किस बात की होती है? तुम अपने रास्ते चल रहे हो, ट्रक बीच में जा रहा है--अलग, तुमसे इतने दूर क्या घबड़ाहट है! उसने कहा घबड़ाहट की बात यह है कि मेरी पत्नी एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग गयी है, तो मुझे डर गलता है कहीं लौट न आ रही हो! बस, ट्रक देखता हूं कि बस, फिर मैं होश में नहीं रह जाता, है प्रभु, कहीं फिर न आ जाएं! आती ही होगी!
जरा बैठो दस मिनट और तुम्हारे मन में क्या-क्या आएगा, उसे लिखते जाना।
और जैसा आए वैसा ही लिखना, सुधारना मत! बनावट न लाना, पाखंड मत करना! नहीं तो बैठकर अच्छे-अच्छे सूत्र लिखने लगे! यदा यदा हि धर्मस्य...! क्योंकि लोग दूसरों को ही धोखा नहीं देते, अपने को भी धोखा देते हैं। अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान--ऐसे कुछ सूत्र मत लिखने लगना! जो सच्चा-

सच्चा आए, वही लिखना। जैसा आए वैसा ही लिखना, भेद ही न करना। और तब तुम देखोगे कि भीतर कैसा कचरा भरा है! क्या-क्या उपद्रव भीतर चल रहा है!
इस कचरे से भरे हुए मन में तुम चाहते हो, परमात्मा का प्रवेश हो जाए, उसका अमृत आ जाए! तुम किस आशा पर बैठ हो? इस सारे कचरे को बाहर फेंक देना जरूरी है। इसको बाहर फेंकने की प्रक्रिया, इसको उलीचने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। मगर ध्यान के नाम से लोग और कचरा भरते हैं। कोई नमोकार मंत्र पढ़ रहा है, कोई गायत्री मंत्र पढ़ रहा है--ध्यान के नाम से!--कोई जय जगदीश हरे घोंटे चला जा रहे! कोई हनुमान चालीसा ही दोहरा रहा है। इससे कुछ भी न होगा। कचरा वैसे ही काफी है, उसमें और कचरा बढ़ा रहे हो--धार्मिक कचरा सही! मगर कचरा कचरा है, धार्मिक हो कि गैरधार्मिक, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। खाली करना है। ध्यान: रिक्त होना। सब कचरा बाहर फेंक दो।
बाहर फेंकने की प्रक्रिया सुगम है, सरल है--साक्षीभाव। जो भीतर कचरा
चल रहा है, उसको देखते रहो। मात्र देखते रहो। तादात्म्य तोड़ लो। मेरा है, भाव छोड़ दो। मैं तो द्रष्टा हूं और जो भी मेरे आमने-सामने आ-जा रहा है, वह सब दृश्य है। मैं दृश्य नहीं हूं। बस, इस भाव में अपने को थिर करते जाओ और तुम धीरे-धीरे पाओगे, कचरा अपने से जा चुका। जिस दिन तुम बिलकुल खाली हो जाओगे, उस दिन--
यं एवैष वृणुते तेन लभ्यमस
--उसी क्षण तुम वर लिये गये; वरण कर लिये गये। परमात्मा तुम्हारा आलिंगन कर लेगा। आत्मा का अनुभव तुम्हारे भीतर सुलग उठेगा।
तस्यैष आत्मा विवृणुते स्वाम।
और तभी तुम जान सकोगे आत्मा के रहस्य; उदघाटित होंगे वे सारे रहस्य।
जान सकोगे आत्मा का स्वरूप।
यह सूत्र प्यारा है। विचारना ही मत, इसे जीने की कोशिश करना। सहजानंद! ऐसे प्यारे-प्यारे सूत्र बिखरे पड़े हैं! हीरे-जवाहरात इनके सामने कुछ भी नहीं! मगर गलत लोगों के हाथ में हीरे-जवाहरात भी पड़ जाएं तो क्या होगा। क्या करेंगे वे? कैसे पहचानेंगे? वे तो इन सूत्रों पर भी अपनी धारणाएं थोप देते हैं। जो सूत्र उनके लिए मुक्तिदायी हो सकते थे, वे उनसे भी अपने लिए नयी जंजीरें खड़ी कर लेते हैं। ऐसी ही जंजीरों में तो हिंदू बंधे है, मुसलमान बंधे हैं, ईसाई बंधे हैं, जैन बंधे हैं। अगर इनमें से किसी ने भी अपने ही सूत्रों को समझा होता, तो उसे दूसरों के सूत्र भी समझ में आ गये होते।
मैं तुम्हें अनुभव से अपने कह रहा हूं कि जिसने भी किसी एक धर्म की मूल आधारशिला को समझ लिया, उसने सारे धर्मों की मूल आधारशिला को समझ लिया। क्योंकि वह आधारशिला एक ही है, अलग हो ही नहीं सकती। इसलिए जो सच में हिंदू है, वह हिंदू नहीं रह जाएगा। जो झूठा है, वही हिंदू रहेगा। जो सच में मुसलमान है, मुसलमान नहीं हर जाएगा। कैसे मुसलमान रहेगा? जो सच में जैन है, जैन नहीं रह जाएगा! जो झूठे हैं, थोथे हैं, पाखंडी हैं, वे ही जैन होंगे। जिसने सच में महावीर या बुद्ध या कृष्ण को पी लिया, एक को तुमने क्या पीआ-- किस घाट से पीआ, क्या फर्क पड़ता है--तुम्हें स्वाद मिल गया! और स्वाद तो सारे सागर का एक है। बुद्ध ने कहा है, तुम सागर को कही से भी चखो, उसका स्वाद एक है। किस घाट से चखते हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता है। कुछ घाटों के कारण सागर का स्वाद नहीं बदलता है।
धार्मिक व्यक्ति तो सिर्फ धार्मिक होगा, न हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई, न बौद्ध न सिक्ख, न पारसी। सिर्फ धार्मिक होगा। और मैं उसी धार्मिक व्यक्ति की तलाश में हूं। उसी धार्मिक व्यक्ति को यहां आमंत्रित कर रहा हूं। इसलिए मुझसे हिंदू नाराज होंगे, ईसाई नाराज होंगे, जैन नाराज होंगे, मुसलमान नाराज होंगे। स्वभावतः। उनकी नाराजगी में समझ सकता हूं। लेकिन सच में धर्म की प्यास है, वे आह्लादित होंगे। वे यहां आकर मस्त होंगे, सरोबोर होंगे। वे यहां आकर गीले हो उठेंगे। उनकी आंखें आनंद के आंसुओं से भर जाएंगी; उनके प्राणों में गीत उठेंगे, गंध उठेगी; उनका जीवन एक तीर्थ; काबा और कैलाश फीके पड़ जाएंगे उनके जीवन के सामने। वे जहां बैठेंगे वहां काबा है, जहां उठेंगे वहां कैलाश है। जहां चलेंगे वहां तीर्थ बन जाएंगे।

स्वभावतः बहुत अधिक लोग मेरे पास नहीं आ सकते हैं। क्योंकि लोग तो पिटी-पिटायी धारणाओं में बंधे हुए हैं। और मैं तुम्हें सारी धारणाओं से मुक्त करना चाहता हूं- सारे शास्त्रों से।

मेरा स्वर्णिम भारत-9

ऋत् है स्वभाव में जीना
(Note: from Jyun Machhli Bin Neer (ज्यूं मछली बिन नीर) #6)

पहला प्रश्न: भगवान,
ऋतस्य यथा प्रेत।
अर्थात प्र्राकृत नियमों के अनुसार जीओ।
यह सूत्र ऋग्वेद का है।
भगवान, हमें इसका अभिप्रेत समझाने की कृपा करें।

आनंद मैत्रेय
यह सूत्र अपूर्व है। इस सूत्र में धर्म का सारा सार-निचोड़ है। जैसे हजारों गुलाब के फूलों का कोई इत्र निचोड़े, ऐसा हजारों प्रबुद्ध पुरुषों की सारी अनुभूति इस एक सूत्र में समायी हुई है। इस सूत्र को समझा तो सब समझा। कुछ समझने को फिर शेष नहीं रह जाता।
लेकिन इस सूत्र का इतना ही अर्थ नहीं है कि प्राकृत नियमों के अनुसार जीओ। सच तो यह है कि "ऋत" शब्द के लिए हिंदी में अनुवादित करने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए समझने की कोशिश करो। प्राकृत शब्द से भूल हो सकती है। निश्चित ही वह एक आयाम है ऋतु का। लेकिन बस एक आयाम। ऋतु बहु आयामी है। जिसको लाओत्सु ने "ताओ" कहा है। उसको ही ऋग्वेद ने ऋतु कहा है। जिसको बुद्ध ने "एस धम्मो सनंतनो" कहा है, "धम्म" कहा है, वही ऋत का अर्थ है।
ऋत का अर्थ: जो सहज है, स्वाभाविक है; जिसे आरोपित नहीं किया गया है आविष्कृत किया गया है; जो अंतस है तुम्हारा, आचरण नहीं, जो तुम्हारी प्रज्ञा का प्रकाश है, चरित्र की व्यवस्था नहीं; जिससे यह सारा जीवन अनुस्यूत है; जिसके आधार से सब ठहरा है, सब चल रहा है; जिसके कारण अराजकता नहीं है। वसंत आता है और फूल खिलते हैं। पतझड़ आता है और पत्ते गिर जाते हैं। वह अद्दश्य नियम, जो वसंत को लाता है और पतझड़ को। सूरज है, चांद है, तारे हैं। यह विराट विश्व है और कोई अराजकता नहीं है। सब सुसंबद्ध है। सब संगीतपूर्ण है। इस लयबद्धता का नाम ऋतु है।
इतने विराट विश्व के भीतर अकारण ही इतना सुनियोजन नहीं हो सकता। कोई अद्दश्य ऊर्जा सबको बांधे हुए है। सब समय पर हो रहा है। सब वैसा हो रहा है जैसा होना चाहिए, अन्यथा नहीं हो रहा है। यह जो जीवन की आंतरिक व्यवस्था है...न तो वृक्षों से कोई कह रहा है कि हरे हो जाओ, न पत्तों को कोई खींच-खींच कर उगा रहा है...। बीज से वृक्ष पैदा होता है, वृक्षों में फूल लग जाते हैं। सुबह होती है, पक्षी गीत गाते हैं।
संगीत में कोई बांसुरी बजाता है तो हम कहेंगे सुंदर है कोई सितार बजाता है, वह भी सुंदर है और कोई तबला बजाता है, वह भी सुंदर है। लेकिन जब बहुत से वाद्य एक साथ किसी एक राग और एक लय में नियोजित हो जाते हैं, जब सारे वाद्यों का संगीत मिल कर एक प्रवाह बनता है--तब जो रस है, तब जो संगीत है, तब जो सौंदर्य है, वह एक-एक वाद्य का नहीं हो सकता। और अगर सारे वाद्य अलग-अलग संगीत पैदा करें तो सिर्फ शोरगुल पैदा होगा, संगीत नहीं पैदा होगा।
यह विश्व एक आर्केस्ट्रा है। और जिस सत्य के कारण यह आर्केस्ट्रा है,
कि बांसुरी तबले से बंध कर बज रही है, तबला सितार से बंध कर बज रहा है, सब एक दूसरे से बंध कर बज रहे हैं, कोई किसी के विपरीत नहीं है, कहीं कोई संघर्ष नहीं है, सहयोग है--ऋत शब्द में सब समाया हुआ है। इसलिए ऋत का अर्थ समझो: धर्म। प्राकृत होना उसका एक अंग है।
जैसे आग का धर्म है गर्म होना और पानी का धर्म है नीचे की तरफ प्रवाहित होना और मनुष्य का धर्म है परमात्मा की तरफ ऊपर उठना। जैसे अग्नि की लपट ऊपर की ओर ही जाती है, चाहे तुम दीए को उलटा भी कर दो तो भी ज्योति ऊपर की तरफ ही जाएगी, ज्योति उल्टी नहीं होगी--ऐसे ही सारा जीवन प्रवाहित हो रहा है किसी अज्ञात शिखर की ओर! किसी ऊंचाई को छूने के लिए एक

गहरी अभीप्सा है। किसी सत्य को जानने की प्यास है। उस परम सत्य का नाम ऋत है।
लाओत्सु ने कहा, उसका कोई नाम नहीं, इसलिए मैं उसको "ताओ" कहूंगा। वेद
भी कहते हैं, उसका कोई नाम नहीं, हम उसे ऋत कहेंगे। ऋत शब्द से ही ऋतु बना है। ऋतु का अर्थ है: पता नहीं कौन अज्ञात हाथ कब मधुमास ले आते हैं, मगर नियोजित, सुसंबद्ध, संगीतपूर्ण! कब हेमंत आ जाता है, कब वसंत आ जाता! कैसे आता है! न कहीं कोई आज्ञा सुनायी पड़ती है, न कहीं ढोल पीटे जाते, न कहीं नोटिस लगाए जाते। कोई किसी को कुछ कहता नहीं। पता नहीं कैसे फूलों को खबर हो जाती है! पता नहीं कैसे पक्षियों को पता चल जाता है! पता नहीं कैसे मेघ घिर आते हैं, मोर नाचने लगते हैं! पता नहीं कैसे, यह जो अज्ञात सबको समाए हुए है अपने में, यह जो अज्ञात सबके भीतर यूं समाया हुआ है जैसे माला के मनकों में धागा पिरोया होता है! यूं तो फूलों का ढेर भी लगा सकते हो, मगर फूलों का ढेर ढेर ही है। लेकिन धागा पिरो दो, इन्हीं फूलों में, तो माला बन जाए। और माला ही अर्पित हो सकती है।
यह जगत फूलों का ढेर नहीं, एक माला है। और माला परमात्मा के चरणों में अर्पित की जा सकती है। यह सारा जगत, जैसे-जैसे तुम समझोगे वैसे-वैसे पाओगे--संगीतपूर्ण है, लयबद्ध है।
तुम अपने ही भीतर देखो। वैज्ञानिक आज तक नहीं खोज पाए कोई उपाय कि रोटी कैसे खून बन जाती है। नहीं तो वैज्ञानिक रोटी से सीधा खून बना लें। रक्तदान की, अस्पतालों में रक्त के बैंक बनाने की ऐसी कोई जरूरत न रह जाए, लोगों से रक्त मांगना न पड़े, मशीन में ही इधर रोटी डाली पानी डाला और दूसरी तरफ ये रक्त निकाल लिया। विज्ञान इतना विकसित हुआ है, फिर भी अभी छोटी सी बात पकड़ में नहीं आ सकी कि कैसे रोटी रक्त बन जाती है। और तुम बनाते हो, ऐसा तो तुम सोचोगे भी नहीं,भूल कर भी नहीं कह सकते हो कि तुम बनाते हो। तुमने रोटी तो गले के नीचे कर ली, इसके बाद तुम्हें पता नहीं कि क्या होता है, कौन सब सम्हाल जाता है? कैसे रोटी टूटती है, कैसे रक्त बनती है, कैसे मांस मज्जा बनती है? वही रोटी तुम्हारी मस्तिष्क की ऊर्जा बनती है। वही रोटी वीर्य कण बनती है। उसी रोटी से जीवन की धारा बहती है। तुम्हारा जीवन ही नहीं, तुम्हारे बच्चों का जीवन भी उस रोटी से निर्मित होता है। तुम्हारे भीतर एक अदभुत कीमिया काम कर रही है। बस कीमिया का नाम ऋत है।
तुम क्यों सांस लेते हो, कैसे सांस लेते हो? अक्सर हम सोचते हैं, हम सांस लेते हैं। वहां बड़ी भूल है, बुनियादी भूल है। हम सांस नहीं लेते । अगर हम सांस लेते होते, तब तो किसी का मरना संभव ही नहीं था। मौत आती और हम सांस लिए चले जाते। हम कहते हम तो सांस लेंगे, तो मौत क्या करती? लेकिन जब सांस चली जाती है बाहर और नहीं भीतर लौटती, तो कोई उपाय नहीं है हमारे पास उसे भीतर लौटा लेने का। गयी तो गयी। हम श्वास लेते हैं, यह भ्रांति है। श्वास हमें लेती है, यह ज्यादा बड़ा सत्य होगा। ज्यादा सही होगा कि श्वास हमें लेती है।
यह हमारा अहंकार है, नहीं तो ऋत को समझने में जरा भी अड़चन न हो। तुम्हारे भीतर भी ऋत समाया हुआ है। तुम्हारी हर सांस उसकी गवाही है।। कौन ले रहा है श्वास तुम्हारे भीतर? तुम तो नहीं ले रहे हो, यह पक्का है।। नहीं तो रात नींद में कैसे लोगे जब तुम सो जाते हो? यह शराब पीकर जब तुम बेहोश होकर नाली में गिर जाते हो, जब यह भी होश नहीं रहता कि नाली है, जब यह भी होश नहीं रहता कि कहां गिर पड़ा हूं, जब यह भी होश नहीं रहता कि कौन हूं...। मुल्ला नसरुद्दीन एक रात शराब पीकर लौटा। सामने ही उसके दरवाजे पर बिजली का खंभा है। दूर से ही उसने देखा खंभे को, तो खंभे से बच कर निकलने की कोशिश की कि कहीं टकरा न जाऊं। यूं काफी जगह है खंभे के दोनों तरफ। और खंभे की मोटाई ही क्या होगी--छह इंच। कोई उससे टकराने का कारण न था। कोई अंधा भी निकलता तो सौ में एक ही मौका था कि टकराता। मगर वह बचकर निकलने की कोशिश की कि कहीं टकरा न जाऊं और टकरा गया। बचकर निकलने में एक खतरा है टकराने का।
अगर तुमने नयी-नयी साइकिल चलानी सीखी हो तो तुम्हें पता होगा, साठ फीट चौड़ा रास्ता, और रास्ते के किनारे लगा हुआ एक मीन का पत्थर। वह बेचारा हनुमान जी की तरह अलग बैठा हुआ है, उसको कुछ लेना-देना नहीं तुम्हारी

साइकिल से, तुमसे। मगर दूर से ही वह जो लाल हनुमान जी दिखाई पड़ते हैं मील के पत्थर के, सिक्खड़ साइकिल वाले को घबराहट होती है कि कहीं पत्थर से टकरा न जाऊं। और टकराता है, उसी पत्थर से जाकर टकराता है। साठ फीट चौड़े रास्ते पर साठ मील लंबे रास्ते पर, एक छोटा-सा पत्थर जिसमें कोई बहुत निशानेबाज भी अगर तीर मारना चाहता तो शायद चूक जाता, मगर नया सिक्खड़ नहीं चूकता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिससे हम बचना चाहते हैं उस पर हमारी आंखें आरोपित हो जाती हैं। स्वाभावतः, उससे बचना है तो हमारा सारा चित्त उसी पर केंद्रित हो जाता है। और सब भूल जाता है, सारी नजर वहीं टिक जाती है, सारे प्राण वहीं अटक जाते हैं। वह साठ फीट चौड़ा रास्ता भूल गया, बस वे हनुमान जी दिखाई पड़ने लगे। अब तुम लाख भीतर-भीतर हनुमान चालीसा पढ़ो, कि कहो कि जय बजरंग बली, बचाओ बजरंग बली! मगर अब कुछ न होगा, आंखें तुम्हारी टिकी हैं। इसको मनोवैज्ञानिक कहते हैं: आत्म सम्मोहन। तुम सम्मोहित हो गए हो पत्थर से। अब वह पत्थर तुम्हें खींच रहा है। पत्थर का कोई हाथ नहीं है, तुम्हारा ही सब खेल है। और सिक्खड जाकर उसी पत्थर से टकराता है। और सोचता भी है कि माजरा क्या है, इतने बड़े रास्ते पर, खाली पड़े रास्ते पर टकरा क्यों गया! मगर उसके पीछे मनोवैज्ञानिक सूत्र है, वह आत्म-सम्मोहित हो गया, उसकी आंखें अटक गयीं। बचने की कोशिश में वह सारा रास्ता भूल गया। बस पत्थर ही याद रहा। और पत्थर याद रहा तो चल पड़ा पत्थर की तरफ। जितना बचाने लगा उतना ही पत्थर की तरफ चल पड़ा। इस सूत्र को खयाल में रखना।
तो शराबी तो और भी जल्दी सम्मोहित हो जाता है। शराब का अर्थ ही इतना होता है कि वह तुमसे तुम्हारा होश छीन लेती है। और जहां होश नहीं है वहां सम्मोहित हो जाना है; किसी भी चीज से सम्मोहित हो जाने में कोई अड़चन नहीं है; किसी भी कल्पना में जकड़ जाने में कोई अड़चन नहीं है।
मुल्ला बिलकुल सम्हल कर चला कि खंभे से बच कर निकलना है और टकरा ही गया खंभे से जाकर। बड़ी जोर से चोट लगी। लौटा दस कदम पीछे। फिस से कोशिश की कि बच कर निकल जाऊं। अब की दफा और बुरी तरह टकराया। खयाल रखना, जिस चीज से तुम एक बार टकरा गए तो उससे फिर अगर कोशिश करोगे बच कर निकलने की तो निश्चित ही टकराओगे। तीसरी बार और मुश्किल हो गयी। चौथी बार, पांचवी बार, छठवीं बार...तब वह एकदम घबड़ाया और जोर से चिल्लाया कि, हे प्रभु, बचाओ! लगता है मैं खंभो के जंगल में खो गया हूं! उसको लगा कि खंभे ही खंभे हैं चारों तरफ, जहां जाता हूं खंभे से ही टकराता हूं! वहां एक ही खंभा है कुल जमा।
एक पुलिस वाले ने किसी तरह पकड़ कर उसे उसके दरवाजे पर पहुंचा दिया और कहा कि कोई जंगल वगैरह नहीं है, एक खंभा है। और मैं खड़ा देख रहा हूं, मैं चकित हो रहा हूं कि तुम कैसे उससे टकरा रहे हो।
हाथ कंप रहे हैं उसके। ताला पकड़ता है तो ताला कंप रहा है। तो पुलिस वाले ने कहा कि लाओ, मैं तुम्हारा ताला खोल दूं। उसने कहा कि नहीं-नहीं, मैं खोल लूंगा। ऐसा कुछ नशा नहीं है।
कोई नशा करनेवाला नहीं मानता कि मैं कुछ नशे में हूं। पूरी कोशिश यह करता है कि मैं हूं ही नहीं । और फिर पुलिस वाले के सामने तो कैसे स्वीकार करे कि नशे में हूं। खीसे में हाथ डाला, चाबी निकाली। अब वह चाबी ताले में नहीं जाती, क्योंकि हाथ दोनों कंप रहे हैं, ताला भी कंप रहा है, जिसमें चाबी लिए हुए है वह भी कंप रहा है। पुलिस वाले ने कहा कि लाओ भैया, चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "ऐसा करो कि अगर सहायता ही करनी है तो जरा मकान को पकड़ लो कि मकान हिले न। यह मकान इतने जोर से हिल रहा है,भूंकप आ रहा है या क्या हो रहा है?
इस बीच पत्नी भी जग गयी। उसने खिड़की से झांक कर देखा और कहा कि फजूल के पिता, क्या बात है? चाबी तो नहीं खो गयी है? कहो तो दूसरी चाबी फेंक दूं। नसरुद्दीन ने कहा, "चाबी बिलकुल ठीक है। हरामजादा ताला गड़गड़ कर रहा है। तू दूसरा ताला फेंक दे।"
होश न हो तो आदमी जो भी करेगा, जो भी सोचेगा, वहीं भूल होती चली जाती है। होशियारी करता है। नशे में आया हुआ आदमी बड़ी होशियारी करता है। होशियारी में ही फंसता है। कैसे होशियारी करेगा?

हम सब अहंकार के नशे में पड़े हुए हैं, इसलिए ऋत से वंचित हैं। देख नहीं पाते। कहते हैं--मैं सांस ले रहा हूं! मुझे भूख लगी है! क्या तुम्हें भूख लगेगी? तुम साक्षी हो भूख के। भूख तुम्हें नहीं लगती। न तुम्हें प्यास लगती है। न तुम श्वास ले रहे हो। न तुम जवान होते हो न तुम बूढ़े होते हो। तुम तो कुछ भी नहीं होते। तुम तो जैसे हो वैसे ही हो।तुम्हारे चारों तरफ कुछ हो रहा है। मगर होश कहां! शरीर बच्चा था, जवान हुआ, बूढ़ा होगा--और शरीर किसी एक अज्ञात नियम को मान कर चल रहा है। तुम्हारा कुछ वश नहीं है। लाख उपाय करता है आदमी कि जवानी में ही अटका रहे।
चंदूलाल की पत्नी उससे कह रही थी कि जरा मेरी तरफ तो देखो। तीन घंटे आईने के सामने सज कर आयी थी। और चंदूलाल भन्नाए बैठे थे, क्योंकि अब स्टेशन जाने से कोई सार नहीं था, बाड़ी कभी की निकल गयी होगी। अब तो दूसरी गाड़ी मिल जाए, वह भी बहुत है। मगर इसी आशा में थे कि दूसरी गाड़ी मिल जाएगी। मगर भन्नाए तो बहुत थे। और उसने, पत्नी ने आकर क्या पूछा. उसको गाड़ी-वाड़ी से क्या लेना! उसने पूछा कि जरा मेरी तरफ तो देखो, मेरी उम्र तुम्हें तीस साल की लगती है या नहीं?
चंदूलाल ले कहा कि लगती थी जब रहीं तुम तीस साल की। अब कैसे लगे? अब तीन घंटे नहीं, तुम तीस घंटे भी संवारो अपने को तो तीस साल की नहीं लग सकती हो। लगती थी कभी, जब तीस साल की रहीं।
मगर हर स्त्री कोशिश कर रही है कि जवानी को रोक ले। हर पुरुष कोशिश कर रहा है कि जवानी को रोक ले। तुम्हारे हाथ में नहीं है। सांस ही तुम्हारे हाथ में नहीं है, जवानी और बुढ़ापा तो तुम्हारे हाथ में क्या होगा! फिर किसके हाथों में है? कौन है अद्दश्य ऊर्जा? उस ऊर्जा का नाम:ऋत। उसे नाम तो देना होगा, ताओ कहो, ऋत कहो, धम्म कहो, धर्म कहो, कोई भी नाम दे दो। उसका कोई नाम नहीं है, अनाम है। लेकिन एक बात समझ लो कि यह सारा जीवन किसी एक अज्ञात सूत्र के सहारे चल रहा है। उस सूत्र को खोज लेना ही सत्य को खोज लेना है। और उसे खोजने की दिशा में पहला कदम होगा: अपने से शुरू करो। अपने ही भीतर ऋत को खोजो। लेकिन वह ऋत नहीं खोज पाओगे अगर अहंकार में दबे रहे।
और अहंकार कैसे-कैसे तर्क खोज लेता है--यह मैंने किया! कुछ तुमने किया नहीं है, सब हुआ है। कोई चित्रकार है, उसने कुछ किया नहीं। यह उसका ऋत है। यह उसका स्वभाव है। कोई कवि है, उसने कुछ किया नहीं। कोई गायक है, उसने कुछ किया नहीं। उसका जो स्वभाव था, वही प्रगट हुआ है। गुलाब है, जुही है, चंपा है। अगर गुलाब, जुही और चंपा के पास भी सोच विचार की क्षमता होती तो गुलाब भी कहता कि देखो, क्या फूल मैंने खिलाए हैं! कैसे फूल मैंने खिलाए हैं! क्या सुगंध है। और रातरानी भी कहती कि चुप रहो, बकवास बंद करो। सुगंध है तो मेरी है, कि सारा आंगन भर दिया है सुगंध से! तुम्हारी क्या सुगंध कि जब कोई पास आए, सूंघे तो बामुश्किल पता चले? सुगंध मेरी है! राह से गुजरते लोग भी आंदोलित हो रहे हैं। यह मैंने किया है!
मैंने सुना है, एक बच्चे ने एक पत्थर उठाया और एक महल की खिड़की की तरफ फेंक दिया। पत्थर जब उठने लगा ऊपर की तरफ, तो उसने पत्थरों की जो नीचे ढेरी थी जिसमें वह वर्षों से पड़ा था, अपने मित्रों, सगे-संबंधियों की तरफ चिल्ला कर कहा कि देखते हो मैं जरा महल की यात्रा के लिए जा रहा हूं। फेंका गया था, लेकिन कहा कि महल की यात्रा के लिए जा रहा हूं। कसमसा गए और पत्थर,र् ईष्या से जल-भुन गए और पत्थर, मगर करते भी क्या! इनकार भी नहीं कर सकते थे। जा तो रहा ही था। उन्हें भी पता नहीं कि भेजा जा रहा है। और उनकी भी तो आकांक्षा थी कभी महल की यात्रा करें। यह महल पास में ही खड़ा है। यह सुंदर महल, पता नहीं इसके भीतर क्या हो रहा है! कभी गीत उठते हैं, कभी संगीत बजता है, कभी दीए जलते हैं, कभी दीवाली है, कभी होली है। पता नहीं क्या रंग, क्या ढंग भीतर गुजर रहा है! देखने की तो उनकी भी इच्छा थी। वे सब हार गए और उनका एक साथी जीत गया। जा रहा है, इनकार कर भी नहीं सकते। मन मसोस कर रह गए।
वह पत्थर ऊपर उड़ा और जाकर टकराया कांच की खिड़की से। कांच चकनाचूर हो गया। स्वभावतः, जब पत्थर कांच से टकराता है तो कांच चकनाचूर हो जाता है। यह पत्थर का ऋत और कांच का ऋत इसमें कुछ पत्थर की खूबी नहीं और कांच की कोई कमजोरी नहीं। यह सिर्फ स्वाभाविक नियम है, कि पत्थर कांच से टकराएगा तो

कांच टूटता है। पत्थर कांच को तोड़ता नहीं, कुछ हथौड़ी लेकर कांच को तोड़ने नहीं बैठ जाता है। बस यह स्वाभाविक है। इसमें पत्थर को अकड़ने की कोई जरूरत नहीं है। न कोई कांच को दीन होने की जरूरत है। लेकिन कांच दीन-हीन हो गया। और पत्थर ने कहा, मैंने हजार बार कहा है, सुना नहीं तुमने? तुम्हें खबर नहीं? कितनी बार मैंने नहीं कहा है कि जो मुझसे टकराएगा चकनाचूर हो जाएगा! अब देख लो, अब खुद देख लो अपनी आंखों से क्या गति तुम्हारी हो गयी है। मुझसे दुश्मनी लेना ठीक नहीं है।"
और तभी पत्थर जाकर भीतर बहुमूल्य कालीन पर गिरा--ईरानी कालीन और पत्थर ने कहा, बहुत थक भी गया। लंबी यात्रा, आकाश में उड़ना। फिर दुश्मनों का सफाया। इस कांच से टकराना, कांच को चकनाचूर कर देना। यह विजय! थोड़ा विश्राम कर लूं।"
विश्राम कर लूं--ऐसा सोच रहा है! गिरा है मजबूरी में; क्योंकि जिस बच्चे ने फेंका था वह ऊर्जा पूरी हो गयी। जितनी ऊर्जा उस बच्चे के हाथ ने दी थी वह समाप्त हो गयी। अब पत्थर को गिरना ही है। यह मजबूरी है, मगर मजबूरी को कोई स्वीकार करता है? हम तो मजबूरी में भी अहंकार खोज लेते हैं। हम तो वहां भी तरकीबें खोज लेते हैं। उस पत्थर ने भी खोज लीं। कहा कि थोड़ा विश्राम कर लूं, फिर आगे की यात्रा पर निकलूंगा।
तभी महल के दरबान ने, यह पत्थर का आना और कांच का टूटना, आवाज सुनी,पत्थर का गिरना, वह भागा आया। पत्थर पड़ा पड़ा ईरानी कालीन पर बहुत आनंद ले रहा था। सोच रहा था इस महल के लोग भी बड़े अतिथि-प्रेमी मालूम होते हैं। लगता है मेरे आने की खबर उनको पहले ही हो गयी थी। कालीन इत्यादि बिछा रखे हैं। सब फानूस लटका दिए हैं। सुंदर चित्र लगा रखे हैं। दीवालों पर नया-नया ही रंग रोगन किया गया है। फर्नीचर भी सब ताजा ताजा है। तैयारी पूरी है । कहा भी है कि अतिथि तो देवता है। मैं अतिथि हूं! मेरे लिए ही यह इंतजाम हुआ है।
यही हमारी भाषा है। हर आदमी यही सोचता है कि मेरे लिए ही सारा इंतजाम हुआ है।। जैसे सब चांद तारे सूरज मेरे लिए ही उगते और डूबते हैं! यह सारा जगत, प्रत्येक व्यक्ति अपने आसपास ही घूमता हुआ अनुभव करता है कि मैं ही केंद्र हूं। पत्थर ने भी कुछ भूल तो न की, मनुष्य की भाषा में ही सोचा। दरबान ने पत्थर हाथ में उठाया और पत्थर ने सोचा कि दिखता है,महल का मालिक मुझे हाथों में उठा कर स्वागत कर रहा है कि धन्यभाग हमारे कि आप पधारे! पलक पांवड़े बिछाते हैं। स्वीकार करो हमारा आतिथ्य! हाथों में उठा कर यही कह रहा है। हाथों में उठाया था दरबान ने इसलिए कि वापिस फेंक दे। लेकिन यह बात तो कोई सोचता नहीं।
मौत तुम्हारी करीब आती है बौर तुम जन्म दिन मनाए चले जाते हो। मनाना चाहिए मृत्यु दिवस। हर साल मृत्यु दिवस मनाना चाहिए, मनाते हो जन्म दिवस। और जन्म तो पीछे छूटता जा रहा है, मौत करीब आती जा रही है: हर साल एक एक साल और बीत गया। एक साल और गुजर गया। एक साल और कम हो गया। तुम्हारा जीवन घट और रीत गया। तुम व्यतीत हो रहे हो। तुम अतीत रहे हो। तुम समाप्त हो रहे हो। तुम बूंद-बूंद निचुड़ते जा रहे हो। मगर मनाते हो जन्म दिन। मृत्यु के दिन को तुम जन्म दिन मनाते हो! मरते हो और सोचते हो कि जीवन घटित हो रहा हो। घसिटते हो, लेकिन सोचते हो कि विजय यात्रा हो रही है!!
उस पत्थर को दरबान ने वापिस फेंक दिया। लेकिन पत्थर ने यही सोचा कि दरबान समझ सका...यह मालिक महल का समझ सका--वह तो मालिक ही समझ रहा था उसे-- कि मुझे घर की बहुत याद आ रही है,कि मुझे अपने प्रियजनों की बहुत याद सता रही है। मैं तो वापिस जाता हूं। अरे मुझे महलों से क्या लेना! महलों में रखा भी क्या है!
अंगूर खट्टे। मिलें न तो खट्टे, मिल जाएं तो मीठे। पत्थर वापिस गिरा अपनी ढेरी पर। गिरते समय उसने कहा, "मित्रो, महल सुंदर था, बहुत सुंदर था! मगर अपने घर की बात और, स्वदेश की बात ही और! तुम्हारी बड़ी याद आती थी, मैं तो वापिस लौट आया।"
और कहने हैं, बाकी पत्थरों ने उससे कहा कि तुम हमारे बीच सबसे धन्यभागी पत्थर हो। तुम साधारण पत्थर नहीं, अवतारी हो। तुम अपनी जीवन कथा लिखो, ताकि बच्चों के काम आए।

अब वह पत्थर जीवन कथा लिख रहा है।
तुम्हारी भी जीवन कथा यही है। ऋत को कैसे समझोगे? अहंकार को थोपते जाते हो, आरोपित करते जाते हो। अहंकार को जरा हटा कर देखो, अहंकार का घूंघट हटा कर देखो! घूंघट के पट खोल! वह घूंघट क्या है? वह घूंघट का पट क्या है? किस चीज का घूंघट है तुम्हारे स्वभाव पर? अहंकार का। हटाओ अहंकार के घूंघट को! थोड़ा अपने में झांको। और तुम चकित हो जाओगे। तुम इस सूत्र का ही अर्थ, इस सूत्र का अभिप्राय, अभिप्रेत अनुभव कर पाओगे। "ऋतस्य यथा प्रेत!...तब तुम जानोगे कि जीवन की सम्यक कला ऋत के साथ एक होकर जीने में है; भिन्न होकर नहीं, अभिन्न होकर । जो इससे अलग होकर जीने की कोशिश करता है, टूटता है, हारता है, पराजित होता है। जो इसके अलग होकर जीने की कोशिश करता है, टूटता है, हारता है, पराजित होता है। जो इसके साथ जीता है, उसकी जीत सुनिश्चित है। उसकी जीत नहीं है, जीत तो ऋत की है हमेशा।
तुम यूं हो, अहंकार यूं है, जैसे कोई नदी में उलटी धार तैरना चाहे। थोड़े बहुत हाथ मार सकता है, मगर जल्दी थक जाएगा। नाहक थक जाएगा। और थकेगा तो नदी पर नाराज होगा। और कहेगा, "यह दुष्ट नदी मुझे ऊपर की तरफ नहीं जाने देती।" नदी जा रही है सागर की तरफ। तुम नदी के संगी-साथी हो लो। ऋतस्य यथा प्रेत! तुम नदी से लड़ो मत, नदी के साथ बहो। तैरो भी मत, बहो।
तुमने देखा, जिंदा आदमी नदी में डूब जाता है और मर जाता है और मुर्दा तैर जाता है! कुछ कला है जो मुर्दे को आती है, जो जिंदा को नहीं आती। जिंदा कैसे डूब गया और मुर्दा कैसे तैर गया? जिंदा नीचे जाता है, मुर्दा ऊपर आता है बात क्या है, मामला क्या है, रहस्य क्या है? रहस्य इतना ही है कि मुर्दा लड़ता नहीं है नदी से। लड़ सकता नहीं, मुर्दा समर्पित है समर्पित है। तो नदी का मित्र है। और मित्र को कौन हाथों पर न उठा ले! और जिंदा लड़ता है। हर तरह से लड़ता है; जब तक सांस है, लड़ता है, झगड़ता है। झगड़न में ही टूट जाता है। लड़ने में ही खुद की शक्ति गंवा बैठता है। लड़ने में ही डूबता है। लड़ने में ही मरता है
ऋतस्य यथा प्रेत। ऋत के अनुसार जीओ, अर्थात नदी के साथ बहो, लड़ो मत। यह जीवन की नदी, यह जीवन की सरिता परमात्मा के सागर की तरफ अपने-आप जा रही है। कुछ और करना नहीं है। इस जीवन के प्रति समर्पित हो जाओ। अस जीवन के साथ आपने को एक अनुभव करो। एक तुम हो, अनुभव करो या न करो! करो तो विजय का आनंद है। न करो तो पराजय की पीड़ा है।
लेकिन हमारी सारी शिक्षा इसके विपरीत है। हमारा सारा समाज इसके विपरीत है। हम प्रत्येक व्यक्ति को आचरण सिखाते हैं। अंतस का आविष्कार नहीं। आचरण का अर्थ है: ऊपर से थोपी हुई बात। हम कहते हैं: ऐसे जीओ, ऐसा करो, ऐसा मत करना! यह पुण्य है, यह पाप है। दूसरे तय करते हैं। दूसरे अपने स्वार्थ से तय करते हैं। निश्चित, उनके अपने स्वार्थ होने वाले हैं। उन्हें तुमसे कोई प्रयोजन नहीं।
जब बच्चा पैदा होता है तो मां बाप तय करते हैं कि कैसे जीए, क्या बने क्या न बने। किसे पड़ी है बच्चे की, कि वह क्या बनने का राज लेकर आया है, कि उसका ऋत क्या है, किसी को प्रयोजन नहीं है। इसलिए तो हमने इतनी उदास मनुष्यता को जन्म दिया है, इतनी विक्षिप्त मनुष्यता को जन्म दिया है। जिसको संगीतज्ञ होना था, वह डाक्टर है। वह कभी सुखी नहीं होगा। वह सदा दुखी होगा। उसे बजानी थी वीणा। वह दवाइयों की बोतलें भर रहा है, प्रिस्क्रिप्शन लिख रहा है। जिसको दुकानदार होना था वह नौकरी कर रहा है। जिसको नौकरी करनी थी वह कविता कर रहा है। जिसको कवि होना था वह सब्जी बेच रहा है। सब औरों की जगह बैठे हुए हैं, कोई अपनी जगह नहीं है। कोई अपने स्वभाव में नहीं है, सब च्युत हो गए हैं। किसने किया यह सब उपद्रव? कौन कर रहा है यह उपद्रव? यह उपद्रव भी उनसे हो रहा है जो तुम्हारे बड़े हिताकांक्षी हैं। यह बड़ी अच्छी अभिलाषा से हो रहा है। कौन मां-बाप अपने बच्चे को दुखी देखना चाहता है? लेकिन कौन मां-बाप अपने बच्चे को उसके स्वभाव के अनुसार जीने देने के लिए राजी हैं? मां बाप की अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं, जो अतृप्त रह गयीं। महत्वाकांक्षाएं तो सभी की अतृप्त रह जाती हैं, किसी की कभी पूरी होती नहीं।

बुद्ध ने कहा है: तृष्णा दुष्पूर है। तृष्णा का स्वभाव ही है दुष्पूर होना, वह कभी पूरी नहीं होती। मां-बाप की अभिलाषाएं अधूरी रह गयीं हैं, वे बच्चों के कंधों पर सवार होकर अपनी अभिलाषाएं पूरी करना चाहते हैं। हालांकि ऐसा वे सोचते नहीं, न ऐसा वे कहते हैं, न ऐसा उन्हें बोध है। वे तो सोचते हैं बच्चों के हित में वे यह कर रहे हैं। बच्चा कहता है, मुझे बांसुरी बजाना है। बाप कहता है, पागल फेंक बांसुरी, गणित कर, भूगोल पढ़, इतिहास पढ़। यह काम आएगा। बांसुरी बजा कर क्या भूखे मरना है, क्या भीख मांगनी है?
एक बहुत बड़े सर्जन की पचहत्तरवीं वर्षगांठ मनायी गयी। नृत्य का आयोजन हुआ, भोज का आयोजन हुआ। उसके सारे मित्र, उसके सारे शिष्य इकट्ठे हुए। उन्होंने बड़ी प्रशंसा में, उसकी स्तुति में बड़ी-बड़ी बातें कहीं। कहा कि आपसे बड़ा सर्जन पृथ्वी पर नहीं है। लेकिन वह उदास ही बैठा रहा। उसके एक मित्र ने कहा कि हम सब उत्सव मना रहे हैं तुम्हारे पचहत्तरवें जन्म दिन का, दुनिया से, दूर दूर कोनों से तुम्हारे मित्र और तुम्हारे शिष्य इकट्ठे हुए हैं और तुम हो कि उदास बैठे हुए हो! तुम सफलतम व्यक्तियों में से एक हो।
उस सर्जन ने कहा, मत कहो यह बात, मत कहो! यह सारा उत्सव देख कर, नाचते हुए जोड़ों को देख कर मेरे चित्त में जो उदासी छा रही है, वह मैं जानता हूं। क्योंकि मैं वस्तुतः एक नर्तक होना चाहता था। लेकिन मेरे पिता ने मुझे सर्जन बना दिया। धक्के दे-देकर भेज दिया मुझे मेडीकल कॉलेज। मैं जाना चाहता था संगीत अकेडेमी में। आज तुम सबको नाचते देख कर मैं अनुभव रहा हूं, मेरा जीवन व्यर्थ गया। मुझे कोई आनंद नहीं मिला सर्जन होने से। धन मिला, सफलता मिली, आनंद नहीं मिला। मैं भीतर खाली का खाली रहा। मैं गरीब रहता, लेकिन नर्तक हो गया होता, तो मुझे आनंद मिलता।
और आनंद से बड़ी कोई संपदा है?
स्वभाव के अनुसार जब कोई चलता है तो आनंद घटता है और स्वभाव के प्रतिकूल जब कोई चलता है तो दुख। दुख और सुख की तुम परिभाषा खयाल रखना। सुख का अर्थ है: स्वभाव के अनुकूल। कभी भूल चूक से जब तुम स्वभाव के अनुकूल पड़ जाते हो तो सुख होता है। भूल चूक से ही पड़ते हो तुम, क्योंकि तुम्हें बोध तो है नहीं। कभी आकस्मिक रूप से संग-साथ हो जाता है तुम्हारा स्वभाव का, यह और बात। लेकिन जितनी देर को संग-साथ हो जाता है, उतनी देर के लिए जीवन में रोशनी आ जाती है। जितनी देर के लिए संग-साथ हो जाता है, जीवने में नृत्य और उत्सव आ जाता है। मगर यह सब आकस्मिक है। कभी कभी हो जाता है। आमतौर से तो तुम अपने साथ जबरदस्ती किए जाते हो; वही तुम्हें सिखाया गया है। इसको अच्छे-अच्छे नाम दिए हैं--अनुशासन, कर्तव्य, शिक्षा, दीक्षा। मगर क्या करते हैं हम शिक्षा दीक्षा में? महत्वाकांक्षा सिखाते हैं।
सम्यक शिक्षा का अभी पृथ्वी पर जन्म नहीं हुआ है। हो जन्म तो इस पृथ्वी पर एक एक व्यक्ति उत्सव हो। हर व्यक्ति में फूल खिलें। हर व्यक्ति में सुगंध हो, ज्योति जले। लेकिन सब उदास, सब बुझे दीए बैठे हैं। सारी पृथ्वी पर विषाद ही विषाद है। किसी तरह ढकेले जामे हैं, जीये जाते हैं। एक ही आशा है कि कोई सदा थोड़े ही जिंदा रहना है, अरे कभी तो खत्म हो ही जाएंगे। और इतने दिन गुजारा और थोड़े दिन गुजार लेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी, मरणशैया पर पड़ी थी। डॉक्टर ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा कि क्षमा करो, तुम्हारी पत्नी दोत्तीन महीने से ज्यादा नहीं जी सकेगी।
मुल्ला ने कहा, कोई फिक्र न करो। अरे जब तीस साल गुजार दिए तो तीन महीने और गुजार देंगे। क्यों इतने दुखी हो रहे हो? तीन ही महीने की बात है, गुजार देंगे।"
यहां न कोई प्रेम अनुभव कर रहा है, न कोई धन्यभाव अनुभव कर रहा है। मामला क्या हो गया है? पशु पक्षी भी ज्यादा आनंदित मालूम होते हैं। तुमने कभी किसी कोयल से बेसुरापन सुना किसी कोयल से? तुमने कभी किसी कोयल के कंठ से बेसुरे राग उठते देखे? सभी कोयलों के कंठ से सदा सुर भरे राग ही उठते हैं।तुमने किसी पपीहे को जब पी-कहां पुकारता है, तो अनुभव किया? सारे पपीहे एक ही माधुर्य से पी -कहां पुकारते हैं। तुमने किसी हरिण को कुरूप

देखा? सभी हरिण सुंदर मालूम होते हैं। जरा जंगल जाओ, पशु पक्षियों को देखो। सभी प्रफुल्लित, सभी मस्त, सभी अपने चाल में मदमाते! आदमी को क्या हो गया है? आदमी, जो कि इस पृथ्वी का सबसे ज्यादा श्रेष्ठ चैतन्य का मालिक है, बुद्धिमत्ता का धनी है, इसको क्या हो गया है? इस पर कौन सा दुर्भाग्य घटा है? इस पर कौन सा अभिशाप पड़ गया है?
पशु-पक्षियों के पास इतनी बुद्धि नहीं है कि वे स्वभाव के विपरीत जा सकें। सहज ही स्वभाव के अनुकूल होते हैं। आदमी का सौभाग्य भी यही है कि उसके पास बुद्धि है और दुर्भाग्य भी यही है कि उसके पास बुद्धि है। अब तुम्हारे हाथ में है, तुम चाहे सौभाग्य बना लो चाहे दुर्भाग्य। धन्य हैं वे लोग जो अपनी बुद्धि का उपयोग ऋत के साथ जोड़ लेते हैं। और अभागे हैं वे जन, जो ऋत के विपरीत चल पड़ते हैं।
ध्यान है ऋत के आविष्कार की प्रक्रिया। ध्यान का अर्थ होता है: साक्षीभाव। भीतर साक्षीभाव से देखो कि तुम्हारी निजता क्या है। और अपनी निजता की उद्घोषणा करो, चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े। भूखा मरना पड़े, गरीब होना पड़े, मगर अगर बांसुरी बजाने में ही तुम्हारा रस है तो बांसुरी ही बजाना। तुम होकर भी सिकंदर महान से ज्यादा सुखी हो होओगे। मत बेच देना अपनी आत्मा को, क्योंकि आत्मा बेचने का एक ही अर्थ होता है: ऋत के विपरीत चले जाना। आचरण थोथा है, ऊपर से आरोपित है। दूसरों ने कह दिया--ऐसा करो, ऐसा उठो, ऐसा बैठो--और तुम मान कर चले जा रहे हो। तुम नकलची हो गए हो। तुम पाखंडी हो गए हो। तुमने एक पर्त ओढ़ ली है ऊपर से, एक चदरिया ओढ़ ली है राम नाम की। और भीतर? भीतर तुम कुछ और हो। तो तुम्हारे भीतर खंड हो गए। तुम्हारा व्यक्तित्व विभाजित हो गया। और जहां विभाजन है वहां विषाद है। क्योंकि संगीत टूट जाता है। बांसुरी अलग बज रही है, तबला अलग बज रहा है; दोनों में कोई तालमेल नहीं है। तबला बांसुरी को नष्ट कर रहा है, बांसुरी तबले को नष्ट कर रही है; दोनों एक-दूसरे की दुश्मनी साधे हुए हैं। संगत नहीं बैठ रही है, साज नहीं बैठ रहा है। सब बेसाज हुआ जा रहा है!
तुम जरा अपने को भीतर देखो, सब बेसाज हुआ जा रहा है। और क्या कारण है बेसाज हो जाने का? तुमने अपनी न सुनी, औरों की सुनी। और औरों को क्या पता कि तुम क्या होने को पैदा हुए हो, तुम्हारी नियति क्या है? औरों को क्या पता कि तुम्हारे जीवन का अभिप्रेत क्या है? तुम्हें पता नहीं तो औरों को कैसे पता होगा? औरों को अपना पता नहीं, तुम्हारा कैसे पता होगा?
संन्यास का मैं एक ही अर्थ करता हूं: अपनी निजता की उद्घोषणा। संन्यास बगावत है, विद्रोह है--समस्त थोपे गए आचरण के विपरीत; दूसरों की जबरदस्ती के विपरीत।संन्यास इस बात का स्पष्ट स्वीकार है कि मैं अब अपने ढंग से जीऊंगा, चाहे जो परिणाम हो। मैं किसी और के द्वारा नहीं जीऊंगा। कोई और मुझे खींचतान करे तो मैं इनकार करूंगा। न तो में किसी की जबरदस्ती सहूंगा और न किसी पर जबरदस्ती करूंगा। संन्यास इन दो बातों की घोषणा है। ये दो बातें एक ही सिक्के के पहलू हैं--दो पहलू, मगर सिक्का एक। मैं स्वतंत्रता से जीऊंगा।
यह स्वतंत्रता शब्द बड़ा प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं। स्वतंत्रता का अर्थ होता है: स्वयं का तंत्र, स्वयं के आंतरिक बोध में जीना। और वही स्वच्छंदता का भी अर्थ होता है। बिगड़ गया, लोगों ने उसका अर्थ खराब कर लिया है। जिन्होंने खराब कर लिया है, वे ही लोग हैं तुम्हारे दुश्मन। उन्होंने ही तुम्हें खींच खींच कर परतंत्र किया है। मगर परतंत्र भी जब किसी को करना हो तो होशियारी से करना होता है। जंजीरें भी पहनानी हों तो सोने की पहनाओ,क्योंकि वे आभूषण लगेंगी और आभूषण के धोखे में आदमी पहन लेगा। मछली को भी पकड़ने जाते हैं तो कांटे में आटा लगाते हैं। कोई मछली कांटा तो लीलने को राजी होगी नहीं, आटा लीलने को राजी हो जाती है। और आटे के साथ कांटा चला जाता है। जंजीरें बनानी हों तो कम से कम सोने का पालिश तो चढ़ा ही दो। न मिलें असली हीरे-जवाहरात तो सस्ते खरीद कर नकली लगा दो, मगर चमकदार पत्थर होने चाहिए। ऐसी भ्रांति हो जाए कैदी को कि ये आभूषण हैं, तो फिर तुम्हें उस पर पहरा नहीं बिठाना पड़ेगा। वह खुद ही अपने आभूषणों की रक्षा करेगा।

संन्यास इस बात की घोषणा है कि दूसरे आभूषण भी दें तो जंजीरें बन जाते हैं। दूसरा तुम्हें परतंत्रता ही दे सकता है। और दूसरे तुम्हें समझाते हैं कि देखो स्वच्छंद मत हो जाना। हालांकि स्वच्छंद शब्द बड़ा प्यारा है। उसका अर्थ है: स्वयं के छंद को उपलब्ध हो जाना। बड़ा अद्भुत शब्द है! स्वयं के गीत को--छंद यानी गीत! हमारे पास एक उपनिषद है: छांदोग्य उपनिषद। छंद बड़ा प्यारा शब्द है। ऋत का भी वही अर्थ है। तुम्हारे भीतर का जो नाच है, जो गीत है, जो संगीत है, जो स्वर है--उसको ही जीओ। जरूर कठिनाई होगी। तलवार की धार पर चलने जैसा है, क्योंकि ये चारों तरफ जो लोग तुम्हें घेरे हुए हैं, कोई भी बर्दाश्त न करेंगे। क्योंकि जो व्यक्ति अपने छंद से जीता है वह बहुत बार दूसरों की आज्ञा स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाता है। हर बात में हां न भर सकेगा। जब उसके स्वयं के छंद के अनुकूल होगी तो हां भरेगा, जब प्रतिकूल होगी तो विनम्रता से नहीं कहेगा। वह आज्ञाकारी नहीं हो सकता। जरूरत नहीं है कि वह जरूरी रूप से आज्ञा का खंडन करे। मगर आज्ञा को तब तक ही मानेगा जब तक उसके छंद के साथ तालमेल है; जहां छंद से तालमेल टूटा, वहां पिता कहते हों, कि शिक्षक कहते हों, कि राजनेता कहते हों, कि धर्मगुरू कहते हों, कोई भी कहता हो...। स्वयं के छंद से बड़ी कोई चीज नहीं, क्योंकि स्वयं का छंद ईश्वर की वाणी है। वह तुम्हारे भीतर बैठे हुए परमात्मा का स्वर है। उसके अनुसार जीना संन्यास है और उसको खोज लेना ध्यान है।
प्यारा है यह सूत्र: ऋतस्य यथा प्रेत! ऋत के अनुसार जीओ। यह क्रांति
का मूलसूत्र है। यह आध्यात्मिक क्रांति का आधार है, बुनियाद है। यह एक चिनगारी है, जो तुम्हारे भीतर आग को पैदा कर देगी। तुम्हें आग्नेय कर देगी। तुम प्रज्जवलित हो उठोगे। तुम न केवल खुद प्रकाशित हो जाओगे, तुम्हारे प्रकाश से दूसरे भी प्रकाशित होने लगेंगे। तुम्हारी ज्योति से दूसरे भी अपने बुझे दीयों को जला सकते हैं।
मगर यह जमीन गुलामों से भरी है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है। ये सब गुलामों के नाम हैं। मैं तुमसे नहीं कहता कि जैन बनो। मैं कहता हूं: जिन बनो! जिन यानी विजेता। जैसे महावीर जिन थे। महावीर जैन नहीं थे। जैन वह है जो नकल कर रहा है, जो महावीर के ढंग से चलने की कोशिश कर रहा है। और ध्यान रखना, दुनिया में दो महावीर न पैदा हुए हैं, न होंगे। इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा अद्वितीय बनाता है, बेजोड़ बनाता है। और जब तुम किसी की नकल करते हो, तुम परमात्मा का अपमान करते हो। तुम अपना भी अपमान करते हो। ये दोनों एक ही बात है--परमात्मा का अपमान करना या अपना अपमान करना।
और जब तुम नकल करोगे तो एक बात खयाल रखना, जिसकी तुम नकल कर रहे हो वह
तो तुम हो ही न पाओगे। वह तो हो ही नहीं सकता। वह तो ऋत के विपरीत है। क्योंकि दो आदमी एक जैसे न कभी होते हैं, न हो सकते हैं। और दूसरा खतरा है कि दूसरे होने की कोशिश में तुम्हारी सारी ऊर्जा लग जाएगी, तो स्वयं होने के लिए ऊर्जा न बचेगी। दूसरे तुम हो न सकोगे। और स्वयं तुम जो हो सकते थे, वह तुम हो न पाओगे। तुम्हारा जीवन विडंबना हो जाएगा। तुम्हारा जीवन एक तनाव--सिर्फ एक तनाव, एक चिंता, एक व्यथा हो जाएगी।
हर आदमी के चेहरे पर व्यथा लिखी है। व्यथा ही हमारी एकमात्र कथा है,
और हमारे पास कुछ भी नहीं। दुख ही दुख! और सबसे बड़ा दुख यह है कि व्यक्ति अपने केंद्र से च्युत हो जाए। और सारे तुम्हारे हितेच्छु तुम्हें च्युत करने में लगे हैं। वे भी अंधे हैं। कोई जानकर नहीं कर रहे हैं। सारी शिक्षा की आयोजन ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वभाव से हटा देती है। महत्त्वाकांक्षा दे देती है। पद पर पहुंचने की दौड़ दे देती है। धन कमाने की एक विक्षिप्तता पैदा कर देती है। आगे हो जाओ, सबसे आगे हो जाओ! दौड़ो, लड़ो! फिर कोई भी साधन हों, येन केन प्रकारेण, लेकिन तुम्हें पद पर होना है! धनी होना है! और कोई नहीं पूछता कि पद पर होकर करोगे क्या?धन ही पा लोगे तो करोगे क्या? अगर खुद को गंवा दिया और सारी दुनिया का धन भी पा लिया तो क्या सार है, क्या हाथ लगेगा?? खाक भी हाथ नहीं लगेगी।
लकड़ी जल कोयला भइ कोयला जल भइ खाक,
मैं पापिन ऐसी जली कोयला भइ न राख।

ऐसे जलोगे कि न कोयला हाथ लगेगा, न राख हाथ लगेगी।। कुछ भी हाथ न लगेगा। व्यर्थ ही जल जाओगे। लेकिन न तो अभी सम्यक शिक्षा पैदा हो सकी है, न सम्यक सभ्यता पैदा हो सकी है, क्योंकि बिना शिक्षा के कैसे सभ्यता पैदा हो? और जब सभ्यता ही पैदा नहीं हो सकती तो संस्कृति कैसे पैदा हो? शिक्षा पहली चीज है। सम्यक शिक्षा अर्थात स्वयं के ऋत के अन्वेषण की विधि। उससे दोनों चीजें पैदा होंगी! बाहर के जगत में सभ्यता पैदा होगी; तुम्हारे दूसरों से जो संबंध है, बड़े प्रीति और आनंद का हो जाएगा। और उससे संस्कृति पैदा होती है। संस्कृति भीतरी चीज है, आंतरिक चीज है। तुम्हारा आत्म परिष्कार होगा। तुम्हारे भीतर जो भी कूड़ा करकट है छंटता जाएगा। तुम्हारे भीतर परमात्मा की मूर्ति निखरती आएगी।
जार्ज बर्नाड शॉ से किसी ने कहा कि आपका सभ्यता के संबंध में क्या ख्याल है? जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा, सभ्यता बहुत अच्छा विचार है, लेकिन किसी को उस विचार को क्रियांवित करने की कोशिश करनी चाहिए। विचार ही है सिर्फ। अभी आदमी सभ्य हुआ नहीं। अभी हम सभ्यता पूर्व अवस्था में हैं। और संस्कृति तो बहुत दूर की बात है, जब सभ्यता ही नहीं हुई। सभ्यता यानी बाहर के संबंध, तो भीतर का परिष्कार तो अभी कैसे होगा? और दोनों नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि शिक्षा हमारी बुनियादी रूप से गलत है।
जिस शिक्षा में ध्यान आधार नहीं है, वह शिक्षा कभी भी सही नहीं हो सकती। वह क्या सिखाएगी? धन सिखाएगी, पद सिखाएगी, प्रतिष्ठा सिखाएगी, अहंकार सिखाएगी,। ये अहंकार के ही सींग हैं--पद प्रतिष्ठा इत्यादि- इत्यादि। और ध्यान तुम्हें निरहंकारिता सिखाता है। और निरहंकारिता में ही तो ऋत का अनुभव हो सकता है। जब मैं नहीं हूं तभी तो पता चलता है कि परमात्मा है। जहां मैं गया वहां परमात्मा है। और जहां मैं नहीं वहां ऋत है।
ऋत परमात्मा से भी प्यारा शब्द है। क्योंकि परमात्मा से खतरा है कि कहीं तुम पूजा न करने लगो। ऋत में तो यह खतरा नहीं है। ऋत की पूजा नहीं की जा सकती। ऋत के अनुसार जीआ जा सकता है। ऋत जीवन बनता है, परमात्मा आराध्य बन जाता है; वह खतरा है, शब्द खतरा है। इसलिए बुद्ध जैसे अदभुत व्यक्ति ने परमात्मा शब्द का उपयोग ही नहीं किया, इनकार ही कर दिया कि छोड़ो यह बकवास है। धर्म की बात करो, परमात्मा की बात मत करो।
आमतौर से हम सोचते हैं कि परमात्मा के बिना कैसा धर्म? लेकिन बुद्ध ने कहा: धर्म पर्याप्त है। धर्म यानी ऋत। धर्म यानी जिसने सबको धारण किया है। धर्म यानी जिसके आधार पर हम जी रहे हैं; श्वास ले रहे हैं, हम चेतन हैं। उसको ही समझ लो। उसको ही पहचान लो। ध्यान उसी के आविष्कार की कला है। जैसे हर जगह जमीन के नीचे पानी है, कुदाली उठा कर खोदो तो पानी मिल जाएगा। ध्यान कुदाली है हरेक के भीतर ऋत है। जरा खोदो। समाज ने बहुत सी मिट्टी तुम्हारे ऊपर जमा दी है। न मालूम कहां-कहां के कचरे विचार तुम्हारे ऊपर आरोपित कर दिए हैं! उन सबको जरा हटा डालो। कूड़ा करकट को अलग कर दो, पत्थर मिट्टी को तोड़ डालो और तुम्हारे भीतर झरना फूट पड़ेगा। फिर उस झरने को जीओ। वही झरना तुम हो, तुम्हारा स्वभाव है--तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारी स्वछंदता, तुम्हारी निजता, तुम्हारा अहोभाव। फिर तुम जैसा भी जीओगे वही ठीक है, वही सम्यक है, वही पुण्य है।
ऋत के विपरीत जाना पाप है। ऋत के साथ कदम उठाना पुण्य है। ऋत के विपरीत जो गया उसका परिणाम दुख है। और ऋत के साथ जो बड़ा उसका परिणाम महासुख है।
छठवां प्रवचन; दिनांक २६ सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-10

शील मुक्ति है, चरित्र बंधन
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #5)

पहला प्रश्न:
भगवान, संस्कृत में एक सुभाषित है कि यदि शील अर्थात शुद्ध चरित्र न
हो तो मनुष्य के सत्य, तप, जप, ज्ञान, सर्व विद्या और कला, सब निष्फल होते हैं।
सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
भगवान, निवेदन है कि इस सूक्ति पर कुछ कहें।

आनंद किरण, सुभाषित शब्द तो बहुत प्यारा है। संभवतः दुनिया की किसी
और भाषा में वैसा शब्द नहीं। उस शब्द से बहुत-सी बातों की ध्वनि उठती है-- खिले हुए फूलों की, बजती हुई बांसुरी की, अमृत के स्वाद की, मिठास की। जीवन में यूं तो जहर है--लेकिन जो न पहचाने, न जाने, उसके लिए। जो पहचान ले, जान ले, जीवन ही अमृत भी हो जाता है। नासमझ तो घर को खाद से भर ले सकता है, और तब दुर्गंध ही दुर्गंध हो जाएगी। समझदार खाद को घर में नहीं भरता, बगिया में फैलाता है। उसी खाद से फूलों की सुगंध उठती है। शब्द ही गालियां बन जाते हैं और शब्द ही सुभाषित।
सुभाषित हमने उन सूक्तियों को कहा है, जो बुद्धों ने कहीं, जाग्रत पुरुषों ने कहीं, जिनके शब्दों में शून्य की झंकार है। वे शून्य में ही मीठे नहीं, सुभाष ही नहीं, जीने में और भी मीठे हैं। इशारे हैं उनमें, इंगित हैं, दूर चांद की तरफ उठी हुई अंगुलियां हैं। जैसे फूल खिलता है-- सुबह-सुबह कमल का खिला फूल; कीचड़ से निकलता है। कीचड़ को देख कर किसे भरोसा आए कि इससे कमल भी पैदा हो सकता है! कमल शब्द का ही अर्थ है कीचड़ से पैदा हुआ, मल से पैदा हुआ।
कमल के लिए संस्कृत शब्द है: पंकज। पंक का अर्थ होता है: कीचड़; ज का अर्थ होता है: जन्मा; कीचड़ से जन्मा। संस्कृत की कुछ खूबियां हैं! क्योंकि जिन लोगों ने उसे रचा, बुना, उसे रूप दिया, रंग दिया, उनमें बहुतों के हाथ बुद्धों के हाथ थे। बांसुरी किसके हाथ में पड़ जाएगी, इस पर सब निर्भर है। बांसुरी तो पोली है, कौन गाएगा गीत! बुद्धों ने शब्दों को छूकर भी समाधि का रूप दे दिया।
कमल कीचड़ से खिलता है। कीचड़ से ही उठता है, कीचड़ से ही जन्मता है। कीचड़ में ही छिपा था। न तो कीचड़ को देख कर कोई कह सकता है कि कमल इसमें छिपा होगा और न कमल को देख कर कोई कह सकता है कि यह कीचड़ से पैदा हुआ होगा। मगर कमल और कीचड़ के बीच सारे जीवन की कथा है। पैदा तो हर एक व्यक्ति कीचड़ की तरह होता है, लेकिन संभावना लाता है कमल होने की।
फिर, कमल झील पर तैरता है--फिर भी झील का जल उसे छू नहीं पाता। झील में होकर भी झील में नहीं। झील में तो होता है, लेकिन अछूता। झील में तो होता है, अस्पर्शित। कमल तो झील में होता है, लेकिन झील कमल में नहीं हो पाती। यही संन्यासी की जीवनचर्या है।
और सुभाषित भी ऐसे ही हैं। शब्दों में हैं, लेकिन शब्दों में मत पकड़ना, नहीं तो चूक जाओगे। शब्दों से बहुत ज्यादा उनमें भरा है। शब्द को ही पकड़ा तो कुछ पकड़ में न आएगा। खोल ही हाथ लगेगी, भीतर का सार चूक जाएगा।
खोल को तो अलग कर दो, शब्दों को तो हटा दो। शब्दों के जाल में मत उलझ जाना। उसी जाल में उलझे हुए लोगों का नाम पंडित है। शब्दों के भीतर झांको, उनमें मौन को सुनो, सन्नाटे को अनुभव करो। शब्द अगर विचारे तो दर्शन का जंगल है फिर। जिसका कोई अंत नहीं। झाड़ियों पर झाड़ियां। और रोज घनी होती जाती हैं।
और उलझाव बढ़ता जाता है। शब्दों पर ध्यान करो!

सुभाषित ध्यान करने के लिए हैं। उनको पीओ! चुप, मौन, उनको भीतर उतरने दो। उन्हें मांस-मज्जा-हड्डी-खून बनने दो। वे तुम्हारे भीतर रसधार की तरह बहने लगें। यह एक अलग ही प्रक्रिया है। विचारना बुद्धि की बात है; पी जाना, पचा लेना अस्तित्वगत है, बौद्धिक नहीं। और तब ये छोटे-छोटे वचन--ये छोटे- छोटे फूल--इतना छिपाए हुए हैं। एक-एक सुभाषित में एक-एक वेद छिपा है। सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
"जहां शील न हो वहां तप, सत्य, जप, ज्ञान, विद्या, कला, सब व्यर्थ हैं।'
यह शील क्या है? आनंद किरण, तुमने जहां से भी अनुवाद लिया, वहीं भूल है। अनुवाद में ही भूल आ गई, पांडित्य आ गया। जिसने भी किया हो यह अनुवाद, चूक गया। निशाना ठीक जगह नहीं लगा। अनुवाद करने वाले लोग शब्दों का अनुवाद करते हैं। काश, ये सुभाषित सिर्फ शब्द ही होते तब तो इनका अनुवाद बड़ा आसान था। इनका अनुवाद तो केवल ध्यानी ही कर सकते हैं, समाधिस्थ ही कर सकते हैं।
अनुवाद तुमने जो दिया है: "शील अर्थात शुद्ध चरित्र।'
यह जो अर्थात आ गया और शुद्ध चरित्र आ गया, फिर सब भ्रांति हो गई; फिर
सब गड़बड़ हो गया; फिर तुमने गुड़ गोबर कर दिया; फिर कमल कीचड़ हो गया। कहां शील और कहां चरित्र! जमीन-आसमान का फर्क है। उस भेद को ही समझो तो सुभाषित का अर्थ प्रकट होने लगेगा।
चरित्र होता है ऊपर से आरोपित। दूसरे सिखाते हैं तुम्हें जो, वह चरित्र। और जो तुम्हारे अंतर से आविर्भूत होता है, वह शील। शील का अर्थ है: ध्यान से खुली हो आंख, फिर तुम्हारा जो हलन-चलन है, गति है, तुम्हारे जीवन की जो विधि है, शैली है, वह शील।
खुद की तो आंख बंद है, खुद तो अंधे हो, किसी ने लाठी पकड़ा दी, किसी ने दिशा बता दी, किसी ने कहा यूं जाना, यूं जाना, बाएं मुड़ जाना, दाएं मुड़ जाना--और तुम चल पड़े हो। तुम्हें पक्का नहीं तुम क्या कर रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि तुम ठीक चल रहे हो कि नहीं चल रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि जिसका तुमने मार्ग-निर्देश लिया है वह भी अंधा था या आंख वाला था; कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने भी किसी और से निर्देश लिया हो! यूं सदियों-सदियों निर्देश चलते रहते हैं।
नानक ने कहा है: अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।
अंधे अंधों को धक्के दे रहे हैं, अंधे अंधों को चला रहे हैं, और दोनों कुएं में गिर रहे हैं। अंधों की अपनी दुनिया है। अंधे अनुकरण ही कर सकते हैं। चरित्र है: अनुकरण।
मुल्ला नसरुद्दीन गया था ईद की नमाज पढ़ने ईदगाह। जब नमाज करने को झुका तो उसके कुर्ते का एक छोर पाजामे में अटका रह गया पीछे। उसके पीछे के आदमी ने देखा, शोभा योग्य नहीं था, तो उसने झटका देकर कमीज को पाजामे से छुटकारा दिला दिया। वह जो पाजामे में अटक गया था छोर, उसको मुक्त कर दिया। मुल्ला नसरुद्दीन ने सोचा, होगा जरूर इसमें कोई राज! नहीं तो क्यों पीछे वाला आदमी झटका देता! होगा इसमें कोई रिवाज! सो उसने आगे वाले आदमी के कमीज को पकड़ कर झटका दिया। आगे वाले आदमी ने भी सोचा कि शायद नमाज का यह हिस्सा है, सो उसने आगे वाले आदमी की कमीज को पकड़ कर झटका दिया। आगे वाला आदमी चौंका, उसने कहा कि क्यों मेरे कमीज को झटका दे रहे हो? उसने कहा कि मुझसे न पूछो, पीछे वाले से पूछो। पीछे वाले से पूछा; उसने कहा, मुझसे न पूछो, यह मुल्ला नसरुद्दीन, जो मेरे पीछे बैठा है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मुझे तो बीच में डालो ही मत! मेरे जो पीछे बैठा है! इसी कमबख्त ने मेरे कमीज को झटका दिया। फिर यह सोच कर कि नमाज तो व्यवस्था से करनी चाहिए, मैंने भी झटका दिया। मेरा इसमें कोई हाथ नहीं।
और सदियों-सदियों से ऐसा तुम कर रहे हो। इस करने का नाम चरित्र है। चरित्र है: अनुकरण। न बोध है, न बुद्धि है; न सोचा है, न समझा है, न ध्याया है; और कर रहे हैं तो तुम भी कर रहे हो। किसी एक घर में पैदा हुए हो, वहां एक

चरित्र की व्यवस्था थी, तो तुम भी पूरा कर रहे हो। नहीं कर पाते हो तो अपराध अनुभव होता है और करते हो तो जीवन में कोई फूल नहीं खिलते।
चरित्र की यह दुविधा है--और यही उसकी पहचान भी। पूरा करो, तो जीवन उदास-उदास। न पूरा करो, तो ग्लानि, आत्म-ग्लानि। हर हाल में मुसीबत! पूरा करो तो मुसीबत। तुम्हारे संतों को देखो, महात्माओं को देखो! उदास। न मुस्कुराहट है जीवन में, न हंसी की फुलझड़ियां हैं, न आनंद का उत्सव है, न दीए जलते हैं, न रंग है, न गुलाल है, न होली, न दीवाली। मरुस्थल की तरह रूखे- सूखे लोग, उनको देख कर किसी को भी विरक्ति पैदा हो जीवन से, उनको देख कर जीवन व्यर्थ मालूम पड़ने लगे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। और यही उनका उपदेश, और उनका जीवन उनके उपदेश का प्रमाण कि जीवन व्यर्थ है।
और मैं तुमसे कहता हूं: जीवन व्यर्थ नहीं है। क्योंकि जीवन में ही छिपा है सत्य, और जीवन में ही छिपा है मोक्ष, और जीवन में ही छिपा है परमात्मा। जीवन में छिपा है सारा साम्राज्य शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो। यही जीवन तो सनातन धर्म है। और यह जीवन कितने रंगों में, कितने रूपों में प्रकट हो रहा है!
मगर, अगर तुम किसी की बात मान कर चलते रहे, मान कर ही चलते रहे, तो तुम्हारा कभी इस जीवन से संबंध न जुड़ पाएगा। तुम टूटे-टूटे रह जाओगे, तुम उदास हो जाओगे। अनुकरण का अर्थ है: थोथा हो जाना, नकली हो जाना; झूठा सिक्का, पाखंड। चरित्र तो पाखंड होता है। इसीलिए मैं कहता हूं: संन्यासी का कोई चरित्र नहीं होता। शील तो होता है, लेकिन चरित्र नहीं होता। चरित्र है बाह्य व्यवस्था। इसलिए हिंदू का चरित्र अलग होता है, मुसलमान का अलग होता है, जैन का अलग होता है, बौद्ध का अलग होता है, सिक्ख का अलग होता है, पारसी का अलग होता है। लेकिन शील तो अलग-अलग नहीं होते। बुद्ध का भी वही, कृष्ण का भी वही, महावीर का भी वही, लाओत्सू का भी वही, जरथुस्त्र का भी वही। शील तो अलग-अलग नहीं हो सकते। लेकिन आचरण तो अनंत प्रकार के हो सकते हैं।
दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जो कहीं किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में आदृत न रही हो। और ऐसी भी कोई चीज नहीं है जो किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में अनादृत न रही हो। पृथ्वी पर हजारों तरह के कबीले हैं। जो तुम सोच भी नहीं सकते, उसे करने वाले लोग भी हैं। और जो तुम कर रहे हो, उस पर हंसने वाले लोग भी हैं। चरित्र के साथ यह दुविधा रहेगी। एक ईसाई मिशनरी को अफ्रीका के जंगलों में आदमखोर लोगों ने पकड़ लिया। ईसाई मिशनरी ने समझाने की कोशिश की कि तुम यह क्या कर रहे हो, आदमी को मार रहे हो, मुझे मार रहे हो! मुझे बचने की उतनी फिकर नहीं, मगर तुम यह कर क्या रहे हो! क्या आदमी को खाना उचित है? वे आदमखोर बोले--दूसरे महायुद्ध के जमाने की बात है--कि तुम और हमें सिखाते हो! लाखों लोग मारे जा रहे हैं, खबरें हम तक भी आती हैं, हम तुमसे यह पूछते हैं, इतने आदमियों को मारते हो तो करते क्या हो? अरे, खाने के लिए कोई मारे तो समझ में आता है। न खाना है न पीना है, सिर्फ मारना है! यह बात निपट मूर्खतापूर्ण है। हम तो मारते हैं तभी जब खाना होता है। और तुम तो खाना भी नहीं होता और मारे चले जाते हो! और एक-दो नहीं, लाखों को मारते हो। और हमने तो सुन रखा है कि यही तुम्हारा इतिहास है। और हमको तुम कहते हो, अमानवीय! और तुम मनुष्य हो!
बात तो बड़ी सोचने जैसी है। तीन हजार साल में आदमी ने पांच हजार युद्ध लड़े हैं। अरबों लोगों को काटा है! और ये काटने वाले लोग सोचते हैं कि आदमखोर जो हैं, आदमियों को खाने वाले जो लोग हैं, ये पशु से भी गए-बीते हैं। और ये अरबों को मारने वाले लोग, ये ईसाई हैं, मुसलमान हैं, हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--ये धार्मिक लोग हैं।
महाभारत के युद्ध का अगर हम शास्त्रीय विवरण स्वीकार करें, जो कि करने योग्य नहीं है, तो अंदाजन सवा अरब आदमी महाभारत के युद्ध में मरे। सवा अरब आदमी! अभी भी पृथ्वी की कुल आबादी चार अरब है। सवा अरब आदमी उस युद्ध में मरे! और मारने वाले लोग धर्म के नाम पर मार रहे थे। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे! वह जो कुरुक्षेत्र था, वह धर्म का क्षेत्र था। धर्म की रक्षा के लिए मार-काट की जा रही थी। अरे, किसी और चीज के लिए

मार-काट करो तो समझ में भी आ जाए, धर्म की रक्षा के लिए मार-काट! मार-काट से धर्म की रक्षा होगी! अधर्म से धर्म की रक्षा होगी!
ठीक कहा उस आदमखोर ने कि हम तो कभी-कभी खाते हैं, और हम तभी किसी को मारते हैं जब भूखे होते हैं, यूं हम नहीं मारते तुम्हारे जैसे! तुम हो पशुओं से गए-बीते! मिशनरी तो बहुत हैरान हुआ इस तर्क से। बात में तो बल था। फिर भी अपनी जान तो बचाने के लिए उसे कोशिश और भी करनी जरूरी थी। उसने कहा कि तुमको धर्म का कोई भी स्वाद नहीं। उन्होंने कहा, है जी! पहले भी हम दो मिशनरी खा चुके हैं! कोई तुम नए थोड़े ही हो। हम तो मिशनरियों की प्रतीक्षा ही करते हैं। हमें और धर्म का स्वाद नहीं! तुम्हें नहीं है। तुमने कभी मिशनरी खाया? पादरी-पुरोहित-पंडित तुमने कभी खाया? साधु? अरे, हम सबको पचाए हैं। अनुभव से कहते हैं, सबका स्वाद लिया है। और तुम हमसे पूछ रहे हो कि धर्म का स्वाद है या नहीं!
आचरण तो अजीब-अजीब तरह के होंगे।
अफ्रीका का एक कबीला चींटे और चींटियों का भोजन करता है। एकदम चींटे- चींटियां इकट्ठा करता रहता है। छोटे-छोटे बच्चे चींटा दिखा कि गप्प कर जाते हैं। और तुम्हारी तो सब्जी में भी चींटी दिख जाए, चींटा मिल जाए मरा हुआ, तो सब्जी भी खाई न जाए तुमसे! और वे इसको स्वादिष्ट मानते हैं। चींटे- चींटियों को इकट्ठा करते हैं, सुखा कर रखते हैं। मौके-बेमौके मेहमान आ जाए--तो चींटे-चींटियों का नाश्ता।
चीन में लोग सांप को खाते हैं। सांप की सब्जी बहुत बहुमूल्य सब्जी समझी जाती है। और साधारण आदमी ही नहीं खाते, बौद्ध भिक्षु भी खाते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु लिंची के संबंध में यह उल्लेख है कि कोई मेहमान आया हुआ था--प्रतिष्ठित; वजीर था, बड़े ओहदे पर था, धनपति था--उसके स्वागत में लिंची ने अपने पूरे आश्रम को भोजन दिया था। पांच सौ भिक्षु उसके साथ भोजन करने बैठे। लिंची के पास ही वजीर बैठा था। और जब रसोइयों ने आकर भोजन परोसा और प्रधान रसोइए ने आकर वजीर की और लिंची की थाली में सब्जी परोसी, तो लिंची थोड़ा हैरान हुआ। उसने कुछ उठा कर दिखाया रसोइए को-- यह क्या है? सांप का मुंह था। मुंह नहीं डाला जाता, मुंह काट कर फेंक दिया जाता है, क्योंकि मुंह में जहर की ग्रंथि होती है। सब्जी बाकी शरीर की बनती है, मुंह को छोड़ कर। लेकिन यह कहानी झेन शास्त्रों में बहुत आदर से उल्लिखित है। आदर का कारण है।
जब उसने मुंह उठा कर दिखाया तो उस रसोइए ने क्या किया! वह भी भिक्षु था, आश्रम का रसोइया था। उसने झट से मुंह हाथ में लिया, अपने मुंह में डाल दिया और कहा: धन्यवाद! गुरु तो बहुत प्रसन्न हुआ। न जरा झिझका, न जरा परेशान हुआ, सांप के मुंह को भी अपने मुंह में डाल दिया। बात को यूं पचा गया। किसी की समझ में ही नहीं आया कि क्या हुआ। लोग यही समझे कि कोई मीठी चीज, कोई स्वादिष्ट भोजन प्रसाद रूप में भिक्षु को मिला है।
लेकिन सांप की सब्जी खाई जाती थी। अब भी खाई जाती है। अभी कल के अखबार में खबर थी कि एक आदमी रोज ही एक सांप खाता है चीन में। जिस दिन सांप नहीं मिलता, उस दिन उसकी तबीयत ढीली हो जाती है, सुस्त हो जाता है। सांप चाहिए ही चाहिए। पौष्टिक आहार है। उसके बिना वह नहीं जी सकता।
दुनिया में कहीं भी कोई सांप को खाने का खयाल न करे! मगर बिच्छू को खाने वाले लोग भी हैं। और जो जिस घर में पैदा हुआ है, जिस परिवार में, जिस संस्कार में, उसको ही पकड़ लेता है। और तो कुछ पकड़ने को होता भी नहीं। मां- बाप सिखा देते हैं; शिक्षक, गुरु, पंडित-पुरोहित, सब सिखा देते हैं; वह वैसा ही आचरण करना शुरू कर देता है।
इस आचरण का नाम शील नहीं है। यह तो बिलकुल थोथी बात है। यह तो ऊपर से पहनाए गए वस्त्रों जैसी है। यह तो मुखौटा है। जैसे किसी ने चेहरे को रंग दिया हो, सुंदर बना दिया हो। यह तो पानी पड़ जाए एक तो बह जाए। बूंदा-बांदी हो जाए तो सब राज खुल जाए।
इसलिए, आनंद किरण, शील का अर्थ शुद्ध चरित्र न करो। और तुम्हारा मन--या जिसने भी यह अनुवाद किया हो--सिर्फ चरित्र से ही न माना, उसमें शुद्ध और जोड़ दिया। चरित्र काफी नहीं, शुद्ध भी होना चाहिए। प्रेम काफी नहीं, शुद्ध प्रेम। दूध काफी नहीं, शुद्ध दूध। मिलावटी दिमाग हो गया हमारा। हर चीज में

मिलावट है। आजकल तो प्रेमी भी प्रेयसियों से कहते हैं कि बिलकुल खालिस प्रेम है, सौ टका। ऐसा मत समझना कि कुछ मिलावट है, कि पानी वगैरह मिलाया हुआ है, बिलकुल शुद्ध प्रेम है, कोई फिल्मी नहीं है।
अब तो कोई चीज शुद्ध नहीं है। इसलिए शुद्ध का आग्रह बढ़ता जा रहा है।
जब शुद्ध घी मिलता था तो दुकानों पर तख्तियां नहीं लगती थीं कि शुद्ध घी बिकता है। तब "घी बिकता है', इतना ही काफी था। जब से शुद्ध घी नहीं मिलता, तब से "शुद्ध घी बिकता है'।
अब तो हालत और बिगड़ गई। अब तो शुद्ध डालडा भी बिकता है। अब तो डालडा भी शुद्ध कहां है? इसलिए अब शुद्ध डालडा की भी तख्ती लगी रहती है कि यहां शुद्ध डालडा मिलता है। पहले डालडा यानी अशुद्ध ही चीज थी। अब डालडा शुद्ध चीज है, क्योंकि उससे भी रद्दी घी को मिलाने वाले लोग हैं। घी भी नहीं है, उसको भी मिलाने वाले लोग हैं। चर्बी मिला दें, कुछ भी मिला दें।
अब तो दवाओं का भी कोई भरोसा नहीं है। अब तो तुम इंजेक्शन ले रहे हो और सोच रहे हो इंजेक्शन है, हो सकता है सिर्फ पानी हो। और वह पानी भी जरूरी नहीं कि शुद्ध हो।
तो हम इतने से ही राजी नहीं होते कि चरित्र। चरित्र पर्याप्त है। चरित्र का अर्थ ही होना चाहिए: शुद्ध। और चरित्रहीनता का अर्थ होगा: अशुद्ध। शुद्ध चरित्र का क्या मतलब? लेकिन हमारे दिमाग में मिलावट घुस गई है। एक तो चरित्र शील का अर्थ नहीं है--यह बाहरी आडंबर है--दूसरा इसमें भी शुद्ध जोड़ रहे हो! आडंबर को और भी झूठा बना रहे हो।
शील का अर्थ होता है: ध्यान के शून्य में जिसने अपने अंतःकरण को पहचाना है; जिसने शून्य में अपने केंद्र से संबंध जोड़े हैं; जो अपने प्राणों के प्राण से संयुक्त हुआ है; जिसने पहली दफा जाना है कि मैं परिधि ही नहीं हूं, केंद्र भी हूं; और जिसकी परिधि केंद्र से प्रभावित होने लगी-- उसका नाम शील है। शील है तुम्हारे भीतर से ऊगा हुआ और चरित्र है ऊपर से थोपा हुआ। जैसे कोई कागजी फूल लाकर वृक्षों पर अटका दे। हो सकता है राह चलते राहगीरों को धोखा हो जाए।
मगर तुम किसको धोखा दे रहे हो? क्या मधुमक्खियों को धोखा दे पाओगे? कोई एक मधुमक्खी भी तुम्हारे कागज के फूल पर न बैठेगी। क्या तुम भंवरों को धोखा दे पाओगे? कोई भंवरा तुम्हारे कागज के फूलों के पास गुनगुन करके गीत न गाएगा। तुम किसे धोखा दे रहे हो? और तुम सबको भी धोखा दे दो, मगर तुम्हें तो पता ही रहेगा कि फूल कागजी हैं। तुमने ही लटकाए हैं। तुम अपने को तो धोखा न दे पाओगे। तुम वृक्ष को तो धोखा न दे पाओगे। इन कागजी फूलों को वृक्ष रस नहीं देने लगेगा। और अगर दिया भी उसने रस तो ये गल जाएंगे। ये मर जाएंगे। वह जीवनदायी रस इनके लिए मृत्यु हो जाएगा। असली फूल वृक्ष में लगते हैं। उसके अंग होते हैं।
शील है असली फूल--तुम्हारे भीतर ऊगा, तुम्हारे भीतर लगा। नकली नहीं, बाजारू नहीं, कागजी नहीं। और तब इस सुभाषित का अर्थ खुल सकेगा। तो मैं शील का अर्थ शुद्ध चरित्र नहीं करता हूं। यह "अर्थात शुद्ध चरित्र' छोड़ दो! खयाल से ही हटा दो! इतना ही कहो कि शील न हो तो मनुष्य के जीवन में सत्य नहीं होता।
क्या होगा! अगर सत्य हो तो शील ही होगा; अगर शील हो तो सत्य भी होगा। जिसने अपने जीवन के केंद्र को जान लिया, उस जानने को, उस पहचानने को ही तो सत्य का अनुभव कहते हैं। और जिसके जीवन में आत्म-अनुभव हो, उसके जीवन में तप होता है।
तप का क्या अर्थ है? तप शब्द को समझना चाहिए।
लोग सोचते हैं तप का अर्थ है अपने को सताना, गलाना, परेशान करना, हैरान करना। तब तो तप एक तरह की आत्म-हिंसा हो गई। तो फिर दुनिया में दो तरह के लोग हैं: दूसरों को सताने वाले और अपने को सताने वाले। इनमें कुछ फर्क नहीं है, जहां तक सताने का संबंध है, ये एक जैसे हैं। इनकी कोटियां अलग-अलग नहीं हैं। कोई दूसरे को अगर सताए तो हम उसको दुष्ट कहते हैं। और अपने को सताए तो उसको संत कहते हैं। गजब के लोग हैं! हम भी गजब के लोग हैं! हमारी कोटियां भी गजब की, हमारी व्याख्याएं भी अदभुत!

अरे, दूसरे को जो सताए वह उतना दुष्ट नहीं है, क्योंकि दूसरा अपनी आत्म-रक्षा भी कर सकता है। लेकिन जो खुद को सताए, वह तो बहुत ही दुष्ट है, क्योंकि खुद की अब कोई आत्म-रक्षा करने वाला भी नहीं है। अब तो जिसको हमने रक्षक समझा था, वही सता रहा है। अब तो जिससे हम बचना चाहते थे, वही मार रहा है। अब कौन बचाएगा? जिसको हमने सुरक्षा मानी थी, वही झूठी सिद्ध हो गई। इसलिए जो कायर हैं और दूसरों को सताने में डरते हैं--क्योंकि दूसरों
को सताने में खतरा है; दूसरों को छेड़ने में खतरा है! जैसे कोई मधुमक्खी का छत्ता छेड़ दे! दूसरे को छेड़ोगे तो दूसरा बदला लेगा, आज नहीं कल, कल नहीं परसों। और कौन जाने खतरनाक आदमी हो!
मुल्ला नसरुद्दीन चला जा रहा था एक रास्ते से, ऊपर से एक ईंट गिरी, उसकी खोपड़ी पर पड़ी। भनभना गया। तमतमा गया। उठाई ईंट और गुस्से में गया जीना चढ़ कर ऊपर कि सिर खोल दूंगा! कौन हरामजादा है जिसने ईंट पटकी? देखता भी नहीं!
उधर जाकर देखा तो एक पहलवान खड़ा था। अभी दंड-बैठक लगा कर ही उठा था। पहलवान को देख कर मुल्ला चौकड़ी भूल गए। पहलवान ने पूछा; "कहो, क्या काम है?' उसने कहा: "कुछ नहीं, आपकी ईंट गिर गई थी, वह वापस करने आया हूं। अरे, कभी भी जरूरत हो तो पड़ोस में ही रहता हूं, आवाज दे दी। कोई चीज गिर जाए, कुछ हो तो उठा कर ला दूंगा। सेवा तो हमारा धर्म है!'
भूल गए चौकड़ी! गए तो थे कि खोल दूंगा सिर, ईंट लौटा कर वापस अपना सिर मलते आ गए!
एक दिन मुल्ला घर लौटा, देखा कि पत्नी के बिस्तर पर कोई सोया हुआ है। दोनों कंबल के भीतर हैं। आगबबूला हो गया। सोचा कि निकाल लूं तलवार, कि पिस्तौल। पर इसके पहले कि पिस्तौल निकालने जाऊं, जरा देख तो लूं कि कौन है? कंबल उठाया, वही पहलवान! जल्दी से कंबल उढ़ा दिया। पत्नी ने कहा: "क्यों, क्या करते हो?'
"अरे,' उसने कहा, "बेचारे पहलवान को ठंड न लग जाए! और एक कंबल ले आऊं, भैया? शांति से सो!' मगर दिल तो भनभना रहा था। यह तो हद हो गई! ईंट भी ठीक थी, मगर अब जरा बात आगे बढ़ गई बहुत! कंबल तो उढ़ा कर बाहर लौट आया, पहलवान का छाता रखा था। पहलवान का छाता अपनी टांग पर रख कर तोड़ दिया और कहा कि हे प्रभु, अब ऐसा हो कि जम कर बरसे, पानी ऐसा बरसे कि कमबख्त को पता चल जाए! घर पहुंचने में मजा आ जाए इसको भी!
अब और क्या करोगे? उसका छाता तोड़ कर परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं।
जो लोग दूसरों को नहीं सता सकते, क्योंकि दूसरों को सताना खतरे से खाली नहीं है, जोखिम का काम है, वे अपने को सताने लगते हैं। और मजा यह है कि यही कायर तुम्हारे महात्मा बन जाते हैं। यही तुम्हारे संत बन जाते हैं। इन्हीं के चरणों में तुम सिर झुका रहे हो। इन्हीं कायरों की पूजा चल रही है।
तप का यह अर्थ नहीं है। तप का अर्थ होता है--तप शब्द में ही अर्थ छिपा हुआ है: तप यानी तपिश। एक ऊर्जा, एक गर्मी। जैसे भीतर सूरज ऊग आया हो। जैसे जीवन की सारी ऊर्जा जाग्रत हो गई हो। जैसे सोए स्रोत खुल गए हों। झरने फूट पड़े हों। एक दीप्ति, एक ओजस।
जिस व्यक्ति ने स्वयं के सत्य को जाना है, उसके जीवन में एक गर्मी होगी--क्रांति की, बगावत की। उसके जीवन में एक आग्नेयता होगी। क्योंकि उसके भीतर आत्म-ज्योति का दीया जलेगा। उसके भीतर ठंडा बरफ जैसा हृदय नहीं होगा, मुर्दा हृदय नहीं होगा, जीवंत हृदय होगा। तप का अर्थ है: ऊर्जा, गर्मी। जैसे सूरज निकल आता है तो फूल जो बंद थे रात भर, खुल जाते हैं; पक्षी जो रात भर सोए रहे, जग जाते हैं; जिनके कंठ रात भर चुप थे, अचानक गीतों में फूट पड़ते हैं; वैसे ही सत्य के अनुभव के साथ तुम्हारे जीवन में ऊर्जा का पदार्पण होता है। सूरज ऊगता है, फूल खिलते हैं, जागरण आता है--और गीत और नृत्य और उत्सव।
तप अपने को सताना नहीं है, अपनी जीवन-ऊर्जा को उसकी पराकाष्ठा पर प्रकट होने देना है। और जिसकी जीवन-ऊर्जा पराकाष्ठा पर प्रकट होगी, निश्चित ही उसका अंतिम परिणाम सृजन होगा, कला होगी। क्योंकि ऊर्जा

तुम्हें स्रष्टा बनाएगी। तुम गीत रचो, कि मूर्ति रचो, कि चित्र बनाओ, कि तुम जो कुछ भी करोगे, उस सब में एक सौष्ठव होगा, उस सब में एक संस्कृति होगी। तुम मिट्टी छुओगे तो सोना हो जाएगी। और मिट्टी को छूकर सोना बना देने का नाम ही कला है।
जब तक स्वयं के सत्य को नहीं जाना, शील को नहीं पहचाना, अपने भीतर के केंद्र को अनुभव नहीं किया, तब तक सब झूठ है; उसके साथ ही सब सच हो जाता है। एक को जान लो तुम, स्वयं को, तो तुम्हारे जीवन में फूल ही फूल खिल जाते हैं। इतने फूल खिल जाते हैं कि तुमने कभी कल्पना भी न की थी। इतने गीत कि तुमने कभी सोचा भी न था कि तुम्हारे भाग्य में होंगे! इतना आनंद, इतना नृत्य, इतनी ऊर्जा कि नृत्य तो फूटेगा ही, आनंद तो जागेगा ही। ऊर्जा तो अपने आप नाचती है। ऊर्जा बिना नाचे नहीं रह सकती! झरने फूट पड़ेंगे!
और तभी जप। यह बैठ कर जो रामनाम की चदरिया ओढ़े हुए और माला हाथ में लिए हुए जप कर रहे हैं मुर्दों की भांति, इनके जप का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन जप का अर्थ होता है: जब तुम्हारे जीवन में आनंद की पुलक आई, लहर दौड़ी और तुम्हारे भीतर अनुग्रह का भाव उठा। परमात्मा को--या परमात्मा शब्द को बीच में न भी लाओ तो भी चलेगा--अस्तित्व को जब धन्यवाद देने के लिए तुम झुके, उस झुकने का नाम जप है। फिर वह मौन भी हो सकता है, मुखर भी हो सकता है।
उस स्वानुभूति के पहले जो ज्ञान है, कचरा है, किताबी है, शास्त्रीय है। उस स्वानुभव के बाद ही ज्ञान है। ज्ञान एक ही है: अपने को जानना। उपनिषदों ने बड़ी अनूठी व्याख्या की है। दुनिया में कभी ऐसी व्याख्या नहीं की गई। जिसको आज हम विज्ञान कहते हैं, उसको उपनिषद अविद्या कहते हैं। बाहर का ज्ञान अविद्या। यह भूगोल और यह इतिहास और यह गणित और यह भौतिकी और यह रसायन--बाहर का सब ज्ञान उपनिषद अविद्या कहते हैं। और भीतर के ज्ञान को विद्या कहते हैं।
तो ज्ञान तो एक ही बचा फिर: स्वयं को जानना, आत्म-साक्षात्कार। और शेष
सब अविद्या हो गया। शेष सब कामचलाऊ है। उपादेयता है उसकी, लेकिन उससे कोई मुक्ति नहीं बनती। और उससे जीवन में कोई आनंद नहीं निर्मित होता और अमृत नहीं निचुड़ता। ज्ञान तो वह है जो मुक्तिदायी हो।
सा विद्या या विमुक्तये।
वही है विद्या जो मुक्ति लाए। यह परिभाषा हुई विद्या की--जो मुक्ति लाए वह विद्या। जो बांध दे, वह विद्या नहीं। जो खोल दे सारे बंधन, वही विद्या, वही ज्ञान।
सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
शील न हो तो कुछ भी नहीं। भीतर अंधेरा हो तो कुछ भी नहीं। भीतर उजाला
हो तो सब कुछ। इसलिए मेरा जोर एक ही बात पर है--सिर्फ एक बात पर--कि कुछ भी हो, किसी भी कीमत पर हो, समाधि को पाना है। ध्यान को जगाना है। ध्यान की अंतिम चोटी को छू लेना है। वही समाधि है, संबोधि है, बुद्धत्व है। उसको छू लिया तो शेष सब रूपांतरित हो जाएगा। और उसको न छुआ, तो तुम लाख वीणा बजाओ-- तकनीकी दृष्टि से शायद तुम वीणावादक हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे वीणा बजाने में प्राण नहीं होंगे। तार झनझनाएंगे, गीत भी ओंठों से आएगा, मगर हृदय से नहीं।
अकबर ने तानसेन से कहा था कि तेरा वीणा-वादन देख कर कभी-कभी यह मेरे मन में खयाल उठता है कि कभी संसार में किसी आदमी ने तुझसे भी बेहतर बजाया होगा या कभी कोई बजाएगा? मैं तो कल्पना भी नहीं कर पाता कि इससे श्रेष्ठतर कुछ हो सकता है।
तानसेन ने कहा, क्षमा करें, शायद आपको पता नहीं कि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं। और एक बार अगर आप उनकी वीणा सुन लें, तो कहां वे और कहां मैं! बड़ी जिज्ञासा जगी अकबर को। अकबर ने कहा, तो फिर उन्हें बुलाओ!
तानसेन ने कहा, इसीलिए मैंने कभी उनकी बात नहीं छेड़ी। आप मेरी सदा प्रशंसा करते थे, मैं चुपचाप पी लेता था, जैसे जहर का घूंट कोई पीता है, क्योंकि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं, उनके सामने मेरी क्या प्रशंसा! यह यूं

है जैसे कोई सूरज को दीपक दिखाए। मगर मैं चुपचाप रह जाता था, कुछ कहता न था, आज न रोक सका अपने को, बात निकल गई। लेकिन नहीं कहता था इसीलिए कि आप तत्क्षण कहेंगे, उन्हें बुलाओ। और तब मैं मुश्किल में पडूंगा, क्योंकि वे यूं आते नहीं। उनकी मौज हो तो जंगल में बजाते हैं, जहां कोई सुनने वाला नहीं। जहां कभी-कभी जंगली जानवर जरूर इकट्ठे हो जाते हैं सुनने को। वृक्ष सुन लेते हैं, पहाड़ सुन लेते हैं। लेकिन फरमाइश से तो वे कभी बजाते नहीं। वे यहां दरबार में न आएंगे। आ भी जाएं किसी तरह और हम कहें उनसे कि बजाओ तो वे बजाएंगे नहीं।
तो अकबर ने कहा, फिर क्या करना पड़े? कैसे सुनना पड़े?
तो तानसेन ने कहा, एक ही उपाय है कि यह मैं जानता हूं कि रात तीन बजे वे उठते हैं, यमुना के तट पर आगरा में रहते हैं--हरिदास उनका नाम था--हम रात चल कर छुप जाएं। दो बजे रात चलना होगा; क्योंकि कभी तीन बजे बजाएं, चार बजे बजाएं, पांच बजे बजाएं; मगर एक बार जरूर सुबह-सुबह स्नान के बाद वे वीणा बजाते हैं। तो हमें चोरी से ही सुनना होगा; बाहर झोपड़े के छिपे रह कर सुनना होगा।
शायद ही दुनिया के इतिहास में किसी सम्राट ने--अकबर जैसे बड़े सम्राट ने--चोरी से किसी की वीणा सुनी हो! लेकिन अकबर गया। दोनों छिप रहे एक झाड़ की ओट में, पास ही झोपड़े के पीछे। कोई तीन बजे स्नान करके हरिदास यमुना से आए और उन्होंने अपनी वीणा उठाई और बजाई। कोई घंटा कब बीत गया--यूं जैसे पल बीत जाए! वीणा तो बंद हो गई, लेकिन जो राग भीतर अकबर के जम गया था वह जमा ही रहा।
आधा घंटे बाद तानसेन ने उन्हें हिलाया और कहा कि अब सुबह होने के करीब है, हम चलें! अब कब तक बैठे रहेंगे! अब तो वीणा बंद भी हो चुकी।
अकबर ने कहा, बाहर की तो वीणा बंद हो गई मगर भीतर की बजी ही चली जाती है। तुम्हें मैंने बहुत बार सुना, तुम जब बंद करते हो तभी बंद हो जाती है। यह पहला मौका है कि जैसे मेरे भीतर के तार भी छिड़ गए हैं। और आज सच में ही मैं तुमसे कहता हूं कि तुम ठीक ही कहते थे कि कहां तुम और कहां तुम्हारे गुरु! अकबर की आंखों से आंसू झरे जा रहे हैं। उसने कहा, मैंने बहुत संगीत सुना, इतना भेद क्यों है? और तेरे संगीत में भी और तेरे गुरु के संगीत में इतना भेद क्यों है? जमीन-आसमान का फर्क है।
तानसेन ने कहा, कुछ बात कठिन नहीं है। मैं बजाता हूं कुछ पाने के लिए;
और वे बजाते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ पा लिया है। उनका बजाना किसी उपलब्धि की, किसी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। मेरा बजाना तकनीकी है। मैं बजाना जानता हूं, मैं बजाने का पूरा गणित जानता हूं--मगर गणित, बजाने का अध्यात्म मेरे पास नहीं! और मैं जब बजाता होता हूं तब भी इस आशा में कि आज क्या आप देंगे? हीरे का हार भेंट करेंगे? कि मोतियों की माला? कि मेरी झोली सोने से भर देंगे कि अशर्फियों से? जब बजाता हूं तब भी नजर भविष्य पर अटकी रहती है, फल पर लगी रहती है। वे बजा रहे हैं, न कोई फल है, न कोई भविष्य, वर्तमान का क्षण ही सब कुछ है। उनके जीवन में साधन और साध्य में कोई फर्क नहीं है, साधन ही साध्य है; और मेरे जीवन में अभी साधन और साध्य में बहुत फर्क है। बजाना साधन है। पेशेवर हूं मैं। उनका बजाना आनंद है, साधन नहीं। वे मस्ती में हैं। वे पीए हैं।
और जो परमात्मा को पीए है, उसके बजाने में जरूर वही शराब कुछ तो बह ही आएगी! उन तक भी बह आएगी जिन्होंने तौबा कर रखी है कि कभी न पीएंगे; उनके कंठों में भी उतर जाएगी। किसी सच्चे पीने वाले के पास अगर बैठ गए, किसी पियक्कड़ के पास अगर बैठ गए, तो तुम्हारे तौबा के जीने से ही उतर-उतर कर तुम्हारे हृदय तक शराब पहुंच जाएगी। तुम्हारी कसमों को तोड़ देगी। तुम्हारे नियम-व्रत-उपवास तोड़ देगी। आनंद तुम्हें बहा ले जाएगा। बह जाओगे तभी पता चलेगा कि अरे, कितनी दूर निकल आए? बहुत दूर निकल आए!
शील हो तो शेष सब आ जाता है। और शील न हो तो तुम जमाते रहो, बिठाते रहो
सब साज-सामान, बस कचरा ही इकट्ठा कर रहे हो। मुक्ति नहीं होगी, और कचरे से दब जाओगे। शील मुक्ति है। चरित्र बंधन है।

मेरा स्वर्णिम भारत-11

स्वस्थ हो जाना उपनिषद् है
(Note: from Bahuri Na Aiso Daanv (बहुरि न ऐसो दांव) #4)

पहला प्रश्नः ओशो, तैत्तरीय उपनिषद में एक कथा है कि गुरु ने शिष्य से नाराज होकर उसे अपने द्वारा सिखाई गई विद्या त्याग देने को कहा। तो "एवमस्तु" कह कर शिष्य ने विद्या का वमन कर दिया, जिसे देवताओं ने तीतर का रूप धारण कर एकत्र कर लिया। वही तैत्तरीय उपनिषद कहलाया।
ओशो, इस उच्छिष्ट ज्ञान के संबंध में समझाने की कृपा करें।

जिनस्वरूप! इस संबंध में बहुत सी बातें विचारणीय हैं। पहली तो बात यह
है कि गुरु नाराज नहीं होता। दिखाए भला, अभिनय भला करे, नाराज नहीं होता। जो अपने से राजी हो गया, अब किसी और से नाराज नहीं हो सकता है। वह असंभावना है। इसलिए गुरु नाराज हुआ हो तो गुरु नहीं था।
"गुरु" शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। गुरु का अर्थ अध्यापक नहीं; गुरु का अर्थ शिक्षक नहीं, आचार्य नहीं। गुरु बनता है दो शब्दों से--गु और रु। गु का अर्थ होता हैः अंधकार, रु का अर्थ होता हैः दूर करने वाला। और क्रोध तो अंधकार है। यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई कहे कि दीये के पास अंधकार इकट्ठा हो गया। गुरु और नाराज हो जाए, क्रुद्ध हो जाए--यह स्वभाव के नियम के अंतर्गत आता नहीं। यह जीवन की आधारशिलाओं के विपरीत है।
लेकिन हम ऐसे गुरुओं के संबंध में सुनते रहे हैं, जो नाराज हो जाते हैं। दुर्वासा की कथाएं हैं। वे कथाएं केवल इतना ही कहती हैं कि हमने भूल से किसी शिक्षक को गुरु समझ लिया था। और यह भूल आसान है, क्योंकि शिक्षक वे ही शब्द बोलता है जो गुरु; शायद गुरु से भी ज्यादा सुसंबद्ध उसकी तर्कसरणी हो। गुरु तो थोड़ा अटपटा होगा। इसलिए अटपटा होगा कि जिसने सत्य को जाना है, उसके जीवन में सारे विरोधाभास एक ही ऊर्जा में लीन हो जाते हैं। उसके जीवन में जीवन और मृत्यु का मिलन हो जाता है। उसके अस्तित्व में पदार्थ और आत्मा का भेद नहीं रह जाता। उसकी चर्या में सार और असार में कोई चुनाव नहीं बचता। उसके लिए सोना--मिट्टी; और मिट्टी--सोना। उसके लिए संसार-- मोक्ष; और मोक्ष--संसार।
झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछाः मोक्ष के संबंध में कुछ कहें।
बोकोजू ने कहाः संसार मोक्ष है।
यह केवल कोई गुरु ही बोल सकता है; कोई शिक्षक बोलने की इतनी छाती नहीं रखता--इतनी विराट छाती कि जिसमें मोक्ष को संसार कहा जा सके, आसान मामला नहीं है। विराट के मिलन पर ही संभव हो सकती है यह अभूतपूर्व घटना।
यह जो तैत्तरीय उपनिषद में कथा है, इसमें गुरु नहीं हो सकता, शिक्षक रहा होगा। सुंदर शिक्षक रहा होगा। शिक्षा देने की कला में निष्णात रहा होगा। और सौ गुरुओं में निन्यानबे केवल शिक्षक होते हैं। कोई गीता में पारंगत होता है, कोई वेद में, कोई कुरान में, कोई बाइबिल में--मगर ये सब शिक्षक हैं। गुरु तो वह जो परमात्मा को पीकर बैठा है। गुरु तो वह जिसके पीछे परमात्मा छाया की तरह चले। कबीर ठीक कहते हैंः "हरि लगे पीछे फिरत, कहत कबीर-कबीर।" कबीर कहते हैंः मैं तो फिकर भी नहीं करता। क्या लेना-देना मुझे हरि से? मगर हरि मेरे पीछे लगे फिरते हैं। जहां जाता हूं वहीं लगे फिरते हैं। जागूं तो, सोऊं तो। और दिन-रात धुन लगाए रखते हैं--कबीर-कबीर! भक्तों ने तो परमात्मा को बहुत पुकारा है, लेकिन यह छाती कबीर की किसी गुरु की हो सकती है, जो कहे--"हरि लगे पाछे फिरत, कहत कबीर-कबीर।" तैत्तरीय उपनिषद का गुरु पहली तो बात गुरु नहीं है। गुरु और कैसा क्रोध? न तो गुरु गुरु है और न शिष्य शिष्य।
शिष्य और विद्यार्थी का भेद वैसे ही समझना जरूरी है जैसे गुरु और शिक्षक का भेद। शिक्षक के पास विद्यार्थी इकट्ठे होते हैं; गुरु के पास शिष्य। गुरु के पास विद्यार्थी पहुंच जाए तो भी टिक नहीं सकता; ज्यादा देर नहीं टिक सकता; टिके भी तो कुछ पाएगा नहीं।

गुणा ने एक प्रश्न पूछा है कि "आपकी कुछ बातें तो बुद्धि को रुचती हैं, कुछ बातें नहीं रुचतीं। इसलिए समर्पण पूरा नहीं हो पाता।"
जैसे कि समर्पण भी पूरा और अधूरा हो सकता है! जैसे समर्पण के भी खंड हो सकते हैं! जैसे समर्पण का भी प्रतिशत हो सकता है--दस प्रतिशत, बीस प्रतिशत, पचास प्रतिशत, अस्सी प्रतिशत, निन्यानबे प्रतिशत! नहीं गुणा, समर्पण या तो होता है या नहीं होता। गुरु की बात शिष्य को जंचती ही है; दुनिया को न जंचे तो भी जंचती है। तर्क में न बैठे, बुद्धि की पकड़ में न आए, तो भी जंचती है। शिष्य वह है कि जिसके सामने अगर सवाल हो कि गुरु की बात मानूं या अपने तर्क की, तो वह गुरु की मानता है, तर्क को कहता है नमस्कार।
विद्यार्थी वह है जो वहां तक शिक्षक के साथ जाता है जहां तक उसका तर्क जाने देता है। विद्यार्थी कभी भी अपने तर्क से एक इंच दूर शिक्षक के साथ नहीं जाता। शिक्षक के साथ जाता ही नहीं। वह तो अपने तर्क का ही भरण-पोषण करता है। वह तो शिक्षक से कुछ ज्ञान, कुछ सूचना एकत्रित करके ले जाएगा। जीवन-रूपांतरण उसकी आकांक्षा नहीं, उसकी अभीप्सा नहीं।
गुणा तो बहुत वर्षों से मुझे जानती है। लेकिन दूरी वैसी की वैसी बनी
है और लगता है वैसी की वैसी ही बनी रहेगी। मेरी तरफ से तो पूरी चेष्टा है कि तोड़ दूं दूरी, मगर अगर तेरी बुद्धि को अभी भी निर्णय करना है--कौन सी बात जंचती है और कौन सी नहीं जंचती--तो समर्पण असंभव है। जहां समर्पण नहीं वहां शिष्यत्व नहीं।
और यह ख्याल रखना, गुरु जान कर बहुत सी ऐसी बातें कहता है जो बुद्धि को जंचेंगी नहीं। जान कर कहेगा, क्योंकि वही तो कसौटी है। वही तो परीक्षा है। उसको जो पार कर लेगा, वह शिष्य; जो पार नहीं कर पाएगा, वह विद्यार्थी। गुरु अगर वही-वही कहता रहे जो तुम्हारी बुद्धि को जंचता ही है तो शिष्य और विद्यार्थी में भेद करना ही असंभव हो जाएगा।
विद्यार्थी शिष्य की गरिमा को नहीं पा सकता। विद्यार्थी घिसटता है शिक्षक के प्रति। शिष्य गुरु के आगे नाचता है। गुरु तो इशारा करता है और शिष्य यह गया वह गया! वह यह भी नहीं पूछता--नक्शा कहां, किस मार्ग से जाऊं, राह में कोई खतरे तो नहीं हैं? सारी सुविधाएं-सुरक्षाएं जुटा लूं, फिर जाऊंगा। पहले मेरा पूरा तर्क राजी हो जाए, फिर जाऊंगा। थोड़ा और सोच लूं, थोड़ा और विचार कर लूं।
एक महानुभाव ने पूछा हैः "मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन कुछ बातें अड़चन बन जाती हैं। जैसे कि आपने कहा था कि जब तक मैं रहना चाहूंगा, कोई छुरा भी मारे तो भी मुझे मिटा न सकेगा। और जिस दिन मैं न रहना चाहूंगा, उस दिन एक क्षण कोई लाख उपाय करे तो मुझे टिका न सकेगा।"
यह बात उनको जंची। संन्यास का भाव उठा होगा तब। फिर अब उनको अड़चन हो गई, क्योंकि यहां वे देखते हैं कि संन्यासी सुरक्षा का आयोजन किए हैं, द्वार पर प्रत्येक व्यक्ति का निरीक्षण किया जाता है, पहरेदार हैं। तो अब उनको अड़चन आई। अब बुद्धि को चिंता शुरू हुई कि अगर छुरा मारने से भी हटाया नहीं जा सकता, तो सुरक्षा का आयोजन क्यों?
उन्होंने बात को अधूरा ही सुना। हम उतना ही सुनते हैं जितना हम सुनना चाहते हैं। मैंने कहा थाः "छुरा मार कर मुझे उठाया नहीं जा सकता। सुरक्षा करके मुझे बचाया नहीं जा सकता। न तो मैं छुरा मारने वालों को रोकने को कुछ कहूंगा और न सुरक्षा करने वालों को रोकने को कुछ कहूंगा। जब छुरा मारने वाले स्वतंत्र हैं तो सुरक्षा करने वालों को क्यों बाधा देनी?"
इतनी अक्ल उनमें न उठी। इतनी अक्ल अक्ल में होती ही नहीं। अक्ल तो बेअक्ल है!
महात्मा गांधी की मृत्यु के समय उनके पटशिष्य सरदार वल्लभ भाई पटेल
के हाथ में सारी सुरक्षा का आयोजन था। वे गृहमंत्री थे, उप-प्रधानमंत्री थे। और सरदार को खबर मिली थी सुनिश्चित स्रोतों से कि गांधी की हत्या का आयोजन किया जा रहा है। एक-दो प्रयास भी हो चुके थे, असफल गए थे। तो सरदार ने जाकर महात्मा गांधी को पूछा कि हम सुरक्षा का आयोजन करें? इस पूछने में ही बेईमानी है। क्योंकि जो बंदूक मारने आ रहे थे वे तो पूछ कर आ नहीं रहे थे। जब दुश्मन नहीं पूछ रहा है तो दोस्त क्यों पूछे? और इस पूछने में बेईमानी है, इसलिए कि अगर महात्मा गांधी कहते कि हां सुरक्षा का आयोजन करो, तो

सरदार वल्लभ भाई पटेल की श्रद्धा ही महात्मा गांधी में खत्म हो जाती कि अरे, यह व्यक्ति कहता था कल तक कि राम जब उठाना चाहेगा तब उठाएगा और अब कहने लगा कि सुरक्षा का इंतजाम करो? सरदार की श्रद्धा ही खिसक गई होती। सरदार अचेतन मन में तो यही आकांक्षा लेकर गए होंगे कि गांधी कहेंगे कि कोई सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। यह मैं सुनिश्चित रूप से कहता हूं कि वे यही आकांक्षा लेकर गए होंगे कि गांधी कहेंगे, "सुरक्षा की क्या आवश्यकता है? परमात्मा सुरक्षा है।" और वही गांधी ने कहा और सरदार प्रसन्न लौटे। विद्यार्थी के अनुकूल हो गई बात और सारे देश को अच्छी लगी कि यह है श्रद्धा! ईश्वर पर कैसी श्रद्धा है! कोई सुरक्षा की जरूरत नहीं!
मगर, नाथूराम गोडसे में जो आया था वह भी ईश्वर है। और सरदार वल्लभ भाई पटेल में जो आया था वह भी ईश्वर है। तुम ईश्वर-ईश्वर में चुनाव कैसे करते हो? नाथूराम गोडसे का ईश्वर कुछ ज्यादा ईश्वर मालूम होता है? मैं इसे श्रद्धा नहीं कहता। मैं तो मानता हूं यह विनम्रता के रूप में छिपा हुआ अहंकार है। मैं तो कहूंगा गांधी में अगर सच में ही श्रद्धा थी तो वे कहतेः "जो उसकी मरजी! अगर वह किसी को छुरा मारने भेजता है, किसी को गोली चलाने भेजता है और किसी से सुरक्षा करवाता है--जो उसकी मरजी! जो उसकी लीला! मैं तो द्रष्टा हूं, देखूंगा। उठ जाऊं तो ठीक, न उठूं तो ठीक। रहा तो उसका काम करूंगा, उठा तो उसका काम करते हुए उठूंगा।" मैं उसको श्रद्धा कहता।
गांधी श्रद्धालु नहीं हैं। गांधी हत्यारे में तो भरोसा करते हैं; लेकिन रक्षक में नहीं। और सरदार पटेल बिल्कुल निशिं्चत हो गए कि बिल्कुल ठीक बात है। सच पूछो तो नाथूराम गोडसे से ज्यादा मोरारजी देसाई और सरदार वल्लभ भाई पटेल, ये दो आदमी महात्मा गांधी की हत्या के लिए जिम्मेवार हैं। क्योंकि मोरारजी देसाई महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री थे और उनको भी खबर थी कि महाराष्ट्र से ही आयोजन चल रहा है हत्या का। और सरदार वल्लभ भाई पटेल केंद्र के गृहमंत्री थे, और उनको भी पता था कि हत्या का आयोजन चल रहा है। लेकिन दोनों चुप बैठे रहे। और चुप बैठने के लिए एक सुंदर सुरक्षा का उपाय मिल गया कि गांधी कहते हैंः "क्या करना सुरक्षा से? जब तक उसे रखना है रखेगा; जब हटाना है हटा लेगा।"
मैं कुछ और ढंग से सोचता हूं। जिनसे उसे हटवाना है उनसे हटवाएगा; जिनसे उसे रुकवाना है उनसे रुकवाएगा। न मैं किसी को कहता हूं कि आकर मुझे गोली मारो, न मैं किसी को कहता हूं कि जो गोली आकर मारे उसे रोको। मैं कौन हूं? जिसकी मर्जी हो गोली मारे, जिसकी मर्जी हो गोली रोके! मेरे लिए दोनों खेल हैं।
मगर जिन महानुभाव ने पूछा है, उनकी संन्यास की धारणा, संन्यास लेने की इच्छा डगमगा गई कि कैसे संन्यास लेना! संन्यास बुद्धि से नहीं लिए जाते। समर्पण बुद्धि से नहीं होते। संन्यास और समर्पण पर्यायवाची हैं। और शिष्य वही है जो समर्पित है, जो संन्यस्त है--जो गुरु के साथ अगम्य में जाने को राजी है। और अगम्य का तुम कैसे पार पाओगे, तर्क से कैसे नापोगे, बुद्धि के तराजू पर कैसे तौलोगे?
तो न तो यह गुरु था तैत्तरीय उपनिषद का व्यक्ति और न उसके पास जो सीखने बैठा था वह शिष्य था। यह शिक्षक था, वह विद्यार्थी था। यह रटी हुई बातें दोहरा रहा था, वह उन बातों को रट रहा था, ताकि कल वह भी शिक्षक हो जाएगा और दूसरों को रटवाएगा। गुरु नाराज हो गया किसी बात से शिष्य पर! गुरु नाराज नहीं होता शिष्य पर। यह तो असंभव है। शिष्य नाराज नहीं होता गुरु पर; वह भी असंभव है। गुरु की तो बात ही छोड़ दो कि वह नाराज होगा। अरे शिष्य भी नाराज नहीं होता! यह प्रेम की पराकाष्ठा है। यहां कहां नाराजगी का प्रवेश? यह तालमेल का आत्यंतिक रूप है। यहां स्वर टूटते नहीं, छूटते नहीं। यहां लयबद्धता समग्र है, संपूर्ण है।
लेकिन विद्यार्थी नाराज हो जाते हैं, जरा-जरा सी बात में नाराज हो जाते हैं। हजारों विद्यार्थी मेरे पास आए और गए--जरा सी बात में। उनको हटाने में देरी नहीं लगती। मुझे जिस दिन विद्यार्थियों को छांटना हो, एक क्षण में छांट देता हूं। अक्सर छांटता रहता हूं, क्योंकि कचरा-कूड़ा इकट्ठा होता है तो उसे छांटना ही पड़ता है। कंकड़-पत्थर आ जाते हैं, उनको छांटना ही पड़ता है। और छांटना इतना आसान है, जिसका हिसाब नहीं। एक बात कह

दो, वे नाराज हो जाएंगे। फिर जो भागे वे लौट कर न देखेंगे। फिर जिंदगी भर गालियां देंगे। यूं यहां चरणों में गिरने को उत्सुक बैठे थे, एक क्षण में उनका चरणों में गिरना गाली बन सकता है--एक क्षण में! उसमें देर ही नहीं लगती।
यह कथा कहती है, गुरु शिष्य से नाराज हो गया। और नाराज हो, तो गुरु करे क्या? गुरु तो था ही नहीं, करेगा क्या नाराज हो तो? उसने कहाः वापस कर दे मेरी इस विद्या को जो मैंने सिखाई है! यह केवल शिक्षक ही कह सकता है, क्योंकि गुरु जो सिखाता है वह वापस किया ही नहीं जा सकता, न वापस मांगा जा सकता है। वह तो जीवन-रूपांतरण है, उसको वापस करने का कोई उपाय नहीं है। जिस भोजन को तुमने पचा लिया, जो तुम्हारा रक्त-मांस-मज्जा बन गया, जो तुम्हारी हड्डियों में प्रविष्ट हो गया, जो तुम्हारी आत्मा तक चला गया--उसका वमन कैसे करोगे? हां, जो अनपचा है, जो खून नहीं बना है, जो पत्थर की तरह पेट में पड़ा रह गया है, जो भार है--उसका वमन किया जा सकता है। उसका वमन करने से हलकापन ही लगेगा। उसका वमन स्वास्थ्यप्रद है।
गुरु नाराज हुआ। उसने कहाः मेरी सिखाई विद्या वापस कर दे। ये बातें बचकानी हैं। ये गुरु के मुंह से शोभा नहीं देतीं। गुरु, पहली तो बात, कुछ सिखाता ही कहां है? गुरु तो, तुम जो सीखे हो, उसको मिटाता है। गुरु शिक्षण नहीं देता। गुरु शिक्षण छीनता है। गुरु ज्ञान नहीं देता, गुरु ज्ञान छीनता है। गुरु तुम्हें ज्ञान से मुक्त करता है, निर्दोष करता है। शिक्षक ज्ञान देता है, तो शिक्षक छीन भी सकता है। जो दिया जा सकता है वह छीना जा सकता है। गुरु तो कुछ देता ही नहीं, छीनेगा क्या? गुरु तो साफ करता है, कूड़े-करकट से तुम्हें मुक्त करता है। वापस लेने को तो कुछ है नहीं; दिया ही नहीं कभी।
जिनका मन लोभ से भरा है वे शिक्षकों के पास इकट्ठे होते हैं, क्योंकि वहां कुछ मिलेगा। सिर्फ निर्लोभी गुरु के पास बैठ सकते हैं, क्योंकि वहां कुछ खोना पड़ेगा। कुछ ही नहीं, अंततः स्वयं को खोना पड़ेगा। वहां शून्य होना पड़ेगा। जो शून्य हुआ वही शिष्य है। गुरु के पास से तुम रोज-रोज और-और खाली होकर लौटते हो। बुद्धि चली जाती, तर्क चला जाता, अहंकार चला जाता, इच्छाएं चली जाती हैं, महत्वाकांक्षाएं चली जाती हैं, अभीप्साएं चली जाती हैं। संसार ही नहीं जाता, मोक्ष, निर्वाण, समाधि, सब चला जाता है। कुछ बचता ही नहीं। गुरु कुछ छोड़ता ही नहीं। उठाता है तलवार और काटता चला जाता है। जब तुम्हारे भीतर सन्नाटा हो जाता है--न कोई शोर, न कोई आवाज--जब वैसी महाशांति तुम्हारे भीतर घनीभूत होती है, तब तुम योग्य हुए शिष्य कहलाने के। अब तुमसे छिनेगा क्या? जो छिनने का था वह तो छीन ही लिया गया।
और इस शून्य को कोई नहीं छीन सकता, क्योंकि शून्य तुम्हारा स्वभाव है। इसका वमन नहीं हो सकता। वमन तो उसका हो सकता है जो पर-भाव है। जो बाहर से डाला गया है, उसको तुम फेंक सकते हो। लेकिन जो भीतर ही है, जो तुम्हारा अंतर्तम है, उसका वमन नहीं हो सकता।
जिनस्वरूप, तुमने यह कथा उठा कर ठीक किया। यह कथा महत्वपूर्ण है। इसमें न तो गुरु गुरु है, न शिष्य शिष्य है। और इसलिए शिक्षक नाराज हो गया विद्यार्थी से, उसने कहा कि लौटा दे मेरी विद्या। क्या बचकानी बातें हैं! क्या टुच्ची बातें हैं! क्या थोथे वक्तव्य हैं! लौटा दे। जरा-जरा सी बात में--मैंने दिया, वह लौटा दे। यह देना भी सशर्त है कि छीन लूंगा अगर जरा गड़बड़ की; अगर जरा मेरे विपरीत गया, अनुकूल न हुआ तो छीन लूंगा, वापस ले लूंगा। यह कैसी विद्या, जो वापस दी जा सकती है?
इस जगत में जो तुमने ठीक-ठीक जान लिया है, उसे तुम कैसे वापस करोगे? जैसे अंधे आदमी की आंख खुल गई, उसने रोशनी देख ली, अब वह लाख उपाय करे, कैसे वापस करेगा? वह कितना ही कहे कि मैंने नहीं देखी, मान लिया कि मैंने नहीं देखी; मगर देख तो ली है।
जीवन के परम सत्यों में एक सत्य यह हैः जो जाना जाता है उसे फिर अनजाना नहीं किया जा सकता। और जिसे अनजाना किया जा सकता है उसे तुमने कभी जाना ही नहीं था। जो चीज तुम्हारे रग-रेशे में समा जाती है, उसका परित्याग असंभव है। कुछ चीजें तुम्हारे अनुभव में हैं, उनका मैं उल्लेख करूं तो समझ

में आ जाए। क्योंकि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं है, उसके उल्लेख करने से कुछ सार नहीं है।
तुमने अगर तैरना सीखा है तो क्या तुम उसे कभी भूल सकते हो? अब तक दुनिया में ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई तैरना भूल गया हो। चाहे पचास साल न तैरे, तैरना कोई भूलता ही नहीं। असंभव। क्यों? तैरना भूलना असंभव क्यों है? इस पर गहन शोध की जरूरत है कि तैरना भूलना असंभव क्यों है, इसकी विस्मृति क्यों नहीं हो सकती? गणित भूल जाता, भूगोल भूल जाता, इतिहास भूल जाता, विज्ञान भूल जाता, हर चीज भूल जाती है--लेकिन तैरना! तैरना नहीं भूलता। राज है। असल में तैरना हम सीखते नहीं, केवल पुनःस्मरण करते हैं। हम उसे जानते ही हैं स्वभाव से। मां के पेट में बच्चा नौ महीने पानी में ही तैरता है। मां के पेट में समुद्र के जल जैसा जल इकट्ठा हो जाता है। वह जो पेट मां का इतना बड़ा दिखाई पड़ता है, उसमें बच्चे का होना तो कारण होता ही है, ज्यादा कारण होता है बच्चे के तैरने के लिए जल का इकट्ठा होना। और उस जल का जो रासायनिक रूप है, वह वही है जो समुद्र के जल का है। और बच्चे की जो पहली अभिव्यक्ति है वह मछली जैसी है। इसी से वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि मनुष्य का जन्म सबसे पहले समुद्र में हुआ होगा। करोड़ों वर्ष हो गए इस बात को हुए, लेकिन मनुष्य सबसे पहले मछली की तरह प्रकट हुआ होगा।
संभवतः हिंदुओं की मत्स्य अवतार के पीछे यही धारणा है। ईश्वर ने पहला अवतार मछली की तरह लिया। यह कहने का एक और ढंग है मगर बात वही है कि जीवन पहली दफा मछली की तरह उतरा। और हर बच्चे को नौ महीने में, करोड़ों वर्षों में जो मनुष्य-जाति ने यात्रा की है, वह नौ महीने में त्वरा से, तेजी से पूरी करनी पड़ती है। बच्चे के नौ महीने के विकास के जो अलग-अलग अंग हैं, उनको समझ कर हम मनुष्य-जाति के पूरे विकास को समझ सकते हैं। और तब चाल्र्स डार्विन सत्य सिद्ध मालूम होता है, क्योंकि बच्चे के जीवन में एक घड़ी आती है मां के पेट में जब वह बंदर जैसा होता है, उसकी पूंछ भी होती है। फिर पूंछ गिर जाती है। नौ महीने होते-होते वह मनुष्य की प्रतिकृति में आ पाता है। लेकिन शुरुआत होती है मछली से।
अगर करोड़ों वर्ष पहले आदमी का प्राथमिक जीवन मछली की तरह शुरू हुआ था
तो उसके स्वभाव के अंतर्तम में तैरना है। हम भूल गए हैं भाषा, यह और बात है; लेकिन हमारा स्वभाव उसे अभी भी याद किए है।
और तैरने में हम करते भी क्या हैं! कोई तैरना सिखाता है किसी को! वस्तुतः किसी को भी पानी में फेंक दो, वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगेगा। वह जरा गैर-ढंग से हाथ-पैर तड़फड़ाता है, क्योंकि उसे अभी सलीका नहीं है। थोड़ा इन्हीं हाथ-पैर को ढंग से फेंकने लगे कि तैरना आ गया। जो तैरना सिखाता है वह इस सत्य को जानता है कि कुल काम इतना ही है कि तैरना सीखने वाले को यह भरोसा बना रहे कि कोई मेरी रक्षा के लिए मौजूद है, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं; उसका आत्म-विश्वास बढ़ जाए। तैरना तो उसके भीतर छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा।
जापान के एक मनोवैज्ञानिक ने छह महीने के बच्चों को तैरना सिखाया है!
और अब वह तीन महीने के बच्चों पर प्रयोग कर रहा है। छह महीने के बच्चे तैरने लगते हैं। कल्पनातीत मालूम होती है यह बात कि छह महीने का बच्चा कैसे तैरेगा! लेकिन जब मां के पेट में नौ महीने बच्चा तैरता ही रहता है तो छह महीने का भी तैरेगा, तीन महीने का भी तैरेगा, तीन दिन का भी तैरेगा। तैरना हमारा स्वभाव है।
सच्ची विद्या वही है जो हमारे स्वभाव का आविष्कार है। गुरु के पास हमें कुछ सिखाया नहीं जाता, वरन हम जो विस्मरण कर बैठे हैं, उसकी सुरति दिलाई जाती है, उसकी याद दिलाई जाती है। भूली भाषा को गुरु हमारे भीतर पुनः जगा देता है। जो स्वर हमारे सोए पड़े हैं, गुरु के स्वरों की झनकार में झनझना उठते हैं। गुरु गाता है, उसकी अनुगूंज हमारे भीतर भी गुनगुनाहट बन जाती है। गुरु नाचता है, उसके पैरों की झनकार हमारे भीतर के घुंघरुओं को हिला देती है। गुरु सितार बजाता है, उसकी तार का छेड़ देना हमारी हृदय-तंत्री पर एक आघात हो जाता है।

विद्या साधारण शिक्षा नहीं है। विद्या से वह जाना जाता है, जिसे हम जानते ही थे और भूल गए हैं। और शिक्षा से वह जाना जाता है, जिसे हम कभी जानते ही नहीं थे; इसलिए कभी भी भूल सकते हैं।
तो इस शिक्षक ने--मैं कहूंगा शिक्षक ने--विद्यार्थी से नाराज होकर कहा
कि लौटा दे, मेरी विद्या लौटा दे। क्या करता विद्यार्थी भी! उसने "एवमस्तु" कह कर विद्या का वमन कर दिया। यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। उसने उलटी कर दी कि ले रख, अब और क्या कर सकता हूं? अनपचा तो था ही। बोझ ही हो रहा होगा। उसने उतार कर बोझ रख दिया। उसने कहाः सम्हाल अपना कचरा! उसने हलकापन ही अनुभव किया होगा।
"और देवताओं ने तीतर का रूप धारण कर उसे एकत्र कर लिया।" ये देवता भी गजब के लोग हैं! देवताओं से हमने ऐसे-ऐसे काम करवाए हैं जो कोई न करे। अब किसी ने उलटी की है, इन्होंने तीतर बन कर उसकी उलटी को भी इकट्ठा कर लिया! इसलिए हम देवताओं को कोई परम अवस्था नहीं मानते।
इस देश के हजारों साल के आध्यात्मिक अनुभवों का यह नतीजा और निष्कर्ष
है कि मनुष्य चैराहा है। और जिस व्यक्ति को भी मोक्ष की यात्रा पर जाना है, उसे मनुष्य से ही मोक्ष की यात्रा पर जाना होगा। देवता को भी मनुष्य होना पड़ेगा, तभी वह मोक्ष की यात्रा पर जा सकता है। देवता मनुष्य से ऊपर नहीं है; भिन्न है, मगर ऊपर नहीं है। मनुष्य से ज्यादा सुखी होगा। नरक में जो हैं, वे मनुष्य से ज्यादा दुखी हैं। स्वर्ग में जो हैं, वे मनुष्य से ज्यादा सुखी हैं। स्वर्ग यूं समझो संपन्न है, समृद्ध है! नरक यूं समझो, विपन्न है, दरिद्र है! लेकिन बहुत दरिद्रता का एक खतरा है कि आदमी दरिद्रता से राजी हो जाता है। हम पूरब के देशों में यह देख सकते हैं--लोग दरिद्रता से राजी हो गए हैं। न केवल राजी हो गए हैं, बल्कि अगर तुम उनकी दरिद्रता पर चोट करो तो वे नाराज होते हैं। वे तुमसे संघर्ष लेंगे। वे तुमसे लड़ेंगे। वे अपनी दरिद्रता को बचाएंगे। सदियों पुरानी प्राचीन दरिद्रता, सनातन दरिद्रता, उनका सनातन धर्म--कैसे छोड़ दें? इतनी आसानी से छोड़ दें? दरिद्रनारायण होने को यूं छोड़ दें, यूं गंवा दें? मुफ्त में नारायण होकर बैठे हैं! कैसे छोड़ दें? नहीं छोड़ा जाता उनसे।
अब तुम देखते हो, हरिजनों पर इतने अत्याचार होते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। एक मित्र ने पूछा है कि "हरिजनों पर इतने अत्याचार हो रहे हैं, उनकी बस्तियां जलाई जा रही हैं, उनके झोपड़े जलाए जा रहे हैं। हरिजन मारे जा रहे हैं। उनके कुओं में जहर डाल दिया जाता है। उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। गर्भवती स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। बलात्कार में उनके बच्चे गिर जाते हैं। यह सब हो रहा है। आप इसे रोकने के लिए कुछ क्यों नहीं करते?"
जिन पर हो रहा है, वे कम से कम इतना तो कर सकते हैं कि हिंदू धर्म का त्याग कर दें। वे इतना नहीं करते तो मैं क्यों करूं कुछ? जिन मूढ़ताओं के कारण उनको सताया जा रहा है, उसी धर्म को वे पकड़े बैठे हुए हैं। मेरे करने से क्या होगा? जिन पंडित-पुजारियों के द्वारा यह सारा का सारा उपद्रव आयोजित किया गया है सदियों-सदियों से, वे उन्हीं के चरण धोकर पी रहे हैं, वे उन्हीं की पूजा कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हीं मंदिरों में प्रवेश का आग्रह रखते हैं जिन मंदिरों के बैठे देवता उनकी सारी की सारी कठिनाइयों का कारण हैं।
मैं एक गांव में था, उस गांव के हरिजनों ने मुझसे आकर कहा कि आप आए हैं, आपकी लोग बात मानते हैं यहां, हमें मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिला दो। मैंने कहा कि तुम अभी इनसे थके नहीं! इनके ही मंदिर में जाना चाहते हो? उसी मंदिर में जिस मंदिर में वे ही शास्त्र, वे ही देवता, वे ही पुजारी, वे ही पंडित हैं जिन्होंने तुम्हारे प्राणों का शोषण किया है सदियों-सदियों से? थूको इस मंदिर पर! अगर वे तुमसे कहें भी कि मंदिर में आओ, तो मत जाना। लात मारो इस मंदिर पर!
अरे--उन्होंने कहा--आप कैसी बातें कर रहे हैं? मंदिर पर और लात मारें, थूकें मंदिर पर! आप कहते क्या हैं? क्या आप नास्तिक हैं?
मैं नास्तिक हूं और ये आस्तिक हैं! और तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इनके लिए कुछ क्यों नहीं करता? ये मूढ़ अपनी बीमारियों से, रोगों से चिपके हुए

हैं। कौन इनको पकड़ रहा है? ये छोड़ते क्यों नहीं? हटते क्यों नहीं? कौन इन्हें रोक रहा है? और तुम देखते हो, फौरन अंतर हो जाता हैः वही हरिजन, जिसको तुम अपने साथ गद्दी पर न बिठालते, अगर ईसाई हो जाए और आए तो तुम उठ कर खड़े होते हो। कहते होः आइए साहब, बैठिए! वही सज्जन अब गद्दी पर बिठालने के योग्य हो गए। वही मुसलमान हो जाए तो आप कहते हैंः आइए मीर साहिब! नहीं तो सीढ़ियों के बाहर--।
मैं एक मित्र को जानता हूं, लियोनर्ड थियोलाजिकल कालेज जबलपुर के वे पिं्रसिपल थे--मैक्वान। गुजराती थे। एक दिन मुझे अपने घर ले गए। कहा कि मैं कुछ चीजें दिखाना चाहता हूं। उन्होंने अपनी मां से मुझे मिलाया। उनकी मां काफी उम्र की थीं, कोई नब्बे वर्ष की होंगी। और उन्होंने अपने पिता की तस्वीर मुझे दिखाई। फिर अपनी लड़की को बुलाया--सरोज मैक्वान को। वह अमरीका से अभी-अभी पीएचड़ी. होकर लौटी थी और एक अमरीकन युवक से शादी करके आई थी। और कहा कि जरा देखें मेरी ये तीन पीढ़ियां--यह मेरे पिता, यह मेरी मां, यह मैं, यह मेरी पत्नी, यह मेरी लड़की, यह मेरा दामाद। तीन पीढ़ियों में इतनी क्रांति हो गई!
बाप उनका भिखमंगा था। वह एक टूटा-फूटा भिक्षापात्र लिए बैठा है--उसकी तस्वीर। वह भूखा ही रहा, भूखा ही जीया, भूखा ही मरा। उसने कभी जीवन में और कुछ न जाना। वह हरिजन था। उसे सिर्फ दुत्कारा गया। जब बाप मर गया तो मां परेशान हो गई, भूख और परेशानी में ईसाई हो गई। अभी भी उनकी मां के चेहरे पर दरिद्रता की सारी लकीरें हैं। अभी भी उनकी मां को पहचाना जा सकता है कि हिंदू सनातन धर्म की छाप गई नहीं है।
मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारी मां ईसाई हो गई, तो अब तो ये हिंदू धर्म में कोई रस नहीं रखती? उन्होंने कहाः यह मत पूछो आप, अभी भी हनुमान चालीसा पढ़ती है। अभी भी बजरंगबली को मानती है। खुद एक बड़े कालेज के पिं्रसिपल हैं। पत्नी भी प्रोफेसर है। जोड़ना मुश्किल पड़ता है, क्योंकि जब मां ईसाई हो गई तो ईसाइयों ने मैक्वान को पढ़ने के लिए अमरीका भेज दिया। वहीं वे बड़े हुए, वहीं उन्होंने शादी की। और उनकी लड़की को देख कर तो भरोसा ही न आएगा। सुंदरतम युवतियों में से एक जो मैंने देखी हैं। और ये तीन पीढ़ियों में इतनी क्रांति हो गई।
हरिजनों को कौन रोक रहा है कि तुम हिंदू घेरे में रहो? इस सड़े घेरे को छोड़ो। जहां तुमने सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ भी नहीं पाया, जहां सिवाय अपमान के, दुत्कार के, लातें खाने के तुम्हें कुछ और मिला नहीं--वहां किस आशा पर रुके हुए हो? जिस राम ने एक शूद्र के कान में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया, तुम उसी राम की अभी भी स्तुति कर रहे हो, गुणगान कर रहे हो? संकोच भी नहीं, शर्म भी नहीं! जिस मनु ने तुम्हारी गिनती मनुष्यों में नहीं की है, तुम उसी मनु महाराज के द्वारा निर्मित समाज-व्यवस्था के अंग बने हुए हो? जिन तुलसीदास ने तुम्हें पशुओं के साथ गिना है--ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी--और कहा है कि तुम्हें ताड़ा ही जाना चाहिए; तुम इसके अधिकारी हो, तुम्हें सताया ही जाना चाहिए; यह तुम्हारा अधिकार है। सताया जाना तुम्हारा अधिकार है और हम तुम्हें सताएं यह हमारा अधिकार है-- तुम उन्हीं तुलसीदास की चैपाइयां रट रहे हो! और उन्हीं के मानने वाले लोग तुम्हारी पत्नियों के साथ व्यभिचार कर रहे हैं, गर्भपात कर रहे हैं, आग लगा रहे हैं, हत्याएं कर रहे हैं, गोलियां चला रहे हैं--और फिर भी तुम उन्हीं के घेरे में रुके रहना चाहते हो!
आदमी दुख से भी राजी हो जाता है, दुख को भी पकड़ लेता है। इसलिए नरक से कोई छुटकारा नहीं। यह बड़े मजे की बात है कि आदमी सुख से ऊब जाता है, दुख से नहीं ऊबता। यह मनुष्य के मनोविज्ञान के संबंध में एक अपूर्व सत्य है कि मनुष्य दुख से नहीं ऊबता, सुख से ऊब जाता है। दुख में एक आशा रहती है कि शायद कल सुखी हो जाऊं; आज नहीं कल दुख कट ही जाएगा; आखिर कर्म-बंधन कभी तो क्षीण होंगे! लेकिन सुख में सब आशा खो जाती है।
स्वर्ग हमारी कल्पना है--सुखी लोगों की, जहां जिन्होंने खूब पुण्य-अर्जन कर लिया है वे लोग देवी-देवता हो जाते हैं। मगर वे ऊब जाते हैं। ऐसी कथाएं हैं, जिनमें देवता और देवियों ने प्रार्थना की है कि हम पृथ्वी पर वापस जाना चाहते हैं। लेकिन मैंने ऐसी कोई कहानी अब तक नहीं सुनी, न पढ़ी,

जिसमें नरक में किसी ने कहा हो कि हम वापस पृथ्वी पर जाना चाहते हैं। उर्वशी थक जाती है इंद्र के सामने नाचते-नाचते और प्रार्थना करती है कि कुछ दिन की छुट्टी मिल जाए। मैं पृथ्वी पर जाना चाहती हूं। मैं किसी मिट्टी के बेटे से प्रेम करना चाहती हूं। देवताओं से प्रेम बहुत सुखद हो भी नहीं सकता। हवा हवा होंगे। मिट्टी तो है नहीं, ठोस तो कुछ है नहीं। ऐसे हाथ घुमा दो देवता के भीतर से, तो कुछ अटकेगा ही नहीं। कोरे ख्याल समझो, सपने समझो। कितने ही सुंदर लगते हों, मगर इंद्रधनुषों जैसे।
स्वभावतः उर्वशी थक गई होगी। स्त्रियां पार्थिव होती हैं। उन्हें कुछ ठोस चाहिए। नाचते-नाचते इंद्रधनुषों के पास उर्वशी थक गई होगी, यह मेरी समझ में आता है। उर्वशी ने कहा कि मुझे जाने दो। मुझे कुछ दिन पृथ्वी पर जाने दो। मैं पृथ्वी की सोंधी सुगंध लेना चाहती हूं। मैं पृथ्वी पर खिलने वाले गुलाब और चंपा के फूलों को देखना चाहती हूं। फिर से एक बार मैं पृथ्वी के किसी बेटे को प्रेम करना चाहती हूं।
चोट तो इंद्र को बहुत लगी, क्योंकि अपमानजनक थी यह बात। लेकिन उसने कहाः अच्छा जा, लेकिन एक शर्त है। यह राज किसी को पता न चले कि तू अप्सरा है। और जिस दिन यह राज तूने बताया उसी दिन तुझे वापस आ जाना पड़ेगा। उर्वशी उतरी और पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। बड़ी प्यारी कथा है उर्वशी और पुरुरवा की! पुरुरवा--पृथ्वी का बेटा; धूप आए तो पसीना निकले और सर्दी हो तो ठंड लगे। देवताओं को न ठंड लगे, न पसीना निकले। मुर्दा ही समझो। मुर्दों को पसीना नहीं आता, कितनी ही गर्मी होती रहे, और न ठंड लगती। तुमने मुर्दों के दांत किटकिटाते देखे? क्या खाक दांत किटकिटाएंगे! और मुर्दा दांत किटकिटाए तो तुम ऐसे भागोगे कि फिर लौट कर नहीं देखोगे। पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। ऐसी सुंदर थी उर्वशी कि पुरुरवा को स्वभावतः जिज्ञासा होती थी--जिज्ञासा मनुष्य का गुण है--कि पुरुरवा उससे बार-बार पूछता थाः तू कौन है? हे अप्सरा जैसी दिखाई पड़ने वाली उर्वशी, तू कौन है? तू आई कहां से? ऐसा सौंदर्य, ऐसा अलौकिक सौंदर्य, यहां पृथ्वी पर तो नहीं होता!
और कुछ चीजों से वह चिंतित भी होता था। उर्वशी को धूप पड़े तो पसीना न आए। उर्वशी वायवीय थी, हलकी-फुलकी थी, ठोस नहीं थी। प्रीतिकर थी, मगर गुड़िया जैसी। खिलौने जैसी। न नाराज हो, न लड़े-झगड़े। जिज्ञासाएं उठनी शुरू हो गईं पुरुरवा को। आखिर एक दिन पुरुरवा जिद्द ही कर बैठा। रात दोनों बिस्तर पर सोए हैं, पुरुरवा ने कहा कि आज तो मैं जान कर ही रहूंगा कि तू है कौन? तू आई कहां से? नहीं तू हमारे बीच से मालूम होती। अजनबी है, अपरिचित है। नहीं तू बताएगी तो यह प्रेम समाप्त हुआ।
यह तो धमकी थी, मगर उर्वशी घबड़ा गई और उसने कहा कि फिर एक बात समझ लो। मैं बता तो दूंगी, लेकिन बता देते ही मैं तिरोहित हो जाऊंगी। क्योंकि यह शर्त है।
पुरुरवा ने कहाः कुछ भी शर्त हो।...उसने समझा कि यह सब चालबाजी है। औरतों की चालबाजियां! क्या-क्या बातें निकाल रही है? तिरोहित कहां हो जाएगी! तो उसने बता दिया कि मैं उर्वशी हूं, थक गई थी देवताओं से। पृथ्वी की सोंधी सुगंध बुलाने लगी थी। चाहती थी वर्षा की बूंदों की टपटप छप्पर पर, सूरज की किरणें, चांद का निकलना, रात तारों से भर जाना, किसी ठोस हड्डी- मांस-मज्जा के मनुष्य की छाती से लग कर आलिंगन। लेकिन अब रुक न सकूंगी। पुरुरवा उस रात सोया, लेकिन उर्वशी की साड़ी को पकड़े रहा रात नींद में भी। सुबह जब उठा तो साड़ी ही हाथ में थी, उर्वशी जा चुकी थी। तब से कहते हैं पुरुरवा घूमता रहता है, भटकता रहता है, पूछता फिरता हैः "उर्वशी कहां है?" खोज रहा है।
शायद यह हम सब मनुष्यों की कथा है। प्रत्येक आदमी उर्वशी को खोज रहा है। कभी-कभी किसी स्त्री में धोखा होता है कि यह रही उर्वशी, फिर जल्दी ही धोखा टूट जाता है। हनीमून पूरा होते-होते ही टूट जाता है। जो बहुत होशियार हैं, हनीमून पर जाते ही नहीं, कि न जाएंगे हनीमून पर, न टूटेगा।
चंदूलाल का विवाह हुआ। बड़ा शोरगुल मचा रहे थे कि हनीमून पर शिमला जा रहे हैं, शिमला जा रहे हैं, शिमला जा रहे हैं! मैंने पूछाः कब जा रहे हो?

उसने कहा कि बस एक-दो दिन में जाता हूं। दो-चार दिन बाद मुझे फिर मिल गए, मैंने पूछाः चंदूलाल, शिमला नहीं गए?
कहा कि पत्नी को भेज दिया है। मैंने कहाः पत्नी को तुमने भेज दिया, हनीमून पर, अकेले ही!
बोलेः शिमला मैं तो पहले ही देख चुका हूं, अब दुबारा जाने की क्या जरूरत है? अब पत्नी देख आएगी।
ऐसा हनीमून टिकेगा। मारवाड़ी का हनीमून टिक सकता है। गए ही नहीं तो टूटेगा क्या खाक! इसलिए विवाह टिकते हैं इस दुनिया में, प्रेम नहीं टिकता, क्योंकि प्रेम में एक छलांग है आकाश की तरफ। गिरना पड़ेगा। विवाह में छलांग ही नहीं है; जमीन पर ही सरकते रहते हैं, गिरेंगे कैसे? विवाह तो यूं है जैसे मालगाड़ी पटरियों पर दौड़ती हुई। प्रेम यूं है जैसे नदियों का प्रवाह; कब किस दिशा में मुड़ जाएगा, कुछ कहना कठिन है।
प्रत्येक व्यक्ति उर्वशी को खोज रहा है। "उर्वशी" शब्द भी बड़ा प्यारा है--हृदय में बसी, उर्वशी! कहीं कोई हृदय में एक प्रतिमा छिपी हुई है, जिसकी तलाश चल रही है। मनोवैज्ञानिक कहते हैंः प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्त्री की एक प्रतिमा है, प्रत्येक स्त्री के भीतर पुरुष की एक प्रतिमा है, जिसको वह तलाश रहा है, तलाश रही है। मिलती नहीं है प्रतिमा कहीं। कभी- कभी झलक मिलती है कि हां, यह स्त्री लगती है उस प्रतिमा जैसी; बस लेकिन जल्दी ही पता चल जाता है कि बहुत फासला है। कभी कोई पुरुष लगता है उस जैसा; फिर जल्दी ही पता चल जाता है कि बहुत फासला है। और तभी दूरियां शुरू हो जाती हैं। पास आते, आते, आते, सब दूर हो जाता है।
स्वर्ग से तो कहानियां हैं देवताओं के उतरने की। तुमने बहुत सी कहानियां सुनी होंगी कि देवता आते हैं, ऋषि-मुनियों की स्त्रियों को प्रेम कर जाते हैं। बेचारे ऋषि-मुनि, उनको समझा दिया है कि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने जाओ, सो वे चले ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने और देवी- देवता ब्रह्ममुहूर्त की प्रतीक्षा करते रहते कि जब गए ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने, तब चंद्रमा, इंद्र इत्यादि-इत्यादि आकर दरवाजा खटखटाते हैं। ऋषि-पत्नी को क्या पता, वह सोचती है ऋषि महाराज लौट आए! और देवता हैं तो वे ऋषि का रूप धर कर लौट आते हैं, जटा-जूटधारी बन कर। प्रेम-व्रेम करके नदारद हो जाते हैं। स्वर्ग से तो ऐसी कहानियां हैं पुराणों में कि देवता उतर आते हैं जमीन पर, अप्सराएं उतर आती हैं; मगर नरक से मैंने कोई कहानी नहीं सुनी। कारण साफ है। कारण बहुत मनोवैज्ञानिक है, गहरा है। दुख को आदमी छोड़ना नहीं चाहता, सुख को छोड़ दे। सुख से ऊब जाता है। सुख से धीरे-धीरे मन भर जाता है, ऊब पैदा हो जाती है। लेकिन दुख से मन नहीं भरता, क्योंकि आशा बनी रहती है। सुख में कोई आशा नहीं।
लेकिन चाहे नरक हो और चाहे स्वर्ग, हमारा सदियों का निरीक्षण यह है, मैं इस निरीक्षण से राजी हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य के चैराहे पर लौट आना पड़ता है। मनुष्य चैराहा है। वहां से सब तरफ रास्ते जाते हैं--पशु की तरफ, पक्षियों की तरफ, नरकों की तरफ, देवताओं की तरफ। और अंतिम मार्ग भी वहां है--निर्वाण की तरफ, मोक्ष की तरफ--जहां सब खो जाता है; जहां योनि मात्र खो जाती है; जहां न तो मनुष्य रह जाते, न पशु, न पक्षी, न देवता; जहां तुम केवल निर्विचार, शून्य चेतना मात्र रह जाते हो। वहां से कोई कभी नहीं लौटना चाहता। वहां से लौटने का कोई सवाल नहीं, लौटने वाला ही नहीं बचता है।
विद्या तो वही है जो तुम्हें निर्वाण दे। विद्या तो वही है..."सा विद्या या विमुक्तये!" वही है विद्या जो तुम्हें मुक्त करे, मोक्ष दे। यह विद्या न रही होगी, तथाकथित ज्ञान रहा होगा। सूचना मात्र रही होगी। शिष्य ने उसका वमन कर दिया। और अभागे देवता, ये उस वमन को भी पचा गए। तीतर बन कर पचा गए! शायद सीधे-सीधे आना अच्छा न लगा होगा, छिप कर आए, आड़ में आए, तीतर बन कर आए। उस कूड़े-कचरे को, वमन किए हुए को, उस दुर्गंधयुक्त को ये फिर से लील गए। और उसी को इकट्ठा करके तैत्तरीय उपनिषद बना।
तैत्तरीय उपनिषद मत पढ़ना। अब यह देवताओं का वमन...वमन का वमन होगा। और
सब कुछ करना, तैत्तरीय उपनिषद मत पढ़ना।

मुझसे बहुत बार कहा गया है कि मैं तैत्तरीय उपनिषद पर क्यों नहीं बोला? यही कहानी मुझे अटका देती है। इससे आगे ही बात नहीं बढ़ती। मैं तो तुम्हें उच्छिष्ट ज्ञान से मुक्त करना चाहता हूं और इसमें उच्छिष्ट ज्ञान का संग्रह है। मगर यह एक ही उपनिषद की बात होती तो भी ठीक था; तुम्हारे अधिकतर उपनिषद, तुम्हारे अधिकतर वेद, तुम्हारे कुरान, तुम्हारे बाइबिल, तुम्हारे तालमुद, इसी तरह के उच्छिष्ट ज्ञान से भरे हैं।
यह कहानी किसी हिम्मतवर आदमी ने जोड़ी होगी। रहा होगा कोई उपद्रवी मेरे जैसा, जिसने उपनिषद के ऊपर यह कहानी लगा दी। और भोंदू पंडित ऐसे हैं कि आज तक किसी ने इस कहानी को ठीक-ठीक समझने की कोशिश भी नहीं की कि यह कहानी पर्याप्त है यह बताने को कि कूड़ा-कचरा से बचो।
सब ज्ञान उच्छिष्ट है, अगर तुम्हारे अनुभव से नहीं आए।
"उपनिषद" शब्द प्यारा है। उपनिषद का अर्थ होता हैः गुरु के पास बैठना, सिर्फ गुरु के पास बैठना। उप$निषद। उप यानी पास, निषद यानी बैठना। गुरु के पास बैठना। जिसने जाना है, उसके पास बैठना। उसकी श्वासों की श्वास बन जाना। उसकी श्वासों के साथ डोलना। उसके हृदय की धड़कन बन जाना। उसकी और तुम्हारी धड़कन के बीच का फासला समाप्त हो जाए, एक साथ हृदय धड़कने लगे। उसकी श्वास भीतर जाए तो तुम्हारी श्वास भीतर जाए। उसकी श्वास बाहर आए तो तुम्हारी श्वास बाहर आए। यह है उपनिषद, तैत्तरीय उपनिषद नहीं।
और यूं ही जिन्होंने जाना है, उन्होंने ही केवल जाना है। फिर उसे कोई छीन नहीं सकता, उसे कोई तुमसे वापस नहीं ले सकता, क्योंकि वह तुम्हारा अपना स्वभाव है, तुम्हारे स्वभाव का आविष्कार है।
स्वस्थ हो जाना उपनिषद है। वही वेद है। वेद यानी ज्ञान, बोध। वही कुरान है। कुरान यानी तुम्हारे प्राणों का गीत, तुम्हारे प्राणों की गुनगुनाहट। वही बाइबिल। बाइबिल यानी किताबों की किताब। किताब नहीं--सारी किताबों की किताब! सारे रहस्यों का रहस्य तुम अपने हृदय में संजोए बैठे हो। तीतर वगैरह बनने की जरूरत नहीं। उच्छिष्ट इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं।
जिनस्वरूप, तुमने इस कहानी की याद दिला कर ठीक किया। यही मेरा पूरा प्रयोग है यहां। तुम्हें मैं उच्छिष्ट कुछ भी नहीं देना चाहता। हालांकि तुम उच्छिष्ट के लिए बहुत आतुर हो, क्योंकि वह सस्ता है, मुफ्त मिल जाता है। तीतर बनना पड़े तो भी कोई हर्जा नहीं, तीतर बन जाएंगे, मुर्गा बन जाएंगे--तुम कुछ भी बन सकते हो, मुफ्त कुछ मिलता हो। लेकिन जहां कुछ चुकाना पड़ता है, जहां जीवन को दांव पर लगाना पड़ता है, वहां तुम्हारे प्राण कंपते हैं। मगर जीवन का जो राज है, वह जीवन को दांव पर लगाए बिना मिलता नहीं है। वह व्यापारियों के लिए नहीं है, वह केवल जुआरियों के लिए है।
मेरे संन्यासी को जुआरी होना सीखना ही पड़ेगा। वह व्यवसायी रहा तो विद्यार्थी रह जाएगा। जुआरी हो जाए तो शिष्य होने का अभूतपूर्व लोक तत्क्षण अपने द्वार खोल देता है।

मेरा स्वर्णिम भारत-12

श्रद्धा और सत्य का मिथुन
(Note: from Jyun Machhli Bin Neer (ज्यूं मछली बिन नीर) #7)

पहला प्रश्न: भगवान
ऐतरेय ब्राह्मण में यह सूत्र आता है:
श्रद्धया पत्नी सत्यं यजमानः। श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम। श्रद्धा सत्येन मिथुने न स्वर्गाल्लोकान जयतीति।
अर्थात (जीवन-यज्ञ में) श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान। श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है। श्रद्धा और सत्य की जोड़ी से मनुष्य दिव्य लोकों को प्राप्त करता है।
भगवान, इस सूत्र का आशय समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय,
यह सूत्र अत्यंत अर्थगर्भित है। संदेह से सत्य नहीं पाया जा सकता। संदेह से सत्य अकस्मात मिल भी जाए, तो भी तुम चूक जाओगे। संदेह की दृष्टि सत्य को भीतर प्रविष्ट ही न होने देगी। सत्य द्वार भी खटखटाएगा तो भी तुम द्वार न खोलोगे संदेह कहेगाः "होगा हवा का झोंका।" संदेह, परमात्मा भी सामने खड़ा हो, तो उस पर भी प्रश्नचिन्ह लगा देगा।
जहां समस्या नहीं होती वहां संदेह समस्या बना लेता है, निर्मित कर लेता है। संदेह की एक ही कुशलता है: समस्या निर्माण करना। समाधान उसके पास नहीं है। और किसी तरह खींचतान कर तुम कोई समाधान बना भी लो तो तुम्हारा संदेह पुनः नयी समस्याएं निर्मित करता जाएगा।
संदेह में समस्याएं ऐसे ही लगती हैं, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। लाख काटो, फिर-फिर लग जाएगें। वृक्ष पर और पत्ते घने हो जाएंगे। संदेह का अर्थ होता है कि मैं स्वीकार करने को राजी नहीं हूं; मेरे भीतर स्वीकार भाव नहीं है; अस्वीकार, इनकार, निषेध। संदेह अर्थात नकार; नहीं। और जो व्यक्ति नहीं में जीता है वह बंद हो जाता है--द्वार दरवाजे बंद, खिड़कियां बंद। इतना ही नहीं,छोटे-छोटे रंध्र भी रह गए हों कहीं, छोटी छोटी संधियां भी रह गयी हों, उनको भी संदेहशील व्यक्ति बंद कर लेता है। वह जीते जी कब्र में समा जाता है। वह जीते जी मर जाता है। संदेह मृत्यु है। यूं चलोगे, उठोगे काम-धाम करोगे, लेकिन एक अदृश्य कब्र तुम्हें घेरे रहेगी; सूरज से न जुड?ने देगी; हवाओं से न जुड़ने देगी; फूलों से न जुड़ने देगी; तारों से न जुड़ने देगी--जुड़ने ही न देगी। संदेह की प्रक्रिया है तुम्हें तोड़ लेने की।
संदेह एक दीवाल है, सेतु नहीं; जोड़ता नहीं, तोड़ता है। जहां संदेह आया, तत्क्षण संबंध विछिन्न हो जाता है, टूट जाता है। संदेह के गृह में तो सत्य अतिथि नहीं हो सकता, असंभव है। प्रवेश ही नहीं मिलेगा। संदेह आतिथेय नहीं बन सकता, मेजबान नहीं बन सकता। वह क्षमता तो श्रद्धा की है।
श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं होता, ख्याल रखना। वह पहली बात खयाल रखना, नहीं तो चूक हो जाएगी। विश्वास तो संदेह के विपरीत है और श्रद्धा विश्वास और संदेह दोनों के अतीत है। श्रद्धा बात ही और है। विश्वास तो सिर्फ संदेह को छिपाना है, ढांकना है। जैसे घाव तो है, लेकिन सुंदर वस्त्रों से ढांक लिया है। औरों को दिखाई नहीं पड़ेगा, मगर तुम कैसे भूलोगे? तुम नग्न हो, तुमने वस्त्र ओढ़ लिए; औरों के लिए नग्न न रहे, मगर अपने लिए तो नग्न ही हो। हर व्यक्ति अपने वस्त्रों में नग्न है। कैसे तुम यह बात भुला सकते हो कि तुम वस्त्रों के भीतर नग्न नहीं हो? यह तो असंभव है। हां, औरों के लिए तुम नग्न नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे और औरों के बीच वस्त्र आ गए। मगर तुम्हारे स्वयं के लिए तो तुम नग्न ही हो। तुम्हारे लिए तो वस्त्र बाहर हैं। तुम्हारी नग्नता ज्यादा करीब है; वस्त्र नग्नता के बाहर हैं, दूर हैं।

विश्वास वस्त्रों जैसा है। तुम्हारा संदेह को ढांक लेगा। औरों को लगेगा--तुम बड़े श्रद्धालु!
ये मंदिरों में घंटे बजाते हुए लोग, ये पाठ-पूजा करते हुए लोग, ये मस्जिद में नमाजें पढ़ते हुए लोग, ये गिरजाघरों में, गरुद्वारों में जय-जयकार करते हुए लोग--ये सब विश्वासी हैं। काश, पृथ्वी पर इतनी श्रद्धा से भरे लोग होते तो ऐसी विक्षिप्त, ऐसी रुग्ण, ऐसी सड़ी-गली मनुष्यता पैदा होती? इतनी श्रद्धा होती तो इतने सत्य के फूल खिलते! अनंत फूल खिलते। फूलों से ही पृथ्वी भर जाती, सुगंध ही सुगंध से भर जाती। पृथ्वी स्वर्ग हो जाती।
लेकिन देखते हो, नमाज पढ़ने आदमी मसजिद जाता है और कहावत तो तुमने सुनी है, उसको चरितार्थ करता है--मुंह में राम, बगल में छुरी। मुरादाबाद की इस ईदगाह में जहां अभी-अभी हिंदू मुस्लिम दंगा हुआ और कोई डेढ़ सौ लोग मारे गए, नमाज पढ़ने लोग गए थे ईदगाह में। छुरे और बंदूकें किसलिए ले गए थे? फिर यह नमाज कैसी जो छुरे-बंदूकों के साथ हो रही हो? यह दंगा-फसाद करने की तैयारी थी। नमाज का क्या मूल्य रह गया? ऊपर के वस्त्र बड़े झीने हैं, भीतर की असलियत बहुत गहरी है। हिंदु लड़ते हैं, मस्जिदें जलाते हैं। मुसलमान लड़ते हैं, मंदिर जलाते हैं, मूर्तियां तोड़ते हैं। कुरान जलती है, गीता जलती है, बाइबिल जलती है। सारी पृथ्वी तथाकथित धार्मिक लोगों के कारण इतनी पीड़ित है कि आश्चर्य होता है हम कब जागेंगे, कब पुनर्विचार करेंगे?
मनुष्य के इतिहास में जितना पाप धर्मों के नाम पर हुआ है, किसी और चीज
के नाम पर नहीं हुआ। राजनीति भी पिछड़ जाती है; धर्म ने वहां भी बाजी मार ली है।
निश्चित ही ये विश्वासी लोग हैं, लेकिन श्रद्धालु नहीं! श्रद्धालु हिंदु और श्रद्धालु मुसलमान और श्रद्धालु ईसाई और श्रद्धालु जैन में कोई भेद नहीं हो सकता। श्रद्धा का रंग एक, रूप एक, स्वाद एक। श्रद्धा एक ही अमृत है। जिसने पीया, फिर वह कौन है कोई फर्क नहीं पड़ता। उस एक परमात्मा से जोड़ देती है। उस एक सत्य से जोड़ देती है। विश्वास जोड़ते नहीं, तोड़ते हैं। इसलिए विश्वास केवल संदेह को छिपाने वाले वस्त्र हैं। विश्वास धोखा है। विश्वास को श्रद्धा मत समझ लेना।
वही भूल हो गयी है। हमने विश्वास को श्रद्धा समझ लिया है। हम हर बच्चे
को विश्वास सिखा रहे हैं। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि बस धार्मिक संस्कार शुरू हो जाते हैं। धार्मिक संस्कारों का क्या अर्थ है तुम्हारे? यही कि थोपो इस पर विश्वास--बनाओ इसे हिंदु, बनाओ जैन, बनाओ बौद्ध। इसे कुछ बना कर रहो। तुम जो हो वही इसको बना कर रहो। और कैसा आश्चर्य है, तुमने कभी यह भी न सोचा कि तुम जिंदगी भर हिंदु थे, जैन थे, बौद्ध थे, तुमने क्या खाक पा लिया है! तुम्हारे हाथों में क्या है? तुम्हारे प्राणों में क्या है? नहीं कोई दीया जलता दिखाई पड़ता। नहीं तुम्हारे जीवन में कोई उत्सव है। कम से कम इस बच्चे को तो न बिगाड़ो, इसे तो सावधान करो। इसे तो कहो कि मैं जिंदगी भर एक विश्वासी की तरह जीया, कुछ भी पाया नहीं। तू विश्वासी की तरह मत जीना। तू श्रद्धा की तलाश कर। हम तो न पा सके। हमने तो जिंदगी गंवायी, मगर तू मत गंवा देना।
मगर उलटा मजा है, मां-बाप थोपते हैं आपने आग्रहों को बच्चों के ऊपर। धार्मिक शिक्षा हो जाए। मुसलमान बच्चा पैदा होता है, यहूदी बच्चा पैदा होता है--खतना करो इसका, जल्दी खतना करो! क्योंकि कहीं जवान यह हो जाए और इनकार करने लगे। और जवान होगा तो इनकार करेगा ही, कि अगर परमात्मा को खतना ही करके भेजना था तो उसने खतना कर ही दिया होता। तुम्हारे हाथ में खतना छोड़ा होता? जो भी जरूरी था शरीर के लिए, उसने करके भेजा है। जैसा उसने शरीर बनाया है, इसमें काटपीट करने का तुम्हें क्या हक है? जवान हो जाएगा तो इनकार करेगा। जल्दी से खतना कर दो, देर न करो। जल्दी से जनेऊ पहना दो, यज्ञोपवीत संस्कार कर दो।
क्योंकि बड़ा हो जाएगा तो संदेह उठाने लगेगा, प्रश्न खड़े करने लगेगा। फिर सुलझाना मुश्किल होगा। अभी ठूंस दो। अभी इसको कुछ होश नहीं है। अभी इसके सामने सवाल नहीं हैं। अभी यह असहाय है, तुम पर निर्भर है। अभी तुम जिलाओ तो जीएगा, तुम मारो तो मर जाएगा। अभी तुम्हारी मुट्ठी में है। कहीं

अपने पैरों पर खड़ा हो गया और कहने लगे कि "क्यों बांधे यह रस्सी नहीं बांधता, मुझे इसमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। क्यों तुम्हारे मंदिरों में जाकर सिर झुकाऊं? मुझे पत्थर दिखाई पड़ते हैं। फिर मुश्किल हो जाएगी। इसलिए सारे लोग बड़े आतुर होते हैं--जल्दी से धर्म की शिक्षा दो! और धर्म की शिक्षा पर क्या शिक्षा देते हैं? शिक्षा यही कि कुछ अंधविश्वास थोप दो--ऐसे थोप दो कि वे खून में मिल जाएं, मांस मज्जा में सम्मिलित हो जाएं। बच्चा उनके साथ ही बड़ा हो, उसको याद भी न रहे कि कब किस घड़ी में ये विश्वास उसके भीतर डाल दिए गए। जब वह बड़ा हो, तो पाए कि ये विश्वास के साथ ही बड़ा हुआ है। जैसे ये विश्वास लेकर ही आया हो परमात्मा के यहां से।
अगर विश्वास और संदेह में चुनना हो तो मैं कहूंगाः संदेह चुनना। क्योंकि संदेह स्वाभाविक है, विश्वास अस्वाभाविक है। और मेरा यह भी अनुभव है कि अगर कोई व्यक्ति ईमानदारी से संदेह चुने तो आज नहीं कल श्रद्धा को खोजना ही पड़ेगा, क्योंकि संदेह के साथ जीना असंभव है। संदेह यूं है जैसे छाती में तीर चुभा हो। उसे निकालना ही होगा। लेकिन विश्वास मलहम-पट्टी कर देता है। विश्वास खतरनाक है--संदेह से भी ज्यादा खतरनाक है। विश्वास से सावधान। विश्वास, तीर भी चुभा रहता है,मलहम-पट्टी भी कर देता है। क्लोराफार्म की तरह है विश्वास। तुम सड़ते रहते हो और तुम्हें बेहोश रखता है। तुम्हें भरोसा दिलाए रखता है कि सब ठीक है, कुछ गलत नहीं है, सब ठीक है।
इस सब ठीक होने की भ्रांति में, जो गलत है तुम उसके भी आदी हो जाते हो।
धीरे-धीरे तुम घावों के भी आदी हो। तुम उन्हें जीवन का अनिवार्य अंग मान लेते हो।
मैं चाहता हूं संदेह को चुनना, अगर विश्वास और संदेह में चुनना हो। क्योंकि संदेह कम से कम परमात्मा का दिया हुआ है। और परमात्मा जो भी देता है, तुम जो भी जन्म के साथ लेकर आए हो, उसकी जरूर कोई सार्थकता है। संदेह से सत्य तो कभी नहीं मिलेगा, लेकिन संदेह में कोई जी नहीं सकता। संदेह में फांसी लग जाती है। और फांसी का फंदा कौन नहीं तोड़ना चाहेगा? फांसी का फंदा तोड़ा तुमने और श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। संदेह के नीचे दबी है श्रद्धा और तुम संदेह के ऊपर थोप रहे हो विश्वास। खयाल रखना, तुम श्रद्धा से और भी दूर हो गए। एक पर्त तो संदेह की थी, एक चट्टान तो संदेह की थी, तुमने एक चट्टान और रख ली--विश्वास की। अब श्रद्धा और भी दूर हो गयी। अब खुदाई और भी करनी पड़ेगी।
एक बहुत बड़े संगीतज्ञ वेगनर के पास जब भी कोई संगीत सीखने आता था, वह पहली बात यही पूछता था कि तुमने कहीं और संगीत नहीं सीखा? अगर सीखा हो तो मेरी फीस दुगनी होगी। अगर बिलकुल नहीं सीखा है कहीं, क ख ग से शुरू करना है, तो फिर कोई बात नहीं। फिर उतनी ही फीस लूंगा जितनी मैं सभी से लेता हूं। फिर दुगनी नहीं होगी। स्वभावतः किसी ने आठ साल दस साल संगीत का अभ्यास किया था, तो वह कहता, "आप उल्टी बातें कर रहे हैं। हम दस साल मेहनत करके आए हैं, संगीत सीख कर आए हैं। हम से आपको कम फीस लेनी चाहिए। जो क ख ग से शुरू करेंगे उनसे ज्यादा फीस लेनी चाहिए।
वेगनर कहता कि मेरा अनुभव कुछ और है। मेरा अनुभव यह है कि तुम जो सीख
कर आए हो पहले मुझे वह भुलाना पड़ेगा। तब काम शुरू होगा। काम तो क ख ग से ही शुरू होगा। पहले तुम्हारी स्लेट की सफाई करनी पड़ेगी, फिर लिखावट हो सकेगी।
यह मेरा भी अनुभव है। मैं वेगनर से राजी हूं। वह ठीक कहता था। वह पश्चिम के बहुत बड़े संगीतज्ञों में से एक था। उसने बात पते की कही है, गहरी कही है। मेरा भी यह अनुभव है। जो विश्वासी मेरे पास आ जाते हैं उनके साथ उतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उनके पास एक ही चट्टान है जिसको तोड़ना है। विश्वासी के पास दोहरी चट्टानें हैं। पहले उसका विश्वास तोड़ो और विश्वास से वह चिपटता है, क्योंकि विश्वास में सांत्वना है। संदेह में तो कोई सांत्वना है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति संदेह से मुक्त होना चाहता है। संदेह स्वाभाविक है, संदेह से मुक्त होने की आकांक्षा स्वाभाविक है। विश्वास अस्वाभाविक है, आरोपित है। और इसलिए विश्वास से मुक्त होने की कोई आकांक्षा भी नहीं है। क्योंकि कभी परमात्मा ने सोचा भी नहीं था कि तुम विश्वास में पड़ जाओगे। विश्वास पंडितों की, पुरोहितों की ईजाद है,

बेईमानों की ईजाद है, शोषकों की ईजाद है, जो तुम्हारा लहू चूस रहे हैं उनकी ईजाद है।
विश्वास झूठा सिक्का है; श्रद्धा के नाम से चलता है, लेकिन झूठा सिक्का है। विश्वास का अर्थ होता है: उधार बासा। और सत्य कभी बासा हो सकता है, उधार हो सकता है? विश्वास तो एसे है जैसे कभी-कभी किताबों में दबे हुए गुलाब के फूल मिल जाते हैं--सूखे, मुर्दा। न उनमें गुलाब ही गंध होती है, न रंग होता है। विश्वास ऐसा है-- किताबों में दबा हुआ फूल। और श्रद्धा ऐसी है--अभी झाड़ी पर खिला हुआ फूल। अभी रसधार बह रही है उसमें अभी जीवंत है। अभी प्राण है उसमें। अभी सूरज की किरणें प्रवेश करती हैं। अभी हवाएं उसे दुलारती हैं। अभी वह सांस लेता है। अभी उसके हृदय में धड़कन है। अभी परमात्मा उसके भीतर विराजमान है।
श्रद्धा और विश्वास में वैसा ही फर्क है जैसे कागजी फूलों में और असली फूलों में; झूठे सिक्कों में और असली सिक्कों में। विश्वास में मत पड़ जाना। इसलिए मैं चाहता हूं: सौभाग्य का दिन होगा वह, जिस दिन हम अपने बच्चों को विश्वास देना बंद कर देंगे। हमें वस्तुतः अपने बच्चों को संदेह पर धार रखना सिखाना चाहिए। संदेह की तलवार पर धार रखना सिखाना चाहिए। संदेह की तलवार पर धार रखो। संदेह का उपयोग करो ताकि कोई विश्वास तुम्हें पकड़ न सके। संदेह को सजग रखो, ताकि किसी विश्वास के जाल में तुम उलझ न जाओ। और संदेह की एक खूबी है। खूबी यह है कि संदेह तुम्हें बैचेनी में रखेगा, अशांत रखेगा, परेशान रखेगा। उसमें कोई सांत्वना नहीं है। उसमें कोई सुरक्षा नहीं है कांटे पर कांटे पर जैसे कोई सोया हो, करवट भी नहीं बदल सकते।
विश्वास तो बड़ी सुखद शैया दे देता है। जी भर कर सोओ। घोड़े बेच कर सोओ जागने का कोई सवाल ही नहीं है। विश्वास मूर्च्छित करता है। संदेह सजग रखता है। लेकिन संदेह से सत्य नहीं मिलता, पर संदेह से एक काम होता है, वह काम है कि संदेह तुम्हें अपने से मुक्त करने के लिए सदा उत्प्रेरित करता है। संदेह करता है कि मेरे पार जाओ। संदेह के पार जाना ही होगा।
तुम जरा सोचो तो तुम मान कर बैठ गए हो कि आत्मा अमर है; जाना नहीं। यह तुम्हारा मानना है कि आत्मा अमर है। बस आत्मा को अमर मान लिया तो अब आत्मा का अनुभव करने की क्या जरूरत रही। मान लिया सो बात खत्म हो गयी। जब मान ही लिया तो अब खोजना क्या है? हटा दो इस विश्वास को और तब प्राणों में एक तड़फ उठेगी, एक बैचेनी, एक तूफान, एक आंधी, एक झंझावात। सब कंप जाएगा। मौत द्वार पर दस्तक दे रही है, हर पल आ सकती है, कभी भी आ सकती है। और आत्मा है भी या नहीं, यह भी पता नहीं, अमरता की तो बात दूर। मौत के बाद होगी या नहीं, यह तो सवाल नहीं; अभी भी है या नहीं यह भी संदिग्ध है। कैसे तुम बैठे रहोगे इस अंगारे पर। इस ज्वालामुखी पर, धधकते ज्वालामुखी पर ज्यादा देर नहीं बैठ सकोगे। यह संदेह तुम्हें अन्वेषण में ले जाएगा। यह संदेह ही तुम्हें खोज में गतिमान करेगा। और उसी खोज का अंतिम फल श्रद्धा है।
श्रद्धा है जानना, मानना नहीं। श्रद्धा है अनुभव। श्रद्धा है ध्यान, ज्ञान नहीं। ज्ञान विश्वास पैदा कर देता है। संदेह है अज्ञान। विश्वास है ज्ञान--उधार बासा, शास्त्रीय, तोतारटंत। और श्रद्धा है स्वानुभव, साक्षात्कार, सत्य के साथ मिलन।
संदेह से श्रद्धा को खोजो। श्रद्धा तुम्हें सत्य से मिला देगी। यह सम्यक सूत्र है। संदेह को सीढ़ी बनाओ--श्रद्धा के मंदिर तक पहुंचने के लिए। तलवार की धार पर चलना जै। मगर कोई उपाय नहीं है, कोई और सस्ता मार्ग नहीं है। चलना ही होगा तलवार की धार पर। यूं ही निखार आता है। यूं ही जीवन में ऊर्जा का आविर्भाव होता है। चुनौतियों में ही तो तुम जागते हो। संदेह चुनौतियां देता है।
संदेह का उपयोग करना सीखो। संदेह को दबाओ मत। मैं चाहता हूं कि तुम संदेह से जरूर मुक्त होओ, लेकिन दबा कर कोई कभी मुक्त नहीं हुआ है। जिसको तुम दबा लोगे, उसे बार बार दबाना पड़ेगा। उससे कभी मुक्ति नहीं होगी। वह भीतर बैठा रहेगा, वह भीतर पड़ा रहेगा। लाख दबाओ, फिर अवसर पाकर निकल आएगा। जैसे कोई बीज को जमीन में दबा दे, वर्षा आएगी, फिर अंकुरण हो जाएगा। लाख

दबाए चले जाओ, फिर-फिर अंकुर आएंगे। फिर-फिर अवसर आएंगे। संदेह फिर खड़ा हो जाएगा।
संदेह दबाया नहीं जा सकता। हां, संदेह मिटाया जा सकता है। और मिटाने
का उपाय है: संदेह को जीओ। संदेह को उसकी समग्रता से जीओ। डरना क्या है? भय क्या है? संदेह की सीढ़ी पूरी तरह चलो। और तुम चकित होओगे यह जानकर कि संदेह श्रद्धा तक ले आता है। लोगों ने तुमसे उल्टी बात कही है। तुम्हें अब तक यही समझाया गया है कि संदेह से तुम कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचोगे। यह बात गलत है। मैं पहुंचा हूं संदेह से ही श्रद्धा तक। इसलिए अपने अनुभव से कहता हूं कि यह बात बुनियादी रूप से गलत है। संदेह के अतिरिक्त कोई कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचा है। हां, यह जरूर सच है कि संदेह से कोई सत्य नहीं तक पहुंचता है। संदेह श्रद्धा तक ले आता है, बस। और जो श्रद्धा पर आ गयी उसकी भूमिका तैयार है। सत्य तक जाना ही नहीं होता, सत्य खुद आता है। तुम्हारा काम है संदेह से श्रद्धा तक आ जाओ, फिर प्रतीक्षा करो। फिर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। सत्य खुद आएगा।
कबीर ने कहा है: मैं खोज-खोज कर थक गया परमात्मा को, नहीं मिला नहीं मिला। परमात्मा तुम्हारी खोज से नहीं मिलता। तुम खोजोगे भी कहा? किस दिशा में? काबा में कि काशी में कि कैलाश में, कहां खोजोगे? उसका कोई पता भी तो नहीं, उसका कोई ठिकाना भी तो नहीं। नाम-धाम भी तो नहीं। जाओगे कहां? कहां खोजोगे, क्या करोगे? शास्त्रों में भटकोगे और शास्त्रों में भटकना बीहड़ जंगलों में भटकना है, जहां भटक गए तो निकलना मुश्किल हो जाता है। गीता में खोजोगे, कुरान में खोजोगे, बाइबिल में खोजोगे और भटक जाओगे, अटक जाओगे। सत्य को खोजा नहीं जा सकता।
कबीर ठीक कहते हैं कि मैंने बहुत खोजा, नहीं पाया। मगर खोजते-खोजते एक बात घट गयी: मैं खो गया। उसे तो नहीं पाया, लेकिन मैं खो गया। और जिस दिन मैं खो गया, एक अपूर्व घटना घटी। उस दिन से परमात्मा मेरे पीछे लगा फिरता है। हरि लागे पाछे फिरत कहत कबीर कबीर! हरि लागे पाछे फिरत...पीछे पीछे हरि घूमते हैं और मेरे और कहते हैं--कबीर, कबीर, कहां जाते! अरे सुनो भी, रुको भी! अब मुझे कुछ पड़ी नहीं--कबीर कहते हैं। अब मैं जानता हूं कि मैं मिट गया। भूमिका तैयार हो गयी।
जिस दिन संदेह मिटता है उस दिन मैं भी मिट जाता है। संदेह और मैं का संग-साथ है। श्रद्धा और मैं का कोई संग-साथ नहीं है। संदेह है अहंकार, श्रद्धा है निरहंकारिता। जहां श्रद्धा आयी, भूमिका बन गयी। फिर परमात्मा स्वयं आता है, सत्य स्वयं आता है।
इसलिए यह ऐतरेय ब्राह्मण का सूत्र बड़ा प्यारा है: श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमान:। श्रद्धा को स्त्री कहा। ठीक ही कहा। ये काव्यात्मक प्रतीक हैं। सत्य तो है पुरुष, श्रद्धा है स्त्री। इसलिए सत्य को यजमान कहा, अतिथि कहा। और मेजबान तो कोई स्त्री ही हो सकती है; पुरुष की वह क्षमता नहीं, क्योंकि पुरुष की प्रेम ही पात्रता नहीं। श्रद्धा है प्रेम की पराकाष्ठा। श्रद्धा स्त्रैण है। इसलिए जब कभी पुरुष में भी घटती है तो उसके व्यक्तित्व में भी स्त्रैण कोमलता आ जाती है।
तुम देखते हो, बुद्ध, महावीर, जैनों के चौबीस तीर्थंकर, राम, कृष्ण, इनमें से किसी की हमने दाढ़ी-मूंछ नहीं बनायी है। तुमने कोई प्रतिमा देखी जिसमें राम और कृष्ण की दाढ़ी मूंछ हों? तुमने कोई प्रतिमा देखी जिसमें राम और कृष्ण की दाढ़ी मूंछ हों? या बुद्ध की, या महावीर की? और क्या तुम सोचते हो, सब मुखन्नस थे, कि किसी को दाढ़ी मूंछ थी ही नहीं? एकाध हो भी सकता है कि मुखन्नस हो, मगर चौबीस के चौबीस जैनों के तीर्थंकर बुद्ध भी राम भी, कृष्ण भी, सारे अवतार! इनकी दाढ़ी "मूंछ क्या हुई? और यूं भी नहीं कि सबके बचपन की तस्वीरें हैं ये। बुद्ध बयासी वर्ष जीए, महावीर अस्सी वर्ष जीए। अस्सी वर्ष तक कम से कम दाढ़ी मूंछ तो निकल ही आयी होगी मगर क्या हुआ? हुआ यह कि हमने दाढ़ी मूंछ अंकित नहीं की। हम इतिहास का उतना भरोसा नहीं करते। इतिहास दो कौड़ी ही चीज है। हम समय का ही भरोसा नहीं करते, इतिहास का क्या भरोसा करें? हम कालातीत पर दृष्टि रखते हैं। हम, इतिहास से भी बड़ा कुछ सत्य है, उस पर हमारी नजर है। इतिहास में तथ्य होते हैं, सत्य नहीं होते।
सत्य तो बड़ी और बात है। सत्य तो काव्य में होता है।

ये काव्यात्मक प्रतिमाएं हैं। यह दाढ़ी मूंछ हमने हटा दी। दाढ़ी मूंछ
तो रही, निश्चित रहीं, इसमें कोई शक-शुबा का कारण नहीं है। लेकिन हमने मूर्तियों से हटा दी। हटा दी इसलिए कि जब ये व्यक्ति परम श्रद्धा को उपलब्ध हुए तो इनके व्यक्तित्व में एक तरह की स्त्रैणता आ गयी। उस स्त्रैणता को कैसे हम सांकेतिक करें, किस तरह संकेत दें? पत्थर की प्रतिमा में कैसे लिखें इस बात को कि इनके व्यक्तित्व में स्त्रैण कोमलता आ गयी थी, श्रद्धा पराकाष्ठा को पहुंच गयी थी? दाढ़ी मूंछ हटा कर हमने वह काम किया है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने अपनी बहुत सी-महत्वपूर्ण बातों में एक बात यह भी कही है... हालांकि उसने तो आलोचना के लिए कही है, खंडन के लिए कही है। वह कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं था, नास्तिक था। उसने ही यह प्रसिद्ध सूत्र दिया है इस सदी को कि ईश्वर मर चुका है। यद्यपि उसने आलोचना में यह बात कही है, लेकिन मैं मानता हूं इसमें थोड़ी सचाई है। मैं तो प्रशंसा में मानता हूं इस बात को। मेरी व्याख्या और है। उसने कहा है कि बुद्ध और जीसस स्त्रैण हैं और उन्होंने सारी मनुष्यता को स्त्रैण कर दिया। उसने तो निंदा के लिए कहा है। वह उसी तरह कहा है, जैसे तुम किसी को कह देते हो--नामर्द, स्त्रैण। तुम तो निंदा के लिए, किसी को गाली देना चाहते हो, तब यह कहते हो। ऐसा ही उसने कहा है, क्योंकि उसके लिए पुरुष की जो पुरुषता है, जो कठोरता है, उसके प्रति बड़ा समादर है।
उसने लिखा है: मैंने अपने जीवन में जो सुंदरतम अनुभव किया है, जो सबसे सुंदर मैंने दृश्य देखा है, वह सूर्योदय का नहीं है, सूर्यास्त का नहीं है, चांदत्तारों का नहीं है, किसी सुंदर स्त्री का नहीं है, गुलाब के फूलों का नहीं है, कमल के फूलों का नहीं है--वह सुंदर दृश्य क्या है? वह सुंदर दृश्य है--उसे कहा--एक सुबह सैनिकों की एक टुकड़ी अपनी चमकती हुई संगीनें लेकर कवायद कर रही थी। सूरज की धूप में संगीनों की चमक, जूतों की खटाखट आवाज, लयबद्ध, सैनिकों का वह प्रखर रूप! वह मेरे मन को भा गया है। उससे ज्यादा सुंदर दृश्य मैंने कभी दूसरा नहीं देखा है। अब जिस आदमी के लिए यह सौंदर्य है--संगीनों ही धूप में चमक, सिपाहियों के बूटों की खनक, सिपाहियों के अकड़े हुए शरीर और उनकी कवायद में जिसको संगीत सुनाई पड़ रहा है, वीणा में नहीं, सितार में नहीं, पिआनो में नहीं, बांसुरी में नहीं--जूतों की आवाज में जिसे संगीत सुनाई पड़ रहा है, लयबद्धता जिसे पहली बार अनुभव हुई है--उस आदमी के लिए जीसस और बुद्ध को स्त्रैण कहने का मतलब साफ है। वह यह कह रहा है कि इन्होंने मनुष्य को बरबाद कर दिया। इन्होंने पुरुष जाति को नपुंसक कर दिया। इन्होंने प्रेम की शिक्षा दे-देकर--अहिंसा, प्रेम, क्षमा, अक्रोध, अपरिग्रह--आदमी को मार ही डाला। उसकी सारी जीवन ऊर्जा नष्ट कर दी। उसका सारा अभियान खंडित कर दिया।
नीत्शे तो यह निंदा के लिए कह रहा है, लेकिन मैं इसमें सत्य का एक कण पाता हूं। वह एक कण यह है कि जरूर जीसस और बुद्ध के व्यक्तित्व में एक स्त्रैणता है, एक नाजुकता है, फूलों जैसी नाजुकता। वह अपरिहार्य है। जब श्रद्धा पूर्ण होती है तो पुरुष मिट जाता है, क्योंकि पुरुषता मिट जाती है, कठोरता मिट जाती है, आक्रमक भाव चला जाता है। ग्राहक भाव पैदा होता है, ग्रहणशीलता पैदा होती है। स्त्रैण भी एक प्रतीक है।
तुमने ख्याल किया, कोई स्त्री किसी पुरुष के पीछे नहीं भागती। और अगर भागे तो पुरुष फिर बिलकुल ही भाग खड़ा होगा। उस स्त्री से कोई भी पुरुष बचेगा, जो उसका पीछा करे। स्त्री कभी किसी पुरुष से प्रेम का निवेदन भी नहीं करती। पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी स्त्री ने कभी किसी पुरुष से प्रेम-निवेदन नहीं किया। ऐसा नहीं कि स्त्री को प्रेम अनुभव नहीं होता; पुरुष से ज्यादा अनुभव होता है। पुरुष का अनुभव प्रेम का बहुत छोटा है, आंशिक है। स्त्री का अनुभव प्रेम का बहुत बड़ा है और बहुत समग्र है। मगर निवेदन नहीं करती, क्योंकि निवेदन में थोड़ा आक्रमण है। "मैं तुमसे प्रेम करता हूं--यह बात कहना भी आक्रमण है। यह एक तरह का आरोपण है। यह एक तरह की जबरदस्ती है। यह काम पुरुष ही कर सकता है। यह पुरुषों को ही करना पड़ता है। यह निवेदन पुरुष को ही करना पड़ता है।

इसलिए हर स्त्री अपने पति को कहती सुनी जाती है कि "कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी, तुम ही मेरे पीछे पड़े थे। तुम्हीं लिखते थे प्रेम पत्र। वह संभाल कर रखती है प्रेम पत्र, वक्त आने पर दिखा देती है कि ये देख लो, क्या-क्या तुमने लिखा था।और तुम ही मेरे बाप के चरण छूते थे आ-आकर। और तुमने ही चाहा था, कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।
ऐसे मुल्ला नसरुद्दीन से उसकी पत्नी एक सुबह-ही सुबह कह रही थी। बस चाय की टेबल पर शुरू हो जाती है कथा। चाय क्या है--श्री गणेशाय नमः! बस फिर कथा शुरू। वहीं से शुरू हो गया। और मुल्ला के मुंह से निकल गया कि तूने मेरी जिंदगी बरबाद कर दी। बस स्त्री तुनक गयी। उसने कहा कि मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी। मैं तुम्हारे घर नहीं आयी थी। मैंने तुम्हारे बाप की खुशामद नहीं की थी। तुम्हीं मेरे बाप के पास आए थे। तुम्हीं हाथ जोड़े फिरते थे। तुम्हीं चिट्ठियां लिखते थे। तुम्हीं संदेश भेजते थे। तुम्हीं रास्ते में खड़े होकर सीटियां बजाते थे। किसने गाए थे वे गीत मेरी खिड़की के पास?
मुल्ला ने ठीक कहा, "ठीक है। मैं स्वीकार करता हूं कि यह बात सच है। मगर उसी तरह सच है जैसे कि चूहे को पकड़ने के लिए चूहेदानी तो बैठी रहती है, कोई चूहों के पीछे नहीं दौड़ती। चूहे खुद ही मूरख उसमें फंस जाते हैं। मैं ही फंसा यह सच है।"
मगर चूहेदानी बैठी रहती है, रस्ता देखती रहती है कि आओ। इंतजाम सब कर देती है चूहादानी। रोटी के टुकड़े पड़े हैं, मक्खन पड़ा है, चीज पड़ा है, मिठाई रखी है। सब इंतजाम है। आओ। और तुमने देखा, चूहेदानी की एक खूबी होती है, उसमें भीतर आने का उपाय होता है, बाहर जाने का उपाय नहीं होता है। आ गए कि आ गए। आए तो आए ही क्यों? अब वह जो भीतर आ गया, इस ख्याल में था कि बाहर जाने का रास्ता भी होगा। बाहर जाने का रास्ता ही नहीं होता।
मजाक एक तरफ, लेकिन पुरुष आक्रमक होता है, वह हमला करता है। प्रेम भी करे तो भी उस प्रेम में उसकी आक्रमकता होती है। यह पुरुष का स्वभाव है। इसमें कुछ कसूर नहीं है। स्त्री अनाक्रमक होती है, ग्रहणशील होती है, स्वागत करती है, अंगीकार करती है। लेकिन उसका बुलावा भी आवाज में नहीं दिया जाता है--चुपचाप, मौन में, इशारों में। सच तो यह है कि वह नहीं-नहीं ही कहे चली जाती है।
सारी दुनिया के प्रेमियों का अनुभव है कि स्त्री के नहीं पर भरोसा मत करना। उसकी नहीं में हां छिपी होती है। जरा गौर से खोदना, कुरेदना। तुम उसकी नहीं में हां पाओगे।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी एक स्त्री के प्रेम में थे। एक दिन बहुत उदास बैठे थे। मुल्ला नसरुद्दीन, उनके मित्र ने पूछा, क्या हो गया, इतने क्यों विषाद में पड़े हो? क्या लुट गया?
चंदूलाल ने कहा कि मैं जिस स्त्री के प्रति आशा लगाए बैठा था, वह सब खंडित हो गयी।
मुल्ला ने कहा, अरे इतनी जल्दी निर्णय न लो। स्त्री लाख नहीं कहे, उसका मतलब हां होता है। तुम घबड़ाओ मत। तुम तो पूछे ही चले जाओ, कहे ही चले जाओ।"
चंदूलाल ने कहा, "नहीं कहती तो ठीक था।उसने नहीं नहीं कहा।"
तो मुल्ला नसरुद्दीन कहा, उसने ऐसा क्या कह दिया फिर? या तो नहीं कहेगी या हां कहेगी।"
अरे--उसने कहा--न उसने नहीं कहा न हां कहा। कहने लगी--अरे मर्दुए, जाकर अपनी शक्ल आईने में देख! अब इसमें से मैं क्या समझूं? तुम तो कहते हो नहीं कहे तो हां समझो, नहीं कहती तो मैं भी हां समझता। हां कहती तो भी हां समझता। लेकिन न नहीं कहा न हां कहा। कहने लगी कि जा और अपनी शक्ल आईने में देख। अब इसमें से मैं क्या समझूं? नहीं कहती तब तो कुछ बात थी, तो उसमें से हां निकाल लेते।
स्त्री नहीं कहती है तो वह भी स्वीकार है। अनामक्रता इतनी होती है कि
वह हां भी भरे तो भी अशोभन मालूम होता है। उसकी लाज, उसकी लज्जा, उसका संकोच हां भी नहीं भरने देता। वह भी थोड़ा अभद्र मालूम होता है। वह नहीं ही कहती है, लेकिन इशारों से हां कहती है। स्वीकार है उसे। तुम उसके चेहरे पर,

उसकी भावभंगिमा में पढ़ सकते हो कि हां। लेकिन ओंठों से नहीं कहेगी। हां कहना भी थोड़ा सा आक्रमण है, जल्दी है।
सत्य के प्रति व्यक्ति को स्त्रैण होना होता है--ग्राहक, ग्रहणशील। द्वार खुले हैं। बंदनवार लगा है। स्वागतम् लिखा है। हार्दिक स्वागतम् है। सत्य आए तो प्राणों में ले लेने की तैयारी है। न आए तो प्रतीक्षा की तैयारी है। धैर्य होता है, प्रतीक्षा होती है। और एक मौन निमंत्रण होता है।
इसलिए ठीक कहा ऐतरेय ब्राह्मण ने कि श्रद्धा पत्नी, सत्यं यजमानः। जीवन-यज्ञ में श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान।
और यह जीवन यज्ञ है। यह पूरा जीवन यज्ञ है। यह आग जला कर और घी फेंकना
और गेहूं फेंकना और चावल फेंकना, यह पागलपन है। यह जीवन-यज्ञ की जगह थोथे यज्ञ पैदा करना है। यह पूरा जीवन ही यज्ञ है। इसमें अगर कुछ-आग में डालना है तो अहंकार डालना है। और अहंकार तुमने जाना कि तुम्हारे जीवन में तत्क्षण श्रद्धा पैदा हुई। तुम गए कि फिर संदेह करने वाला ही न बचा, तो संदेह कैसे बचेगा? जड़ से ही बात कट गयी। न रहा बांस न बजेगी बांसुरी। श्रद्धा को मैंने कहा प्रेम की पराकाष्ठा। उस पराकाष्ठा पर व्यक्तित्व चाहे पुरुष का हो चाहे स्त्री का, स्त्रैण हो जाता है। एक नाजुकता आ जाती है, एक कोमलता आ जाती है। फूलों की कोमलता। तितलियों के पंखों की कोमलता। इंद्रधनुषों की कोमलता।
और सत्य है पुरुष। इसलिए पुराना प्रतीक है कि सिवाय परमात्मा के और कोई पुरुष नहीं।
मीरा के जीवन में यह कथा है मीरा मथुरा गयी, वृंदावन गयी। कृष्ण के प्रेम में दीवानी थी। सो जहां कृष्ण के चरण पड़े थे, जहां कृष्ण की बांसुरी बजी थी, जिन बंसीबटों में, जिस यमुनात्तट पर, वह सब उसके लिए तीर्थ था, महातीर्थ था। उन-उन जगहों पर जाना चाहती थी, वहां की मिट्टी भी पवित्र हो गयी थी। वहां की मिट्टी सोना थी उसके लिए। लेकिन वृंदावन में एक मंदिर था कृष्ण का, बड़ा मंदिर, जिसका पुजारी स्त्रियों को नहीं देखता था।
यह पागलपन कुछ स्वामी नारायण संप्रदाय में ही नहीं है! यह पागलपन बड़ा पुराना है। स्वामी नारायण संप्रदाय के जो महंत हैं, प्रमुख जी महाराज, वे स्त्री को नहीं देखते। हवाई जहाज में भी यात्रा करते हैं तो उनकी सीट के चारों तरफ परदा बांध दिया जाता है--बुर्के के भीतर। वे अकेले ही आदमी हैं जमीन पर, जो बुर्के में चलते हैं। क्या मजा है! हाथी पर जुलूस निकलता है, मगर छाता ऐसा उनके ऊपर लगाया जाता है कि उनकी आंखें छाते की छाया में रहें, कोई स्त्री दिखाई न पड़ जाए। स्त्री से ऐसा भय है, ऐसी घबड़ाहट!
ऐसा ही वह पुजारी रहा होगा। या यही प्रमुख जी महाराज पिछले जन्म में रहे हों, क्योंकि ऐसे लोग तो भटकते रहते हैं। ऐसे लोगों की मुक्ति का तो कोई उपाय है नहीं! ये तो यहीं-यहीं चक्कर मारते हैं। ये जाएंगे भी कहां! जो स्त्री से बचेगा, स्त्री की कोख से फिर पैदा होगा, क्योंकि उसके चौबीस घंटे स्त्री ही खोपड़ी में समायी रहेगी। इधर मरा नहीं कि उसने स्त्री खोजी नहीं, कि गया स्त्री के गर्भ में, फिर गिरा गर्त में!
मीरा जब उस मंदिर पर पहुंची तो मीरा के आने की खबर तो पहुंच गयी थी, उसके गीतों की, उसकी वीणा की लहर तो पहुंच गयी थी। पुजारी सावधान था। तीस साल से उस मंदिर में कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकी थी। उसने द्वार पर पहरे लगा रखे थे कि देखो, मीरा को भीतर मत घुसने देना। मगर मीरा जब आयी और द्वार पर नाचने लगी तो पहरेदार उसके नाच में खो गये। कौन नहीं खो जाएगा-- मीरा नाचे! "पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे!" कौन मीरा के नृत्य में न खो जाएगा! "मैं तो प्रेम दीवानी!" वह किसको दीवान न कर देगी! वह स्वयं तो दीवानी थी ही, लेकिन उसके आसपास भी दीवानेपन का एक माहौल चलता था। वह खुद तो मस्त थी, मस्ती लुटाती भी थी। वे भी झूमने लगे। पहरेदार भी झूमने लगे। भूल ही गये कि इसको रोकना है। पहले तो वह वहीं गीत गाती रही द्वार पर मस्त होकर, तो अभी सवाल ही न उठा था रोकने का। और जब वे बिलकुल डूब गये, मस्त हो गये और डोलने लगे, तो मीरा नाचती हुई मंदिर में प्रवेश कर गयी। रोकें रोकें कि वह तो भीतर थी। मीरा तो बिजली की चमक थी। कहां पकड़ पाओगे? जब तक उन्हें होश आया तब तक बात ही खतम हो चुकी थी, वह तो भीतर पहुंच गयी थी। और

पुजारी प्रार्थना कर रहा था, आरती उतार रहा था। उसने स्त्री को देखा। उसके हाथ से आरती छूट कर गिर पड़ी। यह तीस साल की पूजा और तीस साल की आरती! और कृष्ण के सामने होते हुए मीरा दिखाई पड़ गयी और कृष्ण दिखाई क्या खाक पड़े होंगे इसको तीस साल में! यह नाहक ही मेहनत कर रहा था, नाहक कवायद कर रहा था। थाली गिर गयी, थाल गिर गया। और क्रोधित हो उठा। और कहा कि "ए स्त्री, क्या तुझे द्वारपालों ने नहीं रोका? क्या तुझे मालूम नहीं है? सारी दुनिया जानती है, वृदांवन का बच्चा-बच्चा जानता है कि इस मंदिर में स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है। द्वार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है कि स्त्री- प्रवेश निषिद्ध है। तूने प्रवेश कैसे किया? में स्त्री को नहीं देखता हूं। तूने मेरी तीस साल की तपश्चर्या नष्ट कर दी।"
मीरा ने चुपचाप सुना और कहा कि मैं तो सोचती थी कि तुम कृष्ण के भक्त हो, लेकिन मैं गलती में थी। क्योंकि कृष्ण का भक्त तो मानता है एक ही पुरुष है--वह परमात्मा, वह कृष्ण। बाकी तो हम सब गोपियां हैं। तो तुम सोचते हो दुनिया में दो पुरुष हैं--एक कृष्ण और एक तुम? और क्या खाक तुम पुरुष हो। कृष्ण तो स्त्रियों से नहीं डरे। स्त्रियां नाचती रहीं उनके चारों तरफ। राधा की कमर में हाथ डाल कर वे बांसुरी बजाते रहे। उनके तुम भक्त हो, जरा मूर्ति में कृष्ण के बगल में ही। बांसुरी बज रही है, राधा नाच रही है। कृष्ण के तुम भक्त हो और स्त्रियों से ऐसा भय! यह क्या खाक भक्ति हुई? चलो, अच्छा हुआ मैं आ गयी। यह तो पता चल गया कि दुनिया में दो पुरुष हैं--एक परमात्मा और एक तुम।
बड़ी चोट पहुंची पुजारी को। गिर पड़ा पैरों पर। माफी मांगी कि मुझे क्षमा कर दो। यह तो मुझे ख्याल ही न रहा कि पुरुष तो एक ही है।
भक्ति के शास्त्र का यह सारभूत है कि परमात्मा पुरुष है। वह आएगा। हम सिर्फ द्वार खोल कर प्रतीक्षा करें। वह मेहमान होगा। हम मेजबान बनें। हम आतिथ्य के लिए तैयार हो जाएं। अतिथि जरूर आएगा। कभी ऐसा नहीं हुआ कि न आया हो। जब भी किसी का हृदय आतिथ्य के लिए तैयार हुआ है, वह जरूर आया है।
तो जैसा मैंने कहा, श्रद्धा प्रेम की पराकाष्ठा है, स्त्रैणता की पराकाष्ठा है--वैसे ही सत्य ध्यान की पराकाष्ठा है। श्रद्धा प्रेम की पराकाष्ठा है और सत्य ध्यान की पराकाष्ठा है। तुम श्रद्धा पैदा कर लो और तुम्हारे जीवन में तत्क्षण सत्य उतर आएगा, ध्यान उतर आएगा, समाधि उतर आएगी।
यह सूत्र भक्ति का है। इस सूत्र में सारी भक्ति का शास्त्र समा गया। "श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है।" इससे उत्तम जोड़ी तो कुछ हो भी नहीं सकती। संस्कृत का सूत्र तो और भी अद्भुत है। हिंदी में अनुवाद में कुछ खो गया। जिसने अनुवाद किया होगा हिंदी में, भय के कारण कुछ बात छोड़ गया। संस्कृत का सूत्र है--"श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तम मिथुनम्।" यह सिर्फ जोड़ी की ही बात नहीं है; इन दोनों के बीच जो संभोग होता है, जो मिथुन होता है, उसको छोड़ दिया है हिंदी सूत्र में। अक्सर मैंने देखा है कि संस्कृत के बहुमूल्य सूत्र हिंदी में अनुवादित होते-होते खराब हो जाते हैं क्योंकि हिंदी अब कमजोरों की भाषा है। संस्कृत बलशाली लोगों की भाषा थी। उन्होंने हिम्मत से सत्य कहे थे--जैसे के वैसे कहे थे। उन्हें कुछ कहने में कठिनाई न थी, कि इन दोनों के संभोग से...। मिथुन का अर्थ: संभोग। इन दोनों का संभोग, परम संभोग है क्योंकि वही समाधि है। जहां श्रद्धा और सत्य का संभोग होता है, उस संभोग से ही मोक्ष का जन्म होता है, कैवल्य का जन्म होता है, निर्वाण का जन्म होता है।
लेकिन हिंदी में सूत्र जरा साधारण हो गया--"श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है।" जोड़ी में वह मजा न रहा। जोड़ी में बात खो गयी। जोड़ी बड़ी साधारण बात हो गयी। यह वैसी हो गयी जैसे राम मिलाई जोड़ी, कोई अंधा कोई कोड़ी। राम भी क्या-क्या जोड़ियां मिलाता है! जब मिलाता है, गलत ही मिलाता है। असल में राम को तुम मिलाने ही नहीं देते, तुम तो ज्योतिषियों से मिलवा आते हो! कहते हो--राम मिलाई जोड़ी! मिलाते ज्योतिषी हैं। राम को मिलाने दो तो एक जोड़ी गलत न हो। मगर ज्योतिषियों से मिलवाते हो, सब गलत हो जाता है। इनकी खुद की जोड़ी तो देखो। जरा इनकी देवी जी को तो देख लो। फिर तुम समझ जाना, फिर इनसे जोड़ी मिलवाना। अपनी मिला न पाए, तुम्हारी मिला रहे हैं। और चार-चार आठ-आठ

आने में, रुपये दो रुपये में मिला रहे हैं। जोड़ी मिला रहे हैं। जीवन भर का निर्णय दो रुपये में करवा लेते हैं!!
मैं जबलपुर में था तो मेरे पड़ोस में एक ज्योतिषी रहते थे। उनके पास बड़ी भाड़ लगी रहती थी, बहुत भीड़। साथ-साथ हम घूमने जाते थे सुबह, तो उनसे धीरे-धीरे पहचान हो गयी। मैंने पूछा, "आपसे पास बड़ी भीड़ लगी रहती है। और भी ज्योतिषी हैं, मगर उनके पास इतनी भीड़ नहीं रहती।" उन्होंने कहा, इसका कारण है। अरे जिस की लग्न-कुंडली, जन्म कुंडली कोई न मिला सके उसकी मैं मिला देता हूं। अरे मिलाना अपने हाथ में है। सो जिनकी नहीं मिला पाता कोई, वे सब यहां आते हैं। और सस्ते में मिला देता हूं। एक रुपये में। दूसरे ज्योतिषी कोई दस मांगते हैं, कोई पंद्रह मांगते हैं, मैं तो एक रुपये में, मेरी तो निश्चित फीस है। मोल तोल करना ही नहीं। इधर एक रुपया रखो, इधर मिलाओ। और हमेशा मिलाता हूं, आज तक मैंने कभी ऐसा कुछ किया ही नहीं कि न मिलाया हो। जो भी आ जाए उसकी मिला देता हूं। अरे अपने हाथ में है। इधर का खाना उधर बिठाया, इधर की बात उधर समझायी, मिला मिलू के निपटाया। एक रुपये में और चाहते भी क्या हो? और जो आदमी एक रुपया दे रहा है, उसको एक रुपये का फल भी मिलना चाहिए। सो मिलता है फल।"
रुपये दो रुपये में जोड़ी मिलवा रहे हो! फिर अंधे कोढ़ियों को मिलवा देते हैं वे। राम से जोड़ी तो प्रेम के द्वारा मिलती है, ज्योतिषी के द्वारा नहीं मिलती। मगर प्रेम को तो हम होने नहीं देते। सो हमें ईजाद करनी पड़ी हैं नकलें--ज्योतिषी से मिलवाओ, मां-बाप मिलाते हैं। प्रेम से तो हम मिलने नहीं देते। पता नहीं क्यों प्रेम से कैसी दुश्मनी है! प्रेम भर से सब दुश्मन हैं। और सब तरह से राजी हैं। धन पैसे का हिसाब करेंगे, कुलीनता का हिसाब करेंगे, धर्म का, जाति का, वर्ण का, सब विचार कर लेंगे। जनम के समय तारे कहां थे, क्या थे, इस सबका भी हिसाब लगा लेंगे। मगर दो हृदयों से नहीं पूछेंगे कि तुम्हें मिलना भी है भाई कि नहीं! सारी दुनिया मिला लेंगे, इन दो को भर छोड़ देंगे। इनसे नहीं पूछना है।
राम से मिलवाना हो तो इनसे पूछो। राम इनके भीतर से बोलेगा। और तो उसके पास बोलने का कोई उपाय नहीं है। इनके हृदय में धड़केगा।
इसलिए जब प्रेम होता है तो तुम किसी ज्योतिषी के कारण प्रेम में नहीं पड़ते, कि फलां ज्योतिषी ने कहा कि स्त्री के प्रेम में पड़ जाओ, तो पड़ गये। कि फलां ज्योतिषी ने कहा, क्या करें, प्रेम करना ही पड़ेगा! प्रेम जब होता है तो तुम्हें पता ही नहीं चलता कि क्यों। तुम जवाब भी नहीं दे पाते कि क्यों। तुम कहते हो, पता नहीं कंधे बिचकाते हो--हो गया! यह राम मिलाई जोड़ी! सूत्र में तो है: इन दोनों का मिथुन, इन दोनों का संभोग--श्रद्धा का और सत्य का। सत्य है पुरुष, श्रद्धा है स्त्री। श्रद्धा है स्त्रैणता की पराकाष्ठा। सत्य है पुरुष की पराकाष्ठा। और जहां इन दोनों का मिथुन होता है, जहां इन दोनों का संयोग होता है, जहां इन दोनों का प्रेम होता है, जहां इन दोनों का ऐसा मिलन हो जाता है कि द्वैत समाप्त हो जाता है--मिथुन का वही अर्थ है जहां द्वैत समाप्त हो जाए, अद्वैत रह जाए; जहां दोनों मिल कर एक हो जाते हैं, एक साथ हृदय धड़कता है जहां--बस वही निर्वाण है, महापरिनिर्वाण है।
"श्रद्धा और सत्य की जोड़ी से मनुष्य दिव्यलोकों को प्राप्त करता है।" दिव्य लोक अर्थात समाधि, समाधान--जहां कोई समस्या न रही; जहां जीवन एक उल्लास है।
संस्कृत का सूत्र फिर समझ लेने जैसा है: "श्रद्धया सत्येन मिथुने।" दुबारा दोहराया है कि कहीं चूक न जाओ। "श्रद्धया सत्येन मिथुने न स्वर्गोल्लोकान् जयतीति।" बिना इनके मिथुन के स्वर्ग का जो आलोक है, जो उल्लास है, स्वर्ग का जो आनंद है उसकी उपलब्धि नहीं।
श्रद्धा की तैयारी करो, सत्य आएगा। श्रद्धा के बीज बोओ, सत्य के फूल लगेंगे। श्रद्धा के द्वार खोलो, सत्य का सूरज तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएगा। और जहां श्रद्धा और सत्य का मिथुन होगा, संभोग होगा...मेरी किताब संभोग से समाधि की ओर को बहुत गालियां दी गयी हैं। किताब तो कोई पढ़ता ही नहीं। बस शीर्षक लोगों को खटक गया। शीर्षक ही पढ़ कर लोग समझ जाते हैं कि बस रुक जाओ। इन सब बुद्धुओं को मैं कहता हूं, जरा अपने शास्त्रों को देखो। ये

हिम्मतवर लोग थे। यह ऐतरेय ब्राह्मण का ऋषि हिम्मतवर व्यक्ति रहा होगा।
सीधी-सीधी बात कह दी कि सत्य और श्रद्धा का संभोग हो तो समाधि पैदा होती है। तो स्वर्ग है। तो मुक्ति है, कैवल्य है।
यत्रानंदाश्चय मोदाश्च मुदः प्रमुद आस्ते
कामस्य यत्राप्ताः कामाः तत्र माममृतं कुरु।
"हे प्रभु, मुझे वह अमृतत्व दे, जिसमें मोद-प्रमोद प्राप्त होता है, जहां कामनाएं स्वयं पूर्ण तृप्त हो जाती हैं।"
ये हिम्मतवर लोग थे। ये डरपोक कायर तुम्हारे तथाकथित साधु-संत और महात्माओं जैसे नहीं थे। सीधी प्रार्थना है कि हे प्रभु, मुझे वह अमृत दे, दे मुझे वह राज, वह कीमिया, कि जिसे पीकर मैं मोद प्रमोद को प्राप्त हो जाऊं। मोद-प्रमोद का क्या अर्थ होता है? तुम तो गाली देते हो। तुम तो मोद प्रमोद करने वाले लोगों को संसारी कहते हो। और यह ऋषि प्रार्थना कर रहा है--"मोद-प्रमोद को प्राप्त हो जाऊं।"
मेरे संन्यासियों को सारे जगत में गालियां पड़ती हैं। कहा जाता है कि
ये तो अधर्म फैला रहे हैं। संन्यासी को तपस्वी होना चाहिए, त्यागी होना चाहिए, भूखा मरना चाहिए, उपवास करना चाहिए, शरीर को गलाना चाहिए, कांटो पर लेटना चाहिए, धूपत्ताप में खड़ा होना चाहिए, शीर्षासन, सिर के बल पर खड़ा होना चाहिए। ऐसे उल्टे-सीधे उपद्रव करने चाहिए। मोद-प्रमोद!
मोद-प्रमोद तो वही हुआ, जिसके कारण हमने चार्वाकों को गाली दी है, कि चार्वाक मानते हैं: खाओ, पीओ, मौज करो। मोद-प्रमोद का अर्थ यही हुआ: खाओ, पीओ, मौज करो। तथाकथित धार्मिक आदमी इसको गाली देता है। और तब मैं चकित होता हूं कि जो वेदों की पूजा भी करते हैं, वे भी वेदों को उठा कर देखते हैं या नहीं देखते! नहीं तो मेरा संन्यासी उपनिषद और वेदों की अंतर्द्दष्टि के ज्यादा करीब है, बजाए तुम्हारे तथाकथित त्रिदंडी साधुओं के, शंकराचार्य के शिष्यों के, तुम्हारे जैन मुनियों के। क्योंकि मैं उत्सव सिखा रहा हूं। नाचो, गाओ! यह जीवन परमात्मा की इतनी बड़ी भेंट, इसे यूं न गंवाओ। इसे अहोभाव से स्वीकार करो। इसके ऊपर और भी आनंद हैं, पर इसे जो पाएगा वही इसके ऊपर के आनंद को पाने का हकदार होता है।
उमर खैयाम का एक वचन है। कुरान कहती है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं। उसी को आधार मान कर उमर खैयाम ने कहा है: अगर स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं तो हमें यहां पीने दो,थोड़ा अभ्यास करने दो। नहीं तो वहां पीएंगे एकदम चश्मों में से, तो खतरा होगा, बिलकुल बहक जाएंगे। थोड़ा अभ्यास तो करने दो थोड़ी तैयारी तो करने दो जन्नत में आने की। यहां तो कुल्हड़ से पी जाती है। यहां कोई नदियें तो नहीं बह रही हैं। और जिन्होंने जिंदगी भर अपने को दबाया और दमन किया, कभी पीया नहीं, वे एकदम जन्नत में पहुंच कर क्या करेंगे? जैसे मोरारजी देसाई क्या करेंगे? एकदम पीने में लग जाएंगे। जिंदगी भर तो खुद भी नहीं पीया, दूसरों को भी नहीं पीने दिया। और पीया भी तो क्या पीया--जीवन-जल पीया! एक बात तो पक्की है स्वर्ग में इनको जीवन-जल नहीं पीने दिया जाएगा। कौन घुसने देगा इनको जीवन-जल पीने के लिए स्वर्ग में? लोग खदेड़ कर बाहर कर देंगे कि अगर जीवन-जल पीना है तो वापिस भारत में जाओ, यह काम वहीं चल सकता है।
वहां तो शराब के चश्मे हैं। उमर खैयाम एक सूफी फकीर है। उमर खैयाम कोई शराबी नहीं, जैसा कि लोगों ने समझ लिया है। उमर खैयाम एक सूफी फकीर है, एक सिद्ध पुरुष है--उसी कोटि का जिसमें बुद्ध और महावीर; उसी कोटि का जिसमें उपनिषद के ऋषि। मगर उसके प्रतीकों के कारण गलती हो गयी। उसके प्रतीक सूफी प्रतीक हैं। सूफियों के लिए शराब का अर्थ है: उल्लास, आनंद, मस्ती। वह सिर्फ प्रतीक है। वह यह नहीं कह रहा कि शराब पीओ। वह यह कह रहा है:लेकिन आनंदित होना है इसका थोड़ा अभ्यास तो कर लो। वे स्वर्ग में जो शराब के झरने बहते हैं, उसका भी मतलब यही है कि वहां आनंद के झरने बह रहे हैं। और तुम्हारे साधु संत, उनकी शक्लें तो देखो--उदास, मुर्दा...। ये अगर पहुंच भी गये वहां तो करेंगे क्या? आनंद उल्लास के उस जगत में, जहां अप्सराएं नाचती होंगी, श्री प्रमुख जी महाराज क्या करेंगे? एकदम बुर्का ओढ़ कर बैठ रहेंगे। स्वर्ग भी गये और बुर्का ओढ़े रहे। क्या खाक दीदार होगा! और कहीं भूल-चूक से

परमात्मा स्त्री हुआ तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। और इस बात का पूरा खतरा है कि हो।
क्या पता! अरे परमात्मा का क्या भरोसा! अगर न भी हो तो कम से कम प्रमुख
जी महाराज के सामने तो स्त्री-रूप प्रगट होगा, यह मैं कहे देता हूं। इनके सामने तो वह स्त्री-रूप में ही प्रगट होगा। इतना व्यंग तो परमात्मा भी समझता होगा। इतना मजा तो वह भी लेगा! अब प्रमुख जी आ ही गये तो थोड़ा...इतना खेल, इतनी लीला तो वह भी रचाएगा। लीलाधर है। इतनी लीला तो करेगा कि प्रमुख जी को थोड़ा नचाएगा। डमरू थोड़ा बजाएगा कि जमूरे नाच!
स्वर्ग में आनंद है। आनंद का नाम स्वर्ग है। मेरे संन्यासियों को कोई अड़चन न आएगी। वे यहीं अभ्यास कर रहे हैं स्वर्ग का। उनके लिए स्वर्ग में कुछ मौलिक भेद नहीं हो जाएगा। हां, गुणात्मक भेद होगा, परिणात्मक भेद होगा; मगर कुछ तो बूंदें उन पर यहां भी पड़ गयी हैं। बूंदाबांदी तो यहां हो गयी, चलो वहां मूसलाधार वर्षा होगी। मगर उनकी थोड़ी पहचान रहेगी। कुल्हड? से उन्होंने यहां शराब पी ली, वहां झरनों में तैर लेंगे और झरनों से पी लेंगे। यहां मस्त रहे, वहां भी मस्त रहने की उनको कला आ जाएगी।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। उदासी उनका अभ्यास है। उदासीनता उनकी तपश्चर्या है। अपने को गलाना, सड़ाना, भूखा मारना...। असल में यह सब अत्याचार है--इस निरीह शरीर पर, इस बे- जुबान शरीर पर, इस निहत्थे शरीर पर। ये आत्मघाती प्रवृतियां हैं। पहली तो बात, इनको स्वर्ग में जगह नहीं मिल सकती। भूल-चूक से ये घुस जाएं तो निकाले जाएंगे। न निकाले जाएं तो इनको स्वर्ग रास न आएगा। इनको लगेगा ये तो सब भ्रष्ट! ये तो वही रजनीशी संन्यासी यहां जमे हुए हैं! वही नाच-गान चल रहा है! हम तो सोचते थे वे ही लोग भ्रष्ट हैं; उन्होंने तो पूरा स्वर्ग भ्रष्ट कर रखा है। इससे तो नर्क भला, कम से कम वहां उदासीनता तो बचा सकेंगे अपनी, सिर के बल खड़े हो तो सकेंगे। यहां तो सिर के बल खड़े होंगे, कोई अप्सरा ही धक्का मार देगी, कि यह क्या कर रहे हो? यह कोई ढंग है? स्वर्ग में खड़े होने का यह कोई ढंग है? तुम परमात्मा का अपमान कर रहे हो। वहां उदास बैठेंगे, मुश्किल हो जाएगा। गंधर्व इनके आसपास वीणा बजाएंगे, बांसुरी बजाएंगे। अप्सराएं इनको गुदगुदाएंगी कि भैया, हंसो, थोड़ा प्रसन्न होओ, थोड़ा अब तो आनंदित होओ!
यह ऋषि का वचन सुनो--"हे प्रभु, मुझे अमृत दे, जिसमें मोद-प्रमोद प्राप्त होता है।" यह जिंदा कौम रही होगी तब। तब इसे मोद-प्रमोद की भाषा में कोई निंदा नहीं मालूम होती थी। तब इसे मोद-प्रमोद में कोई नास्तिकता नहीं मालूम होती थी। इसे जीवन का तब स्वीकार भाव था। तब इसके लिए जीवन ही परमात्मा था। "जहां कामनाएं स्वयं पूर्ण तृप्त हो जाती हैं। दे मुझे वह अमृत, जहां सारी कामनाओं की तृप्ति है।"
मेरे अनुभव में, इन दो-ढाई हजार वर्षो में भारत की मनोदशा इतनी विकृत
हो गयी है कि आज इसे अपने ही सूत्रों को समझना मुश्किल हो गया है। मैं जो कह रहा हूं, वह सनातन धर्म है--एस धम्मो सनंतनो! मगर मेरी बात जहर की जहर लगती है उन लोगों को, जो सनातनधर्मी हैं। वे सोचते हैं--मैं धर्म को भ्रष्ट कर रहा हूं, मैं सभ्यता को भ्रष्ट कर रहा हूं, मैं संस्कृति को भ्रष्ट कर रहा हूं। उनको अपने वेद, अपने उपनिषद, अपने ब्राह्मण ग्रंथ उठा कर देख लेने चाहिए। वे बहुत चौंकेंगे। मेरे समर्थन में उन्हें कोई सूत्र नहीं मिलेगा। लेकिन जाना होगा उन्हें कम से कम ढाई हजार साल के पहले, तब उन्हें मेरे समर्थन में सूत्र मिलने शुरू होंगे। तब उल्लास था एक। तब इस देश ने पहली पहली बार धर्म का आविष्कार किया था अनुभव किया था। तब बात ताजी थी फिर बासी पड़ती गयी। फिर उस पर राख जमती चली गयी, धूल जमती चली गयी। फिर इतनी धूल जम गयी व्याख्याओं की कि अब सूत्रों का तो पता ही चलना मुश्किल हो गया है। अब तो व्याख्याओं पर व्याख्याएं हैं और तुम व्याख्याओं में ही भटके रहते हो। और व्याख्याएं तो अपनी-अपनी मर्जी की हैं, जिसको जैसी करनी हों।
कृष्ण की एक गीता है। निश्चित ही कृष्ण का एक ही अर्थ रहा होगा। कृष्ण कोई पागल नहीं थे। लेकिन हजारों टीकाएं हैं। और सब टीकाओं में विरोध है। अगर कृष्ण ठीक हैं तो ज्यादा से ज्यादा एक टीका सही हो सकती है। ये हजारों

टीकाएं सही नहीं हो सकतीं। लेकिन जिसको जो मतलब निकालना हो...। शंकराचार्य कृष्ण की गीता में से ज्ञानयोग निकाल लेते हैं। और रामनुजाचार्य गीता में से भक्तियोग निकाल लेते हैं। और बालगंगाधर तिलक गीता में से कर्मयोग निकाल लेते हैं। गीता न हुई, भानूमति का पिटारा हो गया। कहीं न ईंट कहीं न रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा! और इसमें से तुम जो चाहो निकाल लो। यह तो कोई जादू की पिटारी हो गयी, कि रूमाल डालो, कबूतर निकालो; कबूतर डालो, रूमाल निकालो। जो मर्जी।
इतना असत्य इन ढाई हजार वर्षों में बोला गया है। इसलिए मेरी बात तुम्हें अड़चन की मालूम पड़ रही, क्योंकि ढाई हजार वर्षों की दीवालें बीच में खड़ी हैं। अन्यथा मैं जो कह रहा हूं वह शाश्वत धर्म है, वह ऋत है। मैं जो सूत्रों का अर्थ कर रहा हूं, वह सीधा-साफ है, वह किसी पंडित का अर्थ नहीं है। वह मेरा अनुभव है। मैं तुमसे कहता हूं यहां आनंदित होओ तो तुम स्वर्ग के अधिकारी बनोगे। यहां प्रफुल्लित होओ तो आगे भी प्रफुल्लता है। तुम यहां जो हो, वही तुम आगे भी होओगे। हां, बहुत बड़े पैमाने पर होओगे। लेकिन यहां कुछ होना पड़ेगा। आंगन आकाश हो जाएगा, मगर आंगन तो हो। आंगन ही न होगा तो क्या खाक आकाश होगा?
इसलिए मरे इन सूत्रों के जो अर्थ हैं, बहुत ध्यानपूर्वक सुनना। काश,
इन सूत्रों का ठीक-ठीक अर्थ तुम्हारे ख्याल में आ जाए तो इस देश का पुनर्जन्म हो सकता है। और इस देश के पुनर्जन्म के साथ सारी मनुष्यता के लिए एक सौभाग्य का उदय हो सकता है, सूर्योदय हो सकता है।
सातवां प्रवचन; दिनांक २७ सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-13

वर्तमान क्षण की धन्यता
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #4)

पहला प्रश्नः ओशो,
भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।
वर्तमान निमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते।।
भविष्य का अनुसंधान नहीं, न अतीत की चिंता। हंसते हुए वर्तमान में जीना।
लगता है, योगवासिष्ठ का यह श्लोक आपकी देशना का संस्कृत अनुवाद है।
इसे हमें फिर एक बार समझाने की कृपा करें।

सहजानंद!
मन या तो अतीत होता है या भविष्य। वर्तमान में मन की कोई सत्ता नहीं।
और मन ही संसार है; इसलिए वर्तमान में संसार की भी कोई सत्ता नहीं। और मन ही समय है; इसलिए वर्तमान में समय की भी कोई सत्ता नहीं।
अतीत का वस्तुतः कोई अस्तित्व तो नहीं है, सिर्फ स्मृतियां हैं। जैसे रेत पर छूटे हुए पगचिह्न। सांप तो जा चुका, धूल पर पड़ी लकीर रह गई। ऐसे ही चित्त पर, जो बीत गया है, व्यतीत हो गया है, उसकी छाप रह जाती है। उसी छाप में अधिकतर लोग जीते हैं।
जो नहीं है उसमें जीएंगे, तो आनंद कैसे पाएंगे? प्यास तो है वास्तविक
और पानी पीएंगे स्मृतियों का! बुझेगी प्यास? धूप तो है वास्तविक और छाता लगाएंगे कल्पनाओं का! रुकेगी धूप उससे?
अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। अतीत जा चुका, मिट चुका। मगर हम जीते हैं अतीत में। और इसलिए हमारा जीवन व्यर्थ, अर्थहीन, थोथा। इसलिए जीते तो हैं, मगर जी नहीं पाते। जीते तो हैं, लेकिन घिसटते हैं। नृत्य नहीं, संगीत नहीं, उत्सव नहीं।
और अतीत रोज बड़ा होता चला जाता है। चैबीस घंटे फिर बीत गए, अतीत और बड़ा
हो गया। चैबीस घंटे और बीत गए, अतीत और बड़ा हो गया। जैसे-जैसे अतीत बड़ा होता है, वैसे-वैसे हमारे सिर पर बोझ बड़ा होता है। इसलिए छोटे बच्चों की आंखों में जो निर्दोषता दिखाई पड़ती है, जो संतत्व दिखाई पड़ता है, वह फिर बूढ़ों की आंखों में खोजना मुश्किल हो जाता है। हजार तरह के झूठ इकट्ठे हो जाते हैं! सारा अतीत ही झूठ है!
जीसस एक सुबह-सुबह झील पर रुके। सूरज अभी ऊगा नहीं। बस, ऊगने को है। और
एक मछुए ने जाल फेंका है। जीसस ने उस मछुए के कंधे पर हाथ रखा; मछुए ने लौट कर देखा। सूरज की पहली फूटती हुई किरणें पूरब से जीसस के चेहरे पर पड़ीं, उस मछुए की आंख जीसस की आंख से मिली, और बात हो गई! बिना बात किए बात हो गई। आंख से आंख की मुलाकात हो गई। क्षण भर सन्नाटा रहा और जीसस ने कहा, छोड़ यह जाल! पकड़ लीं तूने मछलियां बहुत! करेगा भी क्या मछलियां पकड़-पकड़ कर? जीवन में कुछ और पकड़ना है या बस मछलियां ही पकड़ना है? इनकी दुर्गंध से अभी ऊबा नहीं? छोड़ जाल! मेरे पीछे आ! मैं तुझे परम धन खोजने का सूत्र दूं। ऐसा जाल फेंकना सिखाऊं कि परमात्मा ही फंसे उस जाल में। उससे कम को क्या फांसना!
मछुआ हिम्मतवर रहा होगा। पंडित होता, चालबाज होता, होशियार होता, ब्राह्मण होता, हजार बातें निकालता--कि अभी कैसे चलूं! अभी तो अड़चनें हैं। पहले मां से तो जाकर आज्ञा ले आऊं! पहले पिता से तो पूछ लूं! पत्नी क्या कहेगी! बच्चों का क्या होगा?
मगर जीसस की आंखों का जादू! जैसे सब भूल गया! छोड़ दिया जाल उसने पानी में ही। खींचा भी नहीं पानी के बाहर! जीसस के पीछे हो लिया।
वे दोनों गांव के बाहर निकलते ही थे कि एक आदमी भागा आया और उस मछुए को कहा, पागल! तू कहां जा रहा है? और इस पागल आदमी के साथ कहां जा रहा है? तेरे पिता की मृत्यु हो गई! मैं तुझे खोजने झील पर गया, वहां इस घटना का पता चला कि एक पागल, जो आस-पास गांव के कई बार देखा गया है, उसने तेरे कंधे पर हाथ

रखा और तू उसके पीछे चल पड़ा है। वापस चल! तेरे पिता का अंतिम संस्कार करना है या नहीं?
उस युवक ने जीसस से कहा, मुझे क्षमा करें। मैं जाकर अंतिम संस्कार कर आऊं। तीन दिन बाद लौट आऊंगा।
जीसस ने उससे कुछ बातें कहीं, जो सोचना। पहली तो बात जीसस ने यह कही कि
एक पल का तो भरोसा नहीं है, कल का भरोसा कहां! और तू तीन दिन का वायदा करता है! आ सकेगा? तेरे पिता को पक्का था कि आज मर जाएंगे? तुझे ही पक्का होता, तो आज तू झील पर मछली पकड़ने न गया होता। तू कल भी जिंदा होगा? तीन दिन बाद भी तू आ सकेगा? यह भी मान लें कि तू जिंदा होगा, तो तीन दिन बाद यह साहस रह जाएगा जो आज तुझमें जगा है? यह जो किरण तुझमें आज फूटी है? और फिर तीन दिन बाद तू आ भी जाए, यह भाव भी रह जाए, तो मैं बचूंगा? मैं भी बच जाऊं, यह भाव भी रह जाए, तीन दिन बाद तू आ भी जाए, तो हमारा फिर मिलन होगा? अनंत-अनंत काल में पहली बार हम मिले हैं, दुबारा का क्या भरोसा!
उस युवक ने कहा, बात तो आपकी ठीक है। जवाब तो मेरे पास नहीं। मगर मेरे पिता का अंतिम संस्कार भी तो करना है!
जीसस ने कहा, इसकी फिक्र छोड़। क्योंकि गांव में बहुत मुरदे हैं, वे मुरदे को दफना देंगे! गांव में कुछ मुरदों की कमी है? अब यही आदमी आया है, यह खुद ही मुरदा है। यह ही दफना देगा। मुरदे मुरदे को दफना देंगे। मुरदों को दफना लेने दे मुरदों को। फिर जो मर ही चुका, अब दफनाओ न दफनाओ, ऐसा दफनाओ वैसा दफनाओ, जमीन में गड़ाओ कि आग लगाओ, क्या फर्क पड़ता है! पंछी तो उड़ चुका। पिंजड़ा पड़ा रहा गया है। तू मेरे पीछे आ! यह अवसर खोने का नहीं है। पीछे की तरफ लौट कर मत देख, क्योंकि वही आदमी की बुनियादी भूल है।
और हम सब पीछे लौट कर देखते हैं! हम पीछे से ही जीते हैं। हम हिसाब ही लगाते रहते हैंः यह हुआ, वह हुआ। काश ऐसा हो जाता! काश वैसा हो जाता!
फिर इस अतीत के उपद्रव से भविष्य का उपद्रव पैदा होता है। उपद्रव निःसंतान नहीं होते! उपद्रव संतति-नियमन में नहीं मानते! उपद्रव भारतीय होते हैं। एक उपद्रव दस-पंद्रह बच्चे पैदा करता है; इससे कम नहीं।
मैंने सुना, जनगणना करने वाले अधिकारी ने एक द्वार पर दस्तक दी। और थोड़ा चैंका, और थोड़ा हैरान हुआ। आंख पर भरोसा भी न आया, गौर से पुनः देखा। लेकिन बात सच थी, भरोसा आए या न आए। जिस स्त्री ने दरवाजा खोला था, बिल्कुल नग्न थी! चैंक गया। पूछा, आप नग्न क्यों हैं?
उस स्त्री ने कहा, चैंको मत। मैं न्यूडिस्ट हूं! मैं दिगंबरत्व में विश्वास करती हूं!
वह आदमी समझदार था। सोचा, अपने को क्या लेना-देना! इसकी यह जाने। जिस काम के लिए आया हूं, वह मैं करूं और अपने रास्ते पर लगूं। उसे तो कुछ जानकारियां लेनी थीं जनगणना के लिए, सो उसने जरूरी प्रश्न पूछ कर अपनी बही में लिखे। उन्हीं प्रश्नों में एक प्रश्न था, आपके कितने बच्चे हैं। सो उसने पूछा। उस स्त्री ने कहा, बाईस!
फिर वह आदमी चैंका। उसने कहा, बाई, क्या आप वाकई न्यूडिस्ट हैं या आपको कपड़े पहनने की फुर्सत नहीं मिलती?
ये जो उपद्रव हैं, इनकी बड़ी संतानें होती हैं। कहावत है कि एक मुसीबत अकेली नहीं आती; साथ में भीड़-भड़क्का लाती है! मुसीबत तो यूं समझो कि कुंभ का मेला है! एक क्या आई, और आती होंगी। एक आई, तो तुम यूं समझो कि बस खबर आई। कहते हैं, एक फूल खिल जाए, तो समझो कि वसंत आ गया। फूलों के संबंध में सच हो या न हो, मगर एक मुसीबत आ गई, तो समझ लो कि अब मुसीबतों ही मुसीबतों के जाल फैल जाने वाले हैं।
सबसे बड़ी मुसीबत जो अतीत लाता है, वह है भविष्य। भविष्य तुम्हारे अतीत की ही छाया है। वह तुमने जो जीया है, उसमें से कुछ काट-छांट कर तुम भविष्य की कल्पना करते हो। जो प्रीतिकर नहीं था, उसे छांटते हो। जो प्रीतिकर था, उसे फैलाते हो, बढ़ाते हो, विस्तीर्ण करते हो। भविष्य है क्या? भविष्य का तुम्हें पता तो नहीं। जिसका पता हो, वह भविष्य नहीं। भविष्य तो अज्ञात है। लेकिन अतीत ज्ञात है। ज्ञात से हम अज्ञात के संबंध में अनुमान लगाते हैं। और ज्ञात में से ही चुनाव करते हैं। सुखद को चुनते

हैं, दुखद को छोड़ते हैं। ऐसे हम भविष्य के रंगीन सपने संजोते हैं। कांटे- कांटे अलग कर देते हैं, गुलाब-गुलाब बचा लेते हैं।
हालांकि यह हमारी भ्रांति है, क्योंकि कांटे और गुलाब साथ-साथ होते हैं। यह असंभव है कि तुम जो-जो गलत था उसे छोड़ दो और जो-जो ठीक था उसे बचा लो। गलत और ठीक संयुक्त था, जुड़ा था। आएगा, तो साथ आएगा। जाएगा, तो साथ जाएगा। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू को बचा न सकोगे।
तो एक तो अतीत का बोझ; उसकी चट्टानें हमारी छाती पर रखी हैं। और फिर भविष्य का बोझ। अतीत का रोना, कि ऐसा क्यों न हुआ। और फिर जल्दी ही भविष्य के लिए रोओगे, क्योंकि वह भी नहीं होने वाला है। न अतीत तुम्हारे मन के अनुकूल हुआ, न भविष्य तुम्हारे मन के अनुकूल होगा। इन दो पाटों के बीच में आदमी पिसता है। और दोनों ही का कोई अस्तित्व नहीं है।
अतीत वह, जो जा चुका--अब नहीं। और भविष्य वह, जो आया नहीं--अभी नहीं।
दोनों के मध्य में छोटा सा बिंदु है अस्तित्व का। बस, बूंद की भांति है।
अगर होश न रहा, तो चूक जाओगे।
यह सूत्र प्यारा है। यह संन्यास की परिभाषा है।
"भविष्यं नानुसंधत्ते।"
भविष्य का अनुसंधान न करो। जो नहीं है, उसके पीछे न दौड़ो।
मगर साधारण आदमियों की तो बात छोड़ दो, जिनको तुम असाधारण कहते हो, जिनको तुम पूजते हो, वे भी जो नहीं है उसके पीछे दौड़ते हैं। राम भी स्वर्णमृगों के पीछे दौड़ते हैं! औरों की तो बात छोड़ दो। हाथ की सीता को गंवा बैठते हैं! इसमें कसूर रावण का कम है। रावण को नाहक दोष दिए जाते हो। अगर कहानी को गौर से देखो, तो रावण का कसूर न के बराबर है। अगर कसूर है किसी का, तो राम का। स्वर्णमृग के पीछे जा रहे हैं!
बुद्धू से बुद्धू आदमी को भी पता है कि मृग स्वर्ण के नहीं होते। साधारण से साधारण आदमी कहता है कि सारा जग मृग-मरीचिका है। देखते हो मजा! साधारण आदमी भी कहता है, जग मृग-मरीचिका है। और राम सोने के मृग के पीछे चल पड़े! और क्या मृग-मरीचिका होगी? इससे बड़ा और क्या भ्रमजाल होगा? सीता को गंवा बैठे!
जब भी मैं राम, लक्ष्मण और सीता की तस्वीर देखता हूं, तो मुझे लगता है
कि यह भविष्य, वर्तमान और अतीत की तस्वीर है। राम हैं आगे, लक्ष्मण हैं पीछे, मध्य में सीता है। राम हैं अतीत; जो बीत गया, जो जा चुका, उसके पूजक। इसलिए तो दशरथ की मान कर चल पड़े। न सोच किया, न विचार किया। न पूछा, न प्रश्न उठाया।
दशरथ की बात मानने योग्य थी ही नहीं। दशरथ की बात विद्रोह के योग्य थी। और काश, राम ने विद्रोह किया होता, तो भारत की कथा और होती। तो भारत के जीवन का अर्थ और होता, इतिहास और होता। काश, राम ने विद्रोह किया होता, तो भारत इस तरह गुलामी में न जीता, इस तरह की पीड़ा में न जीता। लेकिन राम ने एक ऐसी बात को स्वीकृति दे दी, जो कि बुनियादी रूप से गलत थी। जिसमें कहीं भी कोई न्याय नहीं था। चैदह साल का वनवास! अकारण!
दशरथ बूढ़े थे। बुढ़ापे में जो विवाह किया था, जो चैथी पत्नी थी, वह जवान! अक्सर बूढ़े पति जवान पत्नियों के चक्कर में होते हैं! बूढ़े हैं, चक्कर में होना ही पड़ता है। अरे, जवानों को होना पड़ता है, तो बूढ़ों की तो बात ही क्या! इस बुढ़ापे में जवान स्त्री ने जो कहा, वह मान लिया! यह भी अत्यंत मूच्र्छा की बात थी।
और राम हैं परंपरा के पूजक। रघुकुल रीति सदा चलि आई। वे तो रघुकुल की रीति--रीति और रिवाज, परंपरा--उसके पोषक हैं। तो अन्याय हो तो भी चलेगा। अन्याय के संबंध में भी बगावत नहीं है, विद्रोह नहीं है। और जहां अन्याय को पूजने वालों को पूजा जाता हो, फिर स्वभावतः उस देश का दुर्भाग्य सुनिश्चित है। वे अतीत के प्रतीक हैं राम।
लक्ष्मण भविष्य के लिए आतुर हैं। तुम्हें याद होगा, स्वयंवर जब सीता
का रचा गया, तो लक्ष्मण उचक-उचक पड़ते हैं! उनको रोकना पड़ता है बार-बार। वे धनुष तोड़ने को एकदम आतुर हो रहे हैं। वे इसकी फिक्र नहीं करते कि बड़े भैया मौजूद हैं, इनका भी कुछ ख्याल करें! ऋषि-मुनि उनको रोकते हैं, कि रुको। यह ऋषि-मुनियों का भी काम खूब है! अरे, तोड़ लेने दो बेचारे को तोड़ना है तो! मगर

वे उनको रोकते हैं कि नहीं, तू मत तोड़ना! वे एकदम आगे के लिए आतुर हैं; भविष्योन्मुख हैं, जल्दबाजी में हैं। राम हैं अतीत-उन्मुख। और सीता है दोनों के मध्य में। और वह कोमल सी सीता, वही है वर्तमान।
इस सूत्र में वर्तमान के लिए जो शब्द उपयोग हुआ हैः वर्तमान निमेषं! निमिष-मात्र!
निमिष शब्द को समझना उपयोगी है। निमिष उस हिस्से को कहते हैं समय के, जिसको तौला न जा सके, मापा न जा सके। सेकेंड नहीं, मिनट नहीं। निमिष का अर्थ होता है, जो तुलना के बाहर है, इतना छोटा है! जैसे कि भौतिकशास्त्री कहते हैं कि परमाणु का जब विस्फोट करते हैं और इलेक्ट्रान हमारे हाथ लगते हैं, तो उनमें कोई वजन नहीं; वे तौले नहीं जा सकते। जो तौला नहीं जा सकता उसको तो पदार्थ ही नहीं कहना चाहिए।
अंग्रेजी में शब्द है पदार्थ के लिए मैटर। मैटर बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। पदार्थ से ज्यादा महत्वपूर्ण शब्द है। क्योंकि पदार्थ का तो अर्थ होता है, जिस पद में अर्थ हो। मैटर बनता है मीटर से। मीटर यानी जिससे तौला जाए, जो तुल जाए। मैटर का अर्थ होता है, जो तौला जा सकता है।
लेकिन इलेक्ट्रान तो तौला नहीं जा सकता, मापा नहीं जा सकता--न तराजू पर, न इंच-फिटों में; कोई उपाय नहीं। इतना छोटा है कि हमारे तौलने के साधन सब मोटे हो जाते हैं, सब स्थूल रह जाते हैं। वह हमारी तुलना के बाहर हो जाता है।
ऐसे ही समय के उस अंतिम हिस्से को निमिष कहते हैं, जो तुलना के बाहर है, जो तौल के बाहर है; जिसकी कोई मात्रा नहीं होती; जो आया और गया! जो आया नहीं कि गया नहीं!
दो शिकारी नए-नए शिकार खेलने गए थे। दोनों बड़े तत्पर थे, बिल्कुल बंदूक लिए हुए। और तभी एक खरगोश छलांग लगाया; एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी में चला गया। दोनों बिल्कुल तत्पर थे, लेकिन फिर भी चूक गए। एक ने दूसरे से पूछा कि मामला क्या हुआ? मैं भी तैयार, तुम भी तैयार; बंदूकों के घोड़ों पर हाथ रखे थे; हुआ क्या? बात क्या हुई?
उस दूसरे शिकारी ने कहा, मैं कहूं क्या! जब खरगोश निकल गया, तब मुझे दिखाई पड़ा! इतनी तेजी से निकला कि जब निकल रहा था तब तो मैं चूक ही गया। जब निकल गया, तब मुझे याद आई कि अरे! मगर तब तक तो देर हो चुकी थी। तब तो गोली चलाने का कोई अर्थ न था।
ऐसा निमिष है। तुम्हें जब दिखाई पड़ता है, तब तक जा ही चुका होता है। जैसे ही तुम्हें याद आती है, यह वर्तमान! गया। अतीत हो गया। पहचाना, कि अतीत हो गया। सिर्फ जीया जा सकता है, जाना नहीं जा सकता। या कि यूं कहो कि जीना ही जानने का एकमात्र उपाय है। क्योंकि तुमने अगर जानने की कोशिश की, तो अतीत हो जाएगा। या अगर जल्दबाजी की, तो भविष्य रहेगा। अगर जरा सी देर की, तो अतीत हो जाएगा। और देर करनी ही पड़ेगी, क्योंकि मन में इतनी गति नहीं है। यूं तो तुमने सुना है बहुत कि मन की बहुत गति है, मगर वह जो वर्तमान का क्षण है, मन से भी बहुत तीव्र गति से जाता है। मन उसके सामने कुछ भी नहीं। बहुत पिछड़ जाता है।
यह सूत्र संन्यास की आधारशिला हैः "भविष्यं नानुसंधत्ते।"
न तो भविष्य का अनुसंधान करना; दौड़ना मत भविष्य के पीछे। यह भविष्य बस स्वर्णमृग है।
मगर हम सब दौड़ रहे हैं भविष्य के पीछे। अलग-अलग स्वर्णमृग हैं--कोई धन
के पीछे, कोई पद के पीछे, कोई मोक्ष के पीछे, कोई परमात्मा के पीछे--मगर भागे हुए हैं लोग! कोई यहां नहीं; सब की आंखें वहां टिकी हैं। और होना है यहां और आंखें हैं वहां! इसलिए तुम्हारे और तुम्हारी आंख में ही तालमेल नहीं हो पाता; उन दोनों में ही टूट हो जाती है। चलते हो कहीं, देखते हो कहीं!
यूनान की बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक बहुत बड़ा ज्योतिषी रात तारों का अध्ययन करता हुआ एक कुएं में गिर पड़ा। कुएं पर कोई घाट न था, कोई पाट न था। और उसकी आंखें अटकी थीं दूर आकाश के तारों पर। तो गिर पड़ा कुएं में। जब गिर पड़ा, तब होश आया। चिल्लाया। रात थी अंधेरी, रास्ता निर्जन, गांव पीछे छूट गया। वह तो खेत में एक झोपड़े में रात, और तो कोई न था, एक बूढ़ी औरत सोई थी।

वह भी रखवाली के लिए थी। आवाज सुनी तो आई। बामुश्किल उस वृद्धा ने रस्सी डाल कर इस ज्योतिषी को बाहर निकाला।
ज्योतिषी ने उसे बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, बहुत अनुग्रह किया। और कहा
कि सुन, तुझे शायद पता भी न हो कि मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। तारों के संबंध में और तारों के माध्यम से मनुष्य के भविष्य के संबंध में मेरी घोषणाएं कभी गलत नहीं हुईं। बड़े-बड़े सम्राट दूर-दूर से अपना भविष्य पूछने मेरे पास आते हैं। हजारों रुपए मेरी फीस है। लेकिन तेरा भविष्य मैं मुफ्त बता दूंगा, क्योंकि तूने मेरा जीवन बचाया।
वह बूढ़ी स्त्री हंसने लगी। उसने कहा, बेटा, तू फिक्र न कर। मैं तुझे कष्ट न दूंगी। उसने कहा, नहीं-नहीं। कष्ट की कोई बात नहीं। तू कल आ जाना। यह मेरा पता रहा। यूं तो तू किसी से भी पूछ लेगी एथेंस में, तो कोई भी मेरे घर का पता बता देगा। बच्चा-बच्चा जानता है।
पर, उस बुढ़िया ने कहा, मुझे आना नहीं बेटा। तुझसे क्या अपना भविष्य पूछूंगी! तुझे एक कदम आगे का कुआं तो दिखाई पड़ता नहीं। तू मेरे संबंध में क्या बताएगा! तुझे अपना भविष्य पता नहीं कि आज कुएं में गिरना है; कि आज जरा सम्हल कर चलूं; कि आज चलूं ही नहीं, घर में ही रहूं। तू मुझे क्या भविष्य बताएगा!
कहानी अदभुत है, क्योंकि उस ज्योतिषी को इससे इतनी चोट लगी और बात इतनी साफ हो गई कि उसने ज्योतिषी का धंधा छोड़ दिया। बात तो सच थी।
ऐसा हुआ, जयपुर में मेरे पास एक ज्योतिषी को लोग ले आए। एक हजार एक रुपया उनकी फीस थी। उससे कम में वे हाथ भी नहीं देखते थे। मुझसे बोले कि आपको मेरी फीस पता है? मैंने कहा, जो भी फीस होगी...।
उन्होंने कहा, नहीं। मैं आपको बता दूं। एक हजार एक।
मैंने कहा, तुम फिक्र छोड़ो। मैं एक हजार दो दूंगा! अब तुम आ ही गए हो, इतना कष्ट किए, तो खाली हाथ जाना उचित नहीं। तुम मजे से मेरे हाथ का अध्ययन करो।
कुछ बातें यहां-वहां की उन्होंने कहीं, जो कि बंधी हुई बातें हैं, जो
कि ज्योतिषी सभी को कहते हैं, जो कि सभी के संबंध में सही होती हैं। थोड़ा- बहुत हेर-फेर करना पड़ता है। और बातें इस ढंग से कहनी होती हैं कि उनमें हेर-फेर करने की सुविधा होती है; गोल-मोल करनी होती हैं। फिर चलने का वक्त आया, तो वे राह देखें कि उनकी फीस मिले!
मैंने कहा, अब आप जाइए भी। अब मैं कुछ और काम करूं!
उन्होंने कहा, मैं तो जाऊं, लेकिन फीस!
मैंने कहा, यह तो आपको पहले ही सोच लेना था! अपना हाथ देख कर घर से निकलना चाहिए!
उन्होंने कहा, आपका मतलब?
मैंने कहा, मेरा मतलब यह कि मैं तो फीस देने वाला नहीं हूं। तुम्हें मेरा हाथ देखते से समझ लेना था कि इस आदमी से फीस नहीं मिलने वाली! सच तो यह है, तुमने मेरा इतना समय खराब किया, इसकी फीस तुम मुझे दो। और तुम निपट बुद्धू हो, क्योंकि तुमको यह भी पता नहीं कि आज किसका हाथ देखने जा रहे हो; उससे फीस मिलने वाली नहीं!
लेकिन यह ज्योतिषी एथेंस के उस ज्योतिषी जैसा बुद्धिमान नहीं था। मैंने सुना, वे अभी भी वही धंधा कर रहे हैं! उस एथेंस के ज्योतिषी ने तो धंधा छोड़ दिया। बात तो साफ हो गई कि मेरी आंखें तारों पर अटकी हैं; मुझे एक कदम आगे का तो पता नहीं चलता; कुएं में गिर जाता हूं; क्या जानूंगा भविष्य! भविष्य वह है, जो जाना ही नहीं जाता। और अतीत वह है, जो जाना गया। तो तुम भविष्य के संबंध में जो दौड़-धूप करते हो, आपा-धापी करते हो, वह अतीत के ही आधार पर करते हो। अतीत से ही सीढ़ियां बनाते हो। और इन दोनों के बीच में वह निमिष-मात्र छोटा सा पल है, जो भागा जा रहा है, इतनी तेजी से कि अगर तुम अतीत और भविष्य में उलझे रहे, तो उससे चूकते ही जाओगे, चूकते ही जाओगे। और वही है सत्य।
"भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।"
और न अतीत की चिंता। जो बीत गया, बीत गया। अब उधेड़बुन क्या! अब उसको अन्यथा तो किया नहीं जा सकता। अब तुम लाख उपाय करो, तो भी रत्ती भर उसे

बदला नहीं जा सकता। जिसे बदला ही नहीं जा सकता, उसके संबंध में चिंता कैसी! क्यों समय खराब कर रहे हो उसके संबंध में? और जो आया नहीं है अभी, अभी कुछ किया नहीं जा सकता। और हम दोनों में ही उलझे हैं। इन दोनों का नाम संसार है।
संसार बाजार नहीं है, न दुकान है, न परिवार है। अतीत और भविष्य, इनका
जो विस्तार है...। अतीत अर्थात स्मृति; भविष्य अर्थात कल्पना। इन दोनों के बीच में तुम मरे जा रहे हो। यही तुम्हारा संसार है।
मैं भी अपने संन्यासी को कहता हूं कि संसार छोड़ो। लेकिन उस संसार को छोड़ने को नहीं कहता, जिसको पुराने संन्यासी छोड़ कर भागते रहे हैं। वे तो भगोड़े हैं। वे तो पलायनवादी हैं। वे तो कायर हैं। उन्होंने तो पीठ दिखा दी। उन्होंने तो जीवन का अवसर खो दिया। मैं कहता हूं, इस संसार को छोड़ो। मन संसार है। अतीत-भविष्य संसार है। इसको छोड़ दो; और वर्तमान में जीओ--अभी! यहीं!
थोड़ा सोचो इस सौंदर्य को, इस अपूर्व प्रसाद को--यहीं और अभी होने के!
सब जैसे ठहर जाए। अतीत नहीं, भविष्य नहीं। तो वह जो ठहराव है, वह जो थिरता है, वही ध्यान है, वही संन्यास है। उस थिरता में निर्मलता है, निर्दोषता है। उस थिरता में अहोभाव है, आश्चर्य है, रहस्य है। उस थिरता में परमात्मा का दर्शन है, मुक्ति है, निर्वाण है।
और योगवासिष्ठ का यह सूत्र इसलिए और भी महत्वपूर्ण है, इससे तुम्हें जाहिर होगा कि यह मेरे संन्यास की परिभाषा ही हो सकता है, पुराने संन्यास की परिभाषा नहीं। क्योंकि पुराना संन्यासी तो न केवल भविष्य की सोच रहा है, साधारण संसारी से तुम्हारा संन्यासी तो और भी बड़े भविष्य की सोच रहा है--मृत्यु के बाद क्या होगा? स्वर्ग में क्या होगा? कितने स्वर्ग हैं? मोक्ष मिलेगा कि नहीं मिलेगा? किन पुण्यों के करने से स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा? परमात्मा की उपलब्धि कब होगी?
धन की दौड़ तो यहीं है; उसकी तो सीमा है मौत। मगर यह जो मोक्ष की और परमात्मा की और ब्रह्म-अनुभव की खोज में दौड़ रहा है, इसकी तो कोई सीमा ही नहीं। इसका भविष्य तो बड़ा असीम है! यह तो और भी बड़ा संसारी है, मेरे हिसाब से, क्योंकि इसका तो मन और भी बड़ा है। और तुम्हें तो इसी जन्म की फिक्र है। मगर यह तुम्हारा जो संन्यासी है, इसको पिछले-पिछले जन्मों की भी फिक्र पड़ी है। कि पिछले जन्मों में जो पाप किए थे, कर्म किए थे, उनका भी निपटारा करना है, उनका भी हिसाब करना है।
तुम्हारा भविष्य भी सीमित है और अतीत भी। अतीत तुम्हारा जन्म से अब तक; और भविष्य तुम्हारा अब से मृत्यु तक। कोई बहुत ज्यादा नहीं! सत्तर साल जीओगे, तो समझ लो कि आधा भविष्य, आधा अतीत--अगर पैंतीस साल की उम्र है अभी, अगर अभी बीच में खड़े हो तो। मगर तुम्हारा जो संन्यासी है, जिसको तुम धार्मिक कहते हो, उसकी मुसीबत तो सोचो! वह तो कह रहा है, चैरासी करोड़ योनियों में होकर आया हूं! चैरासी करोड़ योनियों में उन्होंने क्या-क्या काम नहीं किए होंगे! उन सब का हिसाब, उन सब का निपटारा करना है। एक-एक रत्ती-रत्ती कृत्य का चुकतारा करना होगा। इसका अतीत तो बहुत बड़ा है! यह तो कभी सुलझ पाएगा, इसकी संभावना न समझो। इतने उलझाव को कैसे सुलझाएगा? और उलझाव आदमी का ही नहीं है; सब तरह के जानवरों का है। यह मछली भी रहा; यह केंचुआ भी रहा। अब इसने क्या-क्या उपद्रव न किए होंगे!
मैंने सुना, एक केंचुए ने एक दूसरे केंचुए को देख कर कहा, अहा! पहली नजर का प्रेम इसको कहते हैं! मुझे तो तुझसे प्रेम हो गया!
उस दूसरे केंचुए ने कहा, अरे मूरख, मैं तेरा ही दूसरा हिस्सा हूं! नाहक
की बकवास न कर! क्योंकि केंचुए के दो मुंह होते हैं, वह उन्हीं का दूसरा हिस्सा था। उसने कहा, मूरख, व्यर्थ की बकवास न कर!
केंचुए भी रहे होओगे। न मालूम कैसी-कैसी नजरों के प्रेम हुए होंगे। कभी-कभी खुद से भी प्रेम हुआ होगा। खुद ही से प्रेम के वार्तालाप हो गए होंगे। जंगली जानवर भी रहे होओगे। क्या-क्या नहीं रहे होओगे! चैरासी करोड़ योनियों में सब तो आ गया होगा। पत्थर से लेकर आदमी तक की लंबी यात्रा, इस सब का हिसाब-किताब करना है!

इसलिए तो तुम्हारा साधु इतना उदास हो जाता है; इतना चिंतित हो जाता है; इतना व्यथित हो जाता है। न दिन चैन, न रात चैन। कहां विश्राम उसे! और मैं बात कर रहा हूं अनहद में बिसराम की। उसको कहां विश्राम? उसको तो उधेड़बुन ही उधेड़बुन है। और फिर उसका भविष्य यहीं खत्म नहीं होता; मौत पर कोई समाप्ति नहीं होती। फिर आगे चलते ही जाना है।
इन दोनों अनंत यात्राओं के बीच में उसका निमिष पल-मात्र का जो वर्तमान है, वह तो यूं दब कर पिस जाएगा कि जैसे दो चट्टानों के बीच में किसी ने जुही के फूल को दबा दिया हो! पता भी न चलेगा। कभी खबर भी न मिलेगी। नहीं। यह सूत्र मेरे संन्यास की ही बात कर रहा है। छोड़ो अतीत को; छोड़ो भविष्य को। और दूसरी बात भी मेरे संन्यासी पर ही लागू हो सकती हैः "वर्तमान निमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते।"
हंसो, आनंदित होओ। प्रफुल्लित होओ। मग्नचित्त होकर जीओ।
यह तो पुराने संन्यासी पर लागू नहीं हो सकता। हंसते हुए वर्तमान में जीना! पुराना संन्यासी तो कहेगा कि यह योगवासिष्ठ भी भ्रष्ट है। मैं तो भ्रष्ट हूं ही।
योगवासिष्ठ को लोग पढ़ते रहते हैं, लेकिन इसके अर्थ को नहीं समझते। न मालूम कितने शास्त्रों को पढ़ते रहते हैं, जिनके अर्थ नहीं समझते। अगर उनको अर्थ समझ में आ जाएं, तो बहुत चैंकें, बहुत हैरानी उन्हें हो। क्योंकि उनकी जीवन-धारणाओं में और उन शास्त्रों के मौलिक अर्थों में भेद होगा। होना ही चाहिए। क्योंकि शास्त्र तो उनसे जन्मे हैं, जिन्होंने जाना।
अब जिसने जाना है, उसने यह बात कही होगी। अज्ञानी तो नहीं कह सकता। वर्तमान के क्षण में मस्त होकर जो जी रहा है, अलमस्त, प्रमुदित, प्रफुल्लित; जिसका रोआं-रोआं नृत्य में लीन है, और जिसके कण-कण में गीत उठ रहा है, वैसा व्यक्ति ही संन्यासी है।
लेकिन तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों को तुम देखो। उनकी शक्लों पर बारह बज रहे हैं! हमेशा मातमी! हंसना तो जैसे सदियों से भूल गए हैं। और हंसें भी तो कैसे हंसें? चैरासी करोड़ योनियों का बोझ! कितना हिसाब-किताब निपटाना है! कर्मों के कितने जाल इकट्ठे हो गए हैं, और रोज होते जा रहे हैं। और रोज भूल पर भूल होती जा रही हैं। और अभी आगे भी बहुत यात्रा पड़ी है। धूल यूं ही बहुत जम गई है और अभी यात्रा बहुत शेष है, और धूल जमेगी। उनका संकट तो देखो! उनके प्राण कैसी विडंबना में पड़े न होंगे! कहां हंसें? कैसे हंसें? हंस तो वही सकता है, जिसका कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं; वर्तमान ही जिसके लिए सब कुछ है। उसके लिए क्या चिंता? क्या बोझ? क्या पीड़ा? क्या मातम? उसके लिए जीवन उत्सव है।
निश्चित ही, सहजानंद, योगवासिष्ठ का यह श्लोक, मैं जो कहता हूं, उसकी तरफ ही इशारा है; और बहुत स्पष्ट इशारा है। जिसने भी कहा होगा, वह जानने वाला रहा होगा, वह बुद्धपुरुष रहा होगा।
शास्त्रों के संबंध में एक बात ख्याल रखना, क्योंकि पुराने शास्त्र
एक व्यक्ति के द्वारा लिखे हुए नहीं हैं, अनेक व्यक्तियों के द्वारा लिखे हुए हैं। उनमें चीजें जुड़ती चली गईं। वे सब संहिताएं हैं। नए-नए लोग होते गए, नई-नई बातें जोड़ते चले गए। तो उनमें कभी-कभी अज्ञानियों ने भी जोड़ दिया है बहुत कुछ। ज्ञानियों के साथ-साथ अज्ञानियों के शब्द भी उनमें मिल गए हैं।
इसलिए तुम्हें मेरी बातों में कई बार विरोधाभास मिलेगा। योगवासिष्ठ
के इस सूत्र का मैं समर्थन करूंगा और किसी दूसरे सूत्र का विरोध करूंगा। और तब तुम्हें अड़चन होती है, क्योंकि तुम्हें हैरानी यह होती है कि जब योगवासिष्ठ का एक सूत्र मैंने ठीक कहा, तो सब सूत्र ठीक होने चाहिए!
सब सूत्र ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि सब सूत्र एक ही ऊर्जा से पैदा नहीं हुए हैं।
वेद के एक सूत्र का मैं समर्थन कर दूंगा और दूसरे सूत्र का विरोध करूंगा। और उतने ही बलपूर्वक विरोध करूंगा, जितने बलपूर्वक मैंने पहले का समर्थन किया था। और तुम विरोधाभास देखते हो, तो तुम्हारी भूल है। कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। संहिताएं हैं ये।

बुद्ध के नाम से इतने शास्त्र हैं कि असंभव है कि एक व्यक्ति ने उतने शास्त्र लिखे हों या कहे हों। व्यास के नाम से इतने शास्त्र हैं कि असंभव है यह कि एक व्यक्ति ने इतने शास्त्र लिखे हों या कहे हों। व्यास का नाम स्वीकृत नाम हो गया; साख हो गई नाम की। तो जिसको भी अपनी किताब चलानी हो, वह व्यास का नाम उस पर लिख देता था!
छपती तो थीं नहीं किताबें; लिखी जाती थीं हाथ से। कोई कापीराइट तो थे नहीं उन दिनों, कोई सरकारी नियंत्रण था नहीं। तुम भी किताब लिख कर अगर उसको लिख दो व्यास-रचित, तो कोई कुछ कर नहीं सकता था। तुमने चला दी व्यास की एक और किताब! लेकिन व्यास के नाम की साख थी; साख का फायदा उठा लेना अच्छा था। तुम अपने नाम से लिखोगे, कौन पढ़ेगा? कौन सुनेगा? कौन मानेगा?
लेकिन व्यास की है, तो फिर तो माननी ही होगी; गलत भी हो, तो भी माननी होगी।
कितनी रामायणें हैं! वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक कितने लोगों ने रामायणें लिखीं! इनमें बहुत भेद हैं। एक-दूसरे से बहुत ज्यादा अलग-अलग बातें हैं। मगर राम की कथा है; राम की कथा की साख है; तो कोई भी लिख दे राम की कथा, चल पड़ेगी! लोग उसे सिर पर रख लेंगे। लोगों को फिक्र ही नहीं कि उसके भीतर क्या है!
इसलिए मैं जब किसी सूत्र का समर्थन करूं, तो ख्याल रखना, उस सूत्र का समर्थन कर रहा हूं, कोई योगवासिष्ठ के पूरे जीवन-दर्शन का समर्थन नहीं कर रहा हूं। बहुत से सूत्र हैं जिनसे मेरा इतना ही विरोध है, जितना मेरा समर्थन इस सूत्र के लिए है। क्योंकि मेरे पास अपनी कसौटी है। मुझे किसी शास्त्र से न कुछ लेना है, न देना है। मेरी कसौटी पर जो ठीक उतरेगा, वह ठीक। जो ठीक नहीं उतरेगा, वह नहीं ठीक। सोने को सोना कहूंगा; मिट्टी को मिट्टी कहूंगा। फिर वह चाहे योगवासिष्ठ में ही रखी हुई मिट्टी क्यों न हो! और सोना अगर कचरे में भी पड़ा हो, तो भी उसे सोना कहूंगा।
इसलिए तुम्हें मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास दिखाई पड़ें, तो जल्दी मत कर लेना, सोचना, कारण होगा कुछ।
जैसे इस सूत्र में तो मैं कोई शर्त न लगाऊंगा, बेशर्त स्वीकार करूंगा। यह तो मेरी ही बात है; यही तो मैं रोज कह रहा हूं तुमसे, कि क्षण में जीना सीखो, पल में जीना सीखो। अगर चाहते हो कि तुम्हारे जीवन में आनंद के फूल खिलें, सुवास उड़े महोत्सव की, और परमात्मा तुम्हें घेर कर तुम्हारे साथ मदमस्त हो उठे, तो इतना ही करना जरूरी है। यही ध्यान की पूरी प्रक्रिया है। अतीत से अपने को छुड़ा लो। और अतीत ने तुमको नहीं पकड़ा है; तुमने ही अतीत को पकड़ा है। इसलिए जब चाहो तब छोड़ दे सकते हो। और वर्तमान मौजूद है, कहीं खोजने जाना नहीं है। और भविष्य है ही नहीं; छोड़ने में क्या अड़चन है!
लेकिन बड़े अजीब लोग हैं। जो नहीं है, उसको भी छोड़ने में मुश्किल होती है! मुट्ठी खाली है, मगर उसको खोलने में डर लगता है कि कहीं खाली दिखाई न पड़ जाए! बांधे रहो, तो कम से कम भरोसा तो बना रहता है कि कुछ होगा, तभी तो बांधे हुए हैं! लोग अपनी मुट्ठी भी खोलने में डरते हैं कि कहीं खाली दिखाई न पड़ जाए! मगर तुम्हारी मुट्ठी है, तुम्हें पता ही है कि खाली है; खोलो या न खोलो।
भविष्य है नहीं; छोड़ने का सवाल नहीं। अतीत जा चुका है; छोड़ने का सवाल नहीं, छूट ही चुका है। जो है, उसे तुम छोड़ना भी चाहो तो छोड़ नहीं सकते हो। मगर कैसा उपद्रव है कि नहीं के साथ उलझे हो और है से चूक रहे हो। और जो है, वह परमात्मा का ही दूसरा नाम है।

मेरा स्वर्णिम भारत-14

ध्यान विधि है
(Note: from Jyun Machhli Bin Neer (ज्यूं मछली बिन नीर) #10)

पहला प्रश्न: भगवान,
क्या आप इस सूत्र पर कुछ कहना पसंद करेंगे?--
नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोह समो रिपु:।
नास्ति क्रोध समो वहिनास्ति ज्ञानात् परं सुखम्।।
काम के समान कोई व्याधि नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध
के तुल्य कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान के उत्कृष्ट कोई सुख नहीं है।

चैतन्य कीर्ति
यह उन थोड़े से सूत्रों में से एक है जिनकी सदा ही गलत व्याख्या होती रही है। अमृत भी जहर हो जाता है गलत हाथों में। सही हाथों में जहर भी औषधि हो जाता है। सवाल गलत और सही का कम, सवाल उन हाथों का होता है जिनमें सूत्र पड़ जाते हैं। सही हाथों में तलवार जीवन का रक्षण है और गलत हाथों में निश्चित ही हिंसा बनेगी।
सूत्र तो संकेत है। उन में विस्तार नहीं है, इसलिए उन्हीं सूत्र कहते हैं। निचोड़ हैं। बहुत थोड़े में कहा है। और जब कोई चीज बहुत-थोड़े में कही जाती है तो एक खतरा है। समझने के लिए काफी अवकाश होता है। और तुम समझोगे अपनी समझ से।
इस सूत्र पर अज्ञानियों ने जो व्याख्या की है उससे भयंकर अहित हुआ है। तो पहले तो उनकी व्याख्या ख्याल में ले लें, ताकि इसकी सम्यक व्याख्या की तरफ तुम्हारी आंखें उठ सकें। जिन्होंने स्वयं नहीं जाना है, जिनका ज्ञान उधार है, बासा है, जिनके भीतर स्वयं के ध्यान का दीया नहीं जला है-- उनसे इससे ज्यादा अपेक्षा भी नहीं हो सकती। वे भूल करने को आबद्ध हैं। उन्होंने इस सूत्र की यूं व्याख्या की है: "नास्ति कामसमो व्याधि"...। काम का अर्थ उनके लिए रह गया: यौन। क्योंकि उनके जीवन में यौन से ज्यादा और कोई सूझ-बूझ नहीं है।
"काम" बहुत बड़ा शब्द है। व्यापक उसके अर्थ हैं। उसे यौन पर ही आबद्ध
कर देना भ्रांत है। फिर उसके दुष्परिणाम होंगे। दुष्परिणाम यह होंगे कि जब काम सिर्फ यौन बन जाए, आकाश को जैसे कोई आंगन बना दे। और काम है व्याधि, तो उपाय हो जाता है दमन, दबाओ, मिटाओ, नष्ट करो। दुश्मन को तो मिटाना ही होगा। व्याधि को तो जड़मूल से उखाड़ फेंकना होगा। और इसका परिणाम यह हुआ कि करीब-करीब सारी मनुष्यता उसी व्याधि में और भी गहरी डूब गयी। दमन से कोई मुक्ति तो होती नहीं। दमन मुक्ति का उपाय नहीं है। रूपांतरण से मुक्ति होती है। जैसे कोई बीमारी को दबा ले, तो बीमारी और भीतर चली जाएगी, और अचेतन में उतर जाएगी। पहले परिधि पर थी, अब केंद्र पर पहुंच जाएगी। पहले देह में थी, अब मन में पहुंच जाएगी। मन से आत्मा तक उसकी मवाद उतर जाएगी। इसलिए तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों का जीवन मवाद से भरा हुआ जीवन है।
वे घाव हैं--सड़ते हुए घाव! हां, ऊपर से उन्होंने राम नाम की चदरिया ओढ़ रखी है, भीतर सिवाय बदबू के और कुछ भी नहीं है। पाखंड, गहन पाखंड! कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ। करेंगे कुछ, बताएंगे कुछ। उन्होंने मुखौटे पर मुखौटे लगा रखे हैं।
इस सूत्र की गलत व्याख्या बहुत बड़ा कारण है पाखंड का।
काम का अर्थ होता है: और और की मांग। काम का अर्थ सिर्फ यौन नहीं होता।
वह केवल एक शाखा है काम के बड़े वटवृक्ष की। धन भी काम है। और इसलिए तुम जरा गौर से देखना। कृपण आदमी धन को ऐस देखता है जैसे कामी स्त्री को देखता हो, सुंदर देह को देखता हो। धन का दीवाना नोटों को ऐसे छूता है, जैसे उसने अपनी प्रेयसी के तन को छुआ हो। पद भी काम है। पदाकांक्षी उतना ही कामग्रस्त है जितना कि कोई और कामी। और तब एक बात और तुम्हें समझ में आ जाएगी: जो पद के लिए दीवाना है वह चाहे तो कामवासना से, जिसको तुम साधारणतः कामवासना

समझते हो, यौन, उससे मुक्त हो सकता है, बड़ी आसानी से। क्योंकि उसकी सारी ऊर्जा पद की दौड़ में लग जाती है। जो धन के पीछे दौड़ रहा है वह भी अपनी सारी ऊर्जा को धन के लिए नियोजित कर सकता है। उसकी सारी ऊर्जा लोभ बन जाती है, लिप्सा बन जाती है। ऐसा व्यक्ति बड़ी आसानी से काम को दबा ले सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि उसने काम को एक नया ढंग दे दिया, एक नयी यात्रा पकड़ा दी, एक नया मुखौटा उढ़ा दिया।
राजनीतिज्ञ बहुत चिंतित नहीं होते यौन से। कोई जरूरत नहीं है। उल्टे राजनीतिज्ञ ब्रह्मचर्य की बातें करना शुरू कर सकते हैं। और तुम्हें उनकी बातें जंचेंगी भी, क्योंकि उनके जीवन में ब्रह्मचर्य से मिलती-जुलती चीज तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगी। जैसे मोरारजी देसाई। पद के पीछे दीवाने हैं, पागल हैं। पचासी वर्ष की उम्र में भी पागल हैं। सारी कामवासना ने एक दिशा ले ली है। अब इसमें और शाखाएं पैदा होने का उपाय ही न रहा। यह कोई ब्रह्मचर्य नहीं है।
सैनिकों को हम उनके सामान्य स्वाभाविक यौन से अवरुद्ध करवा देते हैं--सिर्फ इसीलिए, क्योंकि अगर सैनिक सामान्य यौन का जीवन जीए तो उसकी लड़ने में कोई उत्सुकता नहीं होती। उसकी ऊर्जा तो यौन में ही प्रवाहित हो जाती है। तो सैनिकों को हम उनकी पत्नियों से दूर रखते हैं। सैनिकों को हम सब तरह से रुकावट डालते हैं कि उनकी कामऊर्जा किसी तरह से प्रवाहित न हो, कोई और आयाम न ले, ताकि वे उबलने लगें। और उस उबलने में ही हम उनको लड़ा सकते हैं। तब वे दीवाने की तरह एक-दूसरे की हत्या करते हैं४ कामवासना हिंसा बन जाती है।
जो स्वर्ग के लिए लालायित हैं वे भी ब्रह्मचर्य साध सकते हैं--बड़ी आसानी से, क्योंकि उनकी सारी आकांक्षा एक ही दिशा में प्रवाहमान हो गयी है--स्वर्ग, मोक्ष। अब कहीं और दूसरी शाखाओं के निकलने के लिए उपाय न रहा। तुम अगर बगीचे से प्रेम करते हो तो तुम्हें एक बात पता होगी। अगर तुमने फूलों की प्रतियोगिता में भाग लिया है तो तुम्हें यह बात पता होगी कि माली को अगर फूलों की प्रतियोगिता में भाग लेना होता है तो गुलाब के पौधे पर वह बहुत सारे फूल नहीं खिलने देता। वह कलियों को काट देता है। एक ही फूल को खिलने देता है। स्वभावतः जब सारी कलियां तोड़ दी जाती हैं तो जितनी भी उस गुलाब की क्षमता है फूलों को पैदा करने की, वह एक ही फूल में प्रवाहित होती है। वह फूल बहुत बड़ा हो जाता है। प्रतियोगिता में यह माली जीत जाएगा। हालांकि गुलाब को इसने बड़ा दीन हीन कर दिया; जिस पर बहुत फूल खिलते उन सबकी ऊर्जा को इसने एक ही बहाव दे दिया। फूल तो बड़ा हो गया, मगर बहुत फूलों की जगह बस एक ही फूल रह गया। यही आदमी के साथ किया जाता रहा है। किसी भी तरह की वासना काम है। यह इसकी सम्यक व्याख्या होगी। काम का अर्थ है कामना। यौन भी एक कामना है, धन भी, पद भी, प्रतिष्ठा भी, स्वर्ग भी, मोक्ष भी, परमात्मा भी। तुम जब भी कुछ पाना चाहते हो तब यह सब काम है। यह इसकी सम्यक व्याख्या होगी। और यह तुम्हें समझ में आ जाए तो जीवन में क्रांति हो जाए। "नास्ति कामसमो व्याधि"। तब तुम इस सूत्र का सम्यक अर्थ खोल पाओगे। तब इसमें छिपा राज तुम्हारे हाथ लग जाएगा। जिसके जीवन में कामना है, वह व्याधिग्रस्त है। जो और कुछ की आकांक्षा कर रहा है, जो उससे तृप्त नहीं है जहां है और जैसा है, वैसा व्यक्ति रुग्ण है, व्याधिग्रस्त है।
स्वस्थ कौन है? स्वस्थ वह है जो अभी और यहीं है, जैसा है वैसा ही, आह्लादित है। अगर इस क्षण मौत आ जाए तो वह यह भी न कहेगा कि घड़ी भर ठहर जा; मेरा कोई काम अधूरा रह गया है।
उसका कोई काम कभी अधूरा नहीं है। वह जो कर रहा है इतनी समग्रता और परिपूर्णता से कर रहा है, इतने आह्लाद से, उत्सव से, उसके लिए साधन और साध्य का भेद नहीं है। स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके लिए साधन ही साध्य है;जिसके लिए साधन और साध्य में कोई भेद नहीं है; जिसके लिए कोई और साध्य नहीं है, बस साधन ही साध्य है; जिसके लिए मंजिल और मार्ग में कोई अंतर नहीं है। मंजिल मार्ग है। मार्ग का प्रत्येक कदम मंजिल है। वह हर कदम पर मंजिल पर है। रास्ता अभी टूटता हो, अभी टूट जाये। कल की उसे कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आज काफी है।

जीसस अपने शिष्यों के साथ एक खेत से गुजर रहें हैं। खेत के किनारे पर लिली के फूल खिलें हैं--सफेद फूल। जेरुसलम के आसपास लिली के फूल बहुत खिलते हैं। मौसम अनुकूल है। भूमि अनुकूल है लिली के फूलों के लिए। और इतने खिलते हैं कि उनकी कोई फिक्र भी नहीं करता। कीमत तो उसकी होती है, जो न्यून हो। जब चारों तरफ लिली के फूल खिलते हैं तो कौन फिक्र करता है! लिली के फूल गरीब फूल हैं। सर्वहारा। जब चाहो तब, जहां चाहो वहां उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन जीसस ठिठक गए और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा: "देखते हो लिली के फूलों को! देखते हो इन गरीब फूलों को! मैं तुमसे कहता हूं कि सम्राट सोलोमन भी ।"
यहूदियों में सम्राट सोलोमन सबसे बड़ा सम्राट है। उसकी यश गाथा का अंत नहीं है। उसके धन उसके साम्राज्य की कोई सीमा नहीं है। अकूत उसके पास धन था। और सुंदरतम वह व्यक्ति था। दुनिया की श्रेष्ठतम स्त्रियों ने उससे निवेदन किया था विवाह का। दूर-दूर से राजकुमारियां उसके चरणों में आ गिर पड़ती थीं। तो यहूदियों में सोलोमन की बड़ी कहानियां हैं। सुंदर था, धनी था और बड़ा बुद्धिमान भी-- जो कि बड़ी ही मुश्किल घटना है एक साथ सब होना--ऐसा धन ऐसा सौंदर्य, ऐसी प्रतिभा। जो यहूदी नहीं हैं वे भी, जिन्हें सोलोमन के संबंध में कुछ पता नहीं हैं वे भी इस कहावत से परिचित हैं। इस देश में भी यह कहावत है कि बड़े सुलेमान बने बैठे हो! सुलेमान सोलोमन का हिंदी रूप है, कि क्या समझा है तुमने अपने को, सुलेमान समझा है? शायद उसको पता भी नहीं जो आदमी यह कह रहा है कि वह क्या कह रहा है? सुलेमान यानि कौन? मगर सुलेमान बुद्धिमत्ता का, सौंदर्य का, समृद्धि का प्रतीक हो गया है। वह सोलोमन का ही रूप है...तो जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि सोलोमन भी अपनी सारी-सज्जा के साथ, अपने परम सौंदर्य में इतना सुंदर नहीं था--जितने ये लिली के दरिद्र फूल। और तुम जानते हो कि इनके सौंदर्य का राज क्या है? इनके सौंदर्य का राज है कि ये अभी और यहीं जीते हैं। इनको कल की कोई चिंता नहीं। इन्हें कल का कोई पता नहीं।
और जीसस ने कहा: यही मैं तुमसे कहता हूं। अभी जीयो और यहीं! तुम भी ऐसे
ही सुंदर हो जाओगे। तुम्हारे जीवन में भी ऐसी सुगंध होगी। तुम भी इन्हीं फूलों जैसे खिल जाओगे। तुम्हारा जीवन भी एक उत्सव बन जाएगा, एक नृत्य,एक गीत।"
काम का अर्थ है: और की दौड़। निष्काम का अर्थ है: अदौड़। ज्यूं का त्यूं ठहराया! जन रज्जब ऐसी विधि जाने ज्यूं का त्यूं ठहराया। रज्जब ठीक कह रहे हैं कि मुझे उस विधि का पता है, जिससे चीजें ठहर जाती हैं, जैसी हैं वैसी ठहर जाती हैं। दौड़ बंद हो जाती है। दौड़ है काम। दौड़ है व्याधि।
और तुम सब दौड़े हुए हो, भागे हुए हो। तुम जहां हो वहां कभी नहीं हो, हमेशा कहीं और। जितना है उतना पर्याप्त नहीं, कुछ और चाहिए, और चाहिए! और यह "चाहिए" का अंत नहीं आता, आ नहीं सकता। यह दौड़ ऐसी है जैसे कोई क्षितिज को छूने के लिए दौड़े। ऐसे तो दिखाई पड़ता है पास ही, कि यही कोई दस-पांच मील की दूरी आकाश जमीन को छू रहा है; दौडूंगा तो बहुत से बहुत घंटा दो घंटा पहुंच जाऊंगा। लेकिन तुम कितना ही दौड़ो, लाख दौड़ो, सारी जमीन का चक्कर लगा आओ तो भी तुम क्षितिज तक नहीं पहुंच पाओगे। क्षितिज और तुम्हारे बीच की दूरी हमेशा उतनी ही रहेगी जितनी जब तुमने दौड़ शुरू की थी तब थी। दौड़ अंत होगी तब भी दूरी उतनी ही रहेगी। क्षितिज और तुम्हारे बीच की दूरी मिटती ही नहीं, क्योंकि क्षितिज है ही नहीं, दूरी मिटे तो कैसे मिटे?
काम का अर्थ है: तुम्हारे सामने हमेशा एक भ्रामक क्षितिज है, जिसको पाने के लिए तुम दौड़ रहे हो। मगर तुम आगे बढ़ते हो, क्षितिज भी आगे बढ़ जाता है। तुम्हारे पास इतना है अभी, दुगना हो जाए, अगर यह तुम्हारा क्षितिज है कि दुगना हो जाए, तो जब दुगना होगा तब भी यही क्षितिज तुम्हारे भीतर रहेगा कि अब फिर दुगना हो जाए। वह भी संभव है हो जाए, मगर बात वही की वही रहेगी, परेशानी वही की वही रहेगी--फिर दुगना हो जाए। यह दुगना होता चला जाए, यह तुम्हारा गणित कभी छूटेगा नहीं। और जितने तुम सफल होते जाओगे उतना ही यह गणित तुम्हें जोर से पकड़ेगा, क्योंकि लगेगा दुगना हो सकता है; हो गया है,, तो और कर लो।

अगर हारे तो दुखी, अगर जीते तो दुखी। इस संसार की बड़ी अजीब कथा है, बड़ी अजीब व्यथा है। यहां हारने वाले तो हारते हैं, यहां जीतने वाले भी हार जाते हैं। यहां असफल तो असफल होते ही हैं; सफल जो हैं वे भी असफल हो जाते हैं। यहां हर हालत में दुख हाथ लगता है। हारे तो दुख हाथ, विषाद कि हार गया, टूट गया, खंडहर हो गया। जीतो तो विषाद। महल मिल जाता है तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि दुगने बड़े महल की योजना बन जाती है। तुम हमेशा ही दीन रहोगे।
व्याधि का अर्थ है: तुम हमेशा ही दीन और रुग्न रहोगे। तो इसका संबंध सिर्फ यौन से नहीं हो सकता। यौन इसका एक अंग मात्र है, एक पहलू। और इसके अनंत पहलू हैं। यौन का मतलब होगा: इस स्त्री से तृप्ति नहीं मिलती, उस स्त्री से मिलेगी। उससे भी नहीं मिलेगी तो और किसी से मिलेगी। दौड़े जाओ, दौड़े जाओ। भागे जाओ। तृप्ति कभी नहीं मिलेगी, न किसी स्त्री से मिलेगी, न किसी पुरुष से मिली है। ऐसे तृप्ति मिलती ही नहीं। यह तो अतृप्ति की आग है, जिसमें तुम ईंधन डाल रहे हो। फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि इस मकान में तृप्ति मिलेगी या उस मकान में तृप्ति मिलेगी, इतने धन से मिलेगी या उतने धन से मिलेगी, इस पद से मिलेगी या उस पद से मिलेगी। ये सब उसी वृक्ष की शाखाएं हैं।
काम को यौन ही मत समझो। नहीं तो लोग बस यौन से ही लड़ते रह जाते हैं। और जीवन, अगर यौन से तुम लड़े, तो उसका परिणाम यह होने वाला है कि यौन का द्वार तो बंद हो जाएगा। लड़ोगे तो द्वार बंद कर सकते हो, मगर यौन की ऊर्जा नये द्वार खोज लेगी। जैसे कोई झरने को पत्थर से अटका दे तो झरना पास से बह कर निकलेगा। वहां से रोक दे तो कहीं और से निकलेगा। लेकिन झरना है तो झरना बहेगा। खंड-खंड हो जाएगा, लेकिन कहीं न कहीं से बहेगा, रिसेगा।
काम व्याधि है, क्योंकि और की दौड़ कभी स्वस्थ नहीं होने देती, अपने में नहीं ठहरने देती, अपने में नहीं रुकने देती। और वहां है आनंद। रुकने में है आनंद, दौड़ने में है दुख। फिर तुम किसलिए दौड़ते हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। काम है मूर्च्छा, क्योंकि जो मूर्च्छित है वही दौड़ सकता है। जो होश में आ गया वह दौड़ने वालों पर हंसेगा क्योंकि जो मूर्च्छित है वही दौड़ सकता है। जो होश में आ गया वह दौड़ने वालों पर हंसेगा क्योंकि वे सब स्वर्णमृग की तलाश में चले हैं। और मजा यह है कि जाते हो स्वर्णमृग की तलाश में और अपनी सीता को गंवा बैठते हो। जो अपनी थी वह खो जाती है--उसको पाने के लिए जो कि जरा भी बुद्धि होती, जरा भी विचार होता, जरा भी होश होता, तो तुम पहले से ही समझ लेते कि स्वर्ण-मृग कहीं होते हैं!
सभी का जीवन बस रामायण की कथा है। राम चले स्वर्ण-मृग की तलाश में और सीता को गंवा बैठे। जो अपनी थी उसे खो बैठे और जो अपना कभी हो नहीं सकता, उसकी तलाश में निकल गए। यह मूर्च्छा का सबूत है। यह बेहोशी का सबूत है। काम का अर्थ है: मूर्च्छा। और जब तक मूर्च्छित है, मनुष्य नहीं है। तब
तक पशु है। और पशु को तो माफ किया जा सकता है, क्योंकि उसकी बेचारे की क्षमता नहीं है जागरण की। लेकिन मनुष्य को कभी माफ नहीं किया जा सकता; उसकी क्षमता है जागरण की। और क्षमता हो और उपयोग न करो तो तुम्हारे अतिरिक्त और कौन जिम्मेवार होगा? इसलिए कोई पशु पापी नहीं होता। तुम किसी पशु को पानी नहीं कह सकते। मनुष्य ही को पापी कह सकते हो।
और पाप क्या है? तुम्हें जो अवसर मिला है उसका उपयोग न करना पाप है। और पुण्य क्या है? तुम्हें जो अवसर मिला है उसका समुचित उपयोग कर लेना पुण्य है। जीवन की क्षमता है: मनुष्य के भीतर आ कर जागरण का दीया जल सकता है। काम है मूर्च्छा। इस मूर्च्छा को तोड़ना है। यह मूर्च्छा ध्यान के बिना नहीं टूटती। ध्यान विधि है मूर्च्छा को तोड़ने की। काम है पशुत्व, वासना, और-और की दौड़। और ध्यान है ठहरना, रुकना, और से मुक्त हो जाना। जैसे हैं, जहां हैं, परितुष्ट। जो है उससे आनंदित, अनुगृहित। जो है वही बहुत है। जो है उसकी भी हमारी पात्रता नहीं है। जो मिला है उसके लिए भी धन्यवाद हमारे भीतर नहीं उठता।
और मजा यह है कि जो है, अगर तुम्हारे लिए अनुग्रह का कारण बन जाए तो और-
और वर्षा होगी तुम्हारे ऊपर, अमृत और झरेगा। वह सिर्फ अनुगृहित लोगों पर ही झरता है। लेकिन तुम्हारे हृदय में तो शिकायतें हैं, शिकवे हैं, गिला

है। न मालूम कितने-कितने कांटे तुम अपने हाथ से बोए चले जाते हो! शिकायतों के कांटे। तुम्हारी प्रार्थनाएं भी तुम्हारी शिकायतें हैं। तुम परमात्मा से यही कहने जाते हो हमेशा कि ऐसा क्यों नहीं हुआ, ऐसा होना चाहिए था। तुम कभी यह भी कहने गए हो कि धन्यवाद तेरा, जैसा होना चाहिए था वैसा ही हो रहा है? जिस दिन तुम दुख के क्षण में भी कह सकोगे कि जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है, दुर्घटना में भी कह सकोगे कि जैसा हो रहा है वैसा ही होना चाहिए था, जिस दिन तुम्हारा अनुग्रह का भाव बेशर्त होगा--उस दिन तुम जानोगे प्रार्थना क्या है।
मगर यह बिना जागरण के तो नहीं हो सकता। जहां और-और की दौड़ लगी है वहां
तो शिकायत होगी ही। वहां यह भी शिकायत नहीं होती कि मुझे क्यों कम मिला है?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, "हम ईमानदार हैं, नैतिक हैं, सदाचरण से रहते हैं, और फिर भी बेईमान और बदमाश और लुच्चे और लफंगे धन कमा रहे हैं, पद पर पहुंच रहे हैं, प्रतिष्ठित हो रहे हैं और हमें कुछ भी नहीं मिल रहा है।" न तो ये नैतिक हैं, न ये ईमानदार हैं, न ये सदाचरण को उपलब्ध हैं। क्योंकि जो नैतिक है उसको तो नैतिक होने में ही ऐसा परम सौभाग्य मिल गया कि क्या वह कोई पद चाहेगा? और जो ईमानदार है, उसको तो ईमानदार होने में ही रस स्रोत उपलब्ध हो गए कि क्या अब धन के पीछे दौड़ेगा? और जो सच में ही धार्मिक है, क्या अधार्मिकों से उसकी प्रतिस्पर्धा हो सकती है? वह दया करेगा कि ये बेचारे धन में ही मरे जा रहे हैं, ये पद में ही सड़े जा रहे हैं। उसे दया आएगी, करुणा आएगी। मगर इन्हेंर् ईष्या आ रही है।र् ईष्या सिर्फ एक बात की सूचना है कि ये भी उसी तरह के लोग हैं। शायद बेईमानी करने की हिम्मत नहीं है, इसलिए ईमानदार हैं। मगर बेईमान को जो मिल रहा है वही ये भी चाहते हैं। ये दोहरे बेईमान हैं। ये ईमानदारी से भी जो लाभ मिलना चाहिए परलोक में, वह भी लेना चाहते हैं और बेईमानी से जो लाभ यहां मिलता है, वह भी ईमानदारी से ले लेना चाहते हैं। ये दोनों दुनिया संभाल लेना चाहते हैं। ये दोनों लोक संभाल लेना चाहते हैं--यहां भी जीत गए, वहां भी जीत जाएं। ये बहुत चालबाज लोग हैं। न इन्हें नीति का पता है, न इन्हें धर्म का पता है। जाग्रत हुए बिना पता चल भी नहीं सकता।
"नास्ति कामसमो व्याधि"--मैं स्वीकार करता हूं, यह सूत्र बहुमूल्य है। मगर इसका अर्थ मेरे ढंग से समझना होगा। निश्चित ही और की दौड़ से बड़ी इस दुनिया में कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि सब बीमारियों का दूसरे इलाज कर सकते हैं, इस बीमारी का इलाज सिर्फ तुम्हीं कर सकते हो, कोई दूसरा नहीं कर सकता। यहां बीमार और वैद्य एक ही व्यक्ति को होना है। यहां बीमार को ही अपनी चिकित्सा करनी है, इसमें कोई सहयोगी नहीं हो सकता। इसलिए यह बड़ी से बड़ी व्याधि है, महाव्याधि।
"नास्ति मोह समोरिपुः। और मोह के समान कोई शत्रु नहीं। मोह को भी समझने की कोशिश करना। उसको भी गलत समझा गया है। मोह से लोग मतलब लेते हैं-- पत्नी, बच्चे, घर द्वार, इनको छोड़ कर भाग जाओ। इनको छोड़ दिया तो मोह से मुक्त हो गए। यह बड़ी जड़बुद्धि की व्याख्या हुई। क्योंकि जिसने घर छोड़ा, पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए--यह कोई कठिन नहीं है। यह मामला बहुत कठिन नहीं है। सच तो यह है कि पति पत्नियों से परेशान हैं, पत्नियां पतियों से परेशान हैं। इससे ज्यादा आसान और क्या होगा कि वे भाग खड़े हों? आश्चर्य तो यह है कि अनंत-अनंत लोग भागते क्यों नहीं? इनको कभी का शंकराचार्य के शिष्य हो जाना चाहिए कि जगत माया है और जंगलों में बैठ जाना चाहिए। पता नहीं क्यों रुके हैं, किस कारण रुके हैं!
चंदूलाल का बेटा पूछ रहा था चंदूलाल से, "पापा, आपने मम्मी से शादी क्यों की?"
चंदूलाल ने गौर से अपने बेटे को देखा और कहा, "तो तुझे भी आश्चर्य होने लगा?"
चंदूलाल की पत्नी चंदूलाल से कह रही थी, "मान लो हमारे घर में कोई चोर घुस आए तो आप क्या करेंगे?"
चंदूलाल ने कहा, "जो आप कहेंगी।"
पत्नी ने कहा, "मैं क्यों?"

चंदूलाल ने कहा, "क्योंकि अब तक इस घर में मुझे अपनी इच्छा से कुछ करना नसीब नहीं हुआ। तो जब चोर आएंगे, आपसे पूछ लूंगा। जो आप कहेंगी वही करूंगा।"
कौन पति नहीं भागना चाहेगा! ये तो बड़े हिम्मतवर बहादुर लोग हैं कि जमे हुए हैं। ये तो कहते हैं: सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें! कोई फिक्र नहीं, तमाशा देखेंगे।
"मैं कहां हूं?" चंदूलाल ने अस्पताल में एक नर्स को देख कर पूछा। लगता
है मैं स्वर्ग में आ गया हूं।" नर्स बड़ी सुंदर थी और चंदूलाल अभी-अभी क्लोरोफार्म से बाहर आ रहे थे। सो कुछ थोड़ा-थोड़ा होश था, कुछ थोड़ी-थोड़ी बेहोशी थी, कुछ सपना-सपना सा था। उस तैरती सी सपने की अवस्था में यह सुंदरी एकदम प्रगट हुई, सोचा उर्वशी है कि मेनका है! पूछने लगे, "मैं कहां हूं? लगता है मैं स्वर्ग में आ गया हूं।"
पास खड़ी उनकी पत्नी बोली, "नहीं पप्पू के पापा, अभी तो मैं तुम्हारे साथ हूं। कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो?"
कहां का स्वर्ग, जब पत्नी मौजूद है? तत्क्षण होश आ गया चंदूलाल को। सब क्लोरोफार्म नदारद हो गया, जैसे ही पत्नी की आवाज सुनी। पत्नी की आवाज अगर लोग स्वर्ग में भी सुन लेंगे, एकदम संसार में आ जाएंगे। सब चौकड़ी भूल जाएंगे।
चंदूलाल हाल में भोगी हुई मुसीबतों की कथाा अपने मित्र को बड़े विस्तार से सुना रहे थे। मित्र ने कहा, "अरे यह तो कुछ भी नहीं है। कल मुझ पर जो गुजरी वह सुनो। कल रात मुझे सपना आया कि मुझे ले कर मेरी बीबी और हेमामालिनी में हाथापाई हो गयी और मेरी बीबी जीत गयी।"
पत्नियों से कौन भागना न चाहेगा और पतियों से कौन बचना न चाहेगा! लाख ऊपर-ऊपर लोग कुछ कहते हों, भीतर तो बात कुछ और ही है। इसलिए यह बात लोगों को जमी, यह अर्थ समझ में आ गया लोगों को कि पत्नी छोड़ दो, बच्चे छोड़ दो--यही मोह है।
मोह का इतना छोटा अर्थ मत करो। घर में है भी क्या तुम्हारे, जो तुम छोड़
कर जा रहे हो? दुख ही दुख है, पीड़ा ही पीड़ा है। सुबह से सांझ तक कोल्हू के बैल की तरह जुते हुए हो। और कोई धन्यवाद देने को भी राजी नहीं है। बच्चे भी धन्यवाद देने को राजी नहीं हैं, पत्नी भी राजी नहीं है, पति भी राजी नहीं है, पिता भी राजी नहीं है, मां भी राजी नहीं है, कोई राजी नहीं है किसी से। इससे भाग जाना तो सीधा गणित है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
तुम्हारा जो पुराना संन्यास था, दो कौड़ी का था। वह इसी उपद्रव पर निर्भर था। मोह कुछ और बड़ी बात है। उसे समझने की कोशिश करो। मोह का अर्थ है: मेरे का भाव। मोह से मुक्ति का अर्थ होगा: मेरे से मुक्ति। तुमने घर छोड़ दिया; "मेरा" यह भाव छूटा? यह नहीं छूटता। फिर मेरा मंदिर, मेरी मसजिद, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र! एक व्यक्ति घर छोड़ कर मुनि हो जाता है, समाज छोड़ देता है; लेकिन जिस समाज को छोड़ आया है उसी समाज का सिखाया हुआ धर्म नहीं छोड़ता। यह कैसा छोड़ना हुआ? अभी भी कहता है--मैं जैन हूं, मैं हिंदु हूं, मैं मुसलमान हूं। उसी समाज ने तो यह सब बकवास सिखायी है--उन्हीं मां बाप ने, जिनको तुम छोड़ आए हो; उनको तो छोड़ आए लेकिन उन्होंने जो कचरा तुम्हारे दिमाग में भर दिया था वह तो साथ ही ले आए। मेरा देश, मेरी जाति, मेरा कुल! यह अकड़ जाती नहीं। यह अहंकार हटता ही नहीं, और जोर से पकड़ लेता है। क्योंकि वहां तो बंटा हुआ था--मेरी पत्नी थी, मेरा बेटा था, बेटी थी, और रिश्तेदार थे, मां थी, बहन थी, सारा विस्तार था, धन था, मकान था, अब सब छूट गया तो इस मेरे को अब पकड़ने को जो बचा थोड़ा बहुत--मेरी गीता, मेरा कुरान, मेरा मंदिर, मेरा धर्म--अब यह मेरे ने इस कर शिकवा कसा। और यह ज्यादा गहरा शिकंजा है, क्योंकि धन तो दिखाई पड़ता है, छोड़ सकते हो। जो दिखाई पड़ता है उसे छोड़ने में कठिनाई नहीं है। अब यह "मेरे" जो है, बड़ा सूक्ष्म हो गया, अब इसे छोड़ना मुश्किल हो जाएगा। अब यह "मेरे" ने तो तुम्हें भीतर से पकड़ा। यह बड़ा नाजुक और बारीक हो गया। इसको देखने और पहचानने के लिए आंखें चाहिए।
जो मुनि अपने को जैन कहता है वह मुनि है ही नहीं। यह कैसा मौन? अभी पुरानी बकवास तो जारी है। जो संन्यासी अपने को अभी भी हिंदु कहता है, वह तो संन्यासी नहीं है। जब हिंदु जाति को ही छोड़ दिया...। अभी भी संन्यासी हो कर

जो शूद्र को शूद्र मानता है, ब्राह्मण को ब्राह्मण मानता है--वह खाक संन्यासी है। समाज को छोड़ आया है, लेकिन समाज की व्यवस्था तो इसकी खोपड़ी में समायी हुई है। यह शूद्र के साथ भोजन करने को तैयार है?
दिगंबर जैन मुनि यात्रा करते हैं तो वे सिर्फ जैन के घर से ही भोजन ले सकते हैं। क्या गजब का त्याग किया है! छोड़ दिया समाज, मगर भोजन अभी जैन घर से ही लेंगे। तो अब जैन सारे गांव में तो होते भी नहीं। और तीर्थयात्रा पर जात है मुनि तीर्थयात्रा पर जाने की जैन मुनि को क्या जरूरत है? मेरा तीर्थ है! तो पैदा होता है केरल में और जाता है शिखरजी। लंबी यात्रा केरल से कलकत्ता तक, अब इसमें बहुत-से ऐसे गांव पड़ेंगे जहां कोई जैन घर नहीं होता। तो एक उपद्रव चलता है, दिगंबर जैन मुनि के साथ एक उपद्रव चलता है। दस-पंद्रह चौके उसके साथ चलते हैं। तुम पूछोगे, दस पंद्रह क्यों? उसका भी राज है। एक चौका छोड़ा। एक चौका होता है एक घर में, अब दस पंद्रह पीछे चलते हैं। क्योंकि महावीर ने यह सूत्र दिया है कि तुम सुबह से एक प्रतिज्ञा लेना और वह प्रतिज्ञा जिस मकान के सामने पूरी हो, वहीं से भोजन ग्रहण करना। अब अगर एक ही चौका हो तो मुश्किल हो जाए, पता नहीं प्रतिज्ञा क्या ले जैन मुनि। हालांकि जब जैन मुनि प्रतिज्ञाएं ऐसी लेते हैं जो सबको मालूम हैं। जैसे जिस घर के सामने दो केले लटके हों, इस तरह की दस पंद्रह बंधी हुई प्रतिज्ञाएं हैं उनकी। सो पंद्रह चौके साथ चलते हैं, वे पंद्रह प्रतीक अपने अपने चौके के सामने लटका लेते हैं। उनमें से कोई न कोई एक प्रतीक तो होने ही वाला है।
महावीर तो कुछ और ढंग के प्रतीक लेते थे। एक प्रतीक दुबारा नहीं लेते थे।और जो प्रतीक लेते थे, वे भी बड़े बेबूझ थे। ऐसे कभी-कभी महावीर को छः महीने भोजन न मिला। और यह जैन मुनि को रोज भोजन मिलता है। महावीर ने एक बार सुबह से व्रत ले लिया--अपने ध्यान में वे व्रत लेते थे--कि आज जिस घर के सामने कोई राजकुमारी, पैरों में बेड़ियां पड़ी हों, एक पैर भीतर हो एक पैर बाहर हो दहलीज के, हाथों में हथकड़ियां पड़ी हों, हो राजकुमारी, भोजन का आग्रह करेगी, तो भोजन लूंगा। अब एक तो राजकुमारी, फिर उस पर ये शर्तें तुम देखो पैरों में बेड़ियां पड़ी हों, राजकुमारी है। तो किसलिए पैरों में बेड़ियां पड़ी हों? हाथों में जंजीरें पड़ी हों। और फिर यह शर्त कि एक पैर भीतर हो देहली के, एक पैर बाहर हो। और जिसकी यह दशा होगी, जो इस तरह से बंधी होगी, वह क्या भोजन की प्रार्थना करेगी? वह कहां से भोजन लाएगी? वह तो खुद ही भोजन के लिए औरों पर निर्भर होगी। वह भोजन की प्रार्थना करे तो मैं भोजन स्वीकार करूंगा! छः महीने तक यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकी। वह रोज गांव में जाते, घूम कर वापिस आ जाते।
इसमें बड़ा अद्भुत राज था महावीर की इस व्यवस्था में। महावीर कहते थे: अगर अस्तित्व को मुझे जिलाना है तो वह शर्त पूरी करेगा। अगर नहीं जिलाना है तो मुझे कुछ जीना नहीं है, मेरी कुछ जीने की इच्छा नहीं है, मेरा काम पूरा हो गया। अगर अस्तित्व को कुछ काम लेना हो मुझसे, तो जिलाओ। मगर उस जीने में मेरी कुछ आकांक्षा नहीं है, मेरी कोई जीवेषणा नहीं है। यह अदभुत सूत्र था कि मेरी कोई जीवेषणा नहीं है, मेरा काम तो पूरा हो चुका। मुझे तो जो पाना था पा लिया, जो होना था हो गया। अब मैं तो तैयार हूं जाने को। मैं तो इस देह से किसी भी क्षण मुक्त होने को तैयार हूं। अब अगर अस्तित्व की कोई इच्छा हो कि मेरे द्वारा कुछ काम हो ले तो, ठीक है। अब यह अस्तित्व की अगर आकांक्षा हो तो अस्तित्व ही इसकी जिम्मेवारी ले, मैं क्यों जिम्मेवारी लूं? जिलाना हो जिलाओ, मिटाना हो मिटाओ। मेरी तरफ से सब बराबर है। जीवन और मृत्यु समान हैं।
इसलिए सुबह से शर्त ले लेते। शर्त पूरी हो जाती तो ठीक, नहीं पूरी होती तो बात खत्म। शिकायत नहीं थी। छः महीने तक शर्त पूरी नहीं हुई, शर्त ही ऐसी थी। छः महीने में भी पूरी हो गयी, यह आश्चर्य है। छः साल भी पूरी न होती, कभी पूरी न होती, यह भी हो सकता था। मगर रोज उसी प्रसन्नता से वापिस लौट आते, वही आनंद, वही अहोभाव। जो प्रकृति की इच्छा है, जो इस परम जगत का आग्रह है, वह पूरा होना चाहिए। जिलाना होगा जिलाएगा, मारना होगा मारेगा। अपने से सारी जीवेषणा छोड़ दी--यह मोह मुक्ति है। अब मैं बचूं, यह भी इच्छा नहीं है।

महावीर जैन नहीं थे, यह मैं दोहरा देना चाहता हूं। न कृष्ण हिंदू थे।
न मुहम्मद मुसलमान थे। न जीसस ईसाई थे। न बुद्ध बौद्ध थे। हो ही नहीं सकते। जहां मैं ही नहीं बचा वहां "मेरा" कैसे बचेगा? मैं की मृत्यु से ही मोह समाप्त होता है। अभी मेरा तो भीतर घना बैठा है, खूब घना बैठा है और तुम मुक्त होना चाहो मोह से, तो थोथा होगा, पाखंड होगा। हां, धन छोड़ कर भाग सकते हो। मगर जो मैं धन को पकड़े था वही मैं त्याग को पकड़ लेगा। कल तक कहते थे मेरे पास लाखों हैं; अब कहोगे उसी अकड़ से, शायद ज्यादा अकड़ से कि मैंने लाखों को लात मार दी। मगर वही मैं, जो लाखों को पकड़ कर अकड़ कर चलता था, अब लातें मार दीं लाखों को, अब और भी अकड़ कर चलता है। पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, अब इसकी तुम डुंडी पीटोगे कि मैंने क्या-क्या त्याग कर दिया।
जैन मुनि हिसाब रखते हैं, डायरी रखते हैं कि इस साल में उन्होंने कितने उपवास किए। पूरे अपने मुनि-जीवन में उन्होंने कितने उपवास किए, इसकी डायरी रखते हैं। कहीं मिल जाए ईश्वर तो खोल कर रख देंगे डायरी कि देख ले, यह रहा खाता वही! खाते बही करते रहे दुकान पर बैठे-बैठे, अभी भी खाता बही गया नहीं। अभी भी खाता बही है। हर साल घोषणा-पत्र निकलता है कि किस मुनि ने कितने व्रत किए, कितने उपवास किए। जिसने ज्यादा किए वह महात्यागी। जो उतने नहीं कर पाया बेचारा दीन-हीन रह जाता है, मन मसोस कर रह जाता है कि मेरी क्या हैसियत मैं कुछ भी नहीं! अगले साल देखूंगा। अगले साल सब लगा दूंगा दांव पर। आगे निकलना है। वहां भी प्रतिस्पर्धा चल रही है। तो महावीर चूंकि कई घरों के सामने खड़े होते थे, अगर शर्त पूरी होती तो ठीक, शर्त पूरी नहीं होती तो आगे बढ़ जाते। अब यह जैन मुनि क्या करे? यह भी अनुकरण कर रहा है। यह केवल नकलची है। इसकी बंधी हुई धारणाएं हैं, जो वे पंद्रह चौके वालों को पता हैं। बस इसके पंद्रह बंधे हुए मामले हैं कि जो श्राविका द्वार पर हाथ में गुलाब का फूल लेकर भोजन का निमंत्रण दे, उसका स्वीकार कर लेंगे। जिस दरवाजे पर केले लटकें हों, आप के पत्ते लटके हों...। और आम के पत्ते, केले, ये सब बंधी हुई बातें हैं अब। यह हर मुनि वहीं कर रहा है। और वे पंद्रह चौके वाले जानते हैं कि अपना मुनि कौन-से नियम लेता है। क्योंकि रोज भोजन मिल जाता है और पंद्रह ही चौके से काम चल जाता है। तो एक चौका छूटा, यह भारी उपद्रव हो गया, अब पंद्रह परिवार इसके पीछे चलते हैं।
जगह-जगह तंबू लगा कर बस्ती बसाते हैं, क्योंकि वहां जैन नहीं हैं, उस बस्ती में, तो उन्हें बस्ती बसानी पड़ती है तंबू लगा कर। क्या धोखा चल रहा है, क्या नाटक चल रहा है! और आ कर मुनि महाराज एक-एक द्वार पर खड़े होते हैं। उनका प्रतीक मिल जाता है।
मैं तो यह भी सोचता हूं, नहीं भी मिलता होगा तो किसी को पता नहीं, वे मिला ही लेते होंगे। क्योंकि बताना तो होता नहीं किसी को सुबह-सुबह, जब रोज ही मिल जाता है। महावीर से भी ज्यादा ये होशियार हैं। अस्तित्व इनको महावीर से भी ज्यादा कीमत दे रहा है, साफ है। क्योंकि महावीर को कभी छः महीने भोजन नहीं मिला, कभी तीन महीने भोजन नहीं मिला, कभी दो महीने भोजन नहीं मिला। बारह साल के तपश्चर्या-काल में उन्हें केवल एक साल भोजन मिला। मतलब हर बारहवें दिन पर एक दिन भोजन मिला। यह औसत अनुपात रहा उनका। और इनको तो रोज मिल जाता है। तो या तो ये कोई धोखा दे रहे हैं। महावीर से ज्यादा मूल्यवान तो ये नहीं हैं कि अस्तित्व इनको ज्यादा बचाने के लिए उत्सुक है। या तो ये व्रत बंधे हुए लेते हैं, जो पता है लोगों को। और या फिर न भी मिलते हों तो मिला लेते होंगे, क्योंकि सुबह बताना तो होता नहीं किसी को। यह तो बाद में पता चलता है। जब वे भोजन ले लेते हैं तब पता चलता है कि दो केले लटकाने का व्रत लिया था आज।
और इन सबको ख्याल है कि इन्होंने मोह छोड़ दिया है। इनको खयाल है इन्होंने जीवेषणा छोड़ दी है।
महावीर नग्न सोते थे। जैन मुनि भी नग्न सोता है--दिगंबर जैन मुनि। मगर सर्दी के दिनों में सोता तो नग्न है, शिष्यगण पुआल बिछा देते हैं। पुआल काफी गर्म होती है। और अच्छी काफी मोटी गद्दी पुआल की बना देते हैं। उस पर वह लेट जाता है। और ऊपर से फिर पुआल उस पर ढांक देते हैं मोटी दुलाई की तरह, सो वह पुआल के भीतर बिलकुल दब जाता है। पुआल काफी गर्म होती है।

मैंने एक जैन मुनि को पूछा कि मैंने कहीं किसी शास्त्र में कि महावीर पुआल बिछा कर सोते थे और ऊपर से पुआल डाली जाती थी। वे बोले, "मैं क्या करूं? मैं तो जमीन पर सोता हूं लोग पुआल बिछा दें तो मैं क्या करूं? और मैं सो जाता हूं, लोग मेरे ऊपर पुआल डाल देते हैं तो मैं क्या करूं? मैं तो किसी से कहता नहीं।"
मैंने उनसे कहा, "और शिष्य अगर कांटे बिछा दें, फिर आप कहेंगे कि नहीं? मैं बिछवा देता हूं आज।"
वे कहने लगे, "आप कैसी बातें करते हैं?"
मैंने कहा, "मैं कैसी बातें नहीं करता। आप कैसी बातें करवा रहे हैं! शिष्य कांटे बिछा दें, फिर लेटेंगे आप? और ले आएं एक बर्फ की चट्टान और रख दें छाती पर, फिर आप मना करेंगे? एक दम उचक कर खड़े हो जाएंगे।"
मैंने कहा, "ये शिष्य भी तुम्हारे मूढ़ हैं जो पुआल बिछाते हैं।"
मगर यह सब चलता है। छोड़ तो देते हैं, मगर समझ नहीं है, तो कहीं से लौट आएगा, किसी तरह से लौट आएगा।
तुमने देखे, हिंदु साधु नग्न बैठे रहते हैं, मगर भभूत लगा लेते हैं। तुम जानते हो भभूत क्यों लगा लेते हैं? तुम सोचते हो शायद कोई तपश्चर्या कर रहे हैं। यह तपश्चर्या नहीं है। शरीर का रंध्र-रंध्र श्वास लेता है तो ठंड के दिनों में तुम ऊनी वस्त्र भी पहनते हो; उससे भी ज्यादा गर्मी देने वाली चीज है कि सारे शरीर पर राख मल कर बैठ जाओ, क्योंकि सारे शरीर के रंध्रों में राख समा जाती है। और जब रोज रोज राख ही मलते रहते हैं तो रंध्र बंद हो जाते हैं। और जब रंध्र बंद हो जाते हैं तो उन से हवा अंदर जानी समाप्त हो गयी। मोटी से मोटी ऊन की चादर भी तुम, कीमती से कीमती पश्मीना भी ओढ़ कर बैठो, उसमें से भी थोड़ी हवा भीतर आती है। लेकिन अगर तुम राख पूरे शरीर पर लपेट कर बैठ जाओ तो उससे कोई हवा आने की संभावना नहीं रह जाती।
तुम सोचते होओगे ये कोई त्याग कर रहे हैं। ये त्याग नहीं कर रहे हैं। इन्होंने तरकीब निकाल ली है। तरकीबें निकलेंगी ही, क्योंकि मौलिक रूप से व्याधि दूर नहीं हो रही है, सिर्फ ऊपरी-ऊपरी व्याख्याओं से काम चल रहा है। मोह से मेरा अर्थ होता है: मैं का विस्तार। मैं-भाव का विस्तार। फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारे पास साम्राज्य है या नहीं। समझ हो तो साम्राज्य के भीतर भी कोई मैं से मुक्त हो कर जी सकता है और नासमझी हो तो नग्न खड़ा हो कर जंगल में वृक्ष के नीचे भी मैं भाव से भर सकता है।
मैं हिमालय की यात्रा पर था। मनाली में एक वृक्ष के नीचे, पता चला मुझे कि एक साधु कोई बीस वर्षों से बैठता है। वहीं रहता है। वही वृक्ष उसका आवास है। घना वृक्ष था, सुंदर वृक्ष था। अभी साधु भिक्षा मांगने गया था। तो मैं उस वृक्ष के नीचे बैठ रहा। जब वह लौट कर आया तो मैंने आंख बंद कर ली। उसने मुझे देखा और कहा कि उठिए यह वृक्ष मेरा है। यहां मैं बीस साल से बैठता हूं।
मैंने कहा, वृक्ष किसी का भी नहीं होता। और बीस साल से नहीं, तुम बीस हजार साल से बैठते होओ, इससे क्या फर्क पड़ता है? अभी तो मैं बैठा हूं। जब मैं हटूंगा तब तुम बैठ जाना। अब मैं हटने वाला नहीं हूं।
वे तो एकदम आगबबूला हो गए कि यह मेरी जगह है! हरेक को पता है। यहां और
भी बहुत साधु-संन्यासी आते हैं, सबको मालूम है कि यह वृक्ष मेरा है। मैंने उनको और भड़काया। तो उनको क्रोध बढ़ता चला गया। फिर मैंने उनसे कहा कि मैं सिर्फ यह जानने के लिए आपको भड़का रहा था, मुझे कुछ लेना-देना नहीं वृक्ष से, मुझे यहां रहना भी नहीं, मैं सिर्फ यह देख रहा था कि आप बीस साल पहले घर छोड़ दिए, पत्नी बच्चे छोड़ दिए, आपकी कथाएं मैंने सुनी हैं कि आप बड़े त्यागी हैं, मगर अब यह वृक्ष को पकड़ कर बैठे हैं! यह आपका हो गया! यह जमीन आपकी हो गयी! इस पर अब कोई दूसरा बैठ नहीं सकता। तो यह नया घर बसा लिया।
यह स्वाभाविक है। अगर समझ न हो तो तुम जो भूल करते थे, फिर-फिर करोगे। नये-नये ढंग से करोगे। नयी-नयी दिशाओं में करोगे। मगर भूल से बचोगे कैसे? निश्चित ही मोह के समान और कोई शत्रु नहीं है, क्योंकि अहंकार ही शत्रु है। और अहंकार का जो फैलाव है, जहां-जहां अहंकार जुड़ जाता है, वहां

वहां मोह है। जहां तुमने कहा मेरा, वहां मोह है। इसलिए मैं कहता हूं, मत कहना--मेरा धर्म; मत कहना--मेरा शास्त्र, मेरी कुरान, मेरी बाइबिल, मेरी गीता! मत कहना--मेरा देश, मेरी जाति, मेरा वर्ण, मेरा कुल! ये सब मोह ही हैं और बहुत सूक्ष्म मोह है।
काम है: और की आकांक्षा। वह भी अहंकार का विस्तार है। और मोह है: जो-जो काम के द्वारा मिल गया है, उसको अपना बनाए रखने की आकांक्षा। वह मेरा ही रहे। वह मेरे हाथ से छिटक न जाए। जो पाने की दौड़ है वह काम; और जो पकड़ लेने की आकांक्षा है, वह मोह। वह काम की ही शाखा है।
"काम के समान कोई व्याधि नहीं, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं।"
यूं समझो कि काम है और की दौड़, मोह है जो मिल गया उसको अपना बनाए रखने
की आकांक्षा और क्रोध है, जब तुम्हारी इस आकांक्षा में कोई बाधा डाले, कोई उपद्रव खड़ा करे। जैसे वह साधु क्रोधित हो गया, क्योंकि मैं उस के झाड़ के नीचे बैठ गया--उसका झाड़! उसके मैं पर हमला हो गया। उसकी लक्ष्मण-रेखा थी वहां खिंची हुई, उसके भीतर मैं प्रवेश कर गया, तो क्रोध आ गया।
जहां तुम्हारे अहंकार को चोट पड़ती है वहां क्रोध आता है। और जहां तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है वहां मोह आता है। ये क्रोध और मोह अलग-अलग नहीं, एक ही सिक्के दो पहलू हैं। लेकिन दोनों के मूल में काम है। जो तुम्हारी कामवासना में सहयोगी होता है उसको तुम मित्र कहते हो। और जो तुम्हारी कामवासना में विरोधी हो जाता है, अड़चनें डालता है, उसको तुम शत्रु कहते हो। कौन है तुम्हारा मित्र? लोग कहते हैं: मित्र वही जो वक्त पर काम आए। क्यों? वक्त पर काम आए, यह कसौटी है मित्र की! यह मित्रता हुई? वक्त पर काम आने का मतलब हुआ कि जो मेरे काम के आरोहण में सहयोगी हो; जो मेरी आकांक्षाओं अभी प्साओं में सीढ़ी बने; जो मेरे हाथ में शक्ति दे; जो मेरे साथ अभियान पर निकले, मेरा सहयोगी हो। और शत्रु कौन है? जो बाधा डाले। तुम चुनाव लड़ रहे हो, वह तुम्हारे खिलाफ खड़ा हो जाए, तो शत्रु। और तुम्हारा जा कर प्रचार करे तो मित्र। तुम्हें वोट न दे तो शत्रु।
क्रोध पैदा होता है, जब भी तुम्हारी किसी वासना में कोई अड़चन आ जाती है, कोई भी अड़चन खड़ी कर देता है तभी क्रोध पैदा हो जाता है। मुझ पर इस देश के सारे साधु-संत, महंत-महात्मा क्रोधित हैं। क्यों? पूछना चाहिए, क्यों? जो किसी और बात में राजी नहीं होते, जो एक दूसरे से हर हालत में दुश्मन होते हैं, वे सब भी एक साथ मेरे विपरीत खड़े हो जाते हैं। क्या कारण होगा? जरूर बड़े जादू की घटना घट रही है। सभी संप्रदायों के साधु, महंत, संत महात्मा मेरे विपरीत इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि उन सबको लग रहा है कि मैं उनके सारे व्यवसाय को चोट पहुंचा रहा हूं, मैं शत्रु हूं। अगर मेरी बात लोगों की समझ में आ गयी तो मंदिर खाली पड़े होंगे, मस्जिदें खाली पड़ी होंगी। अगर मेरी बात लोगों की समझ में आ गयी तो कौन जाएगा काशी और कौन जाएगा काबा! इसलिए सारे पंडित पुरोहितों को घबराहट और बेचैनी है। इस बैचेनी के पीछे भारी क्रोध है, क्योंकि उनकी आकांक्षाओं में लग रहा है कि मैं सहयोगी नहीं हूं। मैं सहयोगी हो जाऊं इसकी बहुत कोशिश थी।
जैन मुनियों ने मुझसे कहा था कि हम सब तरफ से आपका साथ देंगे अगर आप हमेशा जैन धर्म का समर्थन करें। मैंने कहा, "मैं समर्थन सत्य का करूंगा। जैन धर्म उसके अनुकूल पड़ेगा तो जरूर समर्थन करूंगा और प्रतिकूल पड़ेगा तो मेरी मजबूरी है। मैं सिर्फ सत्य का समर्थन कर सकता हूं।"
मुझे हिंदु महात्माओं ने कहा था कि अगर आप विश्व में हिंदु धर्म का प्रचार करें तो हम आप के साथ हैं। मैंने उनसे कहा कि मैं सिर्फ सत्य का प्रचार कर सकता हूं। और अगर हिंदु धर्म में कोई भी सत्य होगा तो जरूर मैं उसके साथ हूं। लेकिन असत्य चाहे हिंदू हो चाहे जैन, मैं साथ नहीं दे सकता हूं।
तो धीरे-धीरे मैंने न मालूम कितने दुश्मन खड़े कर लिए! सत्य से दोस्ती जोड़ी तो असत्य से जो जी रहे हैं वे दुश्मन हो गए। परमात्मा से नाता जोड़ा तो परमात्मा के नाम से जो धंधे चला रहे हैं वे दुश्मन हो गए। निश्चित ही क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है क्यों? क्योंकि और अग्नियां तो सिर्फ वस्तुओं को नष्ट करती हैं, क्रोध आत्मा को नष्ट करता है। और अग्नियां तो

स्थूल को जलाती हैं, क्रोध तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म को जला देता है। और अग्नियां तो पदार्थ पर शक्तिशाली होती हैं, लेकिन क्रोध की अग्नि तो चेतना पर भी आच्छादित हो जाती है।
मगर तुम्हारे शास्त्र दुर्वासा जैसे लोगों को भी ऋषि कहते हैं--जिनके मुंह पर ही क्रोध है, जिनकी जबान पर क्रोध है, जो अभिशाप देने को आतुर बैठे हैं, जो जरा से भूल चूक से जनम-जनम बिगाड़ दें। ऋषि और अभिशाप दे! ऋषि तो वरदान ही दे सकता है। उससे तो आशीष की ही वर्षा हो सकती है।
मैं तो राबिया को ऋषि कहूंगा, दुर्वासा को नहीं। राबिया सूफी स्त्री थी। कुरान में एक जगह यह वचन आता है कि शैतान से घृणा करो। उसने काट दिया। और कुरान में कोई तरमीम नहीं कर सकता, कोई सुधार नहीं कर सकता। कुरान में सुधार करना! इसका मतलब हुआ कि पैगंबर गलत है, कि कुरान जो उतारी परमात्मा ने वह गलत है! ये ईश्वरीय वचन हैं। इनको कोई सुधार सकता है? यह कोई बच्चों की लिखी हुई किताब तो नहीं है कि तुम इस में सुधार कर दो।
लेकिन राबिया ने काट ही दिया वह वचन। हसन नाम का फकीर उसके घर मेहमान था। उसने राबिया की किताब देखी, कुरान देखी। उलट-पलट रहा था, देखा कि एक जगह वाक्य कटा हुआ है। वह तो बहुत हैरान हुआ। उसने राबिया से कहा, "किसी ने तेरी कुरान को अपवित्र कर दिया।"
राबिया ने कहा, "किसी ने नहीं। और अपवित्र नहीं किया है, पवित्र किया है। मैंने ही किया है। क्योंकि जब से मैंने परमात्मा को जाना तब से मुझे शैतान दिखाई नहीं पड़ रहा। मैं घृणा कैसे करूं? शैतान नहीं दिखाई पड़ता। शैतान भी मेरे सामने आ कर खड़ा हो जाए तो परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। और घृणा कैसे करूं? जब से परमात्मा को जाना, सारा जीवन प्रेम में रूपांतरित हो गया है। घृणा मेरे भीतर नहीं बची। अब शैतान का मैं क्या करूं? घृणा पहले भीतर होनी चाहिए न, तभी तो मैं कर सकूंगी! अब भीतर ही जो चीज न बची। शैतान हो या परमात्मा हो, कोई भी हो, मेरे भीतर तो बस प्रेम ही बचा है। मेरे भीतर से तो प्रार्थना ही उठेगी। मेरे भीतर दुर्गंध नहीं है, सुगंध ही उठेगी।"
मैं राबिया को ऋषि कहूंगा। और मैं कहूंगा उसने ठीक किया जो कुरान में सुधार कर दिया। दुर्वासा को ऋषि नहीं कह सकता। जरा-सी बात में क्रुद्ध हो जाए। ऋषि तो वह परम अवस्था है दृष्टि की, द्रष्टा भाव की, जहां न कोई काम बचता, न कोई मोह बचता न कोई क्रोध बचता। और जहां ये तीनों समाप्त हो जाते हैं, वहीं ज्ञान का जन्म होता है।
इसलिए ठीक कहता है यह सूत्र: "ज्ञान से उत्कृष्ट कोई सुख नहीं।" ज्ञान महासुख है। मगर ये तीन जाएं, तो ज्ञान। यह जो त्रिमूर्ति है--काम, क्रोध, मोह की--यही बाधा है। इस देश में परमात्मा को त्रिमूर्ति कहा है; लेकिन जो हमने त्रिमूर्ति बनायी है वह परमात्मा के संबंध में पर्याप्त नहीं है। उससे कहीं ज्यादा गहरी दृष्टि तो पतंजलि की है, जो कहता है कि असली अवस्था तुरीय है, चौथी है। तीन के पार जाओ तो तुरीय। तुरीय का अर्थ होता है: चौथी। गुरजिएफ के शिष्य आस्पेंस्की ने अद्भुत किताब लिखी है: द फोर्थ वे, चौथा रास्ता। क्या है वह चौथा रास्ता? तुरीय क्या है? काम, मोह, क्रोध--इन तीनों के पार जो चला जाए, वही चौथे को उपलब्ध होता है।
यूं समझो कि काम है ब्रह्मा, क्योंकि ब्रह्मा से ही जगत की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा का अगर तुम उल्लेख पढ़ो शास्त्रों में तो यह बात तुम्हें साफ हो जाएगी; हालांकि किसी ने कभी तुमसे यह बात कही नहीं। यह मैं तुमसे पहली बार कह रहा हूं; क्योंकि कौन झंझट में पड़े! इस देश में झंझट में पड़ने वाले लोग ही नहीं रहे। नेता बचे हैं, ऋषि नहीं बचे। धार्मिक नेता हैं जिनको तुम धर्मगुरु कहते हो, वे भी ऋषि नहीं हैं। गुरु होने के लिए हिम्मत चाहिए, छाती चाहिए।
ब्रह्मा को मैं काम का प्रतीक मानता हूं और तुम अपने पुराण उठा कर देख लो, तुम्हें मेरी बात के लिए गवाहियां मिल जाएगी। कहानी कहती है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी पैदा की। जिसने पैदा की, वह पिता हो गया। लेकिन पृथ्वी को पैदा करके वे उस पर आसक्त हो गए। पिता पुत्री पर आसक्त हो गया। दौड़ने लगे वे पुत्री के पीछे, उसको पकड़ने के लिए दौड़ने लगे। उसको भोगने की आकांक्षा पैदा हो गयी ब्रह्मा में। स्वभावतः, स्त्री का स्वभाव है बचना,

छिपना, लज्जा, घूंघट, तो स्त्री बचने लगी। ऐसे सारी सृष्टि पैदा हुई। क्योंकि स्त्री बच कर गाय हो गयी, वह छिप गयी और गाय बन गयी, ताकि किसी तरह ब्रह्मा के इस कामवासना के उपद्रव से छूट पाए। मगर ब्रह्मा कुछ ऐसे तो छोड़ने वाले नहीं थे, वे तत्क्षण सांड हो गए। ब्रह्मा ही थे, वे कोई ऐसे छोड़ देने वाले थे! ऐसे सारी प्रकृति बनी। वह हरिणी हो गयी तो वे हरिण हो गए। वह हथिनी हो गयी तो वे हाथी हो गए। वह स्त्री हो गयी तो वह पुरुष हो गए। यूं भाग चलती रही, चलती रही, चलती रही। ऐसी ये चौरासी करोड़ योनियां जो पैदा हुईं, यह ब्रह्मा की कामवासना का विस्तार है।
ब्रह्मा काम के प्रतीक हैं। होना भी चाहिए, क्योंकि काम से ही उत्पत्ति है। और ब्रह्मा उत्पत्ति हैं। वे जगत के स्रोत हैं, जहां से सारा जगत पैदा हुआ। और काम से ही जगत की उत्पत्ति होती है। निश्चित ही ब्रह्मा काम के प्रतीक हैं।
विष्णु मोह के प्रतीक हैं। विष्णु के लिए जो व्याख्या की गयी है शास्त्रों में, वह है जगत को सम्हालने वाले, बचाने वाले, व्यवस्था रखने वाले। यह मोही का लक्षण है। मोह का अर्थ ही होता है: व्यवस्था, सम्हालना, बचाना। जो है उस को जोर से पकड़ना, कहीं खो न जाए, कहीं छिटक न जाए हाथ से। काम का अर्थ होता है: बनाना, और, और, और! और मोह का अर्थ होता है: बचाना। विष्णु बचाने वाले हैं।
तुमने एक मजा देखा! इस भारत में ब्रह्मा का सिर्फ एक मंदिर है, सिर्फ
एक मंदिर समर्पित है ब्रह्मा को। क्योंकि लोगों को अब ब्रह्मा से क्या लेना-देना! दुनिया तो बन ही चुकी। जब बन ही चुकी तो अब ब्रह्मा से क्या लेना-देना! बात ही खत्म हो गयी। लेकिन विष्णु के बहुत मंदिर हैं, अनंत मंदिर हैं। सब अवतार विष्णु के हैं। राम और कृष्ण सब अवतार विष्णु के हैं। इसलिए जितने मंदिर हैं, चाहे राम के हों, चाहे कृष्ण के हों, ये सब विष्णु के मंदिर हैं। निश्चित ही विष्णु से अभी लेना देना है। अभी मामला विष्णु के हाथ में है। ब्रह्मा का तो काम खत्म हो गया। वे तो लिख गए कहानी और कहां गए पता नहीं। यहीं खो गए सांडों में, हाथियों में, कितने बंट गए। एक थे, चौरासी करोड़ हो गए। वे तो यहीं कंट छंट कर समाप्त हो गए। अब उनका कहां पता लगाते फिरोगे? अब तो खोजोगे भी तो मिलना मुश्किल हो जाएगा। थोड़ा-थोड़ा अंश मिलेगा, थोड़ा सांड में मिलेगा, थोड़ा मुहम्मद अली में मिलेगा, थोड़ा दारासिंह में मिलेगा, थोड़ा-थोड़ा, अंश-अंश...। उनको तुम कहां खोजोगे? इसलिए एक मंदिर ठीक है प्रतीक के लिए कि भई चलो तुमने काम किया,ऐसा जगत बना दिया, बड़ी कृपा! एक मंदिर तुम्हें समर्पित कर देते हैं। मगर अब तुमसे लेना-देना क्या है!
इसलिए ब्रह्मा की कोई चिंता नहीं करता। न कोई स्तुति गाता, न कोई प्रार्थना करता, न किसी मंदिर में घंटियां बजतीं ब्रह्मा के लिए। लेकिन विष्णु के लिए सारी स्तुतियां हैं, क्योंकि विष्णु के हाथ में ताकत है। जिसके हाथ में ताकत है, जिसके हाथ में लाठी है उसकी भैंस है। सब भैसें एकदम डोलने लगती हैं लाठी देख कर। लाठी अभी विष्णु के हाथ में है। इसलिए सब अवतार उनके। और सारी प्रार्थनाएं उनके लिए हैं। विष्णु-सहस्त्रना।, विष्णु के हजार नाम बताने वाला शास्त्र है। एक नाम से काम नहीं चलता विष्णु का। हजार नाम, ताकि तरहत्तरह से स्तुतियां करो। और सारे मंदिर विष्णु को समर्पित हैं। विष्णु मोह के प्रतीक हैं--मेरा! हजार ढंग से स्तुतियां करो। मेरा है तो बचाओ।
और महेश अंत करेंगे अस्तित्व का। जैसे विष्णु बचाते हैं, और ब्रह्मा शुरू करते हैं, वैसे महेश अंत करेंगे। वे क्रोध के प्रतीक हैं। और तुम पुराणों में देख लो। कथाएं फैली पड़ी हैं। मैं कभी-कभी चौंकता हूं कि क्यों यह बात साफ नहीं हुई, क्यों किसी ने यह बात ठीक-ठीक न कही कि इन तीनों के ये तीन प्रतीक हैं?
अभी कल ही तुम से मैं शिवजी की कथा कह रहा था कि उन्होंने गर्दन ही काट दी गणेश की। अरे जरा पूछताछ करते, इतनी जल्दी क्या पड़ी थी? गर्दन ही काटनी थी, थोड़ी देर से काटी जा सकती थी। मगर आव देखा न ताव, गर्दन काट दी। क्रुद्ध हो गए। तुमने उनके क्रोध की कथा सुनी ही है कि कामदेवता उनके सामने प्रगट हुआ तो उन्होंने अपनी तीसरी आंख खोल कर उसको भस्म कर दिया।

महाक्रोधी! तांडव नृत्य करने वाले! निश्चित ही अंत वही कर सकता है इस जगत का जो क्रोध हो, हिंसा हो, विनाश हो।
ये तीन परमात्मा के रूप नहीं हैं४ ये तीन परमात्मा की विकृतियां हैं, अगर ठीक से समझो। इन तीनों के जो पार जाता है वह परमात्मा को उपलब्ध होता है। तुरीय, चतुर्थ। और वही ज्ञान है। वही बोध है, समाधि है, संबोधि है, बुद्धत्व है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है कि बौद्धों ने यह कथा लिखी कि जब सिद्धार्थ गौतम बुद्धत्व को उपलब्ध हुए तो सारे देवता, ब्रह्मा भी उसमें सम्मिलित हैं,, उनके चरणों में नमस्कार करने आए। आना ही चाहिए। आए हों या न आए हों, मगर जरूर आना चाहिए, केवल बुद्धत्व देवत्व से बहुत ऊंची बात है। ब्रह्मा विष्णु महेश में तो तुम अपने ही जैसी सारी बीमारियां पाओगे। ब्रह्मा में तुम अपनी ही कामवासना पाओगे। विष्णु में तुम अपने ही मोह का विस्तार पाओगे। महेश में तुम अपने ही क्रोध का रूप पाओगे। लेकिन जो तीनों के पार है, जहां न काम बचा, न क्रोध बचा, वहां ज्ञान। वहां तुम्हारा निर्मल स्वभाव प्रगट होता है; तुम्हारा स्वरूप पहली दफा सहस्र-दल कमल की भांति खुलता है; पहली बार तुम्हारे जीवन में संगीत होता है, काव्य होता है। निश्चित ही महासुख है ज्ञान। लेकिन इस ज्ञान से तुम शास्त्रीय ज्ञान
मत समझना। यह सिर्फ ध्यान से ही उपलब्ध होता है, क्योंकि ध्यान तीनों को मिटा देता है। वह त्रिमूर्ति को नष्ट कर देता है। जहां यह त्रिमूर्ति नष्ट हुई, फिर जो शेष रह जाता है, जिसको नष्ट किया ही नहीं जा सकता, ध्यान अग्नि है जिसमें ये तीनों जल कर राख हो जाते हैं--और उसके बाद जो शेष रह जाता है, खालिस सोना, सब कचरा जल गया, सोना कुंदन बनता है अग्नि से गुजर कर। ध्यान की अग्नि से गुजरकर तुम्हारे भीतर सिर्फ शुद्ध सोना बचता है। वही ज्ञान है। उसे जिसने पा लिया उसने सब पा लिया। उसे जिसने खोया उसने सब गंवाया। और हम सब उसे गंवाए बैठे हैं।
और कैसा पागलपन है कि तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा कर रहे हो और तुम्हारे भीतर स्वयं परमात्मा विराजमान है, चतुर्थ विराजमान है! तुम्हारे भीतर स्वयं ब्रह्म विराजमान है और तुम दो कौड़ी के देवी देवताओं की पूजा में लगे हुए हो। अचंभा होता है देख कर कि भीतर ब्रह्म बैठा है, तुम हनुमान-चालीसा पढ़ रहे हो! कुछ तो शर्म करो! कुछ तो शर्म खाओ! कुछ तो संकोच लाओ! अरे डूब मरो चुल्लू भर पानी में! हनुमान चालीसा पढ़ रहे हो! न लाज, न संकोच! "जय गणेश जय गणेश" का शोरगुल मचा रहे हो! ब्रह्म हो कर क्या खिलौनों से खेल रहे हो! लेकिन मूर्च्छा में यही संभव है। कीमती है--
नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वहिनास्ति ज्ञानत् परं सुखम्।।
दसवां प्रवचन; दिनांक ३० सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-15

दुख से जागो
(Note: from Jyun Tha Tyun Thaharaya (ज्यूं था त्यूं ठहराया) #7)

पहला प्रश्न: भगवान, श्रीमदभागवत में यह श्लोक है:
यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धे: परं गतः।
तावुभौ सुखमेघेते क्लिश्यत्यंतरितो जनः।।
संसार में जो अत्यंत मूढ़ है और जो परमज्ञानी है, वे दोनों सुख में रहते हैं। परंतु जो दोनों की बीच की स्थिति में है, वह क्लेश को प्राप्त होता है।
क्या ऐसा ही है भगवान?

आनंद मैत्रेय!
निश्चय ही ऐसा ही है। मूढ़ का अर्थ है--सोया हुआ, जिसे होश नहीं। जी रहा है, लेकिन पता नहीं क्यों! चलता भी है, उठता भी है, बैठता भी है--यंत्रवत! जिंदगी कैसे गुजर जाती है, जन्म कब मौत में बदल जाता है, दिन कब रात में ढल जाता है--कुछ पता ही नहीं चलता। जो इतना बेहोश है, उसे दुख का बोध नहीं हो सकता। बेहोशी में दुख का बोध कहां! झेलता है दुख, पर बोध नहीं है, इसलिए मानता है कि सुखी हूं।
करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति इसी भ्रांति में है कि सब ठीक है। जिससे पूछो--कैसे हो--वही कहता है--ठीक हूं। और ठीक कुछ भी नहीं। सब गैर-ठीक है। जिससे पूछो, वही कहता है, मजा है! आनंद है! परमात्मा की बड़ी कृपा है! शायद उसे यह भी बोध नहीं कि वह क्या कह रहा है।
न सुनने वाले को पड़ी है, न बोलने वाले को पड़ी है कुछ सोचने की। कहने वाला कह रहा है, सुनने वाला सुन रहा है। न कहने वाले को प्रयोजन है--क्यों कह रहा है। न सुनने वाले को चिंता है कि क्या कहा जा रहा है! ऐसी बेहोशी में सुख की भ्रांति होती है। पशु ऐसी ही बेहोशी में जीते हैं--और निन्यानबे प्रतिशत मनुष्य भी।
पशु शब्द बड़ा प्यारा है। पशु का अर्थ है--जो पाश में बंधा हो। पशु का अर्थ सिर्फ जानवर नहीं; पशु का बड़ा वैज्ञानिक अर्थ है--बंधा हुआ; मोह के पाश में बंधा हुआ; मूर्च्छा के बंधनों में जकड़ा हुआ; आसक्तियों में; खोया हुआ सपनों में।
पशुओं को तुमने दुखी न देखा होगा, रोते न देखा होगा, पीड़ित न देखा होगा। इसलिए तो पशुओं में कोई बुद्ध नहीं होता। जब पीड़ा का ही पता न चलेगा, तो पीड़ा से मुक्त होने की बात ही कहां उठती है! प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्यों में कभी कोई एकाध व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है; कभी। अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं ऐसे लोग; करोड़ों में कोई एक। कौन बुद्धत्व को उपलब्ध होता है? वही जिसे जीवन की पीड़ा ठीक-ठीक दिखाई पड़ती है, जिसे इतना होश आ जाता है कि जीवन दुख ही दुख है। आशा है सुख की, मगर मिलता कहां? दौड़ते हैं पाने के लिए, मगर पहुंचता कौन है? हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। धन भी इकट्ठा हो जाता है, पद पर भी बैठ जाते हैं, मगर भीतर की रिक्तता नहीं भरती, सो नहीं भरती। भीतर का दीया नहीं जलता, सो नहीं जलता। धन से जलेगा भी कैसे? पद से भीतर रोशनी भी कैसे होगी? कोई संबंध नहीं दोनों का। धन बाहर है, भीतर निर्धनता है। बाहर के धन से भीतर की निर्धनता कैसे मिटे? महल में रहो कि झोपड़े में, रहोगे तो तुम ही! तुम अगर झोपड़े में दुखी हो, तो महल में भी दुखी रहोगे! तुम अगर झोपड़े में सोए हो, तो महल में सोओगे। लेकिन झोपड़े में जो है, वह भी सोच रहा है, सुखी हूं। राह के किनारे जो भिखमंगा बैठा है--लंगड़ा, लूला, अंधा, बहरा, कुष्ट से गला जा रहा है, हाथ-पैर गिर रहे हैं टूट-टूटकर--वह भी जीए जा रहा है! पता नहीं किस आशा में! किस भ्रांति में।
कल सब ठीक हो जाएगा। कल कभी आता है? जो नहीं आता, उसी का नाम कल है। तुम किसी भिखमंगे से भी कहोगे--किसलिए जी रहे हो? तो नाराज हो जाएगा। तुम्हें

नहीं दिखाई पड़ेगा कोई कारण जीने का। लेकिन जीवेषणा ऐसी है कि हर हाल आदमी जीए जाता है!
गहन अकाल के दिनों में माताएं अपने बच्चों को काट कर खा गईं! बापों ने अपनी बेटियां बेच दीं। टूट गए सब नाते; छूट गए सब रिश्ते। अपने जीवन की आकांक्षा इतनी है कि आदमी कुछ भी कर सकता है! जिसके लिए जीते थे, उसी को मार भी सकता है। ऐसी अवस्था में पता नहीं चलता। कांटों में बिंधे पड़े रहते हैं, और फूलों के सपने देखते रहते हैं!
यह श्लोक ठीक कहता है कि जो संसार में अत्यंत मूढ़ हैं, वे सुखी हैं। सुखी इसलिए कि उनकी मूढ़ता इतनी सघन है कि उन्हें मूढ़ता का भी पता नहीं। मूढ़ता का पता जिसे चल गया, वह तो मूढ़ न रहा।
कल ही मैंने देखा श्री मोरारजी देसाई का एक वक्तव्य। एक पत्रकार परिषद में उनसे पूछ गया कि आप आचार्य रजनीश का गुजरात में आगमन हो रहा है-- कच्छ में--उसका विरोध करेंगे या नहीं? आप विरोध की अगवानी क्यों नहीं करते? कच्छ में प्रवेश न हो, इस विरोध में आप नेतृत्व क्यों हाथ में नहीं लेते?
तो उन्होंने कहा कि कच्छ की जनता ही विरोध करेगी। और आचार्य रजनीश का
वे ही लोग समर्थन करते हैं, जो मूर्ख हैं, मूढ़ हैं!
मैंने वक्तव्य पढ़ा, तो सोचा या तो मोरारजी देसाई को अपना वक्तव्य वापस लेना चाहिए या फिर मेरा समर्थन करना चाहिए। दो में से कुछ एक करना चाहिए। अगर वक्तव्य सही है, तो मेरा समर्थन करना चाहिए, क्योंकि वे तो मूढ़ता में सर्वोच्च हैं! अरे, प्रधानमंत्री का पद तो आया-गया! अब तो भूतपूर्व हो गए; भूत हो गए! लेकिन मूढ़ता तो निज की संपदा है; उसमें कभी भूतपूर्व होने की संभावना नहीं दिखती। मगर परम मूढ़ता यह है कि दूसरों को मूढ़ समझते हैं। खुद की मूढ़ता का खयाल नहीं होता।
एक से एक मूर्खतापूर्ण बातें वे रोज कहते हैं! और खयाल में भी नहीं कि क्या कह रहे हैं!
कच्छ की जनता को मुझसे कोई विरोध नहीं है। अगर विरोध है, तो मोरारजी देसाई को और उनके साथ हार गए राजनीतिज्ञों को--इने-गिने थोड़े से लोग। कच्छ की जनता तो स्वागत के लिए तैयार है। रोज कच्छ से लोग यहां आ रहे हैं।
अभी परसों ही मांडवी का एक प्रतिनिधि मंडल आठ व्यक्तियों का यह निवेदन करने आया था कि आप जो कच्छ के, मोरारजी देसाई के जो संगी-साथी हैं, वे जो शोरगुल मचा रहे हैं, उस भ्रांति में आप जरा भी न पड़ना। हम आपके स्वागत के लिए आंखें बिछाए बैठे हैं।
कच्छ के लोगों को कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो ये कुछ कछुओं को-- जिनकी चमड़ी इतनी मोटी है कि जिसमें कुछ घुसता ही नहीं!
मूढ़ सुखी अनुभव करता है अपने को, इसलिए कि उसे दुख का बोध नहीं होता। इसीलिए तो जब किसी का आपरेशन करते हैं, तो पहले उसे बेहोश कर देते हैं। बेहोश हो गया, तो फिर दुख का पता नहीं चलता। फिर उसके हाथ काटो, पैर काटो, एपेंडिक्स निकाल लो। जो करना हो करो, उसे कुछ पता नहीं। होश में किसी की अपेंडिक्स निकाल लो। जो करना हो करो, उसे कुछ पता नहीं। होश में किसी की अपेंडिक्स निकालोगे, तो आसान नहीं मामला। डाक्टर की गर्दन दबा देगा--लड़ने को, मरने को, मारने को राजी हो जाएगा--कि यह क्या कर रहे--मेरा पेट काट रहे! मेरे प्राण निकल रहे हैं! भागने लगेगा। पहले उसे बेहोश कर देते हैं।
और यही प्रक्रिया मृत्यु की है। मरने के पहले अधिकतम लोग बेहोश हो जाते हैं--क्षण भर पहले, क्योंकि मृत्यु तो बड़े से बड़ा आपरेशन है। आत्मा शरीर से अलग की जाएगी। अपेंडिक्स क्या है! आत्मा का शरीर से अलग होना इससे बड़ी और पीड़ा की कोई बात क्या होगी! सत्तर-अस्सी-नब्बे साल दोनों का संग-साथ रहा। जुड़ गए, एक दूसरे में मिल गए, तादात्म्य हो गया। उस सारे तादात्म्य को छिन्न-भिन्न करना है। तो प्रकृति बेहोश कर देती है; सिर्फ कुछ बुद्धों को छोड़ कर। क्योंकि उनको बेहोश नहीं किया जा सकता। वे जागे ही जीते हैं, जागे ही सोते हैं, जागे ही मरते हैं। इसलिए मरते ही नहीं। क्योंकि जाग कर वे देखते रहे हैं--शरीर मर रहा है, मैं नहीं मर रहा हूं। मुस्कुराते रहते हैं। देखते रहते हैं कि शरीर छूट रहा है। लेकिन मैं शरीर नहीं हूं। मन विदा हो रहा है, लेकिन मैं मन नहीं हूं। वस्तुतः तो वे बहुत

पहले ही शरीर और मन से मुक्त हो चुके। मौत आई उसके पहले मर चुके। उसके पहले उन्होंने शाश्वत जीवन को जान लिया।
बुद्ध की जब मृत्यु हुई, तो उनके शिष्य रोने लगे। बुद्ध ने कहा, चुप हो जाओ नासमझो। मुझे मरे तो लंबा अरसा हो गया। मैं बयालीस साल पहले उस रात मर गया, जिस दिन बुद्ध हुआ। अब क्या रो रहे हो! बयालीस साल बाद! आज कुछ नया नहीं हो रहा है। यह तो घटना घट चुकी। बयालीस साल पहले उस राम पूर्णिमा की-- मैंने देख लिया कि मैं शरीर नहीं, मन नहीं। बात खतम हो गई। मौत तो उसी दिन हो गई। रोओ मत। रोने का कुछ भी नहीं है। क्योंकि जो है, वह रहेगा। और जो नहीं है, वह नहीं ही है। वह जाता है, तो जाने दो। सपने ही टूटते हैं--सत्य नहीं टूटते हैं।
तो जो परम ज्ञान को उपलब्ध है, वह भी सुखी। महासुख बुद्ध ने उसे कहा है--भेद करने को।
अज्ञानी सुखी होता है। धन मिल जाता है, लाटरी मिल जाती है--सुखी हो जाता है। पद मिल जाता है--सुखी हो जाता है। खिलौनों में--माटी के खिलौनों में भरम जाता है! एक भ्रम टूटता नहीं कि दूसरे भ्रमों में उलझ जाता है। नए-नए भ्रम खड़े करता रहता है। झमेले में लगा रहता है। यह कर लूं--वह कर लूं-- आपाधापी! इसमें इतना उलझाव होता है, इतना व्यस्त कि पता ही नहीं चलता कि कब जिंदगी आई, कब जिंदगी गुजर गई! कब सुबह हुई, कब सांझ हो गई! कब सूरज उगा, कब डूब गया!
बचपन खिलौनों में निकल जाता है, जवानी भी खिलौने में निकल जाती है। बदल जाते हैं खिलौने। बच्चों के खिलौने छोटे हैं, स्वभावतः, जवानों के खिलौने जरा बड़े हैं! मगर आश्चर्य तो यह है कि बुढ़ापा भी खिलौनों में ही निकलता है। कम से कम बुढ़ापे में आते-आते तो जाग जाना चाहिए। मरने के पहले तो जाग जाना चाहिए। मरने के पहले तो सारे व्यर्थ के जाल-जंजाल से छुटकारा कर लेना चाहिए। मरने के पहले जीवन क्या है--इसकी पहचान हो जानी चाहिए। जिसको हो जाती है--उसे महासुख।
यह श्लोक कीमती है। यह कहता है--यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धे: परंगतः। वे जो मूढ़ हैं, वे भी सुखी हैं नकारात्मक अर्थों में। क्योंकि उनको दुख का पता नहीं। और वे जो बुद्धपुरुष हैं, बुद्धजन हैं, जो परम गति को उपलब्ध हुए, वे भी सुखी हैं--विधायक अर्थों में। उन्हें पता है कि सुख क्या है। वे महासुखी हैं। भेद को समझ लेना। दोनों का सुख अलग-अलग है।
मूढ़ का सुख वैसा ही, जैसा बेहोश आदमी का आपरेशन हो रहा है, और उसे पता नहीं।
काशी के नरेश का आपरेशन हुआ उन्नीस सौ आठ में। अपेंडिक्स का आपरेशन था। लेकिन काशी के नरेश ने क्लोरोफार्म लेने से इनकार कर दिया। और कहा कि इसकी कोई जरूरत नहीं है। मैं जानता हूं कि मैं शरीर नहीं। आपरेशन करो। अंग्रेज डाक्टर बड़ी मुश्किल में पड़े। आपरेशन करना तत्क्षण जरूरी है, नहीं तो मौत हो सकती है। एपेंडिक्स फूट सकती है। संघातिक स्थिति है। ठहरा नहीं जा सकता। और काशी के नरेश को जबर्दस्ती भी नहीं की जा सकती। वे कहते हैं कि बेहोश करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं ध्यान करता रहूंगा, तुम आपरेशन कर देना!
कभी यह घटना घटी न थी इसके पहले। डाक्टरों ने बहुत झिझकते हुए समझाने
की कोशिश की। लेकिन समझाने के लिए समय भी न था। तब मजबूरी में उन्होंने कहा कि ठीक है। थोड़ी-सी चीरफाड़ कर के देखी कि क्या परिणाम होता है। लेकिन काशी-नरेश तो आंख बंद किए मस्त ही रहे। आंखों से आनंद के आंसू झरते रहे। फिर उन्होंने अपेंडिक्स भी निकाल ली। वे आनंद के आंसू झरते ही रहे। चेहरे पर एक आभा--जैसे पता ही न चला! जैसे उन्होंने कुछ इस बात का हिसाब ही न लिया।
अपेंडिक्स पहली दफा मनुष्य जाति के इतिहास में बिना बेहोश किए निकाली गई। चिकित्सक चकित थे। भरोसा न आता था अपनी आंखों पर--कि इतना बड़ा आपरेशन हो और कोई व्यक्ति हिले-डुले भी नहीं! पूछा उन्होंने काशी नरेश को कि इसका राज क्या है?
उन्होंने कहा, राज कुछ भी नहीं। राज इतना ही है कि मैं जानता हूं--मैं शरीर नहीं हूं। मैं साक्षी हूं। मैं अपने साक्षी-भाव में रहा। मैं देखता

रहा कि अपेंडिक्स निकाली जा रही है। पेट फाड़ा जा रहा है। औजार चलाए जा रहे हैं। मैं द्रष्टा हूं। शरीर अलग है। मैं यूं देखता रहा, जैसे कोई किसी और के शरीर की शल्यक्रिया देखता हो। मैं शरीर नहीं हूं; और ही है शरीर। ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति के लिए कोई दुख नहीं है, क्योंकि दुख शरीर और
मन के ही होते हैं; आत्मा का कोई दुख नहीं होता। आत्मा का स्वभाव आनंद है। हमने शरीर के साथ अपने को एक मान रखा है, तो हम दुखी हैं। मन के साथ अपने को जोड़ रखा है, तो हम दुखी हैं। मन यानी माया। मन यानी मोह। मन यानी सारा संसार; यह सारा विस्तार। मन और शरीर से अलग जिसने अपने को जान लिया, वह परम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है। फिर वहां कोई दुख नहीं है। फिर वहां महासुख है, परम शांति है। आनंद ही आनंद। अमृत ही अमृत!
और यह बात भी सच है कि इन दोनों के बीच में जो है, वह दुखी है। मूढ़--उसे पता नहीं, बेहोश है। प्रबुद्ध--उसे पता है, परिपूर्ण होश है। इन दोनों के मध्य में जो है, वह दुखी है। वह बड़े झमेले में है। न यहां का, न वहां का। न घर का न घाट का--धोबी का गधा है! इधर शरीर खींचता है, उधर आत्मा पुकारती है। इधर बाहर की दुनिया आकर्षित करती है, उधर भीतर का लोक निमंत्रण देता है। यहां धन खींचता है, वहां ध्यान पुकारता है। एंचातानी! कोई टांग खींच रहा है! कोई हाथ खींच रहा है!
जरा जरा-सा होश भी है, मगर धुंधला-धुंधला; इतना नहीं कि महासुख दिखाई
पड़ जाए। मगर इतना होश है कि दुख दिखाई पड़ता है। इतनी रोशनी नहीं कि अंधेरा मिट जाए। मगर इतनी रोशनी है कि अंधेरा दिखाई पड़ता है। जैसे सुबह-सुबह, भोर में, भी सूरज नहीं निकला; अभी रात के आखिरी तारे नहीं डूबे। कुछ-कुछ हल्की- सी रोशनी है। और गहन अंधकार भी--साथ-साथ! मध्य में जो है, वह संध्या काल में है। उसकी बड़ी विडंबना है। न यहां का, न वहां का! वह त्रिशंकु की भांति लटक जाता है। न इस लोक का, न परलोक का।
कुछ लोगों की यह गति है। खास कर उन लोगों की, जिनके जीवन में थोड़ी-सी धार्मिकता है। जिनके जीवन में थोड़ा-सा प्रार्थना का स्वर सुनाई पड़ा है। जिनके जीवन में क्रांति की थोड़ी-सी चिनगारी पड़ी है। वे बड़े दुखी हो जाते हैं। और वे तब तक दुखी रहेंगे, तब तक वे परम सत्य को न पा लें।
बुद्ध बहुत दुखी हो गए थे, तभी तो राजमहल छोड़ा। और जिन घटनाओं को देख
कर दुखी हुए थे, उन्हीं घटनाओं को तुम रोज देखते हो, और तुम्हें कुछ भी नहीं होता! चार घटनाओं का उल्लेख है।
बुद्ध जब पैदा हुए, तो ज्योतिषियों ने कहा कि सम्राट, हम बड़े संकोच से भरे हैं। आपके बेटे का भविष्य बड़ा अनिश्चित है। या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा। अगर रुक रहा संसार में, तो यह सारे जगत का विजेता होगा। लेकिन पक्का नहीं कह सकते। एक संभावना यह भी है कि सब त्याग कर संन्यासी होगा। तब यह बुद्धत्व को उपलब्ध होगा। या तो चक्रवर्ती सम्राट या बुद्ध। सिर्फ एक युवक ज्योतिषी भी मौजूद था। कोदन्ना उसका नाम था। वह भर चुप रहा। सम्राट ने पूछा कि तुम कुछ नहीं कहते? उसने एक अंगुली उठाई। सम्राट ने कहा, इशारे मत करो। साफ-साफ कहो। क्या कहना चाहते हो एक अंगुली उठा कर? कोदन्ना ने कहा कि मैं सुनिश्चित रूप से कहता हूं कि यह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होगा।
सम्राट को बहुत धक्का लगा कि एक ही बेटा था। वह भी बुढ़ापे में पैदा हुआ था! यह संन्यस्त हो जाएगा। फिर मेरे साम्राज्य का क्या होगा! इसे कैसे रोका जाए कि यह सन्यस्त न हो।
हर मां-बाप बच्चों को रोकते हैं--कहीं संन्यस्त न हो जाएं! बड़ी हैरानी
की दुनिया है। और मजा यह कि अगर किसी और का बेटा संन्यासी हो जाए, तो यही मां-बाप उसके चरण छूने जाते हैं! इनका खुद का बेटा संन्यासी होने लगे, तो इनको अड़चन आती है। अड़चन इसलिए आती है कि इनके न्यस्त स्वार्थ को धक्का लगता है। अड़चन इसलिए आती है कि बेटा हमसे आगे जा रहा है! इससे इंकार को भी पीड़ा होती है। हम जो न कर पाए, वह बेटा कर रहा है, कि बेटी कर रही है!
और फिर बुद्ध के पिता ने जो बड़ा विस्तार कर रखा था धन का, साम्राज्य का, उसका क्या होगा! जीवन उसी में गंवाया था। बड़ी आशा थी इस बेटे की कि बेटा मिल जाएगा, तो सम्हालने वाला कोई होगा। हम तो न रहेंगे, लेकिन अपना कोई खून का हिस्सा सम्हालेगा!

क्या-क्या मोह हैं दुनिया में! हम न होंगे तो कम से कम हमारा बेटा सम्हालेगा। खुद के बेटे नहीं होते, लोग दूसरे के बेटे गोद ले लेते हैं और भ्रांतियां बना लेते हैं कि अपना है।
कोई अपना सम्हालेगा, तो भी भरोसा है कि चलो, हमारा श्रम व्यर्थ नहीं गया। श्रम तो व्यर्थ ही गया। जब तुम ही चले गए, तो तुम्हारे श्रम का क्या मूल्य है!
बुद्ध के पिता बड़े चिंतित हुए। पूछने लगे कि कोई रास्ता बताओ--कैसे इसको रोकें?
तो उन ज्योतिषियों ने कहा, अगर इसे रोकना हो, तो चार चीजों का पता मत चलने देना। बीमारी होती है--यह पता मत चले देना। क्योंकि बीमारी में इसे दुख होगा। दुख होगा, तो फिर बचना मुश्किल होगा। बुढ़ापा आता है, यह पता मत चलने देना, क्योंकि बुढ़ापे का अगर इसको खयाल आ जाएगा, तो मौत ज्यादा दूर नहीं है फिर। और मौत होती है--यह इसे पता मत चलने देना। और चौथी बात कि संन्यास की भी संभावना है--यह इसे पता मत चलने देना। बस, ये चार बातों से बचाए रखना। और इसे पिलाओ शराब और रंगरेलियां मनाने दो। सम्राट हो तुम, सुंदरतम स्त्रियां इकट्ठी कर दो, उन्हीं में भूला रहे, भटका रहे। संगीत चले। नाच चले। शराब चले। दौर पर दौर चलें। इसको बेहोश रखो। अगर इसे बेहोश रखने में समर्थ हो गए, तो यह चक्रवर्ती सम्राट हो जाएगा। सम्राट ने कहा, फिर ठीक है।
उसने बुद्ध के लिए अलग-अलग ऋतुओं के लिए अलग-अलग महल बनवाए। गर्मी के लिए अलग महल। ऐसे स्थान में, ऐसे मौसम में, ऐसे वातावरण में, जहां सब ठंडा था, शीतल था। उसे गर्मी का पता न चले। सर्दी में और जगह--जहां सब गर्म था, उसे सर्दी का पता न चले। वर्षा में ऐसी जगह जहां थोड़ी बूंदाबांदी हो। वर्षा का मजा भी हो, लेकिन वर्षा की पीड़ा न हो।
सम्राट ने सारी सुंदर स्त्रियां, जितनी सुंदर युवतियां राज्य में मिल सकती थीं, सब को उठा लिया। वह उसके हाथ की बात थी। बुद्ध को सिर्फ लड़कियों से घेर दिया। खिलौने ही खिलौने दे दिए। और सारी सुविधाएं जुटा दीं। श्रेष्ठतम चिकित्सक बुद्ध के पीछे लगा दिए कि बीमारी आने के पहले ही इलाज करें। बीमारी आए--फिर इलाज नहीं। बीमारी आने के पहले इलाज। बुद्ध को पता ही न चले कि बीमारी आने वाली थी।
और किसी बूढ़े को बुद्ध के महलों में जाने की आज्ञा न थी। यहां तक कि कोई सूखा हुआ पत्ता बुद्ध के बगीचे में नहीं टिकने दिया जाता था। सूखे पत्ते को देख कर शायद उन्हें याद आ जाए कि कभी हमें भी तो नहीं सूख जाना पड़ेगा। आज हरे हैं, कल कहीं सूख कर वृक्ष से गिर तो न जाएंगे! कुम्हलाए हुए फूल रात में अलग कर देते थे। बुद्ध के बगीचे में माली रात भर काम करते थे। कुम्हलाए फूल, सूखे पत्ते, पीले पड़ गए पत्ते--सब अलग कर दिए जाते थे। बुद्ध को ऐसे धोखे में रखा गया। लेकिन कब तक धोखे में रखोगे! जिंदगी
से कैसे किसी को छिपाया जा सकता है!
एक महोत्सव में--युवक महोत्सव में बुद्ध भाग लेने जा रहे थे--उसका उदघाटन करने। राजकुमार ही उसका उदघाटन करता था। रास्ते पर डुंडियां पीट दी गई थीं कि कोई बूढ़ा न निकले, कोई बीमार न निकले, कोई मुर्दे की लाश न गुजरे, कोई संन्यासी न निकले। मगर दुनिया बड़ी है। किसी बहरे ने सुना ही नहीं कि डुंडी पिटी। किसी बीमार को पता ही न चला कि डुंडी पिटी। बड़ी राजधानी थी।
और जब बुद्ध का रथ जा रहा था राजधानी में से, तो उन्होंने देखा एक आदमी को: कमर झुक गई। रुग्ण! खांस रहा, खखार रहा! पूछा कि क्या हो गया इसको? सारथी ने कहा कि मुझे आज्ञा नहीं है कि मैं आपको इस तरह की बातों के संबंध में कहूं!
बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि बोलो। क्या हो गया इसे? बुद्ध को इनकार भी नहीं किया जा सकता। राजकुमार है। तो उसने कहा, मजबूरी है। लेकिन आपके पिता की आज्ञा नहीं है।
बुद्ध ने कहा, जब मैं तुमसे कहता हूं, जवाब दो अन्यथा नौकरी से तुम अलग किए जाते हो!

उस सारथी ने कहा, मालिक नाराज न हों। यह आदमी बीमार है। इसको क्षय रोग
हो गया है। यह तपेदिक से बीमार है। यह खांस रहा है, खखार रहा है।
बुद्ध ने कहा, क्या मैं भी कभी बीमार हो सकता हूं?
इसको कहते हैं प्रतिभा। इसको कहते हैं बुद्धिमत्ता। इसको कहते हैं प्रखर तेजस्विता--मेधा! उस आदमी का प्रश्न तत्क्षण अपने पर लागू हो गया। क्या मैं कभी बीमार हो सकता हूं?
उस सारथी ने कहा कि मैं क्या कहूं आपसे! लेकिन देह है, तो बीमारी है। देह तो बीमारियों का घर है। इसमें सब बीमारियां छिपी हैं। आज नहीं कल...अभी आप जवान हैं। अभी सब स्वस्थ है। सब सुंदर है। मगर कब टूट जाएगा स्वास्थ्य, कहा नहीं जा सकता। टूट ही जाता है। मगर खयाल रखें, अपने पिता को मत कहना कि मैंने ये बातें आपसे कहीं। नहीं तो मेरा अस्तित्व खतरे में है।
बुद्ध ने कहा, तुम चिंता मत करो।
और तभी एक बूढ़ा आदमी गुजरा; बहुत जराजीर्ण। और बुद्ध ने पूछा, इसे क्या हो गया? इसे कौन-सी बीमारी है?
सारथी ने कहा, इसे कोई बीमारी नहीं है। यह बुढ़ापा है। यह सबको होता है। यह बीमारी नहीं है, यह सहज जीवन का अंतिम चरण है।
बुद्ध ने कहा, क्या ऐसी ही झुर्रियां मेरे चेहरे पर पड़ जाएंगी! ऐसी ही शिकन! ऐसा ही कमजोर मैं हो जाऊंगा! आंखें मेरी ऐसी ही धुंधली हो जाएंगी? ऐसे ही बहरा मैं हो जाऊंगा?
सारथी ने कहा, मजबूरी है। मगर प्रत्येक को एक दिन इसी तरह हो जाता पड़ता है। सब चीजें आखिर थक जाती है। इंद्रियां थक जाती हैं, टूटने लगती हैं, बिखरने लगती हैं। बुढ़ापे से कौन बच सका है!
और तभी एक मुर्दे की लाश निकली और बुद्ध ने पूछा, अब इसे क्या हो गया है? ये किस आदमी को बांध कर लिए जा रहे हैं?
सारथी ने कहा, यह बुढ़ापे के बाद की घटना है। यह आदमी मर गया।
और तब उसी लाश के पीछे एक संन्यासी--गैरिक वस्त्रों में! बुद्ध ने कहा,
यह आदमी गैरिक वस्त्र क्यों पहने हुए है? इसके हाथ में भिक्षा का पात्र क्यों है? इस आदमी की हय शैली क्या है?
तो पता चला कि यह संन्यासी है। उसने सारे संसार को छोड़ दिया है। क्यों छोड़ दिया है? इसलिए कि जीवन में दुख है, बीमारी है, बुढ़ापा है, मृत्यु है। यह आदमी अमृत की तलाश में चला है।
बुद्ध ने कहा, लौटा लो; रथ को वापस लौटा लो। मैं बीमार हो गया। मैं बूढ़ा हो गया। मैं मर गया--यूं समझो। मुझे भी सत्य की तलाश करनी होगी।
वे महोत्सव में भाग लेने नहीं गए। लौट आए। और उसी रात उन्होंने गृह-त्याग कर दिया।
ये चार सत्य तुम्हें रोज दिखाई पड़ते हैं--बीमार भी दिखाई पड़ता है, तुम
भी बीमार पड़ते हो। बूढ़ा भी दिखाई पड़ता है, तुम भी बूढ़े हो रहे हो। रोज हो रहे हो। प्रतिपल हो रहे हो।
जिसको तुम जन्मदिन कहते हो, वह जन्मदिन थोड़े ही है; मौत और करीब आ गई! उसको जन्मदिन कह रहे हो!
लोग जन्मदिन मनाते हैं! लेकिन मौत करीब आ रही है। एक साल और बीत गया।
एक बरस और बीत गया। जिंदगी और छोटी हो गई। तुम सोचते हो, जिंदगी बड़ी हो रही है। जिंदगी छोटी हो रही है।
जन्मने के बाद आदमी मरता ही जाता है। पहले ही क्षण से मरना शुरू हो जाता है। यह मरने की प्रक्रिया सत्तर-अस्सी साल लेगी, यह और बात। धीरे- धीरे क्रमशः आदमी मरता जाता है।
लेकिन तुम देखकर भी कहां देखते हो। तुम बेहोश हो। इसलिए तुम सुखी हो। बुद्ध बहुत दुखी हो गए। मध्य में आ गए। मूढ़ न रहे। अभी परम ज्ञान नहीं हुआ है। मगर बीच की हालत आ गई। बहुत दुखी हो गए। तलाश में निकल गए।
जब आदमी बहुत दुखी होता है, तभी तलाश में निकलता है। मगर दुख को अनुभव करने के लिए भी बुद्धिमत्ता चाहिए। धन्यभागी हैं वे, जो दुख को अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि जिन्होंने दुख को अनुभव किया, उन्होंने फिर दुख से मुक्त होने की चेष्टा भी की। करनी ही पड़ेगी।

बुद्ध छह वर्ष अथक तपश्चर्या किए, ध्यान किए। और एक दिन परम बुद्धत्व
को उपलब्ध हुए, तब महासुख के झरने फूटे। तब अमृत-रस बरसा। तब जीवन का राज खुला, रहस्य खुला। तब भीतर का सूरज उगा। ध्यान मिला, तो भीतर का धन मिला। समाधि मिली, तो सब समस्याओं का समाधान मिला। फिर कोई दुख न रहा। फिर कोई संताप न रहा।
यह सूत्र बिलकुल ठीक है--यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
बड़ा विरोधाभासी सूत्र है कि मूढ़ों की गति और परम बुद्धों की गति एक अर्थ में समान है। मूढ़ भी सुखी, बुद्ध भी सुखी। मगर उनका सुख बड़ा अलग-अलग।
मूढ़ बेहोशी के कारण सुखी; बुद्ध होश के कारण सुखी। जमीन आसमान का भेद है।
ताबुभौ सुखमेघेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः। लेकिन जो बीच में हैं, मध्य में हैं, उनको बड़ा क्लेश है। लेकिन मध्य में आना ही होगा। पशुता छोड़नी होगी; मनुष्य होना होगा। मनुष्य ही होगा; मनुष्य मध्य में होगा। लेकिन उस दुख से गुजरे बिना कोई बुद्धत्व तक नहीं जा सकता। वह कीमत चुकानी पड़ती है। जो उस कीमत को चुकाने से बचेगा, वह पशुता के जगत में ही, मूढ़ता के जगत में ही उलझा रह जाता है।
और तुम यही कर रहे हो। अधिकतम लोग यही कर रहे हैं। किसी तरह अपने को भुलाए रखो; उलझाए रखो। जाल बुनते रहे उलझाव के। और कल पर टालते रहो--मनुष्य होने की संभावना को। कल मौत आएगी।
तुम बहुत बार जन्मे हो और बहुत बार ऐसे ही मर गए! अवसर तुमने कितना गंवाया है--हिसाब लगाना मुश्किल है! अब और न गंवाओ। यह कीमत चुका दो। यह दुख से थोड़ा गुजरना पड़ेगा। और जितने जल्दी चुका दो, उतना बेहतर है। यह दुख ही तपश्चर्या है। यह दुख ही साधना है। इस दुख की सीढ़ी से चढ़ कर ही कोई परम सुख को उपलब्ध हुआ है। और कोई उपाय नहीं है। बच कर नहीं जा सकते।
इसलिए शास्त्र कहते हैं कि देवता भी देवलोक से निर्वाण को नहीं पा सकते। पहले उन्हें मनुष्य होना पड़ेगा। मनुष्य हुए बिना कोई बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि मनुष्य चौरस्ता है।
देवता सुखी हैं। शराब पी रहे हैं। अप्सराओं को नचा रहे हैं। और उसी तरह के उपद्रव में लगे हैं, जिसमें तुम लगे हो। कुछ फर्क नहीं है! थोड़ा बड़े पैमाने पर हैं उनका जरा। उनकी उम्र लंबी होगी। उनकी देह सुंदर होगी। मगर सब यही जाल है, जो तुम्हारा है। यहीर् ईष्या। यही वैमनस्य।
तुमने कहानियां तो पढ़ी हैं कि इंद्र का सिंहासन बड़े जल्दी डोल जाता है। कोई तपश्चर्या करता है, इंद्र का सिंहासन डोला! घबड़ाहट चढ़ती है कि यह आदमी कहीं इंद्र न हो जाए! वही राजनीति, वही दांव-पेंच! और इंद्र करते क्या हैं? भेज देते हैं अप्सराओं को--मेनका को, उर्वशी को कि भ्रष्ट करो इस तपस्वी को। यह भ्रष्ट हो जाए, तो मैं निश्चिंत सोऊं। मगर क्या खाक निश्चिंत सो पाओगे! इतनी बड़ी पृथ्वी है, कोई न कोई तपश्चर्या करेगा, कोई न कोई ध्यान करेगा। नींद कहां?
देवता भी दुखी हैं, उतने ही जितने तुम। लेकिन न तुम्हें पता है, न उन्हें पता है। वे भी बेहोश हैं। इसलिए शास्त्र ठीक कहते हैं कि मनुष्य हुए बिना...। मनुष्य के चौराहे से तो गुजरना ही होगा। यह चौराहा है। यहां से पशु की तरफ रास्ता जाता है; यहां से मनुष्य की तरफ रास्ता जाता है; यहां से देवत्व की तरफ से रास्ता जाता है; और यहां से बुद्धत्व की तरफ भी रास्ता जाता है।
मनुष्य चौराहा है। चारों रास्ते यहां मिलते हैं। अगर तुम समझो, तो जीवन एक परम सौभाग्य है। अगर तुम जागो, तो मनुष्य होने से बुद्धत्व होने की तरफ मार्ग जा रहा है; तुम उसे चुन सकते हो।
लेकिन लोग शराब पीएंगे! अगर दुखी होंगे, तो शराब पीएंगे। क्यों आदमी शराब पीता है दुखी होता है तो? भुलाने के लिए। पशु हो जाएगा शराब पीकर। जो समझदार है, वह ध्यान करता है। यह ध्यान की शराब पीता है। वह समाधि
की तरफ बढ़ता है। वह कहता है, ऐसे भुलाने से क्या होगा! भुलाने से दुख मिटता तो नहीं। फिर कल सुबह होश आएगा। फिर दुख वहीं के वहीं पाओगे। और बड़ा हो जाएगा।
रात भर में दुख भी बड़ा हो रहा है। जब तुम सो रहे हो, तब दुख भी बड़ा हो रहा है। सुबह चिंताओं के जाल और खड़े हो जाएंगे। कल जब तुमने शराब पी थी,

जितनी चिंताएं थीं, सुबह पाओगे--और ज्यादा हो गईं, क्योंकि शराब पीकर भी तुम कुछ उपद्रव करोगे न! किसी को गाली दोगे, किसी को मारोगे, किसी के घर में घुस जाओगे। किसी की स्त्री को पकड़ लोगे। कुछ न कुछ उपद्रव करोगे! सुबह तुम पाओगे--और झंझटें हो गईं!
हो सकता है सुबह हवालात में पाओ अपने को; कि किसी नाली में पड़ा हुआ पाओ। कुत्ता मुंह चाट रहा हो! कि जीवन-जल छिड़का रहा हो। और झंझटें हो गईं! सुबह घर पहुंचोगे, तो पत्नी खड़ी है--मूसल लिए हुए! इससे निपटो! दफ्तर जाओगे, वहां झंझटें खड़ी होंगी। हजार भूल-चूकें होंगी। क्योंकि नशा सरकते- सरकते उतरता है। थोड़ी-सी छाया बनी ही रहती है। कुछ का कुछ हो जाएगा। कुछ का कुछ बोल जाओगे। कुछ का कुछ कर गुजरोगे। और चिंताएं बढ़ जाएंगी और दुख बढ़ जाएंगे। कल मुश्किल थी...। और हो सकता है कि जेब ही कट जाए! बीमारियां थीं और बीमार हो जाओगे!
जिंदगी वैसे ही उलझी हुई थी, शराब से सुलझ नहीं जाएगी। गालियां दे दोगे। झगड़े कर लोगे। कुट जाओगे, पिट जाओगे। किसी को पीट दोगे, छुरा मार दोगे--पता नहीं बेहोशी में क्या कर गुजरोगे! इतना तय है कि चिंताएं कम नहीं होंगी; बढ़ जाएंगी। संताप गहन हो जाएगा। फिर और शराब पीना--इसको भुलाने के लिए! अब तुम पड़े दुष्ट-चक्र में।
एक ही उपाय है--जागो, होश से भरो।
अगर दुख हैं, तो उनका भी उपयोग करो। दुख का एक ही उपयोग किया जा सकता है--और वह यह है कि साक्षी बनो। और जितना साक्षी-भाव बढ़ेगा, उतना दुख क्षीण होता जाएगा। इधर भीतर साक्षी जगा कि रोशनी हुई, दुख कटा, अंधेरा कटा।
जिस दिन तुम परम साक्षी हो जाओगे, द्रष्टा मात्र, उस दिन जीवन में कोई दुख नहीं। उस दिन जीवन परमात्मा है।
सातवां प्रवचन; दिनांक १७ सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-16

रसरूप भगवत्ता
(Note: from Jo Bole To Harikatha (जो बोलैं तो हरिकथा) #4)

पहला प्रश्न: भगवान, आपने उस दिन कहा कि रसो वै सः--कि वह रस-रूप है। परमात्मा की यह परिभाषा मुझे सबसे बढ़कर भाती है। तैत्तिरीय उपनिषद का वह पूरा श्लोक इस प्रकार है:
रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। को ह्येवान्यात कः प्राण्यात।
यदेष आकाश आनंदो न स्यात। एष ह्येवानंदयाति।
(भगवान रस-रूप है। उसी रस को पाकर प्राणी-मात्र आनंद का अनुभव करता है। यदि वह आकाश की भांति सर्व-व्यापक आनंदमय तत्व न होता, तो कौन जीवित रहता और कौन प्राणों की चेष्टा करता? वास्तव में वही तत्व सबके आनंद का मूलस्रोत है।)
भगवान, हमें इसका पूरा आशय समझाने की अनुकंपा करें!

सहजानंद!
यह परिभाषा अपूर्व है। मनुष्य जाति के समग्र इतिहास में इसके जोड़ की कोई परिभाषा नहीं है। ऐसे तो परमात्मा की परिभाषा हो नहीं सकती, लेकिन करनी ही हो, करनी ही पड़े, तो इस परिभाषा से श्रेष्ठतर परिभाषा की कोई संभावना नहीं है। लेकिन इसे समझना आसान नहीं है। एक-एक शब्द को बहुत गौर से समझना पड़े।
पहले तो रस। दुनिया की किसी भाषा में इसका ठीक-ठीक रूपांतरण नहीं किया जा सकता। रूपांतरण करते ही बात विकृत हो जाती है। क्योंकि जिन्होंने इस शब्द को जन्म दिया होगा, उन्होंने अनुभव का निचोड़ इसमें भरा है। यह सामान्य शब्द नहीं है; अनुभूतिजन्य है। इस छोटे से शब्द में अनुभव का सागर समाया हुआ है। इस बूंद में सिंधु है। इस बूंद को कोई समझ ले, तो सारे सागरों का रहस्य समझ में आ जाए।
इस शब्द के बहुत पहलू हैं। पहला पहलू तो है कि रस का अर्थ होता है--जो सदा प्रवाहमान है, जो बह रहा है। बह गति, गत्यात्मकता रस शब्द से सूचित होती है।
जो चीज ठहरी, वह मरी। जो बहती रही, वह जीवित रही। जल तो वही है, जो हौज में भरा होता है--और कुएं में भी। शायद उसी कुएं का जल हो। लेकिन हौज का जल मृत है, उसमें प्रवाह नहीं है। वह रस नहीं है।
कुएं का जल प्रवाहमान है। उसमें झरने हैं। उसमें स्रोत हैं। उसमें गति है। वह अनंत-अनंत सागर से जुड़ा है। परोक्ष में दूर-दूर झर-झर कर पानी उस तक पहुंच रहा है। वह तो सिर्फ झरोखा है, जिसमें से सागर झांका है। और सागर भी ऐसा हो कर झांका है कि अब पिया जा सकता है। सागर से पानी न पी सकोगे। पीओगे, तो मृत्यु हो जाएगी। सागर को पृथ्वी की बहुत-सी तलों में से गुजरना पड़ता है, तब कीं पीने-योग्य हो पाता है। तब कहीं हम उसे अपना जीवन बना सकते हैं। और पानी के बिना कोई जीवन नहीं है। आदमी के शरीर में अस्सी प्रतिशत तो पानी ही है।
कुएं का पानी तुम पी सकोगे; वह तुम्हारे पचाने के योग्य हो गया। पृथ्वी ने उसे शुद्ध किया, निर्मल किया। झर-झर कर निर्मल हुआ। बह-बह कर निर्मल हुआ। हौज में तो सड़ जाएगा; कुएं में नहीं सड़ता है। देखने में दोनों में एक जैसा लगता है।
जब कोई बुद्धपुरुष जीवित होता है, तो उसके भीतर धर्म रस-पूरा होता है। जैसे कुएं में जल। जैसे सरिता का जल। और जब कोई बुद्धपुरुष विदा हो जाता है, तो पंडितों के पास उसके शब्द छूट जाते हैं--जैसे हौज में भरा जल, जैसे डबरों में भरा जल। जिनके कोई झरने नहीं होते। जल तो वही। देखने में बिलकुल वही, फिर भी वही नहीं। बुद्धपुरुष को तुम आत्मसात कर सकते हो, उसे पी सकते हो, उसे पचा सकते हो। इसलिए जीसस ने अनूठे वचन कहे हैं।

अंतिम विदाई में जीसस ने अपने शिष्यों के लिए भोज दिया। वह बड़ा प्रतीकात्मक है: अंतिम-भोज। उस भोज में जीसस ने अपने शिष्यों को कहा, इस भोजन को तुम साधारण भोजन मत समझना। यह मेरा मांस है, मेरी मज्जा है। इस शराब को तुम साधारण शराब मत समझना; यह मेरा खून है। मुझे खाओ, मुझे पीओ, मुझे पचाओ।
बड़े अजीब से शब्द हैं, लेकिन बड़े गहरे। जीसस यह कह रहे हैं कि तुम सिर्फ मेरे अनुयायी बनकर मत रह जाना, नहीं तो चूक जाओगे। तुम मेरे शब्दों के धनी बन कर मत रह जाना, नहीं तो भटक जाओगे। तुम्हारे भीतर भी वही चैतन्य आविर्भूत होना चाहिए, जो मेरे भीतर हुआ। वही ज्योति जलनी चाहिए, जो मेरे भीतर जली। और ऐसा तो तब होगा, जब शिष्य अपने गुरु को पचाने को राजी हो जाता है।
विद्यार्थी पचाता नहीं; विद्यार्थी तो याद करता है। विद्यार्थी अंततः पंडित बन जाएगा। शिष्य पचाता है। पचाता है, पीता है। लीन करता है अपने में। और जब भोजन पच जाता है, तो तुम्हारा हो जाता है। अब तुम कैसे पता लगाओगे कि तुम्हारा खून कहां से आया--दूध से आया, सब्जी से आया, फल से आया-- कहां से आया! अब तो पता लगाना भी मुश्किल है। खून--तुम्हारा खून है। हड्डी--तुम्हारी हड्डी है। मज्जा--तुम्हारी मज्जा है। लेकिन जो अनपचा रह जाए, तो रुग्ण कर देगा।
पंडित रुग्ण होता है। उसके भीतर अनपचा भोजन पड़ा है। बहुमूल्य भोजन-- मगर अनपचा। लेकिन ठंडा हो गया भोजन!
शास्त्रों में धर्म ठंडा हो जाता है; पचाने योग्य नहीं रह जाता। उसकी ऊर्जा भी खो जाती है, ऊष्मा भी खो जाती है। उसकी श्वासें ही कब की टूट चुकीं। मृत लाश है! वैसी ही लगती है, जैसे जीवित बुद्धपुरुष लगते थे। बस देखने में वैसी लगती है, लेकिन कुछ कमी है। और कुछ क्या--सभी कुछ कम है। आत्मा ही नहीं है। पिंजड़ा पड़ा है; आत्मा तो उड़ गई।
धर्म रस है। लेकिन कोई झरोखा चाहिए, जिससे तुम झांक सको। कोई झरना चाहिए, जिससे तुम पी सको। शब्द काम नहीं देंगे। शास्त्र काम नहीं देंगे। जानकारी और ज्ञान काम नहीं देगा। ध्यान ही काम दे सकता है। क्योंकि ध्यान से स्वाद मिलता है।
रस का दूसरा पहलू: रस का अर्थ है, जिसका स्वाद लिया जा सके। तुम शब्द
तो सुनते हो, मगर उनका स्वाद कहां? जैसे ईश्वर शब्द तुमने सुना। कोई स्वाद आता है तुम्हें! तुम्हें बिलकुल स्वाद नहीं आता। ईश्वर शब्द कान में भनभनाता है; एक कान में गूंजता है, दूसरे से निकल जाता है। तुम्हारे भीतर कोई हलन-चलन नहीं होती। कोई गति नहीं होती। कोई रस नहीं बहता। तुम मस्त नहीं हो जाते। तुम डोलने नहीं लगते।
यूं ही जैसे कोई शराब शब्द को सुने, तो क्या मस्त हो जाएगा? पीए तो मस्त होगा। पीए तो झूमेगा। पीए तो गाएगा। पीए तो नाचेगा। शराब उसके रग-रेशे में दौड़े, तो उसका रोआं-रोआं जाहिर करेगा कि कुछ भीतर घट रहा है; कोई क्रांति हो रही है।
धर्म रस है अर्थात उसका स्वाद लेना होता है। खोपड़ी में भर लेने से स्वाद नहीं आता। स्वाद तो अनुभव से आता है। तुम लाख चर्चा सुनो मिठाई की, लेकिन कभी तुमने मीठा न चखा हो, तो चर्चा से क्या होगा! मीठा शब्द याद हो जाएगा, लेकिन शब्द में कुछ अर्थ नहीं होगा। तुम्हारे लिए नहीं होगा अर्थ। अर्थ उनके लिए ही होगा, जिन्होंने चखा है।
शब्दों का एक खतरा है। शब्दों से यह भ्रांति पैदा हो सकती है कि मैं समझ गया। जब शब्द समझ में आ गया, तो हम सोचते हैं: बात समझ में आ गई। मगर शब्द समझ में आने से कुछ समझ में नहीं आता।
प्रेम शब्द तुम जानते हो; खूब जानते हो। सुबह से सांझ तक प्रेम की चर्चा करते हो। सारी पृथ्वी पर प्रेम ही प्रेम चल रहा है! पति पत्नी को प्रेम कर रहा है। पत्नी पति को प्रेम कर रही है। मां-बाप बच्चों को प्रेम कर रहे हैं। बच्चे मां-बाप को प्रेम कर रहे हैं। सब सबको प्रेम कर रहे हैं-- और फिर भी पृथ्वी पर इतना अप्रेम है, इतनी घृणा है; इतना वैमनस्य है, इतनी शत्रुता है कि सब एक-दूसरे के जान के ग्राहक बने बैठे हैं! सब एक-दूसरे की गर्दन पर तलवारें टिकाए हुए हैं। जिसको मौका मिल जाए, वही गर्दन काट देगा!

यह मामला क्या है! यह तमाशा क्या है? इतना प्रेम दिया जा रहा है, लिया
जा रहा है और परिणाम में सिवाय युद्धों के कुछ नहीं लगता! तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध लड़े गए हैं! यह तुम्हारा अतीत है! ये तुम्हारे सतयुग, स्वर्णयुग, रामराज्य की कथाएं हैं! इस अतीत के तुम गुणगान गाते थकते नहीं! ये तुम्हारे स्वर्ण-शिखर हैं! ये तुमने आकाश छुए हैं!
तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध! जैसे आदमी लड़ता ही रहा--लड़ता ही रहा! और सारे प्रेम का क्या हुआ? क्योंकि एक व्यक्ति पति भी होता है, बेटा भी होता है, पिता भी होता है, भाई भी होता है, काका भी होता है, मौसा भी होता है, मामा भी होता है--कितना नहीं होता! रिश्ते ही रिश्ते हैं! उसको कितना प्रेम मिलता है? इतना सारा प्रेम जानने के बाद फल तो बड़े कड़वे लगते हैं! और प्रेम की कविताएं, और प्रेम के गीत, और प्रेम के शास्त्र! हां, तुम प्रेम पर बोलना चाहो, तो खूब बोल सकते हो। मगर प्रेम का तुम्हें कुछ अनुभव नहीं। अनुभव नहीं--तो अर्थ भी नहीं।
ऐसा समझो कि अनुभव से अर्थ आता है; शब्दों की जानकारी से अर्थ नहीं आता। जिस दिन अंधे की आंख खुलती है, उस दिन वह जानता है: प्रकाश क्या है। इसके पहले लाख तुमने समझाया हो, और लाख उसने समझा हो...। अंधों की अलग किताबें होती हैं, ब्रेल-लिपि में लिखी हुई। उन पर उंगलियां फेर-फेर कर उसने पढ़ लिया हो; प्रकाश के संबंध में सारी जानकारी, सारे सिद्धांत, सारा भौतिक शास्त्र--जो-जो कहता है, अब तक विज्ञान ने जो खोजा है प्रकाश के संबंध में--कि प्रकाश की गति इतनी होती है: एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! कि प्रकाश शुभ्र रंग का होता है! लेकिन अगर उसे स्पैक्ट्रम से गुजारा जाए, तो वह सात रंगों में टूट जाता है; उससे इंद्रधनुष बन जाते हैं। यह सब पढ़ सकता है अंधा ब्रेल-लिपि में। और न पढ़ सकता हो, तो तुम समझा सकते हो; पढ़-पढ़ कर तुम बता सकते हो।
और ध्यान रखना: अंधा सुनने में बहुत कुशल होता है! स्वभावतः। उसके पास आंखें तो होती नहीं, तो आंखों से जो ऊर्जा व्यय होती थी, वह सब की सब कानों को मिल जाती है। इसलिए अंधे अच्छे संगीतज्ञ होते हैं, अच्छे गायक होते हैं। उनकी ध्वनि पर पकड़ गहरी होती है।
आंख से आदमी की अस्सी प्रतिशत ऊर्जा व्यय होती है। अस्सी प्रतिशत! बाकी तुम्हारी चार इंद्रियों को केवल बीस प्रतिशत ऊर्जा मिलती है। इसलिए तो बहरे को देखकर दया नहीं आती; वैसी दया नहीं आती, जैसी दया अंधे को देखकर आती है। तुम्हारे पास बहरे के लिए कोई समादर-सूचक शब्द नहीं है। लेकिन अंधे को तुम कहते हो--सूरदासजी! लंगड़े को लंगड़ा ही कहते हो; लंगड़ाजी भी नहीं कहते! बहरे को बहरा ही कहते हो; बहराजी भी नहीं कहते! लेकिन अंधे को सूरदासजी कहते हो। क्यों?
अंधे पर बड़ी दया आती है। दया आने जैसी बात है। क्योंकि उसका अस्सी प्रतिशत जीवन कट गया। वह केवल बीस प्रतिशत से जी रहा है। वह केवल अपने जीवन का पंचमांश जी रहा है। यूं समझो कि न जीने के बराबर जी रहा है। आंख ही नहीं, तो क्या जीवन! न रंग है, न रूप है, न सौंदर्य है। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि रंग, रूप और सौंदर्य के न हो जाने पर तुम्हारे जीवन पर परदा गिर जाता है। बचता ही क्या है! लेकिन इसका एक परिणाम होता है कि यह अस्सी प्रतिशत ऊर्जा जो बचती है, आंख की, यह कान को मिल जाती है। कान आंख के सबसे करीब है; नंबर दो।
तो अंधा सुनता बहुत गहराई से है। उसकी स्मृति बहुत मजबूत होती है गहराई की; भूलता ही नहीं। एक दफा सुन लेता है, तो भूलता नहीं। उसकी सुनने के संबंध में संवेदनशीलता बड़ी गहन होती है। जैसे तुम आदमी को उसके चेहरे से पहचानते हो, अंधा तो चेहरे से नहीं पहचान सकता। वह उसकी पग-ध्वनि तक को पहचानने लगता है। अंधा जानता है--कौन आ रहा है। वह अपने मित्र के पैरों की आवाज पहचानता है। तुमने कभी खयाल ही नहीं किया होगा कि आदमी आदमी के पैरों की आवाज में भी फर्क होता है। मगर अंधे को होता है फर्क। स्वभावतः क्योंकि उसको तो और कोई पहचान बची नहीं।
इसलिए अंधे को तुम समझाओ, तो वह समझने में कुशल होता है। शब्दों को तो
वह कान से सुन लेता है, और स्मृति में समा जाते हैं। मगर प्रकाश का अनुभव कैसे होगा?

और प्रकाश का अर्थ अंधे के लिए क्या हो सकता है! कुछ भी नहीं हो सकता। प्रकाश तो दूर, अंधे ने अंधेरा भी नहीं देखा है। आमतौर से तुम सोचते हो कि अंधा बेचारा अंधेरे में रहता होगा। तुम इस गलती में मत पड़ना। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। आंख के बिना अंधेरा भी नहीं देखा जा सकता। जब प्रकाश नहीं देखा जा सकता, तो अंधेरा कैसे देखोगे?
तुम आंख बंद करते हो, तो अंधेरा दिखाई पड़ता है। लेकिन यह मत सोच लेना इससे, यह अनुमान मत लगा लेना कि बेचारा अंधा अंधेरे में रहता होगा। अंधे को अंधेरा भी कभी नहीं दिखाई पड़ा। आंख ही नहीं है, दिखाई पड़ने का कोई सवाल ही नहीं उठता।
तो इसको तुम अंधेरा भी नहीं समझा सकते, प्रकाश तो क्या खाक समझाओगे! मगर शब्द इसे याद हो सकता है। और यह अंधा पंडित हो सकता है शब्द के आधार पर। अंधों के सिवाय और कोई पंडित होता ही नहीं। सभी पंडित सूरदास होते हैं। पंडित यानी अंधा।
गए थे समझने, गए थे हीरे लेने--बीन लाए कंकड़-पत्थर! गए थे अनुभव लेने--
ले आए शब्द। और सोचा कि संपदा ले आए!
रस शब्द को खयाल में रखो। उसका अर्थ अनुभव, स्वाद!
सत्य तुम्हारे कंठ से उतरना चाहिए; तुम्हारी जीभ पर चखा जाना चाहिए। सत्य की प्रतीति एंद्रिक होनी चाहिए। यह रस का अर्थ है।
लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्मा तो इंद्रियों के विपरीत हैं। उनकी
तो चेष्टा यह है कि सारी इंद्रियों को मार डालो। आंखें हों, तो फोड़ लो। यही तो उन्होंने सूरदास की कहानी में जोड़ दिया है। अगर यह कहानी सच है, तो मेरे लिए सूरदास दो कौड़ी के हो गए। लेकिन मैं सोचता हूं कि यह कहानी सच नहीं हो सकती, क्योंकि सूरदास के पद इतने प्यारे हैं कि यह कहानी सच नहीं हो सकती कि उन्होंने एक सुंदर स्त्री को देख कर आंखें फोड़ ली थीं, कि न रहेंगी आंखें और न बजेगी बांसुरी!
मगर आंखें बंद कर लेने से बांसुरी का बजना बंद नहीं होता; और जोर से बजती है! भनभना कर बजती है! सुंदर स्त्री जा रही हो, आंख बंद कर लो; और भी सुंदर मालूम पड़ने लगेगी। इतनी सुंदर कोई स्त्री होती ही नहीं, जितनी आंख बंद कर लेने पर सुंदर हो जाती है। वास्तविक स्त्री में तो क्या खाक सौंदर्य होता है! दो दिन में उड़ जाएगा! थोड़े से परिचय में तिरोहित हो जाएगा।
अब कितने ही लहराते बाल हों, नागिन से लहराते बाल हों, तो भी क्या करोगे! कब तक सिर मारोगे! और नाक बिलकुल तोते जैसी हो, तो भी क्या करोगे! और रंग भी बहुत गोरा और चिट्टा हो, तो क्या करोगे! दो-चार दिन में सब फीका हो जाएगा। दो-चार दिन में स्त्री के शरीर का पूरा भूगोल तुम पहचान लोगे, सब नाप-जोख कर लोगे, फिर बैठे हैं हाथ पर हाथ धरे!
लेकिन अगर आंख बंद कर ली, तो न होगी कभी नाप-जोख, न कभी होगी पहचान--और गैर-पहचान में मन कल्पना से भर जाता है। खूब कल्पना से भर जाता है। स्त्रियां इस सत्य को जानती हैं; सदियों से जानती हैं। इसलिए स्त्रियां उन-उन अंगों को छिपा कर रखती हैं, जिन अंगों के प्रति चाहती हैं कि तुम्हारे भीतर कल्पना जगे! जितनी छुपी स्त्री हो, उतनी ही तुम्हारी कल्पना को प्रज्वलित करती है।
स्त्री की तो बात छोड़ दो, किसी खूसट बुङ्ढे को भी तुम बुरके में उढ़ा कर जरा रास्ते में निकाल दो! समझो--मोरारजी देसाई ही चले जा रहे हैं! बुरका ओढ़े हुए! तो लोगों की छातियां थम जाएंगी; हृदय की धड़कन बंद हो जाएंगी। दुकानें ठहर जाएंगी। लोग कहेंगे--जरा रुको! जरा देख तो लूं! लुच्चे-लफंगे पीछे लग जाएंगे! सीटियां बजने लगेंगी; फिल्मी गाने होने लगेंगे! देखो, कैसी बांसुरियां बजती हैं! वह तो जब तक बुरका नहीं उघड़ेगा, तब तक उपद्रव बहुत फैल जाएगा। दंगा-फसाद हो सकता है! वह तो बुरका जब उघड़ेगा, तब...!
मैं गंगा के किनारे बैठा था अपने एक मित्र के साथ। एक व्यक्ति स्नान
कर रहा था। सुंदर देह। लंबे बाल। पीछे से यूं लगता था, जैसे कोई सुंदर स्त्री हो! वे मित्र बोले कि मुझसे न रहा जाएगा। मैं देख कर आता हूं। जब देह में ऐसा सौष्ठव है, कौन जाने चेहरा भी सुंदर हो।
मैंने कहा, जाओ, जरूर देख आओ।

वे गए। वहां से बिलकुल सिर पीटते लौटे। कहा, हद्द हो गई। एक साधु महाराज नहा रहे हैं।
उनके बड़े घुंघराले बाल थे। बाल पीछे उनके लटक रहे थे। और देह भी उनकी सुंदर थी। जब ये उनको देख कर लौटे चेहरा, तब पता चला। अगर बैठे ही रहते, मुझसे उन्होंने ईमानदारी से न कहा होता, तो उस रात करवटें बदलते। विचार करते रहते। सपने में उतरते। और वह स्त्री कौन थी! और वहां कोई स्त्री थी ही नहीं।
आंख बंद कर लोगे, तो रूप नष्ट नहीं होता--और प्रगाढ़ हो जाता है। क्योंकि कल्पना को अवसर मिल जाता है। इसलिए स्त्रियां अपने को छिपाने की कला में निष्णात हो जाती हैं।
पश्चिम की स्त्रियां इतनी सुंदर नहीं मालूम होतीं, यद्यपि ज्यादा सुंदर हैं। इतनी सुंदर नहीं मालूम होतीं, जितनी पूरब की स्त्रियां मालूम होती हैं। उसका कुल राज इतना है कि पश्चिम की स्त्री ने एक पुराना हिसाब बंद कर दिया। उसने पुरानी चाल-बाजी बंद कर दी, जो संस्कृति और धर्म के नाम पर बड़ी होशियारी से थोपी गई थी। उसने अपने शरीर को उघाड़ दिया है। वह सहज-स्वाभाविक हो गई है। लाखों स्त्रियां नग्न स्नान कर रही हैं समुद्र तटों पर। कोई देखने के लिए भीड़ इकट्ठी नहीं होती। भीड़ इकट्ठी होती ही तब है, जब देखना मुश्किल हो।
भारत में जितने धक्के लगते हैं स्त्रियों को, दुनिया में कहीं नहीं लगते। धार्मिक देश है! पुण्यभूमि है! यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! वे भी इसीलिए तरसते होंगे! कि थक गए उर्वशी और मेनका से। हेमा मालिनी को धक्का देना चाहते हैं। खबरें तो पहुंचती होंगी! कोई देवता भी ऐसा थोड़े ही कि अखबार न पढ़ते होंगे! थोड़ी देर से पहुंचते होंगे अखबार, पहुंचते तो होंगे ही। पढ़-पढ़ कर उनके भी जी पर सांप लोट जाता होगा।
आंख बंद करने से नहीं कुछ होने वाला है।
सूरदास ऐसी मूढ़ता नहीं कर सकते। लेकिन कहानी यही कहती है, और इसीलिए
कि सूरदास का सम्मान करती है। कि अदभुत व्यक्ति थे, कि आंख फोड़ ली उन्होंने! इतने मूढ़ नहीं हो सकते। ऐसी मूढ़ता से ऐसे सुंदर पदों का जन्म नहीं हो सकता। ऐसे रसपूर्ण पद हैं कि रस का अनुभव हुआ ही होगा। नहीं तो यह रस कैसे बहेगा! यह रस कहीं न कहीं से आ रहा है। यह अंधे से नहीं आ सकता। यह तो बहुत संवेदनशील व्यक्ति से आ सकता है। और उन्होंने जैसा वर्णन किया है कृष्ण के सौंदर्य का, उससे प्रतीत होता है कि उनके सौंदर्य का बोध बड़ा प्रगाढ़ रहा होगा।
तुम्हारे धर्मों ने तुम्हारी इंद्रियों को मारने की कला सिखाई है। जिह्वा को मार डालो!
महात्मा गांधी अपने भोजन में साथ में नीम की चटनी भी खाते थे। अब नीम
की कोई चटनी होती है! तुमने कभी सुनी? मगर महात्मा जो न करें, सो थोड़ा! ऐसी ही चीजों से तो वे महात्मा होते हैं।
पश्चिम का एक विचारक लुई फिश महात्मा गांधी पर एक किताब लिख रहा था,
तो वह उनका निकट अध्ययन करने के लिए उनके आश्रम आया। महात्मा गांधी ने उसे अपने साथ भोजन के लिए बिठाया। और सब चीजें तो उसने देखीं, साथ में जब नीम की चटनी आई, उसने पूछा, यह क्या है? तो महात्मा गांधी ने कहा, जरा चख कर देखो! उसने चखी, तो जहर थी! उसने कहा, हद्द हो गई। यह कोई भोजन है!
महात्मा गांधी ने कहा कि इसे करने से धीरे-धीरे स्वाद पर नियंत्रण आ जाता है। रोज-रोज इसको खाने से आदमी का स्वाद पर बल थिर हो जाता है। तुम स्वाद के गुलाम हो। आदमी को होना चाहिए स्वाद का मालिक। सात दिन तुम यहां रहोगे, अभ्यास करो।
लुई फिशर तो बहुत घबड़ाया कि सात दिन यहां मैं टिक पाऊंगा इस नीम की चटनी के कारण! उसने यह सोच कर कि पूरा भोजन खराब करने के बजाय यह बेहतर है कि इसको एक ही दहा पूरा का पूरा गोला गटक कर पानी पी लूं, फिर भोजन कर लूं, ताकि झंझट एक ही दफे में खतम हो जाए; नहीं तो पूरा भोजन खराब होगा!
उसने पूरा गोला गटक लिया। और महात्मा गांधी ने कहा कि और लाओ। देखो, कितनी पसंद पड़ी! अरे समझदार आदमी हो, तो उसको पसंद पड़ेगी ही!

अब लुई फिशर यह भी न बोल सका कि पसंद नहीं पड़ी है। अब कैसे अपनी समझदारी को गंवाए! सो बैठा रहा मन मारे--और दूसरा गोला आ गया। उसने कहा, अब अखीर में निपटाऊंगा इसको। पहले पूरा भोजन निपटा लूं।
एक गोले की जगह दो गोले मिलने लगे रोज उसको! वह अगर न खाए पहला गोला, तो गांधीजी कहें, अरे, भूले जा रहे हो! चटनी पहले। फिर दूसरा गोला आ जाए!
हर आश्रमवासी को नीम की चटनी अनिवार्य थी। ऐसे कहीं होगा, तो फिर कोई जाकर अस्पताल में...जीभ कोई बहुत बड़ी भारी बात नहीं है। उसमें बहुत छोटे- छोटे संवेदनशील तंतु हैं, वे जल्दी से मर जाते हैं। नीम-वीम से कहां मार पाओगे! जिंदगी भर मारने में लग जाएगी। जाकर अपनी जीभ पर एसिड डलवा आओ। नहीं तो जाकर किसी प्लास्टिक सर्जन से कहना कि जरा ये छोटे-छोटे तंतु हैं, इनको साफ ही कर दो; काट ही डालो! फिर तुम्हें स्वाद ही न आएगा--न मीठा, न कड़वा! तुम हो गए जितेंद्रिय! फिर हुए तुम जैन! असली जैन! जिह्वा पर विजय हो गई!
कहां के पुराने ढांचे-ढर्रे में पड़े हुए हो; बैलगाड़ियों से सफर कर रहे हो! अस्पताल में चले जाओ, एक पांच मिनट का काम है; तुम्हारी जबान साफ कर दी जाएगी। तंतु ही बहुत थोड़े से हैं। और पूरी जीभ भी सारा अनुभव नहीं करती। जीभी पर भी तंतु बटे हुए हैं। किसी हिस्से पर कड़वे का अनुभव होता है, किसी हिस्से पर मीठे का। किसी हिस्से पर नमकीन का--अलग-अलग हिस्सों पर।
जरा-सी तो जीभ है, लेकिन उनके बड़े संवेदनशील तंतु हैं। इनको मारने से तुम सोचते हो कि तुम्हारी भोजन पर विजय हो जाएगी! तो तो जीभ ही काट डालो! काटने वाले लोग हुए हैं, जिन्होंने जीभ काट ली और जो योगी समझे गए!
कान फोड़ लो, क्योंकि संगीत है, कोयल की पुकार है। और ये सब खतरनाक चीजें हैं। कोयल की पुकार--तुम क्या सोचते हो, कोयल कोई भजन कर रही है! और हिंदी में भ्रांति होती है। क्योंकि हिंदी में कोयल से ऐसा लगता है कि जैसे मादा पुकार रही है। मादा नहीं पुकारती। मादाएं तो सारी दुनिया की, चाहे किसी पशु-पक्षी की हों, आदमी की हों, जानवरों की हों, बहुत होशियार हैं। पुकार वगैरह नहीं देतीं! कोयला--कोयल नहीं! यह कोयला पुकार रहा है। ये सज्जन पुकार रहे हैं! कोयल तो चुपचाप बैठी रहती है। ये ही पुकार मचाए रखते हैं; ये ही गुहार मचाए रखते हैं। वह जो पपीहा पुकार रहा है, वह भी पुरुष है। वह जो पी कहां कह रहा है...कहना चाहिए--प्यारी कहां! मूरख है; भाषा का ज्ञान नहीं। अंट-शंट बोल रहा है।
मगर तुम सुन लेते हो। तुम्हें पता नहीं कि यह सब पुकार तो मची हुई है वही--महात्माओं के खिलाफ! यह प्रकृति का रस बह रहा है। तुम कान फोड़ लो अपने।
पक्षियों के गीत हैं, संगीत है--यह सब खतरनाक है। तुम्हारे महात्माओं
की मान कर चलो, तो तुम अपनी इंद्रियों को धीरे-धीरे फोड़ते चले जाओ, तोड़ते चले जाओ।
अलग-अलग धर्मों ने अलग-अलग इंद्रियों को तोड़ने के उपाय खोजे हुए हैं। इसलाम संगीत के खिलाफ है। क्योंकि संगीत कहीं न कहीं कामवासना से जुड़ा हुआ है। यह आकस्मिक नहीं है संगीत कामवासना से जुड़ा हुआ है, क्योंकि सारे पशु-पक्षियों की पुकारें और गीत कामवासना के ही अंग हैं। मनुष्य ने भी उनसे ही संगीत सीखा है।
वेश्यालयों में संगीत कोई अप्रसांगिक रूप से नहीं चलता है। दरबारों में राजाओं के जहां वैभव और विलास था, वहां संगीत की महफिलें जमी रहती थीं। जब से दरबार उखड़ गए, राजा न रहे, संगीत के भी प्राण निकल गए। संगीत में वे ऊंचाइयां न रहीं, क्योंकि खरीददार न रहे। अब फिल्मी संगीत बचा है, क्योंकि खरीददार भी तीसरी कोटि के हैं, इसलिए तीसरी कोटि का संगीत भी होगा। फिल्मी संगीत को तुम गाली मत दो। वह जनता का संगीत है! जनता पार्टी का! जनता की जितनी बुद्धि, सार्वजनिक जितनी अकल! वह जो शास्त्रीय संगीत था, वह दरबारी था। उसके लिए सुसंस्कार चाहिए थे। उसके लिए वर्षों की साधना चाहिए थी। वर्षों की साधना के बाद भी मुश्किल से मिलता था।
भारत का अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह कवि भी था। उसका कवि नाम था जफर। बहादुर शाह जफर। मिर्जा गालिब से वह अपनी कविताओं में संशोधन करवाता था। गालिब उसके गुरु थे। और भी उसके गुरु थे। उर्दू शायरी में यह परंपरा

है कि तुम क्या लिखोगे अपने आप! इतना लिखा जा चुका है! ऐसे-ऐसे बारीक और नाजुक खयाल बांधे जा चुके हैं कि किसी गुरु के पास बैठ कर पहले समझो। और जरा से शब्दों के तालमेल से बहुत फर्क पड़ जाता है। तो वह सीख लिया करता था। उसने एक दिन मिर्जा गालिब को पूछा कि आप कितने गीत रोज लिख लेते हैं? मिर्जा गालिब ने कहा, कितने गीत रोज! यह कोई मात्रा की बात है! अरे कभी
तो महीनों बीत जाते हैं और एक गीत नहीं उतरता। और कभी बरसा भी हो जाती है। यह अपने हाथ में नहीं। यह तो किन्हीं क्षणों में झरोखा खुलता है। किसी अलौकिक जगत से कोई किरण उतर आती है, तो उतर आती है। बंध जाती है, तो बंध जाती है। छूट जाती है--छूट जाती है। चूक जाती है--चूक जाती है! कभी तो आधा ही गीत बन पाता है, फिर आधा कभी पूरा नहीं होता। अपने हाथ में नहीं। प्रतीक्षा करनी होती है।
जफर ने कहा, अरे, मैं तो दिन में जितने चाहूं, उतने गीत लिख लूं। पाखाने में बैठे-बैठे मुझे गीत उतर आते हैं!
गालिब तो हिम्मत के आदमी थे। गालिब ने कहा कि महाराज, इसीलिए आपके गीतों में पाखाने की बदबू आती है!
हिम्मतवर लोग थे। कोई अब बहादुर शाह जफर सम्राट थे, इसलिए कोई गालिब छोड़ देंगे उनको, ऐसा नहीं था। कहा कि अब मैं समझा। अब मैं समझा राज! कभी-कभी मुझे भी बदबू आती थी आपके गीतों में...कि मामला क्या लिखते हो आप! कूड़ा- कर्कट! अब जब पाखाने में बैठ कर लिखोगे, तो फिर ठीक ही है! कृपा कर के ऐसा न करो।
जफर को चोट भी लगी, और समझ में भी बात आई। और इसके बाद ही जफर ने जो गीत लिखे--थोड़े से लिखे, मगर गजब के लिखे। वे फिर जफर ने नहीं लिखे, जैसे रस ही बहा।
रस का यह पहलू समझो। तुम्हारी इंद्रियां ज्यादा संवेदनशील होनी चाहिए। उनकी संवेदनशीलता पराकाष्ठा पर पहुंचनी चाहिए। आंख उतना देखे, जितना देख सकती है। रूप की तहों में उतर जाए; रूप की गहराइयों को छू ले। कान उतना सुने जितना सुन सकता है। संगीत की परतों और परतों में उतरता चला जाए; संगीत की तलहटी को खोज ले, ऐसी डुबकी मारे, क्योंकि मोती ऊपर नहीं फिरते--तिरते; गहरे में पड़े होते हैं। जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बोरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।
और तुम्हारे महात्माओं को मैं देखता हूं, सब किनारे बैठे हैं! डर के मारे बैठे हैं कि कहीं डूब न जाएं! धार गहरी न हो; कहीं बह न जाएं। भयभीत, सिकुड़े हुए! किनारे पर, पकड़े बैठे हुए हैं अपने को। अपनी सारी इंद्रियों को तोड़ रहे हैं। क्योंकि भयभीत हैं कि कहीं इस इंद्रिय के जाल में न फंस जाएं, उस इंद्रिय के जाल में न फंस जाएं! इंद्रियों का जाल नहीं है। इंद्रियां तो तुम्हारी रस को ग्रहण करने की संभावनाएं हैं।
परमात्मा तो सब रूपों में छाया हुआ है। आंख अगर गहराई से देखेगी, तो
हर रंग में उसका रंग है। कान अगर गहराई से सुनेंगे, तो हर ध्वनि में उसकी ध्वनि है, उसका नाद है, ओंकार है--इक ओंकार सतनाम! वह जगह-जगह सुनाई पड़ेगा। मगर बहुत गहरे सुनने की कला आनी चाहिए।
और तब स्वाद में भी वही मिलेगा। धन्य थे वे लोग, अदभुत थे वे लोग, जिन उपनिषद के ऋषियों ने कहा--अन्नं ब्रह्म! कि अन्न ब्रह्म है। ये लोग स्वाद के विपरीत नहीं हो सकते। जिन्होंने भोजन में भगवान को पा लिया हो, ये लोग स्वाद के कैसे विपरीत हो सकते हैं! जो अन्न को भी ब्रह्म कह सके, ये तुम्हारे तथाकथित महात्माओं से बड़े अलग लोग थे।
छूट गए सूत्र हमारे हाथ से कहीं। रास्ता कहीं भटक गया। कहीं बीच में
हम और ही दिशाओं में निकल गए। हमने स्वास्थ्य का मार्ग छोड़ दिया; हमने रुग्ण होने की दिशा पकड़ ली। हम जीवन-विरोधी हो गए। और जीवन परमात्मा है। अगर तुम स्पर्श की क्षमता में पूरे के पूरे प्रवीण हो जाओ, तो तुम जो छुओगे, उसी में परमात्मा का स्पर्श मिलेगा।
सारी इंद्रियां संवेदनशील होनी चाहिए। संवेदना पराकाष्ठा पर होनी चाहिए, तब तुम जानोगे कि वह रसरूप है।

तुम देखते हो, सहजानंद, तुमने जहां से भी इस सूत्र का हिंदी अनुवाद लिया होगा, वह अनुवाद किसी पंडित ने किया है। वह अनुवाद किसी द्रष्टा का नहीं है। तुम फर्क देखो!
सूत्र है--रसो वै सः। सीधा-साधा अर्थ है: वह रस रूप है। लेकिन अनुवाद में तुम देखते हो, फर्क हो गया: भगवान रसरूप है। वह तत्काल भगवान हो गया! वह का मजा और। भगवान में बात बिगड़ गई; वह न रही। क्योंकि भगवान का अर्थ हो गया--व्यक्ति। वह तो निर्वैयक्तिक संबोधन था। भगवान का अर्थ हो गया--राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर--व्यक्ति। व्यक्ति ही भगवान हो सकता है। जब भी हम भगवान शब्द का उपयोग करते हैं, तो वह व्यक्तिवाची हो जाता है।
कृष्ण को भगवान कहो--ठीक। बुद्ध को भगवान कहो--ठीक। ये व्यक्ति हैं।
और इन व्यक्तियों ने रस पिया है। इन व्यक्तियों ने वह पिया है, इसलिए इनको भगवान कह सकते हैं। उसको जिसने पिया, वह भगवान। लेकिन उसको भगवान मत कहो। उसको भगवान कहने से आकार दे दिया, रूप दे दिया। और वह तो सभी आकारों में समाया हुआ है; निराकार है। वह तो निर्गुण है--सगुण नहीं। वह तो सभी आकृतियों में है, इसलिए उसकी कोई आकृति नहीं हो सकती।
भगवान कहा कि मुश्किल हो गई शुरू। भगवान कहते ही तत्क्षण तुम्हारी धारणाएं जो भगवान की हैं--किसी के चतुर्भुजी भगवान हैं; किसी के त्रिमुखी भगवान हैं; किसी के भगवान के हजार हाथ हैं! किसी के भगवान का कोई रूप है; किसी के भगवान का कोई रूप है! किसी के भगवान गणेशजी हैं; हाथी की सूंड़ लगी हुई है! किसी के भगवान जी हनुमानजी हैं!
बंदर भी हंसते होंगे, कि हम ही भले, कि किसी आदमी की पूजा तो नहीं करते!
ये आदमियों को क्या हो गया है! कि बंदरों की पूजा कर रहे हैं! हाथी भी चुपचाप मुस्कुराते होंगे कि वाह! हम ही भले! कि आदमी मिल जाए अकेले में, तो वो पटकना दें उसको कि रास्ते पर लगा दें! हम किसी आदमी की पूजा नहीं करते! मगर यह हाथी रूपधारी गणेशजी की पूजा हो रही है! जय गणेश, जय गणेश का गुजार चल रहा है! गणेशोत्सव मनाए जा रहे हैं! आदमी अदभुत हैं! वह कोई न कोई रूप देना चाहता है। कोई न कोई रंग भरना चाहता है।
तुम्हारा मन निराकार में जाने से डरता है।
जिसने भी यह अनुवाद किया होगा, वह निराकार से घबड़ाया हुआ है। और शायद उसे पता भी न हो कि उसने फर्क कर दिया।
रसो वै सः तो सीधा-सादा शब्द है। मैं तो संस्कृत जानता नहीं, मगर यह तो सीधी-सीधी बात है। इसके लिए कुछ संस्कृत जानने की जरूरत नहीं है। इसमें भगवान कहीं आता नहीं शब्द। वह रसरूप है। यह सूत्र गजब का है। लेकिन जैसे ही तुमने कहा--भगवान रस-रूप है, बात बिगाड़ दी। भगवान कैसे रस-रूप हो सकता है! भगवत्ता रस-रूप हो सकती है। मगर भगवत्ता फिर व्यक्ति से मुक्त हो गई। इसलिए मैं तुमसे कहना चाहता हूं: भगवान तो हमने उन लोगों को कहा है, जिन्होंने भगवत्ता को चखा और अनुभव किया है। इसलिए बुद्ध को भगवान कहो-- ठीक। महावीर को भगवान कहो--ठीक। जीसस को भगवान कहो--ठीक। कबीर को, नानक को भगवान कहो--ठीक। मगर उस विराट को मत सीमा में बांधो। उसमें तो सब बुद्ध खो जाते हैं, सब महावीर खो जाते हैं; सब कृष्ण और सब क्राइस्ट उसमें लीन हो जाते हैं। वह तो अनंत है। ये तो सब उसकी किरणें हैं; एक-एक किरणें। तुम उसे किरणों में मत बांधो। उसकी कोई सीमा नहीं है।
इस समय पश्चिम में बहुत झगड़ा है कि परमात्मा को हम क्या मानें--स्त्री
या पुरुष! क्योंकि स्त्रियों की बगावत चल रही है पश्चिम में। और ठीक बगावत चल रही है। अंग्रेजी में तो स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग सर्वनाम हो जाता है। हिंदी में तो नहीं होता। इसलिए हिंदी में तो हमें सुविधा है। वह रस-रूप है--कोई अड़चन नहीं। लेकिन अंग्रेजी में वह को क्या करोगे! अगर कहो-- ही, तो वह पुरुष हो गया। अगर कहो--शी, तो वह स्त्री हो गया! अगर कहो--इट, तो वह वस्तु हो गया!
अब तक तो उसको ही कहा जाता रहा है--पुरुषवाची।
मैंने सुना है कि पिछला पोप जब मरा, तो उसके मरने के बाद एक अफवाह सारी दुनिया में उड़ गई थी। पता नहीं तुम तक पहुंची या नहीं पहुंची! कि जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, और उसने सेंट पीटर से कहा कि जल्दी द्वार

खोलो। जीवन भर की आकांक्षा तृप्त करनी है। परम पिता परमात्मा से मुझे मिला दो!
पीटर ने सिर झुका लिया और कहा कि सुनो, एक बात पहले खयाल में रखो। एक
तो वह परम पिता नहीं है--परम माता है! और दूसरा--गोरी नहीं है; काली है; नीग्रो है! इन दो की तैयारी रखो, फिर मिलवा देता हूं! नहीं तो एकदम तुम्हारी छाती टूट जाएगी देख कर!
वहीं बैठ गए पोप महाराज दरवाजे पर। आंखें बंद कर लीं कि यह क्या हुआ! स्त्री, पहले तो ईश्वर को मानना--और फिर वह भी नीग्रो! नीग्रो को तो घुसने न दें चर्च में।
प्रसिद्ध कहानी है कि एक नीग्रो चर्च में जाना चाहता था, तो उसने पादरी से प्रार्थना की। पादरी ने कहा कि भई, कुछ बुराई तो नहीं! क्योंकि पादरी को बोलना तो पड़ता है मीठी-मीठी बातें। अरे, उसके सामने तो सब बराबर हैं। क्या काला--क्या गोरा! मगर पहले पात्रता अर्जित करो--चर्च में आने से क्या होगा! पहले अपने को शुद्ध करो!
पादरी ने सोचा, कौन कब अपने को शुद्ध कर पाया है! और ऐसी शर्तें बता दूंगा कि यह क्या, इसकी सात पीढ़ियां भी शुद्ध न हो पाएं! तो कहा, पहले कामवासना छोड़ो, लोभ छोड़ो, तृष्णा छोड़ो--सब छोड़-छाड़ कर--अहंकार विसर्जित करो--फिर आओ।
ये शर्तें किसी सफेद चमड़ी वाले के लिए नहीं लगाई थीं उसने कभी। यह पात्रता सफेद चमड़ी वाले से नहीं मांगी जाती थी। यह सफेद चमड़ी वालों का ही चर्च था। मगर पादरी सीधा नहीं कह सकता था। आखिर पादरी को तो अच्छी बातें कहनी चाहिए; मीठी-मीठी; सबसे! उसको सब के प्रति दया भाव दिखलाना चाहिए। मगर पीछे तो राजनीति चलती है--वही की वही। काले और गोरे का भेद बना ही रहता है। तो बेचारा नीग्रो सीधा-सादा आदमी था, वह जाकर प्रार्थना में लग गया, अपने को शुद्ध करने में लग गया। पंद्रहवें दिन वह आया। उसको आते देखकर...दूर से देखा पादरी ने कि वह फिर आ रहा है! उसने कहा, क्या इतने जल्दी ये सारी शर्तें पूरी कर लीं! लेकिन जैसे-जैसे करीब आया, पादरी बहुत हैरान हुआ। उसे डर लगा कि अब बड़ी मुश्किल हो गई! उसके चारों तरफ एक आभा-मंडल था, जो कि परम पुरुषों के पास ही होता है। लगता है: इस नीग्रो ने तो हाथ मार लिया! इसको किस बल पर रोकूंगा! घुसने तो नहीं देना है। यह लगता तो बिलकुल परम पवित्र होकर चला आ रहा है। इसकी सुगंध मालूम होती है, दूर से! इसकी रोशनी साफ है। इसके शरीर के चारों तरफ वर्तुलाकार प्रकाश का पुंज है। मारे गए! उसने दरवाजे पर ताला लगा कर बाहर ही खड़ा हो गया सड़क पर, कि कहीं यह घुसने ही लगे, तो मैं रोक भी न सकूंगा, इतना प्रभावशाली मालूम हो रहा है। इसके प्रभाव में न आ जाऊं!
मगर वह आया ही नहीं। चर्च के सामने थोड़ी दूर खड़ा रहा। वहां से खिलखिला
कर हंसा और लौट गया! इससे और बड़ी मुश्किल हुई पादरी को। भागा; रोका, कि सुन भाई! चर्च में नहीं आना है?
उसने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना। कल रात परमात्मा प्रकट हुए और कहने लगे--भइया, तू नाहक मेहनत कर रहा है। वे मुझको नहीं घुसने देते! वे तुझको क्या घुसने देंगे! वे हरामजादे ऐसी-ऐसी शर्तें बताते हैं कि मैं पूरी नहीं कर पाता! तो तू कहां की झंझट में पड़ा है! और मैं खुद ही आ गया। अब तुझे वहां जाने की जरूरत नहीं है। तो मैं तो सिर्फ यह देखने आया था कि क्या गजब खेल चल रहा है! तुम परमात्मा तक को नहीं घुसने देते! और जब तुमने मुझे देखा, जल्दी से तुमने ताला मारा और चाबी लगा कर खड़े हो गए! देख कर मैं हंसा, कि अरे बुद्धुओं, तुम्हारा मंदिर खाली है! किस पर ताला मार रहे हो! तुम उसको देख कर भी ताला मार लेते हो।
तो अगर पोप बैठ गया हो, उसकी धक-धक बंद हो गई हो, या झटका खा कर फिर से
मर गया हो, दुबारा, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
ईश्वर को जैसे ही तुमने रूप दिया, आकार दिया--झंझटें खड़ी होंगी। फिर
वह ईश्वर स्त्री है या पुरुष? फिर वह गोरा है या काला? फिर वह चीनियों जैसा दिखाई पड़ता है, कि भारतीयों जैसा या अंग्रेजों जैसा? बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी! दुबला-पतला है, मोटात्तगड़ा है; जवान है, बूढ़ा है? फिर हजार सवाल खड़े हो जाते हैं।

नहीं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं: परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है।
यद्यपि परमात्मा की परम ऊर्जा कभी-कभी व्यक्तियों में उतरी है।
और तुम्हारे तो अजीब तर्क हैं। तुम्हारा तर्क तो यह है कि तुम कहते हो, कोई व्यक्ति कैसे परमात्मा हो सकता है! और मैं तुमसे कहता हूं--व्यक्ति ही परमात्मा हो सकता है। इसलिए बुद्ध को तुम भगवान कहो, मुझे एतराज नहीं।
तुम कृष्ण को भगवान कहो, मुझे एतराज नहीं। मगर भगवान को भगवान मत कहो। उसमें मुझे एतराज है। क्योंकि फिर तुम उसके लिए सीमाएं बांध रहे हो। भगवान को तो सिर्फ भगवत्ता कहो। वह तो सिर्फ गुण-धर्म है। इसलिए बुद्ध ने उसे धर्म कहा, और लाओत्सू ने उसे ताओ कहा। लाओत्सू ने कहा कि उसका कोई नाम नहीं है, इसलिए मैं नाम गढ़ लेता हूं--ताओ। ताओ का कुछ अर्थ नहीं होता। अ, ब, स--कुछ भी कहो; मगर उसको कुछ ऐसा नाम दो, जिससे उसका रूप न बनता हो। यही तो हमने भी किया इस देश में; हमने उसे ओंकार कहा। अब तुमने कभी सोचा--ओंकार क्यों कहा? लोग ओंकार का पाठ करते रहते हैं; धुन मचाए रखते हैं--ओम-ओम। कभी सोचते भी नहीं कि हमने उसे ओम क्यों कहा।
ओम वैसा ही है, जैसा ताओ। ओम का क्या रूप, क्या रंग! ओम कोई व्यक्ति नहीं है। और इसलिए हमने तो एक और बात भी की जो ताओवादियों ने नहीं की। हम ओम को साधारण भाषा के अ उ म से नहीं लिखते। हमने उसके लिए अलग ही एक प्रतीक बना लिया ओंकार का, ताकि वह भाषा के शब्दों से अलग ही पड़ जाए। प्रतीक मात्र है हमारा ओम। हमारी बारह खड़ी में नहीं आता कहीं भी। हमारे वर्णाक्षरों में नहीं आता कहीं भी। अंग्रेजी में लिखने में बड़ी तकलीफ होती है। अंग्रेजी में ॐ को कैसे लिखो! ए यू एम करके लिखना पड़ता है। मगर वह गलत है। इसलिए मैक्समूलर ने, जिसकी कि गहरी पैठ थी भारतीय शास्त्रों में, ओम को ॐ के प्रतीक में ही लिखा; ए यू एम में नहीं लिखा, क्योंकि वह गलती हो जाएगी। उसको तो प्रतीक ही रखना पड़ेगा; उसका कोई अनुवाद नहीं हो सकता। जैसे ताओ का कोई अनुवाद नहीं हो सकता, वैसे ही ओम का कोई अनुवाद नहीं हो सकता। ॐ कोई शब्द ही नहीं है। जो शब्द में नहीं बंधता, उसकी तरफ इशारा है।
इसलिए मत कहो कि भगवान रस-रूप है। कहो--भगवत्ता रस-रूप है। फिर बेहतर
तो यही है कि वह कहो। क्योंकि वह मैं सब समा जाएगा--स्त्री भी, पुरुष भी, वस्तु भी।
हमारा वह अंग्रेजी के वह से बहुत बड़ा है। हमारा वह विराट है। उसमें कोई सीमा नहीं बंधती।
दूसरा, सूत्र का हिस्सा है:
रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। अनुवादक ने कहा है--उसी रस को पाकर प्राणी-मात्र आनंद का अनुभव करता है। इतने ज्यादा शब्दों की जरूरत नहीं है। सूत्र का तो सिर्फ इतना ही अर्थ होता है: उस रस को उपलब्ध करना ही आनंद है। रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। संस्कृत को जानने की जरूरत ही नहीं है। सीधी-सी बात है। रसं ह्येवायं लब्ध्वा--उस रस को जिसने पा लिया, उपलब्ध कर लिया, लब्ध कर लिया; जो उस रस-रूप हो गया--उसे आनंद उपलब्ध हुआ। आनंद की भी कुंजी दे दी।
दुख क्या है? उस रस से च्युत हो जाना दुख है। जैसे वृक्ष को कोई जड़ों
से उखाड़ ले, जमीन से उखाड़ ले, बस, दुख शुरू हो गया वृक्ष के लिए, क्योंकि जमीन में ही उसका रस था। जमीन से ही वह रस पाता था। जमीन से उखाड़ लिया, कि सूखने लगा। पत्ते झरने लगे, पीले पड़ने लगे। दो-चार दिन हरा रह भी जाए, तो रह जो, पुराने रस के आधार पर। जो रस के संग्रह उसके भीतर होंगे, कितनी देर चलेंगे! थोड़ी देर में चुक जाएंगे; फिर सूख जाएगा। अब रस की धारा नहीं बहती; रोज-रोज रस नहीं आता। अब पुराने रस के बल पर उधार कितना चल सकता है!
आनंद का अर्थ है: अपनी जड़ों को भगवत्ता में जमा लेना। उसमें जमा लेना; उसके साथ जुड़ जाना।
हमारा अहंकार हमें तोड़ता है। मैं अलग हूं--बस, यही हमारी भ्रांति है।
एक मात्र भ्रांति, एकमात्र अज्ञान, कि मैं पृथक हूं, अलग हूं। वही हमें तोड़े हुए है। जिस दिन इसको छोड़ दोगे, उस दिन तुम उस रस से जुड़ जाओगे।
रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। और फिर क्या देर है! आनंद ही आनंद है। उसके साथ जुड़ गए, कि पुनः रस के स्रोत से जुड़ गए। फिर तुम्हारी जड़ें जीवित हो उठेंगी, फिर नए पत्ते आ जाएंगे। फिर नए पत्ते, नए फूल, नए फल। आया

वसंत। आया मधुमास! फिर पक्षी नीड़ बनाएंगे। फिर कोयल कूकेगी। फिर पपीहा बोलेगा। फिर हवाओं में नाचोगे तुम। फिर सूरज की किरणों में, और चांद की किरणों में नहाओगे।
लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें प्रकृति से तोड़ा है-- जोड़ा नहीं। उनकी सारी चेष्टा यह है कि तुम कितने अप्राकृतिक हो जाओ। उनका सारा उपाय यह है कि तुम्हारा अहंकार कैसे और मजबूत हो जाए। इसलिए तुम्हारे साधु-संन्यासियों का जैसा अहंकार होता है, वैसा अहंकार किसी और का नहीं होता! उनकी नाक पर जैसा अहंकार चढ़ा होता है, वैसा किसी के ऊपर नहीं चढ़ा होता है। स्वाभाविकतः भी चढ़ेगा, क्योंकि जो उन्होंने किया है, किसने किया है! त्याग किया, तो अकड़ आई। धन छोड़ा, तो अकड़ आई। पत्नी छोड़ी, तो अकड़ आई। तुम तो छोड़ो!
और इसलिए तुम चकित होओगे जानकर यह बात कि जो लोग इन महात्माओं को पूजते हैं, वे अकसर इनसे विपरीत होते हैं! जैसे जैन मुनि को जैन पूजते हैं। जैन मुनि की पूजा क्या है? क्योंकि उसने धन को लात मार दी। और जैनियों को यही सबसे बड़ा चमत्कार दिखाई पड़ता है दुनिया में! धन को--और लात मारना! धन को तो वे छाती से लगाते हैं।
सिर्फ भारत एकमात्र देश है जहां लक्ष्मी की पूजा होती है--नोटों की पूजा होती है! पहले कम से कम चांदी के, सोने के सिक्के रखते थे। अब वे भी न रहे। अब तो कागज के नोट रख लेते हैं लोग! लेकिन ताजे निकलवा लाते हैं बैंक से--बिलकुल चमचमाते! उनको रखकर पूजा होती है। मेरे घर में भी होती थी! मगर जैसे ही मुझे होश आया, मैंने अपने घर के लोगों को कहना शुरू किया, यह क्या पागलपन है! कुछ तो होश की बातें करो! रुपए--नोट! चांदी के सिक्के बचा रखे थे पुराने--पूजा के ही लिए खास करके। कि नोट की पूजा करते उनको भी थोड़ी शर्म लगती थी! और मैं हंसता था कि यह क्या कर रहे हो! तो उन्होंने कुछ सिक्के बचा रखे थे। वे कहते, चलो, नोट हटा दो; सिक्के रख लेते हैं। मगर हमारी पूजा में बाधा मत डालो! मैं उनसे कहता कि नोट हुए कि सिक्के हुए, सब बराबर हैं। चांदी का हुआ नोट, कि कागज का हुआ नोट--नोट का मतलब नोट! किसका बना है, इससे क्या फर्क पड़ता है! धातु से बना है, कि कागज से बना है--दोनों ही एक से हैं! मगर तुम पूज रहे हो। लक्ष्मी की पूजा!
दीपावली का अवसर ही लक्ष्मी-पूजा का अवसर है! और इस देश को हम धार्मिक देश कहते हैं! आध्यात्मिक देश! सारी दुनिया भौतिकवादी है, और हम अध्यात्मवादी हैं! और दुनिया में कहीं लक्ष्मी की पूजा नहीं होती। लोग लक्ष्मी को भोगते हैं। भोगो मजे से। पूजना क्या है! लक्ष्मी तुम्हारे पैर दबाए--ठीक! दबवा लो; कोई हर्जा नहीं। खुद विष्णु भगवान दबवा रहे हैं, तो तुम्हें क्या तकलीफ हो रही है! लेटे हैं, और लक्ष्मी पैर दबा रही है!
अब लक्ष्मी पैर दबाती हो, तो दबवा लिए, कि दबा बाई! कोई हर्जा नहीं। मगर मूरख की तरह तुम पूजा कर रहे हो, तो हद्द हो गई! मगर तुम्हारी भी तरकीब हम समझ रहे हैं कि मतलब तुम्हारा क्या है! तुम भी समझ गए कि लक्ष्मी की पूजा करो, तो लक्ष्मीनारायण तक पहुंच हो जाएगी! जैसे कि किसी नेता तक पहुंचना हो, तो पत्नी की सेवा करो। साड़ी ले जाओ, मिठाई ले जाओ। आइस्क्रीम पहुंचा दो। फूल-फल पहुंचाओ। डाली लगा दो! पत्नी की सेवा करो। क्योंकि तुम जानते हो कि पति चाहे कितना ही बहादुर हो, मगर पत्नी के समाने बस दुम दबा लेते हैं! अगर पत्नी ने कह दिया कि इस आदमी का खयाल रखना, तो अब उनके बस के बाहर है। खयाल रखना ही पड़ेगा!
समझदार आदमी सीधे-सीधे कलेक्टर या कमिश्नर या गवर्नर या मिनिस्टर के पास नहीं जाते। पत्नी की सेवा करते हैं। पत्नी जल्दी प्रसन्न भी हो जाती है। साड़ी ले आए एक, और चित्त प्रसन्न हो गया उनका! एक गहना बनवा लाए, और चित्त प्रसन्न हो गया। और जब पत्नी प्रसन्न हो गई, तो पति की क्या हैसियत! तो तुम वही तरकीब लगा रहे हो लक्ष्मी के साथ। लक्ष्मीनारायण को प्रसन्न करना है! तुम जानते हो कि यह बाई पांव दबाती है लक्ष्मीनारायण के। पांव दबाते-दबाते कह देगी कि जरा खयाल रखना: यह फलां-फलां आदमी है। यह अपना आदमी है; इसका ध्यान रहे! तो लक्ष्मीनारायण भी जानते हैं कि ठीक है। ध्यान रखना पड़ेगा, नहीं तो कल ये चोटियां लेगी; पांव-मांव नहीं दबाएगी! सोने नहीं देगी। खोपड़ी खाएगी! कि हां बाई, करेंगे। जो कहेगी, वह करेंगे!

लक्ष्मी की पूजा चल रही है! क्या बेहूदी बात है! सिक्के पूज रहे हो। और फिर भी तुम्हारी अकड़ नहीं जाती आध्यात्मिक होने की! और तुम्हारे भ्रम नहीं टूटते!
जैन धन का पागल है; परिग्रही है। और इसलिए जो धन को छोड़ देते हैं, कहता
है कि वाह! यह है करामात! क्यों करामात दिखाई पड़ती है? मुझे इसमें करामात दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि पहले तो मैं यह मानता हूं कि धन को पकड़ना ही मूर्खता है। वह पहली मूर्खता। फिर दूसरी मूर्खता--उसको छोड़ना! पकड़े ही नहीं कभी, तो छोड़ना क्या! अब जैसे मुझसे कोई कहे कि छोड़ो। छोडूं क्या खाक! कुछ कभी पकड़ा नहीं। जेब भी पास में नहीं है! एक पैसा बैंक में नहीं है! छोड़ना क्या है! जहां अपना कुछ है ही नहीं, वहां छोड़ना क्या है--पकड़ना क्या है!
लेकिन जो पकड़ने में दीवाने हैं, वे फिर छोड़ने का आग्रह रखते हैं। वे कहते हैं: जो छोड़े, वही त्यागी। यह भोगियों की भाषा है। यह भोगियों का तर्क है।
जो स्त्रियों के पीछे दीवाने हैं, वेश्यालय जिनकी वजह से आबाद हैं, ये
उन मुनियों के चरणों में सिर रखेंगे कि वाह! क्या करामात--स्त्री को छोड़ कर चल दिए! अरे, हम अपनी स्त्री को क्या छोड़ें, अपने पड़ोसियों की स्त्री तक को नहीं छोड़ पा रहे हैं, और तुम अपनी तक को छोड़ कर चल दिए! है करामात, है चमत्कार! त्याग इसको कहते हैं! हम दूसरों की भी नहीं छोड़ सकते, जो अपनी हैं ही नहीं--पहली बात। मगर उनको भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। उन पर भी नजर लगी रहती है! अपने को तो छोड़नी ही कैसे!
मगर जिसने छोड़ दिया--उसकी पूजा!
तुम अकसर पाओगे कि जिस धर्म के मानने वाले जिस ढंग के होंगे, ठीक उससे विपरीत उनकी पूजा के आधार होंगे। ठीक उसके विपरीत! और इससे समझ लेना कि दोनों के दोनों एक-सी मूर्खता में पड़े हैं।
वे मुनि, वे महात्मा और उनके अनुयायी--इनमें कुछ फर्क नहीं है। इनका तर्क एक है, गणित एक है। ये दोनों एक दूसरे का गणित समझते हैं। वह मुनि भी जानता है कि मुझे क्यों पूजा मिल रही है, क्योंकि मैंने धन छोड़ा, पत्नी छोड़ी। पूजा करने वाला भी जानता है कि महाराज, ध्यान रखना! कहीं अगर पकड़े गए, तो मुश्किल हो जाएगी। धन छूना ही मत; देखना ही मत। स्त्री से सावधान! तेरापंथ जैनियों में एक शास्त्र है, जिसमें नौ बड़े हैं। नौ बातों की
आड़ रखना। इन नौ बातों का ध्यान रखना। इनमें से कोई बात भीतर घुस गई कि तुम्हारा खातमा है! तो जैसे झाड़ को बचाने के लिए बागुड़ लगाते हैं, ऐसे ही नौ बागुड़! एक बागुड़ से भी काम नहीं चलेगा; नौ बागुड़ लगाना है। और उसके भीतर जो पौधे होंगे, ये मुरदा तो होने ही वाले हैं। नौ बागुड़ जिस पर लगी हों, नौ परकोटों से जो घेरा गया हो, और जिसकी जिंदगी इस बात पर निर्भर हो कि अगर जरा-सा कहीं दरवाजा खुला और हवा या रोशनी आ गई या एक हवा की लहर आ गई या पानी की एक बूंद आ गई कि इनका सब नष्ट हो गया!
जिसकी चीजें इतनी कमजोरी पर खड़ी हों, इसका बल क्या! मगर इसका बल एक है: इसके अहंकार को प्रशंसा मिल रही है। गौरव मिल रहा है। इसकी अकड़ को पूजा जा रहा है।
जीवन-विरोधी लोग सिर्फ अहंकार का मजा ले रहे हैं--और कुछ भी नहीं। और अहंकार अधर्म है।
अहंकार का अर्थ है: उस रस से च्युत हो जाना। इसलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में रस बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता। वे तो विरस होने की बात सिखाते हैं तुम्हें! अब यह बड़े मजे की बात है!
तुम्हारा सूत्र तो है--रसो वै सः। तैत्तिरीय उपनिषद क्या कहता है, और तुम्हारे महात्मा तुम्हें क्या समझाते हैं कि विरस हो जाओ, विरागी हो जाओ, उदासीन हो जाओ। रस ही न लो किसी चीज में। रस का त्याग करो। जितना बन सके, उतना करो!
जैनों में दो व्रत होते हैं--महाव्रत और अणुव्रत। तुमसे अगर पूरा महाव्रत न हो सके, रस पूरा त्याग करने का, तो अणुव्रत तो करो। कम से कम थोड़ा छोड़ो। तुमसे अगर नमक समझो कि पूरा नहीं छोड़ा जाता कि हमेशा बिना नमक का भोजन करो, तो सप्ताह में एक दिन तो छोड़ दो। तो अणुव्रत हुआ! नमक का क्या

कसूर है! नमक की क्या खराबी है? एक दिन नमक छोड़ देते हैं लोग, फिर उनकी अकड़ देखो! चाल देखो! अकड़े हुए चल रहे हैं। नमक छोड़ दिया उन्होंने एक दिन के लिए! एक दिन शक्कर नहीं खाते, तो गजब कर दिया! एक दिन घी नहीं खाया तो क्या कहने हैं।
कैसा सस्ता महात्मापन तुमने पैदा किया है! और इन बेईमानों के लिए तरकीबें सुझा दी हैं कि चलो, तुमसे महान व्रत तो सधेगा नहीं अभी; अहंकार तुम उतना तृप्त कर न सकोगे। जितना बन सके, उतना कर लो। न सही पहाड़, तो चलो छोटी-मोटी टेकरी ही सही; कुछ अहंकार तो बना लो अपना! तो वे व्रत कर रहे हैं। लेकिन इससे रस से टूट रहे हैं। इसलिए उनके चेहरों पर न तो आनंद का भाव है, न प्रसन्नता है, न प्रमुदितता है। न नृत्य है उनके जीवन में, न गीत है उनके जीवन में। न काव्य है, न संगीत है। कुछ भी नहीं!
और इन रूखे-सूखे-ठूंठे लोगों के पीछे बाकी लोग चल रहे हैं। सो वे सारे
के सारे लोग अपने को अपराधी समझ रहे हैं। कि हम कब ठूंठ बन जाएंगे, तब हम भी महात्मा होंगे। जब तक हम ठूंठ नहीं बने, तब तक हममें पत्ते लग रहे हैं। बड़ा अपराध कर रहे हैं हम। हममें अभी भी पत्ते लगते हैं; क्या करें! पिछले जन्मों के पापों के कारण पत्ते लग रहे हैं। फूल लग रहे हैं। लगते ही जाते हैं, रुकते ही नहीं! हमारे महात्मा देखो, क्या ठूंठ खड़े हुए हैं! काष्ठत--परिभाषा की गई है, तुम्हारे महात्माओं की--सूखी लकड़ी की भांति! क्या बातें कर रहे हो! अरे, लकड़ी ही होनी है, तो कम से कम गीली तो रहो! थोड़ा रस तो बहने दो!
सूखी लकड़ी की भांति हो जाओ बिलकुल! बिलकुल ठूंठ! कि सिवाय अंगीठी में लगा देने के किसी काम के न रहो! किसी के चूल्हे में गिरना है, जो ठूंठ बनना है? फूल कैसे लगेंगे! और गंध कैसे उड़ेगी? और परमात्मा ने जो तुम्हारे भीतर छिपाया है, वह प्रकट कैसे होगा?
सूत्र बड़ा साफ है। रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। उस रस को उपलब्ध
कर लिया, बस यही आनंद है।
मैं तुम्हें रस सिखाता हूं--विरस नहीं। मैं तुम्हें राग की कला सिखाता हूं--वैराग्य नहीं।
को ह्येवान्यात कः प्राण्यात। रस चला गया--तो फिर कहां जीवन! फिर प्राण कहां? प्यारा सूत्र है। ऐसा कि उतर जाने दो, रोएं-रोएं में समा जाने दो। उसके बिना न कोई जीवन, न कोई प्राण। और उसी से लड़ रहे हो तुम!
पश्चिम का इस सदी का सबसे बड़ा बुद्धपुरुष जार्ज गुरजिएफ कहा करता था अपने अनुयायियों से कि एक बात तुम खयाल रखना कि तुम्हारे सब महात्मा, चाहे हिंदू हों, चाहे ईसाई, चाहे यहूदी--परमात्मा के खिलाफ हैं।
जब मैंने पहली दफे यह वचन पढ़ा, तो इतना वचन ही मेरे लिए काफी था कि इस आदमी को कुछ दिखाई पड़ा है। ऐसा वचन मैंने कभी देखा ही नहीं था किसी और का! कि तुम्हारे सब महात्मा परमात्मा के खिलाफ हैं। यह बात कोई जानने वाला ही कह सकता है। यह कोई पंडित नहीं कह सकता। पंडित की तो क्या हैसियत होगी! सोच भी नहीं सकता।
ऊपर से तो बड़ी उलटी मालूम पड़ती है कि तुम्हारे महात्मा परमात्मा के खिलाफ! यह कैसी बात! मगर मैं भी अपने अनुभव से कहता हूं कि यह बात सच है! गुरजिएफ अब तो जिंदा नहीं है, लेकिन जहां भी उसकी आत्मा होगी, उसको आनंदित होना चाहिए। जितनी गालियां उसको पड़ीं, उससे पचास गुनी ज्यादा मुझको पड़ रही हैं!
उसको जिंदगी भर गालियां पड़ीं। मगर वह भीर् ईष्या करता होगा मुझसे। इतनी उसको भी नहीं पड़ीं। मुझे सारी दुनिया में पड़ रही हैं। व्यापक विस्तार से पड़ रही हैं। उसकी तो बड़ी सीमा थी बेचारे की! थोड़े से लोग ही उसको जान पाए। उसने बात ही कभी सार्वजनिक नहीं की। उसने थोड़े से लोगों से ही बात की। उसने ऐरे-गैरे नत्थूखैरों को भीतर नहीं आने दिया। मैं ऐरे-गैरे नत्थू खैरों से भी सिर फोड़ता हूं। स्वभावतः गाली ज्यादा खानी पड़ेगी।
वह तो सिर्फ अपने शिष्यों से बोलता था। शिष्य उसके इने-गिने थे। सारी दुनिया में मुश्किल से तीन सौ! उनसे--वह दूसरों से बोलता नहीं था। किताब उसने अपनी जिंदगी में सिर्फ एक छपने दी। वह भी करीब-करीब जब मर रहा था, तब छपी! वह भी जब पहली दफे छपी, तो उसने सिर्फ एक हजार कापियां छापीं। और वह भी

हर किसी को नहीं बेच देता था। उसने दाम इतने ज्यादा रखे थे कि हर कोई खरीद नहीं सकता था। बामुश्किल कोई हिम्मत कर सकता था खरीदने की। और किताब इतनी बड़ी थी, एक हजार पृष्ठों की थी। और उसके लिखने का ढंग ऐसा है कि तुम दस पन्ने पढ़ लो, तो समझना कि भव-सागर पार हो गए! एक-एक वाक्य एक-एक पन्ने में जाता है! वाक्य में चलता जाता है! और वह इस-इस तरह के शब्द बनाता था--खुद गढ़ लेता था--कि जिनके अर्थ तुम्हें किसी शब्दकोश में मिल सकते नहीं। शब्दों को तोड़-मरोड़ देता था। जैसे कुंडलिनी लिखना हो, तो कुंडलिनी कभी नहीं लिखता था। कुंडा-बफर! अब तुम खोज-खोज कर मर जाओ--कुंडा-बफर कहां है! यह कुंडा-बफर क्या है! वह उसकी गाली थी।
जैसे दो रेलगाड़ियों के डब्बों में बीच के बफर लगे रहते हैं, कि कभी धक्का लगे या गाड़ी को एकदम से रोकना पड़े, तो वे जो बफर रहते हैं, वे एकदम डब्बों को टकराने नहीं देते। या जैसे कार में स्प्रिंग लगे होते हैं; गङ्ढा आ जाए, तो स्प्रिंग गङ्ढे को पी जाते हैं। अंदर बैठे आदमी एकदम उछल कर छप्पर से नहीं लग जाते! खोपड़ी नहीं खुल जाती। वह बफर।
वह कुंडलिनी नहीं कहता था, वह कहता था--कुंडा-बफर! वह कहता था--यह आदमी
के भीतर कुंडा-बफर नाम की एक शक्ति है, इसकी वजह से उसको धक्के नहीं लगते; स्प्रिंग है यह। जिंदगी में ठोकरों पर ठोकरें खाता है, मगर कुंडा-बफर सब झेल जाता है! यह एक तरह का स्प्रिंग है। कि गिरे, जल्दी से कपड़े वगैरह झाड़े। देखा चारों तरफ कोई नहीं है। फिर चल पड़े!
रोज गिरते हो। और यूं भी नहीं कि नए-नए गङ्ढों में गिरते हो। उन्हीं- उन्हीं गङ्ढों में रोज गिरते हो! और कल ही कसम खाई थी कि अब इस गङ्ढे में नहीं गिरेंगे; कि भाड़ में जाए यह गङ्ढा, कितनी दफे इसमें गिर चुके! कोई सार नहीं है। और फिर आ गए! फिर खड़े हैं! कतार में! ऐसे भी नहीं! क्योंकि उस गङ्ढे में और भी गिरने वाले भी हैं; कोई तुम्हीं थोड़े अकेले हो। क्यू लगा हुआ है। अपने क्यू में खड़े हैं! भईया क्या कर रहे हो?--अब क्या करें! ऐसे तो कसम खाई थी!
कल ही मैं एक गीत पढ़ रहा था किसी कवि का। उसने लिखा है कि यूं तो हम रोज शाम को कसम खाते हैं, लेकिन फिर सुबह पी लेते हैं। तोबा रोज रात करते हैं और रोज सुबह तोड़ लेते हैं। इस तरह हम दुनिया भी सम्हालते हैं और जन्नत भी सम्हालते हैं! रात जन्नत सम्हाल लेते हैं; सुबह यह दुनिया सम्हाल लेते हैं!
फिर करें भी क्या! फिर घटाएं ही कुछ ऐसी घिर गईं कि पीने का मन हो गया!
और फिर यह बदतमीज मन--लालच उठ आई। और पियक्कड़ों को देखकर पीने का मन हो गया! फिर सोचा, अब एक दफा और। अरे बस, एक दफा और! कोई बार-बार थोड़े ही पीना है!
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन तय किया कि अब नहीं पीना शराब, क्योंकि बहुत हो चुका। डाक्टर कहता है, मर जाओगे। पत्नी जान खाए जाती है। बेटा पीछे पड़ा रहता है लट्ठ लिए! कि तुम शराबघर गए कि टांग तोड़ दूंगा! यहां तक हालत आ गई कि शराबघर का मालिक तक कभी-कभी मना करता कि अच्छा, उठो जी! अब दरवाजा बंद करें! कि अब नहीं पिलाएंगे तुम्हें! अब तुम ज्यादा पी गए! अब तुम गड़बड़ शुरू कर दिए। तुम बहकने लगे।
एक दिन तो यह हालत हो गई कि शराबघर के मालिक ने उसको धक्के दे कर निकलवा दिया, क्योंकि वह दो-चार बोतलें पी चुका है, और अब ऐसी अंट-शंट बातें बक रहा है, और ऐसे अंट-शंट काम कर रहा है कि दूसरे ग्राहक देख-देख कर लौटे जा रहे हैं, कि यहां कोई झगड़ा होगा, मारपीट होगी। उपद्रव होने ही वाला है! यह आदमी किसी की हत्या कर देगा! उसको निकलवा बाहर कर दिया। वह दूसरे दरवाजे से फिर आ गया! उसने कहा, भाई, एक बोतल! उसने फिर उसे निकलवा कर बाहर कर दिया। वह तीसरे दरवाजे से भीतर आ गया! होटल के कई दरवाजे थे! उधर से भी निकलवा दिया। चौथे दरवाजे से आया। जब उसे फिर निकलवाने लगा, तो उसने कहा, मामला क्या है! क्या बस्ती के सभी शराबखाने तेरे बाप के हैं? जहां जाता हूं, वहीं हरामजादा, तू ही खड़ा रहता है! चार शराबघरों में हो आया! इतना होश मुझे भी है कि तेरी शकल मेरी पहचानी हुई है। यह देख कर चौंकता हूं कि यह फिर वही का वही आदमी! तो क्या बस्ती भर के शराबघर तूने ही खरीद लिए!

जब यह मुसीबत आ गई, तो उसने एक दिन कसम ही खा ली कि क्या बेइज्जती जगह-जगह करनी। नाली में गिरना, और सुबह रोज घर जाना; और घर पिटाई अलग होती है। और जो देखो वही लानत-मलामत करता है। जहां जाओ वहीं लोग उपदेश देते हैं। हर कोई उपदेश देने लगता है! उपदेश आदमी को जहर जैसा लगता है!
कहा कि अच्छा, आज नहीं पीऊंगा। मगर वह शराबघर रास्ते में पड़ता है!
कहा, कुछ भी हो जाए, आज छाती कड़ी कर लूंगा। अरे मैं भी मर्द बच्चा हूं! शराबघर पास आया, तो पैर उसके थरथराने लगे। कई दफा मन होने लगा, कि अरे एक दिन और! अरे आखिरी दिन है रे! आज तो पी ले। फिर कल से कर लेना। अब जब ही कर लिया है, तो फिर कल से कर लेना!
रोज मन ऐसा ही हमारा होता है! कुछ नई बात नहीं है, उसका हुआ तो। मगर उसने कहा कि नहीं। बहुत हो चुका जी। यह कई दफा हो चुका। आज जो कसम खाई, तो पूरी करनी है। नहीं जाएंगे।
मगर एकदम पांव ठहरने ही लगे, आगे ही न बढ़ें, जैसे हजारों मन बोझ लदा हो पैरों पर--कि मामला क्या है! मगर उसने कहा, आज कुछ हो जाए; आज सिद्ध करना है--मर्द बच्चा हूं।
चला ही गया। शराबघर की तरफ आंख भी नहीं उठाई। नीची आंख रखी, जैसे बौद्ध भिक्षु रखता है नीचे आंख। चार कदम से आगे नहीं देखता, क्योंकि चार कदम से आगे देखो कि संसार में गिरे!
क्या मजा है! तो एक-एक चश्मा लगा लो, जिसमें चार कदम से आगे दिखाई न पड़ता हो। सब मुक्त हो जाओगे, निर्वाण को उपलब्ध हो जाओगे! चार कदम से आगे नहीं देखता, कि जरा ही आंख उठ गई चार कदम से ज्यादा--पता नहीं क्या दिख जाए! घबड़ाहट के मारे नीचे देखे, नजर गड़ाए चला गया--चला गया--चला गया! मगर तिरछी नजरों से तो देख ही रहा था कि शराबघर निकला जा रहा है, निकला जा रहा है! जब सौ कदम आगे निकल गया, अपनी पीठ ठोंकी और कहा, बेटा, नसरुद्दीन! गजब कर दिया तूने! अरे है तू भी कोई महात्मा! अब आ, इस खुशी में तुझे आज दुगनी पिलाता हूं!
और पहुंच गए वापस! उस खुशी में दुगनी पी रहा हूं। उस दिन से फिर दुगनी
ही पी रहे हैं! क्योंकि उस दिन उनको पता चला कि अरे, दुगनी भी चल सकती है! और जब मरना है, तो फिर क्या! और उपदेश तो झेलना ही है, तो अब क्या थोड़ी पीना! एक दिन पत्नी उसकी पहुंच गई, जब बरर्दाश्त के बाहर हो गया। जाकर उसने बुरका उतार कर फेंक दिया। नसरुद्दीन ने कहा, अरे, यह क्या करती है! बुरका उतारती है! और शराबघर तू आई क्यों?
उसने कहा कि तुम्हींत्तुम्हीं मजा लूट रहे हो!
पत्नी गई थी इसको शिक्षा देने, कि जब मैं पहुंच जाऊंगी, तो यह शरम खाएगा, संकोच खाएगा कि यह बदनामी! हद्द हो गई!
और बैठ गई वह भी जम कर। उसने कहा कि ला तेरी बोतल!
अब कुछ कह भी न सका। कहे क्या! अगर कहे कि यह खराब चीज है, तो वह कहेगी
कि फिर पीता क्यों है! सो बोतल देनी पड़ी।
उसने भी जल्दी से बोतल कुड़ेली। उसे क्या पता; कभी पीया हो उसने शराब! गटागट पी गई बिना सोडा मिलाए, पानी मिलाए। एक ही घूंट मुंह में गया था कि कड़वा जहर! वहीं बुलक दिया, कि सत्यानाश हो तेरा! इसको पीता है तू! नसरुद्दीन मुस्कुराया और कहा, तू क्या समझती थी री, कि मैं कोई यहां आनंद मनाने आता हूं! अरे यह बड़ी तपश्चर्या है। बड़ी मुश्किल से सधती है। देख, यूं पी जाती है। गटागट पूरा बोतल पी गया जल्दी से, कि कहीं फिर न मांगने लगे!
तू यही समझती है जिंदगी भर से। अब मत कहना कि चले गुलछर्रे उड़ाने। यह कोई गुलछर्रे नहीं हैं। यह बड़ा कठिन मार्ग है!
लोग गङ्ढों में गिरते हैं: कठिन मार्ग बताते हैं। उन्हीं गङ्ढों में गिरते हैं; रोज-रोज गिरते हैं। कारण क्या होगा?
एक ही कारण है कि तुम्हारे जीवन में अमृत का कोई स्वाद नहीं है। इसलिए तुम जहर पी रहे हो। एक ही कारण है कि तुमने जीवन से नाते तोड़ लिए हैं, इसलिए तुम मृत्यु के शिकंजे में पड़ गए हो। तुमने विराट से अपनी जड़ें अलग कर ली हैं, तो तुम क्षुद्र अहंकार में ग्रसित हो गए हो। वही नर्क है। अहंकार

नर्क है। और अहंकार मृत्यु है। अहंकार के जो पार गया, वह नर्क के भी पार गया और मृत्यु के भी पार गया। वह तत्क्षण अमृत का अनुभव करता है।
को ह्येवान्यात कः प्राण्यात। अरे कौन उसको खो कर जीवित हो सका है! कौन इस उसको खोकर वस्तुतः जान सका है कि जीवन क्या है! इसका अर्थ तुम समझो। इसका अर्थ हुआ कि वह रस और जीवन पर्यायवाची हैं। यही मैं तुमसे कह रहा हूं; रोज-रोज कहे जा रहा हूं कि जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं। इसलिए जो लोग भी जीवन का विरोध करते हैं, वे ईश्वर के दुश्मन हैं। और तुम्हारा सारा धर्म जीवन का विरोध है।
सब तरह से जीवन को काटो! त्यागो! भागो! जैसे पाप हो गया है कोई जीवित होने से! जैसे परमात्मा ने कोई कसूर किया है तुम्हें जन्म दे कर! तुम शिकायत कर रहे हो जीवन का त्याग करके। तुम क्या अनुग्रह का भाव प्रकट करोगे! तुम कैसे धन्यवाद दोगे उसे! तुम्हारे मन में सिर्फ शिकायतों ही शिकायतों का ढेर है। तुम्हें परमात्मा मिल जाए, तो तुम उसकी गरदन पकड़ लोगे कि तू बता कि तूने मुझे क्यों पैदा किया? क्या जरूरत थी मुझे पैदा करने की! क्यों मुझे संसार के जंजाल में डाला?
यहां लोग आ जाते हैं! उनको पता नहीं मेरी जीवन-दृष्टि का। वे मुझसे पूछ लेते हैं प्रश्न। आज ही एक सज्जन ने पूछा हुआ है कि हमें बताइए कि भव-सागर से कैसे मुक्त हो जाए?
तुम्हें सिखाया ही यह जा रहा है कि भव-सागर से मुक्त होना है! अरे, भव-सागर में तैरना सीखो। मुक्त कहां होना है! जाओगे कहां? भव-सागर तो सभी जगह है! भव का अर्थ समझते हो?--जो है। जो है, इसको बाहर कैसे जाओगे?
भव का अर्थ है अस्तित्व। इससे बाहर कहां जाओगे!
तुम जब पूछते हो--भव-सागर से मुक्त होना है--तो तुम यह कह रहे हो कि हमें मरना बता दो; आत्महत्या करनी है।
तुम जीवन से इतने उदास क्यों हो? कौन ने तुम्हारे जीवन को विषाक्त किया? और तुम उन्हीं के शिकंजे में हो अब भी। जो तुम्हारी गरदन दबा रहे हैं, तुम सोचते हो; तुम्हारे प्राण-रक्षक हैं!
तुम जीवन को जान ही नहीं पाए। नहीं तो यह कभी भाषा न बोलते--भव-सागर से मुक्त होने की। तुम पूछते--भव-सागर में कैसे लीन हो जाऊं? तुम पूछते: कैसे तल्लीन हो जाऊं? जैसे बूंद सागर में उतर जाती है और एक हो जाती है, ऐसे मैं भी कैसे एक हो जाऊं। तब तुम्हारा प्रश्न सच में धार्मिक होता।
उसके बिना कोई जीवन नहीं, कोई प्राण नहीं।
यदेष आकाश आनंदो न स्यात। वह है आकाश जैसा विराट।
यदेष आकाश आनंदो न स्यात। और उसमें आनंद ही आनंद का विस्तार है। आनंद
का कोई अंत नहीं। अनंत आंद है।
और तुम दुख के पूजक हो! जो आदमी अपने को दुख देता है सब तरह से, तुम उसको कहते हो--त्यागीत्तपस्वी! मैं तुम्हें सुख का सम्मान सिखाना चाहता हूं; सुख का सत्कार सिखाना चाहता हूं। कहता हूं: खोलो अपने द्वार। बांधो बंदनवार। करो स्वागत सुख का। क्योंकि परमात्मा महासुखरूप है। आनंद ही आनंद है।
एष ह्येवानंदयाति। और वह इसीलिए तो आनंद है, क्योंकि अनंत आकाश जैसा है; कभी चुकता नहीं। तुम छोटे-मोटे सुखों में सोचते हो--सुख पा लिया। तुम गलती में हो। इस बात को थोड़ा गौर से समझना।
तुम्हारे छोटे-छोटे सुख एक उपद्रव कर रहे हैं। ये तुम्हें पंडितों, पुरोहितों, और साधु-महात्माओं के जाल में गिरा देते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, तुम्हारे छोटे-छोटे सुख--कहां मिला सुख? बताओ--कहां मिला सुख? और तुम बता भी नहीं सकते। उनका तर्क ठीक लगता है। वे कहते हैं, ये क्षण-भंगुर सुख हैं। छोड़ो इनको! चलो हमारे साथ। भजन-कीर्तन करो। त्यागत्तपश्चर्या करो। सिर के बल खड़े होओ। उपवास करो। भूखे रहो। शरीर को गलाओ। तब कहीं जन्मों- जन्मों में असली सुख मिलेगा!
तुम उनसे तर्क नहीं कर सकते। क्योंकि तुम भी जानते हो कि तुम्हारे सुखों में तुम्हें सुख नहीं मिला। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं: वे तुमसे जो कह रहे हैं, गलत कह रहे हैं। तुम्हारे सुखों में सुख उतना ही मिला, जितना

मिल सकता था। उससे ज्यादा तुम चाहते थे, वह नहीं मिला। और उसी का वे फायदा उठा रहे हैं।
अब तुम चाहते थे कि भोजन से शाश्वत सुख मिल जाए! तो तुम मूरख हो। भोजन
से कैसे शाश्वत सुख मिल सकता है? कल फिर भूख लगेगी। फिर तो एक दफे भोजन कर लिया सो कर लिया! फिर दुबारा भोजन न करना पड़े! यह तुम चाहते थे! तो तुम्हारे चाह की गलती थी। भोजन का कोई कसूर नहीं है। तुमने चाह ही असंभव बना ली थी।
अब तुम सोचते हो कि इस शरीर में रहने से शाश्वत जीवन मिल जाए! कैसे मिलेगा। यह शरीर ही बना है--तो मिटेगा। इसमें तो उतना ही मिल सकता है, जितना मिल सकता है। इससे ज्यादा मांगते हो, वह मिलता नहीं। नहीं मिलता-- विषाद पैदा होता है! विषाद होता है--महात्मा का जाल पड़ा। उसने तुम्हारी गरदन दबाई। उसने कहा कि मैं पहले ही कह रहा था कि यहां दुख ही दुख है।
फिर भी मैं तुमसे कहता हूं: उसका तर्क गलत है। यहां उतना ही सुख है, जितना किसी वस्तु में हो सकता है। अब कोई रेत में से तेल निचोड़ना चाहे और न निचुड़े; तो इसमें रेत का सूर है? इसमें तुम्हारे मूढ़ता है--और कुछ भी नहीं। अब लोग चाहते हों कि धन से ध्यान मिल जाए, तो गलती में हैं। धन से अच्छा मकान मिल सकता है। धन से सुंदर बगीचा बन सकता है। जरूर बनाओ। मगर धन से ध्यान नहीं मिल सकता। तुम धन से चाहते हो ध्यान मिल जाए! महात्मा तुम्हारी गरदन पकड़ लेता है। वह कहता है--मिला ध्यान?--नहीं मिला। छोड़ो धन।
मैं तुमसे कहता हूं: धन से जो मिल सकता है, वह धन से लो। बुद्धिमानी इसमें है। और जो ध्यान है, वह न तो धन से मिलता है, न धन छोड़ने से मिलता है। जरा मेरी बात पर खयाल कर लेना। क्योंकि वह जड़ की बात है। मूल की बात है।
न धन से ध्यान मिलता है, न धन को छोड़ने से मिलता है।
तुम जरा अपने महात्माओं से तो पूछो कि धन छोड़ने से ध्यान मिला? मैंने पूछा है। और तुम्हारा एक महात्मा जवाब नहीं दे सका। मैंने महात्माओं पर वे सब तरकीबें अपनाईं, जो तरकीबें वे तुम पर अपनाते हैं। और मैं बड़ा हैरान हुआ। पता नहीं तुमने क्योंकि नहीं ये तरकीबें उन पर अपनायीं अब तक!
वे तुमसे कहते हैं, भोजन से शाश्वत सुख मिला? तुम उनसे पूछो, तुमको उपवास से शाश्वत सुख मिला? तुम कम से कम भोजन पाकर स्वस्थ तो हो! कम से कम शरीर में बल तो है! उठ-बैठ तो सकते हो!
पश्चिम में भोजन की सुविधा है, तो लोग ज्यादा जी रहे हैं। आज रूस में डेढ़ सौ साल की उम्र के हजारों लोग हैं। थोड़े-बहुत नहीं, हजारों की संख्या में। कोई आदमी डेढ़ सौ साल का हो जाए, तो रूस में अखबार में खबर नहीं छपती। अभी एक खबर छपी, जब एक आदमी दो सौ वर्ष का हो गया। डेढ़ सौ वर्ष के तो बहुत लोग हैं।
और यहां तुम्हारे? अगर कोई सौ वर्ष का हो जाए, तो हम कहते हैं--है सतयुगी! क्या गजब का आदमी है! सौ वर्ष का हो गया!
महात्मा गांधी सोचते थे कि एक सौ पच्चीस वर्ष जीना है। यह तो पूना के लोगों की कृपा हो गई उन पर, कि उनको नहीं जीने दिया! नाथूराम गोडसे ने उनको जल्दी खतम कर दिया, कि कहो को इतनी देर परेशान होते हो! छुटकारा दिला दिया जीवन से जल्दी! भव-सागर से मुक्ति करवा दी उनकी!
पूना के लोग गजब के हैं! ये भव-सागर से मुक्ति करवाते हैं! एक सज्जन मुझे भव-सागर से मुक्ति करवा रहे थे!--अभी कुछ ही दिन पहले, छुरा फेंक कर! क्या-क्या समाज-सेवी पड़े हुए हैं! अब मुझे भव-सागर से छूटना भी नहीं है, तो भी छुड़वा रहे हैं! गांधीजी को छुड़वाया, तो ठीक भी; उनको तो छूटना भी था। मैं तो भव-सागर में बिलकुल मजे से तैर रहा हूं! मगर इनके कष्ट देखो! बेचारे कितना कष्ट उठाते हैं! अब अगर इन पर झंझट पड़ेगी, अब मुकदमा चलेगा; सात साल, दस साल; सजा भुगतेंगे! आए थे सेवा करने!
यह दुनिया बड़ी बुरी है। करो नेकी--बदी हाथ लगती है! क्या गजब की दुनिया है! यहां भला करने जाओ, बुरा हो जाता है! आए तो थे बेचारे सेवा करने मेरी, अब दस साल उनको जेलखाने में कहीं सेवा न करनी पड़े! मुझे यही चिंता होती है कि इस आदमी को बेचारे को दस साल खराब न हों जाएं और!
एक सौ पच्चीस वर्ष जीने का जो इरादा महात्मा गांधी का था, वे सोचते थे,
यह आखिरी कल्पना है। इससे ज्यादा कौन जी सकता है! और उनकी धारणा यह थी कि

एक सौ पच्चीस वर्ष जीएंगे वे--अपने उपवास, अपने ब्रह्मचर्य के बल पर! वह तो अच्छा हुआ, भला हो नाथूराम का! रामजी के ही एक रूप समझो--नाथू-राम! तभी तो महात्मा गांधी ने, जब गोली लगी तो कहा, हे राम! नाथूराम कहने लायक समय नहीं मिला, नहीं तो पूरा नाम लेते! तो अंग्रेजी-हिसाब से आखिरी हिस्सा बोल दिया, कि हे राम! नाम पूरा था--नाथू-राम!
राम का ही रूप समझो इनको, कि आ गए, और छुटकारा करवा दिया!
लेकिन अगर गांधी को खुद मरना पड़ता--और मरना ही पड़ता...। और एक सौ पच्चीस वर्ष, मैं नहीं सोचता कि वे जी सकते थे। भारत की भोजन व्यवस्था इतनी स्वस्थ नहीं है कि यहां एक सौ पच्चीस वर्ष जीना आसान हो जाए।
अगर पहले मरना पड़ता, तो वे बड़े दुखी मरते। उस दुख से नाथूराम ने बचा दिया। वे दुखी मरते कि मेरी तपश्चर्या में कमी रह गई! वे तो हर छोटी-मोटी बात में समझ लेते थे कि मेरी तपश्चर्या में कभी रह गई! जैसे तपश्चर्या से कोई उम्र का संबंध है! तपश्चर्या से उम्र का कोई संबंध नहीं है। शंकराचार्य तैंतीस साल की उम्र में मर गए। अगर तपश्चर्या से संबंध है, तो जाहिर है कि तपश्चर्या इनकी गड़बड़ थी! और विवेकानंद चौंतीस साल में मर गए। अगर तपश्चर्या के संबंध है, तो जाहिर है कि तपश्चर्या गड़बड़ थी। तपश्चर्या से कोई संबंध नहीं है।
आज योरोप के देशों में अस्सी वर्ष, पच्यासी वर्ष, नब्बे वर्ष, औसत उम्र है। स्वीडन की औसत उम्र नब्बे वर्ष है। अभी भारत की औसत उम्र छत्तीस वर्ष है! तो अगर स्वीडन में डेढ़ सौ साल का आदमी मिल जाए, तो क्या अड़चन है! भारत में भी नब्बे साल का आदमी मिल जाता है। छत्तीस वर्ष औसत उम्र है तब। ये जो हमारी आकांक्षाएं हैं...। शरीर तो मिटेगा ही--सौ साल में मिटे, डेढ़ सौ साल में मिटे। वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन सौ साल जिंदा रह सकता है-- कम से कम--अगर पूरी व्यवस्था दी जाए तो। समझो, तीन सौ साल भी जिंदा रह गया, तो भी मिटेगा तो ही, जाएगा तो ही। जो चीज पैदा हुई है, वह जाएगी। इससे तुम अगर शाश्वत की आकांक्षा कर रहे हो, तो भूल तुम्हारी है। इससे उतना ही मांगो, जितना यह दे सकता है। उससे तुम ज्यादा मांगते हो, फिर वह मिलता नहीं, तो फिर तुम्हारे साधु-महात्मा कहते हैं कि देखो, नहीं मिला न! कहा था न! छोड़ो-छोड़ो!
मैं उनके तर्क को गलत मानता हूं। मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने ज्यादा मांगा, वह तुम्हारी गलती थी। ज्यादा मत मांगो। जो मिल सकता है, वह मांगो। और जो नहीं मिल सकता, उसके लिए और रास्ते खोजो। इसको छोड़ने से वह नहीं मिल जाएगा।
न तो धन को पकड़ने से, धन को भोगने से ध्यान मिलता है, न छोड़ने से ध्यान मिलता है। मैं ऐसे मुनियों को जानता हूं, जिनको सत्तर साल घर छोड़े हो गए; नब्बे-नब्बे साल की उम्र के हो गए हैं; और उनसे मैंने पूछा कि ध्यान मिला कि नहीं? वे कहते कि अभी नहीं मिला! क्या करें? कैसे ध्यान करें? चित्त तो अभी भी काम करता है! मन तो अभी भी विचारों से भरा हुआ है!
तो मैंने कहा, एक बात तो साफ हुई तुम्हें कि नहीं--कि घर-द्वार छोड़ देने से मन नहीं छूट जाता! मन का घर-द्वार छोड़ने से क्या संबंध है! मन के छोड़ने की प्रक्रिया अलग है। विधि अलग है, विज्ञान अलग है। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं कि तुम विज्ञान समझो जीवन का।
शरीर को स्वस्थ रखता है--भोजन। लेकिन भोजन से कुछ आत्मवान नहीं हो जाओगे। हां, आत्मा को स्वस्थ रखना है, तो तुम्हें दूसरा भोजन तलाशना होगा-- ध्यान, प्रेम, मौन, शून्य--तो तुम्हारी आत्मा स्वस्थ होगी। और दोनों स्वस्थ होने चाहिए। इनमें कुछ विरोध नहीं है--कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा नहीं हो सकती! कि ठीक भोजन करते ध्यान नहीं हो सकता। मैं तो मानता हूं, बिलकुल उलटी बात है।
ठीक भोजन करो, तो ही ध्यान कर पाओगे; नहीं तो ध्यान नहीं कर पाओगे। भूखे भजन न होंहि गुपाला! तो जरा भूखे होकर भजन तो करो! ऊपर-ऊपर भजन निकलेगा--भीतर-भीतर भूख लगी रहेगी! भीतर-भीतर खयाल चलता रहेगा कि कब भोजन मिले! यह भजन कब खतम हो! भजन कर ही इसलिए रहे हो, कि भोजन मिले!
लेकिन जब पेट भरा हो, तो स्वभावतः सरलता से, सहजता से भजन का आनंद हो सकता है; ध्यान का आनंद हो सकता है।

जीवन का एक क्रमिक क्रम है। शरीर की जरूरतें पहले पूरी होनी चाहिए। फिर मन की जरूरतें पूरी होनी चाहिए। फिर आत्मा की जरूरतें पूरी होनी चाहिए। जब तीनों की जरूरतों में एक तालमेल बन जाता है, तब--रसो वै सः! तब चौथी, तुरीय अवस्था पैदा होती है। तब तुम जान पाओगे, वह रस-रूप क्या है; वह आनंद क्या है। वह आकाश क्या है।
वह आकाश की भ्रांति सर्व-व्यापक आनंदमय तत्व न होता, तो कौन जीवित रहता! और कौन प्राणों की चेष्टा करता? वास्तव में वही तत्व सबके आनंद का मूलस्रोत है।
जीवन को चाहो; जीवन को जियो--समग्रता से, संपूर्णता से। भगोड़ापन नहीं,
भय नहीं; क्योंकि जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है। जीवन ही वह रस है।

मेरा स्वर्णिम भारत-17

तप, ब्रह्मचर्य और सम्यक् ज्ञान
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #3)

पहला प्रश्नः ओशो,
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यंति यतयः क्षीणदोषाः।।
यह आत्मा सत्य, तप, सम्यक ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन यति देखते हैं, वह शुभ्र आत्मा इसी शरीर के अंदर वर्तमान है।
ओशो, मुंडकोपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की कृपा करें।

शरणानंद!
यह सूत्र तो सरल है, पर हजारों वर्षों की व्याख्याओं ने इसे बहुत जटिल
कर दिया है। नासमझ सुलझाने चलते हैं तो और उलझा देते हैं! नीम-हकीम से सावधान रहना जरूरी है। बीमारी इतनी खतरनाक नहीं, जितना नीम-हकीम खतरनाक सिद्ध हो सकता है। बीमारी का तो इलाज है, लेकिन नीम-हकीम के चक्कर में पड़ जाओ, तो इलाज नहीं है। और नीम-हकीमों से दुनिया भरी हुई है।
एक आदमी को सर्दी-जुकाम था। बहुत दिनों से था। और बार-बार लौट आता था। बड़े-बड़े चिकित्सकों के पास गया, कोई इलाज न कर पाया। फिर एक नीम-हकीम मिल गया। उसने कहा, यह भी कोई बड़ी बात है! यह तो बाएं हाथ का खेल है! चुटकी बजाते दूर कर दूंगा। इतना करो, सर्दी की रातें हैं, आधी रात में उठो। झील पर जाकर नग्न स्नान करो। झील के किनारे खड़े होकर ठंडी हवा का सेवन करो!
वह आदमी बोला, आप होश में हैं या पागल हैं! सर्द रातें हैं; बर्फीली हवाएं हैं। आधी रात को नंग-धड़ंग झील में स्नान करके खड़ा होऊंगा, हड्डी- हड्डी बज जाएगी! इससे मेरा सर्दी-जुकाम दूर होगा? नीम-हकीम ने कहा, यह मैंने कब कहा कि इससे सर्दी-जुकाम दूर होगा! इससे तुम्हें डबल निमोनिया हो जाएगा! और डबल निमोनिया का इलाज मुझे मालूम है! फिर मैं निपट लूंगा!
इस दुनिया में जीवन जटिल न होता, अगर जीवन के व्याख्याकार तुम्हें न मिल गए होते। उन्होंने सर्दी-जुकाम को डबल निमोनिया में बदल दिया है!
यह सूत्र बिल्कुल सीधा-साफ है। लेकिन जब तुम इस सूत्र को पढ़ोगे, तो तुम सूत्र नहीं पढ़ रहे हो। सूत्रों के सुंदर शब्द आच्छादित हो गए हैं न मालूम कितनी व्याख्याओं से!
जैसे जब तुम पढ़ोगे सत्य, क्या समझोगे? पढ़ोगे तप, क्या समझोगे? पढ़ोगे सम्यक ज्ञान, क्या समझोगे? पढ़ोगे ब्रह्मचर्य, क्या समझोगे? शब्द तो बहुत दूर खो गए हैं जंगलों में व्याख्याओं के। तुम्हारे हाथ में व्याख्याएं रह गई हैं।
सत्य शब्द तुम्हें याद दिलाएगा शास्त्रों की, और शास्त्रों में सत्य नहीं है। क्योंकि शब्दों में ही सत्य नहीं है। सत्य है शून्य में। और तुमसे सदा कहा गया है कि सत्य बोलो। तुम्हारे भीतर सत्य में और बोलने में एक संयोग बन गया है। सत्य बोला नहीं जाता, जीया जाता है, अनुभव किया जाता है। यद्यपि जिसने सत्य का अनुभव किया, उसके आचरण में, उसके उठने-बैठने में, उसके हलन-चलन में, उसकी हर गतिविधि में सत्य की आभा होती है। उसके शब्दों में भी सत्य की प्रतिध्वनि होती है--सत्य नहीं, प्रतिध्वनि। और उस प्रतिध्वनि को वही समझ पाएगा, जिसने अपने भीतर का सत्य जाना हो।
गीता जिन्हें कंठस्थ है, कि रामायण की चैपाइयां याद किए बैठे हैं, कि बाइबिल या कुरान या धम्मपद सिर पर ढो रहे हैं--इनसे तो सत्य बहुत दूर हो गया। सत्य तो तुम्हारे जीवन का सार है। सत्य बाहर नहीं है, भीतर है। वेदों

में नहीं है, पुराणों में नहीं है; तुम्हारी चेतना की सुगंध है। सत्य ध्यान में है।
लेकिन जब भी तुम सत्य शब्द को सुनते हो, तो तुम्हें लगता है, शास्त्र।
याद आते हैं वेद, कुरान, बाइबिल। याद आते हैं बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद।
सत्य शब्द सुन कर कभी तुम्हें अपनी याद आती है? आनी वही चाहिए। न बुद्ध से सत्य मिलेगा, न कृष्ण से। सत्य मिलेगा तो अपने स्मरण से।
मगर व्याख्याओं का घनघोर जंगल है! इतनी सदियां बीत गई हैं तुम्हें संस्कारित होते-होते कि अब सीधी-सादी बात भी बोध में नहीं आती, विकृत हो जाती है; खंडित हो जाती है; टूट-फूट जाती है; कुछ की कुछ हो जाती है।
सत्य है ध्यान की, शून्य की, निर्विचार की अनुभूति। उस अनुभूति में न विचार होते, न कल्पना होती, न तुम होते हो। क्योंकि तुम स्वयं भी एक कल्पना हो, एक विचार हो। अहंकार विचार की एक तरंग-मात्र है, एक लहर। जहां सारी लहरें खो गईं, वहां अहंकार भी खो गया।
सत्य है निरअहंकारिता की प्रतीति, उसका साक्षात्कार। लेकिन क्या ऐसा स्मरण आता है सत्य शब्द को पढ़ कर? जब पढ़ोगेः सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा--यह आत्मा सत्य है, तप है, सम्यक ज्ञान है, ब्रह्मचर्य है। तो क्या तुम्हारे मन में विचार उठते हैं?
तप से विचार उठता है, सिर के बल खड़े हुए लोग! उपवास करते हुए लोग! सूरज
से आग बरस रही है और वे अपने चारों तरफ धूनी रमाए बैठे हुए हैं! तप से तुम्हें क्या याद आता है? कांटों पर लेटे हुए लोग! सर्दियों में बर्फीली नदियों में नग्न खड़े लोग! कि गर्मियों में जलती हुई रेत पर पालथी मारे हुए बैठे हुए लोग! जटाजूटधारी! शरीर के दुश्मन! अपने को गलाने में लगे, सड़ाने में लगे! इस तरह के आत्महंताओं की याद आती है। तप शब्द को सुन कर ही याद आती है उन लोगों की जो अपने को कष्ट देने में कुशल हैं।
दुनिया में दो तरह के हिंसक हैं। एक वे, जो दूसरों को सताते हैं। ये छोटे हिंसक हैं। क्योंकि दूसरे को तुम सताओगे, तो दूसरा कम से कम आत्मरक्षा तो कर सकता है। प्रति-उत्तर तो दे सकता है। भाग तो सकता है। पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ा तो सकता है। कोई उपाय खोज सकता है। रिश्वत दे सकता है। चापलूसी कर सकता है। सेवा कर सकता है। गुलाम हो सकता है।
और दूसरे तरह के वे आत्म-हिंसक हैं, जो खुद को सताते हैं। वहां कोई बचाव नहीं। वह हिंसा बड़ी है। अब तुम खुद ही अपने को सताओगे, तो कौन तुम्हें बचाएगा! कौन प्रतिकार करे! अपना ही हाथ अगर आग में जलाना हो, तुमने ही अगर तय किया हो आग में जल जाने का, तो फिर बचना मुश्किल है। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को कैसे बचाओगे? कानून नियम बनाता है, मगर बचा पाता है क्या? कानून बड़ा मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ता है। कानून कहता है, जो आदमी आत्महत्या करेगा, उसको सजा मिलेगी।
अब यह बड़े मजे की बात है! उसने तो आत्महत्या कर ही ली, अब तुम क्या खाक सजा दोगे! सजा तुम उसको दे सकते हो, जो आत्महत्या कर रहा हो और कर न पाया हो। और जो आत्महत्या करना चाहता है, क्या इस दुनिया में उसे कुछ कमी है! इतने सरदार इतनी बसें चला रहे हैं, ट्रकें चला रहे हैं देशी ठर्रा पीए हुए! ट्रेनें चल रही हैं! मालगाड़ियां दा.ैड रही हैं! झाड़ हैं, पहाड़ हैं, नदी हैं, समुद्र हैं! जिसको आत्महत्या करनी है, इस बड़े जगत में कोई उसे बचा सकता है! कैसे बचाओगे? कोई नहीं बचा सकता।
हां, पकड़ा जाता है वह व्यक्ति जो करना नहीं चाहता था, यूं ही करने का बहाना कर रहा था। करने की तरकीब कर रहा था, कि उसका कुछ प्रभाव पड़ जाए। धमका रहा था।
स्त्रियां आत्महत्या के बहुत उपाय करती हैं। दो-चार गोली खा लेंगी नींद की। मगर इतनी कभी नहीं खातीं कि मर जाएं! इतनी ही खाती हैं कि तुमको थोड़ी मुसीबत में डाल दें। कि अब डाक्टर को बुलाओ! कि अब पुलिस से छिपाओ! कि अब डरो उनसे! कि अब दुबारा, तुमने जो भूल की थी, अब न करना! अब उनकी मान कर चलना! यह उनकी तरकीब है। यह गांधीवादी तरकीब है अपने को सता कर तुम पर कब्जा पाने की।

तप से तुम्हारे मन में क्या ख्याल उठता है? तप शब्द तुम्हारे भीतर कौन
सी आकृतियां उभारता है? आत्म-दमन! आत्म-पीड़न! लेकिन तप से इसका कोई संबंध नहीं है।
तप का ठीक-ठीक अर्थ इतना ही होता है कि जीवन में बहुत दुख हैं, इन दुखों को सहजता से, धैर्य से, संतोष से, अहोभाव से अंगीकार करना। और दुख पैदा करने की जरूरत नहीं है। दुख क्या कुछ कम हैं! पांव-पांव पर तो पटे पड़े हैं। दुख ही दुख तो हैं चारों तरफ। लेकिन इन दुखों को भी वरदान की तरह स्वीकार करने का नाम तप है।
सुख को तो कोई भी वरदान समझ लेता है। दुख को जो वरदान समझे, वह तपस्वी है। जब बीमारी आए, उसे भी प्रभु की अनुकंपा समझे; उससे भी कुछ सीखे। जब दुर्दिन आएं, तो उनमें भी सुदिन की संभावना पाए। जब अंधेरी रात हो, तब भी सुबह को न भूले। अंधेरी से अंधेरी बदली में भी, वह जो शुभ्र बिजली कौंध जाती है, उसका विस्मरण न हो।
कुछ दुख आरोपित करने की जरूरत नहीं है, दुख क्या कम हैं! इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि संसार को छोड़ो; जंगल में जाओ; अपने को सताओ। संसार में कोई दुखों की कमी है कि तुम्हें जंगल जाना पड़े! यहां तरह-तरह के दुख हैं। जीवन चारों तरफ संघर्ष, प्रतियोगिता, वैमनस्य, ईर्ष्या, जलन, द्वेष, इन सबसे भरा है। एक दुश्मन नहीं, हजार दुश्मन हैं। जिनको तुम दोस्त कहते हो, वे भी दुश्मन हैं। कब दुश्मन हो जाएंगे, कहना मुश्किल है। मैक्यावेली ने अपनी अदभुत किताब पिं्रस में लिखा है कि अपने दोस्तों
से भी वह बात मत कहना, जो तुम अपने दुश्मनों से न कहना चाहो। क्यों? क्योंकि तुम्हारा जो आज दोस्त है, वह कल दुश्मन हो सकता है। मैक्यावेली पश्चिम का चाणक्य है। दोस्त से भी मत उघाड़ना अपने हृदय को, क्योंकि वह भी नाजायज लाभ उठाएगा किसी दिन। फिर तुम पछताओगे।
यहां तो सब तरफ कांटे ही कांटे हैं, अब और कांटों की शय्या बनाने की जरूरत क्या है? तुम जिस शय्या पर सोते हो रोज, वह कांटों की नहीं? उतने से मन नहीं भरता? पत्नी और पति तुम्हें कम दुख दे रहे हैं?
मैंने सुना, पति-पत्नी में पति के देर से घर लौटने पर झगड़ा हो रहा था। पत्नी बोली, अगर आप आइंदा रात नौ बजे के बाद आएंगे, तो मैं आपको छोड़ कर किसी और से शादी कर लूंगी।
पति ने कहा, तब तो पड़ोस वाले गुप्ताजी से ही कर लेना!
पत्नी ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा, गुप्ताजी से ही क्यों?
पति ने शांति से उतर दिया, मैं उनसे बदला लेना चाहता हूं।
यहां कुछ कमी है!
एक दोस्त अपने संगी-साथी से कह रहा था, बारिश आने वाली है, मुझे बड़ा डर
लग रहा है; मेरी पत्नी बाजार गई हुई है।
उसके मित्र ने कहा, इसमें डरने की क्या बात है! अरे, बारिश कुछ उसे गला
तो न देगी। कोई मिट्टी की तो बनी नहीं। बहुत बारिश आ जाएगी, तो किसी दुकान में घुस कर खड़ी हो जाएगी। मित्र ने कहा, इसी का तो डर है। जिस दुकान में घुस जाती है, वहीं उधारी करके आ जाती है!
इस जिंदगी में तुम दुख तो देखो, कुछ कमी है! तप करने कहां जा रहे हो! डाक्टर चंदूलाल से कह रहे थे, चंदूलाल, यह कोई पुरानी बीमारी है जो आपका सुख-चैन नष्ट कर रही है।
चंदूलाल मुंह पर हाथ रख कर अपनी पत्नी की तरफ इशारा करके डाक्टर से बोले, जरा धीरे डाक्टर साहब! वह इधर ही खड़ी हुई है।
एक पुरुष और एक स्त्री पार्क में बैठे बहुत जोर-जोर से बातें कर रहे थे। अचानक स्त्री उठी और पुरुष को एक चांटा मार कर गुस्से में वहां से चली गई। इतने में पास से गुजरने वाले व्यक्ति ने वहां बैठे पुरुष से पूछा, वह स्त्री क्या आपकी पत्नी थी?
इस पर पुरुष ने बड़े तैश में आकर जवाब देते हुए कहा, और नहीं तो क्या! तुम मुझे इतना बे-गैरत इंसान समझते हो कि मैं किसी ऐरी-गैरी स्त्री से चांटा खा लूंगा?
कई वर्षों के बाद कालेज के दो साथियों की मुलाकात हो गई। और बातचीत का सिलसिला हुआ--

कैसे रहे इतने वर्षों तक?
कोई खास बात नहीं हुई। कालेज छोड़ने के फौरन बाद मैंने शादी कर ली थी।
यह तो बड़ा अच्छा किया।
नहीं। मेरी पत्नी बहुत लड़ाका थी।
ओह! इससे जीवन जहर हो गया होगा?
नहीं, इतना बुरा भी नहीं हुआ। दहेज में पांच हजार रुपए मिले थे!
उससे तो बड़ा फायदा हुआ होगा।
नहीं। उस रकम से मैंने दुकान कर ली, लेकिन बिक्री ही नहीं होती थी।
तब तो बड़ी मुसीबत रही होगी?
नहीं, बुरा भी नहीं हुआ। युद्धकाल में दुकान बड़े भाव में बेच दी। दस हजार का नगद फायदा हो गया।
यह बहुत अच्छा किया तुमने!
नहीं, इतना अच्छा भी नहीं हुआ। उस रकम से मैंने एक मकान खरीद लिया और मकान में आग लग गई!
यह तो बड़ी बदकिस्मती रही!
नहीं, इतनी बदकिस्मती भी नहीं रही। मेरी पत्नी भी उसमें जल गई!
यहां जिंदगी में क्या कमी है!
तप का मेरी दृष्टि में एक ही अर्थ है। जीवन में कांटे भी हैं, फूल भी हैं; फूलों का स्वागत तो कोई भी कर लेता है; कांटों का भी जो स्वागत कर ले, वह तपस्वी है। कुछ तुम्हें कांटे ईजाद करने की आवश्यकता नहीं है। यहां दिन भी हैं और रातें भी हैं। कुछ दीए बुझाने की तुम्हें जरूरत नहीं है। दिन को तो स्वभावतः तुम प्रसन्न हो, रात का अंधेरा भी अंगीकार कर लो। परितोष का नाम तप है। संतोष का नाम तप है। तप आत्म-हिंसा नहीं है, अपने
को सताना नहीं है। सताना तो हर हाल बुरा है, किसी को भी सताओ, तुम भी उसमें सम्मिलित हो। लेकिन जो भी जीवन में आ जाए--सुख हो कि दुख, सफलता हो कि विफलता, हार मिले कि जीत--तुम्हारे भीतर कोई अंतर ही न पड़े; तुम अडिग-अकंप बने रहो; यह तपश्चर्या है।
इसलिए तप के लिए किसी हिमालय की गुफा में बैठने की जरूरत नहीं; वह तो
तप से भागना है। हिमालय की गुफा में क्या खाक तप होगा! जीवन चुनौती है, प्रतिपल। और हर चुनौती छिद जाती है कटार की तरह। उसे फूल की तरह स्वीकार कर लेना तपश्चर्या है।
इसलिए न तो सिर के बल खड़े होओ, न धूनी रमाओ, न भभूत लगाओ, न जटाजूट बढ़ाओ,
न उपवासे मरो। इस सब की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा ने जीवन में सुख और दुख को बिल्कुल समतुल बनाया है। जीवन में हर चीज समतुल है। नहीं तो अस्तित्व बिखर जाए। इसमें समतुलता होनी ही चाहिए। जितना सुख, उतना दुख। जितनी रात, उतने दिन। जितनी सफलताएं, उतनी असफलताएं। तुम दोनों को सम-भाव से ले सको, तो तप।
लेकिन तुम्हारी व्याख्याओं ने बड़ी मुश्किल कर दी है! तुम्हारी व्याख्याओं ने तुम्हें न मालूम क्या-क्या सिखा रखा है।
मेरे हिसाब से तप तो जीवन की सहज साधना है, असहज नहीं। प्रत्येक वस्तु
को जिस दिन तुम आशीष की तरह स्वीकार करने को राजी हो जाओगे, अहोभाव से; जीवन के लिए भी धन्यवाद दोगे परमात्मा को, मृत्यु के लिए भी; बस, उस दिन जानना कि तुम्हारे भीतर तप का आविर्भाव हुआ है। सत्य है अपने स्वयं की शून्यता का, मौन का, निर्विचार का, निर्बीज अवस्था का अनुभव। और तप है, बाहर जो जीवन फैला है, उसे सम-भाव से देखने की दृष्टि।
फिर तीसरा शब्द है, सम्यक ज्ञान। यह शब्द यूं तो हिंदू शास्त्रों में पाया जाता है, मुंडकोपनिषद में है; बौद्ध शास्त्रों में पाया जाता है; जैन शास्त्रों में पाया जाता है; लेकिन जैनों ने इस शब्द पर अपनी आधारशिला रखी है; उन्होंने इसे बहुमूल्य माना है। लेकिन अगर जैन पंडित से पूछोगे, तो सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, जो ज्ञान जैन शास्त्र में है वह सम्यक ज्ञान! जो ज्ञान जैन शास्त्र में नहीं, किसी और शास्त्र में है, वह असम्यक ज्ञान! जैन शास्त्र--शास्त्र; अजैन शास्त्र--कुशास्त्र! जैन गुरु--गुरु; अजैन गुरु--कुगुरु! जैन मंदिर में बैठी प्रतिमा सुदेव; किसी और मंदिर में बैठी प्रतिमा कुदेव!

इतने अदभुत शब्द को, इतने प्यारे शब्द को ऐसा बिगाड़ा, ऐसा गंदा किया! सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, ठीक-ठीक जानना। सम्यक शब्द का अर्थ होता है, ठीक। जैसा है वैसा जानना। एक ही शर्त पूरी करनी जरूरी है। जैन होना जरूरी नहीं है। हिंदू या मुसलमान होना जरूरी नहीं है। एक शर्त पूरी करनी जरूरी है। और उस शर्त में--तुम बड़े चकित होओगे--तुम्हें जैन होना, बौद्ध होना, हिंदू होना, मुसलमान होना छोड़ना होगा। अगर सम्यक ज्ञान को पाना है, तो तुम्हें वे सारी धारणाएं छोड़ देनी होंगी, जो तुम्हारे ज्ञान को सम्यक नहीं होने देतीं।
जब तुम पहले से ही कोई धारणा लेकर चलते हो, तो तुम उसे कैसे देखोगे जो है! तुम तो वही देखोगे, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हारी आंखों पर तो एक पर्दा है। तुम्हारी आंखों में तो एक चित्र रमा है, एक चित्र बसा है, उसी चित्र के आधार से तुम यथार्थ को देखोगे। ऐसा देखना, असम्यक ज्ञान। अगर कुरान बीच में आ जाए, या गीता, महावीर या बुद्ध, तो तुम जो जानोगे वह असम्यक ज्ञान।
कोई बीच में न आए; तुम सीधा-सीधा जानो। जानने की क्षमता तुम्हारी निर्मल हो, स्वच्छ हो--किसी पूर्वाग्रह से आच्छादित नहीं, किसी पूर्व-धारणा से भरी नहीं--दर्पण की तरह हो; जो सामने आए, उसे झलका दे; जैसा है, वैसा झलका दे। यूं न कहे कि इस शक्ल को मैं न दिखाऊंगा, क्योंकि यह शक्ल सुंदर नहीं!
कहते हैं, बाबा तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया, तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, मैं नहीं झुकूंगा। मैं तो धनुर्धारी राम के सामने ही झुकता हूं। कहा उन्होंने कृष्ण से, तुलसी माथ तब नवै--शर्त लगा दी कि यह तुलसीदास का जो माथा है, तब झुकेगा--धनुष-बाण लेउ हाथ। जब हाथ में धनुष-बाण लोगे, तो यह माथा झुकेगा!
इसमें छिपे हुए अहंकार को देखते हैं! यह माथा भी सशर्त झुकेगा। पहले मेरी शर्त पूरी करो। तुम्हारे लिए नहीं झुकूंगा; मेरी शर्त पूरी होगी तो झुकूंगा। और मेरी शर्त है कि धनुष-बाण हाथ लो।
कृष्ण में क्या खराबी थी? बांसुरी में क्या बुराई थी? धनुष-बाण से तो बेहतर है। धनुष-बाण से तो ज्यादा विकसित है। धनुष-बाण से तो बहुत प्यारी है।
मगर नहीं; अपनी धारणा है। और यह कुछ तुलसीदास का ही रोग नहीं है। यह पीलिया सभी की आंखों पर छाया हुआ है।
मैं छोटा था। जैन घर में मैं पैदा हुआ। मेरे संगी-साथी तो हिंदू थे। उनके साथ मैं मंदिर जाता। तो मुझसे उम्र में बड़े जो जैन लड़के थे, वे मुझसे कहते, माथा मत झुकाना! ये अपने भगवान नहीं! यह हिंदू मंदिर है। यह कोई जैन मंदिर नहीं। और जब हिंदू बच्चों के साथ मैं कभी जैन मंदिर पहुंच जाता, तो वे कोई भी सिर न झुकाते! वे कहते, ये नागा बाबा! नंग-धड़ंग बैठे हैं! इनके सामने क्या सिर झुकाना! वे हंसी-मजाक उड़ाते।
यह छोटे बच्चों की ही बात होती, तो क्षम्य थी; बड़े बच्चों में भी कुछ फर्क नहीं है। उम्र ही ज्यादा है; बच्चे वही के वही!
तुम किसी जैन मुनि को ले जाओ कृष्ण के मंदिर में, सिर नहीं झुकाएगा। कुदेव के सामने सिर झुके! तुम ले जाओ किसी हिंदू संन्यासी को, वह महावीर के सामने सिर नहीं झुकाएगा। क्योंकि महावीर तो नास्तिक! बुद्ध के सामने सिर नहीं झुकाएगा। बुद्ध तो भ्रष्ट करने वाले! इन्होंने ही तो देश को बर्बाद कर दिया! इन्होंने ही तो भ्रष्टाचार के बीज बोए!
तुम मस्जिद के सामने से गुजरते हो, तुम्हारे मन में कभी भाव उठता है
कि झुक जाओ, कि जाकर दो क्षण भीतर आराधना कर लो, प्रार्थना कर लो! सवाल ही नहीं उठता। और झाड़ के नीचे किसी ने पत्थर पर लाल रंग पोत दिया है, दो फूल रख दिए हैं, एकदम घुटने टेक कर हनुमानजी का चालीसा शुरू! मुसलमान को कुछ नहीं होता वहां।
तुम्हारी अपनी धारणाएं आंखों पर छाई रहती हैं, उन्हीं से तुम देखते हो। इसलिए कुछ का कुछ देखते हो; जो है वैसा ही नहीं देखते। दर्पण की तरह जो हो जाए, वह सम्यक ज्ञान को उपलब्ध होता है। दर्पण का कोई आग्रह नहीं होता, निराग्रही होता है। दर्पण के सामने सुंदर चेहरे वाला व्यक्ति खड़ा हो तो,

असुंदर खड़ा हो तो; धनुष-बाण लिए हुए राम खड़े हों तो, और बांसुरी बजाते कृष्ण खड़े हों तो, और नग्न महावीर खड़े हों तो; कोई भेद न पड़ेगा। दर्पण तीनों को झलकाएगा, सम-भाव से झलकाएगा।
सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, ठीक-ठीक जानना। और ठीक-ठीक जानने के लिए जरूरी है शास्त्रों से मुक्ति, सिद्धांतों से मुक्ति, धारणाओं से मुक्ति, पूर्वाग्रहों से मुक्ति। जब तुम यह सारा कचरा अलग कर दोगे--न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन--तब तुम सम्यक ज्ञान को उपलब्ध हो सकोगे।
लेकिन सारी दुनिया अपने-अपने कचरे को पकड़े हुए है, जोर से पकड़े हुए है। मेरा कचरा सोना; तुम्हारा सोना कचरा! मेरा है, इसलिए सोना होना ही चाहिए!
सम्यक ज्ञान जैसा प्यारा शब्द अपनी सारी गरिमा खो दिया।
और ब्रह्मचर्य से तुम क्या अर्थ लेते हो? जब यह शब्द तुम्हारे कान में पड़ता है तो तुम्हारे भीतर क्या अर्थ उमगते हैं? तो ब्रह्मचर्य से तुम्हारी धारणाएं बड़ी अजीब हैं।
मेरे एक मित्र थे, लाला सुंदरलाल। उनके लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ था, लंगोट के पक्के! वही अधिकतर लोगों का अर्थ है, लंगोट के पक्के! कस कर लंगोट बांधा, तो ब्रह्मचर्य!
तुम कितने ही कस कर लंगोट बांध लो, इससे कुछ ब्रह्मचर्य नहीं हो जाएगा! ब्रह्मचर्य सिर्फ कामवासना का दमन नहीं है, कामवासना का रूपांतरण है। और दोनों में जमीन-आसमान का भेद है। जो कामवासना को दबाएगा, वह तो रुग्ण हो जाएगा। ब्रह्मचर्य को तो क्या उपलब्ध होगा, वह तो सामान्य, नैसर्गिक वासना से भी नीचे गिर जाएगा। वह तो और भी विकृत हो जाएगा। उसके जीवन में तो हजार तरह की विकृतियां आ जाएंगी। हां, यह भी हो सकता है कि तुम उन विकृतियों को भी पूजा देने लगो! विकृतियां भी पूजी जा रही हैं!
दबाया अगर तुमने अपनी कामवासना को, तो वह उभर कर निकलेगी। हां, नए-नए ढंग से निकलेगी कि तुम पहचान न सको। नई शक्लें लेगी, नए वस्त्र पहनेगी और निकलेगी।
अभी मोरारजी देसाई ने चार-छह दिन पहले ही एक वक्तव्य में कहा कि जब मैं प्रधान मंत्री था और कैनेडा गया...। तो उनकी उम्र करीब तेरासी वर्ष थी तब। तेरासी वर्ष की उम्र में भी उनको कैनेडा में देखने योग्य चीज क्या अनुभव में आई? वह था नाइट क्लब, जहां कैबरे नृत्य होता है, स्त्रियां अपने वस्त्र उघाड़-उघाड़ कर फेंक देती हैं, धीरे-धीरे नग्न हो जाती हैं।
कारण क्या देते हैं वे? कि मैं जानना चाहता था कि नाइट क्लब में होता क्या है!
मगर जान कर तुम्हें जरूरत क्या? तेरासी वर्ष की उम्र में तुम्हें यह उत्सुकता क्या? कि वहां क्या होता है! होने दो। इतनी बड़ी दुनिया है, इतनी चीजें हो रही हैं! कैनेडा में और कुछ नहीं हो रहा था, सिर्फ नाइट क्लब ही हो रहे थे? कैनेडा में कुछ और देखने योग्य न लगा? नाइट क्लब! और वह भी चोरी से गए! चोरी से भी जाने योग्य लगा! क्योंकि पता चल जाए कि नाइट क्लब में गए हैं, कैबरे नृत्य देखने गए हैं, तो बदनामी होगी। और मोरारजी देसाई तो महात्मा समझो! ऋषि-मुनि हैं!
मगर उन्होंने यह बात अब क्यों कही? अब कही, उसके पीछे और कारण है। गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थियों के सामने वे अपने ब्रह्मचर्य की घोषणा कर रहे थे, उसमें यह बात भी कह गए, कि मेरा ब्रह्मचर्य वहां भी डिगा- मिगा नहीं! तेरासी वर्ष की उम्र में कैबरे नृत्य देखने गए, ब्रह्मचर्य डिगा नहीं उनका! यह तो यूं हुआ कि कब्र में कोई पड़ा हो, और चारों तरफ कैबरे नृत्य होता रहे, और कब्र में पड़ा हुआ महात्मा कहे, अरे नाचते रहो! मैं अपने ब्रह्मचर्य में पक्का, लंगोट का पक्का! ऐसा कस कर लंगोट बांधा है कि क्या तुम मुझे हिलाओगे!
तो उन्होंने बड़ा रस लेकर वर्णन किया है! कि जैसे ही मैं अंदर गया, चार सुंदर स्त्रियां, जो मुझे पहचान गईं, क्योंकि अखबारों में उन्होंने तस्वीर देखी होगी, आकर एकदम मेरे पास नाचने लगीं, हाव-भाव प्रकट करने लगीं। मगर मैं भी बिल्कुल संयम साधे, नियंत्रण किए, अडिग खड़ा रहा!

अब यह संयम साधना, और यह अडिग खड़े होना, और यह नियंत्रण को बनाए रखना--
यह सब किस बात का सबूत है?
अभी भी वही सब रोग भीतर छाए हुए हैं--अभी भी! कहीं कुछ भेद नहीं पड़ा! नहीं तो नियंत्रण की भी क्या जरूरत थी? यह इतना संयम बांधने की भी क्या जरूरत थी? अरे, नाचती थीं, तो नाचने देना था! बैठते और प्रसन्न होते। अगर नाच अच्छा था, तो प्रशंसा करनी थी। या कम से कम कुछ न बनता तो थोड़ा नाचते! मगर बिल्कुल खड़े रहे अपने को सम्हाले हुए! कि कहीं पैर फिसल न जाए!
पैर फिसलने का डर? ये विकृतियां हैं। फिर आदमी विकृतियों से निकलता है...।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बेटे फजलू से कहा कि देख, गांव में एक गंदी फिल्म लगी हुई है। अश्लील है। कभी देखने मत जाना। ऐसे गंदे स्थान में कभी जाना ही मत। जाएगा तो बहुत पछताएगा!
फिर फजलू मुझसे कह रहा था कि मैं गया और बहुत पछताया। पिताजी ने ठीक कहा था कि बहुत पछताएगा।
मैंने कहा, हुआ क्या?
उसने कहा, हुआ यह कि पिताजी ने जो कहा था, सब ठीक निकला। उन्होंने दो बातें कही थीं। एक तो ऐसी चीजें देखने मिलेंगी, जो नहीं देखनी चाहिए। और दूसरा कि बहुत पछताएगा। दोनों बातें हुईं।
मैंने कहा, फिर भी मैं समझूं कि क्या-क्या हुआ!
उसने कहा, पहली बात तो यह हुई कि पिताजी वहां देखने को मिले! उन्होंने कहा था कि ऐसी चीजें देखने मिलेंगी, जो नहीं देखनी चाहिए! और दूसरा, मुझे देखते ही से उन्होंने पिटाई की कि तू यहां क्यों आया! सो बहुत पछताया भी। हालांकि पिटते हुए मैंने इतना जरूर पिताजी से पूछा कि आप क्यों यहां आए? तो उन्होंने कहा, मैं तुझे देखने आया! कि कहीं फजलू गया तो नहीं है! क्या-क्या मजे दुनिया में चलते हैं! फजलू को देखने गए थे, ये फिल्म में बैठे हुए हैं! लोग फिर बहाने खोजेंगे। फिर क्या-क्या बहाने नहीं खोजते हैं!
जैसे ही व्यक्ति दमन करेगा, वैसे ही उसके भीतर जो दमित वेग हैं, वे पीछे के दरवाजों से रास्ते बनाने लगेंगे। उस व्यक्ति के जीवन में दोहरापन पैदा हो जाएगा; या अनेकता पैदा हो जाएगी। उसके बहुत चेहरे हो जाएंगे। वह खंड-खंड हो जाएगा। कहेगा कुछ, करेगा कुछ, सोचेगा कुछ, सपने कुछ देखेगा। उसके जीवन में विकृति ही हो जाएगी। उसके जीवन की एकता खंडित हो जाएगी। ब्रह्मचर्य का यह अर्थ नहीं है। ब्रह्मचर्य शब्द में ही अर्थ छिपा हुआ हैः ब्रह्म जैसी चर्या; ईश्वरीय आचरण; दिव्य आचरण। दमित व्यक्ति का आचरण दिव्य तो हो ही नहीं सकता। अदिव्य हो जाएगा; पाशविक हो जाएगा। पशु से भी नीचे गिर जाएगा।
दिव्य आचरण तो एक ही ढंग से हो सकता है कि तुम्हारे भीतर जो काम की ऊर्जा है, वह ध्यान से जुड़ जाए। ध्यान और काम तुम्हारे भीतर जब जुड़ते हैं तो ब्रह्मचर्य फलित होता है। ब्रह्मचर्य फूल है ध्यान और काम की ऊर्जा के जुड़ जाने का। ध्यान अगर अकेला हो और उसमें काम की ऊर्जा न हो, तो फूल कुम्हलाया हुआ होगा; उसमें शक्ति न होगी। और अगर काम अकेला हो, उसमें ध्यान न हो, तो वह तुम्हें पतन के गर्त में ले जाएगा।
काश! ये दोनों जुड़ जाएं, ध्यान और काम। काम है शरीर की शक्ति और ध्यान
है आत्मा की शक्ति। और जहां ध्यान और काम जुड़े, वहां आत्मा और शरीर की शक्ति जुड़ गई। फिर तुम इस महान ऊर्जा के आधार पर उस अंतिम यात्रा पर निकल सकते हो, जो ब्रह्म की यात्रा है। तब तुम्हारे जीवन में ब्रह्मचर्य होगा। खंडित व्यक्ति की तो प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है। इसलिए तो मोरारजी देसाई जैसे लोगों के पास प्रतिभा नाम-मात्र को नहीं है! हो ही नहीं सकती। बुद्धि से तो इनकी दुश्मनी हो जाती है। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को तुम देखो, इनके भीतर तुम बुद्धि न पाओगे। इनको तुम बिल्कुल बुद्धू पाओगे। मगर ये तुम्हें बुद्धू दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि तुम्हारी धारणा यह है कि देखो, उपवास कर रहे हैं!
अब उपवास से बुद्धि का क्या संबंध? बुद्धिमान आदमी उपवास करेगा ही क्यों? जितनी जरूरत होगी, उतना भोजन करेगा। न ज्यादा भोजन करेगा, न कम

भोजन करेगा। बुद्धिमान आदमी तो हमेशा समता से जीएगा। शरीर की जरूरत है, उतना भोजन देगा। ज्यादा नहीं देगा, क्योंकि ज्यादा शरीर पर बोझ होता है। कम भी नहीं देगा, क्योंकि कम शरीर की हत्या करना है। बुद्धिमान व्यक्ति उतना देगा, जितना आवश्यक है। उतना सोएगा, जितना आवश्यक है। उतना श्रम करेगा, जितना आवश्यक है। ये तो बुद्धुओं के लक्षण हैं। या तो कम खाएंगे, या ज्यादा खाएंगे! या तो कम सोएंगे, या ज्यादा सोएंगे! या तो कम श्रम करेंगे, या ज्यादा श्रम करेंगे! कभी मध्य में न हो पाएंगे।
गांव में एक प्रसिद्ध नेताजी का भाषण होने वाला था। वे सभा-स्थल पर पहुंचे तो देखा, वहां सिर्फ एक ही श्रोता बैठा था! नेताजी ने उससे पूछा, अब क्या करना चाहिए?
जैसा आप ठीक समझें, उसने उत्तर दिया। मैं एक मामूली किसान हूं और यह जानता हूं कि जब मैं बीस गायों को चारा डालने जाता हूं, और यदि वहां सिर्फ एक गाय भी हो, तो मैं उसे बिना चारा दिए लौट नहीं आता!
उसके उत्तर से प्रभावित हो नेताजी ने भाषण दिया। एक घंटे बाद जब उनका धुआंधार भाषण समाप्त हुआ, तो नेताजी ने ग्रामीण से पूछा, कहो भाई, कैसा रहा?
बहुत सुंदर, किसान बोला, लेकिन मैं तो एक मामूली किसान हूं, और सिर्फ
यह जानता हूं कि बीस गायों की जगह मुझे यदि एक गाए मिले, तो मुझे उसको सब का चारा नहीं खिला देना चाहिए! और आपने यही किया कि गाय तो एक, और बीस गायों का चारा मुझ गरीब को खिला दिया! बस, भागी-भागी तबीयत रही कि कब भागूं! मगर अकेला हूं, भाग भी नहीं सकता! अब आपकी आंखें भी मुझी पर गड़ी हुई हैं! कई बहाने खोजे, मगर कोई बहाना हाथ न आए! अच्छा भी न लगे कि अब अकेला ही आदमी। मैं ही भाग जाऊं, तो फिर भाषण कैसे चलेगा! और नेताजी क्या सोचेंगे! बुरा इनके मन को न लग जाए। मगर इतना कहता हूं कि आगे जरा ख्याल रखें। जब गाय एक हो, तो बीस गाय का घास उसके सामने न डालें!
एक साधारण किसान में भी ज्यादा बुद्धि होती है तुम्हारे नेताओं से। फिर चाहे वे नेता धार्मिक हों और चाहे राजनैतिक, कुछ भेद नहीं है उनमें। तुम उनको नेता ही किसलिए कहते हो? तुम्हारे नेता कहने के भी कारण बड़े अजीब होते हैं! कोई चरखा चलाता है, हाथ की बनाई हुई खादी पहनता है, नेता हो गया! कोई उपवास करता है, दो-तीन घंटे शीर्षासन करता है, महात्मा हो गया! इसमें बुद्धिमत्ता का कहीं भी कोई संबंध है? चरखा चलाने में कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत है? थोड़ी-बहुत पहले रही भी हो, तो चरखा चलाते-चलाते नष्ट हो जाएगी। चरखा चलाओगे, चरखा ही हो जाओगे! बस, खोपड़ी में वही चरखा घूमता रहेगा! और कुछ तो और भी पहुंचे हुए हैं, तकली चला रहे हैं! बैठे-बैठे तकली ही घुमाते रहते हैं!
तुम जिनको धार्मिक कहते हो, जिनको तुम महात्मा कहते हो, कभी सोचो भी, इनके भीतर कहीं भी कोई प्रतिभा का लक्षण दिखाई पड़ता है? कोई मेधा दिखाई पड़ती है? और अगर मेधा ही न हो, तो ब्रह्मचर्य नहीं है, यह समझ लेना। क्योंकि ब्रह्मचर्य का और क्या सबूत हो सकता है? सबसे बड़ा सबूत होगा प्रतिभा की अभिव्यक्ति; प्रतिभा के हजार-हजार फूल खिल जाना; प्रतिभा के कमल खुल जाना; प्रतिभा की सुगंध उड़ जाना। उनके कृत्य में भी प्रतिभा होगी, उनके उठने-बैठने में, चलने-फिरने में भी। इसलिए चर्या! चलना-फिरना, उठना- बैठना, उनके जीवन के हर एक कृत्य में तुम एक धार पाओगे, एक चमक पाओगे, एक ओज पाओगे।
लेकिन तुम्हारे धार्मिक नेताओं की जिंदगी में तुम जंग लगी पाओगे। और जितनी ज्यादा जंग चढ़ी हो उन पर, उतने ही तुमको वे जंचेंगे! क्योंकि तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी मान्यताएं...।
अब कोई आदमी खड़ा है दस साल से। खड़ेश्री बाबा हो गए वे!
अब दस साल से खड़े हो, इससे क्या प्रतिभा का लेना-देना है? दुनिया में कौन सा सौंदर्य बढ़ रहा है तुम्हारे खड़े होने से? कौन सी संपदा बढ़ रही है? कौन सा सुख बढ़ रहा है? कौन सी शांति बढ़ रही है? मगर भक्तगणों की भीड़ लगी हुई है, भजन-कीर्तन चल रहा है, क्योंकि खड़ेश्री बाबा दस साल से खड़े हैं! दस साल से नहीं, दस हजार साल से खड़े हों, इनके खड़े होने से क्या होता है! ये खड़े- खड़े ठूंठ हो गए हों, तो भी क्या होता है!

या कोई मौन हो गया!

मेरे एक मित्र हैं; मेरे साथ एक बार कलकत्ता यात्रा पर गए। रास्ते में यूं बात कर रहे थे। एक मौनी बाबा थे, उनके वे भक्त थे। मैंने उनसे पूछा कि मौनी बाबा में तुम्हें क्या खास बात दिखाई पड़ती है?

अरे, उन्होंने कहा, खास बात! आज बीस साल से मौन हैं!

मैंने कहा, इसमें तो कुछ खास बात नहीं। मौन होने से क्या होना है? मौन होने से उनकी प्रतिभा में क्या निखार आ गया है? मौन होने से उनके जीवन में कौन से दीए जल गए हैं? अगर वे बुद्धू थे बीस साल पहले, तो मौन होने से और बुद्धू हो गए होंगे!

उन्होंने कहा, अरे, आप भी कैसी बात करते हैं! अगर वे बुद्धू होते, तो इतने लोग उनको कैसे पूजते? कोई मैं अकेले ही पूजता हूं। कितने लोग पूजते हैं!

अब, मैंने कहा, यह दूसरी बात तुम उठा रहे हो। उन दूसरों से मैं पूछूंगा तो वे कहेंगे कि कितने लोग पूजते हैं। उसमें तुम्हारी गिनती करेंगे। तो तुम दूसरों को देख कर पूज रहे हो!

मैंने कहा, तुम एक काम करो। मेरे साथ तुम कलकत्ता चल ही रहे हो, तुम तीन दिन मौन रह जाओ। और मैं देखो तुम्हारी पूजा करवा दूंगा।

उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! मेरी कौन पूजा करेगा? मुझमें कुछ है ही नहीं!

मैंने कहा, तुम चुप तो रहो। तीन दिन चुप रहना। और पूरा भी नहीं कहता, रात जब सब चले जाएं, दरवाजा बंद करके, तुम्हें जो भी मुझसे कहना हो, कह लेना। क्योंकि दिन भर रुके रहोगे, घबड़ा जाओगे। दुकानदार आदमी हो, चैबीस घंटे बात करते हो। तो रात एकांत में तुम मुझसे बोलने की स्वतंत्रता रखना। मगर दिन में, लाख कुछ हो जाए, अपने को बिल्कुल बांधे ही रखना। बोलना ही मत। कुछ अगर बोलना ही होगा तुम्हारे लिए, तो मैं बोल दूंगा।

कहा, जैसी आपकी मर्जी। उनको बात जंची, कि करके देख लेने जैसी है।

कलकत्ते में मैं ठहरता था सोहनलाल दूगड़ के घर पर। वे कलकत्ता के एक बड़े करोड़पति थे। जब मैं उनके घर पहुंचा, वे मुझे लेने आए, तो उन्होंने पूछा कि आपके साथ कौन हैं?

मैंने कहा, ये मौनी बाबा हैं।

मौनी बाबा! इनकी क्या खूबी है?

मैंने कहा, ये तीस साल से मौन हैं!

वे एकदम उनके पैरों पर गिरे! वे बेचारे सज्जन, जो दुकानदारी करते थे, कपड़ा बेचते थे; और कपड़ा भी कुछ खास नहीं, कटपीस की एक छोटी सी दुकान थी। सोहनलाल दूगड़ जैसा करोड़पति उनके पैरों पर गिरे! सकुचाए भी। मैंने उनको इशारा किया कि सकुचाना मत। अब जब मौनी बाबा बन गए, तो अब डरना मत। अभी तो बहुत कुछ होगा; यह तो शुरुआत है। जब सोहनलाल दूगड़ तुम्हारे पैर में गिरेंगे, तो अभी तुम कलकत्ते के सब मारवाड़ियों को गिरते देखोगे। तुम घबड़ाते क्या हो; तुम रुको जरा।

वे तो इतने घबड़ा गए कि वे मुझे हाथ से धक्का मारें कि भैया, यह बात ठीक नहीं!

घर पहुंचे। सोहनलाल ने जल्दी से अपनी पत्नी को बुलाया कि मौनी बाबा! मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए कि मौनी बाबा आए हैं! तीस साल से मौन हैं! और मौनी बाबा पर जो गुजर रही है, वह मैं जानूं! कि वे रात का वक्त देख रहे हैं कि कब रात आए, कि अपने दिल की मुझसे कहें!

जैसे ही रात आई, दरवाजा जल्दी से बंद करके मेरे पैरों पर गिर पड़े और कहा कि मुझे माफ करो। मुझे यह काम करना ही नहीं! मुझे जाने दो! मैं तो अभी भागे जाता हूं; रात को ही चुपचाप निकल जाऊंगा। यह क्या झंझट मेरे पीछे लगा दी! इतने-इतने बड़े लोग, जिनके घर मुझे अगर मिलने भी जाना होता, तो कोई मिलने नहीं देता। चपरासी भीतर नहीं घुसने देता। और वे मेरे पैर पर गिरते हैं तो मुझको बड़ा संकोच लगता है! और स्त्रियां उनकी, सुंदर से सुंदर स्त्रियां मेरे पैर छू रही हैं! यह क्या करवा रहे हो आप?

मैंने कहा, मैं कुछ नहीं करवा रहा हूं। यह मैं तुमको बता रहा हूं कि कैसी-कैसी बेवकूफियां इस देश में हैं। तुम भी उन्हीं बेवकूफों में हो!

जिसकी तुम बीस साल से पूजा कर रहे हो...। और तुम तो अभी सिर्फ पांच-छह घंटे ही मौन रहे हो, तो यह चमत्कार! अभी तुम तीन दिन रुको तो! अभी तुम देखना, इलाज शुरू हो जाएंगे, बीमारियां ठीक होने लगेंगी।
अरे, उन्होंने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मुझमें कुछ चमत्कार नहीं, कोई शक्ति नहीं!
तुम, मैंने कहा, फिक्र ही मत करो। सब आ जाएगा। मौन भर रहो। और दिन भर रहो मौन। मगर दिन में बोलना मत। और मुझको धक्के वगैरह भी मत मारना। क्योंकि लोगों को शक पैदा हो जाएगा कि बात क्या है! तुम तो अपना आंखें बंद कर लिए। अगर बिल्कुल सहने के बाहर हो जाए, आंख बंद कर लिए। अपने भीतर ही भीतर नमोकार मंत्र पढ़ने लगे कि होने दो जो हो रहा है।
तीन दिन में तो उनकी डुंडी पिट गई! अखबारों में फोटो आ गए! रात को वे मुझे फोटो दिखाएं कि यह क्या करवा रहे हो? अगर मेरे घर पता चल गया; अगर मेरे पत्नी-बच्चों को पता चल गया; तुम तो मेरा घर लौटना तक बंद कर दोगे! ये अखबार अगर वहां पहुंच गए, तो मेरी मुसीबत हो जाएगी। और फिर मेरी दुकान की भी तो सोचो! और इधर मैं कटपीस खरीदने आया हूं; तुम नाहक रास्ते में मिल गए! अब मैं कटपीस कहां खरीदूंगा? यह कलकत्ते का बाजार तो खत्म! क्योंकि जिनके यहां से मैं कटपीस खरीदता था, वे लोग भी मेरे पैर छू रहे हैं! और कई तो मुझे गौर से देखते भी हैं कि यह शक्ल कुछ पहचानी मालूम होती है!
एक-दो आदमियों ने प्रश्न भी किया कि ये तीस साल से मौन हैं? यह शक्ल कुछ पहचानी मालूम होती है!
मैंने कहा, देखा होगा किसी पिछले जनम में! अरे, यह जनम-जनम का नाता है। उन्होंने कहा, यह बात ठीक!
ये कोई साधारण साधक हैं! ये तो जन्मों से साधना कर रहे हैं। कई बार तुम मिले होओगे पिछले जन्मों में, इसलिए शक्ल पहचानी लगती है।
उन्होंने कहा, हां, लगती तो पहचानी सी है शक्ल। मतलब कहीं देखा है। और ऐसा भी नहीं लगता कि पिछले जन्म में देखा है; इसी जनम में देखा है।
मैंने कहा, ये बड़े पहुंचे हुए पुरुष हैं। ये एक ही साथ कई नगरों में एक साथ प्रकट हो जाते हैं!
वे मुझे हुद्दे मारें कि मत ऐसी बातें कहो! मेरी कमीज खींचें कि मत कहो भैया, ऐसी बातें मत कहो! ये बिल्कुल झूठ बातें हैं।
मगर लोग मान रहे हैं! मिठाइयां आने लगीं; फल आने लगे। वे रात मुझको कहें कि क्या करवा रहे हो? इतनी मिठाइयां-फल मैं कहां ले जाऊंगा?
मैंने कहा, तुम ले जाना। घर बाल-बच्चों को, मोहल्ले में बंटवा देना। स्टेशन पर जब उनको लोग छोड़ने आए...कटपीस तो वे खरीद ही नहीं पाए। क्योंकि अब कहां कटपीस खरीदें! और कोई देख ले कटपीस खरीदता, कि मौनी बाबा कटपीस खरीद रहे हैं!
रास्ते भर मुझ पर नाराज रहे कि और सब तो ठीक, मगर कलकत्ते का बाजार खराब करवा दिया! अब मैं कलकत्ता कभी न जा सकूंगा!
मैंने उनसे कहा, तुम घबड़ाओ मत। तुम एक काम करो, दाढ़ी बढ़ा लो। अगली बार
जब कलकत्ता जाओ, दाढ़ी-मूंछ बढ़ा कर चले जाना।
हां, उन्होंने कहा, यह बात जंचती है।
मैंने कहा, फिर वे लोग कहेंगे कि देखा है कहीं! तो कहना, अरे देखना वगैरह तो चलता रहता है। कई लोगों की शक्लें एक जैसी होती हैं। और न हो, तो मैं साथ आ जाऊं।
उन्होंने कहा, नहीं, आपके तो साथ आने की कोई जरूरत ही नहीं। आपके साथ
तो मैं अब कभी कहीं जाऊंगा नहीं! अगर ट्रेन में मुझे पता भी चल गया कि आप सफर कर रहे हो, तो उस ट्रेन से उतर जाऊंगा।
और मेरे पैर पकड़ कर कहने लगे, इतनी कृपा करो कि ट्रेन में किसी को खबर
न हो! मतलब ये ट्रेन के लोग तो जबलपुर भी जाएंगे मेरे साथ ही। अगर वहां तक खबर पहुंच गई, तो सब चैपट समझो! मेरी पत्नी मुझे मुश्किल में डाल देगी कि तुमसे किसने कहा था कि तुम मौनी बाबा बनो? और तुम कहां से तीस साल मौनी बाबा रहे? तीन दिन के लिए घर से गए, और तीस साल मौनी बाबा हो गए!
फिर दुबारा जब मैं कलकत्ता जाता था, तो लोग उनकी जरूर पूछते थे कि मौनी बाबा नहीं आए? कब आएंगे? मैंने कहा, आएंगे! जरूर आएंगे! उनको स्वागत-178

सत्कार ज्यादा पसंद नहीं। वे बहुत नाराज हो गए हैं कलकत्ते से! इतना धूम-धड़ाका उनको बिल्कुल पसंद नहीं। वे बहुत सीधे-सादे आदमी हैं; मौन, एकांतवास करते हैं।
तुम जिनकी पूजा करते हो, जिनको महात्मा कहते हो, उसमें तुम्हारी धारणाएं ही भर काम कर रही हैं। तुम आंख खोल कर देखते भी नहीं।
ब्रह्मचर्य घटित होगा, तो अपूर्व ज्योति प्रकट होगी। वही इस सूत्र का अर्थ हैः
"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।"
यह आत्मा अभी मिल जाए, मिली ही हुई है। बस, इतना ही चाहिए कि तुम सत्य
को जान लो शून्य में। जीवन के सुख-दुख में सम-भाव रखो। तप को पहचान लो। कूड़ा-करकट, उधार ज्ञान हटा दो, ताकि जो जैसा है, उसे वैसा ही देख सको। सम्यक ज्ञान फलित हो। और तुम्हारे भीतर जो शरीर की ऊर्जा है, काम-ऊर्जा, और जो तुम्हारी आत्मा की ऊर्जा है, ध्यान-ऊर्जा--काम और ध्यान का मिलन हो जाए। काम और राम का तुम्हारे भीतर मिलन हो जाए, तो बस, यह आत्मा अभी मिली, इस क्षण मिली।
"अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो।"
तत्क्षण तुम जान सकोगे कि इसी शरीर में, इसी शरीर के भीतर वह ज्योति छिपी है, जो परम शुभ्र है।
"यं पश्यंति यतयः क्षीणदोषाः।"
ऐसा उन्होंने देखा है, जिन्होंने सारे दोषों से अपने को मुक्त कर लिया है।
और ये ही वे दोष हैं। विचार दोष है; इसके कारण तुम शून्य नहीं हो पाते। चुनाव दोष है; उसके कारण तुम सम नहीं हो पाते। उधार ज्ञान दोष है; उसके कारण तुम्हारी दृष्टि ठीक-ठीक निर्मल नहीं हो पाती। और दमन दोष है; उसके कारण तुम शरीर में छिपी हुई ऊर्जा को आत्मा का वाहन नहीं बना पाते।
नहीं तो शरीर की ऊर्जा अश्व की भांति है। तुम उस पर सवार हो जाओ, उसके मालिक हो जाओ। और तुम जान लोगे अपने भीतर छिपे हुए उस परम आलोक को, जिसका न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत; जो शाश्वत है। उसे जिसने जाना, सब जाना। उसे जिसने जीता, उसने सब जीता।

मेरा स्वर्णिम भारत-18

संन्यास: बोध की अवस्था
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #4)

पहला प्रश्न: भगवान, यह श्लोक भी मुंडकोपनिषद में है:
वेदांत विज्ञान सुनिश्चितार्था:
संन्यास योगाद यतय: शुद्ध-सत्वा:।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।
अर्थात वेदांत और विज्ञान (प्रकृति का ज्ञान) के द्वार जिन्होंने अच्छी तरह अर्थ का निश्चय कर लिया है और साथ ही संन्यास और योग के द्वारा जो शुद्ध स्वत्व वाले हो गये हैं, वे प्रयत्नवान ब्रह्मपरायण लोग मरने पर ब्रह्मलोक में पहुंच कर मुक्त हो जाते हैं।
भगवान, हमें इस सूत्र को समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद! यह सूत्र तो मूल्यवान है, लेकिन इसकी जो व्याख्याएं की गयी हैं अब तक, बड़ी मूल्यहीन हैं। तुमने भी हिंदी में इसका जो अर्थ किया है, वह उन्हीं व्याख्याओं पर आधारित है जो गलत हैं। और गलत व्याख्या बहुत दिनों तक चलती रहे तो ठीक मालूम होने लगती है। पुनरुक्ति का एक सम्मोहन है, जादू है। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा "मगनकेंप्फ" में लिखा है कि झूठ को अगर बार-बार दोहराया जाए तो वह सत्य हो जाता है। और उसने ऐसा लिखा ही नहीं, उसने बड़े से बड़े झूठों को सत्य करके दिखा भी दिया। सिर्फ पुनरुक्ति के बल पर। दोहराए गया, दोहराए गया, पहले लोग हंसे, फिर लोग सोचने लगे, फिर धीरे- धीरे लोग स्वीकार करने लगे।
विज्ञापन की सारी कला ही इस बात पर आधारित है: दोहराए जाओ। फिर चाहे हेमामालिनी का सौंदर्य हो और चाहे परवीन बॉबी का, सबका राज लक्स टायलेट साबुन में है। दोहराए जाओ--अखबारों में, फिल्मों में, रेडियो पर, टेलीविजन पर--और धीरे-धीरे लोग मानने लगेंगे। और एक अचेतन छाप पड़ जाती है। और फिर तुम जब बाजार में साबुन खरीदने जाओगे और दुकानदार पूछेगा, कौन-सा साबुन? तो तुम सोचते हो कि तुम लक्स टायलेट खरीद रहे हो! तुमसे खरीदवाया जा रहा है। वह जो तुमने पढ़ा है बार-बार! तुम कहते हो, लक्स टायलेट दे दो। तुम यही सोचते हो, यही मानते हो कि तुमने खरीदा, मगर तुम भ्रांति में हो। पुनरुक्ति ने तुम्हें सम्मोहित कर दिया।
नये-नये जब पहली दफा विद्युत के विज्ञापन बने तो वे थिर होते थे। फिर वैज्ञानिकों ने कहा कि थिर का वह परिणाम नहीं होता। जैसे लक्स टायलेट लिखा हो बिजली के अक्षरों में और थिर रहें अक्षर, तो आदमी एक ही बार पढ़ेगा। लेकिन अक्षर जलें, बुझें, बुझें, तो जितनी बार जलेंगे, बुझेंगे, उतनी बार पढ़ाने को मजबूर होना पड़ेगा। तुम चाहो कार में ही क्यों न बैठ कर गुजर रहे होओ, जितनी देर तुम्हें बोर्ड के पास से गुजरने में लगेगी, उतनी देर में कम से कम दस-पंद्रह दफा अक्षर जलेंगे, बुझेंगे, उतनी बार पुनरुक्ति हो गयी। उतनी पुनरुक्ति तुम्हारे भीतर बैठ गयी।
इस तरह के बहुमूल्य सूत्र भी कूड़ा-कचरा हो गये हैं, क्योंकि उनके जो अर्थ किये गये! एक-दो दिन की पुनरुक्ति नहीं है, हजारों वर्षों की पुनरुक्ति है। इसलिए तुम्हें मेरे साथ एक-एक शब्द को पुनः समझना होगा। "वेदांत"। इसका अर्थ किया गया है सदा से: वेदों की पराकाष्ठा, जो कि नितांत झूठ है। क्योंकि उपनिषद वेदों की पराकाष्ठा नहीं हैं, वेदों से बगावत हैं, विद्रोह हैं। उपनिषद यानी वेदांत। लेकिन इस झूठ को इतना दोहराया गया कि उपनिषदों में वेदों की पराकाष्ठा है; जैसे फूलों की गंध होती है ऐसे वेदों के वृक्षों पर उपनिषदों के फूल लगे हैं, इन फूलों में जो गंध उठ रही है, उसकी जड़ें वेदों में हैं। यह बात सच नहीं है। वेदांत का अर्थ होता है: जहां वेद समाप्त हो गये, जहां वेदों का अंत हो गया। उसके बाद

जो यात्रा है, उसके बाद जो आयाम है, शास्त्रों के पार, वेदों के पार, शब्दों के पाद, वह वेदांत है।
वेद बहुत लौकिक हैं। कहीं भूले-चूके कोई सूत्र आ जाता है जो प्यारा है, निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। उपनिषद उस कचरे की पराकाष्ठा नहीं हैं। उपनिषदों में वेदों का स्पष्ट विरोध है। कृष्ण ने भी गीता में वेदों का स्पष्ट विरोध किया है। लेकिन विरोध करने का ढंग और फिर उस ढंग पर की लीपा-पोती, सदियों-सदियों में पंडितों के चढ़ाए गये रंग, तुम्हें झूठ को मानने को मजबूर कर दिये हैं। तुम्हारे अचेतन में झूठ बैठ गया है। कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि वेद लौकिक हैं, सांसारिक हैं। जो सांसारिक बुद्धि के लोग हैं, उनके लिए हैं। और जिन्हें अध्यात्म की खोज करनी है, उन्हें वेदों के पार जाना होगा।
यही बात महावीर ने कही। लेकिन बहुत साफ ढंग से कही। कृष्ण की बात तो लीपा-पोता गया था। महावीर के समय तक आते-आते समाधिस्थ व्यक्ति सजग हो गये थे कि पंडितों ने दर्ुव्यवहार किया है। अब दुबारा वैसा दर्ुव्यवहार न हो सके, इसलिए महावीर और बुद्ध ने वेदों का स्पष्ट विरोध किया, सतत विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि बुद्ध और महावीर को हिंदू समाज स्वीकार न कर सका, पचा न सका, इनकार कर दिया। उनको भी पचा लिया होता, अगर उन्होंने भी जरा-सा अवसर दिया होता अपने शब्दों को तोड़े-मरोड़े जाने को, तो उनको भी पचा लिया होता लेकिन वे सजग थे कि जो कृष्ण के साथ हुआ, जो उपनिषद के ऋषियों के साथ हुआ, उनके साथ न हो जाए। उनकी सजगता का यह परिणाम था कि उन पर वेद नहीं थोपे जा सके। नहीं थोपे जा सके तो हिंदुओं के पास एक ही उपाय था कि बुद्ध और महावीर की निंदा करें, उनको उखाड़ फेंकें।
बुद्ध को तो बिलकुल उखाड़ फेंका भारत से। भारत में उनकी कोई रूपरेखा न बची, कोई नामलेवा न बचे। महावीर को इस बुरी तरह से नहीं उखाड़ा और उसका कारण था, क्योंकि महावीर की बात बहुत लोगों तक पहुंच नहीं सकती थी। महावीर की बात इतनी दार्शनिक थी कि बहुत थोड़े-से लोगों तक पहुंच सकती थी--उनसे कुछ डर था। पहुंच-पहुंच कर भी क्या होगा? बहुत थोड़े-से लोग ही उसको समझ पाएंगे। बुद्ध की बात बड़ी सीधी थी। वह करोड़ों लोगों तक पहुंच सकती थी। उसमें खतरा था।
वेदांत का अर्थ तुम समझ लो, वेदों की पराकाष्ठा नहीं, वेदांत का अर्थ होता है: जहां वेदों का अंत हो जाता है। वेदों की जहां मृत्यु हो जाती है। वेदों की राख से जो उठता है, वह वेदांत है। वेदों की पराकाष्ठा नहीं है, वेदों से बगावत, विद्रोह।
और होगी भी यह बगावत, क्योंकि वेद हैं क्या? मगर तुम वेदों के पन्ने उलटाओ--कहीं से भी खोल लो वेद को--तो तुम चकित होओगे कि क्यों इन शब्दों को, इन सूत्रों को धर्म का नाम दिया गया है। साधारण आकांक्षाएं हैं। कोई मांग रहा है: फसल ज्यादा हो जाए; कोई मांग रहा है इंद्र से कि वर्षा ज्यादा हो जाए; कोई मांग रहा है धन-धान्य; कोई मांग रहा है--उसके गउओं के थनों में दूध ही दूध भर जाए। और इतना ही नहीं, उसके दुश्मन की गउओं के थन बिलकुल सूख जाएं। मेरे खेत में वर्षा हो, इतना ही नहीं, पड़ोसी के खेत में वर्षा हो ही न। यह, इसको अध्यात्म कहोगे? यह तो बड़ी निम्न वृत्तियां हुई। मेरे शत्रुओं को नष्ट कर दे, है इंद्र देवता, उन पर बिजली गिरा दे, उनको राख कर दे। इसको अध्यात्म और धर्म कहोगे? यह तो मनुष्य की सामान्यर् ईष्याएं, शत्रुताएं, हिंसाएं, वैमन्स्य, उसके ही प्रतीक हैं। जरूर कहीं-कहीं वेद में कोई सूत्र आ जाता है जो बड़ा प्यारा है। लेकिन सौ मैं एक बार। निन्यानबे बार तो कचरा ही हाथ लगेगा। और उस कचरे में वे हीरे भी खो गये।
उपनिषद हीरे ही हीरे हैं। वहां कचरा नहीं है।
उपनिषद शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसे समझो तो वेदांत भी समझ में आ जाएगा। उपनिषद का अर्थ होता है: गुरु के पास बैठना। उप निषद। पास बैठना। बस, इतना ही अर्थ है उपनिषद का। गुरु के पास मौन होकर बैठना; जिसने जाना है, उसके पास शून्य होकर बैठना। और उस बैठने में ही हृदय से हृदय आंदोलित हो जाते हैं। उस बैठने में ही सत्संग फल जाता है। जो नहीं कहा जा सकता, वह कहा जाता है। जो नहीं सुना जा सकता, वह सुना जाता है। हृदय की वीणा बज उठती है।

जिसने जाना है, उसकी वीणा बज रही है। जिसने नहीं जाना है, वह अगर पास सरक आए तो उसके तारों में भी टंकार हो जाती है।
संगीतज्ञों का यह अनुभव है, अगर एक ही कमरे में--खाली कमरे में--सिर्फ
दो वीणाएं रखी जाएं, द्वार-दरवाजे बंद हों और एक वीणा पर वीणावादक तार छेड़ दे, संगीत उठा दे, तो दूसरी वीणा जो कोने में रखी है, जिसको उसने छुआ भी नहीं, उस वीणा के तार भी झंकृत होने लगते हैं, एक वीणा बजती है तो हवाओं में आंदोलन हो जाता है, हवाओं में संगीत-लहरी फैल जाती है, स्पंदन हो जाता है। वह स्पंदन जिस वीणा को छुआ भी नहीं है, उसके भीतर भी सोए संगीत में हलचल मचा देता है। उसके तार भी जैसे नींद से जाग आते हैं, जैसे सुबह हो गयी।
आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले एक वैज्ञानिक ने पहली दफा इस सिद्धांत को खोला। वह इसे कोई नाम न दे सका। फिर अभी कुछ वर्षों पहले, कोई चालीस वर्ष पहले कार्ल गुस्ताव जुंग नाम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने इसे नाम दिया: "सिंक्रानिसिटी।"। जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा यह खोज की थी, वह एक पुराने किले में मेहमान था, एक राजा के घर मेहमान था। और जिस कमरे में वह था, दो घड़ियां उस कमरे में एक ही दीवाल पर लटकी हुई थीं। पुराने ढब की घड़ियां। मगर वह हैरान हुआ यह बात जान कर कि उनका पेंडुलम एक साथ घूमता है। मिनिट और सेकेंड भी भिन्न नहीं। सेकेंड सेकेंड वे एक साथ चलतीं। इन दो घड़ियों के बीच उसे कुछ ऐसा तालमेल दिखायी पड़ा--वैज्ञानिक था, सोच में पड़ गया! कि इस तरह की दो घड़ियां उसने देखी नहीं जिनमें सेकेंड का भी फर्क न हो। तो उसने एक काम किया, कि यह संयोग हो सकता है, उसने एक घड़ी बंद कर दी रात को। और दूसरे दिन सुबह शुरू की और दोनों के बीच कोई तीन-चार मिनिट का फासला रखा। चौबीस घंटे पूरे होते-होते दोनों घड़ियां फिर साथ-साथ डोल रही थीं। बराबर, सेकेंड-सेकेंड करीब आ गये थे, पेंडुलम फिर साथ-साथ लयबद्ध हो गये थे। तब तो यह चमत्कृत हो गया। राज क्या है? आया था दिन-दो दिन के लिए, लेकिन सप्ताहों रुका--जब तक राज न खोज लिया।
राज यह था कि वह जिस दीवाल पर लटकी थी, उस पर कान लगा-लगा कर वह सुनता रहा कि क्या हो रहा है, तब उसे समझ में आया कि एक घड़ी के पेंडुलम टीक्-टीक्, जो बड़ी घड़ी थी उसकी टिक्-टीक् दीवाल के द्वारा दूसरी घड़े के पेंडुलम को भी संचालित कर रही है, उसमें एक लयबद्धता पैदा कर रही है। और बड़ी घड़ी इतनी बलशाली है कि छोटी घड़ी करे भी तो क्या करे! वह छोटी सहज ही उसके साथ लयबद्ध हो जाती है।
उसने इसको सिर्फ लयबद्धता कहा था। लेकिन जुंग ने इसे पूरा वैज्ञानिक आधार दिया और " सिंक्रानिसिटी" कहा; और सिर्फ घड़ियों के लिए नहीं, जीवन के समस्त आयामों में इस लयबद्धता के सिद्धांत को स्वीकार किया।
रहस्यवादी तो इस सिद्धांत से हजारों वर्षों से परिचित हैं। सत्संग का यही राज है, "सिंक्रानिसिटी"। सदगुरु यूं समझो कि बड़ी घड़ी, कि बड़ा सितार। शिष्य यूं। समझो कि छोटी घड़ी, छोटा सितार। और शिष्य अगर राजी हो, श्रद्धा से भरा हो और बड़े सितार के पास सिर्फ बैठ रहे, कुछ न करे, तो भी उसके तार झंकृत हो जाएंगे।
उपनिषद का अर्थ है: लयबद्धता। उप का अर्थ होता है: पास, निषद का अर्थ होता है: बैठाना। मगर कैसे विकृत हो गये! उपवास का अर्थ हो गया: अनशन। भूखे मरना। उपवास का अर्थ होता है: पास वास करना। इतने निकट हो जाना गुरु के-- हां, कभी-कभी यह होगा कि गुरु की निकटता में ऐसा पेट भर जाएगा कि शायद भूख की याद भी न आए। इसी कारण अनशन की विकृति पैदा हुई। गुरु के आनंद में डूब कर अगर भोजन की याद न आए, तो उपवास; और जबरदस्ती भोजन न किया जाए, तो अनशन हिंसा है, उपवास प्रेम है। उनमें जमीन-आसमान का भेद है।
इधर सोहन बैठी है, उससे पूछो। मैं उससे पूछता था जब उसके घर मेहमान होता था, पूना आता था, कि तू मुझे खिलाती है--और मेरे कारण न मालूम कितने मेहमान दिन भर उसके घर आते, उन सबको खिलाती है, और तू कुछ खाती-पीती दिखायी नहीं पड़ती! तो वह मुझसे कहने लगी, जब आप यहां होते हैं, मुझे भूख ही नहीं लगती। मैं खुद ही चकित हूं कि भूख कहां खो जाती है? मैं इतनी भरी-भरी हो जाती हूं कि भीतर जगह ही नहीं रहती।
प्रेम भोजन से भी बड़ा भोजन है। और जरूर भरता है, बहुत भर देता है। शायद भोजन की याद भी न आए। इस कारण एक गलत अर्थ हो गया उपवास का: अनशन। उपासना का

अर्थ है: पास बैठना। उसका भीतर भी गलत अर्थ हो गया। अब तुम मूर्ति की आराधना कर रहे हो। थाली सजायी हुई है, आरती बनायी हुई है, दीये जलाए हुए हैं, धूप जलायी हुई है और इसको तुम उपासना कह रहे हो। नहीं, उपासना तो केवल सदगुरु के पास बैठना होता है। और उसके पास बैठना ही आरती है, आराधना है। उसके पास बैठना ही तुम्हारी भीतर के दीये का जलना है। उसके पास बैठते ही तुम्हारे भीतर धूप जल उठती है, सुगंध उठने लगती है।
वेदांत का अर्थ है: जहां शब्द नहीं हैं; जहां शास्त्र नहीं, सिद्धांत नहीं, जहां वेदों का तो अंत हो गया, जहां सब शास्त्र बहुत पीछे छोड़ दिये गये--मन ही पीछे छोड़ दिया गया! मन में ही शास्त्र हो सकते हैं; मन के पार तो शास्त्र नहीं हो सकते वेदांत है मन के पार उड़ान; अ-मनी दशा। वेदांत है: ध्यान, समाधि।
तो पहले तो वेदांत का अर्थ ठीक से समझ लो, नहीं तो भूल हो जाएगी। फिर मेरा अर्थ पकड़ में नहीं आएगा।
दूसरा शब्द है: "विज्ञान"। तुमने, सहजानंद, विज्ञान का अर्थ किया: प्रकृति का ज्ञान। क्योंकि अब हम साइंस के अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग करते हैं। यह हमारी नयी बात है। हमारे पास साइंस के लिए कोई शब्द न था, हमने विज्ञान शब्द को उपयोग करना शुरू कर दिया था। मगर तुम उपनिषदों पर इस अर्थ को मत थोपो! उपनिषदों में तो विज्ञान का बहुत सीधा अर्थ है, वह है: विशेष ज्ञान। विज्ञान यानी विशेष ज्ञान। ज्ञान वह है जो दूसरों से मिलता है और विशेष ज्ञान वह है जो अपने भीतर ही आविर्भूत होता है। उसका कोई साइंस से लेना-देना नहीं है। विज्ञान का अर्थ प्रकृति का ज्ञान नहीं है। विज्ञान का अर्थ है: विशेष; उधार नहीं निज का। वही उसकी विशिष्टता है, उसकी अद्धितीयता है।
वेदांत और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। वेदांत है: शास्त्र
के पार जाना--वह है मार्ग--और विज्ञान है उपलब्धि; विशेष की प्रतीति, अनुभूति,साक्षात्कार। विश्वास नहीं, अपना अनुभव। और और तभी जीवन का सुनिश्चित अर्थ पता चलता है।
अब इस वचन को तुम समझो--
वेदांत विज्ञान सुनिश्चितार्थाः
जिसने वेदांत के साधन से विज्ञान उपलब्ध किया है, उसे जीवन का अर्थ और अभिप्राय पता चलता है। उसके बिना जीवन का अर्थ पता नहीं चलता है। मगर इस पर कितना कचरा थोपा गया है ऐसी ही घटना और शब्दों के साथ भी हुई। संन्यास योगाद यतयः शुद्ध-सत्वाः।
संन्यास का अर्थ पकड़ गया, जड़ हो गया; संसार को छोड़ दे जो, वह संन्यासी।
तो फिर जनक संन्यासी नहीं हैं। लेकिन जनक से ज्यादा किसने जाना? और अगर जनक संसार में रह कर जान सकते हैं, तो संन्यास फिर अपरिहार्य न रहा। और संन्यास निश्चित ही अपरिहार्य है, अनिवार्य है। संन्यास के बिना कोई भी नहीं जान सकता। तो हमें संन्यास को कुछ पुनः आविष्कार करना होगा इसके छिप गये अर्थ को।
संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ देना नहीं है। संन्यास का अर्थ है: असार, व्यर्थ जो हम पकड़े हुए हैं, उसका छूट जाना--छोड़ना नहीं, छूट जाना। भेद स्पष्ट कर लेना। वहीं भूल हो गयी है। जैसे महावीर से तो साम्राज्य छूटा, लेकिन देखने वालों ने समझा कि छोड़ा। देखने वालों का भी कसूर नहीं, देखने वालों की अपनी मुसीबत है। देखने वालों की यह तकलीफ है कि वे तो पकड़े हुए हैं धन को, वे कैसे मानें कि धन अपने से छूट जाता है। उनका अपने जीवन का--एक जीवन का नहीं, अनंत जीवन का--अनुभव यह है कि वे तो और-और पकड़ना चाहते हैं। तो जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति छोड़ कर चला गया, तो स्वभावतः वे सोचते हैं, धन्य है, कैसा त्याग किया! कैसा महात्यागी! छोड़ दिया! हमसे तो छूटती नहीं एक कौड़ी और इसने हीरे-जवाहरात छोड़ दिये! हमसे नहीं छूटता कुछ भी और इसने सब छोड़ दिया, साम्राज्य छोड़ दिया! लेकिन यह दर्शकों की दृष्टि है, यह महावीर की अंतरंग दृष्टि नहीं है। महावीर से पूछो। महावीर ने छोड़ा नहीं है, छूटा है।
और भेद तो बहुत बड़ा है।

छोड़ ने का मतलब ही यह होता है: अभी लगाव कायम था, अभी आसक्ति बनी थी, जबरदस्ती करनी पड़ी है, जैसे कोई बच्चे फल को तोड़ता है। बच्चे फल को तोड़ना पड़ता है, पका फल अपने से गिर जाता है। और जब पक कर कोई फल गिरता है, तो न तो वृक्ष को कोई घाव लगता, न कोई पीड़ा होती, सिर्फ वृक्ष निर्भार होता है। और जब पका फल गिरता है तो पके फल को भी कोई पीड़ा नहीं होती। क्योंकि पक गया, अब पीड़ा का कोई सवाल नहीं था। अब यह गिरना बिलकुल नैसर्गिक है, स्वाभाविक है, आवश्यक है, प्रकृति के अनुकूल है। एस धम्मो सनंतनो। यही धर्म है। लेकिन जब कोई बच्चे फल को तोड़ता है, तो तोड़ना पड़ता है। फल को भी चोट लगती है, क्योंकि फल अभी कच्चा है, अभी पका नहीं, तुमने उसके पूरे जीवन को विकसित होने का अवसर न दिया; जैसे किसी ने कली को तोड़ लिया, फूल भी न होने दिया। तो निश्चित ही तुमने हिंसा की। और कच्चे फल को तुम जब तोड़ते हो, वृक्ष को भी पीड़ा होती है।
एक ज्योतिषी के जीवन में उल्लेख है, अकबर ने उसे बुलाया था, बड़ी उसकी ख्याति सुनी थी। बहुत दिन से ख्याति सुन रहा था, लेकिन बुलाने में डरता भी था। यूं अकबर ने देश के सारे-सारे रत्न इकट्ठे कर लिये थे--तानसेन था वहां, इस देश का बड़े से बड़ा संगीतज्ञ, उन दिनों का ही नहीं, सारे-सारे दिनों का; बीरबल था वहां; और तरहत्तरह के रत्न थे, नौ रत्न थे--इसे ज्योतिषी के लिए भी बहुत खबरें आयी थी कि इसे भी अपने दरबार में बुला लो। लेकिन एक खतरा था कि ज्योतिषी बहुत मुंहफट है। दो और दो चार, तो दो और दो चार ही कहता है। मगर बात इतनी आती रही, आती रही कि अकबर उत्सुक होता गया, आखिर उसने कहा कि क्या कहेगा आखिर, बुला ही लो! एक दफा तो देखें कि क्या, किस तरह का आदमी है! ज्योतिषी आया। अकबर ने पूछा कि कुछ मेरे संबंध में कहें। ज्योतिषी ने हाथ देखा और कहा कि पहले तुम मरोगे, फिर तुम्हारे बेटे मरेंगे, फिर उनके बेटे मरेंगे। अकबर ने कहा, यह भी कोई बात हुई। लोग तो ठीक ही कहते थे। कुछ और तुम्हें नहीं सूझता? मैं मरूंगा, मेरे बेटे मरेंगे, उनके बेटे मरेंगे-- यही कहने तुम इतनी दूर आए! और मेरे दरबार में और भी ज्योतिषी हैं, किसी ने कभी यह नहीं कहा। उसने कहा, वे ज्योतिषी भी यही कह रहे होंगे, सिर्फ लीपपोत कर कहते होंगे। लेकिन मैं सच कह रहा हूं। और न केवल मैं यह कह रहा हूं यह भविष्यवाणी है, यह मेरा आशीर्वाद भी कि पहले तुम मरो, फिर बेटे मरें, फिर उनके बेटे मरें। क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। बेटे तुम्हारे बाद मरें, तुमसे पहले न मर जाएं। नहीं तो कच्चे होंगे। तुम पहले मरो। बेटे पहले मर जाएं तो दुर्घटना। बाप पहले मरे तो काई दुर्घटना नहीं है। मैं इतना ही कह रहा हूं: बाप का मरना पहले बेटों से बिलकुल ही स्वाभाविक है; तब तक बेटे बाप हो जाएंगे, फिर वे मरेंगे, फिर उनके बेटे मरेंगे--ऐसा मरते ही मरेंगे। मैं तो सीधी-सीधी बात कह रहा हूं।
अकबर को चोट तो लगी, क्योंकि कोई ज्योतिषी को हाथ नहीं दिखाता कि सिर्फ वह मृत्यु की ही बात कर, मगर ज्योतिषी ने कहा, यही एकमात्र सुनिश्चित चीज है। बाकी तो सब चीजें अनिश्चित हैं। हो भी सकती हैं, न भी हों, मगर यह पक्का ही होगा। और मैं पक्के की ही बात करने का आदी हूं। कच्चे की मैं बात नहीं करता जो नहीं ही है, वही में कहता हूं।
पका फल जब गिरता है तो दुर्घटना नहीं है। लेकिन कच्चे फल जो वृक्ष से लटके हुए हैं, पके फल को गिरते देख कर सोचते होंगे, अहह, कैसा अदभुत फल है! हम तो छोड़ना नहीं चाहते, पकड़ना चाहते हैं--और रस पी लें, और रस पी लें; और दो दिन जी लें, अभी-अभी तो आए हैं, अभी क्या टूटना; और क्या अदभुत त्यागी है यह फल भी कि चल दिया, मार दी लात वृक्ष को! यह कच्चे फलों की प्रतीति है।
और कच्चे फल क्या खाक कहेंगे पके फलों के संबंध में!--
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। बहुत से रुपये लाया था एक थैली में भर कर। रामकृष्ण के चरणों पर चढ़ाने लगा। रामकृष्ण ने कहा कि क्यों, किसलिए? तो उसने कहा, आप महात्यागी है; और हम किसी तरह तो आपका सम्मान करें! रामकृष्ण ने कहा, शब्द वापिस ले लो! मैं महाभोगी। महात्यागी तुम हो! कैसी उलटी बातें करते हो, रामकृष्ण ने कहा, मुझ भोगी को त्यागी कहते! और तुम हो त्यागी और अपने को भोगी कहते; क्या विनम्रता है तुम्हारी भी! वह आदमी तो बहुत चौंका। उसने कहा, आप कह रहे हैं? परमहंसदेव, आप होश में हैं? आप और भोगी! और मैं और त्यागी! रामकृष्ण ने कहा, मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं।

क्योंकि मैंने व्यर्थ को छोड़ दिया और सार्थक को भोग रहा हूं। और तुम व्यर्थ को पकड़े हो और सार्थक को त्यागा हुआ है। किसको भोगी कहें? किसको त्यागी कहें?
रामकृष्ण जैसे लोग शब्दों को आत्मा देते हैं, अर्थ देते हैं, क्योंकि
ये कोई पंडित नहीं हैं।
मैं भी मानता हूं कि संन्यास परम भोग है। और जिनको तुम भोगी कहते हो,
वे सच में समझो तो तुम्हारे अर्थों में संन्यासी हैं। कंकड़-पत्थर तो उन्होंने छाती से लगा रखे हैं, हीरे-जवाहरात छोड़ दिये हैं। हीरे-जवाहरात छोड़ने की उनकी तैयारी है, लेकिन कंकड़-पत्थर छोड़ने की नहीं। कागज के नोटों पर बैठे हुए हैं; फन मार कर लोग कहते हैं, मर जाते हैं तरह के लोग तो सांप हो जाते हैं; क्या खाक मर कर होंगे, वे अभी ही सांप हैं। जरा उनके नोट पर नजर तो करो, ऐसा फुफकारेंगे! कागज के नोटों पर मरे जा रहे हैं! और जीवन की परम निधि भीतर पड़ी है, उस तरफ आंख भी नहीं उठती। दौड़ रहे हैं बाहर, पद और प्रतिष्ठा में।
तो इन सारे पागलों के बीच जब कोई महावीर या बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, तो उसके संबंध में गलत धारणा बनेगी ही। महावीर और बुद्ध को ये कहेंगे: कैसा महान त्याग किया! लेकिन महावीर और बुद्ध से पूछो। महावीर-बुद्ध रामकृष्ण से राजी होंगे, मुझसे राजी होंगे।
संन्यास का अर्थ है: जो व्यर्थ है, जो असार है, उसका छूट जाना। संसार
का छूट जाना नहीं, क्योंकि संसार न तो व्यर्थ है न सार है न असार है। संसार तो दोनों है। संन्यासी इस ढंग से रहता है, इस कला से रहता है कि सार को भोगता है, असार को छोड़ देता है। और भोगी इस मूढ़ता से रहता है कि असार को तो पकड़ लेता है, सार से चूक जाता है। संन्यास संसार के छोड़ने का नाम नहीं, सार और असार के विवेक का नाम है। सार सार की तरह दिखायी पड़े, असार असार की तरह। यह फिर एक पहलू हुआ।
और इसका दूसरा पहलू है: योग। संन्यास का अर्थ हुआ: असार का छूट जाना; योग का अर्थ हुआ: सार से जुड़ जाना। योग का अर्थ होता है। जुड़ना। असार से छूटना और सार से जुड़ना, यह दो पहलू हुए। संन्यास नकारात्मक है। कचरे को छोड़ दिया, खाली कर लिया अपने को कचरे से--विचारों से, वासनाओं से, इच्छाओं से--और जैसे ही तुम खाली हुए कि परमात्मा से जुड़े। जैसे ही तुम खाली हुए कि तुम मिटे और परमात्मा ही बचा। उस परम मिलन का नाम योग है। योग का मतलब शीर्षासन नहीं है। योग का मतलब पद्मासन नहीं है। योग का मतलब कोई शारीरिक सर्कस नहीं है। कि शरीर को तोड़ रहे हो, मरोड़ रहे हो, उलटा-सीधा कर रहे हो। योग का अर्थ है: जोड़, मिलन परम, मिलन। योग परम घटना है जीवन की, जहां बूंद सागर से मिल जाती है और मिल कर सागर हो जाती है। संन्यास पहले का एक हिस्सा और ये पहलू का दूसरा हिस्सा। संन्यास नकारात्मक, योग विधायक। जैसे वेदांत नकारात्मक--शब्द को छोड़ो, शास्त्र को छोड़ो, सिद्धांत को छोड़ो--और विज्ञान विधायक--ताकि तुम उस विशेष अनुभूति, उस विशेष ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ जो जीवन को धन्य कर देती है। ऐसे व्यक्ति शुद्ध होता है, शुद्ध सत्व को उपलब्ध होता है।
ते ब्रह्मलोकेषु पराकान्तकाले
मगर हम तो जब पंडित की व्याख्या में पड़ जाते हैं तो पंडित तो जो भी व्याख्या करेगा वह वह गलत होगी। क्योंकि उसे तो अनुभव नहीं है। वह क्या व्याख्या करेगा?
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
मृत्यु के बाद ऐसा व्यक्ति ब्रद्मलोक में प्रवेश करता है।
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।
और वहां पहुंच कर, ब्रह्मलोक में पहुंच कर--मरने के बाद--वह सर्वरूपेण मुक्त हो जाता है।
यह व्याख्या एकदम ही भ्रांत है। अगर तुम्हें मेरे पहले दो वचनों की व्याख्या समझ में आयी हो, तो फिर अर्थ बदलना होगा।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
ब्रह्मलोक कोई भौगोलिक स्थान नहीं है कहीं। ब्रह्मलोक है तुम्हारे भीतर उस अनुभूति का नाम जब बूंद सागर में मिल कर सागर हो जाती है; वेदांत

से विज्ञान, संन्यास, से योग, और इन सबको एक शब्द में कहा जा सकता है: ब्रह्मासाक्षात्कार ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मलोक में प्रवेश। इसको तुम भूगोल मत समझना कि कहीं ऊपर सात आकाशों के पार कोई ब्रह्मलोक है। तुम्हारे भीतर ब्रह्मलोक है। तुम्हारा अंतर्तम अभी भी ब्रह्मलोक में ही स्थापित है। तुम बाहर कितने ही भागो-दौड़ों, लेकिन तुम अभी भी उसी कील पर ठहरे हुए हो। तुमने गाड़ी को चलते देखा? चाक चलता है, कील ठहरी रहती है। कील है ब्रह्मलोक। और चाक है तुम्हारा मन। चाक तो चलता चला जाता है, लेकिन कील सदा ठहरी रहती है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर एक कील है जो सदा ठहरी हुई है, जो कभी नहीं चलती, जो शाश्वत है, नित्य है। और मन का चाक घूमता रहता है, घूमता रहता है। जिस दिन मन का चाक भी रुक जाता है, उस क्षण तत्क्षण तुम उस कील को देखने में समर्थ हो जाते हो जो कभी हिली नहीं, डुली नहीं, कभी बदली नहीं, बदल सकती नहीं।
और मृत्यु के बाद यह घटना नहीं घटती, जीवन में ही घटती है। लेकिन जीवन में भी मरने की एक कला है। जहां अहंकार मिट गया, वहां मृत्यु घट गयी। अहंकार की मृत्यु पर घटती है यह बात। शरीर की मृत्यु से इसका कोई संबंध नहीं है। क्योंकि शरीर पर भी जाए और अहंकार बना रहे तो तुम फिर दूसरा शरीर ग्रहण करोगे। और अहंकार मिट जाए, शरीर बना रहे, शरीर से क्या लेना-देना है! जब अहंकार मिट गया तो तुम शरीर से मुक्त हो गये--शरीर में रहते हुए भी मुक्त हो गये। इसलिए हमने जनक को विदेह कहा है। देह में रहते हुए, संसार में रहते हुए विमुक्त कहा है।
यह मृत्यु की धारणा कि मरने के बाद ब्रह्ममिलन होगा, बड़ी खतरनाक है। क्योंकि इससे हमें उस परम क्रांति को स्थगित करने के लिए सुविधा मिल जाती है कि अब जो होना है वह तो मृत्यु के बाद होना है, तो जल्दी क्या! बुढ़ापे में साध लेंगे। मरते वक्त साध लेंगे। मरणशैय्या पर साध लेंगे। और कोई मौत खबर देकर तो आती नहीं, पूर्व सूचना तो देती नहीं कि अब मैं आ रही हूं, अचानक आ जाती है, सो साधने का अवसर ही नहीं आता। जिंदगी भर सोचते रहे कि स्मरण करना है, प्रभु का, खुद तो नहीं कर पाये, फिर लोग अर्थी बांध कर उठाते हैं और "राम-नाम सत्य" बोलते हैं। जो इनको बोलना था, वह दूसरे बोल रहे हैं। दूसरे भी इनके लिए बोल रहे हैं, अपने लिए नहीं बोल रहे हैं। अपने लिए तो वे प्रतीक्षा करेंगे दूसरों की कि भैया, हम तुम्हारे लिए बोल दिये, अब कोई हमारे लिए बोल देना!
मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। मेरे पड़ोस में एक सज्जन थे, जो हर एक
की अर्थी में सम्मिलित होते थे। मैंने उनसे पूछा कि बात क्या है, कोई भी मरे...! इतने तुम्हारे दोस्त और प्रियजन दोस्त और प्रियजन मुझे दिखाई नहीं पड़ते। कभी मैं देखता नहीं तुम्हारे घर कोई भोजन करने आया हो, कि तुम किसी के घर भोजन करने गये हो, लेकिन हर अर्थी में तुम जरूर सम्मिलित होते हो। शादी-विवाह का निमंत्रण तुम्हें मिले न मिले, मगर अर्थी में तुम जरूर सम्मिलित होते हो। तो उन्होंने कहा, ऐसा है कि मरना तो मुझको भी पड़ेगा, तो सबकी अर्थियों में सम्मिलित होता रहूंगा तो मेरी अर्थी में भी लोग सम्मिलित होंगे। क्या तुम मुझे चाहते हो कुत्ते की मौत मरूं, कि मैं मरूं और कोई सम्मिलित भी न हो। उनके कोई बच्चे नहीं थे, शादी उन्होंने की नहीं थी, सो वे बड़े भयभीत थे इस बात से कि मर जाऊं तो कम से कम मरघट तो पहुंचाने वाले लोग होने चाहिए। मैंने कहा, तुम मर ही गये तो अब मरघट पहुंचे कि नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है! और चार आदमी गये मरघट पहुंचाने कि चार हजार आदमी गये, इससे भी क्या फर्क पड़ता है! तुम तो गये ही! मगर वे बोले कि नहीं, फर्क पड़ता है। कोई तो राम-नाम दोहराने वाला हो। अरे, कोई तो मरते वक्त कान में कम से कम गायत्री मंत्र पढ़ दे।
जिंदगी भर टालते रहते हैं, मरते वक्त लोग मुंह में गंगाजल डालते हैं, कान में गीता सुनाते हैं। वह आदमी मर रहा है, कुछ तो शर्म खाओ, कुछ तो संकोच करो! इस मरते आदमी का अपमान तो न करो! अरे, जिसने जिंदगी भर यह काम नहीं किया, मरते वक्त तो न करवाओ! जो जिंदगी भर बचा, उसको अब तो भ्रष्ट न करो! और यह क्या खाक सुनेगा; जो जब जिंदा था तब नहीं सुना, अब यह मरते समय सुनेगा! अब यह होश में है! इसको कुछ सुनायी नहीं पड़ रहा है, यह तो डूब रहा है। यूं समझो जैसे कोई पानी में डूब रहा हो और तुम घाट पर खड़े हुए "राम-नाम सत्य" की

हुंकार मचा रहे हो, गायत्री-मंत्र पढ़ रहे हो, कि भैया डूब जा, सुन ले, आखिरी वक्त सुन ले, काम पड़ेगा!
इस तरह की सूत्रों की व्याख्या ने यह परिणाम हाथ में ला दिया कि मरने
के लिए हम टालने लगे। संन्यास यानी बुढ़ापे में पचहत्तर साल के बाद! अब आमतौर से पचहत्तर साल के बाद कितने लोग जिंदा रहते हैं? सत्तर स्वाभाविक उम्र है। पचहत्तर साल के बाद जिंदा कौन रहता है! दो-चार-दस आदमी जिंदा रह जाते होंगे। मगर जो पचहत्तर साल तक संन्यास न लेने का अभ्यास जिसने किया है, वह क्या पचहत्तर साल की आदत को इतनी आसानी से छोड़ देगा!
हर चीज का अभ्यास मजबूत होता चला जाता है।
एक मित्र मेरे शराब पीते हैं। उनकी पत्नी तीस साल से उनके पीछे पड़ी है
कि शराब छोड़ो। वह मेरे पास भी बार-बार आ कर कहती है कि आपकी ये मानते हैं, आप अगर एक दफा कह दो, ये जरूर छोड़ेंगे! मगर आप चुप बैठे हो, आप कहते ही नहीं! मैंने कहा, तू तीस साल से कह रही है, कुछ परिणाम न हुआ, तू मेरे शब्द भी खराब क्यों करवाना चाहती है; व्यर्थ जाएंगे। उसने कहा कि नहीं जाएंगे, वे भी कहते हैं कि अगर कह दें तो मैं छोड़ दूंगा; क्योंकि उनको पक्का भरोसा है कि आप कहोगे ही नहीं। आप एक दफा कह दो, देख तो लें, एक यह भी प्रयोग हो ले! मैंने उससे कहा, तो एक काम कर, तू तीस साल से कह रही है कि शराब छोड़ दो। उसने कहा, हां। तो मैंने कहा, पहले तू यह कर कि तू यह कहना छोड़ दे--सात दिन के लिए सिर्फ। अगर सात दिन तूने यह बात नहीं उठायी अपने पति से, तो आठवें दिन मैं तेरे पति से कहूंगा। उसने कहा, राजी। अरे, यह कोई कठिन बात है। सात ही दिन की बात है न, आठवें दिन आप कहोगे? आठवें दिन बिलकुल पक्का है; सात दिन तू कहना ही मत, बात ही मत उठाना।
और पति को बुला कर मैंने कहा कि यह वायदा हुआ है। यह सात दिन का सौदा हुआ है। सात दिन में अगर यह एक बार भी बचन तोड़ दे, तुम फौरन मुझे खबर करना। और नोट करते जाना कितनी दफे बचन तोड़ा। उनकी पत्नी बोली कि अरे, सात का सवाल है, सम्हाल लूंगी। मगर जिस ढंग से वह कह रही थी, "सम्हाल लूंगी", और उसके चेहरे पर पसीना दिखायी पड़ रहा था, मैंने कहा कि तू देख, सोच-समझ कर बात कर! अरे, उसने कहा, मेरा क्या बिगड़ता है, नहीं कहूंगी! फायदा भी क्या है, तीस साल तो कह कर देख लिया, चलो सात दिन का ही तो सवाल है! कुल सात दिन की ही तो बात है।
मगर वह तीसरे दिन मेरे पास आ गयी। उसने कहा कि न मैं सो सकती, न मैं खाना खा सकती, मेरा सब गड़बड़ हो गया है, बिना कहे मैं नहीं रह सकती! मैं तो कहूंगी! मैंने कहा, अब तू जरा सोच; जो आदमी तीस साल से शराब पी रहा है, उसको तू छुड़वाने की कोशिश कर रही है और तूने शराब पी ही नहीं, सिर्फ शराब छुड़वाने का अभ्यास तुझे हो गया है--हालांकि फायदा भी कुछ नहीं हुआ है तीस साल में; उस अनुभव से भी तुझे कुछ सीख नहीं आयी; और मैंने कुछ ज्यादा मांग न की थी, सिर्फ सात दिन की--और तू चाहती है कि तेरा पति जिंदगी भर के लिए शराब छोड़ दे! अब जरा होश की बात कर! तेरा तो कुल इतना ही,...तेरा क्या जाता है? तू कोई शराब तो पीती नहीं! तेरे कोई शरीर में तो शराब घुस नहीं गयी है! तेरे शरीर की कोई जरूरत तो हो नहीं गयी है! तू तो सिर्फ कहती है, बकवास ही करती है--और तीस साल का अनुभव यह है कि उससे कुछ फायदा भी नहीं है। फिर भी तू सात दिन चुप नहीं रहती। तू कहती है कि मैं सो भी नहीं सकती। बस, मुझे एक ही धुन सवार रहती है और मैं डरी रहती हूं कहीं निकल न जाए मुंह से। खाना खाने बैठते हैं ये, तो मैं अपने को सम्हाले! इतना तनाव मुझसे नहीं सहा जाता। मैं तो कहूंगी! मैंने कहा, तू कहेगी तो तू यह! लेकिन फिर इतना पक्का समझ ले कि जब तू कहना नहीं छोड़ सकती, तो यह बिचारा शराब कैसे छोड़ेगा! और इसीलिए तो मैं नहीं कह रहा हूं।
आदमी हर चीज का अभ्यासी हो जाता है। पचहत्तर साल तक जिसने टाला है, पचहत्तर साल तक जिसने टालने का अभ्यास किया है, तुम सोचते हो पचहत्तर साल के बाद एकदम से तो वह संन्यस्त हो जाएगा? वह पचहत्तर जन्मों तक टालेगा। मगर इन सूत्रों ने भ्रांति दे दी--इनके अर्थों ने, व्याख्याओं ने--कि मरने के बाद ब्रह्मलोक उपलब्ध होता है। जिंदगी में तो कुछ होने वाला नहीं है। जब जिंदगी में कुछ है, तो क्यों व्यर्थ परेशान होओ! अरे, अभी तो खा लो, पी लो, मजा कर लो, यह चार दिन की चांदनी है, फिर देखेंगे, निपट लेंगे बाद में!

और कोई हम अकेले थोड़े ही हैं, इतने लोग हैं, जो सब पर गुजरेगी वह हम पर भी गुजरेगी। और हम से भी बड़े-बड़े पापी पड़े हैं। अगर कतार भी लगेगी, "क्यू" भी लगेगा कयामत के दिन निर्णय का, तो हमारा नंबर कब आएगा!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मौलवी से पूछ रहा था कि बिलकुल सच बताओ, कयामत
के दिन में निर्णय हो जाएगा? उसने कहा, बिलकुल हो जाएगा! नसरुद्दीन ने पूछा, कयामत के दिन में घंटे कितने होंगे? मौलवी ने कहा, चौबीस ही घंटे होते हैं दिन में तो! चौबीस घंटे में निर्णय हो जाएगा--मुल्ला ने कहा। वह बड़ा प्रफुल्लित हुआ जा रहा था। मौलवी ने पूछा, तुम इतने प्रफुल्लित किसलिए हो रहे हो? अरे, निर्णय होगा! और मुल्ला ने कहा कि जितने लोग जमीन पर पैदा हुए हैं अब तक, वे सब मौजूद होंगे? क्योंकि सभी को--मुसलमानों में तो यही हिसाब है: कयामत के दिन एक दफा निर्णय होने वाला है। चौबीस घंटे में सबका। अरबों-खराबों लोग और मुल्ला ने कहा, एक बात और, स्त्रियां भी मौजूद रहेंगी? और वह प्रसन्न होता जा रहा! मौलवी पूछने लगा कि तुम इतने क्यों प्रसन्न हो? उसने कहा मैं इसलिए प्रसन्न हो रहा हूं कि अगर इतनी स्त्रियां मौजूद रहीं तो ऐसा शोरगुल मचने वाला है कि क्या खाक निर्णय होगा! कौन निर्णय करेगा! कौन सुनेगा! अरे, कौन किसकी सुनेगा! इतनी स्त्रियां, अरबों- खरबों, क्या चर्चा छिड़ेगी!! और जन्मों-जन्मों के बाद मिली हुई सहेलियां और क्या-क्या नहीं घट चुका होगा इस बीच! कितने फैशन बदल गये होंगे, कितनी साड़ियां...उसने कहा, फिर मुझे फिकर ही नहीं है। यही मुझे डर था। और इतने आदमी, और मुझ गरीब की कौन पूछ होगी वहां! वहां बड़े-बड़े पापी होंगे, अपना तो नंबर शायद ही लगे! और भीड़-भाड़ में अपन कहीं छिप पर खड़े रहेंगे। चौबीस ही घंटे का मामला है।
ये भ्रांतियां आदमी को स्थगित करने के लिए सुविधा बना देती है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं, इस सूत्र का मृत्यु से कोई संबंध नहीं है।
इस सूत्र का अहंकार की मृत्यु से संबंध है--और वही असली सत्य है। शरीर की मृत्यु तो कोई मृत्यु नहीं, फिर आ जाओगे। हां, अहंकार मरा, तो मर गये। फिर लौटना नहीं है। वही निर्वाण है।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।
और जो अहंकार में मर गया, जिसने अहंकार को मर जाने दिया, वह सब भांति मुक्त हो गया, क्योंकि सारी बीमारियां अहंकार की हैं, सारे बंधन अहंकार के हैं। यह कारागृह तुम्हारे अहंकार का है, जिसमें तुम बंद हो। कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है, अभी तुम चाहो तो इसी क्षण कारागृह के बाहर आ सकते हो। न कोई पहरे पर है, न कोई जेलर है, न कोई चौकीदार है, न दरवाजे पर कोई ताला है। यह कारागृह तुम्हारा निर्माण किया हुआ है। और तुम जिस क्षण चाहो, इससे छलांग लगा कर बाहर आ सकते हो।
एक छोटा बच्चा, मकान बन रहा था किसी का तो ईंटों का ढेर लगा था, रेत का ढेर लगा था, वह उसी रेत के ढेर में खेल रहा था। खेलते-खेलते उसने अपने चारों तरह ईंटें जमानी शुरू कर दीं। खेल ही खेल में बीच में बैठ गया रेत में, उसने ईंटें जमानी शुरू कर दीं--ईंट के ऊपर ईंट रखता गया। जब ईंटें उसके गले तक आ गयीं तब उसको समझ में आया कि अब निकलूंगा कैसे? एकदम घबड़ाहट में चिल्लाया कि बचाओ मुझे, मैं तो बिलकुल बंद हो गया! मैं कैदी हो गया, बचाओ, मुझे! घबड़ाहट उसकी स्वाभाविक थी। ईंटें गले तक आ गयीं, अब निकलूंगा कैसे? मगर एक बात भूल गया कि ईंटें मैंने ही जमायी हैं, जिस तरह जमायी हैं, उससे उलटा चल पडूं, अलग कर दूं। एक-एक ईंट को हटा दूं।
बुद्ध एक दिन सुबह-सुबह प्रवचन देने आए और हाथ में एक रूमाल ले कर आए। लोग बहुत चकित थे, क्योंकि वे कभी कुछ ले कर आते न थे, हाथ में रूमाल आज क्यों था? रेशमी रूमाल था, और बैठ कर इसके पहले कि प्रवचन दें, उन्होंने, रूमाल पर एक गांठ के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, चौथी, पांचवीं--पांच गांठें लगायीं। लोग बिलकुल देखते रहे टकटकी बांध के कि क्या हो रहा है? क्या कर रहे हैं वे? क्या आज कोई जादू का खेल दिखाने वाले हैं?और पांचों गांठें लगाने के बाद बुद्ध ने पूछा कि भिक्षुओं, मैं एक प्रश्न पूछता हूं। अभी-अभी तुमने देखा था, यह रूमाल बिना गांठों के था, अब गांठों से भर गया। क्या यह रूमाल वही है जो बिना गांठ का था या दूसरा है? उनके शिष्य आनंद ने

कहा कि भगवान, आप हमें व्यर्थ की झंझट में डाल रहे हैं। क्योंकि अगर हम कहें यह रूमाल वही है, तो आप कहेंगे, उसमें गांठें नहीं थीं, इसमें गांठें हैं। अगर हम कहें यह रूमाल दूसरा है, तो आप कहेंगे, यह वही है। अरे, गांठों से क्या फर्क पड़ता है, रूमाल तो बिलकुल वही का वही है। यह रूमाल एक अर्थ में वही है जो आप लाए थे, क्योंकि कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ा है और दूसरे अर्थ में वही नहीं है, क्योंकि सांयोगिक फर्क पड़ गया है, इसमें पांच गांठें लग गयी हैं।
बुद्ध ने कहा, तुम में और मुझमें बस, इतना ही फर्क है। सांयोगिक। मैं गांठ रहित रूमाल हूं और तुममें गांठें लग गयी हैं--और लगाने वाले तुम हो। फिर बुद्ध ने कहा, दूसरा प्रश्न मुझे यह पूछना है कि मैं यह गांठें खोलना चाहता हूं, जैसे कि तुम सब अपनी-अपनी गांठें खोलना चाहते हो।...गांठ शब्द प्यारा है। बुद्ध ने तो जो शब्द प्रयोग किया, ग्रंथि था। वह और भी प्यारा शब्द है। इसलिए हमने बुद्ध को, महावीर को निर्ग्रंथ कहा है। जिनकी ग्रंथियां टूट गयीं, जिनकी गांठें खुल गयीं। और है ही क्या? सबसे बड़ी गांठ यह अहंकार की है। यह सबसे बड़ी ग्रंथि है। तो बुद्ध ने कहा, मुझे यह गांठें खोलनी हैं, जैसे कि तुम सब मेरे पास इकट्ठे हुए हो गांठें खोलने के लिए, तो मैं कैसे खोलूं? और बुद्ध ने उस रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचना शुरू किया।
आनंद ने कहा कि भगवान, आप क्या कर रहे हैं? इस तरह तो गांठें और बंध जाएंगी। आप रूमाल खींच रहे हैं, गांठें छोटी होती जा रही हैं, खोलना मुश्किल हो जाएगा। खींचने से नहीं खुल सकती हैं गांठें। रूमाल को ढीला छोड़िए, खींचिए मत।
बुद्ध ने कहा, यह दूसरी बात भी तुम समझ लो कि जो भी खींचेगा, उसकी गांठें और बंध जाएंगी। ढीला छोड़ना होगा। विराम चाहिए, विश्राम चाहिए, तनाव नहीं। और तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग बड़े तनावग्रस्त हो जाते हैं। गांठें खोलने के लिए ऐसे दीवाने हो जाते हैं कि ये खींचते ही चले जाते हैं रूमाल। कोई उपवास कर रहा है, कोई सिर के बल खड़ा है, कोई धनी रमाए हुए है, ये क्या हैं? ये गांठें खींच रहे हैं। ये खींचते ही चले आ रहे हैं। इनका अहंकार और मजबूत होता रहा है--सूक्ष्म जरूर हो रहा है; पहले मोटा दिखायी पड़ता था, क्योंकि गांठ पोली थी, अब खिंच गयी है तो छोटा हो गया है, दिखायी भी नहीं पड़ता--गांठ इतनी छोटी हो सकती है कि दिखायी भी न पड़े। और वही खतरा है, कि जब गांठ दिखायी न पड़े तो बहुत मुश्किल हो जाती है। उसका खोलना मुश्किल हो जाता है। खोलोगे भी कैसे?
तो बुद्ध ने कहा, मैं क्या करूं, आनंद, तुम्हीं कहो! तो आनंद ने कहा, पहली तो बात यह है कि आप रूमाल को ढीला छोड़ दें, इसी वक्त ढीला छोड़ दें। जितना आप खींचेंगे उतना मुश्किल हो जाएगा। दूसरी बात, इसके पहले कि हम सोचें कैसे गांठें खोली जाएं, मैं पूछना चाहता हूं: आपने कैसे गांठें बांधी? क्योंकि जब तक हम यह न जानें कि कैसे गांठें बांधीं, तब तक कैसे खुलेंगी, यह नहीं जाना जा सकता।
कैसे गांठें बांधीं, बस इतना ही तो सारा सार है। तुमने कैसे गांठें बांध ली है, इसको समझ लो, तो खोलने में कुछ देर नहीं। तुमने कैसे ईंटें रख कर अपने चारों तरफ कारागृह बना लिया है? पैदा होते से ही जो पहली गांठ समाज, परिवार, शिक्षा, धर्म, राज्य व्यक्ति पर बांधना शुरू कर देते हैं, वह अहंकार की गांठ है। हम बच्चे को कहने लगते हैं: प्रथम आना स्कूल में, गोल्ड मेडल लाना, प्रतियोगिता में जीतना, हारना कभी नहीं, टूट जाना मगर झुकना नहीं, कुल-मर्यादा की प्रतिष्ठा! हम अहंकार थोप रहे हैं। हम उसको गांठ बांध रहे हैं। फिर हम उससे कहते हैं। आगे बढ़ो! महत्वाकांक्षी बनो! धन कमाओ! यश कमाओ! पद-प्रतिष्ठा लाओ! तुम जैसा चमकता हुआ कोई भी न हो! तुम सबको मात कर दो, सबको फीका कर दो! और सब भी यही करने में लगे हैं। ऐसे राजनीति पैदा होती है।
राजनीति अहंकार के संघर्ष का नाम है। और धर्म अहंकार का विसर्जन है। किस तरह तुम पर गांठ बंधी है, जरा उसे ठीक से देख लो, खोलने में कोई कठिनाई न होगी। महत्वाकांक्षा ने गांठ बांधी है। और महत्वाकांक्षा में क्या रखा है! धन भी पा लिया, पद भी पा लिया, तो क्या होगा! सब पड़ा रह जाएगा--जब बांध

चलेगा बंजारा, सब ठाठ पड़ा रह जाएगा। तुम बड़े पद पर भी पहुंच गये तो क्या होगा? होना क्या है? क्या पा लोगे? पा कर भी क्या पा लोगे? सिकंदर ने क्या पा लिया? तुम क्या पा लोगे? लेकिन हमें होश ही नहीं, दौड़े जा रहे हैं। और भी बेहोश लोग दौड़ रहे हैं, हम भी उन्हीं के साथ दौड़े जा रहे हैं। रुको, थोड़ा विश्राम, थोड़ा बैठ जाओ किनारे पर, थोड़े हलके हो लो, थोड़े शांत हो कर देखो-- यह गांठें कैसे बंध रही है? प्रतिस्पर्धा कि कोई दूसरा आगे न निकल जाए।र् ईष्या, जलन, ये सब गांठ को बांध रहे हैं। बस, यह अहंकार की गांठ न बंधे, यह अहंकार की गांठें तुम खोल लो कि मृत्यु हो गयी। और ऐसे जो मरता है, वह द्विज हो जाता है। उसका दूसरा जन्म हो गया। शरीर तो वही रहा, लेकिन मौत भी हो गयी, जन्म भी हो गया। इसी मृत्यु की चर्चा है इस सूत्र में।
और जिसने अहंकार को मर जाने दिया, वह ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है। अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा ही नहीं है। यह मैं अलग हूं अस्तित्व से, यही मुझे रोक रहा है। मैं एक हूं अस्तित्व के साथ, बस इतना बोध, फिर न कोई संघर्ष है, न कोई तनाव है, न कोई विषाद है, न कोई हार है, न कोई असफलता है; फिर बूंद सागर में एक हो गयी, उसकी अलग कोई यात्रा ही न रही। और जहां सागर के साथ मिलन है, वही ब्रह्मलोक है। और वह सागर तुम्हारे भीतर लहरा रहा है। मगर तुम गांठ बांधे बाहर खड़े हो। तुम अपने भीतर नहीं जाते हो।
यह सूत्र प्यारा है। मगर अर्थ मेरी दृष्टि से समझना। अब तक जो इसकी व्याख्याएं की गयी हैं। बुनियादी रूप से गलत हैं।

मेरा स्वर्णिम भारत-19

अहिंसा नहीं, कोमलता
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #8)

पहला प्रश्न: भगवान,
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः। सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।।
आहार की शुद्धि होने पर सत्व की शुद्धि होती है, सत्व की शुद्धि होने
पर ध्रुव स्मृति की प्राप्ति होती है। और स्मृति की प्राप्ति से समस्त ग्रंथियां खुल जाती हैं।
भगवान, छांदोग्य उपनिषद के इस सूत्र की व्याख्या करने की अनुकंपा करें।

सत्यानंद, आहार की शुद्धि होने पर सत्व की शुद्धि होती है। आहार का अर्थ है: जो भी बाहर से भीतर लिया जाए। जो भीतर है, वह सत्व। जो स्वरूप है, वह सत्व। और जो उस पर आच्छादित होता है, वह आहार। इसलिए आहार से भोजन मात्र न समझना। भोजन तो आहार का एक छोटा-सा अंग है--और वह बहुत महत्वपूर्ण भी नहीं, बहुत गौण अंग है।
जो भी हम बाहर से भीतर लेते हैं--कान से ध्वनि, शब्द, आंख से रूप, नाक से गंध, हाथ से स्पर्श--हमारी पांचों इंद्रियां पांच द्वार हैं, जिनसे हम बाहर के जगत को भीतर आमंत्रित करते हैं। प्रत्येक इंद्रिय का आहार है। अस्सी प्रतिशत आहार तो हम आंख से लेते हैं, बीस प्रतिशत शेष चार इंद्रियों से। इसमें जो हम जिह्वा से लेते हैं--भोजन, स्वाद--वह तो अति गौण है। मगर नासमझों के कारण गौण प्रमुख हो गया है। कुछ पागल अपना पूरा जीवन इसी चिंता में व्यतीत करते हैं--क्या खाएं, क्या न खाएं; क्या पीएं, क्या न पीएं; कितनी देर रखा हुआ दूध पी सकते हैं या नहीं; कितनी देर का घी ले सकते हैं या नहीं।
कल मुझे पत्र मिला है, ऊंझा फार्मेसी के मालिक का। जैन हैं वे। और दो जैन मुनियों ने उन्हें कहा कि तुम कुछ ऐसी औषधियां तैयार करते हो जिनमें थोड़े न थोड़े अंश में अल्कोहल होती है और यह तो जैन शास्त्रों के बहुत विपरीत बात है। तुम शराब ही बेच रहे हो। पांच प्रतिशत ही सही, मगर है तो शराब। तो बंद करो इस तरह की औषधियों का निर्माण।
ऊंझा फार्मेसी के मालिक चिंता में पड़ गए होंगे कि अब क्या करना। अगर
उन औषधियों का उत्पादन बंद कर दें तो सारा धंधा जाए। और मुनि जो कहते हैं सो बात भी सच है, शास्त्र की है, जंचती है। मुझे कभी उन्होंने पत्र लिखा न था। ऐसे समय में उन्हें मेरी याद आई कि अगर कोई बचा सकता है...। तो मुझे लिखा है, अब आप जैसा आदेश करें। क्या मैं इन औषधियों को बंद कर दूं क्योंकि इनमें पांच प्रतिशत या तीन प्रतिशत शराब होती है? या इनका उत्पादन जारी रखूं? आप जैसा कहें।
उन्होंने भी ठीक आदमी से पूछा! भरोसे से पूछा है कि मैं तो कहूंगा नहीं कि बंद करो। क्योंकि शराब पांच प्रतिशत क्या सौ प्रतिशत भी शुद्ध शाकाहार है। इसमें इतनी चिंता की क्या बात है? और औषधि में जा रही है, लोगों की चिकित्सा के काम आ रही है, यह तो सेवा ही हो गई। तुम्हारे लिए धंधा हुआ, पर साथ-साथ सेवा भी हो गई। मगर जैन मुनियों की न पूछो। उनकी चिंता बस यही। उनका मन ही यहां अटका हुआ है।
ऐसे-ऐसे पागल हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है।
मैं एक महात्मा के साथ यात्रा कर रहा था। हिंदू हैं। सिर्फ गऊ का दूध
ही पीते हैं। और सब चीजों को अशुद्ध मानते हैं; दुग्ध-आहार ही केवल शुद्ध है। मैंने उनसे पूछा कि तुम यह भी तो सोचो कि गऊ तो घास खाती है, और भी न मालूम क्या-क्या खाती है, और उसी से यह दूध बनता है। तो अंततः तो यह घास-पात से ही बन रहा है। दूध शुद्ध हो गया, और घास-पात? मैंने कहा, अगर तुम समझदार हो तो गऊ को कष्ट क्यों देना, घास-पात खाओ! सीधा दूध पैदा करो। इतना लंबा

रास्ता क्यों लेना? और गऊ को कष्ट दे रहे हो, उससे काम ले रहे हो और उसको गऊमाता भी कहते हो।
जब उनके साथ यात्रा की तब तो मैं और भी मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वे केवल सफेद गऊ का ही दूध पीएं! मैंने उनसे पूछा, भलेमानस, कोई काली गाय का दूध क्या काला हो जाता है? दूध तो सफेद ही होगा। तुम सफेद दूध पीओ, यह समझ में आता है, मगर काली और सफेद गाय का क्या हिसाब रखना?
वे कहने लगे, रंग का बड़ा महत्व है। सफेद रंग--दैवीय! और काला रंग-- आसुरी!
मैंने कहा, होगा गऊ का काला रंग आसुरी, मगर तुमसे कह कौन रहा है कि तुम काला रंग पीओ? दूध में तो रंग आता नहीं, चमड़ी पर रंग है, चमड़ी से तुम्हें क्या लेना-देना।
फिर तो जब मैंने पूरी जानकारी की कि उनका हिसाब-किताब तो बहुत जालसाजी का था। हिसाब-किताब यूं था कि कोई स्त्री नहाए और गीले वस्त्र पहने ही गऊ का दूध लगाए, तब वे दूध पीते थे। शुद्ध! सर्दी के दिन, ठिठुरती स्त्रियां, गीले वस्त्र पहने हुए उनके लिए दूध लगाएं। मैंने कहा, तुम नरक के भागी होओगे। पी लो दूध तुम सोच कर कि शुद्ध है, मगर तुम यह जो करवा रहे हो कार्य, यह तो सीधा सताना है।
लेकिन करीब-करीब भारत का सारा धर्म आहार पर ठहर गया है। बस भोजन ही हमारी चिंतना का कारण बन गया है। हमारी चिंतना, हमारी साधना, हमारी सत्व-शुद्धि, सब भोजन पर अटक गई है। और इस सूत्र के कारण ही यह उपद्रव हुआ है। सूत्र नासमझों के हाथ में पड़ जाएं तो यही परिणाम होने वाला है।
मैंने सुना है कि अहमदाबाद में डोंगरे महाराज का भागवत-सप्ताह चल रहा था। संयोजक के यहां डोंगरे महाराज अन्य पंडित-पुरोहितों के साथ भोजन कर रहे थे। एक कटोरी में बैंगन की सब्जी परोसी गई, तो डोंगरे महाराज ने उस कटोरी को उठा कर भोजन की थाली में से अलग कर दिया। पास ही बैठे पंडित पोपटलाल ने पूछा, क्यों महाराज जी, बैंगन की सब्जी आपने भोजन की थाली से निकाल कर अलग क्यों रख दी?
डोंगरे महाराज ने धीर-गंभीर मुद्रा में उत्तर दिया, कमाल है, पंडित जी, आपको इतना भी पता नहीं है कि सावन में बैंगन खाने से अगले जन्म में मनुष्य मूर्खों जैसी बातें करता है!
पंडित पोपटलाल ने डोंगरे महाराज को थोड़ी देर गौर से घूर कर देखा और कहा, महाराज, यह बात आपको पिछले जन्म में पता नहीं थी?
पिछले जन्म में खाए बैंगन, तभी ऐसी बातें सूझ रही हैं! गरीब बैंगन, सावन का प्यारा महीना, क्या उपद्रव मचाया हुआ है! लेकिन अच्छे से अच्छे, सुंदर से सुंदर स्वर्ण-सूत्र भी बुद्धुओं के हाथ में पड़ जाएं तो उनकी दुर्गति हो जाती है। सोने को छू दें, मिट्टी हो जाए।
चिलम फूंकते हुए उस्ताद ने शागिर्द से कहा, जब भी किसी से बात करो, निहायत साफ-सुथरी एवं विद्वतापूर्ण भाषा में ही, ताकि उसे आभास हो जाए कि तुम किसी अच्छे उस्ताद के शागिर्द हो।
संयोग से एक चिंगारी चिलम से निकल कर उस्ताद के साफे पर पड़ गई। शागिर्द मन ही मन पांच मिनट तक शब्दों का संयोजन करते हुए बोला, हुजूर, फैजगंजूर, मौलाना ओ मुख्तदाना, किब्लाओं कवाम, हुजूर के दस्तारे अजमत असार पर अर्थात साफे पर, एक अखगेर नाहंजार शररबार आतिशकदे चिलम से परवाज करके शोला अफगन है। अर्थात एक चिंगारी आपके साफे पर बैठी हुई है। लेकिन तब तक साफे के साथ-साथ उस्ताद की चांद भी लौ देने लगी थी।
यह सूत्र तो प्यारा है: आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
लेकिन आहार का बड़ा व्यापक अर्थ है। साफ है आहार का अर्थ, जिसे बाहर से भीतर लिया जाए--आहार। निश्चित ही, तुम जो बाहर से भीतर ले जाओगे, वह तुम्हारे स्वरूप पर आच्छादित होगा। भीतर जो है वह तुम्हारा स्वरूप है।
धूल ले जाओगे तो धूल आच्छादित हो जाएगी। स्वर्ण ले जाओगे तो स्वर्ण आच्छादित हो जाएगा। जो भी तुम बाहर से भीतर ले जाओगे वही तुम्हारे चित्त के दर्पण पर जमेगा और उससे ही तुम्हारा जीवन निर्धारित होगा।

कैसे इसकी शुद्धि हो? आहार तो करना ही होगा। आंखें देखेंगी ही; कम देखें ज्यादा देखें, लेकिन देखेंगी ही। तो वही देखना जो देखने योग्य है, सुंदर है, प्रीतिकर है, आल्हादित करता है।
लेकिन लोग गलत चीजें देखते हैं। अगर रास्ते पर दो व्यक्ति कुश्तम-कुश्ती कर रहे हों, दंगा-फसाद कर रहे हों, वाह गुरु जी की फतह बोल रहे हों, तो देखो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। मुफ्त तमाशा कौन न देखे! सर्कस हो रहा है। लाख काम छोड़ कर लोग वहीं खड़े हो जाते हैं। पहले यह मजा देख लें, फिर काम कर लेंगे। कोई यह नहीं सोचता कि जब तुम दो आदमियों को लड़ते हुए देखोगे तो तुम हिंसा का आहार कर रहे हो। तुम अपने भीतर गाली-गलौज ले जा रहे हो। वे दोनों आदमी गालियां बक रहे हैं, अभद्र व्यवहार कर रहे हैं, अशोभन शब्द बोल रहे हैं।
और जब भी दो पुरुष लड़ते हैं तो हैरानी की बात है, लड़ते पुरुष हैं मगर गालियां स्त्रियों को देते हैं। वह उसकी मां को ठीक कर रहा है, वह उसकी बहन को ठीक कर रहा है, वह उसकी बेटी को ठीक कर रहा है। यह भी थोड़ी सोचने जैसी बात है कि यह समाज बातें तो करता है स्त्री-समादर की, मगर यह समादर है! बातें तो यूं की जाती हैं कि जहां-जहां नारी की पूजा होती है वहां-वहां देवता रमण करते हैं। और स्त्री की पूजा के नाम पर हो क्या रहा है? सदियों से क्या हो रहा है? सिवाय अपमान और अनादर के कुछ भी नहीं।
अगर दो आदमी लड़ रहे हैं तो एक-दूसरे से निपटो, इसमें स्त्रियों को बीच में लाने की क्या जरूरत है? इसमें किसी की मां ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? किसी की पत्नी ने, किसी की बेटी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? लेकिन गाली तो स्त्रियों को ही दी जाएगी, लड़े कोई। अपमान तो स्त्री का ही होगा, लड़े कोई। और तुम खड़े होकर यूं पीते हो, जैसे अमृत मिल गया हो!
जहां झगड़ा हो रहा हो वहां क्या तुम सोचते हो कोई आदमी झपकी ले ले, नींद में चला जाए? कभी नहीं। धर्म-सभा में लोग नींद में जाते हैं। शास्त्र सुनते हैं तो नींद आती है। माला फेरते हैं तो झपकी खाते हैं। लेकिन दो आदमी गालियां दे रहे हों, तो सोए हुओं की तो बात छोड़ दो, मुर्दों को भी अगर पता चल जाए तो उठ कर खड़े हो जाएं! कि जरा देख लें फिर सो जाएंगे कब्र में, ऐसी जल्दी क्या है? यह मजा तो और देख लें जाते-जाते!
लेकिन तुम आहार कर रहे हो और वे गालियां तुम्हारे दर्पण पर आच्छादित
हो रही हैं।
तुम सुनते क्या हो? लोग फिल्मी गाने सुन रहे हैं, व्यर्थ की बातें सुन रहे हैं। एक-दूसरे की निंदा सुन रहे हैं--झूठी। और कोई संदेह नहीं उठाता। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिससे तुम किसी की निंदा करो और वह संदेह उठाए। हां, प्रशंसा करो तो हर एक संदेह उठाएगा। कहो किसी से कि फलां व्यक्ति बड़ा साधु-चरित्र। और दूसरा आदमी तत्क्षण बोलेगा, छोड़ो भी, किन बातों में पड़े हो! अरे, यह कलियुग है! हो गए साधु सतयुग में, अब नहीं होते! सब पाखंडी हैं! सब धोखेबाज हैं। सब लूट-खसोट में लगे हैं। अरे, हर ढोल में पोल है। हजार बातें कहेगा वह आदमी। तुमने सिर्फ इतना ही कहने की भूल की थी कि फलां आदमी साधु है। एक से एक बातें वह निकालेगा, बात में से बातें निकालता जाएगा।
और अगर तुम किसी आदमी की निंदा करो तो कोई इनकार न करेगा। यूं पी जाएगा जैसे प्यासा आदमी धूप से थका-मांदा ठंडा जल पी जाए, यूं पी जाएगा। इनकार ही न करेगा। कभी न कहेगा कि भाई, ऐसी निंदा पर मुझे भरोसा नहीं आता, वह आदमी इतना बुरा नहीं हो सकता। किसी की प्रशंसा करो, और तुम तत्क्षण पाओगे कि कोई तुम्हारी बात को मानने को राजी नहीं है। लोग प्रमाण मांगेंगे। और किसी की निंदा करो, और तत्क्षण लोग अंगीकार करने को राजी हैं: न प्रमाण कोई मांगता, न इनकार कोई करता।
ये हमारे आहार के ढंग हैं। अशुद्ध को तो हम आहार कर लेते हैं और शुद्ध
को हम इनकार करते हैं। सदियों-सदियों तक संदेह जारी रहते हैं।
आज भी लोगों को भरोसा नहीं है कि महावीर या बुद्ध जैसे लोग सच में हुए। इतिहासज्ञ खोज में लगे रहते हैं, सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि ऐसे आदमी हो कैसे सकते हैं? कल्पनाएं हैं, पुराणकथाएं हैं, किंवदंतियां हैं। लेकिन कोई शक नहीं करता सिकंदर पर, कोई शक नहीं करता नादिरशाह पर,

चंगेजखान पर, तैमूरलंग पर। हत्यारों पर कोई शक नहीं। जीसस पर शक है, जुदास पर कोई शक नहीं। राम पर तुम्हें शायद शक हो, लेकिन रावण पर कोई शक नहीं। यह तो रावण को मानने के लिए तुम्हें राम को मानना पड़ता है, मानते तो तुम रावण को ही हो। लेकिन रावण को अकेला कैसे मानें? बिना राम की पृष्ठभूमि के रावण को मानना मुश्किल होगा। इसलिए निमित्त मात्र राम को भी स्वीकार कर लेते हो।
अच्छे पर हमें संदेह है। फूलों पर हमें भरोसा नहीं, कांटों पर हमारी श्रद्धा है। नकार हमारी जीवन-दृष्टि है, विधेय नहीं। हम ऐसे ही हैं, जिनको नरक पर कभी भी कोई संदेह नहीं उठता। मैंने आज तक ऐसी किताब नहीं देखी जिसने नरक पर संदेह उठाया हो कि नरक नहीं है। लेकिन स्वर्ग पर संदेह उठाने वाली बहुत किताबें हैं। शैतान के खिलाफ लिखी मैंने एक किताब नहीं देखी, ईश्वर के खिलाफ लिखी हजारों किताबें देखी हैं। यह कैसा आदमी है! हम क्या कर रहे हैं?
और ध्यान रहे, अगर कांटे चुनोगे तो कांटे ही तुम पर इकट्ठे हो जाएंगे। फिर चुभेंगे भी। इतने चुभेंगे, इतनी पीड़ा देंगे, इतने घाव से भर देंगे, इतनी मवाद फैल जाएगी, इतने नासूर हो जाएंगे कि फिर फूल मिल भी जाएं तो भरोसा न आएगा। फूलों पर भरोसा करो। फूलों को भीतर ले जाओ। फूलों से अपने प्राणों को आच्छादित करो--इतना कि अगर कांटे मिल भी जाएं तो भी फूलों से आच्छादित आत्मा उनसे अप्रभावित रहे।
लेकिन लोग अजीब हैं! मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा हुआ था। उसका बेटा फजलू आया, और मुल्ला ने आव देखा न ताव और लगा उसकी पिटाई करने। चार-छह झपाटे जोर से लगा दिए। वह बेचारा बच्चा रोने लगा! मैंने पूछा कि मैं देख रहा हूं, उसने कोई कसूर किया नहीं, एक शब्द बोला नहीं, तुम उसे मार क्यों रहे हो? मुल्ला नसरुद्दीन कहने लगा, इसके कसूर के लिए मार ही कौन रहा है! अरे, दो दिन बाद इसका परीक्षा-फल निकलने वाला है और मैं आज ही बाहर जा रहा हूं।
अभी से इंतजाम किए दे रहा है वह। अजीब लोग हैं! मगर ऐसे ही लोगों से यह दुनिया भरी है। तुम भी अपने भीतर अगर खोजोगे तो ऐसे ही आदमी को पाओगे। छिपा हुआ। क्योंकि सीधा-सीधा देख लोगे तब तो फिर उसका जीना मुश्किल हो जाएगा।
आहार-शुद्धि का अर्थ है: अपने भीतर वही ले जाना, जो प्रीतिकर हो, स्वादिष्ट हो, सुमधुर हो, सुंदर हो, सत्य हो। ताकि तुम्हारे भीतर के स्वरूप पर शृंगार आए, जवानी आए; ताकि तुम्हारे भीतर स्वरूप निखरे, प्रकट हो; उस पर उभार आए, गर्द-गुबार न जम जाए।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
और उसी आहार में एक छोटा-सा हिस्सा भोजन है। जरूर उसका भी विचार करना, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। इतना ही काफी विचार है कि अपने भोजन के लिए किसी को कष्ट मत देना, दुख मत देना। इतना ही विचार काफी है। जब भोजन बिना किसी को दुख दिए हो सकता हो तो पशुओं को काटना और मारना अनुचित है। जब फल और सब्जियां और अनाज तुम्हारे लिए परिपूर्ण पौष्टिक हो जाते हों, तो क्या जरूरत है कि पशुओं को मारो? क्या जरूरत है इतना दुख देने की?
और अगर इतना दुख तुम दोगे तो स्वभावतः तुम कठोर होते चले जाओगे। मांसाहारी कठोर होगा ही, नहीं तो मांसाहार कैसे करेगा? और जब कठोर होगा तो मनुष्यों के साथ भी कठोर होगा। अब कठोरता कोई नियम थोड़े ही मानती है कि इसके साथ कठोर होंगे, उसके साथ कठोर नहीं होंगे। और जब कठोर होगा तो अपनों के साथ भी कठोर होगा, परायों के साथ ही थोड़े कठोर होगा। और जब कठोर होगा तो अपनों के ही साथ नहीं, अपने साथ भी कठोर होगा। कठोरता तो एक भीतर बैठ गई चट्टान की तरह है। सबसे पहले तो खुद के प्रति कठोर हो जाएगा, दुष्ट हो जाएगा।
इसी मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने एक दिन देखा साइकिल पर बैठा चला जा रहा है, फजलू को आगे बिठाए। बीच-बीच में उसको चपतें लगा रहा है। मैंने रोका। मैंने कहा कि नसरुद्दीन, खैर उस दिन तुम बोले थे कि इसका दो दिन बाद परीक्षा-फल निकलने वाला है, अब कौन-सी मुसीबत आ गई है? और तुम रह-रह कर इसे मार रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा, क्या करूं, साइकिल में घंटी ही नहीं है।

बेटे से घंटी का काम ले रहे हैं। सो बेटा रो रहा है, वे उसको चपतें लगा रहे हैं। जैसे ही उनको भीड़ हटानी होती है, चपत लगा देते हैं एक, बेटा रोने लगता है।
तुम कठोर होओगे ही। तुम क्या भोजन कर रहे हो उसमें इतना ही विचार पर्याप्त है कि हिंसा न हो, अकारण हिंसा न हो। कम से कम हिंसा हो, न्यूनतम हिंसा हो। जितना हिंसा से बचा जा सके, शुभ है, ताकि तुम्हारी कोमलता नष्ट न हो जाए। सवाल अहिंसा का नहीं है, सवाल तुम्हारी कोमलता का है।
इसको भी खयाल रखना। नहीं तो कुछ बुद्धू इसी फिक्र में लगे रहते हैं कि कहीं चींटी न दब जाए, कहीं मच्छर न मर जाए। मगर उनको असली बात भूल गई, दृष्टि गलत चीज पर टिक गई। असली बात इतनी है कि तुम्हारी कोमलता न मर जाए। क्योंकि तुम्हारी कोमलता के द्वार से ही सत्य का पदार्पण होगा। तुम जितने कोमल होओगे उतनी ही संभावना है कि तुम्हारे भीतर आनंद का गीत उठे, उत्सव जगे, परमात्मा तुम्हारे भीतर बांसुरी बजाए। उसके लिए तुम्हारी कोमलता जरूरी है। यह कोई मच्छर-मक्खी मारने का सवाल नहीं है, सवाल तुम्हारी कोमलता का है। और तुम अगर मच्छर, मक्खी, चींटियां मारने से बच भी गए, लेकिन इस बचने में ही कठोर हो गए, तो सब व्यर्थ हो गया, किया-कराया सब व्यर्थ हो गया। क्योंकि असली बात थी कि भीतर की कोमलता...!
और ऐसा हुआ। जैनों में आचार्य तुलसी का पंथ है--तेरापंथ। महावीर ने तो अहिंसा की बात कही थी कि तुम्हारी कोमलता प्रगाढ़ हो। लेकिन महावीर की ही परंपरा में पैदा हुआ तेरापंथ कहता है, अगर तुम रास्ते से जा रहे हो और कोई प्यासा मर रहा हो तो उसे पानी मत पिलाना। क्योंकि तुमने अगर उसे पानी पिलाया तो तुम उसके कर्म में बाधा डाल रहे हो। कर्म-फल भोग रहा है वह। पिछले जन्मों में, सावन के महीने में बैंगन खाई होगी! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है; न खाता बैंगन, न इस तरह के फल भोगता! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है और तुम बाधा डाल रहे हो--पानी पिलाकर! तो तुम उसके कर्म-फल को आगे सरका रहे हो। फिर कल भोगेगा, फिर परसों भोगेगा। तुम उसके जीवन में उलझन खड़ी कर रहे हो। तुम कोई अच्छा काम नहीं कर रहे हो। यह मत सोचना कि तुम सेवा कर रहे हो। यह तो भूल कर मत सोचना। तेरापंथ में सेवा का निषेध है। क्योंकि सेवा का अर्थ है, हिंसा। तुमने बाधा डाल दी, यह हिंसा हो गई।
और फिर और भी झंझटें हैं। हिसाब-किताब लगाने वाले लोग कैसे-कैसे हिसाब- किताब लगा लिए! कहां से कहां निकल गए! कितनी दूर निकल गए! अगर तुमने इस आदमी को पानी पिला दिया और यह बच गया, अभी मर रहा था, और बच कर अगर समझो कि कल इसने चोरी की--कल का क्या भरोसा? चोरी करे, किसी की स्त्री ले भागे, जुआ खेले, किसी की हत्या कर दे--फिर उस सब पाप के भागीदार तुम भी होओगे। क्योंकि न तुम इसे बचाते, न किसी की स्त्री यह भगाता। न तुम इसे बचाते, न यह चोरी करता। न तुम इसे बचाते, न यह हत्या करता। तुम्हारे बचाने ने ही तो सारी चीज के लिए शुरुआत करवा दी, बीज बो दिए। तुम ही बीज बोने वाले हो। फसल में तुमको भी हिस्सा बांटना पड़ेगा। इसलिए सावधान! तेरापंथ कहता है कि चुपचाप अपने रास्ते पर चलते चले जाना। वह लाख चिल्लाए: पानी-पानी; तुम सुनना ही मत। ऐसी झंझट में पड़ना मत। उसको भी कोई लाभ नहीं है तुम्हारे पानी पिलाने से--उसको प्यासा मरना ही पड़ेगा। जितना कर्म किया है बुरा उतना फल भोगना ही पड़ेगा। और तुम नाहक अपने जीवन को बिगाड़ लोगे आगे के लिए। पता नहीं अब यह क्या करे बच जाने के बाद, क्या न करे! इसलिए चुपचाप अपनी राह पर चले जाना।
कल्पना भी महावीर ने न की होगी कभी कि मेरी अहिंसा की दृष्टि का ऐसा अर्थ भी हो सकता है! अर्थ नहीं कहेंगे इसे, अनर्थ कहेंगे। मगर उधार जिनके जीवन हैं, उधार जिनकी जीवन-दृष्टि है, उनसे अनर्थ ही हो सकता है।
चंदूलाल ढब्बू जी से कह रहे थे: "ढब्बू जी, कल जो तुम मुझसे छाता ले गए
थे वह वापस दे दो, भाई।"
ढब्बू जी ने कहा: "क्या तुम्हें वह अभी चाहिए, बिलकुल अभी चाहिए? उसे
तो मेरा मित्र मुल्ला नसरुद्दीन ले गया है।"
चंदूलाल ने कहा: "छाता मुझे तो नहीं चाहिए ढब्बू जी, पर जिससे मैं लाया था, वह कह रहा है कि उसने जिससे छाता लिया था वह लेने के लिए उसके घर पर आकर खड़ा हुआ है।"

यूं उधारी चल रही है। महावीर कुछ कहते हैं, लेकिन उधार-उधार होतेऱ्होते, आचार्य तुलसी तक पहुंचते-पहुंचते कैसी दुर्गति हो जाती है! और यही आचार्य तुलसी जैसे लोग महावीर की परंपरा को बचाने वाले लोग हैं! यही, जो वस्तुतः नष्ट करने वाले लोग हैं, बचाने वाले बन बैठे हैं। भक्षक रक्षक बने बैठे हैं।
आहार की जरूर विचारणा होनी चाहिए, क्योंकि तुम मनुष्य हो, तुम चुनाव
कर सकते हो--क्या खाना, क्या नहीं खाना; क्या पीना, क्या नहीं पीना। बस, इतना ही सूत्र ध्यान रहे कि किसी को अकारण कष्ट न हो। क्योंकि कष्ट दोगे तो कठोर हो जाओगे। कठोर हो जाओगे तो बंद हो जाओगे। बंद हो जाओगे तो परमात्मा को पाना असंभव है। फूल जैसी कोमलता चाहिए, ताकि परमात्मा तुम पर यूं उतरे जैसे शबनम की बूंदें सुबह फूल पर जम जाती हैं; जैसे ओस के मोती फूल की कोमल पंखुड़ियों पर चमकते हैं! ऐसा तुम पर, वह जो दिव्य अवतरण है, संभव हो सके! मगर फूल की पंखुड़ी चाहिए। फूल जैसे रहना!
और भोजन को ही सब मत समझ लेना। आहार बड़ी चीज है, बहुत बड़ी चीज है!
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा: आंखों को नीची करके चलो। चार फीट देखो, बस इतना काफी है। चलने के लिए इतना काफी है। चार फीट आगे देख रहे हो, इतना बहुत है। लेकिन तुम तो सारे पोस्टर पढ़ रहे हो सड़क के किनारे लगे। उन्हीं पोस्टरों को रोज पढ़ रहे हो, क्योंकि उसी रास्ते से रोज निकलते हो। वही हमाम साबुन है। वही पहलवान छाप बीड़ी है। वही चारमीनार सिगरेट है।
कितनी बार नहीं पढ़ चुके हो! क्या सार है आंखें खराब करने से? लेकिन पढ़ोगे उसी को तुम!
अखबारों में लोग वही पढ़ रहे हैं, फिल्मों में लोग वही देख रहे हैं।
वही फिल्म तुम देख रहे हो जन्मों-जन्मों से, वही त्रिकोण--दो आदमी, एक औरत। फिर चाहे वे दो आदमी राम और रावण हों और औरत सीता हो; या कोई हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, वही कहानी है--दो आदमी, एक औरत। या दो औरतें, एक आदमी। त्रिकोण होना चाहिए, कहानी बनने लगी। और कहानी में होगा क्या? तुम्हें भलीभांति पता है क्या होना है। तुम खुद ही लिख सकते हो कहानी। इतनी फिल्में देख चुके हो। दो फिल्में देखो, तीसरी कहानी लिख दो। पांच उपन्यास पढ़ो, छठवां लिख डालो। यूं ही तो किताबें लिखी जाती हैं, यूं ही फिल्में बनती हैं।
वही गीत तुम सुन चुके हो बहुत बार--वही लारे-लप्पा! कब तक लारे-लप्पा करते रहोगे? जरा कानों को कुछ सम्हालो। आंखों को जरा संयम दो। क्या बोलते हो, क्या सुनते हो, क्या गुनते हो--इसके पीछे विवेक तो होना ही चाहिए। महावीर ने कहा: विवेक से उठे, विवेक से बैठे, विवेक से चले, विवेक से देखे, विवेक से सुने, क्योंकि मनुष्य को पशुओं से अलग करने वाला तत्व विवेक है।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
और तुम जो भीतर ले जा रहे हो, अगर यह शुद्ध है तो तुम्हारे भीतर जो छिपा हुआ स्वरूप है, वह ढकेगा नहीं; उघड़ेगा, निखरेगा, ताजा होगा, नहाएगा-- सद्यःस्नात!
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
और जिसने अपने भीतर के सत्व को शुद्धता में जान लिया है, उसकी स्मृति ध्रुव हो जाती है।
स्मृति शब्द को खयाल रखना। स्मृति उस अर्थों में प्रयोग नहीं हो रही, जिस अर्थों में तुम करते हो--याददाश्त के अर्थों में नहीं, मेमोरी के अर्थों में नहीं। क्योंकि वैसी स्मृति तो कंप्यूटर में भी होती है, उसके लिए आदमी होना जरूरी नहीं है। कंप्यूटर तुमसे ज्यादा याददाश्त वाला होता है। और उसकी याददाश्त में कम भूलें होती हैं, तुमसे तो भूलें हो सकती हैं। अब तो मशीनें बन गई हैं जो सब याद रख लें। अब तो तुम्हें कुछ याद रखने की जरूरत नहीं है। जो काम मशीन कर देती है, उस काम में कोई गुणवत्ता नहीं है। फिर स्मृति से क्या अर्थ है? ध्रुवा स्मृतिः! उसे ऐसी स्मृति उपलब्ध
हो जाती है--अडिग, अचल, चंचलता से शून्य, थिर।
यह बड़ा अलग अर्थ है स्मृति का। बुद्ध ने इसके लिए उपयोग किया है: सम्मासती। महावीर ने इसको कहा है: सम्यक स्मृति। दोनों का एक ही अर्थ है;

सम्मासती पाली है, सम्यक स्मृति संस्कृत। ठीक-ठीक बोध। स्मृति से याददाश्त का सवाल नहीं है, स्मरण का सवाल है--अपना स्मरण, आत्म-स्मरण। तुम भूल गए हो कि तुम कौन हो। तुम्हें याद ही न रही कि तुम कौन हो, किसलिए हो, कहां से आए हो, कहां जा रहे हो! तुम्हें कुछ भी पता नहीं।
मैंने सुना है, एडीसन, अमरीका का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, या चाहो तो कहो कि दुनिया का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, क्योंकि उसने एक हजार आविष्कार किए। एक आदमी ने इतने आविष्कार कभी नहीं किए। मगर बहुत भुलक्कड़, अतिशय भुलक्कड़। एक बार खुद अपना नाम ही भूल गया।
औरों का नाम भूल जाना तो तुमने सुना होगा, अपना नाम भूल जाना बड़ी कठिन बात है, बड़ी मुश्किल बात है। लोग नींद में भी नहीं भूलते। तुम सब यहां सो जाओ...। जैसे मैं छांदोग्य उपनिषद पर बोलता ही रहूं, बोलता ही रहूं, बोलता ही रहूं, तो फिर तुम क्या करोगे? तुमको सोना ही पड़ेगा। आखिर बचने के लिए आदमी को कुछ तो ढाल चाहिए। छांदोग्य उपनिषद पर बोलते-बोलते तुम देखोगे यह तो खतरा हुआ जा रहा है। जल्दी से तुम अपनी ढाल सम्हाल लोगे और सो जाओगे।...तुम सब सो जाओ और मैं पुकार दूं: सत्यानंद! तो कोई नहीं सुनेगा, लेकिन सत्यानंद कहेगा कि भई, कौन नींद खराब करने आ गया! क्यों परेशान कर रहे हो!
नींद में भी अपना नाम नहीं भूलता। गहरी नींद में भी, अतिशय गहरी नींद में, सुषुप्ति में भी अपना नाम याद रहता है। लेकिन एडीसन को एक बार अपना नाम भूल गया। पहले महायुद्ध में राशन शुरू हुआ अमरीका में, वह कतार में खड़ा था; और जब उसकी पुकार आई--थामस अल्वा एडीसन--तो वह इधर-उधर देखने लगा। जो आदमी पुकार रहा था, उसको भी पता था कि यही आदमी एडीसन है, क्योंकि इसके अखबारों में फोटो देखे थे, जाना-माना आदमी था, जग-जाहिर था। उसने फिर बुलाया: थामस अल्वा एडीसन! और एडीसन इधर-उधर देखने लगा। उसने कहा, मामला क्या है! और एडीसन के पीछे जो खड़ा था, उस आदमी ने भी कहा कि बात क्या है! वह आपको बुला रहा है, आप सुन नहीं रहे! एडीसन ने कहा, ठीक याद दिलाया। वही मैं सोच रहा था कि नाम कुछ पहचाना-सा मालूम पड़ता है। कहीं न कहीं सुना है। धन्यवाद! तुमने अच्छी याद दिला दी।
एक दिन सुबह-सुबह एडीसन बैठा था। उसकी पत्नी आई--उसने कह रखा था कि जब मैं सोच-विचार में होऊं तो मुझे कभी बाधा मत डालना--नाश्ता लेकर आई थी, तो नाश्ता उसने बगल में रख दिया और चुपचाप चली गई कि जब वह सोच-विचार पूरा कर लेंगे तो नाश्ता कर लेंगे।
तभी एक मित्र आ गया। उसने नाश्ता देखा रखा हुआ बगल में, एडीसन को विचार-मग्न देखा, उसने सोचा इनको विचार करने दो, तब तक मैं नाश्ता कर लूं। उसने नाश्ता कर लिया। खाली प्लेटें सरका कर एक तरफ रख दीं। तब तक एडीसन अपने सोच-विचार के जगत से वापस लौटे। खाली प्लेटें देखीं, मित्र को देखा, कहा: "भाई, जरा तुम देर से आए। मैं नाश्ता कर चुका। जरा ही पहले आ गए होते तो साथ-साथ नाश्ता कर लेते।"
मित्र ने कहा: "कोई चिंता न करें।" मित्र बहुत हैरान हुआ। उसे भरोसा
ही नहीं आया, कि हद हो गई, नाश्ता मैं कर गया हूं और यह आदमी खाली प्लेटें देख कर कह रहा है कि मैं नाश्ता कर चुका!
एक बार एडीसन ट्रेन में सफर कर रहा था। टिकट कलेक्टर आया, उसने टिकट पूछी। एडीसन ने इस खीसे में देखा, उस खीसे में देखा, सब खीसे टटोल डाले, सूटकेस खोल कर सब सामान फैला दिया, जब बिस्तर खोलने लगा तो टिकट कलेक्टर ने कहा कि आप चिंता न करें, मैं आपका विद्यार्थी रह चुका हूं और मैं आपको जानता हूं कि आप बिना टिकट नहीं चलेंगे, टिकट होगा, जरूर होगा। एडीसन ने कहा कि चुप, टिकट की कौन चिंता कर रहा है! अरे, सवाल यह है कि मुझे जाना कहां है? बिना टिकट के यह पता कैसे चलेगा? तू बताएगा! कौन बताएगा अब मुझे? अब मैं झंझट में पड़ा। तू भी खोज। मेरे बिस्तर में देख, मेरे सूटकेस में देख। विद्यार्थी रहा है, चल साथ दे! बिना टिकट के पता कैसे चलेगा कि मुझे जाना कहां है, मैं निकला कहां के लिए था?
हमारी हालत यूं ही है। तुम्हें भी पक्का पता नहीं है कि तुम कौन हो।
और जो नाम तुम सोचते हो तुम्हारा है, वह तो तुम्हारा है नहीं, वह तो दे दिया है। वह तो लेबिल लगा दिया औरों ने। वे कुछ और लगा देते। सत्यानंद न कह कर

मैं इनको नित्यानंद नाम दे देता, फिर? यह नित्यानंद ही हो जाते। अखंडानंद हो जाते, मुक्तानंद हो जाते, कुछ भी...। इनके भाग्य में कुछ न कुछ होना बदा था! कोई न कोई नाम जरूरी है, मगर नाम तुम्हारा अस्तित्व तो नहीं है। स्मृति का अर्थ है उसकी स्मृति, जो मैं हूं, जो मैं लेकर आया हूं इस जगत में, जो मेरे भीतर चैतन्य का स्रोत है। वह क्या है? कहां से मैं आ रहा हूं और किस दिशा में मेरी गति हो रही है? मैं क्या कर रहा हूं इस क्षण? उससे कोई संबंध है मेरे आने-जाने का या नहीं? या व्यर्थ की बातों में उलझ गया हूं? जाना कहीं और था, चल पड़ा हूं कहीं और! पहुंचना कहीं और है, दिशा पकड़ ली है कोई और!
यही तो दुख है हमारा। सारी पृथ्वी दुखी लोगों से भरी है। क्या है दुख? इतना ही दुख है कि हम वह कर रहे हैं जिसका हमारे स्वरूप से कोई तालमेल नहीं है। सुख का अर्थ होता है: जीवन की ऐसी चर्या, जिससे हमारे स्वरूप का तालमेल हो। और दुख का अर्थ होता है: ऐसी चर्या, जिससे हमारे स्वरूप का कोई तालमेल न हो। और आनंद का अर्थ होता है: ऐसा जीवन, जो हमारे भीतर के छंद के साथ बिलकुल एकरूप हो; तालमेल ही न हो, एक ही हो जाए। जिस क्षण हम इस जगत के धर्म को अपने भीतर के धर्म के साथ निमज्जित कर लेते हैं, इसमें डूब जाते हैं और इसे अपने में डुबा लेते हैं, जिस दिन बूंद सागर में डूब जाती है और सागर बूंद हो जाता है, उस दिन जीवन में आनंद; उस दिन जीवन में छंद। वही छांदोग्य उपनिषद का सार है। उस दिन जीवन में गीत, बांसुरी। उस दिन पायल बजती है, घूंघर बजते हैं। उस दिन ढोल पर थाप पड़ती है। उस दिन जीवन में पहली बार पता चलता है कि कितना बड़ा अहोभाग्य है--एक श्वास लेना भी!
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
आत्म-स्मरण का नाम स्मृति है। इसी सम्मासती, सम्यक स्मृति को मध्यऱ्युग के संतों ने--कबीर ने, नानक ने, दादू ने, रैदास ने, फरीद ने-- सुरति कहा है। सुरति सम्मासती का ही रूप है लोकभाषा में--और भी प्यारा हो गया! सम्यक स्मृति थोड़ा कठिन, सुरति सीधा-साफ हो गया।
लेकिन सुरति के नाम से बड़ा धोखा चल रहा है। खास कर पंजाब में। क्योंकि पंजाब में नानक ने सुरति की दुंदुभी बजा दी, और नानक के पास जो आए वे भीग कर लौटे, अमृत से भीग कर लौटे। लेकिन सदा होना है यह। नानक ने लोगों को सुरति दी अर्थात स्मृति दी अपनी, उन्हें याद दिलाई खुद की; और अब पंजाब में क्या चल रहा है? सुरति-शब्दऱ्योग! उसका उससे कोई नाता नहीं। शब्दऱ्योग! वह केवल मंत्रोच्चार का ही दूसरा नाम है। बैठे-बैठे राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहे हैं तोते की तरह; या जो भी तुम्हें प्यारा शब्द हो वही--ओंकार का नाद करो, कि नमोकार मंत्र पढ़ो, कि जपुजी पढ़ो।
लेकिन शब्दों को दोहराने से, मंत्रों को दोहराने से केवल आत्म-सम्मोहन पैदा होता है, सुरति पैदा नहीं होती। वस्तुतः उलटी ही बात होती है, विस्मृति पैदा होती है, सुरति पैदा नहीं होती। अपना स्मरण क्या खाक आएगा शब्दों से! अपना स्मरण तो निःशब्द में आता है। सुरति-निःशब्दऱ्योग कहो तो समझ में आए। सुरति-शब्दऱ्योग! शब्द तो ढांक लेता है। शब्द ही तो उपद्रव है। शब्द ही तो हमारा मन है। सारे शब्दों से मुक्त होना है, ताकि निस्तब्धता छा जाए, ताकि मौन उतर आए, ताकि भीतर सन्नाटा हो। उसी सन्नाटे में अपनी स्मृति आएगी। जब कुछ भी न बचेगा याद करने को, तभी अपनी याद आएगी। जब तक कुछ और बचेगा, तब तक याद उसी में उलझी रहेगी।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः। सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।।
और जिसको अपनी सुरति आ गई, जिसको अपना स्मरण आ गया, उसकी सारी ग्रंथियां टूट जाती हैं। यह शब्द बड़ा प्यारा है। ये सूत्र छोटे-छोटे शब्दों पर खड़े हैं। सूत्र का अर्थ ही होता है: बीज। इनमें विस्तार नहीं होता है। इनमें बात थोड़े में कही जाती है। सूत्र का अर्थ होता है: टेलीग्राम।
और ध्यान रखना, टेलीग्राम का ज्यादा परिणाम होता है। तुम पूरा का पूरा शास्त्र लिख भेजो किसी को--कि जोग लिखा महा शुभस्थाने और सब जने राजी खुशी हैं, और आगे हाल यह है--और चलते जाओ तो भी उसका वह परिणाम नहीं होता। और इसलिए जो समझदार हैं, वे लंबी चिट्ठी लिखने के बाद क्या लिखते हैं--थोड़ा

लिखा और ज्यादा समझना! अरे, चिट्ठी लिखी है और तार समझना! गजब कर दिया, तो तार ही भेज देते न! चिट्ठी लिखी और तार समझना! मगर लिखने में राज है। तार समझने का मतलब है कि जब तार आ जाता है तो ज्यादा अर्थ लाता है; शब्द कम होते हैं, अर्थ ज्यादा होता है। चिट्ठी में शब्द ज्यादा होते हैं, अर्थ कम होता है। इसलिए कहते हैं कि चिट्ठी लिखी और तार समझना।
ये तार हैं। सूत्र का अर्थ होता है: संक्षिप्त, बिलकुल सार। जरा भी असार को नहीं रखा है, सब हटा दिया है। सिर्फ सार को ही बचाया है। इनमें एक-एक शब्द महत्वपूर्ण है।
"सर्वग्रंथीनां--सारी ग्रंथियां।"
ग्रंथि का अर्थ होता है: गांठ। और हममें गांठें ही गांठें हैं। उन्हीं गांठों के कारण तो हम सब अष्टावक्र हो गए हैं, जगह-जगह से टेढ़े हो गए हैं। आदमी तो कहां मिलते हैं--ऊंट। चले जा रहे हैं ऊंट, कतारबद्ध ऊंट! जगह-जगह गांठें हैं--ऊंट की खूबी यही है। सब जगह से तिरछा है।
यहूदियों में कथा है कि जब भगवान सबको बना चुका तब उसने ऊंट बनाया, बचा-खुचा जो सामान था। मतलब कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा! ऊंट को उसने बनाने का इरादा नहीं रखा था। बना चुका हाथी, घोड़े, गधे-- सब बना चुका--आदमी, औरतें, पशु-पक्षी। बच रहा होगा सामान। हमेशा जब तुम मकान बनाते हो, तो कुछ सीमेंट बच गई, कुछ चूना बच गया, कुछ ईंट बच गईं, कोई लक्कड़-पत्थर बच गए, अब इन सबको मिला कर कुछ बना दिया। ऐसे ऊंट बना। इसलिए ऊंट दिखता भी है अजीब। क्या उनकी चाल, क्या उनके पैर, क्या उनकी देह की संरचना!
यहूदियों में दूसरी कहानी है कि ऊंट को भगवान ने आखिरी समय में बनाया,
जब वह बिलकुल थक चुका था और झपकी खाने लगा था। ऐसा थोप-थाप कर किसी तरह खतम किया। आखिरी मामला था, निपटें, सुलझें, झंझट मिटाएं। छठवें दिन आखिरी चीज ऊंट बनाई। और फिर जो सोया सो तब से सोया ही है। क्योंकि यहूदियों में तो छह दिन में सृष्टि बन गई और सातवें दिन के बाद फुरसत। सातवां दिन इसीलिए, रविवार, छुट्टी का दिन है। मगर तुम्हारा तो सोमवार होता है, परमात्मा का फिर सोमवार नहीं हुआ। फिर दफ्तर नहीं गए वे। फिर तो जो उन्होंने टांग पसारी! अरे, घोड़े क्या ऊंट भी बेच कर सो गए!
ग्रंथि का अर्थ होता है: गांठ। और जितनी ग्रंथियां होती हैं उतना ही आदमी इरछा-तिरछा होता है। कहेगा कुछ, मतलब उसका कुछ और होगा। करना कुछ और चाहेगा, करेगा कुछ और। जाएगा उत्तर और जाना चाहेगा दक्षिण। उसकी बात का भरोसा करना मुश्किल होता है। तुम्हें सोचना पड़ता है कि इसका मतलब क्या, इसके इशारे का मतलब क्या।
मैंने सुना है, दो व्यापारी...। फलीभाई पहचानते होंगे उनको! वहीं शेयर बाजार बंबई के आदमी थे दोनों, बोरीबंदर पर मिले। एक ने दूसरे से पूछा कि भाई, कहां जा रहे हो? उसने कहा, कहीं नहीं, यहीं दादर तक जा रहा हूं। दूसरे ने कहा, अरे, तू किसी और को बुद्धू बनाना, मुझे पक्का पता है कि तू दादर ही जा रहा है!
देखते हो मजा! उसने कहा, मुझे पक्का पता है कि तू दादर ही जा रहा है! तू किसी और को बुद्धू बनाना! क्योंकि जाएगा कहीं और बताएगा कहीं, वह मुझे मालूम है। तू सोचता होगा कि दादर की बताएगा तो मैं समझूंगा थाना जा रहा है। मगर मैं पक्का पता लगा कर आया हूं कि तू दादर ही जा रहा है।
अब बेचारा सच बोल रहा है कि दादर ही जा रहा हूं, मगर माने कौन!
इस जगत में इतने तिरछे लोग हैं। यहां सभी राजनीति में पड़ गए हैं। छोटे-छोटे बच्चे तक राजनीति में पड़ जाते हैं। पड़ना ही पड़ता है। क्योंकि मां कहती है कि हंसो, अरे मैं तुम्हारी मां हूं! मुस्कुराओ, क्या पड़े हो! छोटा-सा बच्चा! मनोवैज्ञानिकों ने खोज की है कि छह सप्ताह का बच्चा राजनीति सीखना शुरू कर देता है। जैसे ही माताराम को आते देखता है, मुस्कुराने लगता है। कोई मतलब नहीं है उनको मुस्कुराने का। इन माताराम को देख कर उसे कोई बड़ी प्रसन्नता नहीं हो रही है। मगर झंझट से बचना है तो मुस्कुराना ठीक है। पोपला मुंह खोल देता है। न कुछ दांत हैं न कुछ, न हृदय में कोई मुस्कुराहट का अभी सवाल है, मगर ओंठ फाड़ देता है। माताराम प्रसन्न

हो जाती हैं। स्वागत हो गया। बाप आते हैं, वे भी झूले पर खड़े होकर बेटे को देखते हैं। बेटे को मुस्कुराना पड़ता है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी, बेटा फजलू और छोटे बच्चे को लेकर--अभी नया-नया दो ही साल का बच्चा--किसी के घर निमंत्रित थे, भोजन करने गए थे। सबने छोटे बच्चे को अभी पहली दफा देखा था, इसलिए सभी छोटे बच्चे की बात कर रहे थे। गृहपति ने कहा कि बाल तो बिलकुल नसरुद्दीन, तुमसे मिलते हैं। अरे, तुम्हारे बाल देख लो कि इसके बाल देख लो। गृह-पत्नी ने कहा नसरुद्दीन की पत्नी से कि गुलजान, आंखें तो बस बिलकुल तुमसे मिलती हैं। ऐसा लगता है बिलकुल तुम्हारी आंखों की ही प्रतिछबि।
फजलू चुपचाप खड़ा रहा कि मेरे बाबत भी कुछ बोला जाता है कि नहीं। जब देखा कि कुछ कोई नहीं बोल रहा और उसने कहा: "पाजामा मेरा है! मिलता ही नहीं, बिलकुल मेरा है!"
क्या करोगे! जहां सब अपनी-अपनी चला रहे हैं, अपनी-अपनी धाक रहे हैं-- कोई के बाल, किसी की आंखें! आखिर लड़का यह भी तो सोचे कि आखिर मेरी भी कोई इज्जत है, मेरी भी कोई प्रतिष्ठा है! इनके मिलते होंगे, मगर मेरा पाजामा बिलकुल मेरा है! कसम खाकर कहता हूं। मुहल्ले-पड़ोस के लड़कों को लाकर गवाही में खड़ा कर सकता हूं। सालों मैंने पहना है और अब यह पहन रहा है।
छोटे-छोटे बच्चों को भी अहंकार पकड़ना शुरू होता है। और वहीं से गांठ पड़नी शुरू होती है। और मां-बाप भी अहंकार को पकड़ाते हैं, जहर पिलाते हैं। कुछ करके दिखाना! अरे, दुनिया में आए हो तो कुछ करके दिखाओ! कुछ नाम ही कर जाओ! जैसे जो नाम कर गए पहले, कुछ बहुत कर गए! क्या हो गया उनके नाम के कर जाने से? मगर हर बच्चे को हम कहते हैं: कुछ होकर दिखाओ, कुछ करके दिखाओ, कुछ बन कर दिखाओ। यह बन जाओ, वह बन जाओ। स्कूल भेजते हैं, स्कूल में भी वही दौड़ महत्वाकांक्षा की--प्रथम आओ! स्वर्णपदक जीतो! कुछ न कुछ दुनिया के सामने अपने अहंकार को घोषणा देनी है।
इससे ग्रंथियां पैदा होती हैं, गांठें पैदा होती हैं। महत्वाकांक्षा ग्रंथियां लाती है। और महत्वाकांक्षा हीनता पैदा करवाती है कि अभी मैं कुछ भी नहीं। न सिकंदर बन पाया, न अशोक बन पाया, न अकबर बन पाया, न बुद्ध बन पाया, न महावीर बन पाया, कुछ भी नहीं। जिंदगी यूं ही चली जा रही है! अभी तक अपनी कोई छाप नहीं छोड़ पाया दुनिया पर। हस्ताक्षर नहीं कर पाया। तो हीनता पैदा होती है। महत्वाकांक्षा का जहर हीनता को पैदा कर देता है।
और हीनता बड़ी गांठ है। फिर आदमी धन से, पद से, प्रतिष्ठा से, किसी भी तरह से, अगर अच्छी तरह से न मिले तो गलत तरह से--चोरी से, बेईमानी से, गुंडागर्दी से--अगर यूं प्रसिद्धि न मिले तो फिर आदमी कुछ भी साधन अख्तियार कर लेता है। फिर साध्यों की फिक्र नहीं रह जाती कि वे शुभ साधन से ही मिलने चाहिए। मिलने चाहिए! साधन फिर शुभ हों कि अशुभ। केलिफोर्निया में दो वर्ष पहले एक आदमी ने सात हत्याएं कीं--दो घंटे
के भीतर। जो मिला, उसको शूट कर दिया। यह भी नहीं देखा, किसको शूट कर रहा है। पीछे से भी मार दी गोली लोगों को। उनका चेहरा भी नहीं देखा था पहले कभी। उस पर जब अदालत में मुकदमा चला तो मजिस्ट्रेट भी हैरान था। उसने पूछा
कि तुमने यह किया क्यों? अरे, लोगों की कोई दुश्मनी होती है तो कोई किसी को मारता है, समझ में आता है, कोई तर्क है। तुमने तो ऐसे आदमियों को मारा, जिनको तुमने जिंदगी में पहले देखा भी नहीं था। इसमें एक आदमी तो पहली दफे ही केलिफोर्निया आया था। और उसका तुमने चेहरा भी नहीं देखा था, पीछे से गोली मार दी!
उस आदमी ने कहा, मुझे इसकी कोई फिक्र नहीं। मैं अपनी तस्वीर अखबारों में देखना चाहता हूं। अरे, जिंदगी यूं ही चली जा रही है! कोई चर्चा ही नहीं! आज हर जबान पर मेरा नाम है। गांव की चर्चा मैं हूं। जो देखो मेरी बात कर रहा है। जिंदगी सफल हो गई। अब फांसी लगे, कोई फिक्र नहीं। उसकी भी चर्चा होगी। मर जाऊंगा, मगर याद छोड़ जाऊंगा।
जार्ज बर्नार्ड शा को जब नोबल प्राइज मिली तो उसने इनकार कर दिया लेने से। वह पहला आदमी था इनकार करने वाला। एक तो नोबल प्राइज का मिलना, सारी दुनिया में चर्चा हुई। प्रथम, अखबारों की सुर्ख सुर्खियों में नाम आया। और दूसरे दिन उसने इनकार कर दिया लेने से। फिर अखबार में खबर छपी। यह

पहला मौका था कि कोई नोबल प्राइज लेने से इनकार कर दे। नोबल प्राइज के लिए तो लोग मरे जाते हैं। हजार कोशिश करते हैं, सिफारिशें करवाते हैं, चेष्टाएं करते हैं, क्या नहीं करते आदमी! और इसने नोबल प्राइज को इनकार कर दिया! मिलने से भी बड़ी खबरें छपीं कि यह इतिहास की पहली घटना है! इतना बड़ा पुरस्कार--कोई बीस लाख रुपए मिलते हैं--और सारे जगत में सम्मान, ऐसा कोई पुरस्कार नहीं। और बर्नार्ड शा ने इनकार कर दिया! बहुत चर्चा हुई, बहुत शोरगुल मचा।
दोत्तीन दिन बर्नार्ड शा को बहुत खोजा गया, उसका पता ही न चले कि वह कहां है। तीन दिन बाद पता चला। वह अपने गांव चला गया था। उस पर बड़ा दबाव डाला गया। इंग्लैंड की सरकार ने दबाव डाला, दुनिया के बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोगों ने पत्र लिखे, तार किए कि भई, ऐसा मत करो, इसमें अपमान है नोबल प्राइज बांटने वाली कमेटी का। तुम स्वीकार कर लो, फिर चाहे तुम इस हाथ से स्वीकार करना और उस हाथ से दान कर देना, मगर स्वीकार कर लो।
मगर वह भी टिका रहा, सात दिन तक अखबारों में रोज चर्चा चलती रही कि आज
इस महाराजा ने प्रार्थना की, आज उस राजा ने प्रार्थना की, आज इस लेखक ने, कल उस कवि ने। सात दिन तक उसने धूम-धड़ाका मचा दिया। सारी दुनिया की सब खबरें गौण हो गईं। सातवें दिन उसने घोषणा की कि जब इतने लोग आग्रह कर रहे हैं तो मैं कैसे इनकार कर सकता हूं, मैं स्वीकार करता हूं। उसने नोबल प्राइज स्वीकार की। फिर अखबार में खबर छपी।
और उसने एक हाथ से दस्तखत किए स्वीकार करने के और दूसरे हाथ से उसको दान कर दिया एक संस्था को--फेबियन सोसायटी को दान कर दिया। फिर अखबारों में खबर छपी कि उसने स्वीकार किया, मगर अदभुत दानी कि बीस लाख रुपए यूं दान कर दिए! कि दो पैसे भी आदमी देने में सोचता है, बीस लाख रुपए देने में!
और आज के बीस लाख नहीं, उस दिन के बीस लाख बहुत थे। आज का तो एक करोड़ रुपया भी उनसे कम है, उस दिन के बीस लाख रुपए आज के करोड़ों रुपए से भी ज्यादा थे। कुछ चीजों के दाम तो सात सौ गुने ज्यादा हो गए हैं उस दिन से अब तक। रुपए की तो कीमत ही गिरती चली गई है। रुपए का तो कोई मूल्य ही नहीं रहा। भिखमंगे को भी तुम रुपया दो तो वह धन्यवाद नहीं देता; उलटे उसको देखता है कि असली है कि नकली। मतलब तुम पर एहसान कर रहा है स्वीकार करके। अखबार में खबरें छपीं, बहुत खबरें छपीं। और फिर पता चला कि वह फेबियन सोसायटी जो थी वह जार्ज बर्नार्ड शा की ही बनाई हुई एक छोटी-सी समिति थी, जिसके वही अध्यक्ष थे और वही सदस्य थे एकमात्र--और कोई भी नहीं। फिर तो बहुत शोरगुल मचा, कि यह तो हद हो गई, यह तो बेईमानी हो गई।
यूं पंद्रह दिन तक उस आदमी ने सारी दुनिया को उलझाए रखा। और सोलहवें दिन उसने घोषणा कर दी कि इसमें क्या संकोच की बात है! सच बात तो यह है कि मैंने जान कर यह सब किया, क्योंकि नोबल प्राइज मिली, एक दिन छप गई खबर, खत्म हो गई बात, यह भी कोई बात है! अरे, नोबल प्राइज मिली तो इसको जितना खींचा जा सके लंबा, जितने दिन तक अखबारों में टिका जा सके टिकना चाहिए। इसलिए तो मैंने इतना पूरा नाटक किया।
फिर खबर छपी कि यह नाटक था पूरा का पूरा। यह नाटककार नाटक ही कर रहा था। यह इसने किसी को दान वगैरह किए नहीं, इस हाथ से अपने को ही दान कर लिए वापस। यह सब धोखाधड़ी थी। यह आदमी बेईमान है। जगह-जगह गालियां और जगह-जगह असम्मान और व्यंग्य-चित्र छपे।
मगर उसने कहा कि इसमें क्या बात है! मैंने पूरा लाभ लेना चाहा जितना लाभ लिया जा सकता है। क्या यूं ही नोबल प्राइज मिली और बस ले ली, किसी को पता भी न चला, कानों-कान खबर न हुई! एक-एक बच्चे को पता चल गया।
ऐसी ग्रंथियां मन में पैदा हो जाती हैं--अहंकार की, विशिष्टता की, खास होने की।
स्मृतिलाभै...।
लेकिन जिसको अपना स्मरण आ गया, उसकी ये सारी ग्रंथियां मिट जाती हैं।
फिर उससे ऊपर कुछ भी नहीं है--न धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है। जिसको अपना स्मरण आ गया, उसे तो परम पद मिल गया, परम धन मिल गया। उस परम पद और परम धन का नाम ही मोक्ष है।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।

उसका सभी ग्रंथियों से मोक्ष हो जाता है, मुक्ति हो जाती है। सारी ग्रंथियां टूट कर गिर जाती हैं, जैसे जंजीरें टूट कर गिर गई हों किसी कैदी की।
इस सूत्र को बहुत सावधानी पूर्वक समझना। आहार अर्थात जो बाहर से भीतर आता है। स्मृति अर्थात आत्म-स्मृति। ग्रंथियां अर्थात वे सब आकांक्षाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; वासनाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; गांठें जिनमें तुम उलझ गए हो। जैसे मछली जाल में फंसी हो और तड़फती हो। जिसकी सारी ग्रंथियां टूट जाती हैं, उसका मोक्ष है, उसका ही मोक्ष है।

मेरा स्वर्णिम भारत-20

सतां हि सत्यम्
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #9)

पहला प्रश्न: भगवान,
सत्यं परं परं सत्य।
सत्येन न स्वर्गाल्लोकाच च्यवन्ते कदाचन।
सतां हि सत्य।
तस्मात्सत्ये रमन्ते।
अर्थात सत्य परम है, सर्वोत्कृष्ट है, और जो परम है वह सत्य है। जो सत्य का आश्रय लेते हैं वे स्वर्ग से, आत्मोकर्ष की स्थिति से च्युत नहीं होते। सत्पुरुषों का स्वरूप ही सत्य है। इसलिए वे सदा सत्य में ही रमण करते हैं।
भगवान, श्वेताश्वतर उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए विशद रूप से खोलने की अनुकंपा करें।

चैतन्य कीर्ति
सत्यं परम परम सत्य।
परम का अर्थ सर्वोत्कृष्ट नहीं होता। वैसा भाषांतर भूल भरा है। सर्वोत्कृष्ट तो उसी शृंखला का हिस्सा है। सीढ़ी का आखिरी हिस्सा कहो, मगर सीढ़ी वही है। पहला पायदान भी सीढ़ी का है और सबसे ऊंचा पायदान भी सीढ़ी का है। सर्वोत्कृष्ट में गुणात्मक भेद नहीं होता, केवल परिमाणात्मक भेद होता है। परम का अर्थ सर्वोत्कृष्ट नहीं है।
परम का अर्थ है: जो शृंखलाओं और श्रेणियों का अतिक्रमण कर जाए। जिसे किसी श्रेणी में और किसी कोटि में रखने की संभावना न हो। जो स्वरूपतः अनिर्वचनीय है। जिसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जिसके संबंध में कुछ भी कहो तो भूल हो जाएगी।
लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन है: सत्य को बोला कि बोलते ही सत्य असत्य हो जाता है। बोलते ही। क्योंकि सत्य है विराट आकाश जैसा और शब्द बहुत छोटे हैं, आंगन से भी बहुत छोटे हैं, शब्दों में सत्य का आकाश कैसे समाए?
और हमारी कोटियां हमारे मन के ही विभाजन हैं। इसे कहते पदार्थ, इसे कहते चेतना, लेकिन कौन करता है निर्णय? कौन करता है भेद? भेद करने की प्रक्रिया तो मन की है। और सत्य है मनातीत, मन के पार। इसलिए सत्य को मन की किसी कोटि में नहीं रखा जा सकता। सर्वोत्कृष्ट कहने की भूल में मत पड़ जाना। सबसे ऊंचा भी हो तो भी नीचे से ही जुड़ा होगा। वृक्ष कितना ही आकाश में ऊपर उठ जाए, तो भी उन्हीं जड़ों से जुड?ा होगा जो गहरी जमीन में चली गयी हैं।
फ्रेड्रिक नीत्शे का प्रसिद्ध वचन है कि अगर किसी वृक्ष को आकाश के तारे छूने हों, तो उसे अपनी जड़े पाताल तक भेजनी होंगी। और वृक्ष एक है। पाताल तक गयी जड़े, स्वर्ग को छूती हुई शाखाएं अलग-अलग नहीं हैं; एक ही जीवनधारा दोनों को जोड़े है। तुम्हारे पैर और तुम्हारा सिर अलग-अलग नहीं हैं। यह अलग-अलग होने की भ्रांति ने बड़े पागलपन पैदा कर दिया।
मनुस्मृति कहती है: ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए। क्यों? क्योंकि मुख सर्वोत्कृष्ट। और शूद्र ब्रह्मा के पैरों से पैदा हुए। क्योंकि पैर अत्यंत निकृष्ट। वैश्य जंघाओं से पैदा हुए। शूद्रों से जरा ऊपर! मगर फिर भी निम्न का ही अंग। क्योंकि आदमी को दो हिस्सों में बांट दिया। कमर के ऊपर जो है, श्रेष्ठ और कमर के नीचे जो है, अश्रेष्ठ। कैसा मजा है! एक ही रक्त की धार बहती है, कहीं कोई विभाजन नहीं है, हड्डियां वही हैं, मांस वही है, रक्त वही है, सब जुड़ा हुआ है, सब संयुक्त है, लेकिन इसमें भी विभाजन कर दिया। फिर क्षत्रिय हैं, वे बाहुओं से पैदा हुए। और थोड़ा ऊपर। और फिर ब्राह्मण है, वह मुख से पैदा हुआ।

लेकिन शूद्र हो या ब्राह्मण, अगर पैर और मुंह से ही जुड़े हैं, तो उनमें कुछ गुणात्मक भेद नहीं है। गुणात्मक भेद हो नहीं सकता। क्योंकि वे एक शरीर के अंग हैं।
मेरी परिभाषा में तो सभी व्यक्ति शूद्र की तरह पैदा होते हैं। और जो व्यक्ति मन की सारी शृंखलाओं के पार चला जाता है, जो उस अज्ञात और अज्ञेय में प्रवेश कर जाता है जिसे कहने के लिए न कोई शब्द है, न कोई सिद्धांत, जिसे कहने का कोई उपाय नहीं, जिसे जानने वाला गूंगा हो जाता है, गूंगे का गुड़ है जो, वही ब्राह्मण है। ब्राह्मण वह है: जिसने ब्रह्म को जाना। जिसने जीवन के परम सत्य को जाना, वह ब्राह्मण है। पैदा सभी शूद्र होते हैं। फिर कोई ध्यान की प्रक्रिया से समाधि तक पहुंच कर, मन के पार होकर ब्राह्मण हो जाता है। ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता है। यह सूत्र प्यारा है:
सत्यं परम...
सत्य परम है। मगर फिर याद दिला दूं, तुमने परम का अर्थ किया है: सर्वोत्कृष्ट। नहीं, वह तो अहंकार की ही भाषा है। सर्वोत्कृष्ट! सबसे ऊपर। तो जो सबसे ऊपर है, वह किसी को नीचे दबाएगा, वह किसी की छाती पर चढ़ेगा। मैं कल ही श्री मोरारजी देसाई का एक वक्तव्य देख रहा था। किसी ने उनसे पूछा एक पत्रकार सम्मेलन में कि यदि लोग आपसे कहें पुनः प्रधानमंत्री हो जाने के लिए, तो आप राजी होंगे? उन्होंने कहा, निश्चय ही! प्रधानमंत्री तो क्या, अगर लोग मुझसे गधे पर बैठने को कहें तो भी राजी हो जाऊंगा। मैं थोड़ा सोच-विचार में पड़ गया। लोग कौन हैं? पहले गधे से भी तो पूछो! गधा भी इनको बिठालने को राजी होगा!
और तब मुझे याद आया--
सेठ चंदूलाल का बेटा उनसे पूछ रहा था, पापा, दूल्हा को लोग घोड़े पर क्यों बिठालते हैं, गधे पर क्यों नहीं बिठालते? तो चंदूलाल ने कहा, बेटा, घोड़े पर इसलिए बिठालते हैं ताकि पता चलता रहे कौन दूल्हा है और कौन घोड़ा है। गधे पर बिठाल दें तो कैसे पता चलेगा कौन दूल्हा है, कौन गधा है? वरमाला किसके गले में पहनाएगी? वधू बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएगी, एक गधे पर दूसरा गधा चढ़ा बैठा है! इसलिए घोड़े पर बिठालते हैं। ये मोरारजी देसाई गधे पर बैठने को राजी है। मगर कोई गधा उनको बिठालने
को राजी है? और लोग कौन हैं, जो इनको कहें कि तुम गधे पर बैठ जाओ। गधे का हक सिर्फ गधे को है। मगर कोई गधा इतना गधा नहीं है कि इनको बैठालने को राजी हो जाए। मगर आतुरता है किसी के ऊपर बैठने की! चलो, गधा ही सही, मगर ऊपर बैठ जाएं!
ऊपर बैठने की जो आकांक्षा है, वह अहंकार है। सत्य और अहंकार का कोई संबंध नहीं जहां अहंकार गिर जाता है, वहां सत्य है। जब तक तुम हो, तब तक सत्य नहीं। जब तुम नहीं हो, तब सत्य है। तुम्हारी शून्यता की सुगंध सत्य है। तुम्हारी राख पर खिलता है फूल सत्य का। तुम खाद बन जाते हो। तब, केवल तब ही सत्य की अनुभूति शुरू होती है। जब तक तुम हो, तब तक सत्य के संबंध में विचार कर सकते हो, लेकिन सत्य को न जाने पाओगे। और सत्य के संबंध में कितना ही जानो, वह सत्य को जानना नहीं है। कोई लाख जान ले प्रेम के संबंध में अगर प्रेम का नाद उसके प्राणों में न छिड़ा हो, तो सारे शास्त्र पढ़ डाले प्रेम के संबंध में, फिर भी प्रेम से वंचित ही रह जाएगा। कोई प्रकाश के संबंध में सब पढ़ा ले, सब गुन ले, मगर अगर आंखें न हों उसके पास, या आंखें भी हों और बंद हों, तो प्रकाश को न जान सकेगा। इस भेद को ख्याल में रखना, प्रकाश को जानना और प्रकाश के संबंध में जानना दो अलग बातें हैं। प्रकाश के संबंध में जानना दर्शनशास्त्र है और प्रकाश को जानना: धर्म।
सत्य के संबंध में जाना जा सकता है। बहुत जाना जा सकता है। सारे विश्व
के पुस्तकालय भरे पड़े हैं, पटे पड़े हैं। मगर वह सत्य को जानने की व्यवस्था नहीं है। सत्य को जानने की प्रक्रिया तो ठीक उलटी है। सब कोटियां तोड़ देनी होंगी, सब शृंखलाएं विसर्जित कर देनी होंगी, सारी धारणाओं को नमस्कार कर लेना होगा--आखिरी नमस्कार! हिंदू की धारणा, मुसलमान की, ईसाई की, जैन की बौद्ध की, सिक्ख की, पारसी की, सारी धारणाओं को विदा कर देना होगा। क्योंकि जब तक तुम्हारी धारणाएं हैं, जब तक तुम्हारे पक्षपात हैं, जब तक तुम मान कर

चल रहे हो, तब तक तुम उसे न जाने सकोगे जो है। तुम्हारी मान्यता उस पर आरोपित हो जाएगी। तुम्हारी आंखों पर चश्मा लगा है तो उसको रंग तुम्हें भ्रांति देगा क्योंकि उसका रंग तुम्हारे चारों तरफ हावी हो जाएगा। और क्या है हिंदू होना और मुसलमान होना और जैन होना? चश्मे हैं। अलग-अलग रंग के। और जिस रंग से तुम देखोगे, वही रंग सारे अस्तित्व का दिखाई पड़ने लगेगा।
अस्तित्व को देखना हो तो चश्मे उतार देना जरूरी है। शास्त्री के बोझ
से मुक्त हो जाना जरूरी है। और जब तुम्हारे भीतर कोई भी ज्ञान नहीं रह जाता तब निर्दोषता का जन्म होता है। तब तुम्हारे भीतर वही हृदय होता है, जो तुम बच्चे की तरह लेकर आए थे। वही सरलता, वही जिज्ञासा, वही जानने की आतुरता।
पंडित में जानने की आतुरता नहीं होती। वह तो जाने ही बैठा है!
एक मित्र ने प्रश्न पूछा है...प्रमोद उनका नाम है...कि आपको समझना इतना कठिन क्यों है? मुझे समझना कठिन नहीं है, मैं तो बहुत सीधी-सादी भाषा बोल रहा हूं, लेकिन वह जो प्रमोद के साथ "पंडित" जुड़ा है उस "पंडित" ने उपद्रव कर दिया है। वह "पंडित" नहीं समझने देगा। पांडित्य ने कभी किसी को नहीं समझने दिया। जीसस को सूली पर चढ़ाया? पंडितों ने। यहूदी धर्म के पंडित थे। किसने मंसूर के हाथ-पैर काटे, गर्दन काटी? मुसलमान पंडितों ने। मौलवियों ने, इमामों ने, अयातुल्लाओं ने। वे उनके पंडित थे। मंसूर से चूक गये, जीसस से चूक गये। बुद्ध को किसने इनकार किया इस देश में इस? देश से कैसे बुद्ध की अदभुत सुगंध तिरोहित हो गयी? पंडितों का जाल! उनके बर्दाश्त के बाहर हो गया।
और कारण है उनके बर्दाश्त के बाहर होने का। पंडित का एक स्वार्थ है, बहुत गहरा स्वार्थ है। उसका ज्ञान खतरे में है। अगर वह बुद्धों की सुने, तो उसे पहली तो बात यह करनी होगी कि ज्ञानी को छोड़ने का साहस, जुटाना होगा। और ज्ञान को छोड़ना ये है जैसे कि कोई उससे प्राण छोड़ने को कह रहा हो। वही तो उसी संपदा है। वही उसकी धरोहर है। उसी के बल पर तो उसके अहंकार में सजावट है, शृंगार है। वही तो उसका आभूषण है। वही तो है उसके पास, और तो कुछ भी नहीं है। वह शास्त्रों का बोझ ही तो उसे भ्रम दे रहा है--जानने का। लेकिन जानना बड़ी और बात है, जानने का भ्रम और।
अज्ञान से आदमी नहीं भटकता इतना, जीना जानने के भ्रम से भटक जाता है। क्योंकि अज्ञानी कम से कम इतना तो अनुभव करता है कि मुझे पता नहीं। इतनी तो उसमें प्रामाणिकता होती है कि मुझे पता नहीं। लेकिन पंडित में यह प्रामाणिकता भी नहीं होती। पता तो नहीं है, मगर उसे ख्याल होता है मुझे पता है। उसने बिना जाने मान लिया है कि जान लिया। अब कैसे जानेगा? उसके जानने की दीवार बीच में खड़ी हो गयी। ज्ञान से नहीं जाना जाता सत्य, सत्य ध्यान से जाना जाता है। और ध्यान का अर्थ होता है: मन का अतिक्रमण। मनातीत हो जान।
नानक ने उसे अ-मनी दशा कहा है। मन से मुक्त हो जाना। नीचा और ऊंचा, ऐसा
और वैसा, ये सब मन के ही खेल हैं। जहां मन बिलकुल चुप हो गया, जहां एकदम सन्नाटा छा गया, वहां सत्य का अवतरण होता है। सत्यं परम परम सत्य। और अब तुम जानते हो पहली बार विराट को। तब तुम जानते हो पहली बार उसको, जो है। वह निश्चित ही परम है।
परम का अर्थ: उसे जानने वाला सब जान लिया जो जानने योग्य है। परम का अर्थ: उसे जिसने पी लिया, अमृत पी लिया। परम अर्थ: उसने परमात्मा को जान लिया, उसने आत्मा की आत्यंतिक सुगंध पहचान ली। उस सुगंध के जीवन में आ जाते ही क्रांति हो जाती है। उस क्रांति को ही स्वर्ग कहते हैं।
स्वर्ग कोई भौगोलिक अवस्था नहीं है।
सत्येन न स्वर्गाल्लोकाच च्यवन्ते कदाचेन।
जिसने सत्य को जाना, जिसने सत्य को जीया, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। और ऐसे स्वर्ग में, जहां से कोई पतन नहीं होता। जहां से कभी कोई गिरता नहीं।
तुम जिस स्वर्ग की बातें करते हो, वहां से तो लोग गिरते हैं। वहां तो वही भय है; वह तो वही राजनीति है। तुम्हारे पुराण कथाओं से भरे पड़े हुई

हैं। वे सब कथाएं। झूठ इसलिए हैं कि जिस स्वर्ग की बात की गयी हैं, वह भौगोलिक है। और जिस स्वर्ग की बात की गयी है, वह वह स्वर्ग नहीं है जिसकी यह उपनिषद चर्चा कर रहा है। नहीं तो इंद्र को क्या भय हो सकता है? कोई ऋषि, कोई मुनि ध्यान करे, समाधि के निकट पहुंचने लगे, तो इंद्र का आसन क्यों डावांडोल हो जाता है? इंद्र को क्या भय होने लगता है? क्या घबड़ाहट होने लगती है? घबड़ाहट होती है, पुराण कहते हैं, कि कहीं मेरा सिंहासन न छिन जाए। सत्य कहीं छिना है! और जो छिन जाए, वह सत्य नहीं है। जो छिन सकता है, वह छिन ही गया। उसका कोई मूल्य नहीं है, वह दो कौड़ी का है। तुमने तिनके का सहारा पकड़ा है। तुम सोच रहे हो कि तुम बच जाओगे। तुम भी डूबोगे और तुम्हारे साथ तिनका भी डूबेगा। तिनके को पकड़ कर कोई बचा है? मगर कहावत है: डूबते को तिनके का सहारा। आशा लगा रखता है। तिनके ही से आशा लगा लेता है। तिनके को ही पकड़ लेता है। आंख बंद कर लेता है कि दिखाई न पड़े कि तिनका है।
ये तुम्हारे इंद्र तुम्हारी कल्पनाएं हैं। ये तुम्हारे देवी-देवता तुम्हारी कल्पनाएं हैं। यह तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी अधूरी आकांक्षाओं का प्रक्षेपण है। जो तुम वहां नहीं पूरा कर पाए हो--चाहा तो था कर लेना पूरा, मगर नहीं पूरा कर पाए। क्योंकि जिंदगी में सभी इच्छाएं कैसे पूरी हों? इच्छाएं अनंत हैं और जीवन छोटा-सा। यह सत्तर साल की छोटी-सी जिंदगी और इच्छाओं का तो कोई अंत ही नहीं। और एक-एक इच्छा भी दुष्पूर है। और अनंत इच्छाएं! बहुत कुछ अधूरा रह जाता है। सभी कुछ अधूरा रह जाता है। हर आदमी अधूरा ही मर जाता है।--तो अब इस अधूरी इच्छाओं के लिए कुछ तो आशा चाहिए, कि आगे कहीं पूरी हो जाएंगी। स्वर्ग तुम्हारी इन्हीं अधूरी इच्छाओं की आधारशिला पर खड़ा है।
यहां तुमने सुंदर स्त्रियां चाही थीं, वहीं मिलीं। यहां तुमने सुंदर पुरुष चाहे थे, नहीं मिले। यहां सौंदर्य मृगमरीचिका है। दूर से देखो, तो स्त्री सुंदर मालूम होती है, पुरुष सुंदर मालूम होता है, पास आओ और फूल कांटों में बदल जाते हैं, यह समझ में भी नहीं आता! प्यारे-प्यारे ओंठ और कैसे-कैसे कठोर शब्द बोलने लगते हैं! प्यारी-प्यारी आंखें और कैसे दग्ध अंगारे बन जाती है! सुंदर-सुंदर देहें, किस तरह जंजीरें बन जाती हैं! यह तुम सबका अनुभव है। और तब आदमी आशा के फूलों की मालाएं पिरोने लगता है। स्वर्ग में अप्सराएं होंगी--उर्वशी होगी, मेनका होगी--स्वर्ण उनकी काया होगी, कंठ उनके कोकिल-कंठ होंगे, उनके जीवन में सुवास-ही सुवास होगी...पसीना भी नहीं बहता स्वर्ग में अप्सराओं को! अप्सराएं बूढ़ी भी नहीं होती।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था और कहता था कि सदा तुझे प्रेम करूंगा। स्त्रियों को ऐसी बातों पर भरोसा नहीं आता। सुन लेती है, इनकार भी नहीं करतीं--क्योंकि इनकार करने का मन नहीं होता--मगर भरोसा नहीं आता। बहुत बार सुन चुकी तो एक दिन उसने पूछा कि तुमसे सच पूछती हूं, ईमान से कहो, खाओ परमात्मा की कसम, छाती पर हाथ रख कर कहो, सदा मुझे प्रेम करोगे? जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, जीर्ण-जर्जर हो जाऊंगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? जब मैं बीमार हो जाऊंगी, रुग्ण हो जाऊंगी, हड्डी-मांस सूखने लगेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला नसरुद्दीन थोड़ा झिझका। उसने नहीं सोचा था कि बात यहां तक पहुंचेगी। उसने कहा, हां-हां जरूर प्रेम करूंगा! और फिर कुछ सोच कर कहा, लेकिन एक बात बताओ, तुम अपनी मां जैसी तो नहीं मालूम होने लगेगी?
मां जैसी तो मालूम होने ही लगेगी। इतनी शर्त उसने बचा ली, कि इतना भर ख्याल रखना कि मां जैसी मालूम मत होने लगना!
लोग प्रेम में जो बातें कह देते हैं, फिर पीछे पछताते हैं। इस जगत में
धन इकट्ठा हो जाता है, निर्धनता नहीं मिटती। महल बन जाते हैं, मगर मौन सब छीन लेता है। तो स्वर्ग की कल्पना की है। वह स्वर्ग और उपनिषद के ऋषियों का, द्रष्टाओं का स्वर्ग बड़े भिन्न हैं। तुम्हारे पुराण कपोल-कल्पनाएं हैं। कचरा हैं। लेकिन उपनिषद मणि-माणिक्य हैं।
यह सूत्र कोहिनूर जैसा है। यह सूत्र कह रहा है: सत्य में जीना स्वर्ग है। यह बात और हो गयी। इसका भूगोल से नाता न रहा। यह बात आध्यात्मिक हो गयी। इसका बाहर से कोई संबंध न रहा, बात भीतर की ही हो गयी। सत्य में जीना

स्वर्ग है। समाधि मैं जीना स्वर्ग है। मन के पार होना स्वर्ग है। और तुम्हारा स्वर्ग तो मन की ही आकांक्षाएं है, मन की ही एषणाएं है। वह तो हारे-थके मन की ही आखिरी आशा है कि चलो, यह नहीं तो मौत के बाद। चलो, यहां नहीं तो आगे। कहीं न कहीं मिलेगा। और आदमी आशा के बल जीए चला जाता है। हजार तरह के दुख, झेले चला जाता है। पहाड़ जैसे बोझ ढोए चला जाता है। आशा बनी रहती है कि आगे।
तुमने कहावत सुनी है कि आशावादी व्यक्ति जब रेलगाड़ी के पहाड़ों के बीच में खुदे हुए बोगदों में से देखता है, तो उसे दूर उस पर किनारे पर रोशनी दिखाई पड़ती है। और वह चल पड़ता है, मीलों लंबे अंधेरे बोगदे में, इस आशा में कि वह दूर जो रोशनी दिखाई पड़ रही है, अभी नहीं कल, कल नहीं परसों, नहीं तो नरसों...! और इसी आशा में तो हमने अनेक जन्मों की कथा गढ़ ली है। क्योंकि एक जन्म में तो भरोसा नहीं लगता कि यह बोगदा पार होगा, यह अंधेरा पार होगा। तो चौरासी करोड़ योनियों की हमने कल्पना की है। सोचो तुम जरा, चौरासी करोड़ योनियां! इसका मतलब यह है कि कभी न कभी तो यह अंधेरा पार होगा! कभी न कभी तो यह रात कटेगी, सहर होगी, सुबह होगी!
मगर अक्सर यह होता है कि अंधेरा तो कटता नहीं और वह जो प्रकाश बोगदे
के उस किनारे पर दिखाई पड़ता है, वह किसी ट्रेन के आने का प्रकाश सिद्ध होता है। आ तो जाता है, मगर तुमको कुचलता हुआ निकल जाता है। तुम्हारी हड्डी- पसली तोड़ता हुआ निकल जाता है।
तुम्हारी सब आशाएं दुराशाएं सिद्ध होती हैं। तुम्हारी हर आशा हताशा में परिणित हो जाती है। मगर आदमी फिर नयी-नयी आशाएं संजो लेता है, फिर सोचने लगता है, फिर सपने देखने लगता है।
पुराणों में जिन स्वर्गों की चर्चाएं हैं, वे चाहे हिंदुओं के हों, चाहे मुसलमानों के, चाहे ईसाइयों के, यह सिर्फ मनुष्य की एषणाओं की ही विस्तार है। लेकिन उपनिषद जिस स्वर्ग की बात कह रहा है, वह बात ही और। सत्य में जीना स्वर्ग है। और निश्चित ही जिसने सत्य में जीना जान लिया, वहां से कोई कैसे च्युत हो सकता है? उस आलोक से, उस आनंद से, छंद से कोई कैसे नीचे गिर सकता है? वह संगीत मिला एक बार, तो मिला सदा को।
बुद्ध ने कहा है: दुख का प्रारंभ नहीं है, अंत है, और आनंद का प्रारंभ है, अंत नहीं। बहुत गहरी बात कहीं! तुम्हारे दुख का कोई प्रारंभ नहीं है, अनंत काल से तुम दुख भोग रहे हो। प्रारंभ खोजने निकलोगे, मिलेगा नहीं। जैसा खोदते जाओगे, उतना और आगे, और आगे, पता चलेगा कि जड़ें और भी पीछे चली गयी हैं, और भी पीछे चली गयी हैं। दुख का कोई प्रारंभ नहीं है, बुद्ध कहते हैं, लेकिन अंत है। चाहो तो अभी अंत हो जाए। चाहो तो यही अंत हो जाए। इसी क्षण अंत हो जाए। दुख का अंत है, क्योंकि मन के पार होने का उपाय है। बुद्ध ने चार सत्य कहे हैं। पहला सत्य दुख है। अधिकतर लोग तो इसको अंगीकार ही नहीं करते। इसको झुठलाते हैं, छिपाते हैं, दबाते हैं। तुम किसी से पूछो, कैसे हो? वह कहता है: बड़े मजे में हैं। और इसकी आंखों में देखो, इसके चेहरे पर देखो, कहीं कुछ मजा दिखाई पड़ता है! जो देखो वही मुसकरा कर कहता है: प्रभु की बड़ी कृपा है! सब ठीक-ठाक चल रहा है। तुम भी यही कहते हो। कहीं कुछ ठीक-ठाक नहीं चल रहा है! सारी पृथ्वी उदासी से भरी हुई है, दुख से भरी हुई है, नर्क बनी हुई है--और हर आदमी कह रहा है: सब ठीक-ठाक चल रहा है! प्रभु की बड़ी कृपा है! आनंद ही आनंद है! झूठ ही लोग बोल रहे हैं। एक दिखावा है। और दिखावे का भी कारण है। क्या सारे है अपने घाव दूसरों के सामने प्रकट करने से? अपनी मवाद किसी के सामने उघाड़ने से सार क्या है? कौन बंटा लेगा? तो छुपाए ही रखो! मवाद है, घाव हैं, फूल ले जाओ बाजार से खरीद कर, उनके ऊपर फूल सजा दो। लोगों को तो फूल दिखने दो।
तुम भी लोगों को देख कर मुस्कुराते हो, वह भी मुस्कुराते हैं, न तुम्हारे भीतर मुस्कुराहट है, न उनके भीतर मुस्कुराहट है। तुम्हारे भीतर भी आंसू भरे हैं और उनके भीतर भी आंसू भरे हैं। मगर एक चेहरा बना कर रखना पड़ता है। इसको लोग कहते हैं: शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति। एक पाखंड बना कर रखना पड़ता है।
बुद्ध कहते हैं: पहले तो स्वीकार करो कि दुख है। क्योंकि अगर तुम दुख
को स्वीकार ही न करोगे, तो फिर आगे तो यात्रा चलेगी ही नहीं।

फिर दूसरी बात बुद्ध कहते हैं: समझने की कोशिश करो कि दुख के कारण हैं। अकारण तो कोई नहीं होता। मत टालो भाग्य पर! भाग्य तो बहाना है। कारण से बचने का बहाना है। मत कहो विधाता ने लिख दिया है! मत कहो कि किसी और की जिम्मेवारी है। कारण हो तो तुम हो। कारण हैं तो तुम्हारे भीतर हैं, तुम्हारी मूर्च्छा में हैं। अब क्रोध करोगे तो दुख न होगा तो क्या होगा? और लोभ करोगे तो दुख न होगा तो और क्या होगा? दूसरों को दुख दोगे, सताओगे, तो क्या तुम सोचते हो तुम्हारे जीवन में सुख की वीणा बजेगी? तुम जो दूसरों को दोगे, वही तुम पर लौट आएगा। यह जगत तो प्रतिफल करता है। यह जगत तो यूं हैं कि तुम जो इसे देते हो, उसी को हजार गुना करके लौटा देता है। सब तुम पर ही आ जाता है वापिस। जो गङ्ढे तुम औरों के लिए खोदते हो, एक दिन सिद्ध होता है कि तुम्हारे लिए ही, तुम्हारी ही कब्र बन जाती हैं।
तो कारण हैं। लेकिन हम कारणों को भी बचाते हैं। पहले तो हम दुख है, यह मानने को राजी नहीं होते। आने से भी छिपाते हैं, औरों से भी छिपाते हैं। यूं भ्रांति बनाए रखते हैं, ऐसा भरम बनाए रखते हैं कि सब ठीक है। भीतर आग लगती रहती है, ज्वालामुखी उबलता है और बाहर एक मुखौटा ओढ़े रखते हैं। फिर दूसरे अगर यह स्वीकार भी कर लें कि दुख है, तो हम सदा कारण दूसरों पर थोपते हैं। पति अगर दुखी है तो पत्नी के कारण। पत्नी अगर दुखी है तो पति के कारण। बाप अगर दुखी है तो बेटे के कारण। बेटा अगर दुखी है तो बाप के कारण। मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू परीक्षा में असफल हो गया सो घर से भाग गया। अखबारों में विज्ञापन निकलवाएं: तुम्हारी मां दुखी हैं, तुम्हारे पिता दुखी हैं, बेटा घर लौट आओ! तुम्हारे बिना मर जाएंगे। मगर फजलू न लौटा सौ न लौटा। आखिर फजलू की मां की मां ने एक रामबाण विज्ञापन छपाया। कि बेटा अब एकदम आ जाओ! तुम इसी डर से भाग गये हो कि परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए। अब घबड़ाओ मत; तुम्हें डर था कि तुम्हारे पापा मारेंगे-पीटेंगे, तुम्हारे पापा भी अपने डिपार्टमेंट की परीक्षा में असफल हो गये हैं--अब तुम घर आ जाओ! और फजलू उसी दिन घर आ गया।
एक-दूसरे से घबड़ाहट है! एक-दूसरे पर टाले हुए हैं! एक-दूसरे पर हटा रहे हैं!
और जो व्यक्ति कारण दूसरों पर छोड़ देता है, उसने फिर बचाव का उपाय खोज लिया। वह कहने लगा कि मैं करूं तो करूं क्या! समाज बुरा, समाज की व्यवस्था बुरी, यह परिवार का ढांचा बुरा, यह अर्थनीति बुरी, यह राजनीति बुरी। मैं अकेला आदमी इस भवसागर में फंसा हूं! कैसे हो छुटकारा? कूल दिखाई पड़ता नहीं, किनारे का कुछ पता नहीं। और हरेक जान लेने को तत्पर है।
यूं तुम बच जाते हो, मगर यह कुछ बचना न हुआ। यह अपने हाथ से फांसी लगा लेना हुआ। कारण तुम्हारे भीतर हैं।
इसलिए बुद्ध ने दूसरा आर्य-सत्य कहा--पहला: दुख है, और दूसरा कि दुख के कारण हैं, कारण तुम्हारे भीतर हैं। और तीसरा कारणों को काटने के उपाय हैं। हताश मत हो जाना! विधियां हैं, जिनसे कारण उखाड़े जा सकते हैं। एक बार पता चल जाए कि जड़ कहां है, तो गङ्ढे खोदे जा सकते हैं, घास-पात उखाड़ी जा सकती है, काटी जा सकती है। उसी विधि का नाम धर्म है, ध्यान है, योग है, तंत्र हैं। अलग-अलग नाम हैं, मगर प्रक्रिया एक ही है। प्रक्रिया है: किसी भी तरह अपने को मन का साक्षी बना लेना। जैसी ही साक्षी तुम्हारे भीतर हुआ, अतिक्रमण हो जात है। तुम परम अवस्था को उपलब्ध हो गये। और बुद्ध ने कहा: चौथा आर्य सत्य है कि कारण व्यर्थ नहीं हैं और उपाय भी व्यर्थ नहीं जाते, वह अवस्था भी है जहां दुख बिलकुल समाप्त हो जाता है, शून्य हो जाता है। वह परम आनंद की अवस्था भी है। उसका मैं गवाह हूं। बुद्ध ने कहा: उसका में गवाह हूं। मैंने जाना है, इसलिए तुमसे कहता हूं।
सत्य में जो जीएगा, उस जीवन से फिर गिरना असंभव है। सत्य में जो जीएगा,
वह कैसे असत्य में गिर सकता है?
सतां हि सत्य।
और फिर सत्य क्या है? सत्पुरुषों का स्वरूप ही सत्य है। सतां हि सत्य। उनकी जो सत्ता है, वही सत्य है। सत्य कोई सिद्धांत नहीं, कोई निष्कर्ष नहीं, प्रबुद्ध-पुरुषों के भीतर जो आभा है, जो उनका अस्तित्व है, जो उनका स्वरूप है, उनके भीतर जो कलकल नाद हो रहा है, उनके चारों तरफ जो किरणें

विर्कीण हो रही हैं, जो गंध उड़ चली है, वही सत्य है। तो सत्य कुछ ऐसा नहीं है जैसे गणित के सत्य होते हैं कि दो और चार। सत्य कुछ ऐसा नहीं है जैसे विज्ञान के सत्य होते हैं, जिनको प्रयोगशालाओं में प्रयोग करके पाया जाता है। सत्य तुम्हारे जीवन की आत्यंतिक अनुभूति है। तुम क्या हो, इसकी अनुभूति सत्य है। तुम्हारा स्वरूप क्या है, तुम्हारा वास्तविक होना क्या है, इस सत्य को न वेदों से पाया जा सकता है, न कुरानों से, न बाइबिलों से। इसे पाना हो तो अपने भीतर ही उस आखिरी गहराई में डुबकी मारनी जरूरी है। जिन खोजा तिन पाइयां। जिन्होंने खोजा, जरूर पाया है।
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ। कबीर ठीक कहते हैं। मगर बड़ी गहराई में बैठना होता है, ताकि तुम अपनी आधारभूमि को खोज लो, अपने स्वरूप को खोज लो। और तुम्हारे स्वरूप पर बहुत-सा कचरा लाद दिया है दूसरों ने, उस सबको काटना पड़ेगा, हटाना पड़ेगा। न-मालूम कितने पत्थर तुम्हारे ऊपर रख दिये हैं! तुम्हारा स्वरूप तो न-मालूम कहां खो गया है, पत्थर पर पत्थर रख दिये हैं। कि तुम हिंदू हो! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि जल्दी से इसका यज्ञोपवीत करो! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि इसका खतना करो, इसको मुसलमान बनाओ! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि इसको बपतिस्मा करो, इसको ईसाई बनाओ। रखने लगे लोग पत्थर! चढ़ाने लगे चट्टानें तुम्हारे ऊपर! तुमसे कहने लगे, तुम ईसाई हो। जब भी कोई बच्चा पैदा होता है, न तो ईसाई होता है, न हिंदू होता है, न जैन होता है। बच्चा तो सिर्फ एक शुद्ध चेतना, एक कोरी किताब की तरह पैदा हाता है। मगर लोग बैठे हैं स्याही में अपनी-अपनी कलमें डुबोए हुए कि इधर बच्चा पैदा हो कि वे उसकी कोरी किताब पर लिखावट शुरू करें! कोई लिख देगा गीता को, कोई लिख देगा कुरान को, कोई लिख देगा बाइबिल को। कर दी खराब उसकी कोरी किताब! उसे मौका ही न दिया कि वह अपने पहचान लेता। इसके पहले कि वह अपने को पहचानता, तुमने उसके ऊपर धारणाएं थोप दीं। कि तुम भारतीय हो, कि तुम चीनी हो, कि तुम जर्मन हो। तुम लादने लगे, कि तुम ब्राह्मण हो, कि तुम क्षत्रिय हो, कि तुम वैश्य हो, कि शूद्र हो। और फिर वर्गों में वर्ग बंटे हुए हैं। शूद्र भी सभी अपने को समान नहीं मानते। शूद्रों में भी नीचे शूद्र हैं और ऊंचे शूद्र हैं।
मैं एक चमारों की सभा में बोलने गया। रैदास की वह जयंती मनाते थे, तो उन्होंने मुझसे कहा कि आप आएं, रैदास पर कुछ कहें। तो मैं गया। वहां देखा कि बस थोड़े-से चमार इकट्ठे हैं। मैंने कहा कि इस गांव में इतने शूद्र हैं-- भंगी हैं, कुम्हार हैं--वे सब कहां हैं? चमारों ने कहा, क्या आप कहते हैं! हम भंगियों के साथ बैठें! मैंने कहा, फिर मैंने गलती की जो मैं तुम्हारे साथ बैठा। मुझे यह पता नहीं था कि तुम्हारे भीतर भी वर्ग हैं, श्रेणियां हैं। चमार अपने को ऊंचा मानते हैं भंगी से। भंगी के साथ कैसे बैठ सकता है। उन्होंने ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया था, मगर ब्राह्मण कैसे आएं? मैंने उनसे पूछा कि तुमने मुझे किसलिए बुलाया? उन्होंने कहा, हमने आपको इसलिए बुलाया कि आपको सुनने वाले इतने लोग हैं, वे सब कम से कम आएंगे, मगर वे कोई नहीं आए। मैंने कहा, वे तुम्हारे साथ कैसे बैठें? जब तुम भंगियों के साथ बैठने को राजी नहीं हो, तो हद हो गयी, यह मुझे पता नहीं था अब तक कि शूद्रों में भी श्रेणियां हैं! उसमें भी ऊंचे शूद्र हैं, नीचे शूद्र हैं।
आदमी सिर्फ आदमी है। क्यों उस पर भूगोल लादते हो? क्यों इतिहास लादते हो? क्यों उस पर जमाने भर की गंदगियां लादते हो? मगर ये लाद दी गयी हैं। और जिस व्यक्ति को खोजना हो, अपने स्वरूप को, उसे इस सारी गंदगी को काटना होगा। इस कूड़े-करकट को अलग करना होगा--इसको आग लगा देनी होगी! इतना साहस न हो, तो कोई सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है।
सतां हि सत्य। तुम्हारा स्वरूप सत्य है। और स्वरूप के ऊपर बहुत पर्तें जम गयी हैं, बहुत धूल जम गयी है। दर्पण पर इतनी धूल जम गयी है कि दर्पण का पता ही नहीं चलता। यह सारी दर्पण साफ करनी है।
कष्टपूर्ण है।
क्योंकि किसी से भी कहो कि तुम्हारा हिंदू होना बाधा है स्वरूप को जानने में, या मुसलमान होना, या जैन होना, वह झगड़ा करने को तैयार है। वह मरने-मारने को तैयार है। क्योंकि वह यह नहीं सोचता कि ये थोपी गयी चीजें हैं, यह उसका स्वरूप नहीं है, ये विकृतियां हैं, यह धार्मिकता नहीं है।

धार्मिक व्यक्ति सिर्फ धार्मिक होता है। उसमें कोई विशेषण नहीं होते। धार्मिक व्यक्ति की कोई राष्ट्रीयता नहीं होती। धार्मिक व्यक्ति न गोरा मानता अपने को, न काला मानता। क्योंकि वह अपने को शरीर ही नहीं मानता। वह अपने को चेतना मानता है। धार्मिक व्यक्ति न अपने को पुरुष समझता, न स्त्री। क्योंकि चेतना कहीं स्त्री और पुरुष होती है! आत्मा भी वहीं स्त्री और पुरुष होती है! मगर क्या-क्या पागलपन हैं! जैनों की धारणा है कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं। मोक्ष क्या देह का होता है? देह तो यहीं पड़ी रह जाती है--पुरुष की हो कि स्त्री की हो। मोक्ष अगर होगा तो आत्मा का होगा। और मोक्ष अगर होगा तो साक्षीभाव में होगा। तो पुरुष की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ पुरुष का शरीर है और स्त्री की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ स्त्री का शरीर है। मगर आत्मा थोड़े ही स्त्री है! आत्मा तो साक्षी है। दोनों की। एक सी साक्षी है। हां, गोरे आदमी की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ गोरी चमड़ी है काले आदमी की देखेगी कि मेरे चारों तरफ काली चमड़ी है, लेकिन आत्मा चमड़ी नहीं है। लेकिन हम बस न-मालूम किन-किन बातों में आत्मा को गंवा बैठे हैं! धन गंवा दिया है, कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लिये हैं। स्वरूप को खो बैठे हैं, शास्त्रों से लद गये हैं। सत्य का तो कोई बोध नहीं है, लेकिन सिद्धांतों में बड़े हम प्रवीण हो गये हैं।
सतां हि सत्य।
और सत्य है तुम्हारा स्वरूप।
तस्मात्सत्ये रमन्ते।
इसलिए रमो सत्य में। इसलिए जीओ सत्य में। और सत्य में जो जीता है, वही संत है, इसलिए मैं तुमसे यह कहना चहता हूं कि अगर संत कहे कि मैं हिंदू हूं, तो समझ लेना कि संत नहीं है। अगर संत कहे कि मैं जैन हूं, तो समझ लेना कि संत नहीं है। संत तो वही है जो सत्य में जीता है। और सत्य न हिंदू है, न मुसलमान है; न जैन है, न ईसाई है। सत्य न तो मंदिरों में है, न गिरजों में, न गुरुद्वारों में। सत्य तुम्हारे भीतर है। सत्य आत्मान्वेषण है।
यह सूत्र प्यारा है! यह सूत्र जीने योग्य है!

मेरा स्वर्णिम भारत-21

गुरु तीर्थ हैं
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #7)

पहला प्रश्नः ओशो,
बलं वाव विज्ञानाद् भूयः;
अपि ह शतं विज्ञानवतां
एको बलवान आकंपयते।
स यदा बली भवति, अथोत्थाता भवति, उत्तिष्ठन परिचारिता भवति,
परिचरन उपसत्ता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति,
श्रोता भवति, मन्ता भवति,
बुद्धा भवति, कत्र्ता भवति, विज्ञाता भवति।।
विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, क्योंकि एक बलवान मनुष्य सौ विद्वानों को डराता है। बलवान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है; उठने पर वह गुरु की सेवा करता है; सेवा करने से वह गुरु के पास बैठने लायक बनता है; पास बैठने से द्रष्टा बनता है, श्रोता बनता है, मनन करने वाला बनता है, बुद्ध बनता है, कर्ता बनता है, विज्ञानी बनता है।
ओशा, छांदोग्य उपनिषद के इस अजीब से सूत्र का आशय क्या है, यह हमें विशद रूप से समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद!
यह सूत्र निश्चय ही अजीब सा मालूम होता है, अजीब है नहीं। है तो बहुत प्यारा, है तो बहुत अनूठा, अद्वितीय। छांदोग्य उपनिषद का जैसे सारा छंद इसमें समा गया है। जैसे सारा, हजार-हजार फूलों से निचोड़ कर कोई इत्र इकट्ठा करे, ऐसा यह सूत्र है। पर अजीब सा लगेगा, क्योंकि सत्य भाषा में आते-आते अजीब सा ही हो जाता है। और हमारे पास कोई सत्य का अनुभव नहीं हो, तो शब्द ही हमारे हाथ लगते हैं। और शब्दों में बड़ा खतरा है। शब्द से ज्यादा खतरनाक कोई और चीज नहीं। समझे तो पहुंचे; चूके तो गिरे। खड्ग की धार पर चलने जैसा है।
तुम्हारी बात मैं समझा सहजानंद! क्योंकि सूत्र शुरू होता हैः बलं वाव विज्ञानाद् भूयः--विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। और सूत्र अंत होता हैः विज्ञाता भवति--विज्ञानी बनता है। विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, ऐसा प्रारंभ; फिर बल की महिमा और चर्चा। और अंततः बल लाता कहां है? विज्ञाता बनाता है! सो तुम उलझे होओगे। सोचा होगा, यह कैसी बात!
फिर और भी बहुत बातें हैं, जो चिंता पैदा करें।
"क्योंकि एक बलवान मनुष्य सौ विद्वानों को डराता है।"
विद्वान तो हम उसे कहते हैं, जो जानता है। और बलवान, वह तो कोई बड़ी महत्ता की बात नहीं। कोई गामा पहलवान को बुद्ध के साथ तुलना करने बैठ जाए! तो यूं तो ठीक है कि एक गामा पहलवान सौ बुद्धों को हरा दे। मगर वह हराना ऐसे ही होगा, जैसे एक चट्टान गुलाब के फूल को दबा दे। इससे चट्टान कुछ गुलाब का फूल नहीं हो जाती, और न ही गुलाब के फूल पर जीत जाती है।
फिर बल की महिमा छांदोग्य उपनिषद गाता चलता हैः "बलवान होने पर मनुष्य उठ कर खड़ा होता है। उठने पर गुरु की सेवा। सेवा से गुरु के पास बैठने की योग्यता। पास बैठने से द्रष्टा बनता है।" तब एक मोड़ आया। चले थे विज्ञान के विपरीत बल की प्रशंसा में, और बात कुछ और होने लगी! "द्रष्टा बनता, श्रोता बनता, मनन करने वाला बनता, बुद्ध बनता, कर्ता बनता"--और तब वर्तुल पूरा होता है कि--"बलवान विज्ञानी बनता है।"
तो स्वभावतः लगेगा कि बात बेबूझ है। तर्क से बेबूझ लगेगी। तर्क कुछ
भी सुलझाता नहीं, उलझाता है। तर्क को थोड़ा हटा कर सहानुभूति से इस सूत्र को समझने की कोशिश करो। एक-एक शब्द को बहुत ध्यानपूर्वक लेना, क्योंकि बारीक भेद हैं, जो ऊपर से दिखाई नहीं पड़ते। और इसलिए सदियों-सदियों तक भूलें चलती रहती हैं।

विज्ञान और विज्ञाता एक सा अर्थ देते मालूम होते हैं, मगर उनमें एक सा अर्थ नहीं है, विपरीत अर्थ है। विज्ञान है बहिर्यात्रा, और विज्ञाता होना है अंतर्यात्रा। विज्ञान का अर्थ है वस्तु को जानना, और विज्ञाता का अर्थ है जानने वाले को जानना!
विज्ञान तो पदार्थ का होता है; और विज्ञाता होना आत्मबोध है, परमात्म-अनुभव है, सत्य-साक्षात है। इसलिए विज्ञान और विज्ञाता शब्द को सबसे पहले स्पष्ट अलग-अलग कर लो। एक ही धातु से बनते हैं दोनों। भाषाकोश में एक ही अर्थ है दोनों का। इसलिए भूल हो सकती है। लेकिन यह सूत्र जिन्होंने कहा होगा, वे कुछ भाषा के जानकार ही नहीं; अनुभव, रससिक्त, उस परम विज्ञान की, विज्ञाता की अवस्था में रहे हुए व्यक्ति रहे होंगे।
तो पहला भेदः विज्ञान अर्थात साइंस, और विज्ञाता अर्थात धर्म। विज्ञान विचार पर निर्भर होता है, और विज्ञाता निर्विचार पर। विज्ञान में सोचना होता है; विज्ञाता होने में सोचने का अतिक्रमण करना होता है।
जब तक सोच-विचार है, तब तक मन में उपद्रव है, तब तक झंझावात, आंधियां, तूफान; नाव डांवाडोल! किनारा मिलेगा कि नहीं मिलेगा! कि मझधार में ही डूब जाना होगा! यूं ही चिंता में क्षण बीतते। ऐसे ही संताप में समय गुजरता। अब डूबे, तब डूबे की हालत होती।
विज्ञाता का अर्थ है, किनारा मिल गया, आंधियां समाप्त हुईं। आंधियां
ही नहीं, अब तो झील पर लहरें भी नहीं उठतीं। अब तो झील दर्पण बनी। ऐसी शांत, ऐसी मौन, कि सारा आकाश वैसा ही प्रतिफलित होता है जैसा है।
विज्ञाता पंडित नहीं है, प्रबुद्ध है। विज्ञानी पंडित है, प्रबुद्ध नहीं। अल्बर्ट आइंस्टीन और गौतम बुद्ध का जो भेद है...। यूं तो अल्बर्ट आइंस्टीन पदार्थ के संबंध में जितना जानता है, गौतम बुद्ध नहीं जानते। अगर पदार्थ के ज्ञान के संबंध में ही परीक्षण होना हो, तो आइंस्टीन ही जीतेगा। लेकिन अगर स्वयं के बोध के संबंध में कोई तुलना करनी हो, तो आइंस्टीन कहीं भी तराजू पर नहीं बैठेगा। और अंततः वही निर्णायक है।
मरते समय, आइंस्टीन ने दो दिन पूर्व ही कहा कि मेरा जीवन अकारथ गया।
मैं व्यर्थ में उलझा रहा। मैंने उसे नहीं जाना, जिसे जानना था।
क्या जानना था? जानने वाले को पहले जानना था। अपने को ही न जाना, और सब जानते रहे! घर में ही अंधेरा रहा, और सारी दुनिया में दीवाली मनाते फिरे! घर में ही उत्सव न हुआ, और बाहर गुलाल उड़ाई, रंग उड़ाए! सब थोथा हो गया।
जब तक भीतर उत्सव न हो, तब तक बाहर के वसंत का क्या मूल्य है! और जब तक भीतर के फूल न खिलें, तब तक आए मधुमास कि जाए, सब बराबर है। फूल खिलें कि झरें, क्या करोगे! भीतर ही प्रकाश न हो, तो सूरज ऊगे कि डूबे, तुम तो अंधेरे में ही हो। ऊगता है सूरज तब भी, डूबता है तब भी! अंधेरी रात, तो भी अमावस। पूर्णिमा की रात, तो भी अमावस। तुम्हारे भीतर तो अमावस ही बनी रहती!
और मृत्यु के क्षण में अल्बर्ट आइंस्टीन को यह दिखाई पड़ना शुरू हुआ
कि काश, मैंने इतनी ही ऊर्जा अपने को जानने में लगाई होती, तो आज मृत्यु के पार भी मेरे भीतर कुछ है, शायद उसे पहचान लिया होता। आज मृत्यु का भय न पकड़ता। आज मृत्यु का अतिक्रमण करने की मेरी क्षमता होती!
मरते समय एक ही भाव अल्बर्ट आइंस्टीन को था कि अगर फिर कभी जीवन मिले,
तो उस सारे जीवन को अब धर्म की, रहस्य की खोज में लगा दूंगा। और सबसे बड़ा रहस्यों का रहस्य स्वयं के भीतर है। होगा भी। होना भी चाहिए। जानने वाले को जानने में ही परम रहस्य है। इस भेद को तुम ठीक से समझ लो, तो सूत्र साफ होना शुरू हो जाएगा।
"बलं वाव विज्ञानाद् भूयः।"
ठीक कहता है छांदोग्य उपनिषद का ऋषि, "विज्ञान से बल श्रेष्ठ है।" विज्ञान, पदार्थ की जानकारी। बल किसे कह रहा है वह? बल से भी तुम किसी पहलवान के बल को मत समझ लेना। बल से भी उपनिषद के ऋषि का अर्थ होता है अंतर-ऊर्जा।
साधारण आदमी ऐसा है, जैसे छेद वाला घड़ा। कितना ही भरो, भरता नहीं। भरो,
और खाली हो जाता है। कुछ रुकता नहीं, कुछ टिकता नहीं।
एक सूफी फकीर के पास एक युवक ने आकर कहा कि बहुत-बहुत संतों के पास गया हूं, लेकिन जिसकी तलाश है वह नहीं मिलता। अब आखिरी आपके द्वार पर दस्तक दी

है। बस, हताश हो गया हूं! बहुत लोगों ने आपकी तरफ इशारा किया। बड़ी लंबी यात्रा करके, बड़े दूर देश से आता हूं। निराश न भेज देना। और यह मेरा अंतिम प्रयास है। कुछ होना हो तो हो जाए, न होना हो तो न हो। बस, मैं हार गया हूं। उस फकीर ने कहा, जरूर होगा। क्यों नहीं होगा! लेकिन एक छोटी सी शर्त पूरी करनी पड़ेगी। शर्त बहुत छोटी है।
उस युवक ने कहा, मैंने बड़ी-बड़ी शर्तें पूरी कीं। किसी ने योग सिखाया, सिर के बल खड़ा किया, तो खड़ा रहा। किसी ने मंत्र पढ़वाए, तो वर्षों मंत्र दोहराता रहा। किसी ने उपवास करवाए, तो उपवास किए, भूखा मरा। जिसने जो कहा, वही किया। ऐसी कौन सी शर्त होगी जो मैंने पूरी नहीं की! तुम भी अपनी छोटी शर्त कह दो। जरूर पूरी करूंगा।
उस फकीर ने कहा, ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं। ये मुझे नहीं करनी हैं। बहुत छोटी शर्त है। अभी मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा हूं। बस, तू इतना करना कि जब मैं पानी भरूं, तो बीच में बोलना मत, चुपचाप खड़े रहना। इतना अगर संयम तूने रख लिया, तो बस बहुत है। फिर आगे का काम मैं सम्हाल लूंगा। इतना तू कर ले।
उस युवक ने सोचा कि मैं भी किस आदमी के पास आ गया हूं! बड़े तंत्र साधे, मंत्र साधे, यंत्र साधे। और यह पागल मालूम होता है। यह कुएं पर पानी भरेगा, तो भर मजे से! मेरा क्या बनता-बिगड़ता है! मैं क्यों बोलूंगा?
लेकिन उसे पता न था। कुएं पर पानी भरना तो दूर, जब फकीर ने अपनी बालटी उठाई और रस्सी उठाई, तभी उसके भीतर बड़े झंझावात उठने लगे। लेकिन अपने को सम्हाला। याद रखा कि उसने कहा है कि बोलना ही मत। मगर न रहा जाए!
फिर भी अपने पर संयम रखा। पुराना संयमी था। लंबा अभ्यासी था। अपनी जबान को कस कर पकड़े रहा। ओंठों को बंद रखा। इधर-उधर देखा, कि देखो ही मत। न देखोगे, न प्रश्न उठेगा। और थोड़ी ही देर की बात है।
कुएं पर फकीर पहुंचा। उसने बालटी में रस्सी बांधी। युवक यहां-वहां देखे। फकीर ने कहा, यहां-वहां देखने की जरूरत नहीं। जो मैं कर रहा हूं उसको देख और चुपचाप खड़ा रह। बोलना मत। प्रश्न उठाना मत। इतनी शर्त तू पूरी कर देना, बाकी मैं सब कर लूंगा।
युवक को देखना पड़ा। मगर उसकी बेचैनी तुम नहीं समझ सकते। उसकी मुसीबत तुम नहीं समझ सकते। जो देख रहा था, उसे देख कर बिना बोले रहा न जाता था। फकीर ने रस्सी बांधी। बालटी कुएं में डाली। बड़ा हिलाया-डुलाया बालटी को। बड़ा शोरगुल मचाया कुएं में। पानी में डूबी रही बालटी तो भरी हुई मालूम पड़ी, फिर खींची तो खाली की खाली आई! फिर दुबारा डाली। संयम टूटने लगा युवक का। जब तीसरी बार बालटी डाली, युवक ने कहा, ठहरो! भाड़ में गया ब्रह्मज्ञान। इस बालटी में पेंदी ही नहीं है, और तुम पानी भरने चले हो! आखिर संयम की भी एक हद्द होती है! कब तक साधूं? और यह संयम तो ऐसा है कि जन्म-जन्म बीत जाएंगे, पानी भरने वाला नहीं। यह बालटी खाली रहने वाली है। और तुमने मुझसे वचन लिया है कि जब तक पानी न भर लूं, बोलना मत। मैं तो बोलूंगा। और तुमसे कहे देता हूं कि तुमसे क्या खाक मुझे मिलेगा! अभी तुम्हें खुद ही यह पता नहीं है कि बिना पेंदी की बालटी में पानी भरने चले हो! तुम क्या मुझे ब्रह्मज्ञान दोगे!
फकीर ने कहा, बात खतम हो गई। नाता-रिश्ता टूट गया। शर्त ही खतम हो गई।
जब तू छोटा सा भी काम पूरा न कर सका...। अरे बस, यह आखिरी बार था। तीन बार का मैंने तय किया था। मगर तू चूक गया। तीन ही बार पूरे न हो पाए और तूने संयम छोड़ दिया। रास्ते पर लग अपने! ऐसे आदमी से क्या होगा जिसमें इतना धीरज नहीं! भाग। यह तो मुझे भी पता है कि बालटी में पेंदी नहीं है। मैं कोई अंधा हूं! बालटी में पानी नहीं भरेगा, यह भी मुझे पता है। यह तो तेरे धीरज की परीक्षा थी। मगर तू असफल हो गया। अब मैं जानता हूं कि क्यों तू अब तक हताश है। तू सदा हताश रहेगा। एक छोटा सा काम न कर सका! भाग जा। अब यह शक्ल मुझे मत दिखा।
युवक चला तो, लेकिन अब बड़ी बेचैनी में पड़ गया। बात तो ठीक थी। फकीर पागल नहीं था। कुछ बेबूझ था। सो फकीर सदा हुए हैं। फकीर और बेबूझ न हो, तो क्या खाक फकीर! फकीर और कुछ रहस्यपूर्ण न हो, तो क्या खाक फकीर! पंडित होते

हैं तर्क-शुद्ध; फकीर तो तर्क-शुद्ध नहीं होते, रहस्यमय होते हैं; पहेली की तरह होते हैं।
मैंने भी क्या चूक कर दी! जरा सी देर और रुक जाता; जरा सी देर की बात थी! और पता नहीं यह आदमी क्या जानता हो! जानता जरूर होगा। क्योंकि ऐसी परीक्षा मेरी किसी ने कभी ली भी न थी। रात भर सो न सका। सुबह ही उठ कर पहुंच गया। अंधेरे-अंधेरे पहुंच गया। फकीर के द्वार पर सिर पटक कर पड़ रहा और कहा कि मैं हटूंगा नहीं यहां से। मुझसे भूल हो गई, मुझे क्षमा कर दो। एक अवसर और दो।
तो फकीर ने कहा, क्या भूल हो गई? उसने कहा, यही कि मुझे क्या लेना था! दिखता था मुझे कि बिना पेंदी की बालटी में पानी भरेगा नहीं। मुझे बोलना नहीं था। चुप खड़ा रहता। वायदा किया था, पूरा करना था। मैं वायदे से च्युत हुआ।
फकीर ने कहा, अगर इतना तुझे दिखाई पड़ गया कि बिना पेंदी की बालटी में पानी नहीं भरता, तो मैं तुझसे यह कहना चाहता हूं कि तेरे भीतर भी पेंदी नहीं है, इसलिए ऊर्जा इकट्ठी नहीं होती। ऊर्जा इकट्ठी न हो, तो तू कैसे ब्रह्म को जानेगा? ब्रह्म को जानने के लिए ऊर्जा चाहिए! ऐसी ऊर्जा कि ऊपर से बह उठे! अतिरेक चाहिए।
ऊर्जा के अतिरेक को बल कहा है छांदोग्य उपनिषद ने। ऐसी ऊर्जा चाहिए
कि तुम सम्हाल न सको; तुम्हारे ऊपर से बहने लगे। इतनी ही ऊर्जा हो, तो ही सत्य को जाना जा सकता है। निर्वीर्य सत्य को नहीं जान सकते। तुमने कभी सुना न होगा कि कोई नपुंसक, और ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुआ हो! वीर्यवान, ऊर्जा से भरे हुए लोग...।
वृक्ष पर फूल कब खिलते हैं? जब वृक्ष के पास इतनी ऊर्जा होती है कि अब उमंग में लुटा सकता है, तब फूल खिलते हैं। अगर वृक्ष को ठीक खाद न मिले, ठीक जल न मिले, रोशनी न मिले, फूल न आएंगे। फूल तो विलास है, वैभव है, ऐश्वर्य है। और इसलिए मुझे ईश्वर शब्द प्यारा है। ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से ही बना है। ईश्वर को वे ही लोग जान पाते हैं, जिनके भीतर इतनी ऊर्जा होती है कि जैसे वृक्षों की ऊर्जा फूल बन जाती है। ऊर्जा जब न्यूनतम होगी, तो फूल तो दूर, पत्ते भी मुश्किल से पैदा होंगे। फूल तो बहुत दूर, पत्ते भी कुम्हलाए-कुम्हलाए होंगे। ऊर्जा अतिरेक होनी चाहिए।
पश्चिम के बहुत बड़े रहस्यवादी कवि विलियम ब्लैक का वचन महत्वपूर्ण है; उपनिषद के सूत्रों जैसा है। विलियम ब्लैक आदमी था भी कि उसे कवि नहीं, ऋषि ही कहना चाहिए। उसका सूत्र हैः एनर्जी इ.ज डिलाइट--ऊर्जा ही आनंद है। पते की बात कही। ऊर्जा ही आनंद है। ऊर्जा की कमी ही दुख है। ऊर्जा की दीनता और क्षीणता ही पीड़ा है, नर्क है। क्योंकि फूल खिलते नहीं, सुगंध बिखरती नहीं। जैसे दीए में तेल चुक जाए, तो बाती बुझ जाए। दीए में तेल चाहिए, बाती चाहिए, तो ज्योति जले। और जितना तेल हो, उतनी ही प्रगाढ़ता से ज्योति जले।
और तुमने एक खूबी की बात देखीः हवा आती, अंधड़ आता, छोटे-मोटे दीए बुझ जाते हैं; जंगल में लगी आग और भी धू-धू करके जल उठती है। छोटे दीए बुझ जाते हैं; हवा का झोंका आया, कि गए! लेकिन बड़ी आग और बड़ी हो जाती है! तुम्हारे भीतर ऊर्जा हो, तो परमात्मा की ऊर्जा भी तुम्हारी ऊर्जा में संयुक्त हो जाती है। तुम्हारे जीवन में यूं आग लग जाती है, जैसे जंगल में आग लगी हो। छोटा-मोटा दीया हो, तो जरा सा हवा का झोंका और उसे बुझा जाता है। इसे स्मरण रखना। क्षुद्र ऊर्जा से नहीं चलेगा; विराट ऊर्जा चाहिए। आकाश की यात्रा पर निकले हो, ईंधन तो चाहिए ही चाहिए। पंखों में बल चाहिए।
इसलिए छांदोग्य ठीक कहता हैः "बलं वाव विज्ञानाद् भूयः। विज्ञान से
बल श्रेष्ठ है।"
क्या करोगे जान कर गणित, भूगोल, इतिहास? क्या करोगे जान कर भौतिकी, रसायन? इससे ज्यादा श्रेष्ठ है अपनी जीवन-ऊर्जा को संगृहीत करना; जीवन-ऊर्जा को ऐसे संगृहीत करना कि तुम एक सरोवर हो जाओ, लबालब भरे हुए। तुममें कोई छिद्र न हो; जिससे ऊर्जा बहे न। तुम्हारा घड़ा जब पूरा भरा हो, ऐश्वर्य से भरा हो, तो ईश्वर को जानने की क्षमता है।

मेरी बात लोगों को अखरती है, क्योंकि लोग समझते नहीं। लेकिन मैं तुमसे फिर दोहरा कर कहना चाहता हूं कि ईश्वर को जानना इस जगत में सबसे बड़ा विलास है। यह धन का विलास कुछ भी नहीं। यह पद का विलास कुछ भी नहीं। ईश्वर को जानना सबसे बड़ा विलास है, क्योंकि वह परम ऐश्वर्य की अनुभूति है। और उस परम ऐश्वर्य की अनुभूति के लिए पहले तुम्हें ऊर्जा को बचाना होगा, संगृहीत करना होगा।
और तुम व्यर्थ गंवा रहे हो! तुम्हारी निन्यानबे प्रतिशत ऊर्जा कचरेघर में जा रही है। फूल उगें तो कैसे उगें? ज्योति जगे तो कैसे जगे? नृत्य हो तो कहां से हो? थके-मांदे तुम क्या नाचोगे? टूटे-फूटे तुम क्या नाचोगे? और जब नाच नहीं पाते, तो बहाने खोजते हो। कहते हो, आंगन टेढ़ा! नाच न आवे आंगन टेढ़ा! अब आंगन के टेढ़े होने से कुछ नाचने में बाधा पड़ सकती है? अरे, जिसको नाचना है, आंगन टेढ़ा हो कि सीधा हो, नाचेगा। अगर नाच है, तो आंगन को ही सीधा होना पड़ेगा। नाचने वाले की ऊर्जा आंगन को सीधा कर देगी। आंगन का तिरछा होना कहीं नाचने वाले को रोक सकता है? लेकिन क्या-क्या बहाने हम खोजते हैं!
ऊर्जा की कमी है; पूछते फिरते हैं कि जीवन में दुख क्यों है? दुख का कारण सिर्फ इतना है कि सुख होता है ऊर्जा के अतिरेक से; महाअतिरेक से आनंद होता है। और तुम्हारे जीवन में बूंद-बूंद कर सब चुका जा रहा है। और ख्याल रखना, बूंद-बूंद गिरता है, लेकिन गागर ही नहीं, सागर भी खाली हो जाता है। बूंद-बूंद गिरता रहे, तुमसे अलग होता रहे; बूंद-बूंद टपकती रहे, तो गागर तो खाली होगी ही, सागर भी खाली हो जाता है।
और तुम किस-किस तरह से अपनी ऊर्जा को व्यर्थ कर रहे हो! तुम्हारे पास जितनी इंद्रियां हैं, उन सबसे तुम दो तरह के काम ले सकते हो। एक तो ऊर्जा को भीतर ले जाने का; और दूसरा ऊर्जा को बाहर फेंकने का। यही अंतर्मुखी और बहिर्मुखी का भेद है। बहिर्मुखी मूढ़ है।
दरवाजा तो एक ही होता है। उसी दरवाजे पर एक तरफ लिखा होता हैः प्रवेश, एन्टें्रस; उसी दरवाजे पर दूसरी तरफ लिखा होता हैः एक्झिट। उसी से तुम भीतर आते, उसी से बाहर जाते। कोई दो दरवाजों की जरूरत नहीं होती। एक ही दरवाजा काफी होता है। तुम्हारी आंख से तुम्हारे देखने की ऊर्जा बाहर भी जाती है और भीतर भी आती है। जो समझदार है, वह आंख से ऊर्जा को इकट्ठा करता है। और जो नासमझ है, वह गंवाता है। जो नासमझ है, आंख उसके लिए छेद हो जाती है। और जो समझदार है, आंख उसके लिए संग्राहक हो जाती है।
बुद्ध ने कहा है, राह पर चलो तो चार कदम से ज्यादा मत देखना।
क्यों? क्योंकि ज्यादा की क्या जरूरत है! चलना है, तो चार कदम देखना पर्याप्त है। जब चार कदम चल लोगे, तो चार कदम आगे दिखाई पड़ने लगेगा। चार कदम देखते-देखते तो हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाएगी।
लेकिन तुम? चार कदम छोड़ कर सब देखते हो! वे चार कदम भर नहीं दिखते, जो चलने हैं। दीवाल पर लिखा है, डोंगरे का बालामृत; पढ़ो! इधर फिल्म का पोस्टर लगा है; पढ़ो! इधर कोई खोंमचे वाला खड़ा है। उधर कोई स्त्री गुजर गई। इधर किसी छैल-छबीले ने कोई फिल्मी धुन छेड़ दी। क्या-क्या हो रहा है चारों तरफ! तुम करो भी क्या! आंखें भागी फिर रही हैं; सब तरफ भटक रही हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आंख से मनुष्य की अस्सी प्रतिशत ऊर्जा बाहर जाती है।
फिर कान भी वही कर रहे हैं। तुम क्या सुनते हो? गलत हो तो जल्दी सुनते हो, ठीक हो तो सुनते ही नहीं। अरे, ठीक में क्या रखा है! ठीक में कोई समाचार होता है! गलत में समाचार होता है। किसकी स्त्री किसके साथ भाग गई, इसमें कुछ समाचार होता है। मजा आ जाता है! पास सरक आते हैं लोग, जब ऐसी बातें होने लगती हैं। गुफ्तगू होने लगती है। फुसफुसा कर बातें करने लगते हैं। और जब दो आदमी फुसफुसा कर बातें करें, तो जितने आदमी हैं, सब सुनने लगते हैं! क्योंकि जब बात फुसफुसा कर हो रही है, तो जरा गहरी हो रही है। कोई बात गहरी हो रही है!
जिस बात को सबको सुनाना हो, फुसफुसा कर कहना; किसी के कान में कह देना।
और उससे यह भी कह देना कि भैया, किसी को बताना मत; कि कसम है तुम्हें मेरी, अगर किसी को बताओ। बस वह बात पूरे गांव में पहुंच जाएगी। वह हरेक के कान में पहुंच जाएगी!

कचरा सुन रहे हो। कचरा देख रहे हो। कचरा पढ़ रहे हो। और फिर कहते हो, दुख क्यों है? कचरा खा रहे हो। कचरा पी रहे हो। तुमसे शुद्ध जल न पीया जाएगा, कोकाकोला चाहिए! अब यह कभी सोचोगे ही नहीं, यह कोकाकोला है क्या? इसमें है क्या? मगर सारी दुनिया पी रही है। और अखबारों में बड़े-बड़े पोस्टर छपे हुए हैं। अखबार पढ़ रहे हो, लोग कोकाकोला पी रहे हैं। लोग अखबार पढ़ रहे हैं; फिल्में देख रहे हैं; रेडियो पर सुन रहे हैं। और सब जगह एक ही चर्चा है कि अगर जिंदगी का मजा लेना है, तो कोकाकोला के बिना नहीं! लिव्वा लिटिल हाट, सिप्पा गोल्ड स्पाट! नहीं तो जिंदगी बेकार गई। किसी काम न आई।
लोग क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? क्या सुनते हैं? क्या देखते हैं? अगर तुम जरा हिसाब रखो, तो तुम्हें साफ दिखाई पड़ेगा, तुम क्यों दुखी हो। जो सुनने योग्य हो अगर वही सुना जाए, और जो देखने योग्य हो अगर वही देखा जाए, तो तुम्हारे जीवन की नब्बे प्रतिशत ऊर्जा तो अपने आप सुरक्षित हो जाएगी--अपने आप! तुम्हारे घर में कोई कचरा डाले, तो तुम इनकार करोगे। लेकिन तुम्हारी खोपड़ी में कोई कचरा डाले, तुम कहते होः आइए, विराजिए, पधारिए! बड़ी कृपा की। ऐसे ही आया करते रहिए। कैसी-कैसी प्यारी खबरें ले आए हैं! धन्यभाग कि आप पधारे। कृतकृत्य हो गए, कृतार्थ हुए!
फिल्में देखने जा रहे हो, जिनमें सिवाय हंगामे के और कुछ भी नहीं! पैसे भी खर्च करोगे; टिकट खरीदने में धक्के-मुक्के भी खाओगे; पिटोगे- कुटोगे भी। मगर लोगों ने तय ही कर रखा है, सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें। और मजा यह है कि जब तुम सौ-सौ जूते खा रहे हो, तब तमाशा दूसरे देख रहे हैं! और तमाशा ही क्या है? जब तुम पर जूते पड़ रहे हैं, वे तमाशा देख रहे हैं; जब उन पर जूते पड़ रहे हैं, तुम तमाशा देख रहे हो! और तमाशा ही क्या है? छांदोग्य जिस बल की बात कर रहा है, वह वही ऊर्जा है, जिसको ब्लैक ने कहा, अतिरेक ऊर्जा का आनंद है। जिसको बुद्ध ने कहा, ऊर्जावान बनो। शक्ति को भीतर सरोवर बनने दो। यह खाली घड़ा शोभा नहीं देता। इस खाली घड़े को लेकर तुम परमात्मा के द्वार पर भी जाओगे, तो क्या मुंह दिखाओगे! कम से कम घड़ा तो भरा हो। इसलिए हमारे देश में पूर्ण-कलश स्वागत का प्रतीक बना, भरा हुआ कलश स्वागत का प्रतीक हो गया। लेकिन यह भीतर के भरे कलश की ही सूचना है।
"बलं वाव विज्ञानाद् भूयः। विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। अपि ह शतं विज्ञानवतां एको बलवान आकंपयते। क्योंकि एक बलवान मनुष्य, एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ विद्वानों को डराता है।"
यह कोई पहलवान के लिए नहीं कहा गया है। एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ पंडितों को डराता है। विद्वान यानी पंडित, जिन्होंने उधार ज्ञान इकट्ठा कर रखा है। इसलिए तो पंडित सदा ही ज्ञानी के दुश्मन होते हैं। होंगे ही। क्योंकि ज्ञानी उनके धंधे को जड़ से ही काटे डालता है।
पंडितों का धंधा क्या है? पंडितों का सिक्का चलता है अंधों में। और ज्ञानी लोगों को आंखें देने लगता है। अब जिनका धंधा ही अंधों में चलता हो, वे कैसे बरदाश्त करें कि कोई लोगों की आंखों की चिकित्सा करने लगे! आंखों की चिकित्सा हो गई तो उनका धंधा कैसे चलेगा? ये झूठे सिक्के कैसे चलेंगे? इसलिए जीसस को पंडितों ने सूली लगाई। वे रबाई थे, यहूदी पंडित थे, जिन्होंने जीसस को सूली लगाई। लगानी पड़ी, क्योंकि उस एक व्यक्ति ने सारे यहूदियों के पंडितों को कंपा दिया। सुकरात को एथेंस के पंडितों ने सूली लगाई, क्योंकि उस एक व्यक्ति ने पूरे एथेंस के सारे तथाकथित थोथे ज्ञानियों के प्राण संकट में डाल दिए। बुद्ध को तुमने पत्थर मारे। महावीर के कानों में तुमने सींकचे ठोंके। तुम्हारा पंडित सदा से ही प्रबुद्धजनों का दुश्मन रहा है। रहेगा। सदा रहेगा। क्योंकि उन दोनों का धंधा साथ चल नहीं सकता।
सुकरात को अदालत ने कहा था, अगर तुम सत्य बोलना बंद कर दो, तुम चुप हो जाओ, तो हमें कोई एतराज नहीं। तुम जीओ, मजे से जीओ। लेकिन सुकरात ने कहा कि अगर मैं चुप हो जाऊं, तो फिर जीकर भी क्या करूंगा! सत्य बोलना ही तो मेरा धंधा है।
अब यह धंधा बड़ा खतरनाक है। ठीक धंधे शब्द का ही उपयोग किया है सुकरात ने। यह सत्य बोलना ही मेरा धंधा है। अगर सत्य बोलना ही सुकरात का धंधा है, तो जो असत्य पर जी रहे हैं--और असत्य पर बहुत जी रहे हैं--वे स्वभावतः

सुकरात को जिंदा न रहने देंगे। जब उनके जीवन पर बन आएगी, उनकी आजीविका पर बन आएगी, तो इस आदमी को हटाना ही होगा। यह रास्ते का रोड़ा है। यह खतरनाक है। यह तो लोगों को बिगाड़ रहा है।
सुकरात पर जुर्म क्या थे? वे ही जुर्म, जो मुझ पर हैं! वही के वही जुर्म हैं सदा। क्योंकि बात वहीं की वहीं है। आदमी बदलता ही नहीं। आदमी सीखता ही नहीं। आदमी हर बार घूम कर वहीं आ जाता है। सुकरात पर जो जुर्म थे...पहला जुर्म यह था कि सुकरात ऐसे सत्य बोलता है, जो परंपरा के विपरीत हैं।
अब सत्य ने कोई कसम खाई है परंपरा के अनुकूल होने की? परंपरा दो कौड़ी
की चीज है। सत्य को क्या पड़ी है कि परंपरा के अनुकूल हो! अगर परंपरा को कुछ पड़ी हो तो सत्य के अनुकूल हो जाए। लेकिन सत्य किसी के अनुकूल नहीं हो सकता। सत्य तो सिर्फ अपने अनुकूल होता है। सत्य का तो अपना छंद होता है। सत्य स्वच्छंद होता है।
यह छांदोग्य उपनिषद शब्द बड़ा प्यारा है। जिन्होंने अपने छंद को पा लिया है, उनके वचन इसमें संगृहीत हैं। सत्य तो स्वतंत्र होता है, उसका अपना ही तंत्र होता है। उस पर किसी और का शासन नहीं। वह अनुशासित नहीं होता किसी से, आत्मानुशासित होता है।
तो पहला जुर्म था सुकरात पर कि तुम सत्य बोलते हो जो परंपरा के विपरीत है।
सुकरात ने कहा, लेकिन सत्य सदा परंपरा के विपरीत रहेगा। इसमें मेरा कसूर नहीं है। कसूर परंपरा का है।
परंपरा होती है सड़ी-गली; परंपरा होती है अतीत की, मुर्दा। परंपरा होती
है पंडितों के हाथ में, पुरोहितों के हाथ में। और सत्य होता है प्रबुद्धजनों के हाथ में। प्रबुद्ध तो कभी कोई एकाध होता है। पंडितों का तो व्यवसाय है--परंपरागत, वंशानुगत।
दूसरा जुर्म था सुकरात पर कि तुम युवकों को बिगाड़ते हो!
निश्चित ही, सुकरात जैसे व्यक्तियों की बातें युवकों को ही जम सकती हैं। क्योंकि युवकों में ही थोड़ी अभी ऊर्जा होती है, थोड़ी शक्ति होती है, थोड़ी क्षमता होती है, थोड़ा कुछ कर गुजरने का अभी साहस होता है। थोड़ा अभियान, थोड़े अज्ञात की यात्रा अभी उनके लिए पुकारती है, चुनौती देती है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है, शक्ति क्षीण होने लगती है, दीन होने लगता है, मृत्यु करीब आने लगती है, तो परंपरा के अनुकूल होने लगता है। अक्सर नास्तिक मरते-मरते आस्तिक हो जाते हैं। इससे तुम यह मत समझना
कि जीवन के अनुभव ने उन्हें आस्तिक बना दिया। मरते-मरते आस्तिक होने लगते हैं, क्योंकि मरते-मरते पैर डगमगाने लगते हैं। जवानी में नास्तिकता बड़ी सहज है, क्योंकि अभी पैरों में बल होता है। बुढ़ापे में मौत दरवाजे पर दस्तक देने लगती है। भय पकड़ने लगता है। लगता है, हो न हो परमात्मा हो! कौन जाने परमात्मा हो! मैं इनकार करता रहा, पीछे किसी मुसीबत में न पडूं। अभी भी कुछ देर नहीं हुई। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए, तो भूला नहीं। अभी भी याद कर लूं। माफी मांग लूं। क्षमा मांग लूं। मरते-मरते गंगास्नान कर आऊं! काशी हो आऊं, कि काबा हो आऊं, हाजी हो जाऊं, मरते-मरते हाजी हो जाऊं! कुछ कर लूं। अगर परमात्मा होगा तो ठीक, न हुआ तो कोई हर्जा नहीं, क्या बिगड़ जाएगा। समझेंगे कि चलो, एक यात्रा कर आए काशी की, कि कैलाश की, कि काबा की। क्या बुरा! क्या बिगड़ गया! थोड़ा भौगोलिक ज्ञान ही बढ़ जाएगा। नए-नए देश देखने को मिल जाएंगे। नए-नए लोगों से मिलने को हो जाएगा। कुछ हानि तो होने वाली नहीं है। और अगर परमात्मा हुआ, तो पास में अपने एक प्रमाणपत्र भी हो जाएगा।
मरते-मरते आदमी आस्तिक होने लगते हैं।
सुकरात जैसे व्यक्तियों से तो युवा व्यक्ति ही आकर्षित होते हैं। हां, जरूर कुछ वृद्ध लोग भी आकर्षित होते हैं। लेकिन वे वृद्ध वे ही होते हैं, जिनका शरीर बूढ़ा हो गया होगा, लेकिन जिनकी आत्मा में अभी भी युवक होने की क्षमता है। जिनमें अभी भी दुस्साहस है। जो अभी भी अज्ञात की यात्रा पर निकल सकते हैं। जो अपनी छोटी सी डोंगी को लेकर अभी भी उस सागर में उतर जा सकते हैं जिसका दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता।

सत्य तो थोड़े से दुस्साहसी लोगों की ही बात है। भीड़ तो असत्य में जीएगी, क्योंकि भीड़ सांत्वना चाहती है, सत्य नहीं चाहती। इसलिए एक भी सत्य को जानने वाला व्यक्ति हजारों पंडितों के लिए संकट बन जाता है।
और कैसा मजा है! हिंदू पंडित मुसलमान पंडित के खिलाफ। मुसलमान पंडित ईसाई पंडित के खिलाफ। ईसाई पंडित यहूदी पंडित के खिलाफ। यहूदी पंडित पारसी पंडित के खिलाफ। लेकिन सुकरात जैसे व्यक्ति के संबंध में ये सारे पंडित एक साथ राजी हो जाते हैं! यह राज भरी बात है!
मेरा विरोध करने में हिंदू पंडित, मुसलमान पंडित, जैन पंडित, बौद्ध पंडित, सिक्ख पंडित--सब राजी। एक बात पर कम से कम राजी हैं। मैं इससे ही खुश होता हूं कि चलो, मेरे द्वारा कम से कम इतना भाईचारा तो बढ़ रहा है! चलो, मेरे एक मुद्दे पर इनकी दुश्मनी तो मिटी! चलो, इतनी बात पर तो कम से कम इन्होंने हाथ बढ़ाए एक-दूसरे की तरफ, इकट्ठे हुए!
क्या राज है? इनकी एक-दूसरे से जो दुश्मनी है, वह केवल औपचारिक है। वह
दो दुकानदारों की दुश्मनी है। वह प्रतिस्पर्धा है दुकानदारों की। लेकिन मेरे जैसा व्यक्ति तो उनकी दोनों की ही दुकान की जड़ों को काट रहा है, एक साथ काट रहा है। मेरे खिलाफ तो वे दोनों इकट्ठे हो जाएंगे।
यह छांदोग्य उपनिषद ठीक कहता हैः "क्योंकि एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ विद्वानों को डराता है, आकंपित कर देता है।"
आकंपित शब्द डराने से भी महत्वपूर्ण है। उनके प्राण थरथरा जाते हैं। भूकंप आ जाता है। उनका भवन गिरने लगता है। भवन ही उनका क्या है? ताश के पत्तों का है! उनकी नाव डूबने लगती है। नाव ही कागज की है। खिलौनों से खेल रहे हैं, और दूसरों को भी खिलौनों में भरमा रहे हैं। क्या-क्या मजा चल रहा है धर्म के नाम पर! कैसे-कैसे खेल चल रहे हैं! और कितनी गंभीरता से चल रहे हैं!
रामलीला होती है; हर साल होती रहती है! वही रामलीला, वही देखने वाले लोग! हजारों बार देख चुके हैं! हजारों बार देख रहे हैं! एक-एक शब्द याद है। वे रामलीला में जो अभिनय कर रहे हैं, उनको भी शायद भूल जाए, मगर देखने वालों को एक-एक शब्द याद है। पक्का पता है कि अब दशरथ जी क्या कहेंगे, कि अब राम जी क्या बोलेंगे, कि अब सीता मैया पर क्या गुजरेगी! सब पता है, फिर भी देख रहे हैं।
और जानते हैं भलीभांति कि यह छोकरा जो राम बना है, कौन है। गांव का ही छोकरा है। मगर उसके पैर पड़ेंगे, फूलमालाएं पहनाएंगे, शोभायात्रा निकलेगी! रामचंद्र जी की बारात निकलेगी, और फूलमालाएं चढ़ाई जाएंगी, और पैर छुए जाएंगे, और पैर धो-धो कर लोग पानी पीएंगे। और सबको मालूम है यह छोकरा कौन है! यही गांव का लफंगा है। यही इनकी छोकरियों को सताता है। मगर इस समय वे बातें छेड़ने की जरूरत नहीं। अभी मुकुट बांधे हुए राम बना बैठा है। अभी बात और है।
क्या अभिनय में पड़े हो? क्या खेल खेल रहे हो? बच्चों जैसे काम! जैसे बच्चे गुड्डा-गुड्डी का विवाह करते हैं, ऐसे तुम राम और सीता का विवाह करवा रहे हो।
मंदिरों में क्या हो रहा है? कृष्ण जी को झूला झुलाया जा रहा है! अब बेचारे कृष्ण जी कुछ कर भी नहीं सकते। अगर उनको न भी झूलना हो...। जैसे मुझे झूलना पसंद नहीं, बिल्कुल पसंद नहीं! मुझे बचपन से ही झूले से नफरत है। अब पता नहीं कृष्ण जी को पसंद था कि नहीं। उनको चक्कर भी आ रहा हो, तो कोई बात नहीं! भक्त लोग झूला झुला रहे हैं, तो झूलना पड़ रहा है। और भक्तों के हाथ में सब है। जब लिटा दें, तो लेट जाओ। जब उठा दें, तो उठ जाओ। जब पट खोलें मंदिर के, तो खुल जाएं; जब बंद कर दें, तो बंद हो जाएं। क्या खेल कर रहे हो! मूर्तियां बना ली हैं। अपनी ही कल्पना के जाल हैं सब। कोई राम को पूज रहा है, कोई कृष्ण को पूज रहा है, कोई बुद्ध को, कोई महावीर को! पत्थर की मूर्तियां यूं पूजी जा रही हैं, जैसे इनकी पूजा से तुम्हें सत्य मिल जाएगा। यह कोई पूछता नहीं कि महावीर ने किसी की मूर्ति पूजी थी? यह पूछना शायद शिष्टाचार नहीं।
जैनियों की एक सभा में मैंने एक बार पूछ लिया। वे बहुत नाराज हो गए। मैंने उनसे पूछा कि तुम महावीर की मूर्ति पूजते हो, तुम कम से कम यह तो पता

लगाओ कि महावीर ने कभी किसी की मूर्ति पूजी थी? और जब महावीर ने ही नहीं पूजी, तो तुम महावीर की मूर्ति पूज कर महावीर के अनुयायी नहीं हो, दुश्मन हो। अगर महावीर के सच्चे अनुयायी हो, तो पूजो मत।
महावीर ने तो शिक्षा दी है, अशरण-भावना। बड़ी अदभुत शिक्षा! किसी की शरण ही न जाना। पूजने का तो सवाल ही नहीं उठता। क्योंकि तुम्हारे भीतर ही बैठा है परमात्मा, तुम किसको पूज रहे हो? खोजो, पूजो मत। जागो, पूजो मत। आविष्कार करो अपने भीतर। जिसे तुम बाहर पूज रहे हो, वह बाहर नहीं है। वह तुम्हारे भीतर है। वह पूजा करने वाले में छिपा है। खोजने वाले में ही खोज का गंतव्य है। तुम्हारे जानने वाले में ही वह छिपा है, जिसे जानना है।
तो महावीर ने कहा, अशरण-भावना।
मगर बड़ा मजा है! महावीर की मूर्तियां ही मूर्तियां हैं सारे देश में! बुद्ध ने कहा कि मुझ पर मत अटक जाना। मुझसे इशारे ले लो, चलना तो तुम्हें होगा। बुद्ध तो केवल इशारे करते हैं।
लेकिन बस, बुद्ध की जितनी मूर्तियां बनीं, किसी की भी नहीं! इतनी मूर्तियां बनीं कि अरबी में, उर्दू में मूर्ति शब्द के लिए जो पर्यायवाची शब्द है, वह है बुत। बुत बुद्ध का ही अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध शब्द ही बुत का पर्यायवाची हो गया, मूर्ति का पर्यायवाची हो गया।
सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां बनीं।
और बुद्ध ने इनकार किया था कि मेरी बात को इसलिए मत मानना कि मैंने कहा है। मेरी बात को तब मानना, जब तुम जान लो।
और बुद्ध ने किसकी मूर्ति पूजी थी? किसी की भी मूर्ति नहीं पूजी थी।
बुद्ध का कसूर ही यही था। अगर वे किसी की मूर्ति पूजे होते, जो आज भारत में हिंदू उनको अपने सिर पर धारण करते। उनकी भी पालकी निकलती। लेकिन हिंदुस्तान से बुद्ध को हिंदुओं ने उखाड़ फेंका। कारण क्या था? क्योंकि बुद्ध ने न राम को पूजा, न कृष्ण को पूजा। बुद्ध ने किसी को पूजा ही नहीं। बुद्ध ने परंपरा को कोई सहारा न दिया। बुद्ध ने तो भीतर के सत्य को, नग्न सत्य को वैसा का वैसा रख दिया, जैसा था। लगे किसी को चोट, तो लगे। प्रीतिकर लगे तो ठीक, अप्रीतिकर लगे तो ठीक। सत्य को तो कहना ही होगा।
स्वभावतः, पंडित थरथराते हैं।
"बलवान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है।"
बलवान शब्द की जगह हमेशा तुम पढ़ना ऊर्जावान, तब तुम्हारे लिए इस सूत्र का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा! ऊर्जावान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है। तुम कहोगे, यह भी क्या बात हुई! हम सब तो उठ कर खड़े होते हैं! यह कोई उठ कर खड़ा होना नहीं। तुम्हारी चेतना तो सोई हुई है; तुम भला खड़े हो गए हो, मगर तुम्हारी चेतना तो बिल्कुल सोई हुई है। जब ऋषि उठ कर खड़े होने की बात करते हैं, तो तुम्हारी चेतना के खड़े होने की बात करते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं--चाल्र्स डार्विन और उनके अनुयायी--कि बंदर से आदमी बना। और बनने में सबसे बड़ा कारण क्या था? सबसे बड़ा राज क्या था? क्योंकि बंदर तो चारों हाथ-पैर से चलता है। आदमी दो पैर पर खड़ा हो गया। आदमी का खड़ा हो जाना दो पैर पर, विकास में सबसे बड़ा चरण सिद्ध हुआ। दो पैर पर खड़े हो जाने के कारण ही आदमी और बंदर में जमीन-आसमान का अंतर हो गया। कहां बंदर और कहां आदमी!
आज तो कोई कहता भी है कि बंदर से आदमी पैदा हुआ, तो तुम्हें अपमानजनक मालूम होता है। लेकिन क्रांति घटी सिर्फ छोटी सी बात से कि आदमी का शरीर सीधा खड़ा हो गया। सीधा खड़े होने से बहुत से फर्क पड़ गए। सबसे बड़ा फर्क तो यह पड़ा कि जब जानवर, कोई भी जानवर, चारों हाथ-पैर से चलता है, तो उसके मस्तिष्क में खून की मात्रा ज्यादा पहुंचती है। इसलिए खून की अधिक मात्रा पहुंचने के कारण सूक्ष्म तंतु विकसित नहीं हो पाते। खून के बहाव के कारण टूट-टूट जाते हैं। बनते भी हैं, तो टूट जाते हैं।
और तंतु बहुत सूक्ष्म हैं मस्तिष्क के। तुम्हारे इस छोटे से सिर में सात करोड़ तंतु हैं। बड़े बारीक हैं, इतने बारीक हैं कि तुम्हारा बाल भी इतना बारीक नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर मस्तिष्क के तंतुओं को एक के ऊपर एक, एक के ऊपर एक रखा जाए, तो एक हजार तंतुओं को रखने से तुम्हारे बाल की मोटाई के बराबर तंतु बनेगा। इतने सूक्ष्म तंतुओं को जरा ही खून की

गति ज्यादा हुई कि वे टूट जाते हैं। उनके टूट जाने से मस्तिष्क विकसित नहीं हो पाया जानवरों का।
आदमी खड़ा हो गया दो पैर से, इसका परिणाम सबसे बड़ा तो यह हुआ कि गुरुत्वाकर्षण के विपरीत होने के कारण उसके सिर तक खून कम पहुंचने लगा। स्वभावतः, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण नीचे की तरफ खींचता है वस्तुओं को; खून को भी नीचे की तरफ खींचता है। मस्तिष्क की तरफ खून कम जाने लगा।
इसलिए तो तुम बिना तकिए के रात में सो नहीं सकते। अगर बिना तकिए के सोओगे, तो जागे ही रहोगे। क्योंकि खून इतना पहुंचता रहेगा मस्तिष्क में कि वह तुम्हें सोने नहीं देगा; जगाए रखेगा; तंतुओं में हड़बड़ी मचाए रखेगा। इसलिए तकिया चाहिए। तकिया तुम्हारे सिर को ऊंचा कर देता है; शरीर को सिर से नीचा कर देता है। खून कम पहुंचता है। खून कम पहुंचता है, तुम आराम से सो पाते हो।
इसलिए मैं शीर्षासन के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि शीर्षासन मस्तिष्क को निश्चित नुकसान पहुंचाता है। और मैंने अभी तक एक ऐसा शीर्षासन करने वाला व्यक्ति नहीं देखा जिसमें कोई प्रतिभा हो! बुद्धू बहुत तरह के देखे। खोपड़ी के बल खड़े हुए लोग बुद्धू ही हो सकते हैं। पहले तो बुद्धू होना ही चाहिए, तब वे खोपड़ी के बल खड़े होंगे। दूसरा, फिर खोपड़ी के बल खड़े होने से और बुद्धूपन पैदा होगा। और जितनी ज्यादा देर खड़े होंगे, उतने बुद्धू होंगे।
हां, यह बात जरूर है कि उनमें पशुओं जैसा बल आ सकता है। क्योंकि मस्तिष्क के प्रतिभा के तंतु तो टूट जाएंगे, तो लट्ठ ही लट्ठ बचेगा। बुद्धि तो गई। तो हो सकता है शरीर के लिए तो स्वास्थ्यप्रद हो, लेकिन मस्तिष्क के लिए तो हानिप्रद है।
और यह तो पक्की बात है। बंदर से जूझ कर देख लो तो पता चल जाएगा। एक बंदर पर्याप्त है तुम्हारे बड़े से बड़े पहलवान को भी ठंडा कर देने के लिए। विवेकानंद के पीछे एक बंदर पड़ गया था। बंदर भी अजीब होते हैं। कुछ जानवरों में खूबी होती है, बंदर और कुत्तों में खासकर, कि वर्दीधारियों के खिलाफ होते हैं। पुलिस वाला हो, पोस्टमैन हो, संन्यासी हो, वर्दी वाला दिखा कि कुत्ते भौंके! कि बंदर नाराज हुआ!
विवेकानंद चले जा रहे होंगे अपना लट्ठ लिए। वर्दीधारी! एक बंदर उनके पीछे हो लिया। उन्हें डरवाने लगा। विवेकानंद घबड़ाए। यूं तो बहादुर आदमी थे। पूरे-पूरे क्षत्रिय तो नहीं थे, मगर खत्री तो थे ही!
अब तुम पूछोगे, क्षत्रिय और खत्री में क्या भेद होता है?
भेद भारी है। सच तो यह है कि क्षत्रिय अब दुनिया में कोई नहीं, खत्री
ही खत्री हैं। क्योंकि क्षत्रिय तो परशुराम ही खतम कर गए! तुमने कहानी तो पढ़ी है कि परशुराम ने अठारह बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। सारे क्षत्रिय मार डाले; अठारह बार, एक बार भी नहीं। मगर फिर भी क्षत्रिय तो हैं। तो ये क्षत्रिय कहां से आए? ये खत्री हैं! खत्री का मतलब यह होता है कि ये पूरे-पूरे क्षत्रिय नहीं हैं।
उन पुराने दिनों में ऋषि-मुनियों से यह काम लिया जाता था। इसीलिए तो तुमको लोग कहते हैं, ऋषि-मुनियों की संतान! क्योंकि जब परशुराम ने सारे क्षत्रिय मार डाले, तो अब क्या करना? स्त्रियों को तो मार नहीं सकते थे परशुराम। वह जरा उनको हेटा काम मालूम पड़ा होगा, कि क्या स्त्रियों को मारना! तो क्षत्राणियां तो बच गईं। विधवाएं बच गईं। और उस समय का यह नियम था कि अगर कोई विधवा, या कोई भी स्त्री जिसको बच्चे पैदा न होते हों किसी कारण से, वह ऋषि-मुनियों से जाकर प्रार्थना करे तो वे दयावश बाल-बच्चे पैदा करवा देते थे। उनका काम वही था जो कि हम शिवजी के नंदी से लेते हैं! ऋषि-मुनि थे, समाज की सेवा ही उनका कार्य था। परोपकार के लिए ही जीते थे! सो खत्री यानी ऋषि-मुनियों की संतान! विवेकानंद खत्री थे; पक्के खत्री थे। डंडा लिए और अकड़ कर चले जा रहे! वह डंडा और अकड़ आदमियों को प्रभावित करे भला, बंदरों को नाराज कर देती है। एक बंदर पीछे हो लिया। वह डरवाने लगा। विवेकानंद को घबड़ाहट लगी! एकांत था। यूं तो ब्रह्मज्ञानी थे कि सब संसार माया है। मगर यह बंदर! बहुत मन में दोहरायाः ब्रह्म सत्य जगत

माया! मगर यह बंदर, वह एकदम पीछे ही पड़ा हुआ था। वह करीब ही आता जा रहा था।
सो वे भागने लगे। वहां कोई था भी नहीं देखने वाला।
भागे, तो बंदर को और मजा आ गया! तो बंदर भी भागने लगा। दो-चार बंदर और झाड़ों से उतर आए। उन्होंने कहा, अच्छा! अरे, तमाशा जब हो रहा हो तो...। विवेकानंद के तो छक्के छूट गए। रास्ता लंबा। पहाड़ी का रास्ता। हिमालय की यात्रा पर गए थे। यह नहीं सोचा था कि यह झंझट होगी। गए थे ब्रह्म-दर्शन को, और यह मिल गया बंदर!
एकदम से ख्याल आया कि ऐसे भागने में तो झंझट है। और बंदर उतरते आ रहे हैं झाड़ों से! ऐसे अगर भागते रहे, तो थोड़ी देर में ये लोग मुसीबत कर देंगे। अब तो कुछ करना पड़ेगा। तो रुक कर खड़े हो गए। लौट कर खड़े हो गए डंडा टेक कर, कि अब जो कुछ होगा होगा। कड़ी कर ली हिम्मत। संयम साधा। मंतर-तंतर पढ़ा होगा! स्मरण किया होगा कि हे परमहंस रामकृष्णदेव! अरे, अब तो काम आओ! ये दुष्ट बंदर, और अपने वाले, लाल मुंह वाले! काले मुंह बंदर होते तो भी ठीक था, कि रावण के भक्त हैं, चलो कोई बात नहीं। मगर अपने वाले। रामजी के सेवक। हनुमान जी के वंशज। ये इस तरह की हरकत कर रहे हैं! कलियुग बिल्कुल निश्चित आ गया है!
मगर वे खड़े हुए डंडा टेक कर, तो बंदर भी रुक गए। बंदर होते हैं नकलची। उन्होंने देखा, यह आदमी रुक गया, वे भी रुक गए। तब जरा विवेकानंद की हिम्मत बढ़ी। विवेकानंद जरा दो कदम उनकी तरफ बढ़े, तो बंदर जरा पीछे हटे! विवेकानंद जरा डंडा बजा कर उनके पीछे भागे, तो बंदर भागे। तो विवेकानंद ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि भागने से कोई सार नहीं। मुसीबत आए, तो टिक कर सामना ही कर लेना ठीक है। मुसीबत की चुनौती स्वीकार कर लेना ठीक है।
चाल्र्स डार्विन और उनके अनुयायी कहते हैं कि मनुष्य विकसित हुआ, क्योंकि खड़ा हुआ--शरीर की दृष्टि से। एक तो मस्तिष्क को खून कम मिला; उससे सूक्ष्म तंतु विकसित हुए। दूसरा, उसके दो हाथ मुक्त हो गए चलने के काम से। उन्हीं दो हाथों से सारी संस्कृति विकसित हुई है। फिर आदमी को, दो हाथ मुक्त हो गए, तो कुछ भी करने की सुविधा हो गई। चित्र बनाए। मूर्ति बनाए। मकान बनाए। जयरामजी करे। हाथ मिलाए। गले मिले। सारी संस्कृति, सारी सभ्यता उन दो हाथों का खेल है। अब वे चलने में ही उलझे रहते, तो यह विकास नहीं हो सकता था। फिर विकास होते-होते बात बढ़ती चली गई। विज्ञान खोजा। यंत्र बने। आदमी के हाथ खाली थे, उनके लिए काम चाहिए था।
तो मनुष्य का सारा विकास शरीर के सीधे खड़े होने से है। लेकिन उपनिषद
के ऋषि कहते हैं, अगर शरीर के सीधे खड़े होने से इतना विकास हुआ, तो जिस दिन तुम्हारी चेतना भी सीधी खड़ी हो जाएगी, उस दिन कितना विकास न होगा!
यह सूत्र बड़ा प्यारा हैः "स यदा बली भवति अथोत्थाता भवति--बलवान होने
पर मनुष्य उठ कर खड़ा हो जाता है।"
चेतना उसकी खड़ी हो जाती है, जैसे ज्योति आकाश की तरफ उठने लगे, ऐसी उसकी चेतना ऊध्र्वगामी हो जाती है।
और जिसकी चेतना ऊध्र्वगामी है--"अथोत्थाता भवति"--जो ज्योति की तरह ऊपर की तरफ बढ़ा जा रहा है, उसी के जीवन में ये सारी अदभुत घटनाएं घटती हैं। "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति।"
ऐसी जिसकी चेतना ऊपर की तरफ उठने लगी, वही गुरु के सान्निध्य को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि गुरु वह है, जो ऊपर जा चुका। उससे संबंध उन्हीं का हो सकता है, जो स्वयं भी ऊपर की तरफ जाने लगे। कुछ तो समानता होनी चाहिए। कम से कम दिशा की समानता होनी चाहिए। तुम नीचे की तरफ जा रहे हो तो फिर कैसे गुरु से मिलन होगा!
"उठने पर वह गुरु की सेवा करता है।"
यह सेवा शब्द तुम्हें किसी भ्रांति में न डाल दे, यह जरा ख्याल रखना। "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति।"
इस देश में हमने सेवा के बड़े और अर्थ लिए थे। जब से ईसाइयत देश में आई,
तब से सेवा का अर्थ बिल्कुल विकृत हो गया। सेवा का जो सौंदर्य था, वही नष्ट हो गया। सेवा बड़ी और ही चीज हो गई। इसलिए अच्छा हो कि दो शब्दों का प्रयोग अलग-अलग करो, परिचर्या और सेवा।

"परिचारिता भवति।"
वह गुरु की सेवा में संलग्न हो सकता है, जिसकी चेतना उठ कर खड़ी हो गई।
हम इस देश में सेवा उनकी करते थे, जो हमसे ऊपर हैं। ईसाइयत ने सेवा का
एक नया रूप इस देश में प्रवेश करवायाः सेवा उनकी करनी, जो हमसे नीचे हैं।
सेवा करनी है दरिद्र की, दीन की, बीमार की, दुखी की। सेवा करनी है कोढ़ी की।
सेवा करनी है कैंसर के मरीज की। सेवा करनी है अनाथों की, विधवाओं की, वृद्धों की। कुछ बुराई नहीं इस सेवा में। लेकिन यह सेवा सामाजिक घटना है, यह सेवा धार्मिक घटना नहीं है।
इसलिए मैं कलकत्ता की मदर टेरेसा को कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं मानता। धर्म से क्या लेना-देना है! सामाजिक सेवा है, अच्छा काम है। ठीक है किसी अनाथ बच्चे को पाल लेना। बुरा काम तो निश्चित ही नहीं है, अच्छा काम है। लेकिन इससे कुछ धर्म नहीं होने वाला है। धर्म तो तब घटता है, जब तुम उसके चरण पकड़ते हो, जो तुमसे ऊपर है। जो तुमसे नीचे है, उसके चरण पकड़ोगे, इससे तो अहंकार ही बढ़ेगा। जब तुमसे जो ऊपर है, उसके चरण पकड़ोगे, तो अहंकार गिरेगा। जो तुमसे ऊपर है, वही तुम्हें ऊपर की तरफ ले जा सकता है। इसको परिचर्या कहें हम।
छांदोग्य कहता हैः "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति। जिसकी चेतना उठ कर खड़ी हो गई, वह गुरु की सेवा करता है--गुरु की।"
सेवा तो हम इस देश में सिर्फ गुरु की करते थे, और किसी की नहीं। सेवा गुरु की ही हो सकती है। गुरु शब्द का अर्थ होता है, अंधकार को मिटाने वाला। सेवा उसकी ही करनी है जिसका अंधकार मिट गया हो, ताकि हमारा अंधकार मिट सके। अरे, उस दीए के करीब आओ जो जल चुका है, ताकि तुम्हारी बुझी ज्योति, तुम्हारा बुझा दीया, तुम्हारी बुझी बाती भी सुलग उठे।
"सेवा करने से वह गुरु के पास बैठने योग्य बनता है।"
क्या लाभ होगा गुरु की सेवा का? उसके पास बैठने की योग्यता आएगी। समर्पण से योग्यता आती है। गुरु के पास बैठना इस जगत का अभूततम अनुभव है, अपूर्व अनुभव है।
"परिचरन उपसत्ता भवति।"
उपसत्ता सिर्फ पास बैठना ही नहीं। जब तुम गुरु के पास बैठते हो, तो किसी अर्थों में गुरु की सत्ता से आच्छादित हो जाते हो, उसकी आभा से मंडित हो जाते हो, उसकी तरंगों में डूब जाते हो। जैसे कोई नदी में स्नान करता है, शीतल जल में, तो शीतल हो जाता है। ऐसे ही गुरु के पास भी एक शीतल ऊर्जा है। वह स्वयं शीतल हुआ है। वह स्वयं शांत हुआ है, मौन हुआ है। तो उसके पास एक सरोवर है। तुम उसमें डुबकी लगाओ।
यही गंगास्नान है। यही वस्तुतः तीर्थ-स्नान है। गुरु के पास होना ही तीर्थ में होना है। और गुरु को जिसने पा लिया उसने तीर्थंकर को पा लिया। उसकी सत्ता आच्छादित करने लगती है तुम्हें। जैसे कि तुम निकलोगे, रातरानी के फूल खिले हों, उनके पास से--सिर्फ पास से गुजर जाओगे या थोड़ी देर खड़े हो जाओगे--तो तुम चकित होओगेः दूर भी निकल आए, फिर भी तुम्हारे वस्त्रों के साथ लिपटी हुई रातरानी की गंध चली आई है! घर भी पहुंच गए, लेकिन गंध की कोई स्मृति तुमको अब भी आच्छादित किए हुए है, अब भी तुम्हारे नासापुटों को भरे हुए है! ऐसे गुरु के पास जो बैठेगा, वह गुरु की सत्ता से आच्छादित होता है।
"उपसीदन द्रष्टा भवति।"
और पास बैठने से द्रष्टा बनता है। उपसीदन शब्द से ही उपनिषद बना है।
उपसीदन यानी पास बैठना।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि उपसीदन शब्द से उपनिषद निर्मित हुआ।
उपनिषद का अर्थ है, गुरु के पास बैठ कर जो पाया; पास बैठ-बैठ कर जो मिला। कभी बोलने से मिला। कभी न बोलने से मिला; कभी गुरु को देखने से मिला; कभी गुरु के पास आंख बंद करने से मिला। कभी गुरु के उठने से मिला, चलने से मिला। कहना कठिन है। मगर गुरु के पास होने पर अनेक-अनेक रूपों में मिलता है। अनेक-अनेक तरह से संग बैठता है, संगीत बैठता है। तार छिड़ने लगते हैं वीणा के।

कुछ शब्द इसी के जैसे हैं। जैसे उपासना। उपासना का भी वही अर्थ होता है, पास बैठना; उप-आसन। तुम अगर सोचते हो कि तुम जाकर मंदिर में और परमात्मा की उपासना कर रहे हो, तो तुम गलती में हो। जब तक तुम जीवित गुरु के पास न बैठोगे, उपासना का अर्थ ही न जानोगे। वहां तो पत्थर की मूर्ति है। उसके पास बैठ-बैठ कर तुम भी पत्थर हो जाओगे। पत्थर हो ही गए हो।
इस देश में जितने पाषाण हैं, शायद कहीं और न होंगे। क्योंकि पत्थरों
के पास बैठ कर और होगा क्या! तुम भी पत्थर जैसे ही कठोर हो जाओगे। तुम्हारे भीतर से भी करुणा खो जाएगी, प्रेम खो जाएगा, रस सूख जाएगा।
जरा सोच-समझ कर बैठना, किसके पास बैठते हो! क्योंकि जिसके पास बैठोगे, वैसे ही हो जाओगे। सदा अपने से ऊपर को खोजना। और ख्याल रहे, मन चाहता है सदा अपने से नीचे को खोजना। क्योंकि जब तुम अपने से नीचे आदमी के पास बैठते हो, तो तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है कि अहा, मैं कितना बड़ा! इसलिए राजनेता चमचों से घिरे रहते हैं। चमचों का अर्थ है, जिनके पास बैठ कर उनको लगता है कि मैं कितना महान! छोटे-छोटे आदमी कीड़े-मकोड़ों की तरह उनके आस-पास घूम रहे हैं, खुशामद कर रहे हैं। तो उनको रस आता है।
अहंकार की इच्छा यही होती है कि सदा अपने से छोटे को खोजो। क्योंकि छोटे के सामने तुलना में तुम बड़े मालूम होते हो। और गुरु के पास बैठना यूं है, जैसे ऊंट पहली दफे हिमालय के पास आए! इसलिए अक्सर ऊंट पहाड़ों के पास नहीं पाए जाते, मरुस्थलों में पाए जाते हैं! उन्होंने भी खूब चुना है! मरुस्थलों में रहते हैं, तो वहां पहाड़ मालूम होते हैं! स्वभावतः, मरुस्थल में ऊंट ही सबसे ऊंची चीज है। उससे ऊंचा और क्या! जब ऊंट पहाड़ के पास आता है, तब उसको बेचैनी होती है, अड़चन होती है। पहले तो वह कहता है, पहाड़-पहाड़ कुछ नहीं, सब कल्पना है! सब झूठ है! पहले तो इनकार करता है, खंडन करता है, विरोध करता है। क्योंकि उसके अहंकार को चोट लग रही है।
गुरु के पास आकर भी अड़चन खड़ी होती है। आकर भी लोग चूक जाते हैं। एक सज्जन ने मुझे लिखा है कि मैं आपको अपने मित्र की तरह मानने को राजी हूं। बड़ी कृपा! मुझे कोई अड़चन नहीं। यह भी मेरा सौभाग्य! मैं तो इसको भी सौभाग्य मानता हूं कि जब कोई मुझे अपना शत्रु भी मान लेता है। यह भी क्या कम! कुछ तो माना। उपेक्षा तो न की। चलो, बड़ी कृपा कि मित्र की तरह मुझे मानने को तैयार हो। लेकिन चूक जाओगे। मुझे कुछ हर्ज न होगा, मगर तुम्हें हर्ज हो जाएगा। उपासना न हो पाएगी।
और मित्र ही मानना है, तो कहीं भी मिल जाएंगे मित्र। इतनी दूर आने की क्या जरूरत? मित्रों की कोई कमी है! यार-दोस्तों की कोई कमी है! एक खोजो हजार मिलते हैं! मत खोजो, तो तुम्हें खोजते हुए चले आते हैं!
इतने दूर! वे सज्जन कलकत्ता से यहां आए हैं! बड़ा कष्ट किया। कलकत्ते में कोई मित्रों की कमी है? लेकिन उन्होंने ऐसा लिखा है, जैसे मुझ पर बड़ी कृपा कर रहे हैं, अनुकंपा कर रहे हैं! बड़ा दया-भाव प्रकट किया है कि आपको मित्र-भाव में स्वीकार कर सकता हूं। लेकिन उनको शायद ख्याल भी न हो, शायद चेतना में उनके बात भी न हो कि यह उपासना को इनकार करना है।
मैं तो राजी हूं, जिस भाव में स्वीकार करो। मेरा क्या बनता-बिगड़ता है! मित्र तो मित्र; शत्रु तो शत्रु; कुछ नहीं तो कुछ नहीं! न मेरा कुछ खोता है, न मुझे कुछ मिलता है। न मुझे कुछ लेना, न मुझे कुछ देना। जो कुछ होना है, तुम्हारा है।
उपासना शब्द का अर्थ मंदिर की पूजा नहीं है। वह भी गुरु के पास बैठना है।
और वही उपवास शब्द का भी अर्थ है। उपवास का भी अर्थ होता है, पास निवास करना, पास वास करना। वह भी गुरु के पास ही हो सकता है।
अनशन उपवास नहीं है। भूखे मरना उपवास नहीं है। हां, गुरु के पास ऐसी तल्लीनता से बैठना कि न भूख याद रहे, न प्यास याद रहे। भूख भूल जाए, प्यास भूल जाए, कुछ भी याद न रहे। शरीर भी भूल जाए। यूं बैठने का नाम उपवास है। गुरु के पास यूं तल्लीन होकर बैठ जाना, कि तुम मिट ही जाओ, उपासना है।
और ऐसी उपासना में, ऐसे उपवास में जो सुन पड़ेगा, जो समझ आ जाएगा, जो किरण तुम्हारे प्राणों में उतर जाएगी, वही उपनिषद बन जाती है। उपनिषद का अर्थ है, पास बैठ कर जो पाया।

"उत्तिष्ठन परिचारिता भवति, परिचरन उपसत्ता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति।"
और जो पास बैठेगा, उसे आंख मिलती है, वह द्रष्टा हो जाता है। उसे नजर मिलती है देखने की, अपने को देखने की। और सब देखने की नजर तो तुम्हारे पास है। बस, अपने को देखने की नजर नहीं है। और सब तो तुम देख लेते हो, अपने से चूक जाते हो!
"गुरु के पास बैठने से द्रष्टा बनता है, श्रोता बनता है।"
ये बहुमूल्य शब्द हैं। श्रोता का अर्थ इतना ही नहीं होता कि तुमने सुन लिया। सुनते तो सभी हैं, मगर सभी श्रोता नहीं होते। सुनते सभी हैं, सभी श्रावक नहीं होते। सुन तो कोई भी लेता है, जिसके पास कान हैं। लेकिन एक कान से गई बात, और दूसरे कान से निकल जाती है! अगर तुम पुरुष हो तो एक कान से जाती है, दूसरे कान से निकल जाती है। अगर स्त्री हो, तो दोनों कान से जाती है और मुंह से निकल जाती है! मगर निकल जाती है। रुकती नहीं, अटकती नहीं, ठहरती नहीं।
ठहर जाए, हृदय में उतर जाए। और हृदय में तभी उतर सकती है, जब तर्क से न सुनी जाए, वितर्क से न सुनी जाए, विवाद से न सुनी जाए। जब संवाद घटित हो, जब संगीत बजे, जब शिष्य और गुरु के हृदय एक साथ धड़कते हैं; जब उनके बीच कोई भेद नहीं रह जाता; जब अभेद सधता है--तब व्यक्ति श्रोता बनता है। सुनता है; पहली बार सुनता है। देखता है; पहली बार देखता है। और हिंदी में अनुवाद ठीक नहीं किया तुमने। तुमने लिखा सहजानंदः
"मनन करने वाला बनता है।"
नहीं; मन्ता शब्द ठीक है। वह तुम देखो, ख्याल करो मूल में।
"उपसीदन द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति।"
सुनने वाला नहीं बनता, श्रोता बनता है। देखने वाला नहीं बनता, द्रष्टा बनता है। मनन करने वाला नहीं बनता, मन्ता बनता है। फर्क क्या है? मनन तो सभी करते हैं, लेकिन मनन हमेशा किसी और चीज का किया जाता है, किसी विषय का किया जाता है। दर्शन तो सभी को होता है, लेकिन किसी और चीज का होता है। श्रवण तो सभी करते हैं। कान हैं, तो सुन लेते हैं; आंख हैं, तो देख लेते हैं; मन है, तो मनन कर लेते हैं। लेकिन यह कुछ और बात है। द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बाहर से इसका संबंध नहीं है। आंख भीतर मुड़ जाए, तो द्रष्टा। श्रवण भीतर मुड़ जाए, तो श्रोता। और मनन भीतर मुड़ जाए, तो मन्ता। यह अंतर्यात्रा है।
और जब ये तीन घटनाएं घटती हैं, तो इन तीनों घटनाओं का इकट्ठा जो अर्थ है, वह है बुद्ध। बुद्ध बनता है।
"बुद्धा भवति।"
और जो बुद्ध बन गया, उसके जीवन में पहली दफा कर्तृत्व पैदा होता है। "कत्र्ता भवति।"
बड़ा अनूठा सूत्र है। पूरा विज्ञान आ गया जीवन-क्रांति का। जीवन-रूपांतरण की सारी सीढ़ियां आ गईं। और बड़े क्रम से आईं, बड़ी व्यवस्था से आईं।
तुम भी कर्म करते हो, लेकिन तुम कर्ता नहीं हो। तुम्हारा कर्म असल में कर्म नहीं कहना चाहिए, उपकर्म कहना चाहिए; एक्शन नहीं, रिएक्शन।
किसी ने गाली दी, तो तुमने गाली दी। इसको कर्म नहीं कहना चाहिए, यह प्रतिकर्म है। न वह गाली देता, न तुम गाली देते। उसने गाली दी, तो उसकी प्रतिक्रिया हुई तुम्हारे भीतर, तुमने भी गाली दी। और उसने प्रशंसा की, तुम्हारे भीतर प्रतिक्रिया हुई, तुमने भी प्रशंसा की। मालिक वह है। उसने चाबी चलाई। उसने बटन दबाई, तुम्हारा पंखा चलने लगा; उसने बटन दबाई, तुम्हारा पंखा बंद हो गया। तुम मालिक नहीं हो। इसलिए तुम कर्ता नहीं हो। हां, क्रिया हो रही है। मगर क्रिया तो बिजली के पंखे से भी होती है। तुम बिजली के पंखे को कर्ता नहीं कह सकते। तुम बटन दबाओ, और बिजली का पंखा कहे कि आज नहीं! आज तो छुट्टी का दिन है। कि आज तो जवाहरलाल का जन्मदिन है।
झूला झूलें जवाहरलाल! आज हम काम-धाम न करेंगे। नहीं; तुम बटन दबाते हो, पंखे को चलना ही पड़ता है।

कोई तुम्हें गाली दे और तुम कहो कि आज नहीं भाई! आज छुट्टी पर हैं। कल आना। तो कुछ मालकियत पता चलेगी। उसने गाली दी, तुम भनभना गए। भूल ही गए छुट्टी-वुट्टी। उठा लिया डंडा। याद ही न रही कि आज छुट्टी का दिन है; कि आज विश्राम करने की तय की थी; कि आज सोचा था, अनहद में विश्राम करेंगे! और यह उपद्रवी आ गया। तुम कर्ता नहीं हो, प्रतिकर्ता हो।
बुद्ध को किसी ने गाली दी। बुद्ध ने सुना और कहा कि अगर बात पूरी हो गई
हो तो मैं जाऊं! क्योंकि मुझे दूसरे गांव पहुंचना है, लोग प्रतीक्षा करते होंगे।
गाली देने वालों ने कहा कि हमने गालियां दी हैं; यह कोई बात नहीं!
बुद्ध ने कहा, तुम्हारी तरफ से गालियां होंगी। मेरी तरफ से तो बात ही है। तुमने कही, मैंने सुनी। लेकिन मुझे इसमें कुछ रस नहीं।
लोगों ने कहा, यह क्या बात कह रहे हैं आप! हमने ऐसी कठोर गालियां दीं, आपको कोई रस नहीं!
बुद्ध ने कहा, अगर रस का मजा लेना था, तो दस साल पहले आना था। तब मेरी तलवार खिंच जाती; तब तुम्हारी गर्दन जमीन पर पड़ी होती; तब यहां लहू बह जाता। मगर बड़ी देर करके तुम आए। अब मैं अपना मालिक हूं। अब तुम्हारी गाली देने से मैं परिचालित नहीं होता। अभी पिछले ही गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे। और मैंने उनसे कहा, मेरा पेट भरा है। मैं तुमसे पूछता हूं, उन्होंने मिठाइयों का क्या किया होगा?
एक आदमी ने भीड़ में से कहा, क्या किया होगा! घर ले गए होंगे। बच्चों को बांट दी होंगी। बुद्ध ने कहा, वही तो मुझे तकलीफ हो रही है, कि अब तुम क्या करोगे? तुम गालियां लाए, मैं कहता हूं मैं लेता नहीं। मेरा पेट भर चुका। अब तुम क्या करोगे? ले जाओ भाई! बच्चों को बांट देना, पत्नी को दे देना, भाई-बंधुओं को बांट देना! मैं तो नहीं लेता। तुम देते हो, यह तुम्हारी मर्जी। धन्यवाद! मगर मैं लेता नहीं। और जब तक मैं न लूं, तुम मुझे कैसे दे सकते हो! मालिक हूं मैं अपना।
यह सूत्र कहता हैः पहले व्यक्ति द्रष्टा बनता गुरु के पास बैठ कर। श्रोता बनता। मन्ता बनता। फिर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता। यह त्रिकोण पूरा हो गया कि बुद्धत्व घटित हो जाता है। और तब कर्ता बनता है। सिर्फ बुद्ध ही कर्ता होते हैं। और जो कर्ता बन गया, वही विज्ञानी है। उसने ही, जानने योग्य जो है, उसे जाना। उसने अपने को जाना। अपने को जाना, तो सब जाना।
सहजानंद, मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम्हें यह सूत्र अजीब लगा, क्योंकि विज्ञान के विरोध से शुरू होता है और विज्ञानी की प्रशंसा पर पूर्ण होता है!
मगर विज्ञान है पर को जानना। और विज्ञाता होना है स्व को जानना। विज्ञान है साइंस, विज्ञाता है धर्म। और ये बीच की सारी सीढ़ियां समझने योग्य हैं, बहुमूल्य हैं।
मगर हम अपने ही ढंग से समझते हैं, तो हमें कीमती से कीमती बातें भी अजीब सी लगने लगती हैं। हमारी भी मुसीबत है।
सेठ चंदूलाल ने अपने मित्र ढब्बूजी से कहा, मेरे दांत में बहुत दर्द है। ढब्बूजी, क्या करूं?
ढब्बूजी ने कहा, कुछ करने की जरूरत नहीं। मेरे भी दांत में एक बार ऐसा दर्द हुआ था। मैं अपने घर गया और मेरी पत्नी के एक चुंबन मात्र से ही सारा दर्द खतम हो गया। इसलिए मेरी मानो और जैसा मैंने किया वैसा करो!
सेठ चंदूलाल बोले, बात तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन क्या तुम्हारी पत्नी
इस बात के लिए राजी हो जाएगी?
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू कह रहा था, पापा, मैं पढ़ी-लिखी, बुद्धिमान, कुशल, सुशील और सुंदर लड़की से शादी करूंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, मतलब! फजलू, पांच लड़कियों से एक साथ शादी करना चाहते हो?
एक स्त्री ने किसी फोटोग्राफर से मेले में पूछा, बच्चों की फोटो किस रेट से उतारते हो?
फोटोग्राफर ने कहा, दस रुपए में बारह!

तब तो मैं बाद में आऊंगी।
फोटोग्राफर ने कहा, क्यों?
उसने कहा, अभी तो मेरे सिर्फ दो ही बच्चे हैं!
समझने के ढंग! अपनी-अपनी समझ!
एक युवती जैसे ही नदी में कूदने को थी कि चैकीदार ने उसे टोक दिया, रोक दिया। बोला कि नदी में नहाने की मनाही है!
युवती ने गुस्से में कहा, जब मैं कपड़े उतार रही थी, तभी तुमने यह बात क्यों न बताई?
चैकीदार बोला, यहां सिर्फ नहाने की मनाही है, कपड़े उतारने की नहीं!
एक डाकखाने के पोस्ट मास्टर छुट्टी लेकर अपने घर आराम कर रहे थे। बाहर से पोस्टमैन ने आवाज दी, बाबूजी, रजिस्ट्री ले लो।
पोस्ट मास्टर साहब कमरे के अंदर से ही आंखें मूंदे चिल्ला कर बोले, अरे कमबख्त! आज तो मुझे चैन से रहने दे। मैं छुट्टी पर हूं!
वे बेचारे अपने दफ्तर में ही अपने को समझ रहे हैं! समझ तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती। वह हमेशा खड़ी है वहां, और प्रत्येक चीज की व्याख्या करती रहती है।
एक अत्यंत सुंदर युवती ने एक नवजवान भिखारी को पेट भर खाना खिला कर कहा, और कुछ?
भिखारी ने कहा, जीसस का वचन याद करोः मनुष्य केवल रोटी के लिए ही नहीं जीना चाहता है!
किसी गुफा में तीन साधु ध्यानमग्न बैठे थे। एक दिन उधर से शेर गुजरा।
छह महीने बाद एक साधु बोला, कितना सुंदर शेर था!
एक साल बाद दूसरा साधु बोला, यह शेर नहीं चीता था!
दो साल बाद तीसरा साधु बोला, यदि तुम दोनों इसी प्रकार लड़ते-झगड़ते रहे
तो मैं किसी दूसरे स्थान पर चला जाऊंगा!
आज इतना ही।

मेरा स्वर्णिम भारत-22

दर्शन: एक आत्मिक संस्पर्श
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #8)

पहला प्रश्न: भगवान, छांदोग्य उपनिषद में एक सूत्र इस प्रकार है:
न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखतां
सर्व ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति।
सर्वश इति।
अर्थात ज्ञानी न मृत्यु को देखता है, न रोग को और न दुख को; वह सबको आत्मरूप देखता है। और सब कुछ प्राप्त कर लेता है।
भगवान, आप तो गवाह हैं, क्या सच ही बुद्धपुरुष को मृत्यु, रोग और दुख में भी आत्मरूप ही दिखाई पड़ता है?
इस सूत्र पर हमें दिशाबोध देने की कृपा करें।

सहजानंद, संबोधि का अर्थ है: अहंकार का मिट जाना। मैं-भाव की समाप्ति अस्मिता का अंत। और जहां मैं नहीं है, वहां सवाल नहीं उठता मृत्यु का। मैं की ही मृत्यु होती है। अहंकार ही मरता है। क्योंकि अहंकार ऐसे हैं जैसे ताशों से बनाया घर। जरा-सा हवा का झोंका आया और गिरा। झूठा है, अब गिरा, तब गिरा; गिरकर ही रहेगा। काल्पनिक है। स्वप्नवत है। टूटेगा ही। कितनी देर खींचोगे? कितनी देर अपने को समझाओगे, भुलाओगे? जरा-सी चोट में बिखर जाएगा। अहंकार चूंकि असत्य है, इसलिए मृत्यु भी असत्य है। अगर मैं नहीं हूं,
तो कौन मरेगा? कैसे मरेगा? मरने के लिए होना जरूरी है।
इसलिए बुद्ध ने समाधि की परमदशा को निर्वाण कहा है।
निर्वाण शब्द का अर्थ बड़ा प्यार है। अनूठा भी अकल्पनीय भी। निर्वाण
का अर्थ है: दीये का बुझ जाना। साधारणतः तो सूझ-बूझ में नहीं आएगा कि दिये का बुझ जाना या दीये का जल जाना? क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि उस परमदशा में दीया जल जाएगा। और बुद्ध कहते हैं: उस परमदशा में दीया बुझ जाएगा! निर्वाण का शाब्दिक अर्थ होता है: दीये का बुझ जाना; दीये का अंत। यहां दीये से अर्थ है: तुम्हारे अहंकार की टिमटिमाती लौ और धुआं। तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। जब तक तेल है, तब तक जलता रहेगा। जब तक बाती है, तब जक धोखा बना रहेगा। मगर क्षणभंगुर है। क्योंकि तेल चुकेगा ही, उसकी सीमा है। और बाती जलेगी, उसकी भी सीमा है। और बाती और तेल पर जो निर्भर है, वह कितनी देर टिकने वाला है? जो क्षणभंगुर पर निर्भर है, वह स्वयं भी क्षणभंगुर ही होगा। इसलिए बुद्ध कहते हैं: दीये का बुझ जाना।
लेकिन यह एक हिस्सा है। यह पहला पहलू है। यह यात्रा का आधा अंग है। जिस दिन तुम्हारे मैं का दीया बुझ जाता है, तो ऐसा नहीं कि अंधकार हो जाता है। उल्टी ही घटना घटती है। उस घटना समझने के लिए रवींद्रनाथ ठाकुर के जीवन में उल्लिखित यह संस्मरण उपयोगी होगा--
वे अक्सर ही पद्मा नदी पर अपने बजरे में रहने चले जाते थे। छोटा-सा बजरा था। और पद्मा की शांत, किसी एकांत स्थली पर वे बजरे को टिका रखते थे। उनका श्रेष्ठतम काव्य है, उस बजरे पर ही पैदा हुआ है। एक रात ऐसा हुआ-- पूर्णिमा की रात थी, आकाश पूरे चांद की रोशनी से भरा था, पृथ्वी भी जगमगाती थी, पत्ते-पत्ते पर रौनक थी, पद्मा की लहर-लहर पर चांदी थी, और वे अपने बजरे के छोटे-से झोपड़े में द्वार-दरवाजे बंद किये एक मिट्टी का दीया जलाए हुए पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक सौंदर्य-शास्त्री क्रोशे की किताब पढ़ रहे थे सौंदर्य के ऊपर, कि सौंदर्य क्या है? सौंदर्य झर रहा था बाहर, बरस रहा था, कण-कण पर नाच रहा था; आकाश में था, पृथ्वी में था, झील में था, वृक्षों पर था; दूर कोई कोयल कूकती थी अमराई में, लेकिन वे इस सबसे बेखबर अपनी किताब में आंखें गड़ाए--क्योंकि दीये की रोशनी बहुत ज्यादा न थी; और रवींद्रनाथ बूढ़े भी हो गये थे, आंखों को बहुत सूझता भी न था--किसी तरह पढ़ने की कोशिश कर रहे थे क्रोशे को। और क्रोशे विचार कर रहा था कि सौंदर्य क्या है।...जैसे कि सौंदर्य पर विचार किया जा सकता है! सौंदर्य अनुभूति है, विचार क्या खाक

करोगे! विचार करके तो तुम सौंदर्य को पाओगे नहीं। जीना विश्लेषण करोगे, उतना ही खो जाएगा। जितना मुट्ठी बांधोगे, उतना ही पाओगे हाथ खाली हैं। विश्लेषण करके किसने कब सौंदर्य जाना है? प्रश्न उठाया तुमने कि सौंदर्य क्या है, कि समझ लेना कि तुम्हें सौंदर्य का कभी भी पता न चलेगा। सौंदर्य जीया जाता है, अनुभव किया जाता है। हां, गाओ; नाचो; वीणा बजाओ; फूल के साथ एकात्म हो जाओ; या चांदत्तारों के लोक में खो जाओ; इस विस्मृति में शायद थोड़ी बुंदा-बांदी हो जाए, थोड़े भीग जाओ, आर्द्र हो जाओ! शायद तुम्हारे भीतर सौंदर्य की थोड़ी-सी झलक, थोड़ी-सी पुलक उठे! शायद तुम्हारे रोओं में थोड़ा-सा कंपन हो, हलन-चलन हो! शायद तुम्हारा हृदय बजे, निनादित हो! कोई झरना शायद भीतर फूटे! मगर विचार से नहीं, निर्विचार से। मन से नहीं, मौन से।...
क्रोशे की किताब पढ़ते-पढ़ते आधी रात हो गयी। सौंदर्य क्या है, यह तो कुछ समझ आया नहीं--रवींद्रनाथ जैसे व्यक्ति को, जिसे कि सौंदर्य की बहुत-सी अनुभूतियां थीं, उसे भी समझ में न आया। वरन उल्टी बात हुई जितना क्रोशे को पढ़ा उतना ही जो पहले भी समझ में आता था कि सौंदर्य क्या है, वह भी अस्त-व्यस्त हो गया; उस पर भी संदेह उठ खड़े हुए।...विचार संदेहों को जन्म देता है। निर्विचार अनुभूति को। समाधि में समाधान है। विचार में तो समस्याएं ही समस्याएं हैं।...थक कर--आंखें भी थक गयी हैं--उन्होंने दीये को फूंक कर बुझा दिया और किताब बंद की। और तब, उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है--थोड़े- से शब्द, लेकिन अति महत्वपूर्ण; हीरे-जवाहरातों से भी तौलो तो वजनी--लिखा है कि जैसे ही मैंने दीया बुझाया और किताब बंद की, में चकित हो गया, क्षणभर को भरोसा न आया, अवाक रह गया, ठिठक गया, रंध्र-रंध्र से, दरवाजे की संध से, खिड़की की संध से चांद का प्रकाश भीतर चला आया। चांद भीतर नाचने लगा। यह मेरा छोटा-सा दीया, इसकी टिमटिमाती यह धुंधली-सी रोशनी, यह धुएं से भरी रोशनी--जो बहुत रोशनी न थी--यह पीली-सी रुग्ण बीमार, ज्वरग्रस्त रोशनी चांद की, उज्ज्वल चांद की अपूर्व छटा को बाहर अटकाए हुई थी, भीतर न आने देती थी! इधर दीया बुझा,उधर चांद भीतर आया। दीये का बुझना आधा हिस्सा और चांद का भीतर आ जाना दूसरा हिस्सा।
फिर उन्होंने द्वार खोल दिये। जब रंध्र-रंध्र से इतना आ रहा है, तो द्वार खोल दिये, खिड़कियां खोल दीं। क्षण में जैसे क्रांति हो गयी। एक जादू! वे बाहर निकल आए। जब भीतर इतना है तो बाहर कितना न होगा! और बाहर अपूर्व छटा थी। ऐसी सुंदर रात, ऐसी प्यारी रात, ऐसे सन्नाटे से भरी रात; दूर कोयल की कुहू-कुहू और पद्मा की लहरों पर तैरती हुई चांद की चांदी, मन ठहर गया। मन को गति न रही। जैसे समाधि लग गयी। कितना समय बीता, कुछ याद ही न रहा। जैसे समय मिट गया। जैसे घड़ी ठहर गयी।
और तब उन्होंने लिखा है कि जो मैं शास्त्र में खोज रहा था, वह बाहर बरस रहा था। मैं शास्त्र में अटका था, सो उसे नहीं देख पा रहा था जो मौजूद था। मैं शब्दों में उलझा था और सत्य द्वार पर दस्तक दे रहा था। लेकिन फुर्सत कहां थी? मैं होश में कहां था? मैं तो ऊहापोह में पड़ा था। उस धीमी-सी दस्तक को सुने तो कौन सुने? उस चांद की गुफ्तगू को सुने तो कौन सुने? वह चांद तो पुकार रहा था, निमंत्रण दे रहा था, कि खोलो द्वार, खोलो, खिड़कियां, कि मैं आया हूं अतिथि की तरह, लो मुझे भीतर। मगर भीतर तो हजार-हजार विचार दौड़े रहे थे। उस शोरगुल में कहां कोयल; उस शोरगुल में कहां चांद, कहां नदी! और फिर वह दीये की टिमटिमाती, पीली-सी, ज्वरग्रस्त रोशनी अटकाए थी चांद को। दीया बुझा--दीया निर्वाण को उपलब्ध हुआ। और चांद भीतर चला आया। और चांद भीतर आया तो रवींद्रनाथ बाहर आ गये।
ठीक बुद्ध ने इसी अर्थों में निर्वाण कहा है। अहंकार का टिमटिमाता दिया बुझ जाए, तो यह सारा आकाश तुम्हारा है। ये सारे चांदत्तारे तुम्हारे हैं। तुम नहीं हो तो सब तुम्हारा है।
इस विरोधाभास को ठीक से समझ लेना, क्योंकि इसमें ही सारे धर्म का राज, सारे अनुभूतियों का निचोड़ है। जैसे कोई हजार-हजार गुलाब के फूलों को निचोड़ कर इत्र बनाए, ऐसा इसमें सारा निचोड़ है रहस्यवादियों का, ऋषियों का। छांदोग्य का यह सूत्र गहरा है। बहुत गहरा है। अहंकार मिट जाए, तुम न रहो, तो सब तुम्हारा है। तुम न रहे, तो कुछ पराया न रहा। यह मैं ही है जो तू

को खड़ा कर देता है। यह मैं ही है जो विभाजित कर देता है। यह मैं का विभाजन गिर गया, यह रेखा हट गयीं, तो आंगन मिट कर आकाश हो जाता है। आंगन के चारों तरफ तुमने जो दीवाल खींच रखी है, उसे गिरा दो, तो तुम्हारा आंगन आकाश है। न पश्यतो मृत्युं...
ज्ञानी को मृत्यु दिखाई ही नहीं पड़ती। ज्ञानी मृत्यु को जानते ही नहीं। ज्ञानी मरता ही नहीं। क्योंकि जो चीज मर सकती थी, उसे ज्ञानी ने पहले ही मर जाने दिया। अहंकार मर सकता था। जो नहीं था, वही मर सकता था, जो है, वह तो सदा है। जो है, वह नहीं नहीं होता, और जो नहीं है, तुम लाख उपाय करो, वह है नहीं होता। हां-थोड़ी-बहुत देर को अपने को भरमा सकते हो, धोखे में डाल दे सकते हो, आत्मवंचना कर सकते हो, मगर कितनी देर करोगे? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जनम में नहीं अगले जनम में, कभी न कभी इस सत्य को जानना ही होगी कि अहंकार ही है जो मृत्यु को लाता है। झूठ ही मरता है। सत्य तो अमृत है। झूठ ही हारता है। सत्य तो सदा जीतता है। सत्यमेव जयते। झूठ ही डरता है। सत्य तो हर चुनौती को स्वीकार कर लेता है। सत्य को भय क्या?
सुकरात मर रहा था। उसे जहर दे कर मारा जा रहा था। कसूर क्या था? कसूर
यह था उसका कि वह सत्य की बातें करने लगा था। और सत्य की बातें झूठों के सौदागर पसंद नहीं करते। और यहां झूठों के सौदागर बहुत हैं। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे झूठों के सौदागरों से भरे पड़े हैं। मगर उनकी झूठे पुरानी है। इतनी पुरानी हैं कि उनकी बड़ी साख हो गयी है। यहां तो पुराने का बड़ा मूल्य है! जितना सड़ा-गला हो, उतना मूल्यवान समझा जाता है! जितना मुर्दा हो, अस्थि-पंजर रह गया हो, उतना ही बहुमूल्य है! और सुकरात सत्य की बातें करने लगा। पंडित, पुरोहित, राजनेता सभी खिन्न हो उठे।
सुकरात को सजा दी गयी जहर से मार डालने की। सुकरात के एक शिष्य क्रेटो
ने उससे मरने के पहले पूछा...वह वार्तालाप अनूठा है!...क्रेटो ने पूछा, आप हमें यह तो बता दें कि मरने के बाद हम आपका अंतिम-संस्कार कैसे करें? इस संबंध में आपने कभी कोई संकेत नहीं दिया। आप चाहेंगे कि हम आपको गड़ाएं, जलाएं, नदी में बहाएं? पारसियों की तरह आपकी देह को पशु-पक्षियों में खाने के लिए छोड़ दें? कि पूर्वी लोगों की तरह अग्नि-संस्कार करें? या पश्चिम की प्रचलित धारा के अनुसार आपको मिट्टी में दबाएं? या कुछ जातियों के रिवाज के अनुसार आपको सागर में विसर्जित कर दें? हम क्या करें?
सुकरात हंसने लगा। और उसने कहा, पागलो, वे सोचते हैं कि मुझे मार रहे हैं और तुम सोचते हो कि तुम मुझे गड़ाओगे, कि तुम मुझे जलाओगे! दुश्मन सोचता है मुझे मार रहा है और दोस्त विचार कर रहे हैं कि मर जाने के बाद गड़ाना है कि जलाना है, मगर तुम दोनों का भरोसा मौत में है। तुम दोनों मौत को मानते हो, और मैं मौत को नहीं मानता हूं मुझे मौत दिखाई नहीं पड़ती। और, क्रेटो, मैं तुझसे कहता हूं कि मुझे मारने वाले और मुझे गड़ाने वाले, तुम दोनों के बाद भी में जिंदा रहूंगा। तुम्हारी याद ही सिर्फ इसलिए की जाएगी कि किसी तरह तुम एक जिंदा आदमी से संबंधित थे।?
और बात सच है। क्रेटो को किसने याद रखा होता? यह नाम सिर्फ इसलिए याद है, आज पच्चीस सौ साल बाद इस नाम को मैं तुम्हारे सामने उल्लिखित कर रहा हूं, सिर्फ इस कारण कि क्रेटो सुकरात से संयुक्त हो गया था, तो क्रेटो का नाम तक पच्चीस सौ साल जी गया। जब तक सुकरात का जीएगा, क्रेटो का भी जीएगा। और सुकरात ने यह कहा था उससे कि तुम सब मरोगे, कि फिर भी मैं रहूंगा। क्योंकि जो मेरे भीतर मर सकता था, कभी का मर चुका है। इसीलिए तो मृत्यु को मैं इतना आनंद से अंगीकार कर रहा हूं।
अदालत ने पूछा भी था--अदालत को दया भी आयी थी; न्यायाधीश थोड़ा अपराध भी अनुभव किया होगा, चूंकि सुकरात जैसे प्यारे आदमी को जहर देकर मार डालना अन्याय तो था! मगर न्यायाधीश भी क्या करे, जूरियों का बड़ा वर्ग मारने के पक्ष में था। एथेंस मारने के पक्ष में था। धनपति, राजनेता, धर्मगुरु, सब मारने के पक्ष में थे। और न्यायाधीश उनके विपरीत नहीं जा सकता था। जाता तो उसकी खुद की मौत होती, वह खुद मुश्किल में पड़ता। फिर भी उसने बचाने का उपाय किया था। उसने सुकरात से कहा था, तुम अगर एथेंस का नगर छोड़ कर चले जाओ और फिर वचन दो कि कभी एथेंस नहीं आओगे, तो--बड़ी दुनिया है, तुम्हें जहां रहना हो रहो--मैं तुम्हें मरने की सजा से बचा सकता हूं।

सुकरात ने कहा: क्या तुम सोचते हो तुम मुझे मरने से बचा सकोगे? आज नहीं मरूंगा, कल नहीं मरूंगा तो परसों मरूंगा, एथेंस में नहीं मरूंगा तो कहीं और मरूंगा; जब मरना ही है तो क्या आपाधापी! फिर क्यों छोड़ कर एथेंस जाऊं? एथेंस छोड़ कर जाने का मतलब तो यह होगा कि मैं अभी भी भरोसा करता था अपने अहंकार में: जितनी देर बचा लूं! क्या फर्क पड़ता है! मौत निश्चित है; कब आएगी, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम चिंता न करो। और तुम अपराधभाव अनुभव न करो। तुम। सजा दो। मैं कहीं जाने वाला नहीं हूं। मरने के बाद भी कहीं जाने वाला नहीं हूं। मरने के बाद भी यहीं रहूंगा।
यही रमण महर्षि ने कहा था। मरते समय एक शिष्य ने पूछा कि क्या आपसे पूछूं कि मरने के बाद आप कहां होंगे? रमण ने कहा, यहीं होऊंगा। और कहां होऊंगा? मरने के पहले यहां हूं, जन्म के पहले यहां था, मरने के बाद भी यहीं होऊंगा। जाना कहां है? आना कहां है?...इसको कहते हैं आवागमन से छुटकारा! इस बोध का नाम है आवागमन से छुटकारा! कि न कुछ मरता है, न कुछ जन्मता है, तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वह शाश्वत है। नित्य है। समयातीत है। सदा से है और सदा रहेगा। और जैसा है वैसा ही है। हां, तुमने कुछ झूठे घर-घुले रेत के अपने आसपास बना लिये होंगे, तो वे जरूर गिरेंगे। वे ही मरते हैं। न्यायाधीश ने फिर भी चेष्टा की कि ठीक, तुम्हें एथेंस में रहना है तो एथेंस में रहो, लेकिन इतना वचन दे दो कि अब तुम सत्य की जो बातें करते रहे, न करोगे। तो भी मैं तुम्हें छोड़ दे सकता हूं। क्योंकि लोगों को तुमसे एतराज नहीं है, तुम्हारी बातों से एतराज है। अगर तुम भरोसा दिला दो, तो हमें तुम्हारे भरोसे पर भरोसा है। हम मान सकते हैं कि तुम कहोगे तो अपने वचन को पूरा करोगे। तुम वचन-बद्ध व्यक्ति हो। तुम्हारे दुश्मन भी यह मानते हैं। तुम इतना कह दो कि अब तुम जिन बातों को सत्य कहते हो, उनको नहीं कहोगे। तुम चुप रहो। तुम शिक्षण देना बंद कर दो।
सुकरात ने कहा: फिर जीने का सार क्या? मैं तो जी ही इसलिए रहा हूं-- मेरा काम तो पूरा हो चुका; मेरा काम तो कभी का पूरा हो चुका; जिस दिन मैंने जान लिया है अपने को उसी दिन काम पूरा हो चूका; अब तो मैं इसलिए जी रहा हूं कि कुछ और लोगों को जगा सकूं। मैं तो जाग गया, जो लोग अभी भी सोए हैं और सपनों में खोए हैं, उनको झकझोर सकूं और जगा सकूं। और मैं मानता हूं कि किसी की नींद तुम तोड़ोगे तो वह नाराज होता है! वह प्यारा सपना देख रहा हो सकता है, सुंदर सपना देख रहा हो--और तुम उसे झकझोर के जगा देते हो! पीड़ा होती है। वह नहीं चाहता जागना। इसलिए मैं कुछ एतराज नहीं करता हूं लोगों पर कि क्यों मुझे मार डालना चाहते हैं। वे ठीक हैं। मगर मैं अपने काम को बंद नहीं करूंगा। सत्य तो मेरा जीवन है। मैं बोलूंगा तो सत्य, चुप रहूंगा तो सत्य, उठूंगा तो सत्य, बैठूंगा तो सत्य। यह वचन मैं नहीं दे सकता हूं। अगर सत्य ही बोलना बंद करना है तो जहर पी लेने में हर्ज क्या है।
न्यायाधीश ने दो विकल्प दिये थे, दोनों सुकरात ने छोड़ दिये। छोड़ सका सुकरात यह विकल्प इसीलिए कि भीतर अमृत को जान लिया है। जिसने अहंकार, छोड़ा, उसने अमृत को जाना।
यह सूत्र ठीक कहता है: न पश्यतो मृत्युं। ज्ञानी को मृत्यु है ही नहीं, दिखाई ही नहीं पड़ती, अनुभव में ही नहीं आती। मरते क्षण में भी ज्ञानी को मृत्यु नहीं दिखाई पड़ती। उसे तो स्वयं का शाश्वत जीवन ही दिखाई पड़ता रहता है। उसे तो भीतर का चैतन्य ही दिखाई पड़ सकता है। उसे तो भीतर का चैतन्य ही दिखाई पड़ सकता है। देखता है कि देह जा रही है, अगर देह मेरी थी कब? देखता है कि मन जा रहा है, लेकिन मन मेरा था कब? देखता है कि सांस बंद हुई जा रही है, लेकिन में सांस था कब? देखता है जल्दी ही यह घर उजड़ जाएगा, मगर मैं घर था ही नहीं। मैं तो मेहमान था, अतिथि था। और घर तो घर भी न था, सराय थी।...
बहुत अदभुत सूफी फकीर हुआ: इब्राहिम। वह सम्राट था बल्ख और बुखारा का। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था। और जैसे कि सम्राटों की रात होती है, उसकी भी रात थी, करवट बदलने वाली रात। सो नहीं पा रहा था। परेशान हो रहा था। करवट बदल रहा था। नींद का कोई पता न था, दूर-दूर तक कोई पता न था। कोई संभावना भी न थी। पैरों कील कोई आहट भी न थी। और तभी उसने देखा उसके छप्पर पर कोई चल रहा है। सोचा, निश्चित कोई चोर है। या कोई हत्यारा है। चिल्लाया:

कौन है? ऊपर से आवाज आयी: परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। न मैं कोई चोर हूं, न मैं कोई हत्यारा हूं। और आवाज कुछ ऐसी बुलंद थी, आवाज में कुछ ऐसी बुलंदगी थी, कुछ ऐसा बल था, इब्राहिम ठिठक रहा! तो पूछ, फिर तुम कौन है? तो आवाज आयी कि मेरा ऊंट खो गया है, मैं उसे खोज रहा हूं। इब्राहिम ने कहा, तू पागल है! ऊंट कहीं छप्परों पर खोजे जाते हैं? और वह आदमी खिलखिला कर हंसा, उसने कहा, हां, मैं पागल हूं; और तू समझदार है! तू आनंद खोज रहा है राजसिंहासनों पर; तो क्या कसूर है मेरा अगर मैं ऊंट खोजूं छप्परों पर? नींद तक मिल नहीं रही है तुझे और आनंद की तलाश कर रहा है! पागल मैं या पागल तू? बात ऐसी साफ थी, बात ऐसी धार वाली थी, कि इब्राहिम उठ कर बैठ गया। पहरेदारों को बुलाया और कहा कि इस आदमी को खोजो! यह आदमी कोई साधारण नहीं है। असल में जिस आदमी की मैं तलाश में था, उस तरह का आदमी है। जो मुझे जगा सकते है, उस तरह का आदमी है। जो मुझे होश दे सकता है। क्या बात इसने कही है! मगर वह आदमी नहीं पकड़ा जा सका। उसका कुछ पता ही न चला।
दूसरे दिन इब्राहिम जब अपने दरबार में बैठा था और दरबार भरा था तो फिर उसे वही आवाज सुनायी पड़ी। इस बार दरवाजे पर। द्वारपाल के साथ वही आदमी विवाद कर रहा था। विवाद का वही ढंग था, जो रात इब्राहिम के साथ था। वही बुलंदगी, वही बल, वही कटार की धार। शब्द नहीं, अंगारे। और फिर भी फूलों से प्यारे। वह आदमी कह रहा था पहरेदार से कि मुझे ठहरने दो इस सराय में, इस धर्मशाला। में। और पहरेदार कह रहा था कि अपने शब्द वापिस ले लो, यह कोई सराय नहीं, यह कोई धर्मशाला नहीं, यह सम्राट का निजी महल है, निजी निवास है। वह आदमी खिलखिला कर हंसा। वह हंसी वही थी, रात की। इब्राहिम उसे भूल नहीं सकता था। जिंदगी भर नहीं भूल सकता था और अभी तो बात बड़ी ताजा थी। अभी तो रात ही यह हंसी सुनी थी। और वह आदमी फिर खिलखिलाया और उसने कहा कि मैं तुझसे कहता हूं कि यह सराय है, मुझे भीतर जाने दे। मैं सराय के उस आदमी से मिलना चाहता हूं जिसको यह भ्रांति है कि यह उसका मकान है, निवास है। यह कौन है इब्राहिम? इब्राहिम ने फौरन आदमी भेजा और पहरेदार से कहा रोको मत, उसे भीतर आने दो।
यह आदमी भीतर आया।
इब्राहिम ने कहा, मालूम होता है तुम्हारा दिमाग खराब है, यह मेरा निजी
घर है और तुम इसे सराय कह रहे हो, धर्मशाला कह रहे हो! तुम्हें डर भी नहीं कि सम्राट के महल को धर्मशाला कहोगे तो सजा पाओगे! वह आदमी कहने लगा, धर्मशाला है इसलिए धर्मशाला कह रहा हूं। कैसा सम्राट? किसका निवास? मैं पहले भी आया था, तब मैंने इस सिंहासन पर एक दूसरे आदमी को देखा था; तुम इस पर कब बैठ गये? इब्राहिम ने कहा, वह मेरे पिता था। और उसने कहा कि मैं उनके भी पहले आया था और तब मैंने एक तीसरे आदमी को बैठे देखा था। वह कौन था? अब्राहिम ने कहा, वे मेरे पिता के पिता थे। और वह आदमी कहने लगा फिर भी तुम इसे अपना मकान कह रहे हो! मैं फिर आऊंगा और तुम्हें नहीं पाऊंगा। मैं कहता हूं धर्मशाला है, यहां कई लोग ठहरे और आये और गये। यह सराय है। मुझे भी ठहर जाने दो! तुम भी ठहरे हो, मुझे भी ठहर जाने दो!
इब्राहिम उसके चरणों में गिर पड़ा, और उसने कहा कि तुम इस सराय में ठहरो, मैं चला! मगर तुमने मेरा जीवन धन्य कर दिया! नहीं तो मैं इसी सराय में बर्बाद हो जाता।
फिर इब्राहिम बड़ा प्रसिद्ध सूफी फकीर हो गया। वह बल्ख के बाहर ही, अपनी राजधानी के बाहर ही झोपड़ा बना कर रहता था। और अक्सर उसके झोपड़े पर उपद्रव हो जाता था। क्योंकि उसका झोपड़ा एक चौराहे पर था, और वहां से राहगीर आते तो वे पूछते कि बस्ती का रास्ता कौन-सा? तो वह बता देता कि बायें जाना; ख्याल रखना, बायें जाना; दायें मत जाना, अगर दायें गये तो मरघट पहुंच जाओगे; बायें गये तो बस्ती। वे बेचारे बायें जाते, और दो-चार मील चलने के बाद मरघट पहुंच जाते। वे लौट कर गुस्से में आते, कि तुम आदमी पागल हो या क्या हो? इतना जोर देकर तुमने कहा बायें जाना, बस्ती बायें है, और दायें मत जाना, दायें मरघट--और हमने पाया कि बायें मरघट है! इब्राहिम कहता, तो फिर हमारीत्तुम्हारी भाषा में भेद है। क्योंकि मरघट में जो लोग बस गये हैं वे उखड़ते नहीं वहां से, इसलिए उसको मैं बस्ती कहता हूं। और जिसको तुम बस्ती कहते हो, उसको मरघट कहता हूं, क्योंकि वहां जो भी बसे हैं, वे आज मरे,

कल मरे। वहां मौत आने ही वाली है। वहां सब कतार बांधे खड़े हैं मरने को। "क्यू" लगा है। जिसका नंबर आ जाए, वह मरता जाता है। उसको मैं मरघट कहता हूं। और जिसको तुम मरघट कहते हो, उसको मैं बस्ती कहता हूं; क्योंकि वहां जो बस गया, उसको तुमने कभी उजड़ते देखा! फिर उसे तुमने कभी घर बदलते देखा!
यह शरीर एक सराय है, यह मन एक सराय है, जिसने ऐसा जान लिया, जिसने ध्यान में ऐसा अनुभव कर लिया, जिसकी यह प्रतीति गहरी हो गयी कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। मैं गवाह हूं। तुम ठीक कहते सहजानंद, कि भगवान आप तो गवाह हैं, क्या सच ही बुद्धपुरुष को मृत्यु, रोग और दुख में भी आत्मरूप ही दिखाई पड़ता है? और कोई उपाय ही नहीं है। बुद्धपुरुष का अर्थ होता है: "मैं" मिट गया, "मैं" के साथ मिट गया सारा अंधकार, "मैं" के साथ मिट गयी सारी विक्षिप्तता "मैं" के साथ मिट गयी सारी मूर्च्छा, निद्रा, तंद्रा, होश आया! और होश में क्या पाया कि साक्षी हूं। सिर्फ साक्षी। सिर्फ द्रष्टा। शरीर को देख रहा हूं; जीवन को देख रहा हूं, मृत्यु को भी देखूंगा, लेकिन मेरा न तो जीवन है, न मृत्यु है। मैं दोनों के पार हूं। इस अतिक्रमण का नाम ही बुद्धत्व है।
जहां और भी हैं चांदत्तारों के पार
आसमान और भी हैं...
अभी इश्क के इम्तहान और भी हैं...
ये आखिरी इम्तहान है। इसके पार फिर कोई इम्तहान नहीं है। शरीर के साथ जुड़े हो, अभी संसार में हो। मन के साथ जुड़े हो, तो अभी विक्षिप्त हो। शरीर और मन से अपने को पृथक जाना, पृथक जानते ही अहंकार टूट जाता है। अहंकार है तादात्म्य शरीर और मन के साथ। निरहंकारिता है तादात्म्य का टूट जाना। टूटने की प्रक्रिया बड़ी सीधी है। साक्षीभाव। सिर्फ देखो। बीमारी आए तो बीमारी देखो। और स्वास्थ्य आए तो स्वास्थ्य देखो। जब भूख लगे तो भूख देखो। और जब पेट भर जाए तो तृप्ति देखो। जब प्यास लगे तो प्यास देखो। और अब कंठ प्यास से मुक्त हो जाए तो उस मुक्ति को देखो। मगर तुम दोनों हालत में देखने वाले हो। न तुम प्यास हो, न तुम प्यास की तृप्ति हो। न तुम भूख हो, न तुम भोजन के बाद हुई तृप्ति। हो तुम हर हाल में सिर्फ साक्षी हो। क्रोध आए तो क्रोध को देखो, और करुणा आए तो करुणा को देखो। काम उठे तो काम को देखो, और ब्रह्मचर्य जगे तो ब्रह्मचर्य को देखो। ब्रह्मचारी मत हो जान! कामी ब्रह्मचारी हो जाते हैं। मतलब एक तादात्म्य छूटा, दूसरा पकड़ा। भोगी योगी हो जाते हैं। एक तादात्म्य छूटा, दूसरा पकड़ा। एक जेल से निकले नहीं कि वे दूसरे में तत्क्षण प्रविष्ट हो जाते हैं।
मैं अपने अपने संन्यासी को कहता हूं: न तुम योगी, न तुम भोगी, तुम सिर्फ साक्षी।
"न पश्यतो मृत्युं"। फिर मृत्यु दिखाई नहीं पड़ती। "पश्यति न रोगे नोत दुखतां"। फिर न रोग दिखाई पड़ते हैं, न दुख दिखाई पड़ते हैं। नहीं, ऐसा नहीं है कि रोग नहीं आते। इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि रोग नहीं आते। रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण महर्षि भी कैंसर से मरे। महावीर की मृत्यु छः महीने की लंबी पेचिश की बीमारी से हुई। बुद्ध, विषाक्त भोजन ने उनके सारे शरीर को रुग्ण कर दिया। लेकिन इन सूत्रों को न समझ पाने के कारण--और कैसे समझोगे जब तक ध्यान में न उतरोगे?--जैनों ने कहानियां गढ़ीं कि महावीर को बीमारी नहीं हुई; कहीं तीर्थंकर को बीमारी होती है!
तीर्थंकर को भी बीमारी होती है। दिखाई नहीं पड़ती बीमारी; मैं बीमार हूं ऐसी प्रतीति नहीं होती, बीमारी तो होती है। अगर बीमारी न होती तो तीर्थंकर मरते कैसे? तीर्थंकर भी बूढ़े होते हैं।--तुम लाख छिपाने की कोशिश करो! तुमने किसी तीर्थंकर की बूढ़ी प्रतिमा नहीं देखी होगी। सब प्रतिमाएं जवान हैं। महावीर अस्सी साल के हो कर मरे। अस्सी साल के हुए तो बूढ़े हो गये थे। लेकिन मंदिरों में जाकर तुम देखोगे तो यूं लगता है कि वे हमेशा जवान हैं। चौबीस ही तीर्थंकर जवान हैं। इनमें से कुछ की उम्र तो बहुत लंबी है। अगर शास्त्रों की मान कर चलो, तो हजारों वर्ष की है। ये तो ऐसे जराजीर्ण हो गये होंगे जिसको हिसाब नहीं! सत्तर वर्ष में तो आदमी की गति हो जाती है, दुर्गति तो जाती है, हजारों साल में तो सभी कुछ सूख गया होगा, अस्थि-पंजर रह गये होंगे। लेकिन हम झूठों के आदी हैं। हम कहते हैं:

तीर्थंकर को बीमारी नहीं होती। कहना चाहिए कि तीर्थंकर जानता है कि बीमारी मुझे नहीं है। यह और बात। यही छांदोग्य का सूत्र कह रहा है--
न पश्यतो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखतां
ध्यान रखना, सवाल है: उसे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह बीमारी मैं हूं,
या मैं बीमार हूं। बीमारी तो आती है; जैसे तुम्हें आती है, उसे भी आती है। अरे, जब भूख आती है, प्यास आती है; जवानी आती है, बुढ़ापा आता है, तो बीमारी न आएगी? बीमारी भी आएगी, बुढ़ापा भी आएगा और मृत्यु भी आएगा। मगर, तीर्थंकर को जरा भी प्रभावित नहीं करती। तीर्थंकर अछूता रह जाता है, अस्पर्शित रह जाता है। यह तो बात समझ में आने की है। लेकिन यह बात मूढ़तापूर्ण हो जाती है जब तुम कहने लगते हो: बीमारी ही नहीं आती है। फिर तुम्हें न-मालूम क्या- क्या कहानियां गढ़नी पड़ती है--झूठी कहानियां! एक झूठ को बचाने के लिए हजार झूठ गढ़ने पड़ते हैं।
तो यह कहानी बढ़नी पड़ी है जैनों को। क्योंकि यह बात को झुठलाएं कैसे कि
छः महीने महावीर पेचिश की बीमारी से परेशान रहे? अब इस बात को छिपाएं कैसे? छः महीने उनको दस्त ही लगते रहे। इसी में उनकी मृत्यु हुई। तो कहानी गढ़नी पड़ती।
कहानी यह गढ़ी कि गोशालक ने उनके ऊपर तेजोलेश्या छोड़ी। गोशालक ने जादू किया--काला जादू। जैन-शास्त्रों में उसका नाम तेजोलेश्या। उसने अपना सारा क्रोध, क्रोधाग्नि उनके ऊपर फेंक दी। और करुणावश वह उस क्रोधाग्नि को पचा गये। क्योंकि अगर वापिस भेजें, तो गोशालक मर जाता। गोशालक न मरे, इसलिए वे पी गये उस तेजोलेश्या को, उस काले जादू को। स्वभावतः जब काला जादू पीआ, तो पेट खराब हो गया।
अब क्या कहानी गढ़नी पड़ी! सीधी-सादी बात है कि पेट की बीमारी थी। इसमें बिचारे गोशालक को फंसाते हो, इसमें तेजोलेश्या की कहानी गढ़ते हो, इसमें करुणा दिखलाते हो--और तुम कहते हो तीर्थंकर सर्वशक्तिशाली होता है, तो तेजोलेश्या को पचा गया तो पूरा ही पचा जाना था फिर क्या पेट खराब करना था! पचा ही जाता पूरा! फिर पेट कैसे खराब हुआ? पचा नहीं पाया। नहीं तो पेट खराब नहीं होना था। पची नहीं तेजोलेश्या।
झूठों से झूठ दबाए नहीं जा सकते।
बुद्ध के संबंध में यही उपद्रव खड़ा हुआ। उनको भोजन दिया गया,...एक गरीब
ने उनको निमंत्रित किया और भोजन दिया, भोजन विषाक्त था।...अब बुद्ध विषाक्त भोजन किये, तो कहानी गढ़नी पड़ी। क्योंकि बौद्धों की धारणा कि बुद्ध तो त्रिकालज्ञ होते हैं, वे तीनों काल जानते हैं, उनको इतना ही नहीं दिखाई पड़ा कि यह भोजन जो है विषाक्त है, इसको में न लूं! अब कैसे इसको छिपाएं? तो छिपाना पड़ता है। छिपाने के लिए बड़ी तरकीबें खोज ली जाती हैं। कि कहीं इसको दुख न हो, अगर मैं कहूं कि यह भोजन विषाक्त है तो इस बेचारे ने मुझे निमंत्रित किया, इस को कहीं दुख न हो, इस कारण बिना कहे विषाक्त भोजन ले लिया। लेकिन कहो या न कहो, आखिर विषाक्त भोजन का परिणाम तो हुआ ही! और परिणाम हुआ तो उस आदमी को भी पता चला ही!
क्या मतलब इसका?
मगर वह त्रिकालज्ञ होते हैं, इस धारणा को बचाए रखने के लिए यह झूठी कहानी गढ़नी पड़ी। कि दयावश। कि कहीं इसे दुख न हो, इसलिए चुपचाप भोजन कर लिया--जहर पी गये। और सर्वशक्तिमान होते हैं। तो फिर जब जहर पी गये थे तो विषाक्त नहीं होना था शरीर। लेकिन शरीर तो शरीर के नियम से चलता है। फिर चाहे बुद्धों का शरीर हो और चाहे बुद्धुओं का शरीर हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। शरीर के अपने नियम हैं। शरीर का अपना गणित है। शरीर प्रकृति का हिस्सा है। और प्रकृति कोई अपवाद नहीं करती। तो जो परिणाम होना था, वह हुआ। मृत्यु उससे फलित हुई।
मृत्यु भी होती है, बीमारी भी होती है, बुढ़ापा भी होता है। फिर भी जो साक्षीभाव को उपलब्ध हो गया है, वह सिर्फ देखता रहता है, उसका कहीं भी ऐसा ताल-मेल नहीं बैठ जाता कि मैं बीमार हूं। यह बात उठती नहीं, यह बात जुड़ती नहीं उसके भीतर। इसलिए बीमारी के बीच भी वह परम स्वस्थ होता है। बीमारी परिधि पर होती है, केंद्र पर स्वास्थ्य होता है। और वही स्वस्थ शब्द का अर्थ भी है: स्वयं में स्थित। बीमारी चारों तरफ रही आए, मगर वह अपने स्वयं

में स्थित होता है; वह अपने स्वयं के केंद्र पर थिर होता है; वहां कुछ हिलता नहीं, डुलता नहीं; ज्यूं था त्यूं ठहराया, वह वहीं ठहरा होता है। मौत भी आती है, वह भी परिधि पर आती है। और केंद्र पर तो वही चिन्मय ज्योति, वही अमृत झरता रहता है।
मैं इसका गवाह हूं।
इसलिए जो मैं सूत्र की व्याख्या कर रहा हूं, वह कोई शाब्दिक व्याख्या नहीं है। मुझे किसी शास्त्र में कोई रस नहीं है। किसी शास्त्र का समर्थन करना चाहिए, ऐसा आग्रह नहीं है। जब तक मेरी बात से, मेरे अनुभव से किसी चीज का तालमेल न हो, मैं समर्थन नहीं करता हूं। इस सूत्र का मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। बुद्धत्व में मृत्यु का कोई अनुभव नहीं है। न रोग का, न दुख का। सब घटता है, बाहर से सब दिखाई पड़ता है,...
रामकृष्ण को गले का कैंसर था। आखिरी-आखिरी दिनों में कुछ सप्ताह तक
तो भोजन भी नहीं ले सकते थे। पानी भी पीना अंतिम दिनों में बंद हो गया था। गला बिलकुल अवरुद्ध हो गया था। गला क्या था, घाव हो गया था कि सिर्फ। उसमें से पानी पीना भी महापीड़ादायी था। और बिना पानी के जीना भी महापीड़ादायी था। विवेकानंद ने रामकृष्ण से कहा कि अगर आप एक बार भी मां काली को कह दें, तो सब अभी ठीक हो जाए। आप कह क्यों नहीं देते? आप क्यों व्यर्थ का दुख झेल रहे हैं? और रामकृष्ण मुस्कुराते। क्योंकि बाहर से तो यही दिखाई पड़ रहा है कि महादुख है, मगर विवेकानंद को भीतर का कुछ भी पता नहीं है। रामकृष्ण को भीतर कोई दुख नहीं है। दुख विवेकानंद और रामकृष्ण के बीच में है। विवेकानंद तो बाहर हैं दुख के, रामकृष्ण भी बाहर हैं। रामकृष्ण भीतर की तरफ बाहर हैं--और विवेकानंद बाहर की तरफ हैं--दोनों को दुख दिखायी पड़ रहा है, दोनों साक्षी हैं। मगर विवेकानंद को स्वभावतः अनुभव होता है कि इतनी पीड़ा है, पानी भी नहीं पी सकते, गर्मी के दिन हैं, प्यास से लोग मरे जा रहे हैं और इनको एक घूंट भी पानी पिलाना मुश्किल है--यह कैसा महाकष्ट! ऐसे परमहंस को यह कैसा महाकष्ट!!
इससे विवेकानंद केवल इतनी खबर देते हैं कि अभी उनको साक्षी का अनुभव नहीं हुआ। उनका प्रश्न एक साधारण व्यक्ति का प्रश्न है, जिसको साक्षी का कोई अनुभव नहीं हुआ। यह किसी बुद्धपुरुष का प्रश्न नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि अगर विवेकानंद को साक्षी का अनुभव हुआ होता, तो यह बात उठती ही नहीं।
लेकिन जब रोज-रोज विवेकानंद कहने लगे, तो रामकृष्ण सीधे-सादे आदमी थे, चोट भी करते थे तो बहुत परोक्ष करते थे, सीधी नहीं करते थे, उन्होंने कहा, ठीक है, तू इतना परेशान हो रहा है, तो आज मैं आंख बंद करके काली से कहे देता हूं। आंख बंद की, और फिर आंख खोल कर कहा कि मैंने कहा, मगर काली ने क्या कहा, मालूम?...अब यह सिर्फ विवेकानंद को समझाने के लिए है। क्योंकि कहां काली! और क्या कहना काली से! साक्षी को जो उपलब्ध हो गया है, उसके लिए काली इत्यादि सब खेल हैं, बच्चों के खेल हैं, खिलौने हैं। यह सब खिलौने हैं। चाहे तुम हनुमान के मंदिर में पूजा करो और चाहे गणेश जी की मूर्ति बना कर पूजा करो और चाहे काली की मूर्ति बनाओ, ये सब खिलौने हैं नासमझों के लिए। और नासमझो के ही द्वारा निर्मित हो रहे हैं। और नासमझ इनके पीछे बड़ा शोरगुल मचाए फिरते हैं। यह कुछ ज्ञानियों की बातें नहीं है!...
पर रामकृष्ण तो उस भाषा में बोले जो विवेकानंद की समझ में आए। कहा कि मैंने कहा, तू नहीं माना तो मैंने कहा काली को; और तुझे पता है, काली ने मुझे बहुत डांटा! विवेकानंद ने कहा, डांटा? कहा कि हां, बहुत डांटा और कहा कि ज्ञानी होकर ऐसी अज्ञानपूर्ण बातें करता है! और काली एकदम नाराज हो गयी, और कहने लगी कि चुप, कभी दुबारा इस तरह की बात मत करना! अगर एक कंठ से जल जाना बंद हो गया, तो इतने सारे कंठ उपलब्ध हैं, ये भी तो तेरे ही कंठ हैं, इनसे ही जल पी! इस कंठ से तो बहुत काम ले लिया, अब तक इसी पर अटका रहेगा? सारे कंठ तेरे हैं। यह विवेकानंद का ही कंठ है, यह भी तेरा है, जब प्यास लगे, इसी कंठ से पी लिये। तो रामकृष्ण ने विवेकानंद से कहा, जब मुझे प्यास लगे, तू पानी पी लिया कर। अब तो सब कंठ मेरे हैं। काली ने देख तेरी बात मैंने क्या कहीं, मुझे बुत डांटा! इस तरह की बातें अब दुबारा मत कहना! तेरी बात मान कर मैंने कहा और झंझट में मैं पड़ा।

मैं जानता हूं कि यह पूरी की पूरी रामकृष्ण बात सिर्फ विवेकानंद को समझा रहे हैं। न तो काली से उन्होंने कहा है, न कह सकते हैं, न कहने की कोई बात है। न कहने को कोई काली है कहीं। यह सिर्फ ऐसा है जैसे हम छोटे बच्चों को किताब जब पढ़ाना शुरू करते हैं तो कहते हैं: आ आम का, ग गणेश का। और अब थोड़ी बता बदल गयी है, अब कहते हैं: ग गधे का। क्योंकि राज्य जो है हमारा, वह सेक्युलर है, वह धर्म-निरपेक्ष है, इसमें गणेश को लाओ तो धर्म आ जाए, तो ग गधे का। गधा बिलकुल ही निरपेक्ष प्राणी है। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। गधा तो बिलकुल ही पार जा चुका। परमहंस है। उसको कुछ लेना-देना नहीं मंदिर से, मस्जिद से। कभी देखो तो मस्जिद के सामने बैठा है, कभी देखो तो मंदिर के सामने बैठा है। उसको सब बराबर। तुम उस पर कुरान लाद तो इनकार नहीं, और गीता लाद तो इनकार नहीं। उसको तो ढोना है। वह ढो देगा। वह जरा चिंता नहीं करता कि तुमने किसको उसके ऊपर लाद दिया है!
तो अब बच्चों को पढ़ाया जाता है: ग गधे का; आ आम का। ताकि बच्चे को आ और ग समझ में आने शुरू हो जाएं लेकिन जिंदगी भर जब भी ग पढ़ो, पहले कहो ग गधे का और फिर ग पढ़ो, तो तब तो पढ़ना ही मुश्किल हो जाए। एक शब्द को पढ़ने में कितनी देर लग जाए! उसमें ग आ जाए तो गधे का, और आ आ जाए तो आम का--और तब आम और गधों में इतने खो जाओगे!...और ब बंदर का और हा हाथी का, पूरा जंगल ही खड़ा हो जाएगा! वह जो शब्द था, उसका तो पता नहीं चलेगा, यह जंगली जानवरों में ही खो जाओगे।
वह ग गधे का पहली कक्षा में ठीक। फिर गधे को भूल जाना है, ग को याद रखना है। फिर ग किसी का नहीं, न गधे का, न गणेश का, ग सिर्फ ग है। जिस दिन तुम्हारा ग गधे से और गणेश से मुक्त हो जाता है, उस दिन तुम समझना कि तुम सीख गये ग। जब तक वह ग गधे और गणेश से बंधा रहे, तब तक तुमने सीखा नहीं। और अगर हमेशा के लिए बंध जाए, तो तुम पागल हो।
काली है और हनुमान हैं, यह सब पाठ पढ़ाने के लिए ठीक है। मगर लोग इन्हीं
के सामने बैठे हैं। कुछ लोग जो जिंदगी भर हनुमान चालीसा ही पढ़ रहे हैं। इनकी जिंदगी व्यर्थ गयी! निरर्थक गयी!
जीवन की सार्थकता साक्षीभाव में है।
रामकृष्ण ने वही कहा कि मुझे कोई पीड़ा नहीं हो रही है, तू पी लेना पानी, काम चल जाएगा। मैंने पीआ कि तूने पीआ, सब बराबर है।
सर्व ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति
सर्वश अति।
वह सबको आत्मरूप देखता है। जैसे "मैं" गया, सब आत्मारूप हो जाते हैं।
और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। मैं क्या गंवाया, सब संपत्ति मिल गयी। "मैं" के साथ विपत्ति ही विपत्ति है; दुख ही दुख है, नर्क ही नर्क है। तुमने मैं से कभी कोई सुख पाया? तुमने अहंकार से कभी कोई सुख पाया? मगर अहंकार को भरने के लिए ही दौड़े चले जा रहे हो। इससे बड़ी मूढ़ता इस संसार में दूसरी नहीं है।
अहंकार की मूढ़ता को देखो। अहंकार से मुक्त हो जाओ। और मुक्त होना कठिन नहीं। सिर्फ छोटी-सी प्रक्रिया है, छोटी-सी कुंजी,... कुंजी तो हमेशा छोटी होती है। ताले कितने ही बड़े हों, कुंजियां तो छोटी होती हैं। जरा-सा राज होता है कुंजी का और ताला खुल जाता है। कुंजी न हो तो ताला खुलना मुश्किल हो जाता है। हथौड़ी से तोड़ो तो शायद और भी मुश्किल हो जाए। फिर शायद कुंजी भी मिल जाए तो काम न आए। और तुम्हारे ताले ऐसी ही हालत में हो गये हैं। हथौड़ियां तो तुमने बहुत मारी हैं, कुंजियों की तलाश नहीं की। इसलिए अब जब कुंजी भी मिल जाती है, तो बड़ी देर लगती है, मुश्किल होती है। यह मुश्किल तुम्हारे ताले के साथ किये गये दर्ुव्यवहार के कारण है। अन्यथा कुंजी सीधी-साफ है।
कुंजी इतनी ही है कि चलते समय जाग कर चलो, देख कर चलो, कि जो चल रहा है
वह शरीर है, मैं अचल हूं। मैं सिर्फ देख रहा हूं कि शरीर चल रहा है। यह बायां पैर उठा, यह दाया पैर उठा; यह मैं बायें मुड़ा, यह दायें मुड़ा...ऐसा कुछ शब्द दोहराने की जरूरत नहीं है, सिर्फ देखते रहो! जैसे कोई किसी और को चलते हुए देख रहा हो। और जब विचार भीतर चलें--जोकि प्रतिपल चल रहे हैं--तो देखते रहो कि विचार चल रहे हैं। लड़ो मत, पकड़ो मत। यह अच्छा विचार है, इसको छाती से

मल लगा लो; और यह बुरा विचार है, इसके धक्के देकर निकालने मत लगो; नहीं तो झगड़ें में पड़ गये। साक्षी गया, कर्ता हो गये। कर्ता हुए कि अहंकार आया। लड़ना मत, झगड़ना मत, विचार को देखना, सिर्फ देखना। कुछ करना ही नहीं है, सिर्फ देखना है। बैठ कर घड़ी भर, जब सुविधा मिल जाए, देखते रहना, विचारों का सिलसिला लगा है। जैसे कोई रास्ते के किनारे बैठ जाए और रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखे; नदी के किनारे बैठ जाए, नदी की धार को बहते हुए देखे, ऐसे ही मन की धार को भी देखना।
और मत सोचना कि मेरा मन। क्योंकि मेरा मन है, तो आग्रह आ जाते हैं। कि अच्छे-अच्छे विचार आएं, सुंदर-सुंदर विचार आए; फूल लगें, कांटे न लग जाएं; कोई बुरा विचार न आ जाए; बस, फिर तुम मुश्किल में पड़े! तुमने मेरा माना कि अहंकार जगना शुरू हो गया। तुम्हारा कुछ भी नहीं है। क्या लेना-देना है! देखते रहना है। जैसे फिल्म पर तुम कुछ आग्रह नहीं रखते, पर्दे पर फिल्म चलती है, तुम देख रहे हो, यूं देखते रहना है।
और तुम चकित होओगे, शरीर को देखते-देखते शरीर से छुटकारा हो जाता है;
मन को देखते-देखते मन से छुटकारा हो जाता है। रफ्ता-रफ्ता, आहिस्ता- आहिस्ता तुम्हारे भीतर एक नयी चीज पैदा होने लगती है, एक नया सूत्र जन्मता है: साक्षी का। सिर्फ द्रष्टा का। और वही द्रष्टा जिस दिन अपनी पराकाष्ठा को पहुंचता है, संबोधि बन जाती है, समाधि बन जाती है। उस दिन दूर रह गये बहुत शरीर और मन, दूर रह गये शरीर और मन के खेल, उस दिन तुम अपनी परमसत्ता में विराज-मान हो जाते हो। वहीं परम आनंद है, परम जीवन है।

मेरा स्वर्णिम भारत-23

धर्म: मुक्ति का आरोहण
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #7)

पहला प्रश्न: भगवान, यह सूत्र छान्दोग्य उपनिषद में उपलब्ध है:
जो विशाल है, वही अमृत है। जो लधु है वह मर्त्य है। जो विशाल है, वही सुखरूप है। अल्प में सुख नहीं रहता। निस्संदेह विशाल ही सुख है। इसलिए विशाल का ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए।
मूलपाठ इस प्रकार है:
यो वै भूमा तदमृतम। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम।
यो वै भूमा तत्सुख। नाल्पे सुख-मस्ति।
भूमैव सुख। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।।
भगवान, इस सूत्र को हमारे लिए सुस्पष्ट बनाने की कृपा करें।

सहजानंद! छान्दोग्य उपनिषद ऐसे है जैसे अमृत से भरा सरोवर। जैसे शुद्ध संगीत। इसलिए उसका नाम है: छान्दोग्य। "छंद" से बना है नाम।
जीवन दो ढंग से जीया जा सकता है। एक जो जीवन का ढंग है: संगीतशून्य; आपाधापी, चिंता, विषाद, संताप, अहंकार, महत्वाकांक्षा, संघर्ष। स्वभावतः संगीत असंभव होगा। ऐसे ही दौड़-धूप में भीतर का छंद बिखर जाता है। जैसे रात पूरे चांद की हो, पूर्णिमा हो, आकाश बादलों से रहित हो, चांद अपने पूरे सौंदर्य में प्रगट हो, फिर भी अगर झील पर लहरें हो तीन झील में चांद का प्रतिबिंब बन न पाएगा। बनेगा, लेकिन लहरों के कारण टूट-टूट जाएगा, खंड-खंड हो जाएगा, छितर-बितर हो जाएगा जैसे कोई पारे को फर्श पर गिरा दे, इकट्ठा करना मुश्किल हो जाए। ऐसे ही चांद भी पारे की तरह है--खंड-खंड होकर बिखर जाएगा। सारी झील पर चांदी फैल जाएगी। लेकिन चांद जैसा है वैसा प्रतिफलित न हो सकेगा। पर अगर झील मौन है, शांत हो, निस्तरंग हो, आंधियां न उठ रही हों, तूफान न आया हो, झील ध्यानस्थ हो, समाधिस्थ हो, तो फिर चांद जैसा है ही प्रतिफलित होगा।
एक तो मनुष्य के जीने का ढंग है विक्षिप्त झील की भांति, जहां वासनाओं
की आंधियां लहरों पर लहरें उठायें चली जाती हैं; जहां मन हमेशा कंपित है, डांवाडोल है, चंचल है। इस चंचल मन में परमात्मा का प्रतिफलन नहीं बन सकता। इस चंचल मन में सब विकृत हो जाएगा। छंद टूट जाएगा। छांदोग्य का अर्थ है: छंद टूटे नहीं। यह ध्यान की पराकाष्ठा है। जहां चित्त निर्विचार होता है। जैसे ही चित्त निर्विचार हुआ कि भीतर अनाहत का संगीत बजने लगता है; हृदय की वीणा पर शाश्वत की गुनगुनाहट सुनायी पड़ती है। चित्त विक्षिप्त हो तो हम संसार को जानते हैं, और चित्त शांत हो तो हम परमात्मा को जानते हैं। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। सत्य तो एक है। चांद दो नहीं है, चाहे झील में लहरें हों और चाहे झील में लहरें न हों, चांद तो वही है, जैसा है वैसा ही है। लेकिन अगर झील के पास भी सोचने वाली बुद्धि होती, तो लहरों वाली झील सोचती एक ढंग से और शांत झील सोचती दूसरे ढंग से। लहर वाली झील देखती संसार को और शांत झील देखती परमात्मा को। जिसने संसार देखा, उसने अभी कुछ भी नहीं देखा। जिसने संसार में परमात्मा देखा, उसे ही आंख मिली। और जिसने परमात्मा को देखा, वह देखते ही परमात्मा हो जाता है। कल हम मुंडकोपनिषद के सूत्र पर ही तो बात कर रहे थे कि जो उस ब्रह्म को जानता है, ब्रह्मैव भवति, वह ब्रह्म ही हो जाता है। जिसने परमात्मा को जाना, उसने यह भी जाना कि मैं उसी का अंग हूं। और जिसने परमात्मा नहीं जाना, स्वभावतः उसने इतना ही जाना कि मैं क्षुद्र हूं, अपने में बद्ध हूं, जरा-सा पोखर हूं, डबरा हूं।
अहंकार का अर्थ है: अपने को अस्तित्व से पृथक जानना। और परमात्मा के अनुभव का अर्थ है: अपने की अस्तित्व के साथ एक पाना। एकाकार। इसी अनुभूति की तरफ छांदोग्य का इशारा है--
यो वै भूमा तदमृतम--

"जो विशाल है, वही अमृत है।" लहरें तो मिटेंगी, सागर रहेगा। हम तो मिटेंगे, परमात्मा रहेगा। हम तो जन्मे हैं, तो मृत्यु भी घटेगी। यह देह बनी है, तो बिखरेगी भी। देर-अबेर। मगर कितनी ही देर हो, बहुत देर तो नहीं होगी। समय में जो भी बनता है, वह बिखरता है। यह समय का नियम है। यहां तो मृत्यु अनिवार्य है।
तुमने ध्यान दिया, हम मृत्यु को भी काल कहते हैं, और समय को भी काल कहते हैं। कारण हैं। शायद दुनिया की किसी भाषा में मृत्यु और समय के लिए एक ही शब्द उपयोग नहीं होता। सिर्फ हमने ही मृत्यु को भी काल कहा, समय को भी काल कहा। गहरे अनुभव के आधार पर ऐसा कहा। समय अर्थात मृत्यु। समय के भीतर तो मृत्यु अपरिहार्य है, उससे बचा नहीं जा सकता। वह तो घट ही चुकी है, जन्म के साथ ही घट चुकी है, जिस दिन चीज बनती है, उसी दिन बिखरनी शुरू हो जाती है। बच्चा पैदा हुआ और मरना शुरू हुआ। पहली ही घड़ी से मृत्यु आनी शुरू हो जाती है। यह और बात है कि आते-आते सत्तर वर्ष लग जाते हैं। ऐसा मत सोचना कि सत्तर वर्ष पूरे होने पर अचानक एक दिन मृत्यु तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है। तुम मरते ही रहे, मरते ही रहते, सत्तर वर्ष में प्रक्रिया पूरी हुई। सत्तर वर्ष में पहली बार मृत्यु तुम्हारे द्वार पर नहीं आती, सत्तर वर्ष में मृत्यु काम पूरा कर चुकी, इसलिए तुम्हारे द्वार से विदा होती है। तुम सोचते हो आती है, उन दिन मृत्यु जाती है। आती तो है जन्म के साथ--वह जन्म का दूसरा पहलू हैं।
समय के भीतर हम क्षुद्र हैं। लेकिन अगर हम समय के ऊपर उठ सकें, तो तत्क्षण सीमातीत हो जाते हैं, विशाल का अनुभव शुरू होता है। हम उतने ही असीम हो हो जाते हैं जितना असीम आकाश है। फिर आकाश भी हमारी सीमा नहीं है। "यो वै भूमा तदमृतम।" और जिसने इस विशाल को अनुभव किया, इस विराट को अनुभव किया, इस विस्तीर्ण को अनुभव किया, वह अमृत को उपलब्ध हो गया। अब उसकी कोई मृत्यु नहीं है। कालातीत होते ही हम अमृत हो जाते हैं। काल है मृत्यु और कालातीत हो जाना है अमृत। ध्यान में पहली बार समय मिटता है, तुम्हारे कंठ को छूती है। ध्यान में पहली दफा झरोखा खुलता है। पहली बार तुम देख पाते हो कि जो वस्तुतः है, वह कभी मिटेगा नहीं; और जो मिटता है, वह था ही नहीं, तुमने मान लिया था। जैसे कोई ताश के घर बनाए, या कागज की नाव चलाए। कागज की नाव नाव-जैसी मालूम होती है, नाव नहीं है। उसका डूबना सुनिश्चित है। तुम कागज की नाव में दीये को जला कर भी नदी में तैरा दो, थोड़ी दूर तक चमकता रहेगा, झलकता रहेगा, फिर खो जाएगा।
ऐसे ही तो हम जन्म के साथ यात्रा शुरू करते हैं, कागज की नाव--देह इससे ज्यादा नहीं है--और यह विराट सागर है, इसमें कितनी दूर तक चलोगे? इसमें गिरना सुनिश्चित है। गिरने के पहले जो सजग हो जाए और समझ ले कि मेरी नाव कागज की है, मेरी नाव मृत्यु की है, उसके जीवन में क्रांति घट जाती है। क्योंकि उसके भीतर जिज्ञासा पैदा होती है। जिज्ञासा पैदा होती है उसे जानने की, जो कभी नहीं मिटेगा। और उसे बिना जाने जीवन में कैसे सुख हो कसता है? धन कितना ही हो, सुख न होगा।
तुम देखते तो हो धनी लोगों को, अक्सर तो गरीब से भी ज्यादा दुखी हो जाते हैं। गरीब को एक ही दुख होता है कि गरीब है और आशा होती है, कम से कम आशा होती है कि आज नहीं कल जब गरीबी मिट जाएगी तो जीवन में सुख होगा। और आशा के सहारे जी लेता है। अमीर की आशा भी मिट जाती है। अब अमीर गरीब तो नहीं है, इसलिए आशा क्या करे? अब धन तो पा लिया और भीतर की पीड़ा तो वैसी की वैसी है, अछूती, उसमें तो रत्ती भर भेद नहीं पड़ा! इसलिए धनी दोहरे दुख में पहुंच जाता है। धन भी मिल गया, आशा भी मर गयी और भीतर जैसा था वैसा ही है। वही पीड़ा, वही विषाद, वही संताप, वही नर्क, वही खालीपन, वही अर्थहीनता। न तो गीत जनमा, न संगीत पैदा हुआ, न फूल खिले, न चांदत्तारे ऊगे; कुछ भी न हुआ! अंधेरा और सघन हो गया। वह जो दूर टिमटिमाता-सा दीया जलता था आशा का, वह भी बुझ गया।
अंधेरी रात में जंगल में भटके राही को दूर टिमटिमाता दीया भी जिलाए रखता है। आशा बंधी रहती है: पहुंच जाऊंगा। चाहे पहुंच कर पता चले कि दीया कल्पित था। मृगमरीचिका थी; मैंने ही सपना देख लिया था; खुली आंखों का देखा

सपना था। इसलिए जो पहुंच जाता है--धन पा लेता, पद पा लेता--उसकी पीड़ा बहुत सघन हो जाती है।
मेरे अनुभव में उस पीड़ा से ही धर्म का जन्म होता है।
इसलिए गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाता। आशा बंधी रहती है संसार से।
आशा की डोर लगी रहती है।...कमल ने कल पूछा था कि भारतीयों की इतनी अवमानना क्यों है? क्यों भारतीय की इतनी अप्रतिष्ठा है जगत में? बहुत कारण हैं।
उनमें एक कारण यह भी है कि भारत जिस धर्म की बात कर रहा है, वह गरीब समाज को शोभा नहीं देता। गरीब उसकी बात करने का हकदार नहीं है। और गरीब जब उस तरह के धर्म की बात करता है, तो वह झूठी होती है, मिथ्या होती है, थोथी होती है। मेरे पास न-मालूम कितने पत्र आते हैं। पश्चिम से पत्र आते हैं, तो उनकी जिज्ञासा और होती है। और भारतीयों के पत्र आते हैं तो उनकी जिज्ञासा बड़ी और होती है। एक मित्र ने लिखा कि मैंने सुना है कि आपके आश्रम के पास करोड़ों रुपये हैं; अगर आप असली महात्मा हैं तो कम से कम एक लाख रुपये मुझे भेज दें। तो मैं मानूंगा कि आप असली महात्मा हैं। एक मित्र ने लिखा--कल ही पत्र आया है--कि मैंने सुना कि आपके पास दो कारें हैं, और मेरे पास केवल साइकिल है, और मुझे दूर दफ्तर में काम करने साइकिल पर जाना पड़ता है, अगर आप सच में ही भगवान हैं, तो एक कार मुझे भेज दें! कोई लिखता है कि वह बीमार है। कोई लिखता है उसे नौकरी चाहिए। कोई लिखता है उसके लड़के को लिए यूरोप भिजवा दें, अमेरिका भिजवा दें, और ये सारे लोग सोचते हैं कि धार्मिक हैं! इन सारे लोगों को भ्रांति है।
पश्चिम झूठ तुम्हारे पाखंड को देख पाता है। तुम्हारे झूठ को देख पाता है।
तुम्हारा झूठ अपरिहार्य है। धर्म जब इस देश में पैदा हुआ था, तब यह देश सोने की चिड़ियां थी। तब धर्म की बात अर्थपूर्ण थी, क्योंकि हमने देख लिया था कि व्यर्थ है दौड़-धूप। उस दौड़-धूप की व्यर्थता ने हमें एक प्रामाणिकता दी थी। आशा छूट गयी थी संसार से, तो हमने परमात्मा की जिज्ञासा की थी। अभी तो आशा हमारी संसार से बंधी है, अभी तो हम परमात्मा की जिज्ञासा भी करेंगे तो इसी संसार के लिए करेंगे।
मंदिरों में जा कर लोगों की प्रार्थनाएं सुनो, वह क्या मांग रहे हैं? किस मूर्ति के सामने प्रार्थना कर रहे हैं, यह दो कौड़ी की बात है, असली बात यह है कि वे क्या मांग रहे हैं, प्रार्थना में, उससे पता चलेगा। उनके हृदय की खबर मूर्ति से नहीं मिलेगी; न मंदिर से, न मस्जिद से, न गुरुद्वारा से, न गिरजे से, उनके हृदय की खबर तो वे क्या प्रार्थना कर रहे हैं, यह सवाल नहीं है, प्रार्थना के पीछे छिपा हुआ अभिप्राय क्या है? कि पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए, कि लड़के को नौकरी मिल जाए, कि धंधा ठीक से चल पड़े कि इस बार लाटरी मेरे नाम से खुल जाए! और मैं इसमें दोष भी नहीं देखता--गरीब का कुछ कसूर भी नहीं है। खतरा तब पैदा होता है जब ऐसा गरीब समाज उन बातों को करने लगता है या किये चला जाता है, जिनसे अब उसे जीवन का कोई संबंध नहीं रह गया। दीन-हीन को क्या अंतर्छद से संबंध होगा! रोटी-रोजी जुट जाए तो बहुत। अभी किसको पड़ी है कि अंतर में छंद जगे!
लेकिन अगर व्यक्ति बाहर के जगत को अनुभव करे, तो एक न एक दिन निराशा हाथ लगेगी। और निराशा बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि उसी निराशा के बाद जिसको पैदा होगी। साधारण जिज्ञासा नहीं, विशेष जिज्ञासा पैदा होगी। कि मैं जानूं कि इस देह के पार भी कुछ है या नहीं? जानूं कि धन के पार भी कोई धन है या नहीं? पद के भी कोई पद है या नहीं? यह जो दिखाई पड़ता है जगत, इसके पीछे कोई छिपा हुआ राज है भी या नहीं? पाखंड पैदा होता है जब तुम चाहते तो हो कि इसी जगत की चीजें मिलें, लेकिन बातें और दूसरे जगत की करते हो--तब पाखंड पैदा हो जाता है।
सेठ चंदूलाल ने अपने गुरु स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी से पूछा, "गुरुदेव, आप दूसरों को तो धूम्रपान छोड़ने के लिए कहते हैं और खुद पीते हैं!" स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी ने कहा, "बच्चा, मैं खुद न पीऊं तो इसकी हानियां कैसे जानूंगा?"
सेठ चंदूलाल जा रहे थे तीर्थयात्रा पर। बड़े चिंतित थे कि दोत्तीन महीने घर में ताला पड़ा रहेगा, चोर-उचक्के भरपूर हैं, मित्रों का भी अब कोई

भरोसा नहीं, अब कोई किसी के काम आता नहीं, चाबियां साथ ले जाना भी खतरनाक है--तीन महीने में कहीं खो जाएं, चोरी चली जाएं--सो उन्होंने सोचा कि गुरुदेवता को ही दे दें। स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी को जाकर उन्होंने कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, ये मकान की चाबियां हैं, ये आपको सौंपे जाता हूं। आजकल जरा डर बना रहता है, इसलिए चाबियां सम्हाल कर रखना। और ध्यान रखना कि कोई ताला तोड़ कर चोरी न कर जाए। ब्रह्मचारी जी ने कहा, "बच्चा, बेफिक्री से जा! अरे, ताला-वाला तोड़ने की क्या जरूरत है, चाबियां तो हैं ही। यह नौबत नहीं आएगी!"
यहां आश्रम की ही यह घटना है। एक भारतीय संन्यासी ने एक अमरीकन संन्यासी से कहा, "मित्र, मुझे बीस रुपये उधार दे दो, बहुत तंगी में हूं।" अमरीकन संन्यासी बोला, "भाई, रुपये तो दे दूं, लेकिन कर्ज को दोस्ती की कैंची कहते हैं।" भारतीय संन्यासी हंसने लगा और बोला, "यार, तुम रुपये तो दो! यूं ही हम कहां कोई बहुत गहरे दोस्त हैं!"
एक थोथापन अनिवार्य है। क्योंकि तुम जो मानते हो, अगर वह तुम्हारा अपना जीवित अनुभव नहीं है, तो तुम व्यवहार कुछ करोगे, कहोगे कुछ। इसलिए भारतीय सारे जगत में अनादृत है। क्योंकि वह कहता कुछ है, करता कुछ है। बताता कुछ है और निकलता है भीतर से बिलकुल विपरीत। एक थोथा पांडित्य है। उपनिषद कंठस्थ हो गये हैं,...छांदोग्य भी दोहरा देगा--हालांकि भीतर कोई छंद नहीं है। और जिसके भीतर छंद नहीं है, उसकी छांदोग्य की व्याख्या झूठ है, पाखंड है, मिथ्या है; उसके जीवन में उसका कोई कहीं भी लक्षण नहीं मिलेगा। छांदोग्य करने का वही अधिकारी है, जिसको भीतर छंद जगा हो। जिसके जीवन में संगीत हो, काव्य हो, प्रसाद हो। और तुम्हारा जीवन बताएगा। तुम्हारा जीवन कुछ और बताएगा, तुम्हारी बातें कुछ कहेंगी। तुम्हारी बातें आकाश की होंगी, और तुम्हारा जीवन जमीन पर कीड़े-मकोड़ों की तरह सरकता हुआ होगा।
एक महापंडित का हाथ, बायां हाथ मशीन में कट गया। बड़े शास्त्री थे। गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ थे। वे मलहम-पट्टी करवाने डाक्टर के पास पहुंचे। डाक्टर ने कहा, "पंडित जी, यह तो आपकी किस्मत अच्छी थी कि मशीन में बायां हाथ आया। यदि दायां हाथ आ जाता तो आप का कोई भी काम नहीं कर सकते थे।" पंडित जी बोले, "अरे डाक्टर साहब, किस्मत काहे कि अच्छी, यह तो मेरी होशियारी है। दरअसल मेरा दाया हाथ ही मशीन में आया था, लेकिन मैंने झट से उसे पीछे खींच बायां हाथ आगे कर दिया।"
गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ होंगे, मगर जिंदगी तो कुछ और प्रमाण देगी। जिंदगी
तो मूढ़ता को बताएगी।
और भारतीय व्यक्तित्व इसलिए भी अनादृत है कि तुम्हारी बातों की चूंकि भीतर कोई जड़ें नहीं रह गयी हैं, ऊपर-ऊपर हैं, कागजी हो गयी हैं, शास्त्रीय हो गयी हैं, तुम उबाते हो लोगों को।
मैंने सुना है, जार्ज बर्नार्ड शा से एक भारतीय पंडित मिलने गया था। जार्ज बनार्ड शा को बुरी तरह उबा रहा था। बर्नाड शा संकोचवश, शिष्टाचारवश कह भी नहीं सक रहे थे कि पंडित जी, अब क्षमा करो, यह बकवास बंद करो! कोई और रास्ता न देख कर बर्नार्ड शा ने पास में ही पड़ी हुई एक पत्रिका उठा ली और पढ़ने लगे। पढ़ने तो क्या लगे, पन्ने पलटने लगे; कि पंडित इशारा समझ ले। पंडित जी ने जब यह देखा तो वे बोले बर्नार्ड शा से, मैं आपसे कुछ कहना चाहता था, पर याद नहीं आ रहा है। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, शायद आप नमस्ते कहना चाहते थे। मैं याद दिलाए देता हूं।
लोग ऊब गये हैं। लोग बुरी तरह ऊब गये हैं। और ऐसा नहीं कि तुम भी नहीं
ऊब गये हो अपने पंडितों से, अपने साधुओं से, अपने महात्माओं से। तुम भी ऊब गये हो। मगर तुममें इतना बल भी नहीं रह गया। कि तुम स्पष्ट कह सको कि अब बस बंद करो! तुम्हारे जीवन में छंद नहीं है, तो कम से कम छांदोग्य पर मत बोलो! तुम्हारे जीवन में गीत नहीं हैं, तो तुम्हारा गीता-ज्ञान मर्मज्ञ होना दो कौड़ी का है! जब तक तुम्हारे भीतर भगवत-गीता का जन्म न हो, जब तक क्या तुम भगवत-गीता पर बोलोगे! जब तक तुम ब्रह्म को न जाल लो, तब तक तुम कैसे वेद की कोई व्याख्या कर सकते हो!
यह सूत्र जिसने भी कहा होगा, जान कर कहा है। अहंकार दुख है, क्योंकि अहंकार सीमा है। और निर-अहंकारिता सुख है, क्योंकि निर-अहंकारिता असीम

है। शरीर में आबद्ध होना दुख है। क्योंकि शरीर सीमा है। और मैं शरीर से मुक्त हूं, ऐसा जानना सुख है। मैं चैतन्य हूं, ऐसा जानना सुख है। जानना, मानना नहीं। ऐसा अनुभव, ऐसा सिद्धांत नहीं। ऐसी प्रतीति, ऐसा साक्षात्कार, ऐसी धारणा नहीं ये प्रश्न धारणाओं के नहीं हैं। समय में अपने को देखना मृत्यु से बंधे रहना है। कालातीत अपने को अनुभव करना अमृत का अनुभव है।
और कालातीत अपने को अनुभव करने का ध्यान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है! कितना ही गऊ-माता का दूध पीओ, कालातीत को न जान पाओगे। खोपड़ी में गोबर ही गोबर भर जाए तो भी कालातीत को नहीं जान पाओगे। और कितना ही शीर्षासन करो, कालातीत को न जान पाओगे। उल्टा खड़े-होने से, शीर्षासन करने से कालातीत को जानने का कोई संबंध नहीं है। लाख ब्रह्ममुहूर्त में उठो, ब्रह्म को न जान लोगे। और कितना ही दोहराते रहो तोतों की तरह अपने शास्त्रों को, कुछ पाओगे नहीं, हाथ कुछ लगेगा नहीं--कौड़ियां भी हाथ नहीं लगेंगी, हीरे-जवाहरात तो दूर। ध्यान के अतिरिक्त न कभी कोई उपाय था न कभी कोई उपाय होगा।
ध्यान का अर्थ है: कालातीत होने की प्रक्रिया। समय के पार जाने की प्रक्रिया। तुम समय के स्वभाव को थोड़ा समझ लो। कुछ बातें तो तुम्हारे अनुभव में हैं, इसलिए समझना कठिन नहीं होगा। कुछ तुम्हारे अनुभव में नहीं है, लेकिन जो तुम्हारे अनुभव में हैं, उससे उस दिशा में इशारे मिल सकते हैं जो तुम्हारे अनुभव में नहीं हैं।
जब तुम दुखी होते हो, तो समय लंबा हो जाता है। जैसे, तुम्हारी मां या तुम्हारे पिता मरणशय्या पर पड़े हैं और रात-भर तुम बैठे हो, जाग रहे हो, क्योंकि डाक्टरों ने कहा है कि पता नहीं कब श्वास खो जाएगी! तो वह रात इतनी लंबी हो जाएगी कि कयामत की रात मालूम होगी। अंत ही आता न मालूम पड़ेगा। लगेगा कि अब सहर होगी, ही नहीं, सुबह होगी ही नहीं। रात इतनी लंबी हो जाएगी और घड़ी का कांटा यूं सरकेगा कि जैसे सरकना ही भूल गया! हालांकि घड़ी का कांटा पुराने ही ढंग से चल रहा है। घड़ी को क्या पड़ी है कि कौन मर रहा है, कौन जी रहा है! रात भी पुराने ढंग से ही सरक रही है। लेकिन तुम्हारे चित्त की अवस्था दुख की है। दुख में समय लंबा हो जाता है।
समय तुम यूं समझो कि जैसे रबर है। दुख में खिंच जाता है, लंबा हो जाता है। सुख में सिकुड़ जाता है।
तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिलने आ गयी है, बरसों का बिछड़ा यार मिल गया है, तो घंटे यूं बीत जाते हैं जैसे पल बीते। पलक झपकते। बीत जाते हैं। रात भर मित्र से बातें करते रहते हो, बक सुबह हो गयी पता नहीं चलता। एकदम पता चलता है कि रात पूरी बीत गयी। यूं बीत गयी! कब आयी, कब गयी, पता नहीं। तुम बातों में ऐसे तल्लीन थे, बरसों बाद मित्र मिला था, न-मालूम कितनी बातें करने की थीं, हृदय उघाड़ कर रख देने में लगे थे--आनंदित थे, मस्त थे-- तो समय छोटा हो गया।
यह तुम्हारा अनुभव है। इस अनुभव से इशारे ले सकते हो। दुख में समय लंबा हो जाता, सुख में छोटा हो जाता है। लेकिन महासुख में? स्वभावतः विलीन हो जाएगा। और महादुख में? स्वभावतः अनंत हो जाएगा।
बर्ट्रेंड रसल ने एक बहुत महत्वपूर्ण किताब लिखी है, ईसाइयत के खिलाफ, कि मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? उसमें बहुत से तर्क दिये हैं, महत्वपूर्ण तर्क दिये हैं। एक तर्क जो उसने दिया है, वह ऊपर से तो महत्वपूर्ण दिखता है लेकिन ध्यान का उसे कोई अनुभव नहीं रहा होगा, इसका सबूत देता है। बहुत-से तर्क में उसने एक तर्क यह भी दिया है कि जीसस का कहना है कि जो लोग पाप करते हैं, जो लोग मूर्च्छा में जीते हैं, वे नर्क में पड़ेंगे। और ईसाइयत की धारणा है कि नर्क अनंत है। मतलब एक बार पड़े सो पड़े। बर्ट्रेंड रसल का कहना बिलकुल तर्कयुक्त है कि मैं कितने ही पाप करूं--और ईसाइयत में एक ही जन्म होता है, अगर अनंत जन्म भी होते तो भी समझ में आ सकता था कि अनंत पाप किये होंगे अनंत-अनंत जन्मों में; चौरासी करोड़ योनियों में कितने नहीं पाप किये होंगे, तो अनंत काल तक रहना पड़ेगा--लेकिन ईसाइयत तो एक ही जन्म को मानती है; सत्तर साल का जन्म, जीवन, इसमें कितने पाप करोगे? बर्ट्रेंड रसल का कहना है कि अगर कठिन से कठिन भी कोई

मजिस्ट्रेट हो, तो मुझे चार या पांच साल की सजा दे सकता है--मैंने जो पाप किये। अगर वे भी पाप जोड़ लिये जाएं जो मैंने किये नहीं सिर्फ सोचे,...कि फलाने की स्त्री ले भागूं--सिर्फ सोचा, किया भी नहीं है--अगर वह भी जोड़ लिया जाए, तो समझ लो ज्यादा से ज्यादा आठ से दस साल की मुझे सजा दी जा सकती है। वह भी कठोर से कठोर कोई न्यायाधीश हो तो। दस साल की इस सजा के लिए मुझे अनंत काल तक नर्क में रहना पड़ेगा! और फिर भी ईसाई कहते हैं कि परमात्मा न्यायपूर्ण है! यह तो महा अन्याय हो गया। अरे, सत्तर साल में कितने पाप करोगे? अगर सत्तर साल भी पाप करते रहो, सतत--और दूसरा काम ही न करो; न खाओ, न पीओ, न सांस लो, न उठो, न बैठो, न नहाओ, न धोओ, पाप ही पाप करते रहो सत्तर साल, तो भी कितने दंड दोगे? सात सौ साल का दंड दे देना और क्या करोगे? सात हजार साल का दे देना, सात लाख साल का देना, मगर अनंत! यह तो कुछ बात जंचती नहीं। और बर्ट्रेंड रसल का कोई उत्तर ईसाई पादरी नहीं दे सके हैं, ईसाई धर्मगुरु नहीं दे सके हैं। बर्ट्रेंड रसल ने किताब लिखी थी आज से कोई साठ साल पहले--बर्ट्रेंड रसल नब्बे साल तक जीया, अभी-अभी मरा है कुछ वर्ष पहले, साठ साल प्रतीक्षा की उसने, किताब लिखी थी जब यह कोई तीस साल का था, लेकिन कोई जवाब नहीं मिल सका उसको।
जवाब मिले कैसे? न बर्ट्रेंड रसल को ध्यान का अनुभव है, न ईसाई पादरी- पुरोहित को ध्यान का कोई अनुभव है, जवाब देगा कौन? और जवाब बड़ा सीधा-सरल था, अगर ध्यान का कोई भी अनुभवी हो तो जवाब बड़ा सीधा-सरल है। अनंत का अर्थ अनंत नहीं है। अनंत का अर्थ है: नर्क अनंत मालूम पड़ेगा। क्योंकि दुख में समय लंबा जाता है। साधारण दुख में लंबा जाता है, तो नर्क तो अनंत मालूम पड़ेगा। है अनंत, ऐसा नहीं है, मालूम पड़ेगा।
और इसीलिए तो हमको प्रतीत होता है कि सुख क्षणभंगुर है। क्योंकि समय छोटा हो जाता है। दुख को नहीं कहता कोई क्षणभंगुर।
तुमने यह सुना! तुम्हारे महात्मा समझाते रहते हैं, सुख क्षणभंगुर है, लेकिन किसी महात्मा को तुमने यह कहते सुना कि दुख क्षणभंगुर है? तुमने यह वचन ही कहीं नहीं देखा होगा कि दुख क्षणभंगुर है। सुख क्षणभंगुर है। सुख क्षणभंगुर है इसलिए नहीं कि क्षणभंगुर है, बल्कि इसलिए कि सुख में समय सिकुड़ जाता है, एक क्षण हो जाता है। और दुख अनंत हो जाता है। प्रतीत होता है। एहसास होता है।
समय हमारी प्रतीति है।
तो ये चार बातें ख्याल रखो। अगर महादुख होगा तो समय अनंत मालूम होगा।...मालूम होगा, ख्याल रखना। समय तो जैसा है वैसा ही है, सिर्फ तुम्हारी प्रतीति बहुत खिंच जाएगी। अगर छोटा-मोटा दुख होगा तो समय बड़ा मालूम होगा। अगर छोटा-मोटा दुख होगा तो समय बहुत अल्प मालूम होगा। और अगर महासुख होगा तो समय विलीन हो जाएगा।
जीसस से किसी ने पूछा--बाइबिल में यह उल्लेख नहीं है, लेकिन सूफियों
की परंपरा में यह वचन संगृहीत है। यह प्यारा वचन है और पी. डी. आस्पेंस्की ने अपनी महान किताब टर्शियम आर्गानम में यह वचन सबसे पहले उदधृत किया है। जैसे कि पूरी किताब इसी की व्याख्या है।--किसी ने जीसस से पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में, जिसकी तुम निरंतर चर्चा करते हो, सबसे खास बात क्या होगी? तो जीसस ने कहा: "देयर शैल बी टाइम नो लांगर"। वहां समय नहीं होगा। पी. डी. आस्पेंस्की ने अपनी किताब के प्रथम ही इसको उल्लेख किया है, जीसस के इस वचन को कि वहां समय नहीं होगा।
यह अनुभव तो ध्यान में किसी को भी हो जाता है। क्योंकि ध्यान में हम तत्क्षण प्रभु के राज्य के हिस्से हो गये। ध्यान का अर्थ है। निर्विचार, शून्य। जहां कोई विचार न रहा, वहां कोई सीमा न रही। विचार ही बागुड़ की तरह तुम्हें घेरे हुए हैं। जहां विचार गिर गये, सारी दीवालें गिर गयीं, सारे कारागृह गिर गये, सारे कटघरे विलीन हो गये, तिरोहित हो गये--सब द्वार खुल गये। उस घड़ी में घड़ी बंद हो जाती है। समय ठहर जाता है। छांदोग्य उसी की तरफ इशारा कर रहा है। कह रहा है:
"जो विशाल है, वही अमृत है।"
यो वै भूमा तदमृतम।

भूमा शब्द बहुत अर्थ रखता है, जो विशाल शब्द में नहीं आते। विशाल केवल उसका एक पहलू है। भूमा का अर्थ होता है: सर्वव्यापी। जहां-जहां तक तुम्हारी कल्पना जा सकती है, वहां तो मौजूद है ही और जहां तुम्हारी कल्पना भी नहीं जा सकती, वहां भी मौजूद है। इतना विराट कि जहां तुम्हारी कल्पना भी थक कर गिर जाती है, जहां तुम्हारे विचार भी गति नहीं कर सकते, जहां तुम्हारे स्वप्न भी उड़ान नहीं भर सकते, इतना विराट कि तुम थक जाओ सोच-सोच कर और सोच न पाओ, अनिर्वचनीय रूप से जो विराट है।
ब्रह्म शब्द का भी भूमा ही अर्थ होता है। ब्रह्म शब्द जिस धातु से बना है, उसी से हमारा हिंदी का शब्द बना है: विस्तीर्ण।
ब्रह्म शब्द बहुत अदभुत है। अगर इसका ठीक-ठीक अनुवाद करना हो तो यूं कहना पड़े: जो सदा ही विस्तीर्ण होता चला जाता है। तुम जहां भी जाओगे, पाओगे वह अभी और आगे शेष है। तुम उसे कभी चुकता न कर सकोगे। तुम ऐसा न कह सकोगे कि बस, यह आ गया आखिरी पड़ाव, यह आ गयी मंजिल, अब इसके आगे कुछ भी नहीं--ऐसा तुम कभी न कह सकोगे। तुम जहां भी जाओगे, पाओगे वह और आगे फैला हुआ है, और आगे फैला हुआ है। तुम बढ़ते जाओगे और तुम पाओगे वह और आगे फैला हुआ है। कोई कूल-किनारा नहीं है।
ब्रह्म शब्द को उपयोग हमने किया है आज से पांच हजार साल पहले--कम से कम। जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है। और आधुनिक विज्ञान ने इस सदी में आकर ठीक इसी सत्य को स्वीकार किया है। अल्बर्ट आइंस्टीन की बड़ी से बड़ी खोजों में एक खोज यह है कि जगत यह है जो सदा विस्तीर्ण हो रहा है। अल्बर्ट आइंस्टीन के पहले वैज्ञानिक मानते थे कि जगत जैसा है वैसा है, जहां तक है वहां तक है; उनकी धारणा एक थिर जगत की थी। अल्बर्ट आइंस्टीन ने धारणा को तोड़ दिया थिर जगत की। गतिमान, गत्यात्मक जगत की धारणा दी। "एक्स्पांडिंग यूनिवर्स"। विस्तीर्ण होता हुआ विश्व, फैलता हुआ विश्व। फैल ही रहा है। बड़े से बड़ा होता जा रहा है। विराट से विराट होता जा रहा है। जैसे कि कोई छोटा-सा बच्चा अपने फुग्गे में हवा भरता जाता है और फुग्गा बड़ा होता जाता है, बड़ा होता जाता है, बड़ा होता जाता है। ऐसे यह अस्तित्व विराट होता जा रहा है। यह प्रतिक्षण फैल रहा है। और बड़ी गति से फैल रहा है।
विज्ञान के हिसाब से जो गति सूर्य के प्रकाश की है, उसी गति से जगत विस्तीर्ण हो रहा है। गति बहुत है। अकल्पनीय है। प्रकाश की गति है: प्रति सेकेंड एक लाख छियासी हजार मील। इसलिए सूरज से हम तक किरण को आने में कोई साढ़े नौ मिनट लगते हैं। इस गति से आने में। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड। इसमें साठ का गुणा करो तो एक मिनट में इतनी गति। फिर साढ़े नौ का गुणा करो तो उतनी देर में प्रकाश यहां तक आ पाता है--इतनी हमारी सूरज से दूरी है।
और सूरज कुछ बहुत दूर नहीं।
जो सबसे निकट का तारा है, उससे हम तक प्रकाश को इसी गति से आने में चार वर्ष लगते हैं। और फिर तारे हैं, जिनसे करोड़ों वर्ष लगते हैं। तारे हैं, जिनसे अरबों वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे हैं कि जब पृथ्वी बनी थी तब उनकी किरणें चली थीं, वे अभी तक पृथ्वी पर नहीं पहुंचीं। और ऐसे तारे हैं कि शायद पृथ्वी समाप्त भी हो जाएगी और उनकी किरणें चली थीं तब जब पृथ्वी बनी न थी और जब आएंगी तब तक पृथ्वी विदा हो चुकी होगी। उन किरणों को कभी पृथ्वी मिलेगी ही नहीं। पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हुए। तो जिस तारे से पृथ्वी की तरफ अभी तक चार अरब वर्ष में चली किरण नहीं पहुंच पायी है, उसकी दूरी की तुम कल्पना कर सकते हो--वही गति है एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड!
और इसी गति से जगत विस्तीर्ण हो रहा है।
एक महिला एक डाक्टर के पास गयी। डाक्टर होंगे हमारे अजित सरस्वती जैसे। जच्चा-बच्चा अस्पताल चलाते होंगे। उस महिला की एक ही चिंता थी--उसको गर्भ रह गया था--वह कहने लगी, यह मुझे कैसे पक्का पता चलेगा कि अब नौ महीने पूरे हो गये? क्योंकि मुझे चीजें भूल-भूल जाती हैं। मैं यही भूल जाती हूं कि सुबह जो तय किया था, वह दोपहर याद नहीं रहता। बाजार सामान लेने जाती हूं, कुछ लेने जाती हूं, कुछ खरीद कर आ जाती हूं--मेरी स्मृति बड़ी कमजोर है। तो मैं भूल ही जाऊंगी कि कब नौ महीने पूरे हुए। तो उस डाक्टर ने थोड़ा सोचा

और कहा कि ठीक है, लेट! उसको लिटा दिया टेबल पर, फाउंटेन पेन उठाया और उसके पेट पर कुछ लिख दिया। उस महिला ने कहा कि इससे क्या होगा? उस डाक्टर ने कहा कि जब तू इसे साफ-साफ पढ़ने लगे, तब आ जाना। अभी कुछ तेरी पढ़ाई में आता है? उसने कहा, कुछ पढ़ाई में नहीं आता। इतने बारीक अक्षरों में लिखा है आपने कि मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ता कि लिखा क्या है। बस, तो उस डाक्टर ने कहा, फिकर न कर, जब तेरी साफ-साफ समझ में आने लगे--यह मेरा पता है--जब तू इसे बिलकुल ठीक-ठीक पढ़ने लगे, समझ लेना कि नौ महीने पूरी हो गये। पेट फैल रहा है, यह बड़ा होता जा रहा है, जब नौ महीने का बच्चा हो जाएगा तो अक्षर बराबर पढ़ पाएगी, कोई चिंता न कर!
यह अस्तित्व फैलता जा रहा है। इसको रहस्यदर्शियों ने स्त्री के फैलते हुए गर्भ का ही नाम दिया है। यह निरंतर विराट होता जा रहा है। यह विस्तीर्ण होता जगत है। यह प्रक्रिया सतत चल रही है। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ है: जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है। जो विराट है, ऐसा ही नहीं, जो विराट होता चला जाता है। जो एक क्षण ठहरता नहीं और विराट होता ही चला जाता है।
बुद्ध ने कहा है कि काश, हम अपनी भाषाओं से संज्ञाएं अलग कर दें और सिर्फ क्रियाएं बचा लें, तो हम सत्य के बहुत करीब पहुंच जाएंगे। क्योंकि संज्ञाएं हमें एक भ्रांति देती हैं। कि चीजें थिर हैं। और क्रियाएं हमें बोध देंगी कि चीजें गतिमान हैं। जैसे, हम कहते हैं: नदी है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, उचित होगा कि तुम कहो: नदी हो रही है। मत कहो कि है। हम कहते हैं: वृक्ष है। बुद्ध कहते हैं कि अच्छा होगा कि तुम कहो: वृक्ष हो रहा है। क्योंकि प्रतिपल गति है। जीवन यानी गति।
भूमा का अर्थ है: जो प्रतिपल हो रहा है, विराट हो रहा है, बड़ा हो रहा है, बड़े से बड़ा हो रहा है, विराट से विराटतर होता जा रहा है। और जिसकी कोई सीमा नहीं है, कोई अंत नहीं है। जो कहीं ठहरेगा नहीं। जो ठहरना जानता ही नहीं है। जिन्होंने देखा है, अनुभव किया है, वे कहेंगे: जगत में कोई मंजिल नहीं है, यात्रा ही यात्रा है--अनंत यात्रा है।
"जो विशाल है, वही अमृत है"। और काश, तुम इस विशाल के साथ आने को एक अनुभव कर सको, फिर कैसी मृत्यु? क्षुद्र मरता है, बूंद मरती है, सागर नहीं मरता। लहर मरती है, सागर नहीं मरता। जीवन का एक रूप विदा हो जाता है, लेकिन जीवन जारी रहता है। जीवन की अभिव्यक्तियां बदल जाती हैं, रंग बदल जाते हैं, ढंग बदल जाते हैं, लेकिन जीवन जारी रहता है।
"यो वै भूमा तदमृतम"। जो विशाल है, विराट है, विराटतर हो रहा है, वही अमृत है। जो लघु है, वह मर्त्य हैं"। इसलिए लघु के साथ अपने को न जोड़ना "अर्थ यदल्पं तन्मर्त्यम"। अल्प के साथ अपने को मत जोड़ना। और हमने अल्प के साथ ही अपने को जोड़ रखा है। शरीर के साथ जोड़ रखा है। मन के साथ जोड़ रखा है। दोनों अल्प हैं। दोनों लघु हैं। दोनों बहुत छोटे हैं। और उसके कारण हम छोटे हो गये हैं। और जब हम छोटे हो जाते हैं तो पीड़ा होती है, कि मैं छोटा, तो बड़े होने की दौड़ शुरू होती है।
अब यह तुम पागलपन समझने की कोशिश करो।
पहले हम अपने को छोटा बना लेते हैं, छोटे, के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं, फिर तादात्म्य करने से हीनता की ग्रंथि पैदा होती है, फिर हीनता की ग्रंथि हमको दौड़ती है कि अब बड़े होओ, धन कमाओ, पद पर पहुंचो, प्रधानमंत्री हो जाओ, राष्ट्रपति हो जाओ, दुनिया के सबसे बड़े धनी हो जाओ, यशस्वी हो जाओ, यह करो, वह करो, दौड़ती है, दौड़ती है! और भूल कुल इतनी है कि तुम बड़े हो ही तुम से बड़ा कुछ भी नहीं है, काश, तुम्हें यह दिखाई पड़ जाए तो दौड़ सब बंद हो जाती है। इसलिए मैं नहीं कहता कि संसार छोड़ो, पद छोड़ो धन छोड़ो--छोड़ने ने से कुछ भी न होगा--ध्यान जानो! ध्यान को जाना कि यह जो दौड़ है, यह अपने-आप क्षीण होने लगती है। फिर तुम जहां हो, संतुष्ट हो। क्योंकि वह हीनता की ग्रंथि ही गल गयी।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सभी राजनीतिज्ञ हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। हीनता की ग्रंथि न हो तो राजनीति समाप्त हो जाए। भीतर लगता है कि मैं इतना छोटा, तो किसी तरह बड़ा होकर दिखा दूं। अब बड़े होने की एक ही समझ आती है--या तो धन हो, या पद हो, प्रतिष्ठा हो, यश हो; किसी भी तरह बड़ा होकर

दिखा दूं। इससे आदमी अहंकार के नये-नये सोपान चढ़ता है, नयी-नयी सीढ़ियां चढ़ता है। और मजा यह है, बिडंबना यह है कि वही अहंकार तुम्हारे छोटे होने का कारण है। जो तुम्हारे छोटे होने का कारण है, उसी की मान कर तुम बड़े होने की चेष्टा कर रहे हो। उसको जब तक मानते रहोगे, बड़े होने न पाओगे। जिस दिन उसे छोड़ दोगे, उसी दिन छोटापन छूट जाएगा। और जहां छोटापन नहीं रह गया, अल्प के साथ संबंध नहीं रह गया, वहां सब दौड़ समाप्त हो गयी। फिर व्यक्ति जीता है। जब दौड़ता नहीं तब जीता है।
और जब कोई मृत्यु नहीं रह जाती, तो जीवन ही जीवन बचता है। शरीर के साथ अपने को एक माना कि मुश्किलें खड़ी हुई। शरीर के साथ एक माना तो अभी जवान हो, डर लगेगा कि अब बुढ़ापा करीब आता है। ये बात सफेद हुए, ये चमड़ी पर झुर्रियां पड़ने लगीं, ये पैर कंपने लगे--अब यह बुढ़ापा आया! अब घबड़ाए! अब परेशान हुए! अब बुढ़ापा आ रहा है। तो मौत भी आती ही होगी। कदम-कदम, रफ्ता- रफ्ता सरकने लगे कब्र की तरफ। लाख कब्रिस्तानों को गांव के बाहर बनाओ-- छिपाने के लिए हम गांव के बाहर बनाते हैं, ताकि मौत भूली रहे--मगर कैसे भूलोगे मौत को? जब तक अहंकार के साथ जुड़े हो, मौत याद आएगी। वृक्ष से पीला पत्ता गिरेगा और मौत याद आएगी। सुबह की धूप में ओस का कण वाष्पीभूत होगा और मौत याद आएगी। रास्ते पर चलते बूढ़े को देखोगे, मौत याद आएगी। कोई की अर्थी निकलेगी--और निकलेगी ही किसी की अर्थी--और मौत याद आएगी। जब तक अहंकार से जुड़े हो, मौत से छूट नहीं सकते। मौत का भय तुम्हें कंपाए रखेगा। और जब तक अहंकार से जुड़े हो, छोटे हो। इसलिए मन में ये आकांक्षाएं प्रबल होती रहेंगी कि किस तरह धन पाऊं, किस तरह पद पाऊं, कैसे सिकंदर हो जाऊं? हालांकि सिकंदर होकर भी कोई कुछ हुआ नहीं सिकंदर भी खाली हाथ मरता है। हमारी तरफ से...
हमारी तरफ से सलाम उनको देना...
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है
तो कह देना कासिद...
तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है हमारी तरफ से सलाम उनको देना तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है मुलाकात हमसे...
मुलाकात हमसे न अब हो सकेगी। ये बीमारी-गम का...
ये बीमारे-गम का पयाम आखिरी है हमारी तरफ से सलाम उनका देना तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है मुलाकात हमसे न अब हो सकेगी
ये बीमारी-गम का पयाम आखिरी है सरे-शाम तुम जब जुदा हो रहे हो... सरे-शाम तुम जब जुदा हो रहे हो जुदा रूह गोया कि होती है तनसे मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे मेरी जिंदगी की ये शाम आखिरी है हमारी तरफ से सलाम उनको देना तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है जवानी के नशे में...
जवानी के नशे में बदमस्त होकर... जवानी के नशे में बदमस्त होकर... जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल...
न चल टूटी कब्रों को ठुकरा के जालिम जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकरा के जालिम तुझे भी यहीं...

हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखिरी है
समय में मौत निश्चित है। मत चलो अकड़ कर! मत जीओ अकड़ कर! लेकिन अहंकार अकड़ कर जीने की तमन्ना का ही नाम है। अहंकार को हम कितने सहारे देते हैं-- धन के, पद के, प्रतिष्ठा के--फिर भी गिर जाता है, फिर भी बिखर जाता है। बिखरना ही बदा है उसकी किस्मत में। झूठ है; झूठ को कितना खींचोगे? ज्यादा नहीं खींचा जा सकता। आज नहीं कल, कल नहीं परसों झूठ का यह गुब्बारा फूटेगा ही। यह झूठ का बबूला टूटेगा ही। इसके पहले कि यह टूटे, तुम लघु से अपने को मुक्त कर लो।
अथ यदल्पं तन्मर्त्यम।।
इतना जान लो कि जो लघु है, वह मृत्यु के घेरे में है। तुम लघु के पार हो चलो।
ध्यान नेति-नेति की प्रक्रिया है। न मैं शरीर हूं, न मैं मत हूं, न मैं हृदय हूं, फिर जो शेष रह जाता है, वही मैं हूं। और जो शेष रह जाता है, उसकी फिर कोई सीमा नहीं है।
शरीर स्थूल सीमा है। मन थोड़ी सूक्ष्म। हृदय और सूक्ष्मातिसूक्ष्म।
लेकिन सब सीमाएं हैं। इन तीन परकोटों के भीतर हम हैं। और वह जो हमारा चैतन्य इन तीन परकोटों के भीतर है, उसकी कोई सीमा नहीं है। वह आकाश जैसा विराट है। उसको जान लेना ही सुख है।
यो वे भूमा तत्सुख।
जिसने उस भूमा को पहचान लिया, उसके जीवन में महासुख की वर्षा हो जाती है। कमल खिल जाते हैं। सुगंध बिखर जाती है। दीये जल जाते हैं। और ऐसे दीये जो बुझते नहीं। और ऐसे कमल जो मुरझाते नहीं। और ऐसी गंध जो उड़ नहीं जाती है।
नाल्पे सुखमस्ति।
अल्प में सुख कहां! जाओ, अल्प में सुख कहां! अगर हम अल्प में अकड़े हुए हैं। हम अल्प में ऐसे अकड़े हुए हैं कि जिसका हिसाब नहीं।
जवानी के नशे में बदमस्तर होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकराके जालिम
तुझे भी यहीं मरके आना है इक दिन
ये दुनिया में सबका मकाम आखिरी है
जिसने मृत्यु के आने के पहले मृत्यु को पहचान लिया, जान लिया, उसे छूटने में अड़चन नहीं होती मैं संन्यास कहता हूं इसी समझ को। जीते-जी मृत्यु को पहचान लेना संन्यास है। संसार का त्याग नहीं, मृत्यु का बोध संन्यास है। फिर संसार में रहो, संसार के बाहर रहो, कुछ भेद नहीं पड़ता। शरीर से बंधे हुए न रहो। मन से बंधे हुए न रहो। बंधे हुए ही न रहो किसी से। निर्बंध। निर्ग्रंथ। मुक्त। यूं तैरो जैसे कमल के पत्ते झील पर तैरते हैं। झील में होते हैं और झील उन्हें छूती नहीं। पानी उन्हें छूता नहीं।
ओस की बूंदें भी जम जाती हैं कमल के पत्तों पर, तो भी कमल के पत्तों को भीगा नहीं पातीं। वे अनभीगे ही रह जाते हैं। ऐसे जीने का नाम संन्यास है।
भूमैव सुख।
और फिर सुख ही सुख है। क्योंकि जो कहीं बंधा नहीं, जिस पर कोई जंजीर नहीं, कोई बेड़ी नहीं, उसके लिए दुख कैसे हो सकता है? परतंत्रता दुख है।
स्वतंत्रता सुख है।
भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।।
और, यही भूमा अभीप्सा करने योग्य है। यही भूमा अन्वेषण करने योग्य है। इसी भूमा की तलाश करो! यही भूमा, यही अमृत, यही सत्य, यही विराट, निरंतर फैलता हुआ, विराट, इसकी खोज ही धर्म है।
लेकिन तुमने तो धर्म के नाम पर भी कैसे पाखंड खड़े कर लिए। तुमने तो धर्म के नाम पर भी जंजीरें गढ़ ली हैं। धर्म है मुक्ति का आरोहण। लेकिन बन गये कारागृह में, कोई गिरजे में। कोई ईसाई होकर बंद है, कोई हिंदू बंद है, कोई जैन होकर बंद है। जमीन पागलों से भरी मालूम पड़ती है। हमें स्वतंत्रता भी दी जाए तो हम स्वतंत्रता से भी जंजीरें और बेड़ियां गढ़ लेते हैं। अजीब लोग हैं! हम स्वतंत्र होना जैसा चाहते ही नहीं। हमें अगर वीणा भी थमा दी

जाए, तो हम संगीत पैदा नहीं करते, हम उससे शोरगुल पैदा करते हैं। मुहल्ले वालों की नींद हराम करते हैं; खुद की नींद हराम करते हैं।
चंदूलाल के दुश्मन ने--और दुश्मन यानी पड़ोसी; यह हमेशा एक ही तरह के व्यक्ति का नाम है, उसको दुश्मन कहो कि पड़ोसी कहो--चंदूलाल के बेटे को उसके जन्मदिन पर एक ढोल भेंट कर दिया। बेटे को ढोल क्या मिला--अब जैसे बंदर को ढोल मिल जाए!--सो वह वक्त-बेवक्त ढोल बजाता रहे। उसने चंदूलाल की नींद हराम कर दी, चंदूलाल की पत्नी की नींद हराम कर दी। आधी रात उठ आए ढोल बजा दे! अब जब तक रोको तब तक नींद ही टूट गयी। बहुत परेशान हो गये चंदूलाल। चंदूलाल की पत्नी परेशान हो गयी। यह दुष्ट ने ढोल क्या भेंट कर दिया है। इतने परेशान हो गये कि जब दूसरा जन्मदिन आया और बेटे ने मां-बाप के पैर छुए, तो दोनों के ने मुंह से एकदम निकल गया: जीओ और जीने दो!
चंदूलाल मुझसे पूछते थे, क्या करूं? यह ढोल हमें मारे डाल रहा है! मैंने कहा, तुम भी पागल हो! मैंने चंदूलाल को एक चाकू दे दिया। मैंने कहा, यह चाकू ले जाओ, अपने बेटे को भेंट कर दो। इससे क्या होगा? मैंने कहा, तुम बेटे को भेंट तो करो और फिर उसकी जिज्ञासा जगा देना कि अरे, इस ढोल के भीतर भी तो देख कि क्या है। इतना पर्याप्त है। तबसे ढोल खतम हो गये। क्योंकि बेटे ने जिज्ञासा की, ढोल में चाकू डाल दिया; भीतर तो कुछ न निकला--ढोल के भीतर तो पोल ही होती है--मगर ढोल खतम हो गया।
अब किसी बंदर के हाथ में ढोल जाए तो उपद्रव ही होने वाला है!
स्वतंत्रता तुम्हें देने बुद्धों ने क्या-क्या नहीं किया, मगर तुम उस स्वतंत्रता से जंजीरें ढोल देते हो! संगीत पैदा नहीं होता है तुम्हारे जीवन में, और विसंगीत पैदा हो जाता है। हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं! यह तो विसंगीत हो गया। इससे तो अच्छा था कि न इस्लाम होता दुनिया में, न हिंदू धर्म होता, न ईसाइयत होती, न जैन धर्म होता। कम से कम आदमी शांति से तो जीता। कम से कम धर्म के नाम पर तो हत्याएं न होती खून न बहाया जाता। जितना धर्म के नाम पर अनाचार हुआ है, किसी और चीज के नाम पर नहीं हुआ है।
आदमी को होश नहीं है। उसकी बेहोशी में तुम उसे हीरे भी दो, तो कुछ न कुछ नुकसान करेगा। संपदा को भी विपदा बना लेगा।
डाक्टर ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, आप ठीक तो हो जाएंगे किन्तु आपको नियम से रहना पड़ेगा। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, नियम से? आप भी क्या बात कर रहे डाक्टर साहिब, मैं तो हमेशा नियम से रहता हूं। डाक्टर ने कहा कि तुम्हें शर्म नहीं आती मुझसे यह कहते हुए! यह बात बिलकुल झूठ है। तुम किसी और को धोखा देना। अभी कल ही तो मैंने तुमको शराब पीते हुए देखा था। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, उससे क्या फर्क पड़ता है? यह तो मेरा रोज का नियम है।
अब देखते हैं नियम का क्या अर्थ! रोज शराब पीता हूं, नियम से पीता हूं। क्या बातें कर रहे हैं आप! एक दिन चूक नहीं होती। कभी नियम का भंग नहीं होता। जो यम-नियम दे गये तुम्हें, अपना सिर फोड़ते होंगे! कि नियम से भी क्या अर्थ निकाले!
सेठ चंदूलाल तरहत्तरह की दवाइयां बेचते हैं। उन्होंने दवा के एक पैकेट पर छपा रखा था: "फोड़े-फुन्सियों की सर्वोत्तम दवा। फायदा न होने पर दाम वापिस।" एम सज्जन दवा का पैकेट वापस लाकर चंदूलाल से कहने लगे: "सेठ साहब, मैंने एक माह तक आपकी दवा का इस्तेमाल किया, लेकिन मुझे कुछ भी फायदा न हुआ, मुझे दाम वापिस चाहिए।" चंदूलाल ने कहा, "फायदा न होने पर दाम वापिस किये जाते हैं। आपको न हुआ हो, हमको तो हर पैकेट पर आठ आने का फायदा होता है।"
मतलब देखते हैं! आपको हो या न हो, इससे क्या मतलब है; साफ लिखा है कि फायदा न होने पर दाम वापिस, हमको तो फायदा हो रहा है! तुम्हारी बात ही किसने की है!
मां अपने बेटे से बोली, फिर से लड़ते देख कर, "कि अरे, तुम लोग फिर लड़ने लगे?" उसके एक बेटे ने कहा, "नहीं, मम्मी, यह तो वही पहले वाली लड़ाई है!" फिर से नहीं लड़ रहे, वही चल रही है।
चंदूलाल कह रहे थे मुल्ला नसरुद्दीन से: "आप कब उठते हैं?" मुल्ला ने कहा: "जब सूरज की किरणें मेरे कमरे में प्रवेश करते हैं।" चंदूलाल ने कहा: "तब तो आप काफी जल्दी उठ जाते हैं, ब्रह्ममुहूर्त में। मुसलमान होकर और

ब्रह्ममुहूर्त में! मैं भी इतना संयम नहीं पाल पाता। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: "गलत न समझिये, मेरे कमरे का रुख पश्चिम की और है।"
मुल्ला नसरुद्दीन की बेटी फरीदा स्कूल से लेट आयी। नसरुद्दीन ने कारण पूछा तो फरीदा ने कहा, "पिता जी, एक दुष्ट लड़का मेरे पीछे पड़ गया था। बिलकुल लफंगा था। लुच्चा था। इसलिए लेट हो गयी।" मुल्ला बोला, "पर बेटी, इससे लेट होने का क्या संबंध है?" फरीदा बोली, पापा, मेरे भोले पापा, कुछ समझा भी करो न! भला मैं करती भी क्या, वह बहुत धीरे-चल रहा था।"
लफंगा पीछे पड़ा था, मगर बहुत धीरे-धीरे चल रहा था तो बिचारी फरीदा को
भी धीरे-धीरे चलना पड़ा!
जिंदगी के लिए सूत्र तो बहुत बार दिये गये हैं, लेकिन हर सूत्र से तुमने अपनी फांसी लगा ली है। तुम हर शास्त्र से अपनी आत्महत्या का उपाय कर लिया है।
यह प्यारा सूत्र है छांदोग्य का: जो विराट है, विशाल है, जो अनंत है, असीम है, वही अमृत है। और तुम भी वही हो। अमृतत्स पुत्रः। तुम अमृत के पुत्र हो। "हो लघु है वह मर्त्य है।" और नाहक लघु बन कर बैठ गये हो। सिवाय तुम्हारी भूल के और कोई जिम्मेवारी किसी की नहीं है। जो विशाल है, वही आनंद है। और तुम्हारा दुख कह रहा है कि तुम्हें आनंद की कोई खबर ही नहीं मिली। तुम्हारा जीवन, तुम्हारी उदासी पर्याप्त प्रमाण हैं कि तुमने कुछ गलत कर लिया है। जीवन के उत्सव को तुमने क्या मातमी रंग दे दिया है! तुम ऐसे जी रहे हो जैसे बोझ ढो रहे हो। दबे जा रहे हो--और फिर भी जागते नहीं! और बात कुल जागने की है।
निःसंदेह विशाल में ही आनंद है। इसलिए विशेष को ही जानने की अभीप्सा करो!
यो वै भूमा तदमृतम। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम।। यो वै भूमा तत्सुख। नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुख। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।।
जिज्ञासा करो, अभीप्सा करो, मुमुक्षा करो मगर विराट की। और विराट कहीं दूर तुमसे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम्हारा अंतस्तल है। तुम्हारी अंतरात्मा है। इसलिए कहीं जाना नहीं है, अपने भीतर आना है। न काबा जाना है, न काशी, न कैलाश, अपने भीतर आना है। मत इस शरीर के साथ अपने को इतना बांधो! और ध्यान रखना, मैं कोई शरीर का दुश्मन नहीं हूं। मैं नहीं कह रहा हूं कि शरीर को सताओ। क्योंकि सताते वे ही हैं, जिन्हें यह बोध नहीं हुआ कि हम शरीर नहीं हैं। तुम भलीभांति जानते हो कि तुम जिस मकान में रहते हो, तुम वह मकान नहीं हो। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम उस मकान की ईंटे गिराने लगते हो, कि उसका पलस्तर उखाड़ने लगते हो, कि उसका छप्पर गिराने लगते हो, जानते हो भलीभांति कि तुम मकान नहीं, लेकिन वर्षा आती है तो छप्पर को ठीक करते हो, खपड़ों को ठीक से जमाते हो। और जानते हो कि मैं मकान नहीं हूं, लेकिन मकान में रहता हूं तो मकान को सुंदर रखते हो, सजा कर रखते हो। आखिर रहना तुम्हें हैं।
दुनिया में दो तरह के पागल हैं। एक, जो शरीर को समझ रहे हैं कि मैं शरीर हूं और उस कारण दुख भोग रहे हैं। और दूसरा पागल, जो कहते हैं कि हम शरीर नहीं है, इसलिए शरीर को सता रहे हैं। उपवासे मर रहे हैं। शरीर को गला रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, हम शरीर नहीं हैं। तुम शरीर नहीं हो तो शरीर को सता किसलिए रहे हो? यह तो एक अति से दूसरी अति पर जाना हो गया। एक अति थी कि शरीर के द्वारा भोगेंगे, और दूसरी अति है कि अब शरीर को सताएंगे, परेशान करेंगे। दोनों में ही तुमने शरीर के साथ अपना तादात्म्य किया हुआ है। और दोनों अतियों के मध्य में संगीत है, छंद है--छांदोग्य है।
बुद्ध के पास एक राजकुमार, श्रोण ने दीक्षा ली। वह महाभोगी था। जीवन
भर उसने भोग के अतिरिक्त कुछ भी न जाना था। शराब पीना, खाना, स्त्रियां, मौज-मजा--वह बिलकुल चार्वाकवादी था। न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है, न कोई सत्य है, न कोई मोक्ष है, ऐसी उसकी धारणा थी। अगर कब तक भोगोगे? भोग-भोग कर थक गया। भोग-भोग कर ऊब गया। जो भोगता है, वह ऊब ही जाने वाला है। खतरा उनका है जा भोगते नहीं और भोग को जबरदस्ती छोड़ कर खड़े रहते हैं। वे कभी नहीं ऊबते। ऊबेंगे कैसे? जो स्त्रियों को छोड़ कर भागे हैं, उनके मन में स्त्रियों प्रति रस बना ही रहेगा। बैठेंगे हिमालय की गुफा में, उन्हें

राम याद नहीं आएगा, काम याद आएगा। बातें ब्रह्मचर्य की करेंगे, सपने उनके अब्रह्मचर्य से भरे होंगे। यह बिलकुल अनिवार्य है। यह बिलकुल वैज्ञानिक है। जो धन को छोड़ कर भोगा है, उसके पीछे धन भूत की तरह लगा रहेगा। तुम कितना ही भागो, कहावत है न: "भागते भूत की लंगोटी ही भली", वह धन जिसे तुम छोड़ कर भोगे हो वह तुम्हारी लंगोटी पकड़े रखेगा। तुम जितना भागोगे, कुछ फर्क नहीं पड़ता, लंगोटी उसके हाथ में रहेगी।
जिससे तुम भयभीत हुए हो, तुम उससे मुक्त नहीं हो सकते।
लेकिन थक गया। इतना भोग था। अभी जवान ही था, कुल पैंतीस वर्ष उसकी उम्र थी, लेकिन थक गया। इतना भोग लिया जितना कि आदमी तीन-चार जन्मों में भोगे वह उसने एक ही जन्म में भोग कर दिखा दिया। लेकिन ऊब गया। स्त्रियां बेमानी हो गयीं। शराब व्यर्थ हो गयी, भोजन में स्वाद न रहा--सब व्यर्थ दिखायी पड़ने लगा। और तब बुद्ध का गांव में आगमन हुआ। श्रोण उनके पास गया। उन्हें देखा--सुना भी नहीं, सिर्फ देखा! एक परिपक्व अवस्था थी उसकी; भोग से ऊब गया था। त्यागी तो गांव में बहुत आए थे, लेकिन त्यागियों में उसे कोई रस नहीं आया था। त्यागी दिखते थे उदास--उससे भी ज्यादा। त्यागी दिखते थे मुर्दा--उससे भी ज्यादा मुर्दा। न उनकी आंखों में ज्योति थी, न उनके जीवन में कोई आनंद की झलक थी, न कोई प्रकाश की किरणें थीं, न कोई प्रसाद था उनके आसपास, न कोई सौंदर्य था--श्रोण कैसे प्रभावित होता?
लेकिन बुद्ध को देखा--सुना भी नहीं अभी, बुद्ध से बोला भी नहीं, बुद्ध
ने एक शब्द भी नहीं कहा--और श्रोण उनके चरणों में गिरा और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें। मैं भिक्षु होने की तैयार हूं। बुद्ध ने कहा, न तूने मुझे सुना, न तूने मुझे समझा, अभी मैं गांव में आया ही आया हूं, तू अभी-अभी मेरे पास आया, हालांकि तेरे बाबत कहानियां मेरे पास आ चुकी हैं, अनेक लोगों ने कहा कि आप श्रोण की नगरी जा रहे हैं, वह महाभोगी है, महा लंपट है, वह शायद आपके दर्शन को भी न आए; लेकिन तू आया है और आते ही से भिक्षु होना चाहता है! उसने कहा, आपको देख कर सब समझ में आ गया। एक मैं हूं कि भोग के सिर्फ कांटों से बिंध गया हूं। और मैंने त्यागी भी देखे हैं, उनको भी मैंने कांटों में बिंधा हुआ पाया। आपके जीवन में कुछ नयी बात देखता हूं। न आप योगी मालूम पड़ते हैं, न आप भोगी मालूम पड़ते हैं। अगर आपकी यह प्रफुल्लित मुद्रा, आपके यह व्यक्तित्व की आभा, आपकी आंखों से झरता यह अमृत, काफी है, बस काफी है, आपकी उपस्थिति का बोध काफी है। मुझे दीक्षा दें! मैं एक क्षण भी नहीं गंवाना चाहता। क्योंकि कल का क्या पता है? मुझसे मत कहना आप के सोच ले, विचार ले। सोचने-विचारने को कुछ बचा नहीं, मैं सब भोग कर देख लिया हूं। बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। और जिस बात का डर था, वही हुआ। दीक्षा लेने
के बाद वह तत्क्षण दूसरी अति पर चला गया, जो कि मनुष्य के मन की साधारण प्रक्रिया है। मनुष्य का मन यूं चलता है जैसे घड़ी का पेंडुलम। बायें से दायें, दायें से बायें। और एक ख्याल रखना पेंडुलम के संबंध में, एक बात ध्यान में रखना, जब पेंडुलम बायीं तरफ जाता है तो दिखाई तो पड़ता है बायीं तरफ जा रहा है, लेकिन वह दायें तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी करता होता है। बायां जाता है और दायें तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी करता है। जब दायें जाता है तब बायें जाने की शक्ति इकट्ठी करता है। दिखाई एक बात पड़ती है, भीतर कुछ और बात हो रही है।
और यही स्थिति तुम्हारे तथाकथित भोगियों की और त्यागियों की है। जाते त्याग में हैं, लेकिन तैयारी भोग की हो रही है। फिर चाहे भोग स्वर्ग में हो। और वही हालत तुम्हारे भोगियों की है। जाते हैं भोग में, लेकिन तैयारी त्याग की हो रही है। मगर अतियों के बीच डोलने से कुछ क्रांति नहीं होती।
एक अति दूसरे पर ले जाती है, दूसरी फिर थका देती है और पहले पर ले जाती है। और जन्मों-जन्मों तक यह पेंडुलम ऐसा ही घूमता रहता है।
और वही हुआ। श्रोण ने अति करनी शुरू कर दी। अति उसकी पुरानी आदत थी। भोग में अति की थी, अब वह त्याग में अति करने लगा। बौद्ध भिक्षु दिन में एक ही बार भोजन करते थे--क्योंकि बुद्ध का कहना था: पर्याप्त है-- श्रोण...जिंदगी भर की पुरानी आदत, सबसे आगे होने की आदत, अगर दूसरे राजाओं के पास हजार स्त्रियां थीं तो उसने दो हजार इकट्ठी करके दिखा दी थीं; अगर दूसरे राजाओं के पास महल थे, तो उसने दुगुने बड़े महल बना कर दिखाई दिये थे--

वह भिक्षुओं में भी पीछे नहीं रह सकता था; वही अहंकार। बुद्ध से आंदोलित हो गया था, प्रभावित हो गया था, लेकिन प्रभावित होते से ही तो क्रांति नहीं हो जाती। क्रांति करने के लिए तो फिर रफ्ता-रफ्ता, एक-एक इंच जीवन को बदलना होता है। प्रभावित होना तो बहुत आसान है, क्रांति लंबी प्रक्रिया है, वह आग से गुजरना है। पुरानी आदतें एकदम से नहीं चली जातीं। लौट-लौट कर आ जाती हैं, पीछे के दरवाजे से आ जाती हैं। एक दरवाजे से फेंको, दूसरा दरवाजा खोज लेती हैं।...वह दो दिल में एक बार भोजन करता था।
उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया।
और भिक्षु रास्तों पर चलते थे, वह हमेशा रास्ते के नीचे से चलता था; जहां कांटे होते, कंकड़-पत्थर होते। उसके पैर लहूलुहान हो गये। और भिक्षु तीन वस्त्र रखते थे, वह सिर्फ एक लंगोटी रखता था। उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया। वही पुराना श्रोण! उसने यहां भी अपना कब्जा जमा दिया। और सब साधारण रह गये, वह एकदम असाधारण हो गया। सुंदर उसकी देह थी, फूल जैसी कोमल उसकी देह थी, बहुत सुख में पला था, बहुत सुख में जीया था, उसने देह को बिलकुल ही जला डाला धूप में। काला पड़ गया। सूख गया। पैरों में घाव हो गये। रात सोता तो भी कंकड़ों-पत्थरों में सोता, बाहर सोता।
बुद्ध को खबरें आने लगीं कि उसकी हालत बिगड़ती जा रही है। हालांकि लोग उससे प्रभावित भी हो रहे थे।...लोग अजीब-अजीब तरह की चीजों से प्रभावित होते हैं।...वह फिर अहंकार में मजा लेने लगा था।
बुद्ध एक रात उसके झाड़ के पास गये जहां वह लेटा था और कहा: श्रोण, एक प्रश्न तुझे मुझसे पूछना है। और उसके पहले कि तू मुझसे प्रश्न पूछे, शायद तेरे सामने अभी साफ भी नहीं है प्रश्न, मैं मुझसे एक प्रश्न पूछता हूं, फिर तू भी शायद पूछ सकेगा। मैं राह देखता रहा कि तू पूछे। लेकिन लगता है कि तू प्रश्न को साफ नहीं कर पा रहा है, इसलिए पहले मैं पूछता हूं। मैं तुझसे पूछता हूं कि जब तू सम्राट था, तो सुना है मैंने कि तू अदभुत वीणा बजाता था, तेरा वीणावादन अपूर्व था। श्रोण को भूली-बिसरी यादें आयीं। उसने कहा, आप ठीक याद दिलाते हैं, मैं तो सब भूल-भाल गया हूं; हां, वीणा में मुझे रस था। और वीणा बजाने में मेरी कुशलता थी। और दूर-दूर के संगीतज्ञ भी उसकी प्रशंसा करते थे। बुद्ध ने कहा: यह मुझे पूछना है कि तू इतना वीणा का कुशल वादक था, तुझे तो अच्छी तरह पता होगा कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों, तो क्या होगा? श्रोण ने कहा, तार ढीले हों,तो संगीत पैदा नहीं होता है। और बुद्ध ने कहा: अगर बहुत कसे हों? तो, श्रोण ने कहा, तो तारे खींचोगे, टूट जाएंगे; संगीत फिर पैदा नहीं होगा। बुद्ध ने कहा: बस। तुझे कुछ पूछना है? तू अपने जीवन पर पुनर्विचार कर ले। पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, जब संगीत पैदा नहीं हुआ। अब तूने तार बहुत कस लिये हैं, अब तार टूटने के करीब हैं, अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है। मुझे देख, मैं वीणा बजाना नहीं जानता, लेकिन जीवन की वीणा बजाना जानता हूं। और मैं तुझसे कहता हूं: जो वीणा बजाने का नियम है, वही जीवन की वीणा को बजाने नियम भी है। न तार बहुत ढीले होने चाहिए, न बहुत कसे। एक ऐसी भी व्यवस्था है तारों की, जब न तो कह सकते हैं हम कि वे कसे हैं और न कह सकते हैं कि ढीले हैं; वह मध्य की अवस्था, वह समता की अवस्था, वह सम्यकत्व वह समतुलता की अवस्था जहां दोनों अतियों के बीच में तार होते हैं, वहीं संगीत पैदा होता है। और वीणा बजाना तो आसान है, लेकिन वीणा को ठीक समतुल अवस्था में लाना किसी उस्ताद को ही आता है। श्रोण फिर पैरों पर गिरा दुबारा। एक दफा गिरा था जब भोगी की तरह आया था, आज गिरा योगी की तरह, त्यागी की तरह। उसने कहा, आपने मुझे ठीक समय पर सचेत कर दिया। जरूर मुझसे वहीं भूल हो गयी। तार ढीले थे, मैंने जरूरत से ज्यादा कस लिये। मैं भी सोच रहा था कि आनंद पैदा क्यों नहीं हो रहा है? सब तो मैं कर रहा हूं, दूसरे कर रहे हैं उससे दुगुना कर रहा हूं, फिर आनंद क्यों पैदा नहीं हो रहा है? बुद्ध ने कहा: वह दुगुना करने के कारण ही पैदा नहीं हो रहा है। जीवन में एक सम्यकत्व चाहिए, तो छंद पैदा होता है, तो छांदोग्य पैदा होता है।
शरीर से बहुत बंधने की जरूरत नहीं है, शरीर के दुश्मन होने की भी जरूरत नहीं है। शरीर सुंदर घर है, रहो, शरीर को देखभाल करो, अपने को शरीर ही

न मान लो। मन भी प्यारा है। उसका भी उपयोग करो। उसकी भी जरूरत है। और हृदय तो और भी प्यारा है। उसमें भी जीओ। मगर, ध्यान बना रहे कि मैं साक्षी हूं।
और जिसे सतत स्मरण है कि मैं साक्षी हूं, उसकी क्रांति सुनिश्चित है। जिसे स्मरण है कि मैं साक्षी हूं, वह भूमा को उपलब्ध हो जाता है।
तुम सिर्फ साक्षी हो, वह तुम्हारा स्वरूप है। न तुम कर्ता हो--शरीर से कर्म होते हैं--न तुम विचारक हो--मन से विचार होते हैं--न तुम भावुक हो-- हृदय से भावनाएं होती है--तुम साक्षी हो--भावों के, विचारों के, कृत्यों के। ये तुम्हारी तीन अभिव्यक्तियां हैं। और इन तीनों के बीच में तुम्हारा साक्षी है। उस साक्षी के सूत्र को पकड़ लो।
साक्षी के सूत्र को पकड़ते ही संन्यास का फूल खिल जाता है। जो कली की तरह रहा है जन्मों-जन्मों से, तत्क्षण उसकी पंखुड़ियां खुल जाती हैं। और वह फूल ऐसा नहीं जो कुम्हलाए, वह फूल अमृत है। वह फूल ऐसा नहीं जो मरे, वह भूमा है, असीम है। वह फूल आनंद का फूल है। वह फूल ही मोक्ष है।

आज इतना ही।

मेरा स्वर्णिम भारत-24

अंतःकरण का अतिक्रमण
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #5)

पहला प्रश्नः ओशो,
यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां--
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चवेद भूतिकामः।।
जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता, मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है और जिन-जिन कामनाओं की कामना करता है, वह उस-उस लोक को और उन-उन कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है, उसे आत्मवेत्ता की अर्चना करनी चाहिए।
ओशो, मुंडकोपनिषद के इस सूत्र का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद!
इसके पहले कि हम सूत्र के विश्लेषण में उतरें, कुछ आधारभूत बातें समझ लेनी उपयोगी हैं।
पहलीः जब तक कामना है, तब तक आत्मा शुद्ध नहीं। आत्मा की अशुद्धि का
और अर्थ ही क्या होता है? कामना की कीचड़! फिर कामना धन की हो, पद की हो, प्रतिष्ठा की हो; मोक्ष की हो, निर्वाण की हो, ब्रह्मज्ञान की हो; इससे भेद नहीं पड़ता। कीचड़ कीचड़ है। जब तक कामना है, तब तक कैसी शुद्धि? जहां कामना है, वहीं संसार है। संसार कामना का विस्तार है। कामना शून्य हुई, संसार समाप्त हुआ। कामना संसार है, तो कामना का शून्य हो जाना संन्यास है। और जहां कामना के बीज तक दग्ध हो गए हों, वहीं सत्वशुद्धि है।
इसलिए यह सूत्र बुनियादी रूप से गलत है।
दूसरी बातः जब आत्मा शुद्ध हो गई, तो फिर मन कहां! यह तो बात बड़ी विक्षिप्तता की हो गई। यह तो यूं हुआ कि एक तरफ तो कहा कि झील शांत है और दूसरी तरफ झील में उठते तूफानों, झंझावातों और लहरों की चर्चा छेड़ दी! झील शांत है, मौन है, दर्पण की तरह है; न कोई लहरें हैं, न कोई तरंग। तो फिर कैसा तूफान? कैसी आंधी? कैसे झंझावात?
जहां आत्मा शुद्ध है, वहां मन असंभव है।
मन का अर्थ क्या होता है? आत्मा का अथिर होना; आत्मा का डांवाडोल होना; आत्मा का कंपित होना; आत्मा का लहरों से भरा होना। विचार की लहरें; स्मृतियों की लहरें; कल्पना की लहरें--जहां लहरों पर लहरें आ रही हैं, उसका नाम मन है। आत्मा का नाम ही मन है। आत्मा जब रुग्ण है, तो उसका नाम मन है। और जहां रोग गया, वहां मन गया। आत्मा जब स्वस्थ है, तब सत्वशुद्धि होती है। इसलिए एक तरफ तो कहना कि जिसकी आत्मा परम शुद्धि को उपलब्ध हो गई है,
वह मन से जो भी चाहेगा उसे पा लेगा, निपट मूढ़तापूर्ण है।
यह सूत्र किसी विक्षिप्त व्यक्ति ने लिखा होगा। उपनिषद में हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। मैं शास्त्रों को देख कर नहीं चलता हूं। मेरी कसौटी पर उतरनी चाहिए बात। मेरी कसौटी मेरे अनुभव पर निर्भर है, किसी शास्त्र पर नहीं। तो मुंडकोपनिषद हो या कोई और उपनिषद हो, वेद हो, कि कुरान हो, कि बाइबिल हो, इन बड़े-बड़े नामों से मुझे रत्ती भर भी अंतर नहीं पड़ता। मैं वही कहूंगा, जो मेरी अंतः-अनुभूति की कसौटी पर सही उतरता है।
लेकिन सदियों से हमारी आदत गलत हो गई है। मुंडकोपनिषद में है, इसलिए ठीक होना ही चाहिए! उपनिषद में कहीं गलत बात हो सकती है?
गलत बात कहीं भी हो सकती है, क्योंकि सब बातें आदमी लिखते हैं। और उपनिषद या वेद तो बहुत लोगों ने लिखे हैं। एक-एक उपनिषद में बहुत से व्यक्तियों के वक्तव्य हैं।
फिर अगर एक उपनिषद में एक ही व्यक्ति के वक्तव्य हों, तो भी ध्यान रखना, यह भी हो सकता है, उसके कुछ सूत्र उस समय के हों जब उसने जाना न था और

कुछ सूत्र उस समय के हों जब उसने जाना। और स्वयं उसने लिखा न हो; किसी शिष्य ने, जो-जो सुना है, वह संगृहीत कर लिया हो।
लेकिन मुझे इससे अंतर नहीं पड़ता। लोगों को तकलीफ होती है! कल ही किसी व्यक्ति ने पूछा है कि कभी आप किसी शास्त्र के पक्ष में बोल देते हैं और कभी उसी शास्त्र के विपक्ष में बोल देते हैं!
मैं भी क्या करूं; तुम्हारे शास्त्रों का कसूर है। तुम्हारे शास्त्र विरोधाभासों से भरे हैं। उनके विरोधाभासों पर लीपापोती करने के लिए मैंने कुछ ठेका नहीं लिया। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। मैं तो जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, वही कहूंगा। तुम्हारे शास्त्र का मेल पड़ जाए, यह तुम्हारे शास्त्र का सौभाग्य। मेल न पड़े, यह तुम्हारे शास्त्र का दुर्भाग्य। इसमें मेरा कुछ लेना-देना नहीं।
यह सूत्र तो बिल्कुल ही विक्षिप्त है। गलत ही नहीं, गलत से भी गया- बीता है!
"यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।"
"जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस लोक की कामना करता है और जिन-जिन कामनाओं की कामना करता है, वह उस-उस लोक को और उन-उन कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।"
जिसने स्वयं को जाना, उसे क्या कुछ पाने को शेष रह जाता है? जिसने स्वयं को पा लिया, अब क्या इसके ऊपर भी कोई संपदा है? कोई साम्राज्य है? क्या इसके ऊपर भी कोई और गति है? अब क्या चाहेगा वह? अब तो जो चाहेगा, वही पतन होगा। जैसे कोई गौरीशंकर पर विराजमान हो गया, अब और कहां जाएगा? अब तो हर गति पतन होगी; अब तो हर कदम नीचे की तरफ होगा। अब तो हर यात्रा ढलान की होगी।
आत्मवेत्ता तो वह है, जिसने चेतना के परम शिखर को उपलब्ध कर लिया है।
और ख्याल रखना, जो मूल शब्द है, विशुद्धसत्वः, वह बड़ा बहुमूल्य है। उसका इतना ही अर्थ नहीं होता कि जिसका अंतःकरण शुद्ध है। अंतःकरण तो दो कौड़ी की चीज है। अंतःकरण को बहुत कीमत मत देना।
अंतःकरण आत्मा नहीं है, इस भेद को खूब ख्याल रखना। हालांकि समाज की सारी शिक्षा इस भेद को मिटाने की चेष्टा करती है। अंतःकरण यानी आत्मा, ऐसा शब्दकोश कहेंगे, भाषाकार कहेंगे, व्याख्याता कहेंगे, पंडित-पुरोहित कहेंगे। लेकिन यह बात बुनियादी रूप से झूठ है। अंतःकरण सच पूछो तो अंतःकरण भी नहीं होता, आत्मा होनी तो बहुत दूर। क्योंकि अंतःकरण बाहर से पैदा किया जाता है, भीतर तो होता ही नहीं। अंतःकरण तो समाज पैदा करता है। यह तो समाज की व्यवस्था है, व्यक्ति को गुलाम बनाए रखने के लिए।
जैसे समाज बाहर इंतजाम करता है पुलिस वाले का, और मजिस्ट्रेट का, अदालत का, कानून का, विधान का, ताकि तुम्हें बाहर से बांध ले, तुम बाहर के डर से कुछ भूल-चूक न कर सको। लेकिन आदमी होशियार है। तुम लाख कानून बनाओ, तुम लाख व्यवस्था बनाओ, हर व्यवस्था में से छिद्र निकाल लेगा। आखिर आदमी ही तो बनाएगा न कानून! तो आदमी कानून से तरकीबें भी निकाल लेगा।
आखिर सारे वकील करते ही क्या हैं! उनका काम ही क्या है! उनका काम ही यही है कि कानून से कानून के विपरीत जाने की व्यवस्था खोजना। इसलिए तुम कोई भी मुकदमा लेकर वकील के पास जाओ, वह कहेगा, बेफिक्र रहो; जीत निश्चित है। खर्च तो बहुत होगा, मगर जीत निश्चित है।
मुल्ला नसरुद्दीन वकील के पास गया था। सारा मामला अपना सुनाया। वकील
ने कहा, बिल्कुल मत घबड़ाओ। मामला तो कठिन है, पैसा तो खर्च होगा, मगर जीत निश्चित है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि आपको पक्का भरोसा है जीत निश्चित है?
उस वकील ने कहा, छाती पर हाथ रख कर कहता हूं, परमात्मा को गवाह रख कर कहता हूं कि जीत निश्चित है। जीवन भर हो गया वकालत करते, इतना अनुभव नहीं मुझे? ऐसे कई मुकदमे जिता चुका हूं!
मुल्ला तो उठ खड़ा हुआ, चलने लगा। तो वकील ने कहा, कहां जा रहे हो?
मुल्ला ने कहा, तो फिर बात खतम हो गई।
उसने कहा, तो मुकदमा नहीं लड़ना है?

मुल्ला ने कहा, मैंने तुम्हें अपने विरोधी के तरफ का मामला बताया था। तुम कह रहे हो कि जीत बिल्कुल निश्चित है, तो अब मामला क्या करना है? फिर झगड़े में सार ही क्या है? तो हम आपस में ही समझौता किए लेते हैं। जब जीत निश्चित ही है उसकी...!
तब वकील को पता चला कि यह पहला मौका है, जिसमें वह धोखा खा गया। यह आदमी अपने विरोधी का मामला बता रहा था उसको!
वकील की सारी व्यवस्था यही है कि कानून से तरकीबें खोजे। जिन लोगों
ने कानून बनाया है, वे वे ही लोग हैं जिनके हाथ में लाठी है। जिसके हाथ में लाठी उसकी भैंस! जिनके न्यस्त स्वार्थ हैं, वे कानून बनाते हैं।
लेकिन उन्हें यह बात जाहिर है कि बाहर के कानून आदमी की पूरी आत्मा पर जंजीरें नहीं डाल सकते। हो सकता है उसके हाथों में जंजीरें पड़ जाएं और पैरों में बेड़ियां पड़ जाएं, मगर आदमी भीतर तो स्वतंत्र रहेगा। भीतर भी जंजीरें पहनानी जरूरी हैं, तभी आदमी पूरा गुलाम होगा। और समाज के न्यस्त स्वार्थ चाहते हैं कि आदमी पूरा गुलाम हो, शत प्रतिशत गुलाम हो, ताकि बगावत की कोई संभावना ही न रह जाए, ताकि वह इनकार न करे, ताकि वह कभी आज्ञा का उल्लंघन न करे। इस व्यवस्था को जुटाने के लिए उन्होंने अंतःकरण पैदा किया है।
अंतःकरण सामाजिक आविष्कार है। बच्चे के पास कोई अंतःकरण नहीं होता। अंतःकरण हम धीरे-धीरे उसमें पैदा करते हैं। और हरेक धर्म का, हरेक जाति का, हरेक देश का अलग-अलग अंतःकरण होता है।
जैसे एक जैन को अगर तुम मांस परोस दो, तो उसका अंतःकरण क्या कहेगा?
असंभव है कि वह मांस का आहार कर सके, क्योंकि बचपन से ही मांसाहार गलत है, महापाप है, इस भांति की धारणा उसके भीतर डाली गई है, संस्कारित की गई है। यह संस्कार है। यह गहरे पहुंचा दिया गया है। इसकी इतनी पुनरुक्ति की गई है! पुनरुक्ति ही व्यवस्था है अंतःकरण को पैदा करने की। बचपन से ही दोहराया गया है, हजार तरह से दोहराया गया है, और डर भी दिखाए गए हैं। अगर मांसाहार किया, तो नर्क में सड़ोगे। अगर मांसाहार न किया, तो स्वर्ग के आनंद भोगोगे। कैसे-कैसे भोग स्वर्ग के! कैसे-कैसे प्रलोभन! और कैसे-कैसे भय नर्क के! भय और लोभ, दोनों के बीच बच्चे को कसा गया है। और रोज दोहराया गया है। कहानियां दोहराई गई हैं; पुराण दोहराए गए हैं; मंदिरों में ले जाया गया है। पंडित-पुजारियों, साधु-संतों के पास बिठाया गया है।
बहुत बार दोहराने से संस्कारित हो गया है। आज सामने उसके मांस रख दो,
बस मुश्किल में पड़ जाएगा। वमन हो जाएगा। मांसाहार करना तो असंभव है। उसका सारा अंतःकरण कहेगा, पाप है! महापाप है! वह देख भी न सकेगा। छू भी न सकेगा। लेकिन सारी दुनिया तो मांसाहारी है। निन्यानबे प्रतिशत लोग तो दुनिया के मांसाहारी हैं। और ऐसा ही नहीं है कि भारत के बाहर ही मांसाहारी हैं, भारत में भी अधिकतम लोग तो मांसाहारी हैं। थोड़े से जैनों को छोड़ दो; थोड़े से ब्राह्मणों को छोड़ दो। सारे ब्राह्मणों को भी मत छोड़ देना। क्योंकि कश्मीरी ब्राह्मण तो मांसाहार करता है। इसलिए पंडित जवाहरलाल नेहरू को मांसाहार करने में कोई अंतःकरण की बाधा नहीं पड़ती थी। कश्मीरी ब्राह्मण! बंगाली ब्राह्मण तो मछली खाता है। तो रामकृष्ण को मछली खाने में कोई बाधा नहीं थी, कोई अंतःकरण बाधा नहीं डालता था। तो सारे ब्राह्मण भी मत गिन लेना गैर-मांसाहारियों में। और जैनियों की संख्या कितनी है? यही कोई पैंतीस लाख। और थोड़े से ब्राह्मण उत्तर भारत के। इनको छोड़ कर सारी दुनिया मांसाहारी है। न तो किसी के अंतःकरण में कोई अड़चन आती; न किसी के भीतर कोई सवाल उठता।
अगर यह बात सच में ही अंतःकरण की होती, तो हरेक के भीतर आवाज आनी चाहिए थी! अगर यह परमात्मा की आवाज होती, आत्मा की वाणी होती, तो प्रत्येक के भीतर उठनी चाहिए थी! और मजा तो यूं है कि ऐसी-ऐसी बातों में भी अंतःकरण उठ आएगा, जिनके संबंध में तुमने कभी कल्पना भी न की हो! सोचा भी न हो!
मेरे परिवार में एक बार एक क्वेकर ईसाई फकीर मेहमान हुआ। तो मैंने उससे पूछा सुबह कि चाय लोगे, काफी लोगे, दूध लोगे, क्या लोगे? उसने कहा, दूध! आप और दूध पीते हैं?

उसने मुझसे ऐसे पूछा, जैसे कि कोई महापाप करने के लिए मैंने उसे निमंत्रण दिया है! तब तक मुझे पता ही न था कि क्वेकर दूध को पीना पाप समझते हैं। उनके अंतःकरण के खिलाफ है। यहां तो दूध सबसे सात्विक आहार है इस देश में, ऋषि-मुनियों का आहार! यहां तो जो आदमी दूध ही दूध पीता है, उसको तो लोग महात्मा कहते हैं। मैं रायपुर में कोई छह-आठ महीने रहा, तो वहां तो एक पूरा का पूरा आश्रम, दूधाधारी आश्रम! वहां सिर्फ दूध ही पीने वाले साधु-संत हैं। और उनकी महत्ता यही है कि वे सिर्फ दूध पीते हैं!
तो मैंने कहा कि दूध पीने में कोई अड़चन? आपको तकलीफ है?
उन्होंने कहा, तकलीफ की बात कर रहे हो! अरे, दूध और खून में भेद ही क्या? जैसे खून शरीर से आता है, वैसे ही दूध भी शरीर से ही आता है।
इसीलिए तो दूध पीने से खून बढ़ता है, चेहरे पर सुर्खी आ जाती है। दूध रक्त जैसा ही है। बात में तो बल है। शरीर से ही निकलता है; शरीर का ही अंग है। तो शरीर के अंग को--चाहे वह मांस हो, चाहे दूध हो, चाहे रक्त हो--एक ही कोटि में गिना जाएगा।
उन्होंने कहा, दूध तो बहुत असात्विक आहार है!
इस देश में लोग दूध को सात्विक आहार मानते रहे। उनका अंतःकरण कहता है, बिल्कुल सात्विक आहार है। क्वेकर ईसाई मानते हैं, बिल्कुल असात्विक आहार है। उनका अंतःकरण उन्हें दूध नहीं पीने देता। दूध देख कर ही उनको बेचैनी हो जाएगी।
कौन सी चीज अंतःकरण है? अगर अंतःकरण जैसी कोई बात होती, तो सभी के भीतर समान होनी चाहिए थी। लेकिन सभी के भीतर समान नहीं है। औरों की तो बात छोड़ दो, दिगंबर और श्वेतांबर जैन, एक ही संप्रदाय, कोई खास भेद नहीं। एक ही मत, एक ही जीवन-दर्शन। कुछ छोटी सी टुच्ची बातों के फासले हैं। मगर उनमें भी फर्क है।
जब पर्युषण के दिन आते हैं, जैनों के धार्मिक उत्सव के दिन, तो दिगंबर जैन हरी सब्जियां नहीं खाते। मैं तो दिगंबर परिवार में पैदा हुआ, तो बचपन से मैंने यही जाना कि हरी सब्जी पर्युषण के समय में खाना पाप है। कोई बीस वर्ष की उम्र में पहली दफा एक श्वेतांबर जैन परिवार में मैं ठहरा। तो मैं चकित हुआ यह देख कर कि पर्युषण के दिन हैं, लेकिन केले मजे से खाए जा रहे हैं! तो मैंने पूछा, यह मामला क्या है? हरी चीज खाने का तो विरोध है! उन्होंने कहा, यह हरा है ही कहां? यह केला तो पीला होता है।
हरे का मतलब देखा! जैन शास्त्र कहते हैं, हरी चीज। हरी चीज से उनका मतलब है ताजी, अभी तोड़ी गई। मगर यहां हरे का मतलब ही और है। केला तो पीला! कच्चा केला मत खाओ, जो हरा दिखाई पड़ता है। पका हुआ केला खाने में तो कोई अड़चन नहीं है। वह तो पीला है। इससे कोई अड़चन नहीं पैदा हो रही है। अंतःकरण बाहर से पैदा किया जाता है।
ईसाई शराब पीने में कोई अड़चन नहीं पाते। खुद जीसस शराब पीते थे। शराब पीने में कोई अड़चन न थी, कोई बुराई न थी। किसी ईसाई को कोई बुराई नहीं है। लेकिन भारतीय मानस को बड़ी पीड़ा होती है शराब की बात ही सुन कर। यहां मोरारजी देसाई स्वमूत्र पी लें, मगर शराब नहीं पी सकते! उनके अंतःकरण को कोई अड़चन नहीं आती स्वमूत्र पीने में। आनी भी नहीं चाहिए। क्योंकि भारतीय मानस गौ-मूत्र तो जमानों से पीता रहा है। अरे, जब गौ-मूत्र पीते रहे, तो यह तो स्वावलंबन है!
गौ-मूत्र ही नहीं पीते रहे भारतीय, हिंदू तो पंचामृत का सेवन करते हैं। पंचामृत का अर्थ होता है गोबर, गौ-मूत्र, दूध, दही, घी, ये पांचों चीजों को मिला कर, घोंट कर पी गए, तो पंचामृत! पंचामृत पीने वाले देश में, अभी मोरारजी देसाई ने तो एक ही अमृत खोजा है। अभी तुम देखना, कोई आएगा और बड़ा महात्मा, जो आदमी में से पंचामृत निकालेगा। और वह भी हमें स्वीकार हो जाएगा। उसमें भी हमें कोई अड़चन न होगी।
अंतःकरण तो आत्मा नहीं है। अंतःकरण तो बाहर का आरोपण है। जिसे आत्मा
को पाना हो, उसे अंतःकरण से मुक्त होना पड़ता है। उसे न तो चाहिए ईसाई का अंतःकरण, न हिंदू का, न मुसलमान का, न जैन का, न बौद्ध का। उसे अंतःकरण चाहिए ही नहीं। बाहर से जो भी उसके ऊपर थोप दिया गया है, आच्छादित कर दिया गया है, उस सब को उसे त्याग देना होता है।

इसको ही मैं तपश्चर्या कहता हूं, अंतःकरण के त्याग को। तब तुम्हारे भीतर तुम्हारे स्वभाव की जो वाणी है, स्वस्फूर्त, किसी की सिखाई हुई नहीं, तुम्हारे जीवन का ही जो स्वर है, जो संगीत है, वह सुनाई पड़ता है।
तो इस सूत्र का अनुवाद, सहजानंद, ऐसा न करो कि जिसका अंतःकरण शुद्ध है। क्योंकि तब तो बड़ी गड़बड़ होगी। एक हिसाब से किसी का अंतःकरण शुद्ध होगा और दूसरे हिसाब से उसी का अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा। जीसस का अंतःकरण शुद्ध है या नहीं? हालांकि वे शराब भी पीते हैं और मांसाहार भी करते हैं! छोड़ो जीसस को; रामकृष्ण का अंतःकरण तो शुद्ध मानोगे कि नहीं? रामकृष्ण तो परमहंस हैं! मगर मछली तो खाते हैं।
अंतःकरण किसका शुद्ध है? अंतःकरण है, तब तक शुद्धि हो ही नहीं सकती। अंतःकरण अर्थात अशुद्धि; विजातीय; बाहर से कुछ डाल दिया गया। उसी से तो तुम्हारे भीतर कीचड़ मची है। जब तुम्हारे भीतर सिर्फ वही रह जाए, जो भीतर का है, तो आत्मशुद्धि।
इसलिए जो सूत्र का शब्द है वह ज्यादा उचित है, विशुद्धसत्वः। जिसके भीतर सत्वशुद्धि है, जिसका स्वभाव, जिसका स्वरूप शुद्ध हो गया है। और उसका एक ही अर्थ होता है, जिसके भीतर से, जो भी विजातीय है, वह बाहर फेंक दिया गया।
जिसका विशुद्ध सत्व हुआ है, वह न तो हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध, न पारसी, न सिक्ख। वह तो सिर्फ चैतन्य मात्र होगा। और ऐसी अवस्था में ही व्यक्ति स्वयं को जानता है, आत्मवेत्ता बनता है।
अभी तो तुम अगर किन्हीं धारणाओं को मान कर ध्यान भी करोगे, तो वही जान लोगे, जो तुम्हारी धारणा है। जैसे ईसाई ध्यान करने बैठेगा, तो उसको ईसा दिखाई पड़ने लगेंगे। और जैन बैठेगा, तो महावीर दिखाई पड़ने लगेंगे। और बौद्ध बैठेगा, तो बौद्ध की धारणाएं हैं, तो उसे बुद्ध का दर्शन होगा। और कृष्ण का भक्त कृष्ण को देखेगा। और राम का भक्त राम को देखेगा। यह तो तुम्हारी धारणा का ही प्रक्षेपण है। यह कोई आत्मबोध नहीं है।
जहां सारी धारणाएं गिर जाती हैं; जहां प्रक्षेपण करने को ही कुछ नहीं
रह जाता; जहां भीतर शून्य रह जाता है--निर्विकार, निर्विचार, निर्विकल्प-- उस चैतन्य की अवस्था में स्वयं की जीत है; व्यक्ति जिन बनता है, बुद्ध बनता है। जीतता है, जागता है। पहली बार जीतता है, पहली बार जागता है।
"और ऐसे आत्मवेत्ता के मन से"--यह सूत्र कहता है--"जिस-जिस लोक की भावना हो...।"
अब किस लोक की भावना होगी? क्या इसके ऊपर भी कोई लोक है? आत्मबोध के ऊपर भी कोई बोध है? बुद्धत्व के ऊपर भी कोई और संभावना है? कोई और शिखर है? इस परम समाधि के पार अब क्या बचा? क्या ऐसा व्यक्ति स्वर्ग चाहेगा? स्वर्ग तो बहुत पीछे छूट गए; वे तो सपने हो गए। क्या ऐसा व्यक्ति चाहेगा कि इंद्र का आसन मिल जाए? आसन की बात ही अब मूर्खतापूर्ण हो गई। अब तो परम आसन मिल गया, पद्मासन मिल गया। वह कमल मिल गया, जो शाश्वत है, जो कालातीत है। वह सुगंध मिल गई, जो अब छूटेगी नहीं। अब तो जीवन उत्सव हुआ। अब तो रंगों की बहार आ गई। अब तो वसंत आया। अब तो फूल खिले। अब तो गीत है, संगीत है, महोत्सव है; अब तो दीए पर दीए जले।
कबीर ने कहा है, जैसे हजारों सूर्य एक साथ भीतर उग आए हों, ऐसा आत्मवेत्ता की स्थिति होती है।
अब क्या चाहेगा? किस लोक की कल्पना करेगा? उर्वशी को चाहेगा? मेनका
को चाहेगा? इंद्रासन की फिक्र करेगा? देवता बनना चाहेगा? कल्पवृक्ष मांगेगा? यह बात ही मूढ़तापूर्ण हो जाएगी। फिर तो यूं हुआ कि आत्मज्ञान के पार भी कुछ बच रहा; आत्मज्ञान भी फिर अंत न हुआ, लक्ष्य न हुआ, साधन ही रह गया। और आत्मज्ञान साध्य है, साधन नहीं।
"तो आत्मवेत्ता के मन से जिस-जिस लोक की भावना होगी"--इस सूत्र का कहना है--"और जिन-जिन कामनाओं की कामना होगी, वह उन-उन कामनाओं को, उन-उन लोकों को प्राप्त कर लेता है।"
पहले तो कामना ही नहीं होगी, कामना के बीज ही दग्ध हो गए। इसीलिए तो पतंजलि ने ऐसे व्यक्ति को दग्ध-बीज कहा है। निर्बीज समाधि कहा है ऐसी

अवस्था को। यहां तो बीज ही न बचे कामना के, अब अंकुरण क्या होंगे? जल गए बीज, राख हो गए।
और यह सूत्र कहता हैः "इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है उसे आत्मवेत्ता
की अर्चना करनी चाहिए।"
पहली बात भी लोभ से भरी है और दूसरी बात भी लोभ से भरी है। आत्मवेत्ता
की इतनी क्षमता बता दी कि वह जो चाहे हो जाएगा; जो मांगे, मिलेगा; तत्क्षण मिलेगा, देर नहीं अबेर नहीं। कहावत तुमने सुनी है कि परमात्मा के घर देर हो, मगर अंधेर नहीं है। यह अज्ञानियों के लिए है। ज्ञानियों के लिए न तो देर है, न अंधेर है। उन्होंने तो इधर मांगा, उधर मिला। मांग भी नहीं पाए कि मिला। वे तो कल्पवृक्ष के नीचे ही बैठे हुए हैं। यह भी लोभ की बात रही, लोभ का ही विस्तार रहा। और आगे भी लोभ की ही बात हैः
"इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है उसे आत्मवेत्ता की अर्चना करनी चाहिए।"
इसलिए जाओ आत्मवेत्ताओं के पास, उनकी अर्चना करो, पूजा करो। वह भी किसलिए? अपना कल्याण चाहने के लिए। उसके पीछे भी चाह है, वहां भी वासना है।
यहां लोग मंदिरों में जा रहे हैं, मस्जिदों में जा रहे हैं, गुरुद्वारों-गिरजों में जा रहे हैं। पूछो, किसलिए जा रहे हैं? वहां भी चाह है, वहां भी वासना है। और जहां वासना है, वहां प्रार्थना नहीं। और जहां वासना है, वहां अर्चना कैसी! वासना की दुर्गंध में अर्चना की सुगंध कैसे पैदा होगी? लाख जलाओ धूप और लाख जलाओ दीए, न होगी रोशनी, न होगी सुगंध। दुर्गंध को बहुत से बहुत छिपा लोगे, अंधेरे को बहुत से बहुत ढांक लोगे। मगर मिटेगा नहीं, फिर-फिर उभर आएगा। ये जलाए दीए, देर नहीं है, बुझ जाएंगे। और ये जलाई धूप, जल्दी हवा उड़ा ले जाएगी। फिर दुर्गंध अपनी जगह होगी। यह धोखा है, यह प्रवंचना है।
आत्मवेत्ता व्यक्ति की भी अर्चना करना इस कामना से कि मेरा भी कल्याण
हो जाए। और मेरा भी कल्याण, इसका अर्थ क्या होगा? इसका अर्थ यह होगा कि मैं भी उस जगह पहुंच जाऊं जहां हर चीज मांगने से मिल जाती है। जहां हर चीज चाहने से मिल जाती है। जहां कोई भी लोक चाहो, देर नहीं लगती, तत्क्षण वहां पहुंच जाते हैं। इसलिए आत्मवेत्ता व्यक्ति की भी अर्चना करनी चाहिए। यह भी लोभ का ही संबंध हुआ।
शिष्य और गुरु का संबंध लोभ का नहीं हो सकता। और अगर वह भी लोभ का संबंध है, तो फिर वह भी सांसारिक संबंध है। फिर पत्नी का और पति का संबंध, बाप का और बेटे का संबंध, भाई और बहन का संबंध, इन सारे संबंधों में ही गुरु और शिष्य का संबंध भी एक संबंध हुआ। फिर उसमें कुछ गुणात्मक भेद न रहा। गुणात्मक भेद तब होता है, जब बाकी सब संबंध तो लोभ के होते हैं, लाभ के होते हैं; लेकिन गुरु और शिष्य का संबंध सिर्फ प्रेम का होता है--न लोभ का, न लाभ का। प्रेम के संबंध का अर्थ यह होता है कि संबंध ही अपने आप में इतना बहुमूल्य है, अब और क्या चाहना है! शिष्य की अंतरतम भावना यह होती है कि गुरु मिल गया तो सब मिल गया; अब कुछ पाने को नहीं, अब कहीं जाने को नहीं। और मजा यह है कि जिसके भीतर ऐसा सदभाव पैदा होता है, उसके ऊपर वर्षा हो जाती है फूलों की। सारा आकाश फूलों की वर्षा करने लगता है। न तो उसने कुछ मांगा, न उसने कुछ चाहा, लेकिन सब बरस उठता है!
मंजुश्री की प्यारी कथा है। वह बुद्ध का पहला शिष्य है जो निर्वाण को उपलब्ध हुआ। जिस दिन उसको बुद्धत्व प्राप्त हुआ, जिस दिन उसने स्वयं को जाना, बैठा था वृक्ष के नीचे शांत, निर्विचार, जाग कर अपने को देखता था। देखते-देखते बात बन गई। बनते-बनते बन जाती है। सध गई। सब ठहर गया। मन ठहर गया, समय ठहर गया, विचार पता नहीं कहां विलुप्त हो गए! जैसे अचानक आकाश से बदलियां विदा हो गईं और सूरज निकल आया! गहन मौन! सन्नाटा! और तत्क्षण उसने देखा, आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। ऐसे फूल, जो उसने न कभी देखे, न कभी सुने! ऐसी गंध, जो उसने कभी जानी नहीं। चैंका! यह तो वसंत का मौसम भी नहीं! जिस वृक्ष के नीचे बैठा था, उसमें तो एक फूल भी न था। इतने फूल! इतने फूल कि जिनकी गणना असंभव! बरसे ही चले जाते हैं, बरसे ही चले जाते हैं। उसने आंख उठा कर आकाश की तरफ देखा। तो देखा कि देवता फूल बरसा रहे हैं।

यह तो कथा है, प्रतीक-कथा है। इतिहास मत समझ लेना। इसके भीतर अर्थ तो गहरा है, लेकिन तथ्य मत मान लेना। सत्य तो बहुत है, मगर तथ्य जरा भी नहीं। सत्य को कहना हो तो यूं ही कहा जा सकता है, घूम-फिर कर ही कहना होता है; सीधा कहने का उपाय नहीं।
तो मंजुश्री ने पूछा उन देवताओं से जो फूल बरसा रहे थे कि तुम्हें क्या हो गया है? यह किसलिए फूल गिराए जाते हो? तुम शायद कुछ भूल-चूक में हो। बुद्ध तो वहां दूर दूसरे वृक्ष के नीचे बैठे हैं; वहां गिराओ फूल! मैं तो मंजुश्री हूं। उनका एक छोटा सा शिष्य हूं। उनके प्रेम में लग गया हूं। मुझे कुछ चाहिए भी नहीं और। जो फूल चाहिए थे, मुझे मिल चुके हैं। और तुम्हें अर्चना करनी हो तो उनकी करो। वे रहे मेरे गुरु! मुझ पर क्यों फूल गिराते हो? मैंने तो कुछ किया ही नहीं। मेरी तो कोई पात्रता भी नहीं, कोई योग्यता भी नहीं।
उन देवताओं ने कहा, मंजुश्री! हम फूल गिरा रहे हैं उस महत अवसर के स्वागत के समय में, जब तुमने शून्य पर अदभुत प्रवचन दिया है!
मंजुश्री ने कहा, शून्य पर प्रवचन? मैं एक शब्द बोला नहीं!
देवता हंसे और उन्होंने कहा, न तुम एक शब्द बोले और न एक शब्द हमने सुना। न तुमने कुछ कहा, न हमने कुछ सुना। इसी को तो कहते हैं शून्य पर महा- प्रवचन! उसी खुशी में हम फूल गिरा रहे हैं। तुमने कहा नहीं, हमने सुना नहीं, और बात हो गई! बिन कहे बात हो गई! इसलिए फूल गिर रहे हैं। अब ये फूल तुम पर गिरते ही रहेंगे। ये फूल गिरना शुरू होते हैं, फिर बंद नहीं होते। समझना। यह तो बोध-कथा है, प्रतीक-कथा है। ऐसे झाड़ के नीचे बैठ कर और बार-बार आंखें उठा कर ऊपर मत देखना, कि देवता वगैरह आए कि नहीं पुष्पक विमान पर बैठे हुए? फूल वगैरह लाए कि नहीं? नहीं तो उसी में सब गड़बड़ हो जाएगा!
तुम तो इतना ही जानना कि शून्य प्रवचन क्या है। वह हो जाए, तो कुछ आकाश
से फूल बरसाने की जरूरत नहीं होती, तुम्हारे भीतर ही फूल उमग आते हैं; अंतस-लोक में ही वसंत आ जाता है। फिर कैसी कामनाएं? फिर कैसी वासनाएं?
और शिष्य को तो सवाल ही नहीं उठता कि आत्मवेत्ता पुरुष की अर्चना इसलिए करे, क्योंकि उसकी बड़ी शक्ति है आत्मवेत्ता पुरुष की! महान उपलब्धि है! नहीं; शिष्य तो अकारण प्रीति में पड़ता है। प्रीति तो सदा अकारण होती है। जहां कारण है, वहां व्यवसाय है। जहां कोई कारण नहीं...।
अब कोई मेरे संन्यासियों से पूछे कि मुझसे क्या उन्हें मिल रहा है? कुछ भी तो नहीं। कोई मेरे संन्यासियों से पूछे कि मुझसे क्यों बंधे हो? मेरे पास क्यों बैठे हो? वर्ष आते हैं, वर्ष जाते हैं और तुम मेरे पास रुके हो, क्यों? तो मेरे संन्यासी उत्तर न दे सकेंगे। जो उत्तर दे सकें, वे मेरे संन्यासी नहीं। कोई उत्तर न दे सकेंगे। उत्तर का कोई सवाल नहीं है। बेबूझ है बात।
सहजानंद! मुंडकोपनिषद के इस सूत्र का मैं तुम्हें क्या अभिप्राय कहूं! यह सूत्र एकदम गलत है, आधारभूत रूप से गलत है। सूत्र बिल्कुल विक्षिप्ततापूर्ण है। किसी पागल ने कहा होगा। किस तरह मुंडकोपनिषद में प्रवेश कर गया, पता नहीं!
लेकिन पंडित जो न कर जाएं थोड़ा है। पंडित तो एक उपद्रव हैं। न उन्हें पता है। लेकिन दुर्भाग्य तो यही है कि वे ही संकलन करते हैं।
महावीर बोले, लेकिन संकलन किया पंडितों ने। यह सांयोगिक बात नहीं है
कि महावीर के ग्यारह गणधर, उनके जो ग्यारह प्रमुख शिष्य थे, ग्यारह के ग्यारह ब्राह्मण थे। महावीर तो क्षत्रिय थे। जैनों के चैबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। असल में वह क्षत्रियों की बगावत थी ब्राह्मणवाद के खिलाफ, पांडित्यवाद के खिलाफ। लेकिन दुर्भाग्य तो यह है कि महावीर के वचन भी संकलन तो किए ब्राह्मणों ने ही। वे ग्यारह गणधर ही ब्राह्मण थे! और वहीं बात विकृत हो गई, वहीं उन्होंने सब गड़बड़ कर दिया। वहीं स्रोत पर ही जहर मिल गया।
बुद्ध तो क्षत्रिय थे। सच तो यह है, जिन्हें स्वयं को जानना हो, उन्हें किसी अर्थ में क्षत्रिय ही होना पड़ता है। क्षत्रिय का अर्थ है, वह भी एक विजय-यात्रा है, एक घनघोर घमासान युद्ध है स्वयं के अंधकार से।

उन्हें भी तलवार उठानी पड़ती है। किसी और के खिलाफ नहीं, अपने ही तमस के खिलाफ; अपनी ही तंद्रा के खिलाफ; अपनी ही निद्रा के खिलाफ। लेकिन बुद्ध को भी जो संकलन करने वाले लोग मिले, वे तो पंडित ही थे, वे तो ब्राह्मण ही थे। बस, वहीं विकृति हो जाती है। पंडित भाषा का ज्ञाता होता है, व्याकरण
का ज्ञाता होता है, शब्दों का धनी होता है; लेकिन अनुभव उसके पास कुछ भी नहीं होता। और यह सारा मामला अनुभव का है। पंडित तो तोते की भांति होता है; रट लेता है, दोहरा देता है। लिख देता है, यंत्रवत। उसकी अपनी अनुभूति तो नहीं होती।
मगर मैं मजबूरी भी समझता हूं। मुंडकोपनिषद जिसने कहा होगा, वह तो परम ज्ञानी रहा होगा, क्योंकि इसमें ऐसे सूत्र हैं, जो अपूर्व हैं, जो कि बिना अनुभव के नहीं कहे जा सकते। लेकिन कठिनाई यह है कि जिसने कहे हैं वह तो बुद्ध रहा होगा, मगर दूसरे बुद्ध को तुम कहां से पाओगे जो तुम्हारे सूत्रों को लिखे? कोई बुद्धू ही लिखेगा। कोई बुद्ध क्यों लिखेगा? किसलिए लिखेगा?
बुद्ध के जीवन में ऐसी कथा है, जो प्रीतिकर है। बुद्ध की मृत्यु हुई।
जब तक जीवित थे, किसी ने फिक्र ही न की थी कि उन्होंने जो कहा है, वह संकलित कर लिया जाए। ऐसे आनंद में थे, ऐसे अहोभाव में थे, कि किसको चिंता पड़ी थी! रोज दीए जल रहे थे। रोज दीवाली थी। रोज रंग बिखर रहे थे। रोज फाग थी। किसको फुर्सत थी कि अभी लिखे। लेकिन बुद्ध की मृत्यु के बाद जो पहला सवाल उठा शिष्यों के सामने, वह यही था कि अब उनके वचनों को संकलित कर लिया जाए।
और तुम चकित होओगे जान कर कि जो लोग संकलित कर सकते थे, वे तो भूल ही भाल चुके थे। मंजुश्री, जो पहला बुद्ध था बुद्ध के शिष्यों में, उससे कहा। उसने कहा, मुझे तो कुछ याद नहीं। मुझे तो अपनी याद नहीं! कैसे रस में भीगे वे दिन बीते! कौन शब्दों की फिक्र करता! मुझे पक्का-पक्का नहीं कि उन्होंने क्या कहा और मैंने क्या सुना; उन्होंने क्या कहा और मैंने क्या समझा। और जब से मैं जागा, तब से तो बात शब्दों की रही न थी, एक मौन संवाद था। उस मौन संवाद को लिखूं भी तो कैसे लिखूं! उसके लिए तो कोरा कागज ही काफी है।
सारिपुत्र से पूछा। सारिपुत्र ने कहा, मुश्किल है बात। जब तक मैं जागा नहीं था, तुमने अगर कहा होता तो लिख देता, क्योंकि तब तक शब्दों पर ही पकड़ थी। जब मैं जागा, तो निःशब्द में उतर गया। अब तो पक्का नहीं है; मैं लिखूं भी तो यह तय करना मुश्किल होगा कि यह मेरी बात लिख रहा हूं कि बुद्ध की बात लिख रहा हूं। अब तो सब गोल-मोल हो गया। अब तो सब तालमेल टूट गया, भेद टूट गए। अब तो मेरी सरिता भी उनके सागर में मिल गई। तो मेरी बात का तुम भरोसा न करना। बात तो मेरी सच्ची होगी, खरी होगी। मगर मेरी है कि उनकी, यह तय करना नहीं हो सकता। अपनी बात लिख सकता हूं, मगर यह दावा मैं नहीं कर सकता कि ऐसा उन्होंने कहा था। जरूर कहा होगा, मगर निश्चयात्मक रूप से मैं कोई दावा नहीं कर सकता।
मौग्गलान से पूछा। उसने कंधे बिचका दिए। उसने कहा, कौन इस झंझट में पड़े!
जितने शिष्य बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए थे, वे कोई राजी न थे। सिर्फ आनंद, जो बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुआ था, वह राजी था। उसे सब याद था। उस बेचारे के पास और तो कोई संपदा न थी, शब्दों को ही संजोता रहा था, इकट्ठा करता रहा था। जो-जो बुद्ध बोलते थे, उसको इकट्ठा करता रहता था। उसके पास कोई प्रज्ञा तो नहीं थी, मगर स्मृति थी। प्रज्ञा हो, तो स्मृति की क्या चिंता! और प्रज्ञा न हो, तो स्मृति ही एकमात्र धन है।
बड़ी बिगूचन, बड़ी विडंबना खड़ी हो गई। सारे शिष्य इकट्ठे हुए थे, उन्होंने कहा, यह बड़ी मुश्किल की बात है। जिनकी बात का भरोसा हो सकता है, वे लिखने को राजी नहीं। और जिसकी बात का कुछ भरोसा नहीं, वह लिखने को राजी है! आनंद से लिखवाना है क्या? हालांकि जो भी वह कहेगा, वही कहेगा जो बुद्ध ने कहा था। लेकिन अज्ञानी ने सुना है, जैसे किसी ने नींद में सुना हो।
मैं यहां बोल रहा हूं। तुम में से कई यहां सोए होंगे। वे भी सुन रहे होंगे, मगर नींद में सुन रहे होंगे। कुछ सुना जाएगा, कुछ नहीं सुना जाएगा,

कुछ का कुछ सुना जाएगा; स्वाभाविक है। और फिर अगर तुमसे कहा जाए लिखो, तो तुम जो लिखोगे उसकी क्या प्रामाणिकता होगी?
आनंद ने कहा, मैं लिख तो सकता हूं, लेकिन प्रामाणिकता का दावा मैं नहीं कर सकता।
अब तुम देखते हो विडंबना! जो प्रामाणिक हो सकते हैं, वे लिखने को राजी नहीं थे। जो लिखने को राजी था, उसने कहा, मैं प्रामाणिक नहीं हो सकता!
तो फिर बुद्ध के शिष्यों ने एक उपाय ही खोजा, उन्होंने आनंद से कहा, तू
एक काम कर। तू किसी तरह सारा श्रम लगा कर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जा। क्योंकि हम तेरी बातों का तब तक भरोसा न करेंगे, जब तक तू बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाए। और तुझे सब बातें याद हैं। और तू सबसे ज्यादा बुद्ध के साथ रहा है। बयालीस साल सतत, एक क्षण को भी बुद्ध को तूने नहीं छोड़ा। इतना साथ कोई उनके रहा नहीं। दिन भी तू साथ रहा, रात भी तू साथ रहा। रात भी उसी कमरे में सोता था जिसमें बुद्ध सोते थे। उनकी सेवा में ही सब कुछ समर्पित कर दिया था उसने। तो हमें भरोसा है। मगर तेरे भीतर जागरण तो हो!
और जब आनंद जाग्रत हुआ, तब उन्होंने उसके वचनों को स्वीकार किया। लेकिन झगड़ा तत्क्षण शुरू हो गया। आनंद ने तो वचन लिख दिए, लेकिन छत्तीस संप्रदाय पैदा हो गए। क्योंकि बौद्धों के अलग-अलग लोगों ने कहा कि ये आनंद के शब्द हम स्वीकार नहीं कर सकते। किसी ने कहा, हम ये स्वीकार नहीं कर सकते। किसी ने कहा कि ये हमें स्वीकार हैं, मगर और बातें स्वीकार नहीं। अज्ञानियों के छत्तीस खंड हो गए! ज्ञानी तो चुप रहे, अज्ञानियों ने संप्रदाय बना लिए। बुद्ध को मरे दिन भी न हुए थे कि वह महाज्योति टुकड़ों- टुकड़ों में टूट गई। और सत्य जब टुकड़ों में टूटता है, तो असत्य से भी बदतर हो जाता है।
सहजानंद! जिसने भी मुंडकोपनिषद के मूल सूत्र कहे होंगे, वह जरूर बुद्धत्व को उपलब्ध रहा होगा। लेकिन जिन्होंने लिखे होंगे, उन्होंने बहुत कुछ अपनी तरफ से जोड़ दिया होगा।
और ऐसा भी नहीं कि जान कर लोग जोड़ते हैं। मैं उनकी सदभावना पर संदेह नहीं करता हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, उनकी भावना गलत रही होगी। मगर मजबूरी है बेहोश आदमी की; बेहोशी में वह जो भी करेगा, कितनी ही सदभावना से करे, सद-इच्छा से करे, गलत तो हो ही जाएगा।
अब तुम देखते हो, यह सूत्र है--
"यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां--
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चवेद भूतिकामः।।"
लेकिन जिसने अनुवाद किया, उसने भी भूल-चूक कर दीः "जिसका अंतःकरण शुद्ध है।" विशुद्धसत्वः! उसका अनुवाद हो गया, जिसका अंतःकरण शुद्ध है। भारी चूक हो गई। अंतःकरण से मुक्त होता है कोई, तभी विशुद्धसत्व होता है। और यहां तो बात ही उलटी हो गई।
"जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है...।"
आत्मवेत्ता का मन रह जाता है? मन की जरूरत क्या है?
यह तो यूं हुआ, कहानी है कि जीसस ने एक अंधे आदमी की आंखों को छुआ; आंखें ठीक हो गईं। स्वभावतः, अंधा आदमी था, तो लकड़ी टेक-टेक कर चलता था। आंखें तो ठीक हो गईं, जीसस को धन्यवाद देकर वह जाने लगा, मगर अपनी लकड़ी भी साथ ले चला! जीसस ने कहा, मेरे भाई, कम से कम धन्यवाद में लकड़ी तो मुझे दे जा! लकड़ी तो छोड़ दे!
वह अंधा आदमी क्या बोला! उसने कहा, बिना लकड़ी के मेरा कैसे चलेगा?
आंखें आ गईं! मगर पुरानी आदत, जिंदगी भर की आदत! लकड़ी से टटोल-टटोल कर चलता था। लकड़ी ही उसकी अब तक की आंख थी। आज आंख भी आ गई, तो वह घटना इतनी नई थी कि अभी तक उस घटना का संप्रेषण भीतर तक नहीं हुआ।
उसने कहा, लकड़ी मैं कैसे छोड़ सकता हूं? बिना लकड़ी के मेरा कैसे चलेगा मालिक? बिना लकड़ी के तो मैं एक कदम न चल सकूंगा। इसी से टटोल-टटोल कर, टेक-टेक कर तो चलता हूं।

जीसस ने कहा, पागल! अब तेरी आंखें ठीक हो गईं, अब लकड़ी से क्यों टटोलेगा?
अंतःकरण तो अंधे आदमी की लकड़ी है। विशुद्धसत्वः! वह तो अंधे आदमी की आंख का ठीक हो जाना है। अब वहां अंतःकरण की क्या जरूरत है?
अंतःकरण तो समाज थोपता है इसलिए ताकि किसी तरह तुम आचरण की सीमा में चलते रहो। लेकिन जिसकी आत्मा जग गई, अब उसके ऊपर कोई आचरण की सीमा नहीं रह जाती। वह आचरण-मुक्त होता है। अब तो वह जो करेगा, वही ठीक है। अज्ञानी को बताना पड़ता है कि तुम ठीक करो और गैर-ठीक न करो। ज्ञानी जो करता है वही ठीक है, जो नहीं करता वही ठीक नहीं है।
क्रांतिकारी अंतर हो गया। लेकिन जरा से अनुवाद में, एक शब्द के अनुवाद में सारा अर्थ बदल गया।
और आत्मवेत्ता अभी भी मन...! मन का अर्थ होता है, मनन करने की क्षमता। मनन से ही तो मन बना। मन से ही तो मनुष्य शब्द बना। वह जो मनन करता है, मनुष्य है। वह जो मनन की भीतर हमारे प्रक्रिया है, उसका नाम मन है। लेकिन जिसको आंख मिल गई, वह मनन थोड़े ही करता है।
अंधा आदमी सोचता है कि दीवाल कहां? दरवाजा कहां? पूछता है कि बाएं जाऊं कि दाएं जाऊं? आंख वाला आदमी तो उठता है और दरवाजे से निकल जाता है। उसे दिखाई पड़ता है। मनन करना ही नहीं पड़ता।
ठीक ऐसा ही, जिसका विशुद्ध सत्व हुआ, जिसके भीतर समाधि का फूल खिला, जिसके भीतर समाधि की आंख खुली, अब मनन करेगा? अब मनन किसलिए करेगा?
अंधा आदमी सोचता है कि प्रकाश कैसा होता है? आंख वाला आदमी तो कभी नहीं सोचता कि प्रकाश कैसा होता है। वह तो जानता ही है। बहरा आदमी शायद सोचता हो कि ध्वनि कैसी होती है? कान वाला आदमी तो जानता है कि ध्वनि कैसी होती है।
जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई, उसको मनन की जरूरत नहीं रह जाती। वह सोचता
ही नहीं; वह देखता है, वह द्रष्टा है। वह मनुष्य के पार हो गया। उसने मनुष्य का अतिक्रमण कर लिया। मन का अतिक्रमण हुआ कि मनुष्य का भी अतिक्रमण हो जाता है। अब कहां मन! कहां के लोक! सब स्वप्न हैं तुम्हारे लोक। नर्क भी तुम्हारा स्वप्न है, स्वर्ग भी तुम्हारा स्वप्न है। ये कोई स्थान नहीं। ये कोई भौगोलिक जगह नहीं। नर्क भी तुमने निर्मित किया है अपने भय से और स्वर्ग भी तुमने निर्मित किया है अपने लोभ से।
इसलिए तुमने स्वर्ग में वह सब व्यवस्था कर ली, जो तुम्हारा लोभ चाहता है। और नर्क में तुमने वह सब व्यवस्था कर दी, जो तुम उनके लिए दंड देना चाहोगे जो तुम्हारे साथ चलने को राजी नहीं हैं। दुश्मनों के लिए नर्क, दोस्तों के लिए स्वर्ग। अपने वालों के लिए स्वर्ग, परायों के लिए नर्क। लेकिन नर्क कहीं है थोड़े ही; न स्वर्ग कहीं है।
जिस दिन तुम भय और लोभ से मुक्त हो गए, उसी दिन तुम देख लोगे, न तो कोई स्वर्ग है, न कोई नर्क है। हां, जब तक तुम भय से भरे कंप रहे हो, नर्क में ही हो। और जब तक तुम स्वर्ग से लालायित, डांवाडोल हो रहे हो, तब तक दोनों चीजें सत्य मालूम पड़ती हैं। मगर वे प्रतीतियां हैं, भ्रांतियां हैं। जहां मन थिर हुआ, शांत हुआ, मौन हुआ, दोनों ही खो जाते हैं। और उन दोनों के खो जाने पर क्या मांगोगे लोक? कौन सी कामनाएं करोगे?
सुना है मैंने, एक आदमी भूला-भटका स्वर्ग पहुंच गया। थका-मांदा था, एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को लेट गया। उसे पता न था कि यह कल्पवृक्ष है; इसके नीचे लेटो और बैठो और जो भी कामना करो, पूरी हो जाती है! कहानी मधुर है। भूखा था। मन में ख्याल उठा कि काश, इस वक्त कहीं से भोजन मिल जाता, बड़ी भूख लगी है!
ऐसा उठना था विचार का कि तत्क्षण सुस्वादु भोजनों से भरे हुए स्वर्ण-थाल प्रकट हो गए। वह इतना भूखा था, इतना थका था, कि उसने सोचा भी नहीं कि ये कहां से आए! कौन लाया! भूखा आदमी क्या सोचे? ये सब भरे पेट की बातें हैं। उसने तो जल्दी से भोजन किया।
पेट भर गया, तो सोचा कि कहीं से कुछ पीने को मिल जाए, कोकाकोला! फेंटा! नहीं तो लिमका ही सही! और देख कर हैरान हुआ कि कोकाकोला, फेंटा, लिमका, सब चले आ रहे हैं! थोड़ा चैंका भी कि कोकाकोला तो बंद हो गया था! मगर तस्करों

की कृपा से सभी कुछ उपलब्ध होता है। तस्करी जो न कर दे थोड़ा! असंभव को संभव बना देती है। फिर किसको फिक्र पड़ी थी! अभी तो बहुत थका था; कोकाकोला पीकर लेटने लगा। लेटने लगा तो सोचा कि पेट तो भर गया, मगर कंकड़-पत्थर हैं, जमीन साफ-सुथरी नहीं। ऐसे समय में तो कोई गद्दी होनी थी। सुंदर सेज होती, तो आज जैसी गहरी नींद आती, जैसा घोड़े बेच कर आज सोता, ऐसा कभी नहीं सोया था। अचानक देख कर हैरान हुआ कि एक पलंग चला आ रहा है! थोड़ा सकुचाया भी कि क्या-क्या हो रहा है! मगर नींद इतनी गहरी आ रही थी कि उसने अभी कहा कि बाद में देखेंगे। यह विचार वगैरह सब बाद में कर लेंगे। सो गया पलंग पर। बड़ा चकित हुआ कि डनलप की गद्दियां! मगर उसने कहा कि पीछे जग कर देखेंगे।
जब जगा, तब थोड़ा सा चिंतित हुआ, कि इस निर्जन स्थान में, इस वृक्ष के नीचे, वृक्ष के आस-पास न तो कहीं कोई रेफ्रिजरेटर दिखाई पड़ता है; न कोई आदम जात दिखाई पड़ता है। कोकाकोला प्रकट हुए! भोजन आया! यही नहीं, बिस्तर भी प्रकट हुआ! टटोल कर बिस्तर ठीक से देखा कि है भी कि मैं कोई कल्पना कर रहा हूं? लेकिन है। थोड़ा डरा कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं हैं इस वृक्ष में! बस, जैसे ही उसने सोचा कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं! कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं छिपे हैं! मैं किन्हीं भूत-प्रेतों के चक्कर में तो नहीं पड़ गया हूं! कि तत्क्षण चारों तरफ भूत-प्रेत एकदम, जैसे आनंदमार्गी तांडव नृत्य करते हैं, ऐसा आदमियों की खोपड़ियां लेकर एकदम नृत्य करने लगे। उसने कहा, मारे गए! और मारा गया।
क्योंकि कल्पवृक्ष के नीचे तो जो कहोगे, वही हो जाएगा। वह कोकाकोला बहुत मंहगा पड़ा! मगर अब तो बहुत देर हो चुकी थी। जब कह ही चुका कि मारे गए, तो वे सब आनंदमार्गी पटक कर खोपड़ियां वगैरह, उसकी गर्दन तोड़ दी उन्होंने। इसी तरह तो खोपड़ियां इकट्ठी करते हैं, नहीं तो फिर खोपड़ियां इकट्ठी कहां से करो? यही जो कल्पवृक्षों के नीचे फंस जाते हैं, इन्हीं की खोपड़ियां फिर तांडव नृत्य के काम में आती हैं!
न तो कहीं कोई स्वर्ग है, न कहीं कोई नर्क है। न तो डरो नर्क की अग्नि से, न कामना करो स्वर्ग के सुखों की। सब तुम्हारे मन के जाल हैं।
यहां चूंकि जीवन में दुख है, इसलिए तुम उसके विपरीत स्वर्ग की कल्पना
कर रहे हो। और चूंकि दूसरे यहां मजा लूटते दिखाई पड़ रहे हैं, उनके लिए तुम नर्क का इंतजाम कर रहे हो। तुम अपने को सांत्वना दे रहे हो कि कोई फिक्र नहीं; अरे, चार दिन की जिंदगी है! और यूं ही कटी जा रही है। अभी झेल लो दुख, कोई फिक्र नहीं। थोड़ा सा दुख है, फिर स्वर्ग के सुख ही सुख हैं। और ये जो दुष्ट मजा कर रहे हैं, गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, उड़ा लो। अरे, दो दिन की बात है, फिर सड़ोगे; फिर नर्कों में पड़ोगे; तब याद करोगे। तब चुल्लू-चुल्लू पानी को तरसोगे। ये सांत्वनाएं हैं। यह अपने को समझाना है।
कार्ल माक्र्स एकदम गलत नहीं है, जब वह कहता है कि धर्म अफीम का नशा है। इसमें थोड़ी दूर तक सचाई है। निन्यानबे प्रतिशत लोग जिसको धर्म समझते हैं, वह निश्चित ही अफीम का नशा है।
हां, बुद्ध का, और कृष्ण का, और महावीर का, और जीसस का धर्म जरूर अफीम
का नशा नहीं है। मगर उस धर्म से कितने लोगों का संबंध है? पंडितों-पुरोहितों का यह जो विराट जाल फैला हुआ है, ये तो सिर्फ अफीम
ही बेच रहे हैं। ये तो तुम्हें सिर्फ किसी तरह बेहोश रखने की कोशिश कर रहे हैं। जिंदगी में दुख है, थोड़ी बेहोशी चाहिए, ताकि दुख झेल लो। और जिंदगी में दुख है, इसलिए थोड़ी कल्पना का जाल चाहिए, ताकि उसकी आशा में बंधे हुए कुछ तो सांत्वना रहे।
मगर ये सारी बातें अज्ञानी के लिए हैं, आत्मवेत्ता के लिए नहीं। इसलिए सहजानंद! अगर मेरे हाथ में बात हो, तो इस तरह के सूत्रों को उपनिषदों से निकाल कर बाहर कर दूं। इस तरह के सूत्र ही उपनिषदों की महिमा को खंडित कर रहे हैं, नष्ट कर रहे हैं।
मगर जो जाल खड़ा है उपनिषदों के पीछे, गीता के पीछे, धर्मशास्त्रों के पीछे, जो न्यस्त स्वार्थ लाभ उठा रहे हैं, वे तो इन्हीं सूत्रों पर जी रहे हैं। मैं जिन सूत्रों को अलग कर देना चाहूंगा, वही सूत्र उनके लिए प्राण हैं। और जिन सूत्रों को मैं बचा लेना चाहूंगा, वही उनके लिए जहर हो जाएंगे।

मेरा स्वर्णिम भारत-25

चिंतन नहीं--मौन अनुभूत
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #8)

पहला प्रश्नः ओशो,
उत्तमा तत्त्वचिंतैव मध्यम शास्त्रचिंतनम्।
अधमा तंत्रचिंता च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।।
अनुभूतिं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत।।

तत्व का चिंतन उत्तम है, शास्त्र का चिंतन मध्यम है, तंत्र की चिंता अधम है और तीर्थों में भटकना अधम से भी अधम है। जैसे कोई पेड़ की छाया में प्रतिबिंबित फल को खाकर प्रसन्न हो, वैसे ही वास्तविक अनुभव के बिना मूढ़ मनुष्य ब्रह्म का आनंद पाने की व्यर्थ कल्पना करता है।

ओशो, हमें मैत्रेयी उपनिषद के इन दो सूत्रों का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

पूर्णानंद!
तत्व का चिंतन उत्तम है, क्योंकि तत्व का चिंतन हो ही नहीं सकता। तत्व
का चिंतन असंभव है। तत्व वस्तु नहीं है, विषय नहीं है। तत्व तो तुम्हारी जीवन-ऊर्जा है, तुम्हारा स्वरूप है, तुम्हारी चेतना है। तत्व का चिंतन नहीं होता, तत्व की चेतना होती है। तत्व का अनुभव ही तब होता है, जब सब चिंतन छूट जाता, सब चिंता छूट जाती, सब विचार शून्य हो जाते। जहां कोई तरंग नहीं होती चित्त पर, जहां चित्त निस्तरंग होता है, वहीं अनुभूति है तत्व की।
इसलिए मैत्रेयी उपनिषद का यह सूत्र महत्वपूर्ण है, इशारा कर रहा है। लेकिन शब्दों में इशारा करना असंभव नहीं तो कठिन तो है ही। उन्हीं शब्दों का उपयोग करना होता है जो उपलब्ध हैं। और सभी शब्द आदमी के गढ़े हुए हैं, और तत्व तो आदमी का गढ़ा हुआ नहीं है। इसलिए किसी शब्द में तत्व समाता नहीं। एक होटल में मुल्ला नसरुद्दीन ने प्रवेश किया। गर्मी के दिन हैं, सूरज से आग बरसती है। थका-मांदा, पसीना-पसीना आकर होटल में बैठा।
मैनेजर ने आकर कहा कि क्या आपकी सेवा करें?
मैनेजर था कुछ दार्शनिक वृत्ति का व्यक्ति। फुरसत के समय में दर्शन पढ़ा करता था।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कुछ और नहीं। सबसे पहले तो पानी का एक गिलास!
मैनेजर ने कहा, क्षमा करें। कांच का गिलास तो दे सकता हूं; पानी का गिलास कहां से लाऊं?
पानी का गिलास होता ही नहीं। कहते हम सब हैं, पानी का गिलास। काम चल जाता है, समझने वाला समझ लेता है। ऐसे ही समझना इस सूत्र के प्रारंभ को, पानी के गिलास की भांति। इस पर अटक मत जाना।
"उत्तमा तत्त्वचिंतैव--उत्तम है तत्व का चिंतन।"
ऐसा मत सोच लेना कि तत्व का कोई चिंतन होता है। तत्व का कोई चिंतन होता ही नहीं; तत्व का तो अनुभव होता है। और अनुभव भी तब होता है, जब चिंतन शून्य हो जाता है।
लेकिन किसी भी शब्द का उपयोग करो, कठिनाई खड़ी हो जाती है। अगर कहो, तत्व का ध्यान। उपद्रव शुरू हुआ, क्योंकि ध्यान भी तो तुम किसी विषय का करते हो। धन का लोभी धन का ध्यान करता है। काम से पीड़ित काम का ध्यान करता है। तत्व का कैसे ध्यान होगा? ध्यान भी तो विषय का होता है।
मेरे पास लोग आकर पूछते हैं, किसका ध्यान करें? राम का, कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का--किसका ध्यान करें? कौन सा ध्यान सार्थक होगा?

शब्द ने भरमाया। शब्द ने खूब भरमाया है, सदियों से उलझाया है। जंगलों में भटके लोग तो कभी न कभी घर लौट आते हैं, शब्दों में भटके लोग जन्मों- जन्मों तक भटकते रहते हैं। फिर शब्दों में और-और शब्द लगते चले जाते हैं। शब्दों में और नई-नई शाखाएं निकल आती हैं, नए-नए पत्ते, नए-नए फूल। शब्दों कीशृंखला का कोई अंत ही नहीं है।
यह पूछना कि किसका ध्यान करें, बुनियादी रूप से गलत सवाल है। मगर मैं उनकी मजबूरी समझता हूं। वे हमेशा बाहर की भाषा में ही सोच सकते हैं, क्योंकि सारी भाषा ही बाहर के लिए है। भीतर तो मौन है। भीतर की तो कोई भाषा होती नहीं। भीतर तो भाषा की कोई जरूरत भी नहीं। भाषा का उपयोग ही तब है, जब हम किसी और से बोल रहे हों। भाषा संवाद है। जहां मैं और तू हैं, वहां भाषा की उपादेयता है। जहां दो हैं, वहां भाषा है। और जहां एक ही बचा, वहां कैसी भाषा! वहां तो मौन रह जाता है। इसलिए मैं कहता हूं, परमात्मा की तो एक ही भाषा है, मौन। वहां बोल कर चूक जाओगे। न बोले, पा जाओगे। वहां एक शब्द भी उठ गया, तो जमीन और आसमान का फासला हो जाएगा। वहां बोलना ही मत।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक, यहूदी दार्शनिक मार्टिन बूबर ने अपनी प्रसिद्धतम पुस्तक में लिखा है...। पुस्तक का नाम हैः मैं और तू--आई एंड दाऊ। इस सदी में लिखी गई महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण किताबों में एक है। लेकिन बूबर एक दार्शनिक हैं, ऋषि नहीं। विचारक हैं, मनीषी नहीं। सोचा है, समझा है; जाना नहीं, पहचाना नहीं, अनुभव नहीं, स्वाद नहीं, पीया नहीं। प्यास वैसी की वैसी है।
शब्दों से प्यास बुझ भी नहीं सकती है। किसी को प्यास लगी हो और तुम सिर्फ पानी की बातें करो, सुंदर-सुंदर बातें करो; वर्षा के गीत गाओ, मेघ मल्हार छेड़ो; तो भी प्यास न बुझेगी। भूख लगी हो, तो पाक-शास्त्र किसी काम के नहीं हैं। रूखी-सूखी रोटी भी ज्यादा उपयोगी है। लेकिन परमात्मा के संबंध में हम पाक-शास्त्रों में उलझे हैं।
और क्या हैं वेद? और क्या हैं कुरान? और क्या हैं पुराण? और क्या हैं बाइबिलें? ब्रह्म की भूख है, सत्य की भूख है, और शब्दों के थाल सजे रखे हैं! सुंदर-सुंदर थाल! तुम भूखे बैठे हो, और रंगीन से रंगीन छपा हुआ मेनू भी तुम्हारे हाथ में पकड़ा दिया जाए, तो क्या करोगे? उलटोगे-पलटोगे, पेट तो न भरेगा! मेनू से तो कभी किसी का पेट भरा नहीं।
वैसी ही स्थिति दार्शनिक की, चिंतक की होती है। बूबर ने किताब तो बड़ी महत्वपूर्ण लिखी। लिखा है कि परमात्मा और व्यक्ति के बीच जो प्रार्थना का संबंध है, वह मैं और तू का संवाद है। लेकिन जहां मैं हो और तू हो, वहां संवाद होता है? वहां तू-तू मैं-मैं होती है, वहां विवाद होता है। संवाद तो वहां है, जहां मैं और तू मिल कर एक हो जाते हैं। जहां मैं मैं नहीं, तू तू नहीं; जहां दोनों गए; जहां अद्वय बचा।
लेकिन फिर वहां, जब विवाद नहीं है, तो संवाद भी कहां! संवाद की भी क्या जरूरत! मौन में ही बात कह दी गई, मौन में ही बात समझ ली गई। परमात्मा की भाषा मौन है।
बूबर जिस प्रार्थना की बात कर रहे हैं, वह प्रार्थना सच्ची नहीं। मैं
और तू का संवाद, वह कहते हैं, प्रार्थना है। मैं तुमसे कहता हूं, मैं और तू जब तक है तब तक कहां प्रार्थना?
जहां मैं नहीं तू नहीं, जहां दोनों गए, जहां कोई नहीं, जहां घर में सन्नाटा हो गया; जहां विवाद क्षीण, जहां संवाद क्षीण, जहां शून्य का साम्राज्य स्थापित हो गया; उस शून्य में जो संगीत बज उठता है, जो हृदयतंत्री कंपित हो उठती है, जो शब्द-शून्य, जो मौन गदगद अवस्था होती है-- आंखें आनंद से गीली हो आती हैं; प्राण आनंद से पुलक उठते हैं; एक नृत्य घेर लेता है--उस घड़ी का नाम प्रार्थना है। उसी घड़ी का नाम ध्यान है। ये शब्द ही अलग-अलग हैं। प्रार्थना प्रेमी का शब्द है। ध्यान ज्ञानी का शब्द है। प्रार्थना--मीरा का, चैतन्य का, राबिया का, जीसस का, जरथुस्त्र का। ध्यान-- पतंजलि का, लाओत्सु का, महावीर का, बुद्ध का। शब्द का ही भेद है, लेकिन अर्थ? अर्थ तो एक ही है। अर्थ में जरा भी अंतर नहीं है।
एक जर्मन सेनापति दूसरे महायुद्ध के बाद अपने मित्र अंग्रेज सेनापति
से बातें कर रहा था। और उसने कहा कि पता नहीं हम क्यों हारे? यह बात राज ही

बनी रहेगी। यह रहस्य कभी खुलेगा या नहीं! क्योंकि शक्ति हमारे पास ज्यादा थी। वैज्ञानिक, तकनीकी दृष्टि से हम तुमसे ज्यादा संपन्न थे। फिर भी हम हारे और तुम जीत गए! यह बात गणित में बैठती नहीं!
अंग्रेज सेनापति मुस्कुराया और उसने कहा, उसका राज मैं तुम्हें बताए देता हूं। राज छोटा है। बात छोटी है, मगर गहरी है। हम इसलिए जीते कि हर युद्ध के दिन की शुरुआत में हम प्रार्थना करते थे। हम परमात्मा की प्रार्थना करके ही युद्ध में उतरते थे। माना कि तकनीकी दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि से हम तुमसे पीछे थे, मगर परमात्मा जब साथ हो, तो फिर किसी और चीज की जरूरत नहीं है। इसलिए हम जीते और तुम हारे।
जर्मन सेनापति ने कहा, यह बात तो और भी उलझा देती है मामले को, सुलझाती नहीं। क्योंकि प्रार्थना तो हम भी करते थे, रोज करते थे, नियम से करते थे। प्रार्थना के बाद ही युद्ध पर जाते थे। अगर प्रार्थना से ही निर्णय होना था, तो हमारी प्रार्थना तुमसे कुछ कमजोर न थी!
अंग्रेज सेनापति तो खिलखिला कर हंस पड़ा। उसने कहा, तुम समझते नहीं बात। तुम प्रार्थना किस भाषा में करते थे?
स्वभावतः, जर्मन ने कहा कि हम जर्मन भाषा में करते थे!
अंग्रेज ने कहा, बस बात साफ हो गई। अरे, भगवान जर्मन भाषा समझता है? हम अंग्रेजी में करते थे! इसलिए हमारी बात पहुंच गई और तुम्हारी बात नहीं पहुंची।
हंसो मत इस पर। सेनापति तो बुद्धू होते हैं। बुद्धू न हों तो सेनापति
न हों! सेनापतियों को माफ किया जा सकता है, लेकिन तुम्हारे पंडित-पुरोहित भी तो यही कहते रहे। वे कहते हैं, संस्कृत देव-भाषा है! वह ईश्वर की अपनी भाषा है। संस्कृत में बोलोगे तो समझेगा। और जैन कहते हैं, प्राकृत में बोलोगे तो समझेगा। और बौद्ध कहते हैं, पाली में बोलोगे तो समझेगा। और यहूदी कहते हैं, हिब्रू के सिवाय उसे कोई भाषा आती नहीं। और मुसलमान कहते हैं, अरबी ही बस उसकी भाषा है। और सब तो आदमियों की ईजादें हैं! अगर अरबी उसकी भाषा न होती, तो कुरान अरबी में क्यों उतरता?
सारी भाषाएं आदमी की हैं। उसकी कोई भाषा नहीं। मौन ही उसकी भाषा है।
और चिंतन मौन का अभाव है। तत्व को जानना हो तो शून्य होना होता है।
इसलिए इस पहली बात को ठीक से समझ लोः "उत्तमा तत्त्वचिंतैव।"
तत्व के चिंतन को उत्तम कहता है ऋषि, क्योंकि तत्व का चिंतन चिंतन ही नहीं होता। तत्व का चिंतन अर्थात चिंतन से रिक्त हो जाना, अचिंत्य हो जाना। तत्व का चिंतन अर्थात निर्विचार, निर्विकल्प, निर्बीज। इसलिए उत्तम। उत्तम होने का कारण? क्योंकि जहां शून्य है, वहां पूर्ण है। तुम शून्य हुए, और पूर्ण उतरा। पूर्ण उतरता ही शून्य में है। घड़े को भरना हो, तो पहले उसे कूड़े-करकट से तो खाली कर लेना होगा न! घड़ा खाली हो, तो ही भर सकता है।
इस प्रकृति का एक नियम है कि यह खालीपन को पसंद नहीं करती। यह खालीपन
को तत्क्षण भर देती है। तुमने कभी देखा, नदी की जलधार में अंजुलि बना कर पानी को भरा है! और जैसे ही अंजुलि को ऊपर उठाया है, वैसे ही चारों तरफ से जल दौड़ा है और अंजुलि में भरे जल के कारण जो थोड़ा सा गड्ढा पैदा हो गया था, वह फिर भर गया है। तत्क्षण भर जाता है। देर ही नहीं लगती। ऐसे ही तुम जरा शून्य तो होओ! और तुम पाओगे, तुम्हारे शून्य होने से चारों तरफ से परमात्मा की ऊर्जा दौड़ पड़ती है; तुम्हारी तरफ प्रवाहित होने लगती है। तुम्हें भर देती है। तुम्हें ऐसा भर देती है कि तुम कभी भी न भरे थे। लेकिन यह भराव तुम्हारे मैं का भराव नहीं है। इस भराव में तुम तो गए, तुम तो मिटे, परमात्मा बचा। यह भराव यूं है जैसे कोई बांसुरी में गीत को बजाए, जैसे कोई बांसुरी में सुर छेड़ दे। बांसुरी तो खाली है, और इसीलिए तो स्वर उससे प्रवाहित हो पाते हैं।
तत्व के चिंतन को उत्तम कहा, क्योंकि तत्व का चिंतन चिंतन ही नहीं है।
मैं आप अपनी तलाश में हूं, मेरा कोई रहनुमा नहीं है।
वो क्या दिखाएंगे राह मुझको, जिन्हें कुछ अपना पता नहीं है।
मसर्रतों की तलाश में है, मगर यह दिल जानता नहीं है,
अगर गमे-जिंदगी न हो, तो जिंदगी में मजा नहीं है।

शऊर-ए-सज्दा नहीं है मुझको, तू मेरे सज्दों की लाज रखना,
यह सर तेरे आस्तां से पहले, किसी के आगे झुका नहीं है।
ये इनके मंदिर, ये इनकी मस्जिद, ये जरपरस्तों की सज्दागाहें,
अगर ये इनके खुदा का घर है, तो इनमें मेरा खुदा नहीं है।
बहुत दिनों से मैं सुन रहा था, सजा वो देते हैं हर खता पर,
मुझे तो इसकी सजा मिली है, कि मेरी कोई खता नहीं है।
ये इनके मंदिर, ये इनकी मस्जिद, ये जरपरस्तों की सज्दागाहें,
अगर ये इनके खुदा का घर है, तो इनमें मेरा खुदा नहीं है।
यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। इस सूत्र में बड़ी आग है। जल सको, तो नए
हो जाओ। जल सको इसमें, तो नया जीवन मिल जाए।
"उत्तमा तत्त्वचिंतैव।"
उत्तम है तत्व का चिंतन।
"मध्यम शास्त्रचिंतनम्।"
और शास्त्र का चिंतन मध्यम; नंबर दो का।
क्यों? क्योंकि शास्त्र के चिंतन का अर्थ होता हैः उधार, बासा; किसी
और ने जाना, किसी और ने जीया, तुमने तो सिर्फ सुना। किसी ने स्वाद लिया, तुम्हारे हाथ तो सिर्फ शब्द पड़े। किसी ने अमृत पीया और अमृत हुआ, और तुम्हारे हाथ में तो बस यह कोरी बात रह गई। जैसे कोई नदी के तट पर चलता है, तो रेत पर पदचिह्न बन जाते हैं। आदमी तो गुजर जाता है, पदचिह्न पड़े रह जाते हैं। शास्त्र पदचिह्न हैं--समय की रेत पर बुद्धों के पैरों के चिह्न।
मगर समय की इस रेत पर बुद्धू भी चलते हैं! और बुद्धों के और बुद्धुओं
के पैरों के चिह्नों में कुछ बहुत भेद नहीं होता। एक तो बुद्धों के भी पैरों के चिह्न ही हैं वे, उन पर अगर चले भी तो भी तुम न पहुंच पाओगे। क्योंकि दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते। इसलिए जिसने भी किसी दूसरे व्यक्ति का अनुसरण करने की चेष्टा की, उसने अपने भाग्य में हार लिख ली, उसने अपने को बर्बाद करने का इंतजाम कर लिया।
सुनना सबकी, गुनना अपनी। समझो, बुद्धों ने जो कहा हो; मगर लकीर के फकीर
न हो जाना। और शास्त्रों का अध्येता लकीर का फकीर हो जाता है। उसकी आंखों पर शास्त्रों के चश्मे चढ़ जाते हैं। और इतने शास्त्रों के शब्द उसकी आंखों पर इकट्ठे हो जाते हैं कि उसे दिखाई ही पड़ना बंद हो जाता है। शास्त्रों ने जितने लोगों को अंधा किया है, उतना किसी और चीज ने नहीं। इस दुनिया में शास्त्रीय अंधों की भीड़ है, जमघट है! अलग-अलग शास्त्रों के कारण अंधे हैं! मगर किताबों को आंखों पर रख लोगे, तो देखोगे कैसे?
और फिर किताबें एकाध-दो हों, तो भी ठीक। बहुत किताबें हैं! और किताबों
पर किताबें हैं! पहाड़ खड़े हो जाते हैं तुम्हारी आंखों पर सिद्धांतों के, शब्दों के जालों के। और फिर तुम उन्हीं शब्दों के जालों को गुनते-बुनते रहते हो। फिर तुम्हें वह नहीं दिखाई पड़ता जो है, जो सामने खड़ा है, जो चारों तरफ से तुम्हें घेरे हुए है; जो तुम्हारे भीतर भी है और जो तुम्हारे बाहर भी है; जिसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; वह तत्व फिर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।
शास्त्र का चिंतन मध्यम है, नंबर दो का। जिसकी हिम्मत न हो तत्व में उतरने के लिए, उस कायर के लिए शास्त्र हैं। चलो, कुछ न बने, तो बुद्धों के वचन ही दोहराते रहो। हालांकि कितना ही दोहराओ, तुम तोते ही रहोगे। तोते कितना ही राम-नाम जपें, तो भी परमात्मा की अनुभूति को उपलब्ध न हो जाएंगे। और तुमने सुना ही है कि वाल्मीकि तो राम का उलटा नाम जप कर भी परमात्म-अनुभव को पा लिए! मरा-मरा जपा, और पहुंच गए। और तोते तो शुद्ध राम-राम जपते हैं, फिर भी नहीं पहुंचते! क्या है बात?
सवाल, तुम क्या जपते हो, इसका नहीं है। भाव का है, प्रगाढ़ता का है, तन्मयता का है, तल्लीनता का है, ओत-प्रोत होने का है, डूबने का है, रंग जाने का है। तोता कहता तो राम-राम है, मगर बस कह ही रहा है।
मैंने सुना, आधी रात एक व्यक्ति थका-मंदा एक होटल के द्वार को खटखटाया। मैनेजर ने कहा, आधी रात है, तुम्हें लौटाऊं, यह भी अच्छा नहीं लगता। थके-मांदे, दूर से आए हो, भूखे-प्यासे हो, यह मैं देख सकता हूं चेहरे से। लेकिन सब कक्ष तो भरे हुए हैं। इतना ही कर सकता हूं, अगर तुम राजी होओ,

एक कक्ष में दो बिस्तर हैं, लेकिन एक यहूदी धर्मगुरु, एक रबाई उसमें ठहरा हुआ है। आदमी भला है, इसलिए इनकार न करेगा, तुम भी सो सकते हो।
वह युवक इतना थका-मांदा था कि उसने कहा कि मुझे सिर्फ सोना ही है। कुछ थोड़ा खाने-पीने को दे दो, और फिर मैं जाकर सो जाऊं।
वह ऊपर कमरे में पहुंचाया गया। देख कर हैरान हुआ, थोड़ा चिंतित भी हुआ, थोड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ भी मालूम पड़ा। क्योंकि रबाई, यहूदी धर्मगुरु अपने पलंग के बगल में घुटने टेके परमात्मा की प्रार्थना में लीन था। दो पलंग थे कमरे में। कौन सा पलंग मैं चुनूं? उस युवक के मन में सवाल उठा। धर्मगुरु से पूछ लेना जरूरी है, क्योंकि वह पहले से यहां रुका हुआ है। और पता नहीं उसने कोई बिस्तर चुन ही रखा हो! मगर वह कर रहा है प्रार्थना, टोकूं भी तो कैसे टोकूं! और पता नहीं यह प्रार्थना कितनी देर चलेगी, क्योंकि वह ऐसा लीन मालूम हो रहा है कि जल्दी तो टूटने वाली नहीं मालूम होती।
सो उसने सोचा, हिम्मत की, और उसने कहा कि परम पूज्य, बाधा तो नहीं देनी चाहिए आपकी प्रार्थना में, लेकिन मजबूरी है। सिर्फ इतना इशारा कर दें कि कौन सा बिस्तर मैं चुनूं!
डरते-डरते ही पूछा था। लेकिन धर्मगुरु ने प्रार्थना भी जारी रखी और हाथ से इशारा भी कर दिया कि वह दूसरा बिस्तर तुम चुन लो।
युवक निश्चिंत हुआ। बिस्तर ठीक-ठाक करके लेटने जा रहा था, फिर उसके मन में थोड़ी परेशानी हुई। प्यास लगी थी। क्या उठ कर खटर-पटर करे, पानी पी ले? प्रार्थना में बाधा पड़ेगी। पूछ लेना उचित है।
उसने कहा, परम पूज्य, प्यास लगी है जोर से। क्या पानी पी सकता हूं? धर्मगुरु ने प्रार्थना जारी रखी और हाथ से इशारा किया कि हां-हां, पीओ!
तब जरा युवक की हिम्मत भी बढ़ी और उसने कहा कि महामहिम, इतनी और बता दें
कि क्या मैं अपनी लड़की को भी, प्रेयसी को भी ला सकता हूं?
धर्मगुरु ने प्रार्थना जारी रखी और हाथ से इशारा किया कि दो ले आना! प्रार्थना चल रही है और यह सब कारबार भी चल रहा है! अब कितनी ही शुद्ध प्रार्थना पढ़ी जाए, बिल्कुल हिब्रू में पढ़ी जाए, तो भी क्या होगा! यह प्रार्थना कंठ तक भी नहीं जा रही है, हृदय तो बहुत दूर। इस प्रार्थना में कुछ भीग ही नहीं रहा है। यह तो व्यर्थ की बकवास है।
शास्त्रों को तुम दोहरा सकते हो, कंठस्थ कर सकते हो, लेकिन काश इतना आसान होता कि हम औरों के शब्दों को सीख कर सत्य को जान लेते, तो दुनिया ने कभी का सत्य जान लिया होता! सारे लोगों ने जान लिया होता। एक भी अज्ञानी न बचता। इस पृथ्वी पर सब चलते हुए दीए होते। दीवाली मनाई जा रही होती। हर फूल खिला होता। सुगंध ही सुगंध होती। हर वीणा बजती होती। संगीत ही संगीत होता। अनाहत नाद होता। अनहद में विश्राम होता।
शास्त्र तो सभी जानते हैं। हिंदू गीता पढ़ रहा है, मुसलमान कुरान पढ़ रहा है, ईसाई बाइबिल पढ़ रहे हैं। लेकिन कहीं कुछ भीगता नहीं। हृदय कहीं डुबकी नहीं मारता। शब्दों में डुबकी लगाओगे भी कैसे? अंधेरे कमरे में दीए की तस्वीर टांग भी लो, तो रोशनी तो नहीं हो जाएगी! लाख सुंदर तस्वीर हो, तो भी तस्वीर तस्वीर है।
और शास्त्रों के साथ बहुत खतरा है। खतरा यह कि जब कोई व्यक्ति प्रबुद्धता को उपलब्ध होता है, तो अनुभूति होती है मौन में। और जब वह उस अनुभूति को शब्दों में उतारता है, तभी विकृत हो जाती है, तभी बहुत कुछ खो जाता है। बूंदाबांदी रह जाती है। कहां सागर और कहां बूंद! और फिर जब वह बोलता है, तो और भी कुछ बचा होता है, वह भी खो जाता है। बूंद का भी हजारवां हिस्सा नहीं रह जाता। फिर जब दूसरा सुनता है, तब कुछ अगर बचा भी हो थोड़ा- बहुत, वह भी खो जाता है। क्योंकि दूसरा अपने हिसाब से सुनता है। उसकी अपनी धारणाएं हैं, अपने पूर्व से ही लिए गए निष्कर्ष हैं। वह उनके आधार से सुनता है।
और अक्सर दूसरों ने शास्त्र लिखे हैं। कृष्ण ने गीता बोली, लिखी नहीं। जीसस ने पर्वत का प्रवचन दिया, लिखा नहीं। बुद्ध बोले, लिखा नहीं।
आज तक समस्त सदगुरुओं की यह प्रक्रिया रही कि उन्होंने बोला, लिखा नहीं।

क्यों? क्योंकि बोलने में थोड़ी सी संभावना है कि अगर सुनने वाला प्रीतिपगा हो, अगर सुनने वाला भावाविष्ट हो, अगर सुनने वाले ने अपने हृदय के द्वार खोल रखे हों, अगर सुनने वाला गुरु के पास बैठने की कला जानता हो-- उपसीदन की कला, उपनिषद की कला, उपासना की कला; अगर गुरु के पास बैठना उसे आता हो--मौन में, चुप्पी में, अहोभाव में, आनंद में, मस्ती में; अगर वह किसी बुद्ध-ऊर्जा-क्षेत्र का हिस्सा हो; किन्हीं रिंदों की जमात में सम्मिलित हो गया हो; किन्हीं दीवानों से उसका संग-साथ हो गया हो; किन्हीं परवानों के साथ परवाना हो गया हो और चल पड़ा हो किसी ज्योति में मर मिटने को--तो शायद गुरु जो कह रहा है, वह तो शब्द ही होगा, लेकिन गुरु की भाव-भंगिमा, उसकी मुद्रा, उसकी आंखें, उसका उठना, उसका बैठना, उसकी सांसों की धड़कन उसके शब्दों के साथ-साथ लिपटी श्रोता के, द्रष्टा के, मन्ता के भीतर पहुंच जाएगी।
लेकिन लिखा हुआ शब्द तो मुरदा होता है, बिल्कुल मुरदा होता है। उसमें
न तो गुरु की उपस्थिति होती है, न गुरु की भाव-भंगिमा होती है, न गुरु का उठना-बैठना होता है। उसमें तो गुरु की दूर की भी कोई छाप नहीं होती। छापेखाने की छाप होती है, स्याही होती है कागज पर फैली। लाश होती है।
जीवंत कुछ भी नहीं होता।
इसलिए सारे गुरुओं ने सदा से बोलने के माध्यम को चुना है, क्योंकि बोलने में थोड़ी सी संभावना है कि शायद शब्दों के आस-पास लिपटी कोई किरण पहुंच जाए। कोई लेने वाला ले ले।
कबीर कहते हैं, है कोई लेवनहारा! है कोई लेवनहारा!
अगर है कोई लेने वाला तो शायद उसकी आंखों में झांक कर ही बात हो जाए। शायद उसका हाथ हाथ में लेकर ही बात हो जाए। शायद वह गुरु के चरणों पर सिर रख दे और बात हो जाए। जो नहीं कही जा सकती, वह कह दी जाए।
शास्त्र तो सदगुरुओं ने लिखे नहीं; जिन्होंने सुने हैं, उन्होंने लिखे हैं। इसलिए बौद्धों के सारे शास्त्र बड़े ठीक ढंग से शुरू होते हैं। बौद्धों के सारे शास्त्रों का जो प्रथम वचन होता है, वह यहः ऐसा मैंने सुना है। यह किसी शिष्य की टिप्पणी है। ऐसा मैंने सुना है कि भगवान आम्रकुंज में विचरते थे; कि निरंजना के तट पर रुके थे; कि फलां-फलां नगर में ठहरे थे; कि श्रावस्ती में उनका वर्षाकाल व्यतीत होता था। ऐसा मैंने सुना है। फिर वे जो बोले, वह मैं लिखता हूं। वह मैं अपनी सामथ्र्य से लिखता हूं। वे बोले थे अपनी सामथ्र्य से, मैं लिखता हूं अपनी सामथ्र्य से। फर्क तो बहुत हो जाने वाला है, बहुत हो जाने वाला है!
तुमने कभी देखा, एक सीधी लकड़ी के डंडे को पानी में डाला; और तुम तब चकित होकर देखोगे, पानी में पहुंचते ही डंडा तिरछा दिखाई पड़ने लगता है! तिरछा हो नहीं जाता। खींच कर देखो, सीधा का सीधा है! फिर पानी में डालो, फिर तिरछा दिखाई पड़ने लगता है। पानी उतनी विकृति तो ले आता है, सीधा डंडा तिरछा हो जाता है।
बुद्धों के सीधे-सीधे वचन भी तुम्हारे भीतर जाकर बहुत तिरछे हो जाते हैं, आड़े हो जाते हैं, कुछ के कुछ हो जाते हैं!
तो शास्त्रों की बात तो दोयम है, नंबर दो।
"मध्यम शास्त्रचिंतनम्, अधमा तंत्रचिंता।"
और उससे भी अधम है तंत्र, मंत्र, यंत्र की चिंता। विधि-विधान, यज्ञ-हवन-कुंड, पूजा-पत्री, ये धर्म के नाम पर जो क्रियाकांड चलते हैं, उन सबका नाम तंत्र। यह तो बिल्कुल ही गई-बीती बात हो गई। यह तो बिल्कुल तृतीय कोटि की बात हो गई।
लेकिन दुनिया इस तीसरी कोटि में उलझी है। कोई सत्यनारायण की कथा करवा रहा है। कोई विश्व-शांति के लिए यज्ञ करवा रहा है।
अभी किसी तांत्रिक ने चंडीगढ़ में विश्व-शांति के लिए यज्ञ करवाया। और यज्ञ हो जाने के बाद घोषणा कर दी कि यज्ञ सफल हुआ; विश्व में शांति हो गई! और पंद्रह दिन बाद फिर दूसरा यज्ञ दिल्ली में करवाने लगे वे। जब खबर मुझे मिली, तो मैंने कहा, अब किसलिए करवा रहे हो? दुनिया में तो शांति हो चुकी! वह तो चंडीगढ़ में यज्ञ जब हुआ तभी हो गई। अब यह कौन सी दूसरी दुनिया है जिसमें शांति करवानी है? मगर फिर शांति करवा रहे हैं वे।

और यहीं खतम नहीं हो जाएगा। उन्होंने कसम खाई है कि वे एक सौ बीस यज्ञ करवा कर रहेंगे। मतलब एक सौ बीस बार दुनिया में शांति करवा कर रहोगे! बहुत ज्यादा शांति हो जाएगी। आदमी को जिंदा रहने दोगे कि मार ही डालोगे? मरघट हो जाएगा! एक सौ बीस बार शांति होती ही चली गई, होती ही चली गई, तो लोगों की सांसें निकल जाएंगी! शोरगुल ही बंद हो जाएगा! बोलचाल ही खो जाएगा!
मगर यह क्रियाकांड है। मैत्रेयी उपनिषद का यह वचन कहता हैः "अधमा तंत्रचिंता।"
अधम है तंत्र की चिंता। अब तो चिंतन भी न रहा, चिंता हो गई! पहला तो था अचिंत्य, तत्व का अनुभव। शास्त्र का चिंतन होता है; वह नीचे गिरना हुआ। और अब तो बात और बिगड़ गई। अब तो चिंतन से भी गिरे। अब तो चिंतन भी न बचा। अब तो चिंता हो गई। अब तो परेशानी और बेचैनी आ गई। अब तो लोभ-मोह का व्यापार शुरू हुआ। यह पा लूं, वह पा लूं! गंडे-ताबीज की दुनिया आ गई।
और तीर्थों में भटकना अधम से भी अधम!
"च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।"
और तीर्थों में भटकने को तो मैत्रेयी उपनिषद कहता है, यह तो अधम से भी अधम! इसके पार तो गिरना ही नहीं हो सकता।
कोई काशी जा रहा है। कोई काबा जा रहा है। कोई कैलाश, कोई गिरनार। क्या पागलपन है! परमात्मा भीतर बैठा है, और तुम कहां जा रहे? जिसे तुम खोजने निकले हो, वह खोजने वाले के भीतर छिपा है। और जब तक तुम उसे कहीं और खोजते रहोगे, खोते रहोगे। जिस दिन सब खोज छोड़ दोगे और अपने भीतर ठहरोगे, अनहद में विश्राम करोगे, उस क्षण पा लोगे।
खोया तो उसे है ही नहीं। वह तो तुम्हारे भीतर मौजूद ही है। एक क्षण को नहीं खोया है। सिर्फ भूल गए हो, विस्मरण किया है। स्मरण भर की कोई आवश्यकता है। और यह स्मरण शायद किसी सदगुरु के सत्संग में तो मिल जाए, लेकिन तीर्थों में क्या है!
तीर्थ बने कैसे? कभी कोई सदगुरु वहां था, तो तीर्थ बन गए। लेकिन सदगुरु तो जा चुका कभी का!
बुद्ध कभी बोधगया में थे, तो तीर्थ बन गया। अब सारी दुनिया से बौद्ध आते हैं बोधगया की यात्रा करने। क्या पागलपन है!

कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
वह तो किसी साकी की आंख थी, जिससे नशा छा गया था, खुमारी आ गई थी।
कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
गर्मिए-शम्मा का अफसाना सुनाने वालो,
रक्स देखा ही नहीं तुमने अभी परवाने का।
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत,
आलमे-होश पर एहसान है दीवाने का।
चश्मे-साकी मुझे हर गाम पे याद आती है,
रास्ता भूल न जाऊं कहीं मैखाने का।
अब तो हर शाम गुजरती है उसी कूचे में,
यह नतीजा हुआ नासेह तेरे समझाने का।
मंजिले-गम से गुजरना तो है आसां "इकबाल"
इश्क है नाम खुद अपने से गुजर जाने का।
बात तो अपने से गुजर जाने की है। हां, किसी बुद्धपुरुष की आंख में शायद झलक मिल जाए। मगर तीर्थों में क्या रखा है? तीर्थ तो मजार हैं।
कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
गर्मिए-शम्मा का अफसाना सुनाने वालो,
रक्स देखा ही नहीं तुमने अभी परवाने का।
तुम्हें तो मस्तों की कोई महफिल खोजनी चाहिए। अगर रक्स ही देखना हो, अगर नाच ही देखना हो, तो परवाने का देखना चाहिए।

हां, जब कोई बुद्ध मौजूद होता है, तो मधुशाला जीवित होती है। तो वहां झरने फूटते हैं शराब के। वहां पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। कभी काबा में इकट्ठे हुए थे। वह काबा के पत्थर की बात न थी, वह मोहम्मद की मौजूदगी थी। मोहम्मद की मौजूदगी में काबा का पत्थर भी लोगों को नशा देने लगा था। आंख साकी की थी और नाम पैमाने का हो गया! तीर्थ यूं बन जाते हैं, और फिर सदियों तक लोग तीर्थों में भटकते रहते हैं!
सूत्र ठीक कहता हैः
अधमा तंत्रचिंता च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।।
अनुभूतिं विना मूढ़ो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत।।
प्यारी बात हैः "जैसे कोई पेड़ की छाया में प्रतिबिंबित फल को खाकर प्रसन्न हो...।"
पेड़ के नीचे बैठो। छाया में फल दिखाई पड़ता हो--छाया में! आम लगे हों वृक्ष पर, और छाया में भी आम दिखाई पड़ेंगे। और उन्हीं को, छाया के आमों को खा-खा कर कोई जैसे प्रफुल्लित होता रहे, ऐसे तुम पागल हो--अगर शास्त्रों में उलझे हो, अगर तीर्थों में उलझे हो, अगर तंत्रों और मंत्रों में उलझे हो।
"वास्तविक अनुभव के बिना सिर्फ मूढ़ मनुष्य ही कल्पना करता रहता है ब्रह्म को पा लेने की।"
अनुभव हो सकता है अभी और यहीं। अनुभव के लिए एक क्षण भी ठहरने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अनुभव होगा--उत्तमा तत्त्वचिंतैव--अनुभव तो उत्तम बात है, श्रेष्ठतम शिखर है। वह तो ध्यान में होगा, शून्य में होगा, मौन में होगा।
आंख से सारे पर्दे हटाओ। बाहर से आंख बंद करो, भीतर आंख खोलो। ठहरो चुप्पी में, मौन में, शून्य में। भीतर जब सारा जल ठहर जाए, तरंग भी न उठे, तो प्रतिफलित होगा परमात्मा। सारा अस्तित्व अपने सारे सौंदर्य के साथ तुम्हारे भीतर झलक उठेगा। वह झलक, बस एक झलक! और काफी है। जन्मों-जन्मों की भूली-बिसरी याद फिर आ जाती है। जिसे कभी खोया नहीं था, वह फिर मिल जाता है।

मेरा स्वर्णिम भारत-26

हृदय-ग्रंथियों से मुक्ति
(Note: from Deepak Bara Naam Ka (दीपक बारा नाम का) #6)

पहला प्रश्न: भगवान मुंडकोपनिषद का यह सूत्र कुछ अजीब लगता है। यह कहता है: जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता। वह शोक से तर जाता है, पाप से तर जाता है, और हृदय की ग्रंथियों से मुक्त होकर अमृत बन जाता है।
श्लोक इस प्रकार है:
स यो ह वै तत परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैस भवति।
नास्याब्रह्मवित कुले भवति।
तरति शोकं, तरति पाप्मानम
गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोमृतो भवति।।
भगवान, हमें इस सूत्र का गूढ़ार्थ समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद! यह सूत्र अजीब लग सकता है, अजीब है नहीं। लग सकता है इसलिए कि इसमें कुछ अस्तित्व के संबंध में बुनियादी बातें कही गयी हैं, जो सामान्य तर्क के अतीत हैं।
पहली बात, हम जो भी जानते हैं, जानने के कारण उससे एक नहीं हो जाते। ज्ञाता और ज्ञेय अलग-अलग बने रहते हैं। यही मन के ज्ञान की प्रक्रिया है। जानना ज्ञाता और ज्ञेय के बीच एक संबंध है। ज्ञाता पृथक है, ज्ञेय पृथक है। जानने के संबंध के कारण वे एक नहीं हो जाते हैं। नहीं तो फूल को जानने वाला फूल हो जाए और पत्थर को जानने वाला पत्थर हो जाए। फिर तो जानने वाला शेष ही न रहे। जिसने पत्थर को जाना, वह पत्थर हो गया। इसलिए सूत्र अजीब लगता है।
लेकिन मन के पार जानने का एक और जगत भी है। मनातीत। उस जगत का द्वार ही ध्यान है। वहां ज्ञाता और ज्ञेय दो नहीं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्योंकि वहां जानने को कोई अन्य नहीं होता, कोई भिन्न नहीं होता, वहां जानने वाला स्वयं को ही जानता है।
ध्यान की प्रक्रिया को ख्याल में लो तो सूत्र सरल हो जाएगा। ध्यान को बीच में न लिया तो सूत्र बेबूझ रह जाएगा। ये सारे सूत्र ध्यान के सूत्र हैं। ये उपनिषद ध्यान की गंगोत्री से पैदा हुए हैं। ये उन द्रष्टाओं की अनुभूतियां हैं, जिन्होंने विचार की जो सतत प्रक्रिया चलती है, उससे छुटकारा पा लिया है। ध्यान का अर्थ होता है: विचार की धारा का ठहर जाना। साधारणतः तुम्हारे भीतर विचारों की सतत शृंखला लगी रहती है। जैसे रास्ता चल रहा हो। लोग निकलते ही रहते हैं, गुजरते ही रहते हैं। और रास्ता तो कभी- कभी रात बंद भी हो जाए, लेकिन यह मन के रास्ते पर विचार दौड़ा ही करते हैं। दिन में विचार, रात में स्वप्न; कभी स्मृतियां, कभी वासनाएं, कभी आकांक्षाएं, कभी कल्पनाएं--अंत ही नहीं है; न ओर है न छोर है; यह चलता ही रहता है मन। इस मन की सतत प्रक्रिया के कारण तुम यह भूल ही जाते हो कि तुम इससे पृथक हो।
यूं समझो कि किसी दर्पण के सामने से चौबीस घंटे, अहर्निश, चेहरे गुजरते रहें, तो दर्पण को मौका ही न मिले जानने का कि मैं इन गुजरते हुए चेहरों से अलग हूं। कभी न कभी कोई न कोई चेहरा बन रहा है; एक मिटता नहीं, दूसरा बन जाता है--मिट नहीं पाता कि दूसरा बन जाता है; मिटने के पहले दूसरा बन जाता है--हमेशा दर्पण आच्छादित है, तो दर्पण को पता कैसे चले कि मैं पृथक हूं! इसलिए ध्यान का आविष्कार हुआ। ध्यान का अर्थ है: दर्पण को मौका देना थोड़ी देर को कि उसमें कोई प्रतिबिंब न बने, ताकि दर्पण यह समझ ले कि मैं अलग हूं और प्रतिबिंबों की जो धारा मेरे सामने से गुजरती है, वह अलग है। जिस घड़ी दर्पण के सामने से कुछ भी नहीं गुजरता, उस घड़ी दर्पण अपने को जान पाता है।

तुम्हारी चेतना दर्पण है और विचार दर्पण के सामने से गुजरते हुए दृश्य। तुम्हारी चेतना द्रष्टा है, ज्ञाता है और चेतना के सामने से जो गुजर रहा है, वह ज्ञेय है। जिस क्षण ध्यान की गहन, मौन अवस्था भीतर पैदा होती है जैसा रज्जब ने कहा:" जन रज्जब ऐसी विधि जाने ज्यूं था त्यूं ठहराया"--जब सब ठहर जाता है, चित्त में कोई तरंग भी नहीं होती, कोई भाव नहीं होता, चित्त जब यूं होता है जैसे झील निस्तरंग हो--थिर--तब तुम्हें पहली बार अनुभव होता है कि मैं पृथक हूं विचारों से। और तुम्हारे जानने की जो क्षमता अब तक विचारों में उलझी थी, वह जानने की क्षमता अपने पर ही लौट आती है। अब जानने वाला अपने को जानता है। अब ज्ञाता और ज्ञेय दो नहीं होते, एक ही होता है। वही जान रहा है, वही जाना जा रहा है। इस अनुभूति का नाम ही ब्रह्म-अनुभूति है।
यह सूत्र प्यारा है; गहन है, गूढ़ है।
स यो ह वै तत परमं वेद, ब्रह्मैव भवति।
जिसने ब्रह्म को जाना, वह ब्रह्म हो गया। या जिसने अपने को पहचाना, वह ब्रह्म हो गया। यही वेद है। क्योंकि यही असली जानना है! दूसरे को जानना भी कुछ जानना है! दूसरे को जान कर भी क्या करोगे? भीतर अंधेरा रहा और बाहर सारी दुनिया रोशन भी हो जाए तो किस काम की है! भीतर खाली रहे और बाहर धन, पद और प्रतिष्ठा के अंबार भी लग जाएं, तो किस काम के हैं! थोड़ी ही देर में मौत आएगी और सब छीन लेगी, सब पड़ा रह जाएगा। जीवन भर की आपाधापी व्यर्थ हो जाएगी। जो कमाया, सिद्ध होगा मौत के क्षण में कि वह कमायी न थी, गंवायी थी। जो इकट्ठा किया, मौत के क्षण में पता चलेगा कि कंकड़-पत्थर इकट्ठे किये और हीरे अपरिचित ही रह गये। कूड़ा-करकट इकट्ठा करते रहे और संपदा का एक बड़ा साम्राज्य भीतर था, उस तरफ पीठ ही बनी रही।
जब कोई व्यक्ति स्वयं की तरफ मुड़ता है तो जिसे वह जानता है, वह कोई और नहीं, वह स्वयं की ही सत्ता है। वहां जानने वाला और जाना जाने वाला दो नहीं होते। इसलिए यह सूत्र ठीक कहता है: जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। यह सूत्र धर्म की पराकाष्ठा है। बहुत थोड़े-से धर्म इस ऊंचाई तक उठे। क्योंकि बहुत थोड़े-से धर्म इतना साहस कर सके हैं।
जैसे, ईसाई समझ नहीं पाए जीसस को। जीसस तो कहते हैं कि मैं और मेरा पिता अर्थात ब्रह्म, परमात्मा, हम दोनों एक हैं। लेकिन ईसाइयों ने इस बात को बिलकुल गलत ढंग से पकड़ा। वे कहने लगे कि यह बात सिर्फ जीसस के संबंध में सच है कि जीसस परमात्मा से एक हैं, किसी और के संबंध में यह सच नहीं है। जब कि जीसस अपने संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं। जब जीसस कहते हैं मैं और परमात्मा एक हैं, तो जोसफ और मरियम के बेटे जीसस के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं, वे तो उसे भीतर छिपे परम चैतन्य के संबंध में कह रहे हैं। परम चैतन्य हमारा असली मैं है। वही हमारा असली अस्तित्व है। वही हमारी अस्मिता है। वही हमारी आत्मा है। "मैं" उसकी तरफ ही इशारा कर रहा है। लेकिन ईसाइयों ने यूं पकड़ ली बात!
अंधे आदमी से प्रकाश के संबंध में कुछ कहो, वह कुछ का कुछ पकड़ लेगा। बहरे को संगीत के संबंध में कुछ समझाओ, वह कुछ का कुछ पकड़ लेगा। ईसाइयों ने यह समझा कि जीसस अपने संबंध में कह रहे हैं। जीसस उन सबके संबंध में कह रहे हैं जिन्होंने भी जाना है। मगर ईसाइयत उस तल तक ऊंचा न उठ पायी; ईसाइयत उस ऊंचाई को न छू सकी; ईसाइयत में वह फूल न खिल सका।
वही परिणाम इस्लाम में हुआ। इसलिए अलहिल्लाज मंसूर को मुसलमानों ने सूली पर लटका दिया। क्यों? क्योंकि उसने अनलहक की घोषणा की। उसने कहा कि मैं परमात्मा हूं। और मुसलमानों में इस तरह की घोषणा कुफ्र है, पाप है, महापाप है। कोई कहे कि मैं परमात्मा हूं, परमात्मा के साथ कोई बराबरी करे! अलहिल्लाज मंसूर परमात्मा के साथ बराबरी नहीं कर रहा था, क्योंकि अलहिल्लाज यह कह रहा था, मैं तो हूं ही नहीं, परमात्मा है; बराबरी का सवाल कहां था! बराबरी तो तब हो जब दो हों! दो तो हैं ही नहीं! अनलहक का मतलब है: मैं सत्य हूं। मैं और सत्य, ऐसी दो चीजें नहीं हैं। अलहिल्लाज अपने संबंध में कोई घोषणा नहीं कर रहा है। अलहिल्लाज तो मिट गया। ध्यान में जो गया, उसका अहंकार तो मिट ही जाता है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है।

अलहिल्लाज मंसूर का गुरु था जुन्नैद। उसने अलहिल्लाज को बहुत बार समझाया कि देख, इस बात को भीतर ही पी जा! मैं भी जानता हूं, लेकिन मत कह! जुन्नैद बूढ़ा था। जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव उसने लिए थे; अलहिल्लाज जवान था! जुन्नैद अलहिल्लाज को समझाता रहा कि तू यह बात कहेगा तो आज नहीं कल तू मुश्किल में पड़ेगा और मुझे भी मुश्किल में डालेगा। क्योंकि अंततः यह दोष मुझ पर भी आएगा, कि मेरा शिष्य घोषणा कर रहा है। अलहिल्लाज हमेशा स्वीकार कर लेता था कि अब नहीं करूंगा। लेकिन जब भी ध्यान में बैठता था, बस, भूल ही जाता था! जब मैं ही न रहा, तो मैं के द्वारा दिये गये वचन कौन याद रखे? जिसने वचन दिये थे वह तो गया और जो प्रगट होता, वह फिर वही धुन उठा देता; वही अनलहक का नाद। और जुन्नैद कहता, कितनी बार मुझे समझाया कि यह बात अगर फैल गयी तो मुश्किल खड़ी होगी। तू तो मारा ही जाएगा, तेरे साथ मेरा भी जो काम चल रहा है, जो सैकड़ों लोग ध्यान को, समाधि को उपलब्ध हो रहे हैं, इनको प्रक्रिया भी अवरुद्ध हो जाएगी। फिर वह वायदा करता। और वायदा टूट जाता। अंततः अलहिल्लाज ने एक दिन कहा कि अब और वायदा न करूंगा, क्योंकि बहुत वायदा किया, वह टूट-टूट जाता है; असलियत यह है कि जो वायदा करता है, वह तो मौजूद नहीं होता, और जो मौजूद होता है, उसने कभी वायदा नहीं किया। मैं वहां होता नहीं और जो वहां होता है, वह घोषणा करता है। मैं रोकूं तो कैसे रोकूं! जुन्नैद ने कहा कि ऐसा कर, तू काबा की यात्रा कर आ!...उन दिनों पैदल ही यात्रा करनी होती थी। वर्ष लग जाते थे। जुन्नैद से सोचा कि काबा की यात्रा कर आएगा, तब तक तो बात टलेगी। इस बीच कुछ भी हो सकता है। समझ आ जाए!...लेकिन पता है अलहिल्लाज मंसूर ने क्या किया? वह उठा और उसने कहां, ठीक, आप आज्ञा देते हैं तो जाकर तीर्थयात्रा कर आता हूं। उठा और उसने जुन्नैद के तीन चक्कर लगाए और फिर बैठ गये सामने। जुन्नेद ने कहा, यह क्या किया? उसने कहा, मेरे लिए तुम ही काबा हो। तुम्हारे अलावा और कहां काबा है! जब जीवित गुरु को पा लिया, तो अब किस पत्थर की पूजा करने जाऊं! और किसलिए? तुम्हारे तीन चक्कर लगा लिए, यात्रा पूरी हो गयी। अब कहां जाना है! और वही अनलहक का नाद। वह नाद मंसूर के संबंध में नहीं है। मुसलमान गलत समझे। उन्होंने व्यर्थ ही मंसूर को सूली दे दी।
लेकिन इस देश में धर्म के ऊंचे से ऊंचे शिखर छुए गये। वे दिन भी जा चुके हैं। आज भारत की मनोदशा वैसी नहीं है, जो उपनिषद के काल में थी। आज तो भारत बहुत दयनीय है। अब तो यहां भी आदमी जमीन पर घिसट रहा है; आकाश में उड़ने की क्षमता उसने खो दी। आज तो यह घोषणा करना कि मैं ब्रह्म हूं, खतरे से खाली नहीं है। लेकिन जो जानेगा, वह रुक भी नहीं सकता है।
पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो...
पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो
फिर प्रेम के बोल तो ओठों से निकल जाते हैं
एक बार कंपती हुई आवाज ठहर जाए, फिर प्यार के बोल तो अपने से निकल जाते हैं; कुछ कहना नहीं पड़ता।
फिर प्यार के बोल तो ओठों से निकल जाते हैं
बस, एक ही काम करना जरूरी है कि वह भीतर चलता हुआ कंपन है--
पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो
फिर कुछ कहना नहीं पड़ता, जो कहने योग्य है, अपने से निकल जाता है, फिर उसे रोका नहीं जा सकता। ये उपनिषद के वचन कहे नहीं गये हैं, निकले हैं। ये स्व-स्फूर्त घोषणाएं हैं, स्फुर्णाएं हैं।
जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।
स यो ह वै तत परमं ब्रह्म वेद,...
और यही वेद है।
वेद शब्द बड़ा प्यारा है। वेद का अर्थ है: जानना। वेद बनता है विद से। विद का अर्थ होता है: ज्ञान। उसी से विद्वान शब्द बना। वेद कोई चार संहिताओं में समाप्त नहीं हो गया है; कोई ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, उन पर समाप्त नहीं हो गया है; जब भी दुनिया में किसी व्यक्ति ने अपने भीतर परमात्मा का साक्षात्कार किया है, वेद कहां फिर से जन्मा है। हर बुद्ध के साथ का जन्म होता है। फिर वह बुद्ध चाहे मोहम्मद हों, चाहे जीसस, चाहे जरथुस्त्र, चाहे लाओत्सू, चाहे महावीर, चाहे कृष्ण, चाहे कबीर, चाहे

नानक, कुछ भेद नहीं पड़ता। जिसने अपने को जाना, जानते ही उसके ओठों से वेद फूट पड़ते हैं। क्योंकि वह स्वयं ही ब्रह्म हो गया।
असल में यह कहना कि स्वयं ही ब्रह्म हो गया, भाषा की भूल है। ब्रह्म तो तुम हो ही। सिर्फ जानते नहीं हो, सिर्फ बोध नहीं है--सोए हुए ब्रह्म हो। बुद्ध जागे हुए ब्रह्म हैं। भेद ज्यादा नहीं है। जरा-सी तुम भी करवट लो और उठ आओ, बस, भेद समाप्त हो जाता है। कोई गुणात्मक भेद नहीं है। तुम सोए हुए बुद्ध हो, बुद्ध जागे हुए बुद्ध हैं। यह उपनिषद का ऋषि जो कह रहा है, यह तुम्हारे संबंध में उतना ही सच है जितना उसके स्वयं के संबंध में। मगर तुम्हें इसका पता नहीं है। और जब तक तुम्हें पता नहीं है, तब तक स्वभावतः यह सूत्र अजीब-सा लगेगा, कि हम जानते हैं, उसके साथ हम एक कैसे हो जाते हैं? तुम एक हो ही।
अब यूं समझो, जो तुम्हारे भीतर जान रहा है, वही ब्रह्म है। वह जो जानने
की क्षमता है, वही ब्रह्म है। वह जो तुम्हारे भीतर बोध है, वही बुद्धत्व है। तुम्हारा चैतन्य ही परमात्मा का एकमात्र प्रमाण है।
और सूत्र का दूसरा हिस्सा भी तुम्हें, सहजानंद, दिक्कत में डाला होगा। क्योंकि उसका सामान्य अर्थ जो एकदम से ख्याल में आता है, अड़चन में डालने वाला है। "उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता।" इसको अगर तुमने शाब्दिक अर्थों में लिया, तो स्वभावतः बहुत अजीब-सा लगेगा। क्योंकि बुद्ध का बेटा राहुल कोई पैदा होने से ही बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो जाता। महावीर की बेटी तो कभी बुद्धत्व को उपलब्ध हुई, इसका कोई उल्लेख नहीं है। कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां थीं, तो न-मालूम कितने हजार बेटे-बेटियां हुए होंगे! इतने हजारों ब्रह्मज्ञानी अगर एक साथ एक आदमी पैदा कर देता तो इस देश की ऐसी दुर्गति न होती! कहां खो गये वे हजारों कृष्ण के बेटे-बेटियां? उनका तो कुछ पता नहीं है।
इस सूत्र का शाब्दिक अर्थ मत लेना, इस सूत्र का बड़ा संकेतात्मक अर्थ है। यूं समझो।
बुद्ध ने कहा: मनुष्य की चेतना एक प्रवाह है। जैसे नदी का प्रवाह। बुद्ध का शब्द है उस प्रवाह के लिए: संतति। आखिर तुम्हारा बेटा तुम्हारा क्यों कहलाता है? क्योंकि तुम्हारे प्रवाह से आया है। तुम्हारे ही प्रवाह का हिस्सा है। फिर उसका बेटा, फिर उसका बेटा, यह प्रवाह है। संतति।
बुद्ध ने कहा, जैसे दीया जलता हैं हम सांझ को, फिर सुबह दीये को बुझाते हैं, अगर कोई तुमसे यह कहे कि जो दीया तुमने सांझ जलाया था, जो ज्योति तुमने सांझ जलायी थी, क्या वही तुम सुबह बुझा रहे हो? तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि वही ज्योति तो तुम नहीं बुझा रहे हो। वह ज्योति तो न-मालूम कितनी बार बुझ चुकी। नहीं तो धुआं कहां से उठता है? प्रतिपल पुरानी ज्योति बुझ कर धुआं हो जाती है। और उसकी जगह नयी ज्योति आ जाती है। लेकिन पुरानी ज्योति का बुझना और नयी ज्योति का आना इतनी त्वरा से होता है, इतनी तीव्रता से होता है कि तुम्हारी आंख देख नहीं पाती। दोनों के बीच अंतराल इतना कम है और शीघ्रता इतनी है। नहीं तो यह सत्य तो यही है कि ज्योति हर क्षण पुरानी विदा हो रही है, उड़ी जा रही है धुआं होकर, नयी ज्योति उसकी जगह ले रही है। अगर वही ज्योति उड़ी जा रही है धुआं होकर, नयी ज्योति उसकी जगह ले रही है। अगर वही ज्योति रही, तो फिर तेल जलेगा ही नहीं, फिर बाती जलेगी ही नहीं; बाती उतनी ही रहेगी, तेल भी उतना ही रहेगा--खर्च का सवाल ही नहीं उठता, ज्योति वही है। लेकिन ज्योति प्रतिपल भागी जा रही है।
तो तुम क्या कहोगे? क्या तुम कहोगे, हम वही ज्योति बुझाते हैं सुबह जो हमने सांझ जलायी थी? यह तो नहीं कहा जा सकता। तो क्या तुम यह कहोगे कि हम दूसरा दीया बुझा रहे हैं; जो हमने सांझ जलाया था, वही नहीं; यह भी नहीं कहा जा सकता। बुद्ध ने कहा: यह उसी दीये की संतति है। वह दीया तो बुझता रहा, लेकिन उसकी संतति चलती रही, उसका प्रवाह चलता रहा। यह उसी शृंखला में बंधी हुई आयी ज्योति है। जो ज्योति तुमने जलायी थी, उसी सिलसिले का यह हिस्सा है। उसी सातत्य का।
आज विज्ञान भी इस सत्य को स्वीकार करता है। इसलिए विज्ञान के पास भी संतति जैसा एक शब्द है: "कंटीनम"। "कंटीनम" का अर्थ होता है: "कन्टीन्यूटी", सातत्य। तुम जब यहां आए थे और तुम जब घंटे भर बाद यहां से

जाओगे, तो क्या तुम सोचते हो तुम वही व्यक्ति हो जो आए थे? नहीं। जो आया था, उसमें तो बहुत बदल गया। थोड़ा-सा तुम्हारे भीतर बुढ़ापा भी आ गया। एक घंटा जिंदगी बीत गयी। कुछ तुम्हारे भीतर मर भी गया। तुम्हारे नाखून थोड़े बढ़ गये, तुम्हारे बाल थोड़े बढ़ गये। कुछ जीर्ण-शीर्ण भी हो गया। कुछ भोजन भी पच गया--सुबह ने नाश्ता करके आए थे--कुछ मांस-मज्जा भी बन गयी। तुम वही तो नहीं हो। और फिर तुम मुझे सुन कर जाओगे तो कुछ नये विचार भी तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो गये। कुछ पुराने विचारों को धक्का देकर उन्होंने निकाल दिया होगा। तुम वही नहीं हो। लेकिन एक अर्थ में तुम वही हो। इस अर्थ में तुम वही हो कि अब तुम जो जा रहे हो, उसी की संतति है, उसी की संतान है।
जिस वृक्ष के पास से तुम गुजर कर आए थे, जब लौट कर, जाओगे, क्या वृक्ष वही है? कुछ पत्ते गिर गये, कुछ नये पत्ते ऊग आए। वही तो नहीं है। वृक्ष थोड़ा बड़ा भी हो गया, जड़ें थोड़ी गहरी भी हो गयीं। हो सकता है तुम जब आए थे तो जो कली थी, जब तुम लौट कर जाओ फूल बन गयी हो; पंखुड़ियां खिल गयी हों, गंध उड़ गयी हो। वृक्ष वही तो नहीं है। जीवन सतत प्रवाह है। गतिमान है, गत्यात्मक है। थिर नहीं है। ठहरा हुआ नहीं है। जड़ नहीं है। इसको बुद्ध ने कहा है: प्रवाह, संतति। विज्ञान कहता है: "कंटीनम"।
इस बात को ख्याल में रखो तो उपनिषद का यह सूत्र साफ हो जाएगा--
"उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता।" जिसने एक बार ब्रह्म को जान लिया, फिर उसकी शृंखला में जो भी चेतना आएगी, उसकी चेतना में जो नये-नये पत्ते लगेंगे और नये-नये फूल खिलेंगे, वे सब ब्रह्म को जानने वाले होंगे। इसका मतलब तुम यह मत समझ लेना कि उसके बेटे ब्रह्म को जानने वाले होंगे। बेटे तो उसके शरीर से आते हैं। शरीर तो ब्रह्म को जानता नहीं। चेतना ब्रह्म को जानती है। तो चेतना की जो संतति होगी, वह ब्रह्म को जानने वाली होगी। जिसने जवानी में ब्रह्म को जाना, वह बुढ़ापे में भी ब्रह्म को जानेगा। हालांकि बुढ़ापे में कितनी धारा बदल गयी, गंगा का कितना पानी बह गया! जिसने जीते-जी ब्रह्म को जाना, वह मरते क्षण में भी ब्रह्म को जानेगा। वह उसी आनंद से जीया, वह उसी आनंद से मरेगा भी। उसकी मृत्यु भी एक अपूर्व, अद्धितीय अनुभव होगी। उसकी मृत्यु भी एक उत्सव होगी। वह जीवन भी उत्सव से जीया, उसका जीवन गीतों से भरा था, उसका जीवन एक मादक संगीत था, उसकी मृत्यु भी उसी मादकता का अंतिम शिखर होगी, गौरीशंकर होगी।
साधारण आदमी मरता है तो हम उसे जलाते हैं। और करें भी क्या? लेकिन हम
भी रोते हैं, वह भी रोता हुआ विदा होता है। लेकिन जब कोई बुद्ध विदा होता तो रोना मत, क्योंकि वह रोता विदा नहीं हुआ। उसके साथ अन्याय मत करना! वह हंसता गया, प्रफुल्लित गया, तुम भी नाचते हुए उसे विदा देना। तुम भी आनंदमग्न हो कर विदा होना। इसलिए मैंने कहा है कि मेरा कोई भी संन्यासी मरे तो रोना मत, आंसू मत गिराना--उसके साथ अन्याय होगा। नाचना, आह्लादित होना। दुख की कोई बात नहीं है। जो नहीं मिटने वाला है, नहीं मिटेगा, और जो मिटने वाला है, वह मिटने ही वाला था।
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
पागल, मैं रूह को मोहताजे कफने देख रहा हूं
मैं रूह को मोहताजे कफने देख रहा हूं...
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
मैं रूह को मोहताजे कफने देख रहा हूं
हम हाल उनकी बज्म को दुनिया से पूछते लेकिन, दुनिया गयी तो वहीं जाकर रह गई... हम हाल उनकी बज्म को दुनिया से पूछते दुनिया गयी तो वहीं जाकर रह गई
कोई आये, कोई जाये...
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है कुछ समझ में नहीं आता...
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है

नींद से आंख खुली है अभी...
नींद से आंख खुली है अभी देखा क्या है देख लेना अभी कुछ देर में...
देख लेना अभी कुछ देर में दुनिया क्या है कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है नींद से आंख खुली है अभी देखा क्या है देख लेना अभी कुछ देर में दुनिया क्या है दम निकलते ही हुआ...
दम निकलते ही हुआ बोझ सभी पर भारी
अरे, जल्दी ले जाओ...
जल्द ले जाओ अब इस ढेर में रखा क्या है
दम निकलते ही हुआ बोझ सभी पर भारी
जल्द ले जाओ...
जल्द ले जाओ जब इस ढेर में रखा क्या है कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है रेत की, इट की, पत्थर की हो या मिट्टी की इस दीवार के साये का भरोसा क्या है
रेत की ईंट की, पत्थर की हो या मिट्ठी की इस दीवार के साये का भरोसा क्या है
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है शौक गिनने का अगर है तो अमल को गिन ले मेरे दिलगीर इस दौलत को गिनता क्या है शौक गिनने का अगर है तो अमल को गिन ले मेरे दिलगीर इस दौलत को गिनता क्या है देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है जख्म करके वे तसल्ली भी दिये जाते हैं... जख्म करके वे तसल्ली भी दिये जाते हैं अरे, रफ्ता-रफ्ता...
अरे, रफ्ता-रफ्ता सभी आजाएंगे डरता क्या है रफ्ता-रफ्ता सभी आजाएंगे डरता क्या है जख्म करके वो तसल्ली भी दिये जाते हैं रफ्ता-रफ्ता सभी आ जाएंगे डरता क्या है अपनी दानिश्त में समझे कोई दुनिया साहिद वरना हाथों में...
वरना हाथों में लकीरों के इलावा क्या है अपनी दानिश्त में समझे को दुनिया साहिद वरना हाथों में लकीरों के इलावा क्या है
देखो, कोई आये, कोई जाये, तमाशा क्या है
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
मैं रूह को मोहताजे कफन देख रहा हूं
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
यह जिंदगी समझ में नहीं आएगी, जब तक कि तुम भीतर न झांको। बाहर देखते रहो, देखते रहो, कुछ समझ में नहीं आएगा। लेकिन भीतर झांका कि सब समझ में आ जाता है। क्योंकि समझने वाला समझ में आ जाता है। देखने वाला दिखायी पड़ जाए, जानने वाला जानने में आ जाए, सब समझ में आ जाता है। और उस समझ के बाद कोई छीन नहीं सकता तुम्हारे ज्ञान को, तुम्हारे बोध को। बुद्धत्व पर पहुंच कर कोई गिरता नहीं है। गिरना असंभव है। क्योंकि बुद्धत्व कोई ऐसी चीज नहीं है जो तुमसे भिन्न है। वह तुम्हारा ही परम आविष्कार है। उससे

गिरना भी चाहोगे तो कैसे गिरोगे? बुद्धत्व को पाकर न कभी कोई गिरा है, न कभी कोई गिर सकता है।
नास्याब्रह्मवित कुले भवति। उसके कुल में, उसकी संतति में, उसके प्रवाह में, उसकी चैतन्य-धारा में, उसकी आत्मा की गंगा में फिर कभी भी अज्ञान पैदा नहीं होता। फिर हर आने वाला दिन और भी निखार लाता है। हर आने वाला क्षण और नये फूल खिला जाता है। उसके जीवन में फिर बसंत ही बसंत है। उसके जीवन में फिर ऋचाएं उठने लगती हैं, गीत फूटने लगते हैं, नृत्य जगने लगता है।
तरति शोकं,...
वह पार हो जाता है दुख के।
दुख क्या है? दुख का आधार क्या है, बुनियाद क्या है? यही कि हम अपने से अपरिचित हैं। अपने से अपरिचित होना दुख है। अपने से परिचित हो जाना आनंद है।
तरति शोकं, तरति पाप्मानम
और पाप क्या है? जो अपने को नहीं जानता, वह जो भी करेगा, पाप है।
इसे जरा समझना।
वह पुण्य भी समझ कर जो करेगा, वह भी पाप है। वह पुण्य कर ही नहीं सकता। जिसने स्वयं को नहीं जाना है, उससे पुण्य असंभव है। क्यों! इसलिए कि जो भीतर अंधेरे से भरा है, उस अंधेरे से कैसे प्रकाश की किरणें पैदा होंगी? जो भीतर बेहोश है, उससे तुम होश की अपेक्षा न रखो। वह चाहे दिखावा कितना ही करे!
मैं रायपुर कुछ समय के लिए प्रोफेसर था। मेरे साथ अंग्रेजी विभाग में
एक प्रोफेसर थे, उन्हें शराब पीने की आदत थी। मगर वे दिखावा यूं करते थे कि नहीं पीए हुए हैं। मगर उनके दिखावे के कारण ही वे फंसते थे। सभी शराबी कोशिश यही करते हैं दिखलाने की। वे कोशिश न करें तो शायद पकड़ में भी न आएं। उनकी कोशिश ही झंझट कर देती।
एक दिन वे पीकर मुझसे मिलने आ गये। आते ही से मुझसे बोले कि आप यह मत समझना कि मैं पीए हुए हूं। मैंने कहा कि हद कर दी तुमने भी! मैं क्यों समझूंगा कि तुम पीए हो! मगर तुमने यह बात कही क्यों? नहीं, उन्होंने कहा, कुछ लोग यह समझ लेते हैं कि मैं हमेशा पीए हुए हूं। अरे, कभी होली-दीवाली पी ली, बात रख दी, मगर रोज नहीं पीता। मगर मैंने कहा, तुमने यह टोपी कैसे उलटी लगा रखी है? टोपी सीधी थी, उन्होंने जल्दी से उसको उल्टी कर ली। मैंने कहा, बिलकुल साफ है कि तुम पीए हुए नहीं हो, मगर यह कोट तुमने उल्टा पहन रखा है! उन्होंने गौर से देखा, अरे, उन्होंने कहा, हां! और जब वे कोट उल्टा करने लगे, मैंने कहा, अब रुको, नाहक कष्ट न करो, किसको धोखा दे रहे हो?
तुम्हारी चेष्टा कि तुम नहीं पीए हुए हो, तुम्हें कहीं भी फंसा देगी। शराब पीने के बाद या भांग पी लेने के बाद आदमी यह कोशिश करता है दिखाने कि मैं नहीं पीए हुए हूं। सम्हल कर चलता है। मगर उसका सम्हल कर चलना ही बताता है। क्योंकि रोज तो सम्हल कर नहीं चलता था, सम्हलने की कोई जरूरत ही नहीं थी। आदमी जब होश में होता है तो चलता है, सम्हलने की क्या जरूरत है? जोर-जोर से बोलता है कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए। सम्हल-सम्हल कर बोलता है। उसी मैं गड़बड़ हो जाती है।
जिसको आत्मज्ञान नहीं है, वह मंदिर बनवाएं तो भी पाप होगा। क्योंकि
वह मंदिर परमात्मा के लिए तो बनवा नहीं सकता। परमात्मा का उसे कोई बोध नहीं है। अब तुम देखते हो न कितने बिड़ला-मंदिर बने हुए हैं! जुगल किशोर बिड़ला मुझे मिले थे, तो वह मुझसे कहने लगे कि आप जानकर खुश होंगे कि मैंने कितने मंदिर बनवाए! मैंने कहा, उनमें से एक भी मंदिर भगवान का नहीं है, सब बिड़ला-मंदिर हैं। और पहली दफे ही यह अनूठी घटना आपने की है! यहां कृष्ण के मंदिर बनते थे, राम के मंदिर बनते थे, लेकिन बिड़ला-मंदिर बिलकुल नयी चीज है! उन्होंने कहा, लेकिन किसी ने मुझे यह ख्याल नहीं दिलाया। यह बात तो ठीक है कि मंदिर बिड़ला-मंदिर क्यों कहलाए? सदियों से मंदिर बनते रहे, लेकिन कोई मंदिर बनाने वाले के नाम से नहीं कहलाया था। जिसकी मूर्ति स्थापित हो, उसका मंदिर होता है। लेकिन बिड़ला-मंदिर।

लेकिन सचाई यह है कि आदमी मंदिर मंदिर के लिए नहीं बनाता, उस पत्थर के लिए बनाता है जो उसके नाम का मंदिर पर लगाया जाएगा। यह जो मंदिर पर लगाया हुआ अहंकार का पत्थर है, उसकी ही सजावट है मंदिर और कुछ भी नहीं। उससे भिन्न कुछ भी नहीं। वह दान भी करेगा तो भी दान के पीछे लोभ ही छिपा होता है। क्योंकि शास्त्र कहते हैं, पंडित-पुरोहित समझाते हैं कि यहां एक पैसा भी अगर दान किया। तो स्वर्ग में एक करोड़ गुना पाओगे। यह सौदा करने जैसा है! यह इतना--लाटरी समझो, सौदा नहीं! एक पैसा यहां लगाओगे, करोड़ गुना मिलेगा; कर ही लेने जैसा है! अरे, थोड़ा-बहुत लगा दिया तो हर्ज क्या है! इतना अगर मिलने वाला है, तो जो नहीं कर रहे हैं धंधा, वे गलती में हैं! मगर यह धंधा ही है, इसके पीछे लोभ है। इसके पीछे स्वर्ग को पाने की कामना है।
और स्वर्ग के पीछे क्या इच्छा छिपी हुई है? कल्पवृक्ष के नीचे बैठेंगे। बहुत-सी वासनाएं यहां अधूरी रह गयी हैं--किसकी पूरी होती हैं! बुद्ध ने कहा है: वासना दुष्पूर है; किसी की भी पूरी नहीं होती--तो स्वर्ग में पूरी कर लेंगे। यहां तो बहुत दौड़धूप करो, भाग-दौड़ करो, बामुश्किल से मारामार करो, तब भी थोड़-बहुत कुछ मिलता है; उससे कुछ तृप्ति तो होती नहीं, और प्यास बढ़ जाती है। लेकिन कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे, आनंद करेंगे--एक दफा स्वर्ग पहुंच जाएं।
तो कल्पवृक्षों की कल्पना ही कामियों की कल्पना है। कल्पवृक्ष भोगियों की कल्पना है। जो यहां नहीं भोग पाए--यहां धूनी रमाए बैठे हैं; आग बरस रही सूरज से और ये चारों तरफ और आग जला कर बैठे हैं; इसको कहते हैं तपश्चर्या! आत्महिंसा कर रहे हैं, अपने को सता रहे हैं, दुष्टता कर रहे हैं हर तरह की, मगर इसको कहते हैं तपश्चर्या! मगर इनके भीतर कामना क्या सुलग रही है? यहां बाहर आग सुलग रही और भीतर कामना की आग सुलग रही है कि अरे, चार दिन की बात है, दो दिन तो गुजर ही गये, दो दिन भी गुजर जाएंगे और फिर स्वर्ग में आनंद ही आनंद है, थोड़ा कष्ट झेल ही लो इस थोड़े-से कष्ट के पीछे उतना आनंद नहीं छोड़ा जा सकता! वहां कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे और मजा करेंगे! वहां तो कामना की और तत्क्षण पूरी हो जाती है। इधर चाहा नहीं--तुम्हारी चाह भी पूरी नहीं हो पाती कि कामना पूरी हो जाती है। बस, मन में भाव उठा कि कामना पूरी हो जाती है। तो यहां लोग पुण्य करेंगे, तप करेंगे, योग करेंगे, दान करेंगे, व्रत-उपवास करेंगे, लेकिन आकांक्षा क्या है? आकांक्षा यही है कि स्वर्ग में भोगेंगे।
और जो नहीं कर रहे हैं तप-व्रत-उपवास, उनकी तरफ इन उपवासियों की नजर देखो! उनको इस तरह देखते हैं कि जैसे कोई कीड़े-मकोड़े हों। नर्क में सड़ेंगे ये। ये भी मजा है तपश्चर्या का, कि दूसरों को नर्क में सड़ता हुआ देखने का भी रस नर्क की जिसने ईजाद की है, नर्क की कल्पना को जिन्होंने ईजाद किया है, ये बहुत हिंसक और दुष्ट-प्रवृत्ति के लोग होंगे। आने लिए स्वर्ग का आयोजन कर लिया है, दूसरों के लिए नर्क का आयोजन कर दिया है। जो हमारी मान कर चले, वह स्वर्ग; जो हम जैसा रहे, वह स्वर्ग; और जो हमसे विपरीत जाए, वह नर्क में पड़ेगा। ये कोई अच्छे आदमियों के लक्षण तो नहीं। ये तो सुसंस्कृत आदमी के लक्षण भी नहीं, धार्मिक की तो बात ही छोड़ दो!
तो ध्यान रखना, आत्मज्ञान के बिना कोई पाप से मुक्त नहीं हो सकता। हां पाप को छिपा ले सकता है, ढांक ले सकता है। मगर पाप घूम-घूम कर लौट आएगा। पाप है क्या? अंधकार से भरे हुए आदमी के कृत्य का नाम पाप है। अज्ञान
से पैदा हुआ कृत्य का नाम पाप है। ज्ञान से पैदा हुए कृत्य का नाम पुण्य है। इसीलिए मैं तुम से नहीं कहता कि पाप मत करो, पुण्य करो; मैं कहता हूं: अज्ञान को तोड़ो और ज्ञान को जगाओ। नींद हटाओ, होश को जगाओ। और होश के बाद तुम जो करोगे, वह पुण्य है। और बेहोशी में तुम करोगे, वह पाप है। मेरी व्याख्या सीधी-साफ है।
और अगर तुम इस निर्णय में पड़ गये कि क्या पाप है और क्या पुण्य है, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे, बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। फिर मच्छरों को मारना पाप है या पुण्य? डी. डी. टी. का उपयोग पाप है या पुण्य? मच्छरदानी बांधना पाप है या पुण्य है, सवाल उठेगा। क्योंकि मच्छरदानी बांधने का मतलब मच्छरों को भूखा मार रहे हो। महापाप कर रहे हो। जरा सोच-समझ कर मच्छरदानी बांधना। जैनी भी मच्छरदानी बांधते हैं! इनको तो कम से कम नहीं

बांधना चाहिए। क्या महापाप कर रहे हो!इतने बेचारे मच्छरों को, दीन-हीन मच्छरों को भूखा मार रहे हो! महापाप कर रहे हो। जरा सोच-समझ कर मच्छरदानी बांधना। जैनी भी मच्छरदानी बांधते हैं! इनको तो कम से कम नहीं बांधना चाहिए। क्या महापाप कर रहे हो! इतने बेचारे मच्छरों को, दीन-हीन मच्छरों को भूखा मार रहे हो!
कल मैंने देखा एक वक्तव्य, मेरे खिलाफ। जीव-दया मंडल, बंबई ने वक्तव्य दिया है कि जीवों पर दया करनी चाहिए, इसलिए गऊ-हत्या बंद होनी चाहिए। यह जीव-दया मंडल को अपना नाम बदल लेना चाहिए। इसको नाम रखना चाहिए: जीव:शोषक मंडल। क्योंकि अगर दया करनी है तो मच्छर पर करके दिखाओ, खटमल पर करके दिखाओ। गाय पर क्या दया कर रहे हो! गाय को तो तुम चूसते हो! और किस शास्त्र में लिखा है कि गाय के थन में जो दूध आता है, वह तुम्हारे लिए आता है--जीव-दया मंडल वालों के लिए आता है? वह बछियों-बछड़ों के लिए आता है। और तुम उसको पी रहे हो और दया कर रहे हो तुम! गाय के बच्चों को भूखा मार रहे हो! और गाय के इन बछड़ों को तुम फिर बधिया करके बैल बना रहे हो!
लेकिन जीव-दया मंडल!
उन्होंने सब गाय का गुणगान किया है कि गाय से कितने फायदे हैं। इसी से
तो बैल मिलते, हल-बक्खर जोते-जाते, बैलगाड़ी चलती; इसी से दूध मिलता; इसी से गोबर मिलता, गोबर गैस बनती, खाद बनती। तुम जीव-दया कर रहे हो कि गाय तुम पर दया कर रही है? मगर गाय से भी पूछ लो कि उसे दया करनी है कि नहीं? कि तुम जबरदस्ती दया करवा रहे हो? जीव-दया मंडल का क्या अर्थ है? जीवों से जबरदस्ती अपने ऊपर दया करवानी! अगर सच में ही जीव-दया मंडल हो, तो मच्छरदानी की खिलाफत करो, डी. डी. टी. का विरोध करो, खटमलों को मत मारो; खाट में खटमल हो जाएं तो धन्यभागी हो तुम, बिलकुल महावीर स्वामी होकर लेट जाओ-- नंग-धड़ंग, दिगंबर--कि आओ, भाइयो एवं बहनो, जी भर कर पीओ! पुण्य करो! मच्छरों को निमंत्रण दो! मच्छरों को मारो मत! तिलचट्टे इकट्ठे करो! चूहे! ऐसी-ऐसी चीजें, इकट्ठी करो, गऊ पर क्या तुम्हारा...सिर्फ दया गऊ माता पर कर रहे हो! और एक गऊ नहीं कहती कि तुम उसके बेटे हो। और तुम्हीं बुद्धू कहे चले जाते हो कि हम गऊ को माता मानते हैं। और बैल को बाप नहीं मानते, बड़ा मजा है! गऊ को माता मानते हो, बैल को बाप क्यों नहीं मानते? और यह गाय के जो बच्चे-कच्चे होते हैं, इनको भाई-बहन! सिर्फ गऊ माता। और जीव-दया मंडल है। जीव-दया मंडल का नाम बदल लो, इसका नाम रखो: जीव-शोषक मंडल। क्योंकि अगर दया करनी है, तो अपना शोषण करवाओ। दया का मतलब होता है तुम कुछ त्याग करो। तो गऊ को तुम चूस रहे हो और दया की बातें कर रहे हो! किसको धोखा दे रहे हो?
कैसे तय करोगे कि क्या पाप है और क्या पुण्य है? कौन-सी सब्जी खाना पाप है और कौन-सी सब्जी खाना पुण्य है? जैनों के हिसाब से जो भी सब्जी जमीन के नीचे पैदा होती है, उसको खाना पाप। आलू,...आलू जैसा निरीह प्राणी कि किसी को भी देख कर दया आ जाए, उसको खाना पाप है! क्योंकि वह जमीन के नीचे पैदा होता है। जब जमीन के नीचे पैदा होने में कोई कसूर है? अंधेरे में पैदा होता है। तो तुम कोई रोशनी में पैदा हुए हो? नौ महीने तुम भी मां के पेट में अंधेरे में रहे। बिचारा आलू भी जमीन के गर्भ में रहता है, उससे ऐसी क्या नाराजगी है?
पर्यूषण आते हैं तो जैन हरी सब्जियां नहीं खाते। मगर सुखा कर रख लेते हैं। और जिनको सुखा कर रख लेते हैं वे हरी थीं। मगर पहले रख लेते हैं, पर्यूषण के पहले सुखा कर रख लेते हैं। सूख गयीं फिर हरी न रही।
और एक मजा तो मैंने देखा, एक श्वेतांबर घर मैं मेहमान था, पर्यूषण के दिन हरी सब्जियां तो नहीं, लेकिन केले डट कर खाए जा रहे हैं। मैंने पूछा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, ये थोड़े ही हरे हैं। सब्जी, ये थोड़ी ही हरे हैं! ये तो पीले हैं। हरी सब्जी का निषेध है।
तो फिर आदमी चालबाजियां निकालता है; होशियारियां निकालता है, बेईमानियां निकालता है, रास्ते बनाता है। क्या-क्या रास्ते नहीं लोग बना लेते!
बुद्ध ने का कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में कोई पाप नहीं है, क्योंकि तुम हत्या तो कर नहीं रहे। बस, तरकीब मिल गयी, सारे दुनिया के बौद्ध मांसाहारी हैं। तरकीब मिल गयी। हर बौद्ध देश में होटलों पर लिखा

होता है कि यहां सिर्फ अपने-आप मर गये जानवरों का मांस मिलता है। इतने जानवर एकदम से अपने-आप बौद्ध मुल्कों में ही मरते हैं! अपने-आप! और किसी मुल्क में अपने-आप नहीं मरते। और मजा यह है कि इन बौद्ध मुल्कों में अगर इतने जानवर अपने-आप आत्महत्या कर लेते हैं, तो फिर कसाईघर किसलिए खोले हुए हैं। कसाईघर में क्या होता है? आदमी मारे जाते हैं? इतने-इतने बड़े बूचरखाने हैं, ये किस लिए हैं? मगर होटल पर वैसे ही टंगी होती है तख्ती जैसे यहां टंगी होता है कि यहां शुद्ध घी की मिठाइयां हैं। अब तो ये भी तख्तियां टांगने लगीं कि यहां शुद्ध डालडा, की मिठाइयां मिलती है, क्योंकि अब यहां शुद्ध डालडा भी कहां मिलता है? शुद्ध घी तो गयी बात, अब तो शुद्ध डालडा भी नहीं मिलता। अब तो शुद्ध कोई चीज नहीं मिलती। अब तो डालडा घी की बात ही छोड़ दो, शुद्ध हो दवा भी नहीं मिलती। तुम मजे से इंजेक्शन ले रहे हो, सोच रहे हो कि ठीक हो जाओगे और पानी के इंजेक्शन दिये जा रहे हैं! और हो सकता है पानी भी शुद्ध न हो। वह भी म्युनिसिपल के नल से भरा गया हो। आदमी बेईमान है। और आदमी तब तक बेईमान रहेगा जब तक भीतर रोशनी नहीं है। तब तक वह हर तरकीब निकाल लेगा। हर उपाय खोज लेगा। तर्क खोज लेगा। और अपने को तर्क की आड़ में खड़ा कर लेगा।
जो मांसाहारी हैं दुनिया के, वे भी तर्क खोजे बैठे हुए हैं। वे भी कहते हैं कि जानवरों की आत्मा को मुक्ति दिला रहे हैं। नहीं तो जानवर मुक्त कैसे होंगे? अब कोई बेचारा सूअर के शरीर में बंद है आत्मा, इसको मुक्ति करवा दो! सुअर के शरीर से इसका छुटकारा करवा दो। जैसे कि कोई जेलखाने से किसी कैदी को छुटकारा करवाता है। ऐसे सुअर के शरीर में बंद आत्मा को मुक्त करवा दो। यह मुक्त हो जाए तो किसी ऊंचे शरीर में पैदा होगी। कौन कहे कि किसके तर्क सही हैं और किसके गलत हैं?
और किस आधार पर कहे?
हिंदुस्तान में दूध को पवित्र आहार समझा जाता है--शुद्धतम, सात्विक--
और ईसाइयों में क्वेकर संप्रदाय है, वह दूध को छूता नहीं। क्योंकि दूध बनता तो आदमी के शरीर के भीतर है उसी तरह जैसे खून बनता है; या गाय के शरीर में बनता है, या भैंस के शरीर में बनता है, लेकिन है तो यह "एनीमल प्रॉडक्ट"। जैसे खून। इसमें और खून में कोई भेद नहीं है। इसलिए क्वेकर दूध नहीं पीते। और दुग्धारी को महापापी मानते हैं। किसको सही मानोगे? ये तुम्हारे ऋषि-मुनि सही हैं, जो कह रहे हैं कि दूध का आहार सात्विक है? या, क्वेकर सही हैं?
तुम अगर निर्णय करने बैठोगे कि क्या पुण्य और क्या पाप, तो बहुत उलझन में पड़ जाओगे। सब धागे उलझ जाएंगे तुम्हारे जीवन के। न तो पुण्य तय हो पाएगा, न पाप तय हो पाएगा।
इसलिए मैं तुमसे यह कहता ही नहीं कि तुम तय करो कि पुण्य क्या, पाप क्या। मैं कहता हूं: तुम सिर्फ एक काम करो कि भीतर जागो! उस भीतर के ब्रह्म को जगा लो! फिर वह ब्रह्म जो कहे, वही पुण्य है। और जो कहे कि मत करो, वही पाप है। और जब तुम्हारे भीतर अंतर्वाणी, अंतर्नाद उठना शुरू होता है, अंतर्वेद जगता है, तब तुम्हारे जीवन में पुण्य हो सकता है। उसके पहले पुण्य नहीं हो सकता। उसके पहले तो पाप ही होगा। और तुम जो भी करोगे, गलत कारण से करोगे।
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं जा रहा हूं काशी, गंगा-स्नान को, आपको आशीर्वाद ले आऊं सोचा; आप क्या कहते हैं, काशी-स्नान से पाप धुलते हैं या नहीं धुलते? रामकृष्ण ने कहा कि जरूर धुलते हैं? मगर एक बात ख्याल रखना, तुमने देखा गंगा के तट पर बड़े-बड़े वृक्ष लगे होते हैं? देखा, जरूर देखा! वे किसलिए लगे हैं? उसने कहा कि यह भी कोई बात है, अरे, वृक्ष हैं, लगे हैं, नदी के किनारे वृक्ष ऊगते ही है! रामकृष्ण ने कहा, उसका भी राज है। तुम जब डुबकी मारते हो तो तुम्हारे पाप वृक्षों पर बैठ जाते हैं। फिर तुम डुबकी ही मारे रखना! निकलना मत! अगर निकले और घर की तरफ चले कि वे फिर तुम पर सवार हो जाएंगे! पाप भी बड़े होशियार हैं। गंगा में जब तक डूबे रहोगे, ठीक है; वे कहेंगे, डूबे रहो; बेटा, कब तक डूबे रहोगे, निकलोगे कि नहीं? जब निकलोगे, वे फिर सवार हो जाएंगे। इसलिए सार कुछ हाथ न आएगा।

रामकृष्ण ने बात पते की कही। अब कुछ को ख्याल है, गंगा में नहीं आए तो पाप धुल गये। और जिस गंगा में इतने लोग पाप धो चुके हैं, उसमें जरा सोच-समझ कर नहाना! पाप ही पाप से भर गयी होगी गंगा। सदियों से नहा रहे हैं लोग। और सदियों से पाप धो रहे हैं वहां। गंगा से ज्यादा पापी कोई नदी हो सकती दुनिया में। जरा सोच-समझ कर नहाना! इससे तो कोई नाले में कहीं भी नहा लेना तो अच्छा है, किसी डबरे में कूद जाना तो अच्छा है। शायद थोड़े-बहुत पाप धुल भी जाएं, क्योंकि डबरे में कोई कूदा नहीं। कोई गाय-भैंसें कूदती हैं, मगर उनको कोई पाप होता भी नहीं। भैंसें वगैरह जरूर गंगा नहीं जाती, वे डबरों में जाती हैं--होशियार हैं! कहते भी हैं कि अक्ल बड़ी कि भैंस? मैं तो भैंस को ही बड़ा मानता हूं। क्योंकि अक्ल जिनकी है वे तो गंगा में जाते है और भैंस देखो तो डबरे में नहाती है। है होशियारी! कि क्या जाना गंगा में, इतने पाप भरे हुए हैं, वहां नहाने से और झंझट खड़ी हो जाएगी।
तुम ऊपर से तय करने बैठोगे तो तुम कुछ भी तय न कर पाओगे। हर चीज को पाप कहा गया है। ऐसी कोई चीज नहीं जिसको दुनिया में किसी धर्म ने पाप न कहा हो। और ऐसी भी कोई चीज नहीं जिसको दुनिया में किसी धर्म ने पुण्य न कहा हो। किसकी मानो? किस आधार पर मानो?
जीसस शराब पीते हैं? शराब पीना पाप है या पुण्य? जीसस को कोई एतराज नहीं है शराब पीने में। और अगर जीसस शराब पी सकते हैं, तो फिर शराब पीने में कैसे पाप होगा? रामकृष्ण मछली खाते हैं। मछली खाना पाप है या पुण्य? अगर रामकृष्ण मछली खा सकते हैं, तो कैसे पाप होगा? महावीर नग्न रहते हैं। नग्न रहना पाप है या पुण्य? अगर नग्न रहना पाप है तो फिर महावीर पाप कर रहे हैं। लेकिन महावीर कहीं पाप कर सकते हैं!
किसको मानोगे?
और दूसरा भी निर्धारक नहीं हो सकता है। निर्धारण तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए ज्योति अपने ही भीतर खोजनी पड़ती है।
इसलिए मैं तुम्हें आचरण नहीं देता। मैं तुम्हें सिर्फ ध्यान देना चाहता हूं। आचरण दो कौड़ी का है बिना ध्यान के। और ध्यान से जो आचरण पैदा होता है, तुम्हारे अंतस के रूपांतरण से जो आचरण पैदा होता है, उसकी आभा अलग, उसका सौंदर्य अलग, उसका रस अलग।
वही यह सूत्र कह रहा है:
तरति शोकं, तरति पाप्मानम
इस सूत्र की अदभुतता देखते हो? साधारणतः तुम्हारे साधु-संत तुमसे कहते हैं, पाप से मुक्त हो जाओ तो ब्रह्म को जान लोगे। यह सूत्र कह रहा है: ब्रह्म को जान लो तो पाप से मुक्त हो जाओगे। और सूत्र सत्य है। गुहाग्रथिभ्यो विमुक्तोमृतो भवति।।
"और हृदय की ग्रंथियों से मुक्त होकर अमृत बन जाता है।"
जिसने अपने भीतर के ज्ञाता को जान लिया, द्रष्टा को जान लिया, उसकी सारी ग्रंथियां कट गयीं। सारी गांठें कट गयीं। उसके जीवन में कोई गांठ न रही। उसका जीवन सीधा, साफ-सुथरा हो गया। फिर वह जैसा भी जाता है, उसमें एक सरलता है, एक विनम्रता है। उसके जीवन में फिर एक सादगी है। थोपी हुई सादगी नहीं। जबरदस्ती अपने को सादा बनाने की चेष्टा नहीं। मगर उसके जीवन में एक सहजस्फूर्त सादगी है। जैसे फूलों में होती है। जैसे चांदत्तारों में होती है। जैसे बच्चों की आंखों में होती है।

मेरा स्वर्णिम भारत-27

समर्पण ही सत्संग है
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #10)

पहला प्रश्न: भगवान,
दुर्लभं त्रैयमेवैवत् देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुयं महापुरुषसंश्रयः।।
मनुष्य देह, मुमुक्षा और महापुरुष का आश्रय, ये तीनों अति दुर्लभ हैं--अलग-अलग होकर भी। जब तीनों एक साथ मिलें तब तो परमात्मा का अनुग्रह ही है। तब मोक्ष करीब है। फिर भी आप चूक सकते हैं।
भगवान, हमारे लिए इस सुभाषित की विशद व्याख्या करने की अनुकंपा करें।

सहजानंद, मनुष्य एक चौराहा है, जहां से सब दिशाओं में मार्ग जाते हैं। यही उसकी विशिष्टता है। अनंत संभावनाएं मनुष्य के लिए अपना द्वार खोले खड़ी हैं। मनुष्य जो भी होना चाहे हो सकता है। पशुओं का भाग्य होता है, मनुष्य का कोई भाग्य नहीं। कुत्ता कुत्ते की तरह ही पैदा होगा, कुत्ते की तरह ही जीएगा, कुत्ते की तरह ही मरेगा। इससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं। मनुष्य कोरे कागज की भांति पैदा होता है, जिस पर कोई भी लिखावट नहीं है, फिर जो लिखता है स्वयं, वही उसका भाग्य बन जाता है। मनुष्य अपना भाग्य-निर्माता है, अपना स्रष्टा है।
अगर हाथी-घोड़े-गधे ज्योतिषियों के पास जाएं तो समझ में आता है। मनुष्य जाए तो बात बिलकुल समझ में नहीं आती। मनुष्य का कोई भाग्य नहीं है जिसे पढ़ा जा सके। मनुष्य तो केवल एक अनंत संभावनाओं, अनंत बीजों की भांति पैदा होता है। फिर जिस बीज को बोएगा, जिस बीज पर श्रम करेगा, वे ही फूल उसमें खिल जाएंगे। कोई विधाता नहीं है। हम प्रतिपल अपने प्रत्येक विचार, अपने प्रत्येक कृत्य से स्वयं का निर्माण कर रहे हैं। इसलिए एक-एक कदम सूझ-बूझ कर उठाना और एक-एक पल होश से जीना। मूर्च्छा में जो जी रहा है, वह मनुष्य ही नहीं है।
सहजानंद, संस्कृत के सूत्र और तुम्हारे अनुवाद में थोड़े फर्क आ गए हैं। संस्कृत का सूत्र है: मनुष्यत्वं--मनुष्यत्तत्व, मनुष्य-चेतना। और तुमने अनुवाद किया: मनुष्य-देह। गहरी भूल हो गई वहां। मनुष्य की देह मनुष्य का तत्व नहीं है। देह तो और पशुओं के पास भी है। देहों में क्या भेद? सब मिट्टी के खिलौने हैं। ऐसा बनाओ कि वैसा बनाओ। माटी कहै कुम्हार सूं तू का रूंधे मोहि। कहती है मिट्टी कुम्हार से: तू मुझे क्या रूंधता है! आएगा एक दिन, आएगी वह घड़ी, जब--मैं रूंधूंगी तोहि! जब मैं तुझे रूंध डालूंगी।
एक ही सोने से हजार तरह के गहने बन जाते हैं। एक ही मिट्टी से हजार तरह
के घड़े बन जाते हैं। देह का तो कोई मूल्य नहीं है। फिर देह मनुष्य की हो, कि पशु की हो, कि पक्षी की हो, कि वृक्ष की हो--इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। मूल सुभाषित मनुष्यत्तत्व की बात कर रहा है। और मनुष्यत्तत्व मनुष्य-देह से बहुत भिन्न बात है। जो मूर्च्छित है, वह मनुष्य होकर भी मनुष्य नहीं। जो जागा, उसने ही मनुष्य होना शुरू किया। मनुष्य होने के लिए दो जन्म चाहिए। और सब पशुओं का एक ही जन्म होता है। एक बार जन्मे और फिर इसके बाद मौत है। मनुष्य द्विज हो सकता है। द्विज होना ही ब्राह्मण होना है।
द्विज होने का अर्थ है: माता-पिता से तो पहला जन्म मिलता है, ध्यान से, समाधि से दूसरा जन्म मिलता है। ध्यान से, समाधि से अपने भीतर के ब्रह्म का परिचय होता है, पहचान होती है। तब वास्तविक जन्म मिला।
पहला जन्म तो मौत में जाकर गिर जाएगा। पहला जन्म तो कब्र में जाकर समाप्त हो जाएगा। झूले में और मरघट में कुछ बहुत फासला नहीं--चाहे सत्तर साल ही क्यों न लग जाएं झूले से कब्र तक पहुंचते-पहुंचते, मगर इस अनंत काल में सत्तर वर्षों की क्या कीमत, क्या बिसात! हां, दूसरा जन्म सच में जन्म

है, क्योंकि उससे जीवन की शुरुआत होती है, जिसका फिर कोई अंत नहीं। शाश्वत जीवन जब तक न मिले तब तक जानना अभी तुम मनुष्य नहीं हो।
इसलिए, सहजानंद, मैं अनुवाद में मनुष्य-देह रखना पसंद न करूंगा-- मनुष्यत्तत्व! सभी मनुष्य मनुष्य नहीं हैं। जिसने अपने भीतर की चैतन्य धारा को पहचाना, वही मनुष्य है। मगर हम चाहते हैं कि हम सबको मनुष्य माना जाए, क्योंकि हमारे पास देह मनुष्य जैसी है। निश्चित ही, बुद्ध के पास भी ऐसी ही देह थी और महावीर के पास भी और कृष्ण के पास भी और क्राइस्ट के पास भी; और नानक के, कबीर के और पलटू के, सबके पास ऐसी ही देह थी। मगर इस देह पर वे समाप्त नहीं थे। यह देह तो केवल सीढ़ी थी। इस देह से वे वहां पहुंच गए जो देहातीत है। उसे पाकर ही वे ठीक अर्थों में मनुष्य हुए।
इसलिए जीसस ने बहुत प्यारी बात कही, बार-बार कही है। कहीं जीसस कहते हैं मैं मनुष्य-पुत्र हूं और कहीं कहते हैं मैं ईश्वर-पुत्र हूं। दोनों का उन्होंने भरपूर उपयोग किया है। और ईसाइयत दो हजार सालों से चिंतना में पड़ी रही है कि क्या मानें जीसस को? मनुष्य का बेटा या ईश्वर का बेटा? क्योंकि जीसस दोनों का ही उपयोग करते हैं। निश्चित ही, ईसाई पंडितों- पुरोहितों को बड़ी बेचैनी रही है कि क्यों जीसस ने कहा कि मैं मनुष्य का बेटा। इतना ही कहा होता कि मैं ईश्वर का बेटा; बात सीधी-साफ थी। यह उलझन क्यों खड़ी कर दी? मगर मैं तुमसे कहता हूं: इसमें उलझन जरा भी नहीं है। मनुष्य होना और भगवान होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो मनुष्य हो गया, उसने जान ही लिया कि वह भगवान है। भगवत्ता की पहचान ही मनुष्यता है। भगवत्ता की पहचान का ही नाम मनुष्यत्तत्व है।
सूत्र तो प्यारा है: दुर्लभं त्रैयमेवैवत् देवानुग्रह हेतुकम्।
तीन चीजें दुर्लभ हैं--अति दुर्लभ हैं। मनुष्य होना; फिर मुमुक्षा का होना; फिर महापुरुष का सत्संग--जहां उपनिषद घटे, जहां एक ज्योति दूसरी ज्योति में समाए, मिले-जुले।
तीन चीजों को सर्वाधिक दुर्लभ बताया: मनुष्य होना...। क्योंकि मनुष्य
की तरह जन्मने में तो कोई बड़ी कठिनाई नहीं, जैसे और कीड़े-मकोड़े पैदा होते हैं ऐसे ही मनुष्य भी पैदा होता है, लेकिन और कोई भी प्राणी आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता। मनुष्य कर सकता है। यह यथार्थ तो नहीं है, लेकिन यथार्थ हो सकता है। बीज है, इसलिए वृक्ष भी हो सकता है। इस संभावनाओं को देख कर पहली अति दुर्लभ बात है इस जगत में: मनुष्य की भांति पैदा होना।
लेकिन, बीज भी पड़े रहें और खेत भी घर के पीछे हो और कुएं में जल भरा रहे
और सूरज धूप बरसाता रहे और तुम बीज ही न बोओ--वसंत भी आए, कोयल भी कूके, मगर तुम्हारे बीज तो बीज ही रहेंगे।
सूफी कहानी है। एक सम्राट के तीन बेटे थे और चुनाव करना बहुत मुश्किल
था कि किसको अपना राज्य सौंप दे। क्योंकि तीनों ही जुड़वां थे--बराबर उनकी उम्र थी, इसलिए उम्र से कुछ तय न हो सकता था। तीनों प्रतिभा-संपन्न थे। शिक्षक भी नहीं कह सकते थे कि कौन अधिक प्रतिभाशाली है। इसलिए उलझन और बढ़ गई थी। तीनों शक्तिशाली थे। एक से दूसरा बढ़ कर था। तीनों युद्ध के मैदानों पर परीक्षित हो चुके थे। और सदा जीत कर लौटे थे। हारना जैसे उन्होंने जाना ही न था। सम्राट किसे अपना उत्तराधिकारी चुने?
उसने एक सूफी फकीर से पूछा। उस फकीर ने अपने झोपड़े में से लाकर फूलों
के बीजों से भरी हुई एक बोरी दे दी। और कहा, यह ले जा, तीनों को बीज बांट दे और तू तीर्थयात्रा को चला जा। और कहना कि जब मैं लौटूं तो बीज मुझे सुरक्षित वापस चाहिए। और जो इसमें सर्वाधिक सफल होगा, वही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी भी होगा।
सम्राट ने वे बीज तीनों को बांट दिए और तीर्थयात्रा को चला गया।
पहले बेटे ने सोचा, बीजों को सुरक्षित रखना है, एक ही उपाय है कि इन्हें लोहे की तिजोड़ी में बंद कर दूं। कोई चूहा न पहुंच जाए, कोई कीड़े न लग जाएं, कोई चुरा न ले। तो उसने एक लोहे की तिजोड़ी में बीज बंद कर दिए, मजबूत ताले जड़ दिए। चाबियां बहुत संभाल कर रखीं। रात भी सोता था तो चाबियां अपने हाथ में ही रखता था, अपने तकिए के नीचे दबा रखता था। कहीं

जाता था तो चाबियां साथ ले जाता था। क्योंकि सारी जिंदगी, सारा भविष्य उन बीजों के बचने पर था।
दूसरे बेटे ने सोचा कि मैं भी तिजोड़ी में बंद कर सकता हूं, लेकिन कहीं तिजोड़ी में हवा न लगी, धूप न लगी और बीज सड़ गए! और पिता ने कहा था, जैसे दे रहा हूं वैसे ही वापस करना। कहीं बीज सड़ गए, तो मैं मारा गया। इसलिए अच्छा हो कि मैं बीज बेच दूं बाजार में। पैसे सुरक्षित रहेंगे। जब पिता आएंगे, फिर बीज खरीद लाऊंगा। बीजों-बीजों में क्या फर्क है? जैसे ये बीज वैसे वे बीज। कोई बीजों पर हस्ताक्षर तो हैं नहीं पिता के! पहचान भी क्या कर सकेगा? सो उसने बीज बेच दिए। पैसे ज्यादा सुरक्षित रह सकते थे। और जब पिता आएगा तो बीज खरीद लेगा।
तीसरे ने जाकर बीज अपने महल के पीछे बो दिए बगीचे में। उसने सोचा, बीज
का तो अर्थ ही होता है संभावना। बीज को बचाना अर्थात संभावनाओं को बचाना। और संभावना बचती है एक ही तरह से कि वास्तविक हो जाए। उसने बीज बो दिए।
जब पिता वापस लौटा तीर्थयात्रा से तो पहले बेटे ने अपनी तिजोड़ी खोली। लेकिन बीज सड़ गए थे। जिन बीजों से बड़े सुगंधित फूल पैदा हो सकते थे, उस तिजोड़ी से केवल दुर्गंध उठी। बाप ने कहा, ये मैंने तुझे बीज दिए न थे। ये मेरे बीज नहीं हैं। जो मैं तुझे दे गया था उनमें दुर्गंध नहीं थी, उनमें सुगंध की संभावना थी। तूने संभावनाओं को विकृत कर दिया। तूने सड़ा डाले बीज। तू हार गया।
दूसरे बेटे से पूछा। दूसरे बेटे ने कहा, जरा रुकिए, मैं बाजार से खरीद लाऊं! क्योंकि मैंने बेच दिए--इसीलिए कि तिजोड़ी में रखने का यह परिणाम होने वाला है जो मेरे एक भाई का हुआ। मैं जाता हूं। पिता ने कहा, लेकिन वे बीज वही नहीं होंगे जो मैंने तुझे दिए थे। वे वही नहीं हो सकते क्योंकि उन बीजों पर एक फकीर का आशीर्वाद था। उन बीजों को एक फकीर ने छुआ था। एक बुद्ध पुरुष के हाथ उन बीजों पर लगे थे। वे बीज वही नहीं हो सकते। अब तू उन बीजों को कहां से पाएगा, पागल? हीरे बेच दिए, अब तू कंकड़-पत्थर लाएगा। रहने दे, मत जा, मत मेहनत कर! तू हार गया।
तीसरे बेटे से पूछा। उसने कहा, आएं मेरे महल के पीछे। क्योंकि बीज का
तो अर्थ ही होता है, जो बढ़े। जो बढ़े नहीं, वह क्या बीज! जो फूटे, अंकुरित हो, वही बीज। तो मैंने उन्हें और तरह नहीं सम्हाला, बो दिया है। आएं! दूर-दूर तक फूलों से ही भर गई है बगिया। इतने फूल आए हैं कि पक्षियों को अपने घोंसले बनाने के लिए जगह भी नहीं मिल रही है। ऐसे लदे-फदे हैं फूल, मेला भरा है! और राज्य की मुझे चिंता नहीं है। मैं तो मस्त हो गया हूं माली होकर। मेरे लिए तो आपने काम दे दिया, अब मैं यही करूंगा तो भी मेरा जीवन धन्य है। बीजों को फूल बनाता रहूंगा--और इससे बड़ी क्या बात हो सकती है! पिता ने जाकर देखा। दूर-दूर तक जहां तक आंखें जाती थीं, फूल ही फूल थे। सुगंध उड़ रही थी। फूल हवाओं में नाच रहे थे। पिता ने कहा कि तूने ही केवल मेरे बीज बचाए। हालांकि एक अर्थ में तो तूने बीज बिलकुल गंवा दिए। कहां हैं बीज? लेकिन एक अर्थ में तूने बचा ही नहीं लिए, तूने बहुत बढ़ा दिए, अनंत गुना कर दिए। अब इन पौधों पर फूल आ गए हैं, जल्दी ही इनमें बीज आएंगे, एक-एक बीज से करोड़-करोड़ बीज हो जाएंगे। तूने ही बचाया। यही बचाने का ढंग है। मनुष्य एक बीज है। और जो इस बीज को फूलों तक पहुंचा देता है, वही हकदार
है कहने का कि मैं मनुष्य हूं। तिजोड़ी में बंद करने की यह चीज नहीं। तीसरा बेटा मालिक हो गया साम्राज्य का।
मनुष्य होना दुर्लभ है--क्योंकि संभावना भी दुर्लभ है।
और फिर मुमुक्षा। मुमुक्षा बड़ा प्यारा शब्द है। बहुत विचारणीय। मनन करने योग्य। तीन शब्दों पर ध्यान रखो। एक है: कुतूहल। मिलते-जुलते हैं, इसलिए उनको समझ लेना जरूरी है। दूसरा है: जिज्ञासा। और तीसरा है: मुमुक्षा। कुतूहल बचकाना होता है। यूं ही पूछ लिया। जैसे खुजलाहट आई, जरा- सा खुजा लिया और बात भूल गई। छोटे बच्चे यही करते हैं। कोई भी चीज देखते, पूछ लेते हैं। ऐसा क्यों? वैसा क्यों?
चंदूलाल का बेटा टिल्लू पहले ही दिन स्कूल गया और शाम को वापस आते ही अपने पिता चंदूलाल से पूछ बैठा: "पापा, पापा, मैं कहां से आया?" चंदूलाल ने सार्थक नजरों से पत्नी की ओर देखा, आंख मारी और मुस्कुराए; पूत के पांव

पालने में ही दिखाई पड़ रहे हैं। फिर टिल्लू से बोले: "तुम्हें यह बेवकूफी कहां से सूझी?" टिल्लू ने कहा: "स्कूल में रमेश बतला रहा था कि वह कलकत्ता से आया है।"
बेचारा बच्चा कोई ऐसी गहरी जिज्ञासा नहीं कर रहा जैसा चंदूलाल समझ गए! किसी ने कहा कलकत्ते से आया हूं, तो उसने पूछा कि मैं कहां से आया हूं? कुतूहल जगा।
कुतूहल में कोई जड़ें नहीं होतीं, कोई गहराई नहीं होती। कुतूहल ऊपरी होता है। जवाब मिल जाए तो ठीक है, न मिले तो ठीक है। कोई कुतूहल पर दांव नहीं लगा होता। इसलिए छोटे बच्चे कुछ भी पूछते चले जाते हैं। तुम न जवाब दो तो वे कुछ ठहरते नहीं तुम्हारे जवाब देने के लिए, दूसरा प्रश्न खड़ा कर देते हैं।
लेकिन जिज्ञासा गहरी जाती है। जिज्ञासा का अर्थ होता है: एक सातत्य। जैसे बूंद-बूंद भी गिरती रहे,गिरती रहे, तो गागर भर जाए--गागर ही क्यों, सागर भर जाए। जिज्ञासा में एक सातत्य है। कुतूहल केवल बूंद है। लेकिन जिज्ञासा बूंद का सतत गिरते रहना है। रसरी आवत जात है सिल पर पड़त निशान। रस्सी भी कुएं के पत्थर पर निशान बना देती है। आती रहती है, जाती रहती है। जिज्ञासा दार्शनिक है। कुतूहल तो केवल खुजलाहट है। जिज्ञासा का अर्थ है: ऐसे प्रश्न जो तुम्हारे प्राणों में शोर मचा रहे हैं। जो तुम्हारे अंतरतम में द्वार खटखटा रहे हैं। जो कहते हैं: जवाब चाहिए ही चाहिए। जिज्ञासा पूरे जीवन पर फैल सकती है। कुतूहल सभी में होता है, बुद्धू से बुद्धू में भी होता है। लेकिन जिज्ञासा व्यक्ति को बौद्धिक बनाती है, दार्शनिक बनाती है, चिंतक बनाती है, विचारक बनाती है।
पर मुमुक्षा और भी अदभुत बात है। जितनी दूरी कुतूहल और जिज्ञासा में है, उससे भी ज्यादा दूरी जिज्ञासा और मुमुक्षा में है। कुतूहल और जिज्ञासा में तो जो भेद है वह केवल मात्रा का है। एक बूंद, और बहुत बूंदें हैं। भेद परिमाण का है, गुण का नहीं। लेकिन जिज्ञासा और मुमुक्षा में गुण का भेद है।
जिज्ञासा दार्शनिक बनाती है, मुमुक्षा धार्मिक। जिज्ञासा में प्रश्न होते हैं, मुमुक्षा में जीवन ही प्रश्न बन जाता है। जिज्ञासा में बहुत प्रश्न होते हैं, मुमुक्षा में एक ही प्रश्न होता है कि मैं कौन हूं? जिज्ञासा में हजार उत्तर आते हैं, हर उत्तर में से नए प्रश्न खड़े होते हैं। और मुमुक्षा में, मैं कौन हूं, यह एक ही प्रश्न होता है और अंततः यह प्रश्न भी गिर जाता है। जिस दिन यह प्रश्न गिरता है, उसी दिन जीवन उत्तर से भर जाता है। उसी दिन जीवन रहस्य से ओत-प्रोत हो जाता है।
मुमुक्षा का अर्थ है: जिससे मिल जाए मोक्ष। दर्शन से मोक्ष नहीं मिलता, मुक्ति नहीं मिलती। जैसे कोई आदमी कारागृह में बंद हो। कुतूहल ऐसा होगा कि कभी पूछे कि क्यों दरवाजे पर हमेशा संतरी खड़ा रहता है? इसके हाथ में बंदूक क्यों है? बंदूक क्या करती है? पूछ लेगा, मिला उत्तर तो ठीक है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता; नहीं मिला उत्तर तो भी ठीक है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसकी कुछ नींद इससे खराब नहीं होगी।
लेकिन जिज्ञासा में नींद टूट जाएगी, खराब होने लगेगी नींद, रात-दिन प्रश्न पीछा करेगा--ये दीवारें क्यों हैं? ये मेरे हाथ पर जंजीरें क्यों हैं? ये मेरे पैरों में बेड़ियां क्यों हैं? यह संतरी क्यों खड़ा है? मैंने क्या किया है?
लेकिन कारागृह में बंद आदमी कैसे जान सकेगा कि मैं क्यों यहां बंद हूं? उसने तो जब से पाया है तब से अपने को बंद ही पाया है। जब से आंख खोली है तब से जंजीरें दिखाई पड़ी हैं, बेड़ियां दिखाई पड़ी हैं। जब से सजग हुआ तब से द्वार पर ताला पड़ा है, सींकचे हैं, बाहर बंदूकधारी सिपाही खड़ा है। क्या करेगा वह?
मुमुक्षा का अर्थ है: सिर्फ कारागृह में बैठे-बैठे आराम से प्रश्न नहीं पूछने लगना, वरन दीवार को तोड़ कर बाहर निकलने की कोशिश। दीवार को तोड़ना, सींकचों को काटना, जंजीरों को गलाना--इसकी चेष्टा मुमुक्षा है। ताकि एक दिन मोक्ष मिल सके, मुक्ति मिल सके। एक दिन जब बाहर खड़ा होगा कारागृह के तभी जानेगा भेद बंधन का और मुक्ति का।

मुमुक्षा, सूत्र कहता है, दूसरी अदभुत घटना है। पहले तो मनुष्य होना दुर्लभ है। सौ में कोई एकाध मनुष्य होता है। सौ मनुष्यों में कोई एकाध मनुष्य होता है। निन्यानबे तो बस दिखाई पड़ते हैं। यूं ही समझो जैसे खेत में खड़े हुए झूठे आदमी।
देखा है न खेत में खड़ा हुआ बिजूका? एक डंडे पर हंडी लगा देते हैं, दूसरा डंडा हाथ की तरह बना देते हैं, कुर्ता पहना देते हैं। हंडी पर चाहो तो दाढ़ी-मूंछ भी लगा दे सकते हो, गांधी टोपी भी पहना दे सकते हो। पशु- पक्षियों को डराने के काम आएगा बिजूका, बस इससे ज्यादा किसी मतलब का नहीं है।
खलील जिब्रान की एक कहानी है कि मैंने एक बिजूके से पूछा। सुबह-सुबह घूमने निकला था, कोई और था नहीं, बहुत दिन से मन में जिज्ञासा उठती थी कि यह बिजूका यहां खड़ा-खड़ा थक जाता होगा--दिन भी खड़ा, रात भी खड़ा; वर्षा हो कि सर्दी हो कि धूप हो, खड़ा ही खड़ा--बेचैन होता होगा, ऊब जाता होगा।
तो जयराम जी करके पूछ लिया कि बिजूके भाई, यहां खड़े-खड़े थक जाते होओगे? वर्षा नहीं देखते, धूप नहीं देखते, सर्दी नहीं, गर्मी नहीं, मौसम आएं कि जाएं, मगर तुम सतत अपनी तपश्चर्या में लीन यहीं खड़े! बहुत तपस्वी देखे, बहुत महात्मा, लेकिन तुम बेजोड़ हो! यह जिज्ञासा मेरे मन में बार-बार उठती है: ऊबते नहीं? बेचैन नहीं होते? कुछ और करने की नहीं सूझती? इंच भर हिलते नहीं! बिलकुल खड़े श्री बाबा! वहीं खड़े हैं! पैर जमा कर खड़े हैं! बिजूके के ओंठों पर मुस्कुराहट आई, हंसा, खिलखिलाया और बोला कि नहीं,
ऊब नहीं आती। पशु-पक्षियों को डराने में इतना मजा आता है कि ऊबने की फुर्सत किसे? अरे, चैन कहां? काम-धाम इतना है, व्यस्तता इतनी है।
दुनिया में बहुत-से तो बिजूके हैं। उनका कुल मजा इतना है कि दूसरे को कैसे डराएं, कैसे धमकाएं! कोई राजनेता बन कर धमका रहा है, कोई धन इकट्ठा करके धमका रहा है--सब तरह की दादागिरियां हैं। मगर हैं सब बिजूके। कैसी- कैसी चीजों से धमका रहे हैं! मौका भर मिल जाए धमकाने का!
कल मैंने अखबार में खबर पढ़ी कि मोरारजी देसाई को लाल रंग से चिढ़ है। जरूर होगी! संन्यासियों का रंग है! और मेरे संन्यासियों को देख कर उनको एकदम आग लग जाती है! और मैं भेजता रहता हूं अपने संन्यासी कि कहीं भी हों जाकर शोरगुल मचा दिया करें! दर्शन तो उनको दे ही दिए! मगर यह चिढ़ उनकी ऐसी बढ़ गई कि कल अखबार में खबर थी कि जब वे प्रधानमंत्री थे तो रेडियो स्टेशन दिल्ली ने उनका एक व्याख्यान प्रसारित करने के लिए अपने एक आदमी को टेप रिकार्डर लेकर १,सफदरजंग--जहां उनका निवास था--भेजा। प्रधानमंत्री के निवास पर। उस बेचारे को क्या पता, वह लाल जैकेट पहन कर--जवाहरबंडी लाल पहन कर--पहुंच गया! बस, मोरारजी ने देखा, कि जैसे बैलों को कोई लाल झंडी बता दे! कि बस वे एकदम फनफनाने लगते हैं! उनके नासापुट फैल जाते हैं! एकदम भन्ना जाते हैं! वैसे मोरारजी भन्ना गए! और कहा कि यह लाल बंडी क्यों पहनी? शायद शक हुआ हो कि मेरा आदमी है। जासूस है या क्या बात है? पूरा तो संन्यासी नहीं है, मगर लाल बंडी क्यों पहनी? वे इतने क्रुद्ध हो गए कि वह बेचारा कुछ कहे, इसका मौका ही नहीं मिला। उसको कहा कि निकल जाओ यहां से बाहर! तुमको इतना भी पता नहीं कि भारतीय संस्कृति में लाल रंग की साड़ियां सिर्फ स्त्रियां पहनती हैं, पुरुष नहीं।
सुनते हो? शंकराचार्य स्त्री थे! यह जो सुभाषित पूछा है सहजानंद ने,
यह शंकराचार्य की विवेक चूड़ामणि से है। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, सब स्त्री थे! एक मोरारजी पुरुष पैदा हुए हैं! यहां पांच हजार वर्षों से संन्यासी गैरिक वस्त्र पहन रहा है और भारतीय संस्कृति का उसको पता ही नहीं है! मोरारजी देसाई को भारतीय संस्कृति का पता है!
वे तो फिर इतने गुस्से में आ गए कि उनका व्याख्यान रिकार्ड करने का तो सवाल ही नहीं था, वह अपना रिकार्डर बचा कर बेचारा भागा! लाल बंडी ने सब गड़बड़ कर दिया।
दूसरों को डराने का कैसा मजा है! ये सब बिजूके हैं। इनका मजा ही यही है। बड़ा मकान बना लिया, पड़ोसियों को डरा दिया। झंडा ऊंचा रहे हमारा! ये सब बिजूके हैं, जो इस तरह की बातें करते हैं। अरे, तुम्हारे झंडे में ऐसा क्या है जो ऊंचा रहे? और काहे को ऊंचा रहे? ठीक से सम्हाल कर अपने सूटकेस में

रखो! झंडा ऊंचा रहे हमारा! लेकिन झंडा ऊंचा रखने का मतलब कुछ और है--डंडा ऊंचा रहे हमारा। झंडा तो बहाना है, असली में तो डंडा है जो भीतर है। जरा गड़बड़ की कि झंडा तो विदा हो जाएगा और डंडा बाहर आ जाएगा।
तो लोग अपने-अपने डंडे पर तेल की मालिश कर रहे हैं! दूसरे को डराने का ऐसा मजा है! खुद को जानने की फुर्सत कहां? सौ में निन्यानबे आदमी तो दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में लगे हैं। और कैसी-कैसी मूर्खतापूर्ण प्रतिस्पर्धा में लगे हैं, होश ही नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझे एक दिन रास्ते पर मिले। मैंने कहा, मियां तुम्हारे एक भाई हुआ करते थे--कल्लन मियां--जुड़वां थे, बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े वे।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अरे, ले लिया बदला! ले लिया बदला एक ही बार में। जिंदगी भर का बदला ले लिया। वह दुष्ट कल्लन, उसने मुझे बहुत सताया। वह जरा मजबूत काठी का था--यूं तो हम जुड़वां थे, मगर वह जरा मजबूत काठी का था। कुश्तम-कुश्ती में चारों खाने मुझे चित कर देता था। इसलिए झगड़े में तो कोई सार ही नहीं था। झगड़ने से कोई फायदा ही नहीं था। मेरा सूट पहने, मेरा कोट पहने, मेरी टाई लगाए। मेरी छाती जली जाए, मगर कुछ करूं क्या? यहां तक शैतानी की उसने कि स्कूल में प्रथम पुरस्कार मुझको मिला और उसने उठ कर ले लिया। फिर भी मुझे अपने पर संयम रखना पड़ा, क्योंकि नहीं तो घर जाकर वह ऐसे पटकने देगा! मुझे निमंत्रण मिले भोजन का किसी के यहां, वह पहुंच जाए। शकल बिलकुल एक जैसी थी, कोई पहचान ही न सके। मगर सबसे हद तो तब हो गई जब मेरा एक लड़की से प्रेम हो गया और वह उस लड़की को ले भागा। तबसे उस हरामजादे को मैं ठीक करने में लगा था। आखिर मैंने बदला ले लिया।
मैंने कहा, मुझे बताओ भी तो बदला कैसे लिया!
मुल्ला नसरुद्दीन बड़ी रहस्यमयी मुद्रा में हंसे और बोले कि मैं मर गया और लोग उसको दफना आए! अरे, सौ सुनार की एक लोहार की। बस, एक ही बार में जिंदगी भर का ठिकाना लगा दिया!
क्या-क्या मजा है! कैसी मूर्च्छा है! ये सौ में से निन्यानबे लोग तो मूर्च्छित हैं, बिलकुल बेहोश हैं। इन्हें होश नहीं ये क्या कर रहे हैं! इन्हें पता नहीं ये क्यों हैं! इन्हें यह भी पता नहीं ये क्या हैं!
पायलट ट्रेनिंग का कोर्स चल रहा था। सरदार विचित्तर सिंह से जब पूछा गया कि मान लो तुम हवाई जहाज से कूदे और छतरी नहीं खुली, तो ऐसी स्थिति में तुम क्या करोगे? विचित्तर सिंह ने जवाब दिया: "सर, स्टोर रूम से जाकर दूसरी छतरी मांग लाऊंगा।"
ओ मेरे साथी रे, तेरे बिना भी क्या जीना! सरदार विचित्तर सिंह ने इस प्रसिद्ध फिल्मी गीत से प्रभावित होकर अपनी प्रेमिका के वियोग में अपने घर के जीने की एक-एक ईंट उखड़वा कर फिंकवा दी।
ओ मेरे साथी रे, तेरे बिना भी क्या जीना। जीना ही तुड़वा दिया! ईंट-ईंट उखड़वा दी!
सरदार विचित्तर सिंह एक फिल्म बना रहे थे। बड़ी दुस्साहस से भरी फिल्म थी। उसकी शूटिंग चल रही थी। हीरो के डबल को ऊंची खिड़की से नीचे छलांग लगानी थी। काफी कहने पर भी वह तैयार न हुआ।
अंततः सरदार विचित्तर सिंह, जो निर्देशन कर रहे थे, स्वयं आगे आए और कूद कर दिखाने के लिए बढ़े। उन्होंने खिड़की से कूद कर दिखाया और सड़क पर पसरे-पसरे ही कहा, अब समझ गए? समझ गए न कैसे कूदना? अब खिड़की पर आओ और मेरी तरह छलांग मारो। मगर उससे पहले जरा किसी डाक्टर को फोन कर दो। मेरी कई हड्डियां टूट गई हैं।
होश किसको है! ये सौ आदमियों में निन्यानबे तो बेहोश जी रहे हैं। इनको
यह भी पता नहीं कि ये आदमी हैं। कोई हिंदू है--आदमी नहीं; कोई मुसलमान है-- आदमी नहीं; कोई ईसाई है--आदमी नहीं; कोई जैन है--आदमी नहीं। कोई नीग्रो है, कोई सफेद चमड़ी वाला है, कोई जर्मन है, कोई जापानी है, कोई हिंदुस्तानी है, कोई पाकिस्तानी--आदमी तो खोजे से न मिले! तुम किसी से पूछो कि तुम कौन हो, तो शायद ही वह कहे कि मैं आदमी हूं! शायद ही कहे मैं आदमी हूं! कहेगा-- मद्रासी हूं, पंजाबी हूं, बंगाली हूं, बिहारी हूं, गुजराती हूं, मारवाड़ी हूं, मगर आदमी? आदमी! इस तरह की चीज कहीं पाई ही कहां जाती है।

सौ में एकाध कोई आदमी होता है। और सौ आदमियों में से किसी एकाध को मुमुक्षा जगती है। किसी को होश आता है कि यह जीवन एक बीज है और इस बीज को इसकी अंतिम नियति तक पहुंचाना है, अन्यथा व्यर्थ न चला जाए अवसर! सौ में से शायद एक तो आदमी और सौ आदमियों में से शायद एक अपने जीवन को इस अंतिम खोज में संलग्न करता है, मुमुक्षा से भरता है। मुमुक्षा महंगा सौदा है। मुमुक्षु को ही मैं संन्यासी कहता हूं। वह मेरा नाम है। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। मुमुक्षु कहो कि संन्यासी कहो, जिसने अपने जीवन को इस अंतिम खोज में संलग्न कर दिया है कि जब तक न जान लूंगा कि मैं कौन हूं तब तक चैन से न रहूंगा। तब तक क्या चैन से रहना! तब तक एक-एक पल जो हाथ से जा रहा है वह कभी लौट कर न आएगा। वह लौटने वाला नहीं है। वह गया सो गया। वह व्यर्थ न चला जाए। एक-एक पल को निचोड़ लूं, आत्म-ज्ञान में ढाल लूं--ऐसी मुमुक्षा। सूत्र ठीक कहता है कि तीन चीजें अदभुत हैं: मनुष्यत्व, फिर मुमुक्षा-- संन्यास--और फिर महापुरुषसंश्रयः। फिर किसी सदगुरु के चरणों में बैठना, फिर किसी सत्संग में भागीदार होना, फिर किसी बुद्ध पुरुष से जुड़ जाना, फिर किसी जले हुए दीए के पास सरकते आना, सरकते आना, उस समय तक जब तक कि अपना भी बुझा हुआ दीया जल न जाए।
मुमुक्षा भी लोगों में पैदा होती है तो भी जरूरी नहीं है कि वे सदगुरु
का साथ खोजें। क्योंकि सदगुरु का साथ खोजने के लिए अहंकार छोड़ना होता है। मुमुक्षा में अहंकार नहीं छूटता। मुमुक्षा में अहंकार भर भी सकता है। जैसे कृष्णमूर्ति के पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं--तुम दुनिया के छंटे हुए अहंकारियों को वहां बैठा हुआ देखोगे। और कारण? क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैं, न समर्पण करना है, न दीक्षा लेनी है, न किसी को गुरु मानना है, तुम स्वयं काफी हो, तुम पर्याप्त हो।
यह अहंकार को भाषा प्रीतिकर लगती है कि मैं पर्याप्त हूं, मुझे कहीं झुकना नहीं है। और अगर कहीं झुकना नहीं है तो कृष्णमूर्ति के पास क्या भाड़ झोंक रहे हो? क्या, किसलिए वहां बैठे हो जाकर? नदी के किनारे बैठे हो और अंजुलि बनानी नहीं, पानी पीना नहीं--क्योंकि पानी पीने के लिए अंजुलि बनानी पड़े, मुमुक्षा की अंजुलि, पानी पीने के लिए झुकना पड़े, तब तो अंजुलि में पानी भरोगे, तब तो तुम्हारे कंठ तक पानी पहुंचेगा--तो घाट पर बैठे क्या कर रहे हो? या तो डुबकी मारो या रास्ता पकड़ो।
कृष्णमूर्ति के पास जो लोग बैठे हैं उनको सिर्फ अहंकार की तृप्ति मिल रही है कि बिना झुके सत्संग हो रहा है। मगर बिना झुके सत्संग होता ही नहीं। समर्पण ही सत्संग है।
तो तीसरी बात सर्वाधिक कठिन है। मैं कौन हूं इसकी खोज में मैं जो नहीं हूं, मैंने जो अपने को मान रखा है, वह मेरा जो झूठा मैं है, उसे किसी के चरणों में समर्पित कर देना। कहना कि मुझसे तो छूटे-छूटे यह नहीं छूटता, लेकिन तुम्हारे निमित्त शायद छूट जाए। तुम्हारे प्रेम में शायद छूट जाए। महापुरुष का संश्रय, उसका सान्निध्य, उसका सत्संग।
सूत्र कहता है: और जब ये तीनों एक साथ मिलें तब तो समझना कि परमात्मा
की बड़ी अनुकंपा है। एक भी मिल जाए तो बहुत, और तीनों अगर साथ-साथ मिल जाएं तो इसी को कहते हैं कि जब वह देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। फिर तो इसे परमात्मा का अनुग्रह समझना। यह अपनी पात्रता नहीं होगी। यह अपना अर्जन नहीं हो सकता। यह तो उसका प्रसाद है, उसकी भेंट है। तब मोक्ष करीब है। आ ही गया। द्वार पर ही खड़े हो। मगर फिर भी खयाल रहे कि फिर भी चूक सकते हो। आदमी द्वार से भी तो वापस लौट जा सकता है।
कई बार द्वार करीब आ चुका है तुम्हारे। अनंत-अनंत जन्मों में ऐसा हो
ही नहीं सकता कि द्वार तुम्हारे करीब न आया हो। तुममें से बहुत बुद्ध के करीब पहुंचे होंगे। तुममें से बहुतों ने महावीर का सान्निध्य पाते-पाते छोड़ दिया होगा। तुममें से बहुतों के कानों में कृष्ण के वचन पड़ते-पड़ते चूक गए होंगे। तुममें से बहुतों का हाथ जीसस ने पकड़ना चाहा होगा, लेकिन तुमने छुड़ा लिया होगा। तुममें से बहुतों के प्राणों में मोहम्मद की आवाज गूंजते-गूंजते रह गई होगी। इस अनंत काल में, इस अनंत यात्रा में अनंत-अनंत बुद्ध हुए हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम किसी बुद्ध के पास न पहुंचे हो, कि तुमने नानक और उनके शागिर्द मस्ताना के गीत न सुने हों, कि तुमने कबीर

की उलटबांसियां न सुनी हों, कि पलटू ने तुम्हें झकझोरा न हो, कि तुमने रैदास की आंखों में न झांका हो। मगर द्वार आया और चूक गया।
बुद्ध कहते थे कि यूं समझो कि एक महल है जिसमें हजार दरवाजे हैं और एक अंधा आदमी महल में अंदर भटक गया है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं, एक दरवाजा खुला है। वह अंधा आदमी टटोलता है, टटोलता है, टटोलता है, लेकिन बंद दरवाजे, बंद दरवाजे, बंद पर बंद दरवाजे। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं, एक दरवाजा खुला है। और जब वह खुले दरवाजे के करीब आता है तो कभी सोचता है कि यह भी होगा बंद, इतने तो देख चुका--और बिना टटोले निकल जाता है। और तुम नाराज मत होना उस पर। क्या कसूर बेचारे का! इतने दरवाजे टटोले, थक गया टटोलते-टटोलते, सब बंद, तो यह भी बंद ही होगा, ऐसा सोच कर आगे बढ़ जाता है। चूक गया। फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजों पर भटकेगा तब यह दरवाजा आएगा।
कभी यूं होता है कि खुले दरवाजे के करीब आता है और एक मक्खी सिर पर बैठ जाती है, और उसको उड़ाने में ही दरवाजा चूक जाता है। आगे बढ़ जाता है, पैर आगे निकल जाते हैं। छोटी-छोटी बातें चुका देती हैं। एक मक्खी सिर पर बैठ जाए, खुला दरवाजा चूक जाता है। या एक छोटा-सा तर्क। और तर्कों की कोई कमी है! आदमी जितने चाहे उतने तर्क दे सकता है। अंधा आदमी भी अपने अंधेपन के बचाव के लिए तर्क देता है। बहरा आदमी अपने बहरेपन के बचाव के लिए तर्क देता है। क्योंकि तर्कों से सांत्वना मिलती है।
यह सत्य वेदांत ने प्रश्न पूछा था न कि डोंगरे महाराज कहते हैं कि गरीबी पाप नहीं है, लेकिन गरीब का सम्मान करना चाहिए।
अगर गरीबी पाप नहीं है तो गरीब का सम्मान क्यों करना चाहिए? गरीबी के कारण? मनुष्यता के कारण सम्मान करो। लेकिन मनुष्यता में क्या भेद है फिर गरीब और अमीर का, फिर काले और गोरे का! मनुष्य का आदर करो! लेकिन गरीबी पाप नहीं है, फिर भी गरीब का सम्मान करना चाहिए! गरीब शब्द का विशेषण क्यों जोड़ते हो?
यह जो डोंगरे महाराज ने कहा कि गरीब का सम्मान करना चाहिए, यही तो महात्मा गांधी कह रहे थे कि दरिद्र नहीं है वह, दरिद्रनारायण है! दरिद्र के रूप में भगवान आए हैं। और जब तुम दरिद्रनारायण का सम्मान करोगे तो दरिद्रता को मिटाओगे कैसे? हालांकि दरिद्र को भी अच्छा लगता है कि उसका कोई दरिद्रता के कारण सम्मान करे। सांत्वना मिलती है, अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है, सुस्वादु लगता है। अमीर का अपमान हो, इससे भी मजा आता है कि ठीक, मिलना ही चाहिए इसको अपमान। क्योंकि भीतरर् ईष्या की आग जल रही है। और गरीब का सम्मान हो तो बड़ा सुखद मालूम होता है। जैसे ठंडी हवा आ गई हो। उत्तप्त तुम थे और ठंडी हवा का झोंका बह गया और शीतल कर गया।
महात्मा गांधी ने खूब राजनीति चलाई दरिद्र का सम्मान करके। क्योंकि
यह देश अट्ठानबे प्रतिशत तो दरिद्रों से भरा हुआ है, इन्हीं पर राजनीति चलनी है। इनको दरिद्रनारायण कहो, निश्चित इनका मत तुम्हारे साथ, ये तुम्हें महात्मा कहेंगे। मगर इन गरीबों को यह पता नहीं कि इनकी गरीबी का जितना सम्मान किया जाएगा उतनी ही यह गरीबी टिकेगी, बचेगी। यह तर्क खतरनाक है, यह महंगा है।
मैं तुमसे कहता हूं: सबका सम्मान करो! क्या गरीब और अमीर का भेद करते हो! सम्मान जीवन का करो! मगर दरिद्र का सम्मान करना चाहिए, तो उसका तो मतलब हुआ कि दरिद्रता के कारण! और अगर दरिद्रता के कारण सम्मान करना है तब तो निश्चित ही उसको दरिद्र बने रहना चाहिए अगर सम्मान पाना हो। और कोशिश करो कि वह दरिद्र बना रहे ताकि बेचारे को सम्मान मिलता रहे; नहीं तो कौन सम्मान देगा! जिस दिन अमीर हो जाएगा उस दिन कोई सम्मान देने वाला न मिलेगा। दरिद्र रहेगा तो नारायण है और अमीर हो गया तो चूक गया, भटक गया। गरीबी को आदर दोगे और गरीबी को मिटाना चाहते हो!
और मैं तुमसे कहता हूं कि निश्चित ही डोंगरे महाराज का यह वक्तव्य किसी और अर्थ में सही है। उन्होंने कहा कि गरीबी पाप नहीं है। इस अर्थ में सही है कि गरीब का जिम्मा गरीब होने में नहीं है--जैसा कि कहा जाता रहा है कि पिछले जन्मों का पाप भोग रहा है। लेकिन, गरीबी पाप तो है। सामाजिक पाप है, व्यक्तिगत पाप नहीं है। पूरा समाज जिम्मेवार है। यह कोढ़ जो गरीबी का है, इसकी जिम्मेवारी समाज पर है। और उस समाज में भी सर्वाधिक जिम्मेवारी

तुम्हारे साधु-महात्माओं की है, जिन्होंने गरीब को तर्क दिए गरीब बने रहने के। गरीब को अच्छे लगे, अमीर को भी अच्छे लगे।
अमीर को इसलिए अच्छे लगे कि गरीब गरीब बना रहे तो अमीर अमीर बना रहे।
और गरीब को अच्छे लगे कि मेरी गरीबी कोई साधारण बात नहीं, बड़ी आध्यात्मिक बात है। अरे देखो, बुद्ध ने भी महल छोड़ दिया। बुद्धत्व पाने के पहले गरीब हो जाना पड़ा। महावीर ने भी राजपाट छोड़ दिया। यह सम्मान है गरीबी का। यह सत्कार है गरीबी का। यह इस बात की स्वीकृति है कि गरीब होना परम सत्य को पाने के लिए अपरिहार्य है। तो परमात्मा की बड़ी कृपा है जो मुझे गरीब बनाया, भिखमंगा बनाया, दीनऱ्हीन बनाया, दुखी बनाया, बीमार बनाया। इस तरह अमीर को भी सुविधा मिल गई कि क्रांति से बचाव हो और गरीब को सांत्वना मिल गई कि वह गरीबी में भी सुख लेने लगा, अपनी बीमारी में भी समझने लगा कि यह आभूषण है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं।
इस तरह की थोथी बातें और थोथे तर्क आदमी खोजता चला जाता है। एक के बाद
एक खोजता चला जाता है। और अच्छे-अच्छे प्यारे लगने वाले तर्क खोज लेता है। कहता है, विधाता ने लिखा होगा भाग्य में तो होगा ज्ञान। अरे, बिना उसके तो पत्ता भी नहीं हिलता तो कोई कैसे बुद्धत्व को प्राप्त होगा! जब उसकी कृपा होगी तो बुद्धत्व भी मिलेगा, अपनी तरफ से क्या करना है!
इसका परिणाम हुआ कि देश काहिल हुआ, सुस्त हुआ। अच्छी लगे बात या बुरी लगे, तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनियों का हाथ है तुम्हारी काहिलता में, तुम्हारी सुस्ती में, तुम्हारी गरीबी में, तुम्हारी दरिद्रता में। और जब तक हम इस बात से सजग न हो जाएं तब तक इस देश से गरीबी को मिटाया नहीं जा सकता है। तो अच्छे-अच्छे तर्क आदमी खोज सकता है। गलत से गलत बातों के लिए सुंदर से सुंदर छाते बचाव बन सकते हैं।
तो पहले तो यही तर्क उठता है मन में कि मनुष्य की भांति पैदा हुआ, अब
और क्या मनुष्यता पानी है? यह तो हम पैदा ही मनुष्य हुए हैं। बस वहीं रुकाव आ गया। या सोच सकता है कि जिज्ञासा ही तो मुमुक्षा है। अच्छे-अच्छे प्रश्न पूछना कि ईश्वर है या नहीं, आत्मा है या नहीं--और क्या करना है मुमुक्षा में? शास्त्र पढ़ेंगे, अध्ययन करेंगे, शास्त्रीयता को वरण कर लेंगे--और क्या है मुमुक्षा? तो मुमुक्षा रुक गई। और फिर अहंकार कहेगा, किसी की शरण क्यों जाना? क्यों किसी के चरण गहने? क्यों कहीं समर्पण करना? अरे खुद ही खोजेंगे। स्वयं ही पा लेंगे। तो महापुरुष का संश्रय, उसका सान्निध्य, उसका सत्संग, इससे वंचित हो गए। द्वार तो तुम्हारे करीब आ जाता है, मगर तुम द्वार से निकल जा सकते हो। और कई बार यूं भी हो सकता है कि तुम द्वार पर चेष्टा भी करो, लेकिन चेष्टा गलत हो।
जैसे रामतीर्थ ने कहा है कि एक आदमी एक दरवाजे पर धक्का दे रहा था, खुलता ही न था, खुलता ही न था। रामतीर्थ ने देखा तो कहा कि मेरे भाई, जरा दरवाजे पर देखो तो कि क्या लिखा है? दरवाजे पर लिखा था: पुल। पुश नहीं। और वह धक्के मार रहा था। धक्के मारने से दरवाजा नहीं खुल सकता था। खींचने से खुलने वाला था। अपनी तरफ खींचने से खुलने वाला था। थोड़ा पढ़ो भी तो, थोड़ा गौर से देखो भी तो कि दरवाजे पर क्या लिखा है! दरवाजे पर खड़े हो और खुद ही अपने हाथ से चूक रहे हो।
तो यूं भी हो जाता है कि कोई मनुष्य होने की चेष्टा में भी संलग्न हो जाए, मुमुक्षा भी करे, सदगुरु भी मिल जाए, दरवाजे पर खड़ा हो, लेकिन पढ़े ही न कि दरवाजे पर क्या लिखा है और उलटा करता रहे। क्योंकि सुनोगे तो तुम, अर्थ तुम करोगे। मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ सुन लोगे। मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ अर्थ कर लोगे। तो भी चूक जाओगे।
सदगुरु के पास तो शून्य होकर बैठना पड़ता है। अपनी बुद्धि को विदाई ही
दे देनी होती है। कठिन काम है। क्योंकि तब ऐसा डर लगता है कि अपनी बुद्धि को विदा कर दिया तो फिर निर्णय कैसे करेंगे? मगर तुम्हारी बुद्धि अगर निर्णय कर सकती होती तो किसी के सान्निध्य की जरूरत ही न थी। नहीं निर्णय कर सकती तो इस बुद्धि को जाने दो। इसको विदा दे दो। इसको अलविदा कहो। इसको विदा देते ही तुम्हारी आंखें निर्मल हो जाएंगी, तुम्हारा हृदय सरल हो जाएगा। और तब जो कहा जाएगा वही तुम सुनोगे। जो तुम देखोगे, वह वही होगा

जैसा है। उसे तुम विकृत न करोगे। उसे तुम अपने ढंग से, अपनी व्याख्या से अपना रंग न दोगे। उसमें पक्षपात नहीं होगा।
कल अरूप मेरे पास हालैंड से एक पत्र लाई। हालैंड की पार्लियामेंट ने मेरे संबंध में खोजबीन करने के लिए कमेटी नियुक्त की है। क्योंकि हालैंड में संन्यासियों की संख्या रोज बढ़ती जाती है। घबड़ाहट भारी हो गई है खड़ी। क्योंकि जब पार्लियामेंट में कमेटी बनानी पड़े तो उसका अर्थ होता है कि मामला सीमा के बाहर हुआ जा रहा है। हालैंड के गांव-गांव में, छोटे से छोटे गांव में भी संन्यासी पहुंच गए हैं। जगह-जगह आश्रम और जगह-जगह ध्यान-केंद्र बन गए हैं।
तो उन्होंने कमेटी बनाई है और कमेटी ने मेरे प्रत्येक आश्रम को हालैंड में सूचना भेजी है कि आप इतनी बातों की सूचनाएं हमें दें और पत्र लिखा है। पत्र में यह लिखा है कि हम बिलकुल निष्पक्षता से, पक्षपातरहित होकर इस बात की जांच करना चाहते हैं कि आप जो कार्य कर रहे हैं उससे मनुष्य का हित होगा कि अहित होगा। और जिनके नाम हैं नीचे, उनमें कोई ईसाई पादरी है, कोई कैथोलिक है, कोई प्रोटेस्टेंट है--सब ईसाई हैं।
तो हालैंड के मेरे संन्यासियों ने ठीक उत्तर दिया है। उन्होंने लिखा
कि पहले यह तो आप बताएं कि आप कैसे बिना पक्षपात के हम पर विचार करेंगे? आप खुद ईसाई हैं। और जब आप ईसाई हैं तो आप क्या बिना पक्षपात के निर्णय कर सकते हैं! और आपको क्या हक है हम पर विचार करने का?
जब अरूप ने मुझे यह पत्र बताया तो मैंने कहा कि उनको लिखो कि वे भी एक कमेटी बनाएं और सारे चर्चों को भेज दें कि हम पक्षपातरहित होकर ईसाइयत के संबंध में यह खोज करना चाहते हैं कि दो हजार साल में तुमसे मनुष्यता को कुछ लाभ हुआ कि नुकसान हुआ! और हम बिलकुल पक्षपातरहित होकर विचार करेंगे। क्योंकि मेरे संन्यासी निश्चित ही पक्षपातरहित होकर विचार कर सकते हैं, क्योंकि मेरे संन्यासी न ईसाई हैं, न हिंदू हैं, न मुसलमान हैं, न जैन हैं, न बौद्ध हैं, न यहूदी हैं। मेरे संन्यासी तो सिर्फ धार्मिक हैं। उनका कोई विशेषण नहीं है। धर्मरहित उनकी धार्मिकता है। संप्रदायरहित उनकी निष्ठा है।
तो उनको लिखो कि हम निष्पक्ष होकर विचार कर सकेंगे। और तुम्हारा दो हजार साल का जो कृत्यों का इतिहास है, वह पर्याप्त प्रमाण है कि तुमसे हित हुआ या अहित हुआ। तुम क्या खाक हमारे संबंध में विचार करोगे! तुम हो कौन? तुम्हें यह हक किसने दिया? और पहले अपने भीतर तो जांच-पड़ताल करके देख लो कि तुम्हारे दो हजार साल सिवाय हिंसा के... लहूलुहान कर गए हैं इतिहास के पृष्ठों को। ईसाइयों ने जितना रक्त बहाया है उतना किसी और ने नहीं। मुसलमानों को भी मात दे दी है। तो थोड़ा अपने पर तो विचार कर लो!
लेकिन उन्होंने लिखते समय यह सोचा भी न होगा कि हम सब ईसाई हैं और हम पक्षपातरहित होकर कैसे विचार करेंगे!
मैंने खबर भिजवाई संन्यासियों को, उनको कहना कि तुम्हारे कोई भी ईसाई संत ने, महात्मा ने बुद्ध पर कुछ कहा है, महावीर पर कुछ कहा है, कृष्ण पर कुछ कहा है, लाओत्सू पर कुछ कहा है, च्वांग्त्सू पर कुछ कहा है, बोकोजू पर कुछ कहा है, बहाउद्दीन, जलालुद्दीन, मंसूर पर कुछ कहा है? सिवाय जीसस के उन्होंने किसी पर कुछ नहीं कहा।
मैं शायद अकेला आदमी हूं पृथ्वी पर, पहला आदमी हूं, जो जीसस पर बोला है, जो बाइबिल पर बोला है, जिसने धम्मपद पर बोला है, जिसने महावीर पर बोला है, जिन-सूत्रों पर बोला है, जिसने उपनिषद पर, जिसने कृष्ण पर, जिसने लाओत्सू पर, जिसने इस पृथ्वी के सारे धर्मों पर एक निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया है--क्योंकि मेरा कोई पक्ष नहीं है, मेरा कोई अपना धर्म नहीं है। इसलिए जब मैं महावीर पर बोला हूं तो मैंने महावीर को ही अपने भीतर से बोलने दिया है, जरा बाधा नहीं डाली। और जब बुद्ध पर बोला हूं तो बुद्ध को अपने भीतर से बोलने दिया है।
लेकिन पक्षपात ऐसे गहरे बैठ जाते हैं कि जिन्होंने यह पत्र लिखा है उनको यह खयाल भी न आया होगा कि अपने नामों के साथ हम लिख रहे हैं कि हम कैथोलिक हैं, हम प्रोटेस्टेंट हैं, हम इस संप्रदाय के मानने वाले, उस

संप्रदाय के मानने वाले। और फिर भी तुम सोचते हो कि तुम पक्षपातरहित हो और तुम पक्षपातरहित होकर विचार करोगे!
सदगुरु के साथ बैठना हो तो सारे पक्षपात छोड़ देने होते हैं। तभी संभव
है कि सत्संग हो। तभी संभव है कि सत्य का आदान-प्रदान हो। मोक्ष तो करीब आ जा सकता है, लेकिन तुम अपने पक्षपातों के कारण चूक सकते हो।
सहजानंद, यह सूत्र सच में अमृत वचन है--
दुर्लभं त्रैयमेवैवत् देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुयं महापुरुषसंश्रयः।।
मनुष्य की चेतना पाना, मुमुक्षा की दृष्टि पाना, महापुरुष का आश्रय,
ये तीनों अति दुर्लभ हैं अलग-अलग भी और जब एक साथ मिलें तब तो मानना कि परमात्मा का अनुग्रह है। मोक्ष फिर बिलकुल करीब है। यूं सामने रहा। लेकिन फिर भी चूक सकते हो, क्योंकि मूर्च्छा भारी है।

मेरा स्वर्णिम भारत-28

गुरु स्वयं एक उपाय है
(Note: from Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #7)

पहला प्रश्न:
भगवान, शाटयायनीय उपनिषद गुरु की महिमा इस प्रकार गाता है:
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
एकाक्षर प्रदातमम् नाभिनन्दति।
तस्य श्रुत तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुयत्।।
गुरु ही परम धर्म है, गुरु ही परम गति है। जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता, उसके श्रुत, तप और ज्ञान धीरे-धीरे ऐसे ही क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े का जल।
भगवान, क्या ऐसा ही है?

स्वरूपानंद, सत्य को अभिव्यक्ति देने वाले शब्द दुधारी तलवार की भांति हैं। उनसे रक्षण भी हो सकता है, भक्षण भी। वे जीवन के लिए पाथेय बन सकते हैं--मार्ग, इशारा--और जीवन पर बोझ भी बन सकते हैं, भार भी बन सकते हैं। इतना भार कि उनके नीचे दबी आत्मा की मुक्ति असंभव हो जाए। इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा: सत्य की खोज पर निकलना खड्ग की धार पर चलने के समान है। जैसे कोई नंगी तलवार पर चलता हो। बहुत सावधानी की जरूरत है। जरा असावधानी, जरा चूक, और जन्मों के लिए भटकाव हो जाए। जितनी ऊंचाई से तुम गिरोगे उतना ही खतरा है।
और सत्य तो आकाश में उड़ता हुआ पक्षी है। गौरीशंकर के शिखर भी बहुत पीछे छूट जाते हैं। बदलियां भी नीचे रह जाती हैं। वहां एक-एक श्वास सावधानी की होनी आवश्यक है।
यह सूत्र उन खतरनाक सूत्रों में से एक है, जिन्हें गलत समझ लो तो जहर
हो जाएं और ठीक समझ लो तो अमृत। और गलत समझना सदा आसान है। क्योंकि गलत समझ तो हम सबके पास है। समझ को ठीक करना तो साधना से संभव होता है--ध्यान से, चैतन्य को निखारने से, धोने से, स्वच्छ करने से। गलत समझ सभी के पास है। उपलब्ध ही है।
यह सूत्र गुरु की महिमा के संबंध में प्रतीत होता है, असल में यह शिष्यत्व की महिमा का सूत्र है। गुरु तो बहाना है। मगर न शिष्य समझे, न गुरु समझे। शिष्यों ने इस सूत्र को गुरु की पूजा-आराधना का आधार बना लिया। और तथाकथित गुरुओं ने इसे शोषण का उपाय समझ लिया--सहारा मिल गया उपनिषदों का, वेदों का, कुरान का, बाइबिल का।
यह बात तुम पहले से ठीक से ध्यान में ले लेना। मैं चाहूंगा दोनों अर्थ तुम्हारे सामने साफ हो जाएं। देखने में तो यही लगता है कि उपनिषद कह रहा है: "गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः। गुरु ही परम धर्म है, गुरु ही परम गति है।" गुरु की महिमा गा रहा है। इसलिए स्वरूपानंद ने पूछा कि उपनिषद गुरु की महिमा इस प्रकार गाता है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं, इसमें गुरु की महिमा की बात ही नहीं है। गुरु तो बहाना है, निमित्त मात्र है। और बहाने की इसलिए जरूरत है कि बिना बहाने के तुम अपने अहंकार का समर्पण न कर सकोगे। तुमने अहंकार एक झूठ अपने भीतर पाल रखा है। तुम इसे सच ही मान कर चल रहे हो। और मान कर चल रहे हो, इसलिए यह सत्य ही हो गया है। तुम्हारे लिए तो सत्य ही हो गया है। जब तुम किसी सदगुरु के पास पहुंचोगे, किसी बुद्ध के पास, किसी कृष्ण के पास, तो वह तुम्हें कहेगा: छोड़ दो यह अहंकार, क्योंकि यही बाधा है तुम्हारे और परमात्मा के बीच, इसके अतिरिक्त और कोई दीवार नहीं है। यह हट जाए तो द्वार खुल जाए; यह मिट जाए तो सेतु बन जाए; यह है तो परमात्मा नहीं है। इसलिए कृष्ण ने कहा: मामेकं शरणं व्रज। हे अर्जुन, तू मेरी शरण आ!
जो कृष्ण-विरोधी हैं, वे कहेंगे, यह तो कृष्ण का अहंकार हुआ। कोई आदमी
यह कहे कि मेरी शरण आ, अब और क्या प्रमाण चाहिए अहंकार के! खुद अपने मुंह से

कहे कि मेरी शरण आ; मामेकं शरणं व्रज, मुझ एक की शरण आ, किसी और की शरण न चले जाना!
मगर कृष्ण असल में केवल इतना ही कह रहे हैं कि तूने जिस अहंकार को सत्य मान रखा है, उसे तू मुझे दे दे, मैं ले लेता हूं। कृष्ण को तो पता है: अहंकार है ही नहीं। न कुछ देने को है, न कुछ लेने को है। मगर शिष्य तो मान कर जी रहा है कि अहंकार बहुत कुछ है, उसकी सारी संपदा और प्राण वही है, उसकी आत्मा वही है। वह तो गुरु के प्रेम में ही शायद छोड़ पाए तो छोड़ पाए। वह भी शायद! अर्जुन ने भी बहुत बचने की चेष्टा की, बचाव किया, हजार तर्क खोजे, हजार बहाने बताए, यह भी शर्त पूरी करने को कहा कि पहले मुझे अपना विराट रूप तो दिखाओ! मैं यह तो जानूं कि तुम परमात्मा हो! कोशिश एक ही थी: कैसे छोड़ दूं अपना अहंकार तुम्हारे चरणों में! पहले मुझे आश्वस्त तो करो कि यही हैं वे चरण जिनमें मैं अपने अहंकार को समर्पित करूं!
पूरी गीता अर्जुन अपने अहंकार को बचाने की चेष्टा कर रहा है और कृष्ण उसके अहंकार को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। और मजा यह है कि अहंकार है ही नहीं। न बचाए बचता है, न मिटाए मिटता है। हो तो मिटे, हो तो बचे। मगर कृष्ण को दिखाई पड़ता है कि नहीं है। पर आज अर्जुन को कैसे एकदम से कहो कि नहीं है। असंभव होगा उसके लिए यह समझना।
वह छोटा-सा बच्चा जो अपनी गुड़िया को छाती से लगाए दिन भर घूमता रहता है, मां देखती है कि थक गया है, परेशान हो रहा है, गुड़िया वजनी है। मां समझाती है कि अब गुड़िया को सुला देने का समय हो गया, आखिर गुड़िया को भी सोना होगा न, तू भी सोता है न, गुड़िया को दिन भर जगाए रखेगा तो मर ही न जाएगी! लिटा दे बिस्तर पर, सर्दी भी है, कंबल ओढ़ा दे, लोरी मैं गाए देती हूं, सो जाने दे! मां तो भलीभांति जानती है कि गुड़िया का क्या सोना और क्या जागना, मगर इस पागल का छुटकारा कैसे कराओ! नहीं तो यह गुड़िया को लादे फिरेगा!
मेरे एक अमरीकी संन्यासी एक बंदूक लिए घूमते थे। और उसको छिपाए रखते थे। मगर बड़ी बंदूक थी, लाख छिपाएं तो भी दिखाई पड़ जाती थी लोगों को। और छिपाने की कोशिश के कारण और लोगों को संदेह हुआ कि बात क्या है? बंदूक छिपानी क्यों? अगर रखनी है तो रखो, मगर छिपाने की क्या कोशिश? वह एक बड़े झोले में उस बंदूक को रख कर कंधे पर लटकाए रखते थे। लेकिन किसी ने झांक कर देख लिया। और उसने देखा कि वह बाजार में भी जाते हैं तो बंदूक झोले में लटकाए रखते हैं। उन मित्रों ने शीला को खबर की कि यह आदमी खतरनाक मालूम होता है। यह आदमी बंदूक लिए चलता है! शीला ने उस बेचारे संन्यासी को बुलाया और कहा कि भई, यह दिन-रात बंदूक रखने का क्या प्रयोजन है?
तब भी वह झोला अपने कंधे पर लटकाए थे। वह आदमी कहने लगा, मैं ऐसी मुसीबत में हूं कि जिसका हिसाब नहीं। न लटकाऊं तो बनती नहीं, लटकाऊं तो मुसीबत है। ये मेरे छोटे छोकरे को देखती हो? वह असली बंदूक नहीं है, खिलौना है--निकाल कर उन्होंने बंदूक बताई, खिलौना है--मगर इतनी बड़ी है कि इससे ढोई नहीं जाती। और यह दुष्ट बिना इस बंदूक के हिलता नहीं! जब तक यह बंदूक साथ न हो, यह चलने वाला नहीं। और मैं फंस मरा हूं, इसको यहां ले आया हूं! मैंने सोचा था कि इसकी भी यात्रा हो जाएगी, मगर यह मेरी जान लिए ले रहा है! रात को भी उठ-उठ कर देख लेता है कि बंदूक इसके बिस्तर पर लेटी है कि नहीं? और बंदूक इतनी बड़ी है कि खुद तो लेकर चल सकता नहीं, सो मुझे लेकर चलना पड़ रहा है। बाजार में भी लोग देखते हैं गौर से मुझे कि यह आदमी बंदूक क्यों लिए है? और चूंकि लोग गौर से देखते हैं, मैं छिपाता हूं। मैं छिपाता हूं तो लोग और गौर से देखते हैं। और मैं छिपाता हूं तो यह छोकरा झोले में झांक-झांक कर देखता है कि बंदूक है या नहीं?
अब मां को तो पता है कि बोझ ही ढो रहा है यह बच्चा। मगर करो क्या! इस बच्चे को अभी यह समझाना कि यह सिर्फ खिलौना है, गलत होगा, बेमानी होगा; इसे समझ में न आएगा, यह रोएगा; इसके लिए तो कोई उपाय खोजना पड़ेगा।
बुद्ध ने कहा है: सदगुरुओं का एक ही काम है--बच्चों के लिए उपाय खोजना। डिवाइसेज। वे उपाय उतने ही झूठ होते हैं जितने बच्चों के खिलौने। जैसे एक कांटे से हम दूसरे कांटे को निकाल लेते हैं और फिर दोनों कांटों को फेंक

देते हैं, वैसे ही एक झूठ से दूसरे झूठ को निकाला जाता है और फिर दोनों को फेंक दिया जाता है।
गुरु की तरफ से तो बात साफ है कि अहंकार नहीं है। अगर गुरु भी मानता हो
कि अहंकार है, तो अभी गुरु नहीं है। गुरु तो वही है जिसे पता चल गया है कि मैं नहीं हूं, केवल परमात्मा है, केवल भगवत्ता है। मैं नहीं हूं, भगवान है। जैसा गुरु को पता चल गया है, वैसा ही चलवाना चाहता है पता शिष्य को भी। मगर अभी शिष्य तो बहुत दूर है; उस शिखर को छूना अभी दूर है; अभी तो जो नहीं है, उसको पकड़े बैठा है। लेकिन जो नहीं है, वह भी जब तुम पकड़े होते हो--और जोर से पकड़े होते हो--तो उसे छुड़ाने के लिए कोई उपाय करना होगा। गुरु खुद को भी उपाय बना लेता है। वह कहता है: ठीक, मैं सम्हाल कर रख लूंगा, तू अहंकार को मुझे दे दे। क्या तू सोचता है तेरे पास ज्यादा सुरक्षित है? मेरे पास ज्यादा सुरक्षित होगा। मैं इसकी ज्यादा साज-सम्हाल कर लूंगा।
गुरु की सारी चेष्टा यह है कि शिष्य में श्रद्धा जगाए, प्रेम उमगाए-- इतना प्रेम, इतनी श्रद्धा कि वह अपने इस अहंकार को, जो प्राणों से भी प्यारा है उसे, गुरु के चरणों में रख दे। रखते ही राज खुल जाएगा। रखते ही शिष्य को भी पता चल जाएगा कि जो उसने रखा है, वह है नहीं। कहते हैं न: मुट्ठी बंधी हो तो लाख की, खुल जाए तो खाक की! वह ठीक है बात। वह कहावत जिसने भी ईजाद की हो, खूब जान कर ईजाद की है। बंधी मुट्ठी लाख की, वह जब तक भीतर छिपाया हुआ था अहंकार तब तक लाख का था। मुट्ठी बंधी थी। खुली मुट्ठी खाक की। गुरु के चरणों में रख कर उसको भी तो दिखाई पड़ जाएगा कि क्या चरणों में रखा है? कुछ भी तो नहीं! था ही नहीं जो!
गुरु का काम है: शिष्य से उसको छीन लेना जो उसके पास नहीं है। और दूसरा काम है: उसे वह दे देना जो उसके पास है ही। गुरु का काम बड़ा बेबूझ है, अटपटा है। जो नहीं है, उसे छीनना है; और जो है, जो है ही, उसे देना है। अहंकार को ले लेना है और आत्मा को देना है। और मजा यह है कि अहंकार है ही नहीं, आत्मा ही है। मगर तुम जब तक अहंकार को माने हो, जब तक "नहीं" पर तुम्हारी आंखें टिकी हैं, तब तक "है" का तुम्हें दर्शन न होगा। इसलिए गुरु स्वयं ही एक उपाय है। पतंजलि ने तो बहुत अदभुत सूत्र कहा। पतंजलि ने तो मनुष्य के जीवन में क्रांति लाने के लिए जो विधियां बताई हैं, ईश्वर को भी उन विधियों में एक विधि माना है। पतंजलि यह कहते ही नहीं कि ईश्वर है या नहीं--यह सवाल ही नहीं है--ईश्वर भी एक आलंबन है अहंकार को छोड़ने का। मान लो तो पत्थर भी काम का हो जाता है और न मानो तो स्वयं बुद्ध भी सामने खड़े हों तो किस काम के। मान लो तो पत्थर की मूर्ति भी बुद्ध की जीवन में क्रांति ले आए। क्यों? क्योंकि पत्थर की मूर्ति के सामने भी अहंकार चढ़ाया जा सकता है।
हालांकि जरा कठिनाई होगी; क्योंकि पत्थर की मूर्ति न समझाएगी, न तर्क करेगी, न तुम्हारे तर्कों का खंडन करेगी, न तुम पर चोट करेगी। मगर अगर तुम्हारा भाव गहरा हो, तुम्हारी प्रीति गहरी हो, तुम्हारी श्रद्धा गहन हो, तो पत्थर की मूर्ति के सामने भी रख दे सकते हो। और वहीं मुट्ठी खुल जाएगी। और वहीं पता चल जाएगा कि अहंकार तो था ही नहीं, मैं एक झूठ के साथ जी रहा था। मैंने एक सपने को अपने भीतर सजा रखा था। मैं सपने में ही जीता था, उठता था, बैठता था, चलता था। सपना टूट गया, नींद खुल गई।
यह तो मूल प्रयोजन है इस सूत्र का। यह गुरु की महिमा नहीं, अहंकार का खंडन है।
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
"गुरु ही परम धर्म है।"
क्योंकि अहंकार छूटा कि तुम्हें अपने स्वभाव का पता चला। धर्म का अर्थ होता है: स्वभाव। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। ये संप्रदाय हैं, धर्म नहीं। ये अलग-अलग संप्रदाय हैं धर्म तक पहुंचने के। दुनिया में कोई तीन सौ संप्रदाय हैं। सब धर्म तक पहुंचते हैं। तीन सौ रास्ते हैं। संप्रदाय का मतलब: रास्ता, मार्ग, नाव, घाट। किस घाट उतरे, क्या फर्क पड़ता है! घाट बहुतेरे; नदी तो एक है। नदी एक, घाट बहुतेरे। इस पार से उस पार चले गए, किस नौका में बैठे, इससे भी क्या फर्क पड़ता है! नौका इस रंग की थी कि उस रंग की, कि यह झंडा लगा था नौका पर कि वह झंडा लगा था, क्या फर्क पड़ता है! नौका वह जो उस पार ले जाए। कोई घाट हो, कोई तीर्थ हो! तीर्थ

का मतलब होता है: घाट। कोई तीर्थ हो, कोई घाट हो, कोई तीर्थंकर हो, कोई मल्लाह हो। तीर्थंकर का मतलब होता है: मल्लाह, माझी, नाविक, जो तुम्हारी नाव को खे कर ले जाए इस पार से उस पार। कोई हो--महावीर, कि बुद्ध, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट, कि मोहम्मद--चलेगा, क्या अंतर आता है! उस पार पहुंच जाओ। धर्म है: स्वभाव। और हमें पता नहीं कि हम कौन हैं। हम कुरान खोले बैठे हैं, पुराण खोले बैठे हैं, और हमें पता नहीं कि हम कौन हैं। हम शास्त्र पढ़ रहे हैं, और हमें पढ़ने वाले का भी पता नहीं। हम सिद्धांत समझ रहे हैं, और हमारे भीतर जो समझ का सूत्र है उससे भी हमारी पहचान नहीं है। और वही है धर्म। धर्म का अर्थ है: अपने को जान लेना, अपने स्वभाव को पहचान लेना, अपने चैतन्य से परिचित हो जाना।
"गुरु ही परम धर्म है।"
गुरु का अर्थ है: वह, जो अपने स्वभाव से परिचित हो गया है। जिसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है। आत्म-साक्षात्कार को उपलब्ध व्यक्ति के पास काश तुम अपने अहंकार को समर्पित कर सको तो उसके दर्पण में--उसके निर्मल दर्पण में तुम्हारी छवि झलक जाएगी। उसके दर्पण में तुम पहली बार अपने मौलिक स्वरूप को पहचान पाओगे। उसकी वीणा का संगीत बज उठा है। काश, तुम अपने अहंकार को, अपनी मन-बुद्धि को उसके चरणों में रख दो, तो तुम शून्य हो जाओगे। उस शून्य में उसकी वीणा के स्वर तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करने लगेंगे।
वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं। एक बंद कमरे में एक कोने में वीणा बजाता है कोई; और दूसरे कोने में वीणा सिर्फ टिका कर रख दी है, कोई बजा नहीं रहा, कोई बजाने वाला नहीं है। लेकिन कमरा बंद है, कमरे में कोई सामान नहीं है, ताकि वीणा के स्वरों में कोई अवरोध न हो। वीणावादक वीणा बजाता है, और हैरानी की बात है कि दूर दूसरे कोने में रखी वीणा के तार झनझनाने लगते हैं। एक वीणा बजती है, दूसरी वीणा के तार बिना बजाए बजने लगते हैं।
बस यही घटना गुरु और शिष्य के बीच घटती है। गुरु बज उठा है, उसकी बांसुरी बज गई। शिष्य को अभी बजना है। बजने की क्षमता उसकी उतनी ही है जितनी गुरु की। गीत उसके भीतर उतने ही हैं, संगीत उसके भीतर उतना ही है, उसके प्राणों में उतना ही आलोक है, उसके भीतर वही साम्राज्य है। वही उसका स्वभाव है जो गुरु का, जरा भी भेद नहीं, रंच मात्र भेद नहीं। लेकिन किसी बजती हुई वीणा के पास अगर वह बैठ जाए तो शायद उसे अपनी स्मृति आ जाए, अपनी याद आ जाए; शायद उसके भीतर भी हृदयतंत्री पर कुछ झंकार हो जाए, कोई चोट पड़ जाए।
एक बुझे दीए को हम जले हुए दीए के करीब ले आते हैं--और एक क्रांति घट जाती है। बुझा दीया जैसे-जैसे जले दीए के करीब आता है वैसे-वैसे संभावना जले दीए से ज्योति के बुझे दीए में उतर जाने की बढ़ती जाती है। और फिर आती है वह अभूतपूर्व घड़ी, वह क्रांति का क्षण, जब अचानक छलांग लग जाती है। जला दीया अपनी ज्योति से बुझे दीए को जला देता है। और मजा यह है कि जला दीया कुछ खोता नहीं और बुझे दीए को सब कुछ मिल जाता है।
आध्यात्मिक जीवन का सार-सूत्र यही है: देने वाले का कुछ जाता नहीं और लेने वाले को सब कुछ मिल जाता है।
यह गुरु की महिमा नहीं, शिष्य की ही महिमा है। लेकिन फिर क्यों, उपनिषद का ऋषि शिष्य की ही महिमा लिख देता, शिष्यत्व की महिमा लिख देता! खतरा था उसमें भी, खतरा है इसमें भी। उसमें और भी ज्यादा खतरा था। कम खतरे को चुना है। जब दो खतरे हों तो कम खतरे को ही चुनना चाहिए। शिष्य की महिमा में खतरा था कि अहंकार शिष्य का और मजबूत हो जाए। जिसकी बहुत संभावना है, क्योंकि शिष्य के पास अभी तो अहंकार ही है।
गुरु की महिमा में खतरा है--सिर्फ उन गुरुओं को खतरा है जो सच में ही गुरु नहीं। जो सच में गुरु है, उसको तो कोई खतरा नहीं है। जिसने अपने अहंकार को देख ही लिया है, उसकी असत्ता देख ली है, उसके लिए तो कोई खतरा नहीं है। उसकी तुम कितनी ही महिमा गाओ, उसके चरणों में सिर रखो, फूल चढ़ाओ, उसकी आरती उतारो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। खतरा तो उसको है जो मिथ्या गुरु है। मगर जो मिथ्या ही है, उसके खतरे की क्या चिंता करना, वह तो खतरे में है ही।

और जो मिथ्या नहीं है, उसकी क्या चिंता करना, वह तो खतरे के बाहर हो ही गया; अब कोई उपाय नहीं है उसे खतरे में वापस लाने का।
लेकिन अब और खतरा है। वह यह कि शिष्य अपने अहंकार को तो न छोड़े सिर्फ गुरु के गुणगान करने लगे। वह छोटा खतरा है। उतना बड़ा खतरा नहीं है जितना शिष्य का अहंकार मजबूत हो जाए।
इस सूत्र में यह खतरा है कि सुन कर गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः, कि गुरु ही परम धर्म और गुरु ही परम गति, तुम सोचो कि बस अब क्या करना! अब तो गुरु की पूजा उतारेंगे, अर्चना करेंगे, वंदना करेंगे, गुरु का नाम स्मरण करेंगे, गुरु-भक्ति करेंगे। बस, चूक गए तुम! बात चूक गए! तुम्हारा तीर जगह पर न लगा!
मैंने डायोजनीज के संबंध में सुना है। यूनान का एक बहुत मस्त फकीर हुआ। एक बाजार में एक तीरंदाज अपनी कला दिखला रहा था। सिक्खड़ ही था। दिखाने का शौक ज्यादा था, अभी दिखाने योग्य कुछ था नहीं। तीर तो मारता था, लेकिन निशाने पर एक तीर लगता नहीं था। कोई तीर इस तरफ चला जाता, कोई तीर उस तरफ चला जाता, कोई बीच में ही गिर जाता, कोई पार निकल जाता, कोई ऊपर उड़ जाता, कोई नीचे गिर जाता।
डायोजनीज गया और जहां उसने तीर के लिए निशाना बना रखा था, एक तख्ती टांग रखी थी, उसके नीचे बैठ गया। भीड़ ने कहा, पागल हो गए हो, डायोजनीज? तुम्हें कभी अकल आएगी या नहीं? डायोजनीज इस तरह के कामों के लिए प्रसिद्ध था। बड़ा फक्कड़ आदमी था। उसकी बहुत प्यारी कहानियों में एक कहानी यह भी है। कि वह बैठ गया वहां नीचे। भीड़ ने कहा, तुम पागल हो?
डायोजनीज ने कहा, पागल तुम हो! क्योंकि यह आदमी जिस तरह का तीरंदाज है,
यह जगह सबसे ज्यादा सुरक्षित है। यहां इसका तीर आने वाला नहीं। और कहीं भी खड़ा होना खतरे से खाली नहीं है। चारों दिशाओं में इसके तीर जा रहे हैं, सिर्फ इस तख्ते पर इसका कोई तीर नहीं लगा है।
आदमी मूर्च्छा में जीता है। कहीं चलता है, कहीं पहुंच जाता है। कहीं तीर चलाता है, कहीं लग जाता है। मगर अहंकार ऐसा है कि स्वीकार नहीं करता कि मेरे तीर गलत लग रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे फजलू को लेकर शिकार पर गए थे। बेटे के सामने बड़ी हांक रहे थे; बड़े तीसमारखां हो रहे थे। फजलू ने कहा: "पापा, अब कुछ दिखलाइए भी, बातचीत बहुत हो गई।" मुल्ला नसरुद्दीन ने फौरन अपनी बंदूक उठाई, भरी, और तभी एक बगुला झील के ऊपर उड़ा। मुल्ला नसरुद्दीन ने बंदूक चलाई। बगुले को न लगनी थी न लगी। फजलू इसके पहले कि कुछ बोले, मुल्ला थोड़ी देर तो उड़ते हुए बगुले को देखता रहा और बोला: "देख, बेटा देख, चमत्कार देख! अरे, मरा हुआ बगुला उड़ रहा है!"
आदमी मानने को राजी थोड़े ही होता है कि मेरे निशाने नहीं लगे। चमत्कार दिखलाता है कि देखो, मरा हुआ बगुला उड़ रहा है। फजलू ने कहा: "वही तो पापा मैं सोचूं कि बंदूक भी चल गई और बगुला उड़ भी रहा है!" नसरुद्दीन ने कहा: "चमत्कार होते हैं, बेटा! दुनिया में चमत्कार ही चमत्कार हैं! देखने वाले चाहिए, आंख चाहिए, तो चमत्कारों की कोई कमी नहीं है।"
चूकने की संभावना है, अगर तुम गुरु की पूजा में लग जाओ। निशाना भटक गया। गुरु की पूजा का सवाल नहीं है, गुरु के चरणों में अपने अहंकार को चढ़ा देने का सवाल है। फूल चढ़ाने से कुछ भी न होगा और न आरती-वंदन से। अहंकार को रख दो उसके चरणों में, समर्पित कर दो! बस, हो गई पूजा, हो गया वंदन, हो गई अर्चना! अहंकार को उसके चरणों में रखते ही तुम पाओगे कि जो था ही नहीं मगर भीतर छुपा था तो दिखाई नहीं पड़ता था, अब प्रकट हो गया, मुट्ठी खुल गई। उसी क्षण दिखाई पड़ेगा अपना स्वभाव, अपनी आत्मा, अपने चैतन्य की प्रतीति।
इसी को कहा है: "जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता।"
एक अक्षर! अक्षर शब्द बड़ा प्यारा है। जिसका कभी क्षय न हो। जो कभी विनष्ट न हो।
"जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता उसके श्रुत, तप और ज्ञान धीरे-धीरे ऐसे ही क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े का जल।" जिसने गुरु का आदर नहीं किया। आदर का मतलब फिर मत चूक जाना। जिसने गुरु के चरणों में अपना अहंकार नहीं रखा। वही आदर है, और कोई आदर नहीं।

जिसने गुरु का आदर नहीं किया उसके श्रुत--उसने जो सुन रखा है। और तुम्हारा ज्ञान है क्या? श्रुत। जाना तो है नहीं, सुना है।
यह श्रुत शब्द बड़ा प्यारा है, बड़ा सार्थक है। इसलिए हमने शास्त्रों
को श्रुतियां कहा है, स्मृतियां कहा है। सुना है, याददाश्त में रख लिया है। श्रुति यानी सुना, स्मृति यानी याददाश्त में रखा। अभी जाना नहीं है, बोध नहीं है, अनुभव नहीं है, अपनी कोई प्रतीति नहीं है।
जैसे तुमने सुना कि आग जलाती है; यह श्रुत। और तुम्हारा हाथ जला, यह श्रुत नहीं है। किसी ने कहा, आग जलाती है; किसी ने कहा, पानी से प्यास बुझ जाती है। यह किसी ने कहा है। पता नहीं ठीक हो, पता नहीं गलत हो। लेकिन जब तुम स्वयं जान लोगे तब गलत और सही का सवाल नहीं उठेगा, तब प्रमाणों की कोई जरूरत नहीं होगी। ज्ञान स्वतः प्रमाण है। ज्ञान अपना प्रमाण स्वयं है। कोई साक्षी नहीं चाहिए, कोई गवाह नहीं चाहिए। मगर श्रुत के लिए तो गवाहियां चाहिए।
इसलिए शास्त्र को समझाने के लिए पंडित चाहिए, व्याख्याकार चाहिए, पुरोहित चाहिए। और फिर भी कहां समझ में आता है! फिर भी क्या खाक समझ में आता है! सुन लेते हो, याद भी कर लेते हो--और जैसे सुन लेते हो वैसे ही भूल भी जाते हो। मगर गुरु के पास बैठ कर अगर अहंकार उसके चरणों में न रखा तो जल्दी ही तुम पाओगे कि श्रुत किसी काम नहीं पड़ता। गुरु के पास मौका था जान लेने का।
इसलिए जो गुरु के पास केवल सुनने के लिए जाता है वह गलती करता है; व्यर्थ जा रहा है। सुनने का काम तो शास्त्र पढ़ कर घर पर ही हो सकता है। यह तो किसी पंडित-पुरोहित के पास बैठ कर भी हो सकता है। इसके लिए किसी सदगुरु के पास होने की आवश्यकता नहीं है। कबीर को खोजो, नानक को खोजो, फरीद को खोजो, रैदास को खोजो--बेकार, क्या जरूरत! साखियां तो कबीर की लिखी हुई रखी हैं, गुरुग्रंथ तो मौजूद है, गुरु को क्या खोजना, पढ़ लेंगे; भाषा ही समझने की बात है, तो सीख लेंगे।
काश, भाषा की ही बात होती तो दुनिया में सभी ज्ञानी हो गए होते! जो भी सुशिक्षित होता वही बुद्ध हो जाता। लेकिन सुशिक्षित होने से बुद्धत्व का कोई संबंध नहीं है। अशिक्षित भी बुद्ध हो गए हैं। मोहम्मद अशिक्षित थे, जीसस भी अशिक्षित थे, कबीर भी अशिक्षित थे, लेकिन बुद्ध हो गए। और शिक्षितों से सारी दुनिया भरी पड़ी है आज, कितने बुद्ध हैं दुनिया में? शिक्षा और बुद्धत्व का कोई नाता नहीं है। तुम कितना ही जान लो, अगर सुना हुआ ही है जाना हुआ, तो किसी काम न आएगा। तुम जो भी निष्पत्तियां निकालोगे, गलत होंगी।
मैंने सुना एक बहुत बड़ा दार्शनिक झील के तट पर खड़ा था और देख रहा था कि
एक मछुआ मछलियों को पकड़ने के लिए जाल बुन रहा है। बड़ा प्रभावित होकर देख रहा था। दार्शनिक ही था। मंत्रमुग्ध होकर देख रहा था। आखिर मछुए ने पूछा कि आप बड़ी देर से देख रहे हैं और आप आनंदित भी मालूम होते हैं देखकर, आखिर आपके इतने प्रसन्न होने का, इतने जिज्ञासा से भरे होने का क्या कारण है? दार्शनिक ने कहा, मैं यह देख रहा हूं कि तू किस गजब से छोटे-छोटे छेदों को इकट्ठा कर रहा है। आज तक मैंने ऐसा कलाकार नहीं देखा। छोटे-छोटे छेद जोड़ता जा रहा है। जाल बना रहा है।
मछुए को खयाल ही नहीं है यह कि वह छोटे छेद जोड़ रहा है! वह तो सोच रहा
है कि वह धागे जोड़ रहा है! यह तो दार्शनिक की खोज हुई: छोटे-छोटे छेदों को जोड़ रहा है। ऐसी ऊंची बातें दार्शनिक ही खोज सकते हैं।
इमेनुअल कांट ने दो बिल्लियां पाल रखी थीं। उनके मारे बहुत परेशान था। क्योंकि जब तक वे लौट न आएं तब तक वह सो नहीं सकता था। किसी मित्र ने कहा कि तुम व्यर्थ परेशान होते हो। एक छेद कर दो दरवाजे में, जब भी उनको आना होगा लौट आएंगी। अब बिल्लियां ही हैं। चूहों की तलाश में निकली हैं रात में। कभी देर हो जाती है, कभी जल्दी हो जाती है। अब कोई चूहों के रेस्ट्रां तो हैं नहीं कि गए और बेयरे को बुलाया और कहा कि ले आ दो चूहे! दो प्लेट चूहे! खोजेंगी बेचारी, कहीं पाएंगी--कभी देर से पाएंगी, कभी जल्दी, तुम नाहक रात आधी-आधी खराब करते हो! फिर गुस्सा होते हो, भनभनाते हो। फिजूल

की बात, छोटा-सा काम, इतने बड़े बुद्धिमान आदमी, एक छेद कर दो, बिल्लियां जब आएंगी आ जाएंगी और सो जाएंगी। बात जंची इमेनुअल कांट को।
दूसरे दिन मित्र ने देखा, हैरान हो गया। उसने दो छेद किए हुए थे। मित्र ने पूछा, दो किसलिए छेद किए हैं? इमेनुअल कांट ने कहा, दो बिल्लियां हैं न! एक छोटी, एक बड़ी। एक छेद में से दोनों कैसे घुसेंगी?
जैसे कि एक ही साथ घुसना है! अरे, इतनी अकल तो बिल्लियों में भी है कि
एक साथ नहीं घुसेंगी! मगर दार्शनिकों की अकल का क्या कहो! उसने गणित के हिसाब से दो छेद कर दिए। एक बड़ी बिल्ली के लिए बड़ा छेद, एक छोटी बिल्ली के लिए छोटा छेद। इतना ही नहीं, कोई भूल-चूक न हो जाए, उसने छोटे छेद पर लिख दिया: छोटी बिल्ली के लिए, बड़े छेद पर लिख दिया: बड़ी बिल्ली के लिए। अरे, बड़ी बिल्ली कहीं छोटे छेद में घुस जाए तो फंस जाए। और छोटी बिल्ली अगर बड़े छेद से निकले ज्यादा निकल जाए!
दार्शनिक बड़ी चिंताएं कर लेते हैं, बड़ी तार्किक चिंताएं कर लेते हैं। श्रुत ज्ञान ज्ञान नहीं है, ज्ञान का धोखा है। इसलिए सूत्र ठीक कहता
है कि अगर गुरु के पास रह कर अहंकार को समर्पित न किया, तो तुम जान न पाओगे। गुरु के पास सुनते ही मत रहना, क्योंकि सुनने का काम तो दो कौड़ी के पंडित करवा देते हैं। सत्यनारायण की कथा कोई भी करवा देता है। न उसमें सत्य होता है, न नारायण होते हैं, कथा पूरी हो जाती है। न कहने वाले को पता है, न सुनने वाले को पता है। कहने वाले ने कह दिया, सुनने वाले ने सुन लिया; न कहने वाले ने कहा, न सुनने वाले ने सुना; बात जहां थी वहीं की वहीं रही। कितनी दफा सत्यनारायण की कथा हो चुकी, तुम्हें पता चला कि सत्य क्या है? कि नारायण क्या हैं? अरे, उससे भी तो पूछो जो करवाता है रोज, मुहल्ले में इधर से उधर करवाता फिरता है, दिन में पांच-सात जगह करवा देता है सत्यनारायण की कथा, उसको सत्य का कुछ पता है? किसी को प्रयोजन ही नहीं है! किसी को लेना-देना भी नहीं है।
संत भीखण हुए। राजस्थान के एक छोटे-से गांव में बोल रहे थे। सुनने वाले सुन रहे थे--जैसे सुनने वाले सुनते हैं! धार्मिक सभाओं में कोई सुनने के लिए तो जाता नहीं। धार्मिक सभाओं में तो लोग सोने के लिए जाते हैं। चिकित्सक तक जिनको नींद नहीं आती है, अनिद्रा की बीमारी है, उनसे कहते हैं: भैया, सत्संग करो! सत्संग में जिसको नींद न आ जाए, वह बड़ा गजब का आदमी है। जिसको रात भर भी नींद नहीं आती, उसको जैसे ही ब्रह्मचर्चा शुरू हुई कि नींद आनी शुरू हो जाती है।
और फिर दिन भर के थके-मांदे लोग, सांझ को भीखण का भाषण सुनने आए थे।
गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था, आसोजी, वह स्वभावतः धनपति था गांव का तो सबसे आगे बैठा था, भीखण के बिलकुल सामने बैठा था। मारवाड़ी था। बड़ी तोंद। और जब नींद में आए तो ऐसा घुर्राए और पूरा पेट हिले कि भीखण जी का बोलना मुश्किल कर दिया उसने।
आखिर भीखण ने कहा, आसोजी, सोते हो? जल्दी से उसने आंख खोली, उसने कहा, नहीं-नहीं महाराज, कभी नहीं! अरे, आप प्रवचन करें और मैं सोऊं! भीखण भाखण करें और मैं सोऊं! कभी नहीं, कभी नहीं! आंख बंद करके सुनता हूं, महाराज। भीखण ने फिर बोलना शुरू किया। वह कोई आंख बंद करना ही तो था नहीं। क्योंकि आंख बंद करने से कोई घुर्राता नहीं। मगर फिर आसोजी घुर्राने लगे। भीखण ने फिर कहा, आसोजी, सोते हो? अब जरा आसोजी को गुस्सा आ गया कि गांव भर सुन रहा है, बार-बार मेरा ही नाम लेकर कहते हैं सोते हो, सोते हो! उसने कहा, आपको हुआ क्या है? आपको व्याख्यान देना है कि बस मुझ पर ही नजर रखनी है? अरे, पूरा गांव देख रहा है, पूरा गांव सुनने आया है, गांव भर में चर्चा होगी कि आसोजी सो रहे थे। क्यों ऐसी बात कहते हैं आप? मैंने आपका क्या बिगाड़ा? अरे, मैं तो ध्यानपूर्वक सुन रहा हूं।
भीखण ने फिर बोलना शुरू कर दिया, आसोजी फिर सो गए, फिर घुर्राए। भीखण
ने कहा, आसोजी, जीते हो? भीखण ने कहा, नहीं-नहीं, महाराज! फिर आप वही बातें करने लगे! बिलकुल नहीं। भीखण ने कहा, अब आप फंस गए। क्योंकि मैंने वह बात कही ही नहीं। वे वही सुन रहे हैं कि सोते हो। अब नींद में ही हैं वे, किसी तरह पुरानी बात याद रखी--श्रुत था--याद रहा कि दो दफे पूछ चुके हैं: सोते हो, तो इस बार भी वही पूछा होगा। अबकी बार सवाल बदल दिया था भीखण ने। खूब

तरकीब की थी। कहा, आसोजी, जीते हो? मगर आसोजी नींद में थे, इनकार कर गए। कि नहीं-नहीं, महाराज, कभी नहीं! कौन कहता है? आप कैसी बातें करते हो? आप क्यों बार-बार वही बात करते हो? भीखण ने कहा, अब न चलेगा। अब मैंने वही बात नहीं की। अब मैंने कुछ और बात की। लेकिन वहां सुनने वाला कौन है?
गुरु के पास भी जो सुनने के लिए इकट्ठा हुआ है, वह गलती कर रहा है। यह काम तो दो कौड?ी के आदमी कर देंगे। गुरु के पास तो अहंकार विसर्जित करो, तो दृष्टि खुले। सत्य कानों से नहीं आता--याद रखना--आंखों से आता है। सुना सुनी की है नहीं, लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात। कान से नहीं आता सत्य। नहीं तो ग्रामोफोन रिकार्डों से आ जाए। आंख से आता है, देखने से आता है--दृष्टि, दर्शन।
जो व्यक्ति गुरु के पास भी सुन रहा है, या पुराने सुने हुए को लेकर बैठा है, उसका श्रुत क्षीण हो जाएगा। सुने हुए का कोई मूल्य ही नहीं है। वह तो अब खोया तब खोया। उसका तप भी व्यर्थ हो जाएगा। जिसने सुन-सुन कर तप किया है उसका तप ही गलत होता है।
तुम भी उपवास करते हो, क्योंकि तुमने सुना कि महावीर ने उपवास किया और उपवास करके परम सत्य को पा लिया। बात उलटी है। महावीर ने परम सत्य पाया और इसलिए कभी-कभी उपवास हुआ--किया नहीं। करने और होने में फर्क है। महावीर कभी-कभी ध्यान में ऐसे मग्न हो जाते थे कि दिन बीत जाता और भूख की याद ही न आती--शरीर की ही याद न आती तो भूख की कैसे याद आए? शरीर की ही बात बिसर जाती तो स्वभावतः भूख की बात भी बिसर जाती। यही उपवास शब्द का अर्थ है। उपवास का अर्थ है: अपने निकट होना; आत्मा के निकट होना। इतने निकट होना कि शरीर बहुत दूर, बहुत दूर रह जाए। उसकी ध्वनि भी सुनाई न पड़े। इतना पीछे छूट जाए कि दिखाई भी न पड़े कि अब है या नहीं।
उपवास शब्द बड़ा प्यारा है। अब तो राजनेता भी जो करते हैं उसको उपवास कहते हैं लोग। अनशन कहो। भूखे मर रहे हैं, यह कहो। लेकिन उपवास मत कहो। उपवास बड़ा ऊंचा शब्द है। वह तो सिर्फ महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों के लिए सार्थक है। मोरारजी देसाई जो करते हैं, वह अनशन है, उपवास नहीं। उपवास के लिए तो कुछ और ही प्रक्रिया चाहिए। उपवास तो ध्यान का फल है।
जब कोई ध्यान में डुबकी लगाता है गहरी और आत्मा में ठहर जाता है, तो शरीर भूल जाता है। दिनों बीत सकते हैं और शरीर की स्मृति न आए। तो उतनी देर भीतर वास हुआ, इसलिए भोजन की जरूरत न पड़ी--याद ही न पड़ी तो जरूरत कैसे पड़ती! शरीर से इतने दूर निकल गए कि शरीर खबर भी न दे पाया कि मैं भूखा हूं, कि मैं प्यासा हूं। यह उपवास।
लेकिन जिसने किसी तरह भूख को सम्हाल रखा है, किसी तरह अनशन किए बैठा है, नहीं खाएंगे, लेकिन मन में खाने ही खाने के विचार चल रहे हैं, भोजन ही भोजन के विचार चल रहे हैं--चलेंगे ही, क्योंकि बैठे तो तुम शरीर के पास हो और भ्रांति यह पैदा कर रहे हो कि उपवास है। सच तो यह है कि जब तुम अनशन करोगे तब तुम शरीर के पास ज्यादा रहोगे। रोज से भी ज्यादा रहोगे।
इस तरह का तप तो क्षीण हो जाएगा। ये कोई टिकने वाली चीज नहीं; ये तो पानी पर खींची गई लकीरें हैं। तुम खींच भी न पाओगे और मिट जाएंगी। और जिसको तुम ज्ञान कहते हो, वह क्या है? सिर्फ सूचना मात्र। ये सूचनाएं भी काम आने वाली नहीं हैं। समय पर काम नहीं आएंगी।
लोग इस देश में आत्मा की अमरता को मानते हैं। लेकिन घर में कोई मर जाए, फिर देखो! फिर भूल गए सब ज्ञान! बिसर गया सब ज्ञान! बैठे रो रहे हैं!
मेरे गांव में एक वैद्यराज थे। उनके घर ज्ञानी हमेशा ठहरते रहते थे। महात्माओं का अड्डा था। जब उनकी पहली पत्नी चल बसी और मैंने उनको रोते देखा तो मैंने कहा, पंडित जी, आप क्या कर रहे हैं? आप और रो रहे हैं! यह आपको शोभा देता है! अरे, आपको मैंने हजारों दफे सुना है यह कहते कि आत्मा अमर है! तो पत्नी मरी थोड़े ही! मर सकती ही नहीं। नैनम् छिंदन्ति शस्त्राणि। अरे, शस्त्र छेद नहीं सकते। नैनम् दहति पावकः। आपको ही मैंने सुना है गीता पढ़ते कि अग्नि जला नहीं सकती, शस्त्र छेद नहीं सकते। तो पत्नी मरी थोड़े ही है, अमर हो गई। और कोई साधारण पत्नी थी! आपकी पत्नी थी! ज्ञानी की पत्नी थी! और ज्ञानी का इतना सत्संग चला और ऐसे महात्मा जमे रहे यहां--और आपसे ज्यादा सेवा तो महात्माओं की उसने की!

वे मुझसे बोले कि अभी यह बकवास न करो। मैंने कहा, बकवास! यह तो तत्वज्ञान है, पंडित जी! अरे, उन्होंने कहा, तुम मेरा पीछा छोड़ो। तुम्हें भी ऐसे उलटे अवसर सूझते हैं तत्वज्ञान! इधर मेरी पत्नी मर गई, तुम्हें तत्वज्ञान सूझा है! मैंने उनसे कहा, मैंने तो सोचा कि यही ठीक अवसर है तत्वज्ञान छेड़ने का, कि साफ-साफ हो जाएगा कि तत्वज्ञान है या नहीं! मैंने उनसे कहा, वैसे आपकी मर्जी, लेकिन अब खयाल रखना, अब कभी यह अगर मैंने सुना आपको कि आत्मा अमर है तो फिर मुझसे बुरा कोई नहीं! उन्होंने कहा, तुम्हारा मतलब? मैंने कहा कि मैं मतलब बताऊंगा। अब कभी इस घर में ठहरने नहीं दूंगा किसी महात्मा को।
फिर इसके बाद जब मैं उनको गीता पढ़ते देखता था तो मैं फौरन पहुंच जाता
था कि बंद करो! वह मुझे देख कर गीता बंद कर देते थे, कहते: तुम जाओ। तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो? मेरी पत्नी मर गई तब तुम तत्वज्ञान बताने आए और अब मैं शांति से तत्वज्ञान पढ़ रहा हूं तो तुम कहते हो कि गीता बंद करो! मैंने कहा कि जब अवसर हो तभी परीक्षण है। उसी वक्त मौका था कि आपको मैं हंसता-मुस्कुराता देखता, आनंदित देखता, तो जानता कि ज्ञान ज्ञान है। यह केवल सूचना थी। और वही सूचना फिर इकट्ठी कर रहे हो। फिर समय गंवा रहे हो। उन्हीं बुद्धुओं के साथ फिर समय गंवा रहे हो। जिंदगी भी पूरी उन्हीं के साथ गई, तुम्हारी पत्नी उन्हीं की सेवा करते-करते मरी और तुम भी उन्हीं की सेवा करते-करते मरोगे। उनको भी पता नहीं है कि आत्मा अमर है या नहीं। उनकी हालत देख कर मैं कह सकता हूं उनको पता नहीं कि आत्मा अमर है या नहीं। ज्ञान, सूचना ही अगर है तो व्यर्थ का कूड़ा-करकट है, बहा दो, जला दो, होली में डाल दो। लेकिन एक और भी ज्ञान है, जो अहंकार को छोड़ने से उपलब्ध होता है। एक और भी तप है, जो अहंकार को छोड़ने से उपलब्ध होता है। एक और भी बोध है, जो किसी बुद्ध के चरणों में बैठने से उपलब्ध होता है।
यह चरणों में बैठना ही आदर है। आदर का मतलब कुछ यूं नहीं होता कि तुम औपचारिक रूप से चरण छुओ। इस देश में तो चरण छूना एक औपचारिकता है--कोई किसी के चरण छू रहा है। जो देखो उसी के चरण छू रहा है। चरण छूने से जैसे कुछ हो जाएगा! चरण छूने से कुछ भी न होगा। भावपूर्वक अहंकार का विसर्जन। तब यह सूत्र तुम्हें गहरा मालूम पड़ेगा--
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
जिसके चरणों में तुमने अपने अहंकार को चढ़ा दिया, वही तुम्हारा गुरु है। गुरु शब्द भी अच्छा है। गुरु का अर्थ होता है: जिससे अंधकार मिट जाए। गुरु शब्द का अर्थ होता है: जो अहंकार को मिटा दे; जो ज्योति की भांति है। और निश्चित ही ज्योति ही गति है। क्योंकि छोटी-सी ज्योति भी तुम्हें मिल जाए तो तुम्हारी सूर्य की तरफ यात्रा शुरू हो गई। एक किरण पकड़ ली तो सूरज तक पहुंच जाएंगे; फिर कोई संदेह नहीं। एक नदी की धार में तुम उतर गए तो सागर तक पहुंच जाओगे। पहुंच ही जाओगे!
एकाक्षर प्रदातमम् नाभिनन्दति।
अभागा है वह व्यक्ति जो अक्षर देने वाले को भी अभिनंदन न करता हो, अहंकार जिसके चरणों में न रखता हो, जिसके सामने झुकता न हो।
तस्य श्रुत तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुयत्।।
उसका सब कुछ ऐसे क्षीण हो जाता है जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल। बह जाएगा। जल ही नहीं बह जाएगा धीरे-धीरे, घड़ा भी बह जाएगा। जल भी जाएगा, घड़ा भी जाएगा। और जिसने अहंकार को चढ़ाया, वह पक्का घड़ा है। वह अग्नि से गुजरा, पका। अब उसमें जो भी भरा जाएगा, भरा रहेगा। पक्का घड़ा हो जाए व्यक्ति तो अमृत से भर सकता है। लेकिन उस पकान के लिए, उस परम अवसर की तलाश में तुम्हें कुछ गंवाना पड़ेगा। हालांकि जब गंवाओगे तब लगेगा गंवा रहे हो, गंवाने के बाद तो तुम हैरान होओगे--तुमने कुछ भी गंवाया नहीं, कमाया ही कमाया।
इस दुनिया का गणित तुम ठीक से समझ लो। इस दुनिया में कमाओगे तो कमाओगे, गंवाओगे तो गंवाओगे। लेकिन इसके पार जो दुनिया है, वहां अगर कमाओगे तो गंवाओगे, अगर गंवाओगे तो कमाओगे।
जीसस ने कहा है: धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े हैं, क्योंकि मेरे प्रभु का राज्य उन्हीं का है। धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े हैं। वे, जिन्होंने अपने

अहंकार को छोड़ दिया। जो इतने विनम्र हो गए हैं कि अब अंतिम खड़े हो सकते हैं। मेरे प्रभु का राज्य उन्हीं का है।

मेरा स्वर्णिम भारत-29

इक साधे सब सधै
(Note: from Jyun Tha Tyun Thaharaya (ज्यूं था त्यूं ठहराया) #8)

पहला प्रश्न: भगवान, योगवासिष्ठ में यह श्लोक है:
न यथा यतने नित्यं यदभावयति यन्मयः।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति नान्यथा।।
मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय हो कर जैसी भावना करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है; अन्यथा नहीं।
भगवान, क्या ऐसा ही है?

सहजानंद!
ऐसा जरा भी नहीं है। यह सूत्र आत्मसम्मोहन का सूत्र है--आत्मजागरण का नहीं। कुछ होना नहीं है। जो तुम हो उसे आविष्कृत करना है। कोहिनूर को कोहिनूर नहीं होना है, सिर्फ उघड़ना है। कोहिनूर तो है। जौहरी की सारी चेष्टा कोहिनूर को निखारने की है--बनाने की नहीं। कोहिनूर पर परतें जम गई होंगी--मिट्टी की उन्हें धोना है। कोहिनूर को चमक देनी है, पहलू देने हैं। जब कोहिनूर पाया गया था, तो आज जितना वजन है, उससे तीन गुना ज्यादा था। फिर उस पर पहलू देने में, काटने-छांटने में, जो व्यर्थ था उसे अलग करने में, और जो सार्थक था, उसे बचाने में, केवल एक तिहाई बचा है। लेकिन जब पाया गया था, उसका जो मूल्य था, उससे आज करोड़ों गुना ज्यादा मूल्य है। वजन तो कम हुआ--मूल्य बढ़ा।
तुम जो हो, उसका आविष्कार करना है। और यह सूत्र कुछ और ही बात कह रहा है। यह सूत्र आत्मसम्मोहन का, आटोहिप्नोसिस का सूत्र है। यह सूत्र कह रहा है, मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय हो कर जैसी भावना करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है अन्यथा नहीं।
तुम अगर भाव करोगे कुछ होने का, सतत करोगे भाव, तो उस भाव से तुम आच्छादित हो जाओगे। आच्छादन इतना महान हो सकता है कि भ्रांति होने लगे कि मैं यही हो गया।
एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया था। तीस वर्ष की सतत साधना! फकीर के शिष्यों ने मुझे कहा कि उन्हें प्रत्येक जगह ईश्वर दिखाई पड़ता है। वृक्षों में, पत्थरों में, चट्टानों में--सब तरफ ईश्वर का ही दर्शन होता है।
मैंने कहा, उन्हें ले आओ। तीन दिन मेरे पास छोड़ दो।
जब वे मेरे पास तीन दिन रहे, तो मैंने उनसे कहा, क्या मैं पूछूं कि यह
जो ईश्वर तुम्हें दिखाई पड़ता है--दिखाई पड़ता है या तुमने इसकी भावना की है?
उन्होंने कहा, इसमें क्या भेद है?
मैंने कहा, भेद कुछ बहुत बड़ा है। सूरज उगता है, तो दिखाई पड़ता है-- तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि यह सूरज है! चांद निकलता है, तो तुम्हें दिखाई पड़ता है। तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि यह चांद है। सौंदर्य हो, तो दिखाई पड़ता है; तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि सौंदर्य है। भावना तो तब करनी पड़ती है, जब दिखाई न पड़ता हो।
भावना से भ्रांति होती है। सतत कोई भावना करे और तीस साल निरंतर भावना की हो, तो स्वभावतः भावना आच्छादित हो जाएगी।
तो मैंने उनसे कहा, एक काम करो, भेद साफ हो जाएगा। तीन दिन भावना करना बंद कर दो।
उनको बात समझ में पड़ी। तीन दिन उन्होंने भावना नहीं की। चौथे दिन मुझ
पर बहुत नाराज हो गए। उन्होंने कहा, मेरी तीस वर्ष की साधना नष्ट कर दी। मैंने कहा, जो तीस वर्ष में साधा हो, अगर तीन दिन में नष्ट होता हो, उसका मूल्य क्या है? तो तुम कहीं पहुंचे नहीं। कल्पना में जी रहे थे। एक स्वप्न निर्मित कर लिया था अपने चारों तरफ। अब तुम्हें वृक्ष दिखाई पड़ते

हैं--परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। क्या हुआ उस परमात्मा का? अगर दिखाई पड़ गया था, तो तीन दिन में खो गया!
मैंने कहा, कुछ सीखो। नाराज न होओ। सीखने का यह है कि तीस साल व्यर्थ गए; नाहक तुमने गंवाए। अभी भी देर नहीं हुई। अभी भी जिंदगी शेष है। भावना करना बंद करो।
आंखों को निखारो--भावना से लादो मत। भावना के चश्मे मत पहनो। भावना चश्मे दे सकती है। कोई लाल रंग का चश्मा पहन ले--सारा जगत लाल दिखाई पड़ने लगा! लाल हुआ नहीं; न लाल है, मगर भावना का चश्मा चढ़ गया! उतारो चश्मा और जगत जैसा है, वैसा प्रकट हो जाएगा। सब लाली खो जाएगी।
यह सूत्र व्यक्ति को झूठ करने का सूत्र है। मगर इसी सूत्र पर दुनिया
के सारे धर्म आरोपित हैं। यह योगवासिष्ट की ही भ्रांति नहीं है; यह भ्रांति सारे धर्मों के आधार में पड़ी हुई है।
तुम जाते हो मंदिर में। तुम्हें दिखाई तो पत्थर की मूर्ति पड़ती है, लेकिन भावना करते हो कि राम हैं, कृष्ण हैं, बुद्ध हैं, महावीर हैं। अपनी भावना के सामने झुकते हो तुम। तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है।
जैन के मंदिर में बौद्ध को ले जाओ, उसे झुकने का कोई मन नहीं होता। उसे महावीर बिलकुल दिखाई नहीं पड़ते; पत्थर दिखाई पड़ता है। मुसलमान को ले जाओ। तुम जब झुकते हो, तो वह हंसता है कि कैसी मूढ़ता है! पत्थर के बुत के सामने-- यह कैसी बुत-परस्ती! यह कैसा अंधापन! पत्थर के सामने झुक रहे हो! मगर तुम पत्थर के सामने नहीं झुक रहे हो। तुमने तो अपनी भावना आरोपित कर रखी है। तुम्हारे लिए तो तीर्थंकर हैं, महावीर हैं!
जैन को मसजिद में ले जाओ, उसे कोई अहोभाव अनुभव नहीं होता। लेकिन मुसलमान गदगद हो जाता है। यह सत्य किस बात की ओर इंगित करता है?
गणेश जी को देख कर जो हिंदू नहीं, वह हंसेगा। जो हिंदू है, वह एकदम समादर से भर जाएगा। हनुमान जी को देख कर जो हिंदू नहीं है, वह सोचेगा, यह भी क्या पागलपन है! एक बंदर की पूजा हो रही है! और आदमी बंदर की पूजा कर रहे हैं! शर्म नहीं, संकोच नहीं, लाज नहीं! लेकिन जो हिंदू है, उसने एक भावना आरोपित की है। उसने एक चश्मा चढ़ा रखा है। तुम दुनिया के विभिन्न धर्मों पर विचार करो, तुम्हें बात समझ में आ जाएगी।
जीसस को सूली हुई। एक जैन मुनि ने मुझसे कहा कि आप महावीर के साथ जीसस
का नाम न लें, क्योंकि कहां महावीर और कहां जीसस! क्या तुलना! जीसस को सूली लगी! जैन हिसाब से तीर्थंकर को तो कांटा भी नहीं गड़ता है; सूली लगना तो बहुत दूर। जैन हिसाब से तीर्थंकर जब चलते हैं रास्ते पर, तो सीधे जो कांटे पड़े होते हैं, वे तत्क्षण उलटे हो जाते हैं कि कहीं तीर्थंकर के पैर में गड़ न जाएं। क्योंकि कोई पाप तो बचा नहीं, तो कांटा गड़ कैसे सकता है? पाप के कारण दुख होता है। पाप के कारण कांटा गड़ता है। अकारण नहीं कुछ होता। यही तो पूरा कर्म का सिद्धांत है।
और जीसस को सूली लगी, तो जरूर पिछले जन्मों में कोई महापाप किया होगा अन्यथा सूली कैसे लगे!
जैन को अड़चन होती है कि जीसस को महावीर के साथ रखो। इस आदमी को सूली लगी, जाहिर है, कि अकारण सूली नहीं लग सकती, तो जरूर कोई पिछला महापाप इसके पीछे होना चाहिए।
और ईसाई उसी सूली को अपने गले में लटकाए हुए है। उसी सूली के सामने झुकता है। उसके लिए सूली से ज्यादा पवित्र और कुछ भी नहीं है। सूली उसके लिए प्रतीक है जीसस का।
अगर तुम ईसाई से पूछो, महावीर के संबंध में, तो वह कहेगा कि जीसस के साथ तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि जीसस ने तो मनुष्य जाति के हित के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। महावीर ने क्या किया? महावीर तो निपट स्वार्थी हैं। कोई अस्पताल खोला? कोई गरीबों के लिए भोजन जुटाया? बीमारों की सेवा की? कोढ़ियों के पैर दबाए? अंधों को आंखें दीं? लंगड़ों को पैर दिए? क्या किया?
तुम देखते ही हो कि मदर टेरेसा को नोबल प्राइज मिली। महावीर अगर जिंदा हो, तो नोबल प्राइज मिल सकती है? किस कारण? न तो अनाथालय खोलते हैं। न विधवा आश्रम खोलते हैं! निपट स्वार्थी हैं! अपने ध्यान और अपने आनंद में

लगे हैं! इस स्वार्थी व्यक्ति की पूजा करने का प्रयोजन क्या है? इसने त्याग क्या किया है? और अगर धन-दौलत भी छोड़ी है, तो स्वार्थ के लिए छोड़ी है, क्योंकि धन-दौलत के कारण आत्मानंद में बाधा पड़ती है, ब्रह्मानंद में बाधा पड़ती है। मगर आनंद तो अपना है। इसने किसी दूसरे की चिंता की है इस व्यक्ति ने?
तो महावीर और बुद्ध ईसाइयों के लिए आदरणीय नहीं मालूम होते।
कृष्ण को हिंदू पूर्णावतार कहते हैं और जैन उनको नर्क में डाल देते हैं! क्योंकि कृष्ण ने ही युद्ध करवा दिया; महाहिंसा करवा दी। अर्जुन तो बिलकुल मुनि होने के करीब ही था! वह तो सब छोड़ कर भाग रहा था, त्याग रहा था। कृष्ण उसे घसीट लाए। एक व्यक्ति को जो जैन होने के करीब था--भ्रष्ट कर दिया! कृष्ण को दंड देना जरूरी है।
अब तुम जरा देखो! हिंदू कहते हैं पूर्णावतार। और उनका कहना, उनके चश्मे की बात है। पूर्णावतार इसलिए कि कृष्ण में जीवन की समग्रता प्रकट हुई है। राम को भी पूर्णावतार नहीं कहते हिंदू। क्योंकि राम की मर्यादा है। मर्यादा यानी सीमा। कृष्ण अमर्याद हैं। उनकी कोई सीमा नहीं है। महावीर त्यागी-व्रती, मगर इनका त्याग-व्रत संसार से भयभीत है। ये संसार को छोड़ कर त्याग को उपलब्ध हुए हैं, ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। कृष्ण तो संसार में रह कर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। यह असली कसौटी है। आग में बैठ रहे और परम शांति को अनुभव किया।
आग से भाग गए! भगोड़े हो! जो कृष्ण को मानने वाला है, वह महावीर और बुद्ध
को भगोड़ा कहेगा। जिंदगी में जूझो; जिंदगी चुनौती है। इस चुनौती से भागते हो--अवसर गंवाते हो। यह कायरता है। यह पीठ दिखा देना है।
कृष्ण ने जिंदगी से पीठ नहीं दिखाई। इसीलिए अर्जुन को भी रोका कि क्या भगता है! क्या कायरपन की बातें करता है! क्या नपुंसकता की बातें करता है! क्या तू क्लीव हो गया! उठा गांडीव। छोड़ यह अहंकार--कि मेरे द्वारा हिंसा हो रही है। अपने को बीच से हटा ले; परमात्मा का माध्यम भर हो जा। अपने अहंकार को बीच में न लगा।
तो हिंदू के लिए कृष्ण पूर्णावतार हैं। उसका अपना चश्मा है। जैन के लिए कृष्ण नर्क में डालने योग्य हैं। अवतार की तो बात ही छोड़ो! आदमियों से भी गए-बीते हैं! सभी आदमी भी नर्क में नहीं जाते। महापापी ही नर्क में जाते हैं। कृष्ण ने महापाप करवा दिया। क्योंकि जैन के हिसाब के लिए तो चींटी भी मारना पाप है। और इस व्यक्ति ने तो कोई एक अरब, सवा अरब आदमियों की हत्या करवा दी! इसी के कारण हत्या हुई। तो इतनी बड़ी महाहिंसा का कौन जिम्मेवार होगा? अपने-अपे चश्मे हैं।
और मैं कहता हूं: सत्य उसको दिखाई पड़ता है, जो सारे चश्मे उतार कर रख देता है। जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है। ये तो सब भावना की बात है। तुम अपनी भावना को आरोपित कर लेते हो। तो जो तुमने आरोपित कर लिया है, जरूर दिखाई पड़ने लगता है। मगर दिखाई पड़ता है वैसा ही, जैसा सपना दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता है वैसा ही, जैसे शराब के नशे में कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगता है।
मुल्ला नसरुद्दीन रोज शराबघर जाता। चकित थे लोग कि हमेशा जब भी शराब पीने बैठता, तो अपनी जेब से एक मेंढक निकाल कर टेबिल पर रख लेता! उसने मेंढक पाला हुआ था। कई बार लोगों ने पूछा कि इसका राज क्या है?
पीता रहता शराब। पीता रहता। फिर एकदम से शराब पीना बंद कर देता। मेंढक खीसे में रखता। घर चला जाता।
एक दिन शराब की दुकान के मालिक ने कहा कि आज मेरी तरफ से पीयो। मगर यह राज अब बता दो। अब हमारी उत्सुकता बहुत बढ़ती जा रही है। माजरा क्या है? यह मेंढक को बार-बार लाते हो। इसको बिठा लेते हो!
मुल्ला ने कहा, मामला कुछ भी नहीं है। राज छोटा-सा है। यह गणित है। जब
यह मेंढक मुझे दो दिखाई पड़ने लगता है, तब मैं समझ जाता हूं कि बस, अब रुक जाना चाहिए। अब खतरे की सीमा आ गई! जल्दी से इसको--दोनों को उठा कर खीसे में रखता हूं और अपने घर की तरफ चला जाता हूं, क्योंकि अब जल्दी घर पहुंच जाना चाहिए, नहीं तो कहीं रास्ते में गिरूंगा। जब तक एक दिखाई पड़ता रहता है, तब तक पीता हूं। जब दो दिखाई पड़ता है, तो बस!

मुल्ला अपने बेटे को भी शराब पीने के ढंग सिखा रहा था। बाप वही सिखाए,
जो जाने। और तो क्या सिखाए! शराबी शराब पीना सिखाए। हिंदू हिंदू बनाए। जैन जैन बनाए। बौद्ध बौद्ध बनाए। जो जिसकी भावना! तो अपने बेटे को लेकर शराबघर गया। कहा कि एक बात हमेशा खयाल रखना। देखो--शराब पीना शुरू करो। और कहा कि वे जो उस टेबिल पर आदमी बैठे हैं दो, जब चार दिखाई पड़ने लगे तब रुक जाना! उसके बेटे ने कहा कि पिताजी, वहां सिर्फ एक ही आदमी बैठा हुआ है! आपको अभी दो दिखाई पड़ रहे हैं!
यह मुल्ला तो पीए ही हुए है। इसको तो दो दिखाई पड़ ही रहे हैं! अब यह कह रहा है, जब चार दिखाई पड़ने लगें, तो बस, पीना बंद कर देना! यह तो नशे में है ही।
नशे में जो दिखाई पड़ता है, वह सत्य नहीं है। हां, सतत यत्न से तुम नशा पैदा कर सकते हो। सतत भावना से तुम अपने भीतर की रासायनिक प्रक्रिया बदल सकते हो। ये मनोविज्ञान के सीधे-सादे सूत्र हैं।
अगर बार-बार तुम सोचते ही रहो, सोचते ही रहो, तो स्वभावतः उस सोचने का परिणाम यह होगा कि तुम्हारे भीतर भावना की एक पर्त बनती जाएगी।
एक बहुत बड़ा सम्मोहनविद फ्रांस में हुआ। वह अपने मरीजों को...उसने बहुत मरीजों को सहायता पहुंचायी। वह उनको कहता, बस, एक ही बात सोचते रहो कि रोज, दिन-ब-दिन ठीक हो रहा हूं। सुबह से बस यही सोचो, पहली बात यही सोचो उठते वक्त। और रात सोते समय तक आखिरी बात यही सोचते रहो कि मैं ठीक हो रहा हूं। दिन-ब-दिन ठीक हो रहा हूं।
तीन महीने बाद मरीज आया। उस चिकित्सक ने पूछा कि कुछ लाभ हुआ? उसने कहा, लाभ तो हुआ। दिन तो बिलकुल ठीक हो गया, मगर रात बड़ी मुश्किल है! अब दिन-ब-दिन ठीक हो रहा हूं--सो उसने बेचारे ने दिन का ही हिसाब रखा।
सो दिन तो, उसने कहा कि बिलकुल ठीक गुजर जाते हैं, क्योंकि भावना बिलकुल मजबूत कर ली है। चौबीस घंटे एक ही भावना करता हूं कि दिन बिलकुल ठीक। मगर रात! रात बड़ी बेचैनी आ जाती है। वह जो दिन भर की बीमारी है, वह भी इकट्ठी हो कर रात फूटती है।
सोना खराब हो गया। नींद हराम कर दी है। क्या सूत्र तुमने दिया!
यह मनोवैज्ञानिक ने सोचा ही न था कि दिन में यह सिर्फ दिन को ही गिनेगा--रात छोड़ देगा!
मेरे पास एक दफा एक युवक लाया गया। उसके पिता, उसके मां रो रहे थे। उन्होंने कहा कि हम थक गए! विश्वविद्यालय से इसको हटाना पड़ा। इसको एक भ्रांति हो गई है। एक मक्खी इसके भीतर घुस गई है--यह इसको भ्रांति हो गई है। यह मुंह खोल कर सोता है, तो इसको भ्रांति हो गई कि मुंह खुला था और मक्खी अंदर चली गई। शायद मक्खी चली गई भी हो। वह तो निकल भी गई। एक्स-रे करवा चुके। डाक्टरों से चिकित्सा करवा चुके। मगर यह मानता ही नहीं। यह कहता है, वह भनभना रही है। भीतर चल रही है। बस, ये चौबीस घंटे यही राग लगाए रखता है कि यह इधर पैर में घुस गई अंदर! इधर हाथ में आ गई! यह देखो, इधर आ गई--इधर चली गई। इसको कोई दूसरा काम ही नहीं बचा है; न सोता है, न सोने देता है। न खाता है, न खाने देता है! मक्खी भनभना रही है! सिर में घुस जाती है! सिर से पैर तक चलती रहती है! चिकित्सकों ने कह दिया, भई, यह सब भ्रांति है। हम कुछ भी नहीं कर सकते। किसी ने आपका नाम लिया, तो आपके पास ले आए। मैंने कहा, कोशिश कर के देखें।
मैंने कहा, यह कहता है, तो ठीक ही कहता होगा। जरूर मक्खी घुस गई होगी।
उस युवक की आंखों में एकदम चमक आ गई। उसने कहा, आप पहले आदमी हैं, जो समझे। कोई मानता ही नहीं मेरी। जिसको कहता हूं, वही कहता है--पागल हो गए हो! अरे, पागल हो गया हूं--कैसे पागल हो गया हूं! मुझे बराबर भन-भनाहट सुनाई पड़ती है। चलती है। कभी छाती में घुस जाती है। कभी पैर में चली जाती है। कभी सिर में! मेरी मुसीबत कोई नहीं समझता। अब नहीं आती तुम्हारे एक्स-रे में, तो मैं क्या करूं! मगर मुझे अपना अनुभव हो रहा है। अपना अनुभव मैं कैसे झुठला दूं। लाख समझाओ मुझे!
मेरा सिर खा गए समझा-समझा कर! एक मक्खी मुझे सता रही है। और बाहर के समझाने वाले मुझे सता रहे हैं। ये मां-बाप समझाते हैं। मुहल्ले भर में जो देखो वही समझाता है। डाक्टर समझाते हैं। जहां ले जाते हैं, वहीं लोग

समझाते हैं--भई, छोड़ो यह बात। कहां की मक्खी! अगर घुस भी गई होगी, तो मर-मरा गई होगी। कोई ऐसे भनभना सकती है अंदर! मगर मैं क्या करूं! भनभनाती है। मक्खी मानती नहीं--मैं मान भी लूं, तो क्या होता है!
मैंने कहा, तुम बिलकुल ठीक कहते हो। मक्खी अंदर घुसी है। जब तक निकाली
न जाए, कुछ हो नहीं सकता। तो तुम लेट जाओ।
आंख पर मैंने उसकी पट्टी बांध दी। और मैं भागा पूरे घर में खोजबीन की
कि किसी तरह एक मक्खी पकड़ लूं। बामुश्किल एक मक्खी पकड़ पाया। उसकी पट्टी खुलवाई। उसको मक्खी दिखाई। उसने कहा, अब यह कोई बात हुई! अपने बाप से बोला, देखो, अब यह मक्खी कहां से निकली? कहां गए वे एक्स-रे!
मैंने उनके बाप को, मां को कहा था कि तुम बिलकुल चुप रहना। यह मत कहना
कि मैंने मक्खी पकड़ी। इसके भीतर से निकाली है। उन्होंने कहा, भई हमें माफ करो। हमसे गलती हुई। तुम ठीक थे; हम गलत थे।
उसने कहा, लाइए मक्खी; मुझे दीजिए। मैं अपने उन सबको दिखाने जाऊंगा।
अब बिलकुल सन्नाटा है। न कोई भनभनाहट। अब है ही नहीं मक्खी भीतर, वह खुद ही कहने लगा कि जब मक्खी भीतर है ही नहीं, निकल गई...। यह रही मक्खी, तो बात खतम हो गई।
तब से वह ठीक हो गा। तब से वह स्वस्थ हो गया।
एक भावना गहन हो जाए, तो जरूर उसके परिणाम होने शुरू होंगे। परिणाम सच्चे हो सकते हैं। यह रुग्ण हुआ जा रहा था; दीन हुआ जा रहा था, हीन हुआ जा रहा था। बात झूठी थी, मगर परिणाम तो सच हो रहे थे।
जैसे कि कोई रस्सी में सांप को देख कर भाग खड़ा हो। गिर पड़े। पैर फिसल जाए, तो हड्डी टूट जाए। हड्डी टूटना तो सच है, मगर रस्सी में सांप झूठ था। और यह भी हो सकता है कि हार्ट अटैक हो जाए। भाग खड़ा हो जोर से; वजनी शरीर हो; गिर पड़े। हार्ट अटैक हो जाए। घबड़ा जाए। मर भी सकता है आदमी--उस सांप को देख कर, जो था ही नहीं!
मगर इसको दिखाई पड़ा। इसको दिखाई पड़ा, बस, उतना पर्याप्त है इसके लिए। हालांकि इसने भ्रांति कर ली थी। कल्पना कर ली थी। इसके भीतर से ही आरोपित हुआ था।
यह सूत्र सारे धर्मों को भ्रष्ट किया है। इस तरह के सूत्रों ने ही आदमी को गलत रास्ते पर लगा दिया है। बस, भावना करो!
भावना से तुम जरूर परिणाम लाने शुरू कर दोगे। अगर तुमने भावना की मजबूती से तो परिणाम आने शुरू हो जाएंगे। लेकिन भावना चूंकि झूठ है इसलिए कभी भी खिसल सकती है। तुम जो मकान बना रहे हो, उसकी कोई बुनियाद नहीं है। तुम रेत पर महल खड़ा कर रहे हो, जो गिरेगा--बुरी तरह गिरेगा। और ऐसा गिरेगा कि तुम्हें भी चकनाचूर कर जाएगा।
मैं तुम्हें भावना करने को नहीं कहता सहजानंद! मैं तो कहता हूं: निर्विचार हो जाओ, निर्भाव हो जाओ, निर्विकल्प हो जाओ। सब भावना को जाने दो। सब विचार को जाने दो। शून्य हो जाओ। शून्य ही ध्यान है। निर्विचार ही ध्यान है। और तब जो है, वह दिखाई पड़ेगा। जब तक विचार है, तब तक कुछ का कुछ दिखाई पड़ता रहेगा। विचार विकृत करता है। विचार बीच में आ-आ जाता है। विचार के कारण तुम्हें कुछ का कुछ दिखाई पड़ने लगता है। जो नहीं है, वह दिखाई पड़ने लगता है। जो है, वह नहीं दिखाई पड़ता। तुम खयाल करो, उपवास कर लो दो दिन का, और फिर बाजार में चले जाओ। उपवास के बाद तुमको बाजार में सिर्फ होटलें, रेस्टारेंट, चाय की दुकानें, भजिए की गंध--इसी तरह की चीजें एकदम दिखाई पड़ेंगी, जो कभी नहीं दिखाई पड़ती थीं। क्योंकि दो दिन का उपवास तुम्हारे भीतर की मनोदशा बदल देगा। अब भोजन ही भोजन दिखाई पड़ेगा।
जर्मनी के प्रसिद्ध कवि हाइन ने लिखा है कि मैं एक दफा जंगल में तीन दिन के लिए भटक गया। गया था शिकार को, रास्ता भूल गया। साथियों से छूट गया। तीन दिन भूखा रहा। और जब तीसरे दिन रात पूर्णिमा का चांद निकला, तो मैं चकित हुआ कि जिस चांद में मुझे हमेशा अपनी प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता था, वह बिलकुल दिखाई नहीं पड़ा। मुझे दिखाई पड़ी एक सफेद रोटी आकाश में तैर रही है! चांद में रोटी दिखाई पड़ी! किसी को चांद में रोटी दिखाई पड़ी! भूखे को दिखाई पड़ सकती है। तीन दिन से जो भूखा है, उसको चांद एक सफेद रोटी की तरह तैरता हुआ मालूम होगा। अब कहां की सुंदर स्त्री वगैरह! भूखे आदमी को क्या

करना है सुंदर स्त्री से! इसीलिए तो उपवास का इतना प्रभाव बढ़ गया। उपवास तरकीब है वासना को दबाने की। जब तुम भूखे रहोगे--इक्कीस दिन अगर भूखे रहोगे स्त्री वगैरह सब भूल जाएंगी। स्त्री को देखने के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए। पुरुष को देखने के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए।
यह तरकीब हाथ में लग गई धार्मिकों के, कि अपने को बिलकुल भूखा रखो, अपनी ऊर्जा को क्षीण कर लो--इतनी क्षीण कर लो कि बस, जीने योग्य रह जाए। जरा भी ज्यादा न हो पाए। जरा ज्यादा हुई कि तो फिर खतरा है। फिर वासना उभर सकती है। मगर इससे कोई वासना से मुक्त नहीं होता। यह सिर्फ दमन है। यह भयंकर दमन है।
उपवास तरकीब है दमन की। भूखा आदमी भूल ही जाएगा। भूखे को सिर्फ रोटी दिखाई पड़ती है--और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। भरे पेट आदमी को बहुत कुछ दिखाई पड़ने लगता है--जो भूखे को नहीं दिखाई पड़ता। और जब तुम्हारे जीवन की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ना शुरू होता है--जो जरूरतों के रहते नहीं दिखाई पड़ सकता।
जरूरतें जब तक हैं, तब तक जरूरतें बीच में आती हैं। इस बात को खयाल में
लो सहजानंद! तुम्हें नाम मैंने दिया सहजानंद! सहज का अर्थ होता है, जो है ही, उसको जानना है। उसे भावित नहीं करना है। उसे कल्पित नहीं करना है।
उसके लिए यत्न भी नहीं करना है। सहज है।
धर्म सहज है, क्योंकि धर्म स्वभाव है। है ही हमारे भीतर। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। तुम जरा अपने विचार एक तरफ हटा कर रख दो।
तुमसे कहा गया है--विश्वास करो। मैं तुमसे कहता हूं--विश्वास छोड़ो।
क्योंकि विश्वास एक विचार है। और विचार अगर सतत करोगे, तो वैसा दिखाई पड़ने लगेगा। मगर वैसा होता नहीं। सिर्फ तुम्हें दिखाई पड़ता है। तुम्हारी भ्रांति है। तुम्हारी कल्पना है।
और कल्पना सुंदर हो सकती है, प्यारी हो सकती है, मधुर हो सकती है। तुमने मीठे सपने देखे होंगे। सुस्वादु सपने देखे होंगे। लेकिन सपना सपना है। जागोगे--टूट जाएगा।
सपने देखने के लिए ही लोग जंगलों में भागे; उपवास किया। क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है आज--वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित--कि आदमी को अकेला छोड़ दो, तीन सप्ताह में, उसकी कल्पना बहुत प्रखर हो जाती है। क्यों? क्योंकि जब दूसरों के साथ रहता है, तो दूसरों की मौजूदगी उसे कल्पनाशील नहीं होने देती। उसे बिठा दो हिमालय की एक गुफा में। क्या करेगा बैठा- बैठा! सिर्फ कल्पना करेगा। और तो कुछ करने को बचा नहीं। और यथार्थ से उसके सारे संबंध छूट जाएंगे। यथार्थ से तो भाग आया वह। अब एकांत में बैठा-बैठा कल्पना करता रहेगा। अपने से ही बातें करने लगेगा धीरे-धीरे।
तुमने देखा होगा पागलखानों में जा कर, पागल अपने से ही बातें करते रहते हैं! तुम उनको पागल कहते हो। और उसको तुम धार्मिक कहते हो, जो ईश्वर से बातें कर रहा है! कहां का ईश्वर? कल्पित! लेकिन वह ईश्वर से बातें कर रहा है! खुद ही वह बोलता है, खुद ही जवाब देता है। यह एकांत में संभव है। एकांत हो--और भूखा हो--ये दो चीजें अगर तुम पूरी कर लो, तो तुम्हारी कोई
भी कल्पना सच मालूम होने लगेगी। लेकिन यह अपने को धोखा देने का उपाय है। धर्म नहीं है--आत्मवंचना है।
यह सूत्र इस लिहाज से महत्वपूर्ण है कि इस सूत्र में सारे धर्म का धोखा आ गया है।
ना यथा यतने नित्यं यदभावयति यन्मयः। मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय हो कर जैसी भावना करता है, वैसा ही हो जाता है।
यदृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति नान्यथा।। वैसा ही हो जाता है अन्यथा नहीं।
और मन की भावना का बड़ा प्रभाव है कुछ चीजों पर। शरीर पर तो बहुत प्रभाव है। तुम एक छोटा-सा प्रयोग कर के देखो। अपने हाथों को बांध कर बैठ जाओ। अंगुलियों को अंगुलियों में फंसा लो। दस आदमी बैठ जाओ। अंगुलियों में अंगुलियां फंसा कर और दसों दोहराओ कि अब हम कितना ही उपाय करें, तो भी हम हाथ को खोल न सकेंगे। यह छोटा-सा प्रयोग है, जो कोई भी कभी भी कर सकता है। हम कितनी भी कोशिश करें, हाथ को हम खोल न सकेंगे। लाख कोशिश करें, हाथ

को हम खोल न सकेंगे। दस मिनट तक यह बात दोहराते रहो, दोहराते रहो, दोहराते रहो। और दस मिनट के बाद पूरी ताकत लगा कर हाथ को खोलने की कोशिश करना। और तुम हैरान हो जाओगे। दस में से कम से कम तीन आदमियों के हाथ बंधे रह जाएंगे। वे जितना खींचेंगे, उतनी ही मुश्किल में पड़ जाएंगे। पसीना-पसीना हो जाएंगे, हाथ नहीं खुलेंगे।
तीस प्रतिशत, तेतीस प्रतिशत व्यक्ति सम्मोहन के लिए बहुत ही सुविधा पूर्ण होते हैं। तेतीस प्रतिशत व्यक्ति बड़े जल्दी सम्मोहित हो जाते हैं। और यही सम्मोहित व्यक्ति तुम्हारे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति बन जाते हैं। ये ही तुम्हारे संत! ये ही तुम्हारे फकीर! इनके लिए कुछ भी करना आसान है। जब अपना ही हाथ बांध लिया खुद ही भावना करके और अब खुद ही खोलना चाहते हैं, नहीं खुलता। और एक मजा है: जितनी वे कोशिश करेंगे और नहीं खुलेगा, उतनी ही यह बात गहरी होती जाएगी कि अब मुश्किल हो गई। हाथ तो बंध गए, अब नहीं खुलने वाले। घबड़ा जाएंगे। हाथ को खोलने के लिए अब इनके पास कोई उपाय नहीं है। अब हाथ को खोलने के लिए इनको पूरी प्रक्रिया को दोहराना पड़ेगा।
अब इनको खींचातानी बंद करनी चाहिए। अब इनको फिर दस मिनट तक सोचना चाहिए कि जब मैं हाथ खोलूंगा, तो खुल जाएंगे। खुल जाएंगे--जरूर खुल जाएंगे। दस मिनट तक ये पुनः भाव करें। खींचे नहीं। खींचेंगे, तो मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि खींचने से सिद्ध होगा नहीं खुलते हैं। नहीं खुलते हैं-- तो नहीं खुलने की बात और मजबूत होती चली जाएगी कि नहीं खुल सकते हैं। अब मैं कुछ भी करूं, नहीं खुल सकते हैं।
खींचें न। अब तो बैठ कर सोचें वही, जो पहले सोचा था उससे उलटा, कि अब मैं जब खोलूंगा दस मिनट के बाद, तो बराबर खुल जाएंगे; निश्चित खुल जाएंगे। कोई संदेह नहीं; खुल जाएंगे। तब इनके दस मिनट के बाद हाथ खुलेंगे। तुम प्रयोग करके देख सकते हो। दस मित्रों को इकट्ठा कर के बैठ जाओ। तुमने शायद कभी सोचा न हो कि तुम भी उन तेतीस प्रतिशत में एक हो सकते हो।
इस तरह का आदमी किसी भी तरह की बीमारियों के जाल में फंस सकता है।
मेडिकल कालेजेज में यह अनुभव की बात है कि विद्यार्थी जिस बीमारी के संबंध में पढ़ते हैं, बहुत से विद्यार्थियों को वही बीमारी होनी शुरू हो जाती है। जब वे पेट-दर्द के संबंध में पढ़ेंगे और उनको मरीजों के पेट-दर्द दिखाए जाएंगे, और उनसे पेट की जांच करवाई जाएगी--अनेक विद्यार्थियों के पेट गड़बड़ हो जाएंगे। वे कल्पित करने लगते हैं कि अरे, कहीं वैसा ही दर्द मुझे तो नहीं हो रहा है! अपना ही पेट दबा-दबा कर देखने लगते हैं! और जब पेट को दबाएंगे, तो कहीं न कहीं दर्द हो जाएगा। अहसास होगा कि दर्द हो रहा है। घबड़ाहट शुरू हो जाएगी।
मेडिकल कालेज में यह आम अनुभव की बात है कि जो बीमारी पढ़ाई जाती है, वही बीमारी फैलनी शुरू हो जाती है विद्यार्थियों में।
सूफियों में एक कहानी है: जुन्नैद नाम का फकीर...। जुन्नैद प्रसिद्ध फकीर मंसूर का गुरु था गांव के बाहर एक झोपड़े में रहता था, बगदाद के बाहर।
कहानी बड़ी प्यारी है। कहानी ही है, ऐतिहासिक तो हो नहीं सकती, मगर बड़ी मनोवैज्ञानिक है।
एक दिन उसने देखा कि एक काली छाया बड़ी तेजी से बगदाद में जा रही है। दरवाजे के बाहर ही उसका झोपड़ा था नगर के। उसने कहा, रुक! कौन है तू? तो उस काली छाया ने कहा, मैं मौत हूं। और क्षमा करें, बगदाद में मुझे पांच सौ व्यक्ति मारने हैं। फकीर ने कहा, जो उसकी मर्जी। मौत अंदर चली गई।
पंद्रह दिन के भीतर पांच सौ नहीं, पांच हजार आदमी मर गए! फकीर बड़ा हैरान हुआ कि पांच सौ कहे थे और पांच हजार मर चुके!
जब मौत वापस लौटी पंद्रह दिन के बाद, तो उसने कहा, रुक। बेईमान! मुझसे झूठ बोलने की क्या जरूरत थी! कहां पांच सौ, और मार डाले पांच हजार!
उसने कहा, क्षमा करें। मैंने पांच सौ ही मारे। बाकी साढ़े चार हजार अपने आप मर गए। मैंने नहीं मारे। वे तो दूसरों को मरते देख कर मर गए!
जब महामारी फैलती है, तो सभी लोग महामारी से नहीं मरते। कुछ तो देख कर
ही मर जाते हैं! इतने लोग मर रहे हैं, मैं कैसे बच सकता हूं! इतने लोग बीमार पड़ रहे हैं, मैं कैसे बच सकता हूं!

तुमने एक मजे की बात देखी कि डाक्टर दिन भर लगा रहता है मरीजों की दुनिया में और नहीं मरता। बीमारी--और बीमारी के बीच पड़ा रहता है और इसको बीमारी नहीं पकड़ती। और तुमको जरा में बीमारी पकड़ जाती है! छूत की बीमारी! एकदम तुम्हें छू जाती है। और डाक्टर दिन भर न मालूम किस-किस तरह के मरीजों का पेट दबा रहा है; हाथ देख रहा है। नब्ज पकड़ रहा है। इंजेक्शन लगा रहा है। और बीमारी नहीं पकड़ती! और तुम्हें बीमारी पकड़ जाती है। तुम्हारा भाव, बस तुम्हें पकड़ा देता है।
यह देख कर भी तुम्हें खयाल में आता होगा कि डाक्टरों में तुम एक तरह
की सख्ती पाओगे। तुम लाख रोओ-धोओ; तुम्हारी पत्नी बीमार पड़ी है, तुम लाख रोओ-धोओ और तुम्हें लगेगा कि डाक्टर बिलकुल उदासीन है। उसको उदासीन होना पड़ता है, नहीं तो वह कभी का मर चुके। उसको उदासीनता रखनी पड़ती है, सीखनी पड़ती है। वह उसके व्यवसाय का अंग है, अनिवार्य अंग है। उसको एक उदासीनता की पर्त ओढ़नी पड़ती है।
अब यहां तो रोज ही कोई मर रहा है। कोई तुम्हारी अकेली पत्नी मर रही है! रोज कोई मरता है। न मालूम कितने बीमार आते हैं! यहां अगर एक की बीमारी से वह आंदोलित होने लगे, तो वह खुद ही मर जाए। कभी का मर जाए! तो वह धीरे-धीरे कठोर हो जाता है। सख्त हो जाता है। उसके चारों तरफ एक पर्त गहरी हो जाती है, जिस पर्त को पार कर के कीटाणु भी प्रवेश नहीं कर सकते।
डाक्टर तुम्हें कठोर मालूम होगा। नर्सें तुम्हें कठोर मालूम होंगी।
और तुम्हें लगता है कि यह बात तो ठीक नहीं! डाक्टर को तो दयावान होना चाहिए। नर्सों को तो दयावान होना चाहिए। होना तो चाहिए, मगर वे बचेंगे नहीं। उनके बचने का एक ही उपाय है कि वे थोड़ी-सी कठोरता रखें। वे अप्रभावित रहें। कौन मरा, कौन जीया...यूं समझें कि जैसे फिल्म में कहानी देख रहे हैं। कुछ लेना-देना नहीं। साक्षीभाव रखें, तो ही जिंदा रह सकते हैं। नहीं तो जिंदा रहना असंभव है। उनको भी जीना है, और उनके जीने के लिए यह अनिवार्य है कि वे एक कठोरता का कवच ओढ़ लें।
यह सूत्र अर्थपूर्ण है इस दृष्टि से कि इसी सूत्र के कारण सारे धर्म गलत हो गए हैं। मेरा यहां प्रयास यही है कि तुम्हें इस सूत्र से ऊपर उठाऊं। मेरी घोषणा समझो।
मैं कह रहा हूं कि तुम्हारा स्वभाव पर्याप्त है। तुम्हें कुछ और होना नहीं है। इसलिए यत्न क्या करना है! भावना क्या करनी है! तुम हो। तुम्हें जो होना चाहिए वह तुम हो ही। तुम्हें अपने भीतर जाग कर देखना है कि मैं कौन हूं। कुछ होना नहीं है। जो हो, उसको ही पहचानना है। आत्म-परिचय करना है। आत्मज्ञान करना है।
आत्मज्ञान के लिए भावना की जरूरत नहीं, विचारणा की जरूरत नहीं; यत्न
की जरूरत नहीं। आत्मज्ञान के लिए निर्विचार होना है; प्रयत्न-शून्य होना है। दौड़ना नहीं, बैठना है। भागना नहीं ठहरना है। न शरीर में कोई क्रिया रह जाए, न मन में कोई क्रिया रह जाए। दोनों निष्क्रिय हो जाएं। बस, ध्यान का सरगम बज उठेगा।
चित्त में विचार नहीं, देह में क्रिया नहीं--उसी अक्रिया की अवस्था में तुम्हारे भीतर जो पड़ा है हीरा--दमक उठेगा। जो सूरज छिपा है--उघड़ आएगा। बदलियों में छिपा है, प्रकट हो जाएगा; क्षितिज के ऊपर उठ आएगा। तुम आलोक से भर जाओगे। और यह कोई बाह्य उपलब्धि नहीं है। यह तुम्हारी निजता है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारी सहजता है। इस सहजता में ही आनंद है सहजानंद! आठवां प्रवचन; दिनांक १८ सितंबर, १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-30

द्वैत भ्रांति है
(Note: Lagan Mahurat Jhooth Sab (लगन महूरत झूठ सब) #6 - full discourse)

पहला प्रश्न: भगवान,
कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु।
संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।।
कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। इसी प्रकार, मैं संन्यासी हूं, ऐसा कह देने से भी कोई संन्यासी नहीं होता है। समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही संन्यास कहलाता है।
भगवान, संन्यास के इस प्रसंग में कहे गए मैत्रेयी उपनिषद के इस सूत्र
को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय!
कर्मत्यागान्न संन्यासौ...।
संन्यास सदियों से कर्म का त्याग ही समझा जाता रहा है। और कर्म का त्याग मन का त्याग नहीं है। कर्म के त्याग से एक भ्रांति भर पैदा होती है। भ्रांति गहरी और खतरनाक।
जैसे कोई गाली न दे, अपमान न करे, तो स्वभावतः क्रोध न उठेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे भीतर क्रोध की समाप्ति हो गई। जब भी कोई गाली देगा और अपमान करेगा, सदियों-सदियों भी क्रोध सोया रहा हो, पुनः फन उठा कर खड़ा हो जाएगा। सिर्फ अनुकूल परिस्थिति नहीं मिल रही थी। यूं जैसे बीज तो हों, वर्षा न हो, तो खेत में पड़े रह जाएं। लेकिन जब वर्षा होगी तब बीज अंकुरित हो जाएंगे।
बीज तो मन में हैं संसार के। संसार तो केवल उन मन के बीजों को अंकुरित होने का अवसर है, परिस्थिति है। लेकिन मनुष्य बहिर्मुखी है। वह हमेशा बाहर देखता है। वह सोचता है यह संसार है जो मुझे उलझाए है। संसार किसी को नहीं उलझाए है। उलझाए है तुम्हारा मन। लेकिन मन को तो तुम तब देखो जब भीतर मुड़ो। बाहर ही देखते हो।
तो लोभी सोचता है धन के कारण लोभ है। असलियत उलटी है। लोभ के कारण धन है, धन की दौड़ है, धन की अभीप्सा है, धन की वासना है। लोभ जड़ है। कामी सोचता है कि स्त्री के कारण कामवासना है। यह गणित को शीर्षासन करवाना है। कामवासना के कारण स्त्री में रस है। और वासना तुम्हारे भीतर है, स्त्री बाहर है। लोभ तुम्हारे भीतर है, धन बाहर है। क्रोध तुम्हारे भीतर है, अपमान, गाली-गलौज बाहर है। लेकिन हम तो बाहर ही देखते हैं, भीतर तो देखते नहीं।
इससे स्वभावतः, जिन्होंने उथला-उथला जीवन को समझना चाहा, वे संसार से भागने लगे। उन्होंने देखा कि संसार में उपद्रव है। लेकिन तुम जहां भी जाओगे भाग कर सिर्फ परिस्थिति से बचोगे, बीज कहां जाएंगे? बीज तो जन्मों- जन्मों तक पीछा करेंगे। इस जन्म में छिप रहोगे गुफा में हिमालय की, फिर अगले जन्म में फिर परिस्थिति उपलब्ध होगी, फिर मौसम आएगा, फिर वसंत आएगा, फिर बीज फूटेंगे, फिर फूल लगेंगे।
ऐसे भगोड़ेपन से कोई संन्यास नहीं हो सकता है। संन्यास हो ही सकता है केवल संसार में, क्योंकि संसार परीक्षा है। धन हो और लोभ न हो, तब संन्यास। सुंदर से सुंदर स्त्रियां हों, पुरुष हों और वासना न जगे, तब संन्यास। पद पर बैठने की सुविधा हो, संभावना हो, लेकिन भीतर पद पर बैठने की कोई आकांक्षा न हो, तब संन्यास।
संन्यास तो बाजार में ही परीक्षित होगा, वहीं कसौटी है। यह जो भगोड़ा संन्यासी है, यह तो ऐसा सोना है जो कसौटियों से भाग गया। कसौटियों से भाग गए तो असली हो कि नकली, क्या पता चलेगा? सच्चे हो कि खोटे, कैसे जानोगे? संसार में सारा उपाय है। प्रतिपल मौके हैं। अगर तुम्हारी आग बुझ ही
गई हो भीतर से, तो ही शांति रहेगी, सन्नाटा रहेगा। अगर जरा-सी भी चिनगारी

भीतर मौजूद है तो फिर सारे जंगल में आग लग जाएगी। फिर-फिर। क्योंकि एक चिनगारी काफी है। संसार में तो ईंधन उपलब्ध होता है। मगर ईंधन भी उसको जलाएगा जिसके भीतर चिनगारी हो। नहीं तो ईंधन पड़ा रहेगा। किसी ने तुम्हें गाली दी, तुमने सुन ली, पड़ी रही। तुम्हारे भीतर कुछ भी न होगा। हां, अगर तुम्हारे भीतर अहंकार है तो कुछ होगा। अहंकार चिनगारी है। अहंकार का अर्थ है: तुम्हारे भीतर कोई घाव है जिस पर गाली चोट कर देती है।
और तुमने खयाल किया? अगर घाव हो तो उसी-उसी पर चोट लगती है। अगर पैर में घाव हो, तो कुर्सी लग जाएगी, बिस्तर से उतरोगे तो चोट खा जाओगे, जूते में पैर डालोगे और चोट खा जाओगे, देहरी पार करोगे और चोट लग जाएगी, और बच्चा आएगा और उसी पैर पर चढ़ कर खड़ा हो जाएगा। और तब कोई सोचने लगता है कि माजरा क्या है! इसी-इसी पैर को क्यों चोट लग रही है, जब कि इस पर घाव है? चोट रोज लगती थी, पता नहीं चलता था, क्योंकि घाव नहीं था। आज घाव है, इसलिए पता चलता है। घाव सिर्फ पता चलवाता है। घाव कोई चोटों को आमंत्रित नहीं करता। लेकिन घाव संवेदनशील होता है।
अहंकार के कारण कोई तुम्हें गाली नहीं देता; लेकिन अहंकार संवेदनशील है, बहुत संवेदनशील है। गाली तो दूर, जो आदमी तुमसे रोज नमस्कार करके गुजरता था, अगर आज बिना नमस्कार किए गुजर गया, तो भी चोट लग जाएगी। तो भी भीतर दर्प खड़ा हो जाएगा कि अच्छा! तो इस आदमी की यह हैसियत कि आज बिना जयराम जी किए चला गया! इसको मजा चखा कर रहूंगा! कोई कसूर नहीं किया, कोई गाली नहीं दी, कोई अपमान नहीं किया, मगर यह भी अपमान हो गया।
अगर अहंकार है तो खोज ही लेगा कुछ न कुछ पीड़ित होने को, परेशान होने को। हां, यह हो सकता है कि तुम दूर छिप कर बैठ जाओ, जहां कोई परिस्थिति न आए--न सूरज, न हवा, न वर्षा। तो स्वभावतः बीज पड़े रह जाएंगे। मगर बीजों में ही बंधन है।
इसलिए पतंजलि ने दो तरह की समाधियां कहीं--सबीज समाधि और निर्बीज समाधि। वह भेद बहुत गहरा है। वह भेद बहुत विचारणीय है। असल में सबीज समाधि को समाधि कहना नहीं चाहिए। बस समाधि जैसी मालूम होती है। समाधि का धोखा है। सबीज समाधि का अर्थ है, अहंकार तो भीतर है लेकिन बीज की तरह है। और बीज की तरह है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। अंकुरण हो, पत्ते निकलें, शाखाएं ऊगें, फल लगें, फूल लगें, तो दिखाई पड़ेगा। अभी अदृश्य है। अगर तुम बीज को काटोगे भी तो भी बीज के भीतर न तो फूल मिलेंगे, न रंग मिलेंगे, न पत्ते मिलेंगे-- कुछ भी न मिलेगा। बीज को तो अवसर चाहिए।
संसार में अवसर है। हिमालय की गुफा में अवसर नहीं है, बस इतना ही फर्क है। और अगर तुम मुझसे पूछो, तो जहां अवसर है वहीं रहना उचित है, क्योंकि वहीं निर्बीज समाधि फलित हो सकती है। हिमालय की गुफा में जो समाधि फलित होगी, वह सबीज समाधि होगी। ऊपर से सब शांत हो जाएगा, मगर भीतर तो सारी संभावना मौजूद है अशांत होने की। भीतर तो मवाद भरी है, फोड़ा पक रहा है। हां, कोई चोट नहीं पड़ रही, इसलिए पीड़ा नहीं हो रही है। लेकिन जब भी चोट पड़ेगी--और चोट कभी न कभी पड़ेगी, और किस बात से चोट पड़ जाए, बड़ा मुश्किल है कहना।
एक आदमी अपनी कर्कशा पत्नी से परेशान था। बहुत परेशान था। भाग गया। लोग भागते ही ऐसे हैं, सौ में से निन्यानबे तुम्हारे संन्यासी ऐसे ही भागते हैं। किसी की पत्नी उसे परेशान कर रही है, किसी की नौकरी खो गई है, किसी का दिवाला निकल गया है, कोई जुए में हार गया है; कोई पद और प्रतिष्ठा की दौड़ में जीत नहीं पाया, निराश हो गया है, उदास हो गया है; जीवन की चिंताओं ने, जीवन के संतापों ने छाती पर पहाड़ रख दिए हैं; इस सबसे घबड़ा कर आदमी भागता है।
भागने वाले सौ लोगों में निन्यानबे सिर्फ कायर होते हैं। और वह जो एक प्रतिशत मैं छोड़ रहा हूं, वे बिलकुल और तरह के लोग हैं। वे संसार से भागते नहीं, संसार ही उनसे छूट जाता है। उन्हें संसार में भी रहना पड़े तो कोई अड़चन नहीं है। मगर उन्होंने संसार में रह कर देख लिया, अब कोई ईंधन आग को जलाता नहीं। अब कोई गाली अपमान पैदा नहीं करती। कोई सत्कार छाती नहीं फुला देता। अब धन हो तो ठीक, न हो तो ठीक। पद हो तो ठीक, न हो तो ठीक। उन्होंने संसार की सारी कसौटियां पूरी कर लीं।

ऐसे एक प्रतिशत लोग भी जंगल गए हैं--मगर संसार से भाग कर नहीं, संसार उनसे गिर चुका था। जैसे पके पत्ते गिर जाते हैं। संसार खुद ही छूट गया था। रहते तो भी कोई बात न थी। न रहे तो भी कोई बात नहीं। कुछ भेद ही नहीं जैसे। यह आदमी भागा। पत्नी के कर्कशा होने से भागा था। जंगल में जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठा, बड़ी शांति मालूम हो रही थी। जंगल की शांति, पहाड़ों का सन्नाटा, हिमाच्छादित शिखरों का मौन, बड़ा आनंदित था। और तभी एक कौवे ने आकर उस पर बीट कर दी। भनभना गया! कि हद हो गई, घर छोड़ कर आ गया, यहां भी शांति नहीं! एक कौवे ने दुष्ट ने बीट कर दी! यह कभी सोचा भी न था कि कौवा भी अपने से दुश्मनी करेगा! अरे, पत्नी तो दुश्मन थी, ठीक था, उसको छोड़ कर आ गए तो यह कौवा परेशान कर रहा है!
अब कौवे को क्या लेना-देना तुमसे, कौवा तो बेचारा बीट करता ही। तुम न होते तो भी करता। तुम थे तो भी की। कौवे को तो कुछ प्रयोजन नहीं है। लेकिन इस आदमी को तो चोट लग गई। भागा ही इसलिए था। और वही मौजूद हो गई बात। इतना दुखी हो गया कि सोचा संसार भी व्यर्थ है, संन्यास भी व्यर्थ है। कहीं शांति नहीं है, अशांति ही अशांति है।
तो जाकर पास ही एक नदी थी, उसके किनारे रेत में उसने सूखी लकड़ियां इकट्ठी कीं, आग लगा कर चिता पर चढ़ने को ही था कि दो-चार लोग आस-पास में रहते थे झोपड़ों में, खेतों में, वे आ गए। और उन्होंने कहा, भाई, रुक! तुझे मरना हो, कहीं और जाकर मर! यह कोई जगह है! यहां हम रहते हैं। तू जलेगा, तेरी बदबू फैलेगी। तू तो मर जाएगा, अभी हमें जीना है! और फिर पुलिस आएगी। तू तो मर जाएगा, पकड़े हम जाएंगे, कि यह आदमी कैसे मरा, क्यों मरा? हम क्या बताएंगे? तू भैया, कहीं और जाकर मर! इतना बड़ा संसार पड़ा है, तुझे यह घाट ही मिला मरने को!
वह आदमी बोला, हद हो गई! न जीने की सुविधा, न मरने की सुविधा! आदमी मर
भी नहीं सकता! इसकी भी स्वतंत्रता नहीं है।
जो आदमी भागेगा, उसको तो कहीं भी कारण परेशान होने के मिलते रहेंगे। उसे तुम स्वर्ग में भी बिठा दो तो भी वह कुछ भूल-चूकें निकाल लेगा। निकाल ही लेगा! अभी भीतर के बीज मौजूद हैं।
तो जरूर पहाड़ पर, जंगल में एक तरह की शांति होगी--वह पहाड़ की शांति है। उसे तुम अपनी न समझ लेना। तुम्हारा उससे क्या लेना-देना! तुम नहीं थे तब भी थी--थोड़ी ज्यादा थी, तुम्हारे आने से थोड़ी कम हो गई। तुम चले जाओ तो फिर ज्यादा हो जाएगी। वह जो पहाड़ का हिमाच्छादित मौन है, वह जो शीतलता है, वह पहाड़ की है। मगर भ्रांति वहां पैदा हो सकती है कि देखो, मैं कैसा शांत हो गया! न अब कोई अहंकार है...। अब अहंकार हो तो कैसे हो! कोई गाली नहीं देता, कोई अपमान नहीं करता, कोई धक्के नहीं मारता, क्यू में खड़े हो, कोई आकर आगे खड़ा नहीं हो जाता--वहां कोई क्यू ही नहीं है।
जिंदगी, जहां तुम अकेले हो, वहां स्वभावतः अवसरों से शून्य है। इसका अर्थ यह होगा कि एक शांति जो बाहर है, उसे तुम अपनी समझ लोगे। वह तुम्हारी भ्रांति है। बीज भीतर रह जाएंगे। और जब भी कभी, जन्मों-जन्मों में--कब तक बचोगे, कब तक भागोगे--जहां भी अवसर आया, बीज फिर पल्लवित हो जाएंगे।
सबीज समाधि का कोई मूल्य नहीं है। समाधि तो निर्बीज हो तो ही समाधि है। सबीज समाधि तो धोखा है! और निर्बीज समाधि संसार में ही घटित हो सकती है। इसलिए मैं अतीत में जो संन्यास प्रचलित रहा उसका पक्षपाती नहीं हूं। और मैत्रेयी उपनिषद मुझसे राजी है। मगर आश्चर्य तो यह है कि ये उपनिषद लोग पढ़ते रहे मगर समझे कि नहीं समझे! संन्यासी पढ़ते रहे!
अब इतना स्पष्ट है कि कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। मगर सदियों से यह जाल चलता रहा, कर्मों को छोड़ना ही संन्यास रहा। कर्म-त्याग संन्यास है। छोड़ दो दुकान, छोड़ दो मकान, छोड़ दो पत्नी, छोड़ दो बच्चे-- संन्यासी हो गए।
कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु।
और इस बात की घोषणा करना भी संन्यास नहीं है कि मैं संन्यासी हूं। घोषणा से क्या होगा? घोषणा भी तो अहंकार की ही है। मैं संन्यासी हूं, यह घोषणा करने मात्र से कुछ भी नहीं होने वाला है। यह घोषणा अहंकार को और परिपुष्ट करेगी, और मजबूत करेगी, और जीवन देगी। और अहंकार संसार का बीज

है। इसलिए संन्यासी को तो घोषणा का सवाल नहीं है, प्रतीति का सवाल है। मैं की बात नहीं है, विनम्रता की बात है।
मगर विनम्र संन्यासी, तुम मुश्किल से ही पाओगे! संन्यासी अहंकारी होंगे। उनका अहंकार उनकी नाक पर चढ़ा बैठा होता है। उनकी अकड़ साधारण आदमी से बहुत ज्यादा है। क्यों? क्योंकि उनके पास तर्क है। तर्क यह है कि तुम तो अभी भोगी हो, हम योगी हैं। तुम तो संसार में सड़ रहे हो, हमने संसार छोड़ दिया। तुम तो अभी धन के पीछे दौड़ रहे हो, हमने धन छोड़ दिया। उनका तर्क उनके अहंकार को और भी मजबूत करता है। और तुम्हारा सम्मान उनके अहंकार को और मजबूत करता है। तुम जाकर उनके चरण छूते हो, पांव पखारते हो, पैर धोकर पानी पीते हो; तुम पूजा की आरती उतारते हो; तुम उन्हें महात्मा कहते हो। स्वभावतः, जब लोग महात्मा कहें, आदर दें, सम्मान दें, तो अहंकार और भी धार पा जाता है। जैसे जंग लगी तलवार पर किसी ने धार रख दी हो, जंग झाड़ दी हो। इसीलिए तो दुनिया में यह तथाकथित धार्मिक लोगों ने, महात्माओं ने जितने उपद्रव करवाए, जितनी हिंसा इनके कारण हुई, किसी के कारण नहीं हुई। फिर वे हिंदू हों कि मुसलमान हों कि ईसाई हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। इस पृथ्वी पर जितने लोग मारे गए हैं धर्म के नाम पर, धर्म की मूर्खता के नाम पर, उतने और किसी चीज के कारण नहीं मारे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि भगवान, मुनि सन्मति जी सागर ने दुर्ग में चौमासा किया। उनके आगमन से जैन समाज के दिगंबर संप्रदाय में व्रत-उपवास की प्रतिस्पर्धा शुरू हुई। इसके अंतर्गत श्री बसंतीलाल जी बाकलीवाल, जो शक्कर की बीमारी से ग्रस्त थे, उन्होंने भी उपवास किया। छठवें व सातवें दिन उनकी हालत इतनी खराब हुई कि उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। दसवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। वे अंतिम समय में पानी पीने के लिए मांगते रहे, पर उपवास भंग न हो, इसलिए उनके समाज और प्रियजन तथा पारिवारिक लोगों ने उन्हें पानी भी पीने को नहीं दिया। इसके बाद उनकी मृत्यु को शहीदी रंग देने की कोशिश की गई। मुनि श्री सन्मति जी महाराज को जब यह घटना बताई गई तो उन्होंने कहा कि अगर थोड़ी देर पहले मुझे बताया होता तो मैं उन्हें उसी अवस्था में दिगंबरत्व की दीक्षा दे देता और उनकी गति सुधर जाती। भगवान, यह सब क्या है, कृपया कहें!
पद्म भारती! यह सब सदियों-सदियों पुरानी विक्षिप्तता है, जो संन्यास
के आवरण में छिपी है, संन्यास के ढोंग में दबी है। संन्यास की राख के भीतर अहंकार की आग है। व्रत- उपवास की भी प्रतिस्पर्धा शुरू होती है। वह भी कबड्डी का खेल है। आदमी समझ ही नहीं पाता!
अभी कल खबर थी कि नागपुर की कुछ कालेज की लड़कियां वर्धा कबड्डी का खेल खेलने गईं। तो वे विनोबा के आश्रम पवनार भी गईं और विनोबा ने उनके साथ चालीस मिनट कबड्डी खेली।
कैसी प्यारी बात! मगर यही कबड्डी का खेल चल रहा है, अलग-अलग नामों से। पर्युषण के दिन आते हैं तो जैनों में स्पर्धा शुरू हो जाती है। कौन किसको मात करे? कौन कितना उपवास करे?
तो यह पद्म भारती ने लिखा है, ठीक लिखा है कि "वहां व्रत और उपवास की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई।"
और इसमें कई दफा झंझटें होने ही वाली हैं। क्योंकि जैनों का जो व्रत
और उपवास है, वह कोई वैज्ञानिक तो है नहीं। न इसकी कोई चिंता की जाती है कि शरीर की अवस्था भी उपवास करने की है या नहीं, जरूरत भी है या नहीं! न इस बात की फिकर की जाती है कि इसके परिणाम क्या होंगे! अगर आदमी डायबिटीज से बीमार था तो उपवास के परिणाम घातक हो सकते हैं, भयंकर हो सकते हैं। अगर शक्कर कम होने की बीमारी हो, तो तीन दिन के भीतर वह आदमी बेहोश हो जाएगा, कोमा में चला जाएगा। मृत्यु हो सकती है।
"दसवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। वे अंतिम समय बस पानी ही पानी की पुकार करते रहे।"
मगर कौन सुने? स्पर्धा की दुनिया है। इतनी जल्दी, दो-चार घंटे की और बात है, दस दिन पूरे हो जाएं। दिगंबर होंगे। तो उनका दस दिन का पर्युषण होता है। श्वेतांबर होते तो शायद बच जाते; उनका आठ ही दिन का होता है। यह दिगंबर होने में खतरा हुआ! दस दिन का पर्युषण, दो-चार घंटे ही बचे होंगे और

अब वे पानी पीने के लिए मांग रहे हैं। प्रियजन, घर के लोग, पत्नी, बच्चे, मां-बाप भी विरोध में रहे होंगे, क्योंकि अब दो-चार घंटे ही की बात है। अरे, और खींच लो इतना खींचा है। अब क्या चार घंटे के लिए योग-भ्रष्ट होते हो! क्या कहेंगे लोग! पीछे तुम ही हमको परेशान करोगे कि रोका क्यों नहीं? अरे, मैं तो परेशानी में था, लेकिन तुम तो नहीं थे परेशानी में, तुम तो रोक सकते थे। और जहां स्पर्धा का सवाल हो, वहां जिंदगी भी आदमी दांव पर लगाने को तैयार हो जाता है। और फिर धार्मिक स्पर्धा! आध्यात्मिक स्पर्धा! जैसे कि आध्यात्मिक भी स्पर्धा हो सकती है!
स्पर्धा ही संसार है। यह प्रतियोगिता ही तो संसार है। यही तो राजनीति है। दूसरे से आगे निकल जाऊं इसके अलावा और राजनीति का अर्थ क्या है! फिर किस तरह निकलूं आगे--धन से निकलूं, पद से निकलूं, व्रत से निकलूं, उपवास से निकलूं--इससे क्या फर्क पड़ता है? ये तो बहाने हैं आगे निकलने के। ये तो खूंटियां हैं अपने अहंकार को टांगने की। कोई भी खूंटी काम दे देगी।
अब चार ही घंटे की बात रह गई!
यह पद्म भारती का प्रश्न पढ़ रहा था तो मुझे टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी याद आई कि एक आदमी के घर एक फकीर मेहमान हुआ। वह आदमी गरीब किसान था, छोटी-सी जमीन थी, किसी तरह गुजारा हो जाता था। उस फकीर ने कहा कि तू भी पागल है, इस छोटी-सी जमीन में कैसे गुजारा! किसी तरह जी रहा है--अधखाया, अधपीया-- न ठीक वस्त्र हैं, न ठीक मकान है। मैं घूमता रहता हूं--परिव्राजक हूं-- साइबेरिया में मैं ऐसे स्थान जानता हूं जहां मीलों जमीन पड़ी है। और बड़ी उपजाऊ जमीन। तू इस जमीन को बेच दे, इस मकान को बेच दे, इतने से पैसे को लेकर तू चला जा। मैं एक जगह तो ऐसी भी जानता हूं जहां लोग इतने पैसे में तुझे इतनी जमीन दे देंगे कि तू कल्पना भी नहीं कर सकता।
मोह जगा, लोभ जगा कि क्यों यहां पड़ा रहूं! सुबह फकीर तो चला गया, लेकिन उसने अपनी जमीन बेच दी, मकान बेच दिया। पत्नी-बच्चों को कहा कि तुम थोड़े समय यहां रुको, मैं जाकर वहां जमीन खरीद लूं, मकान का इंतजाम कर लूं, फिर तुम्हें ले चलूंगा।
वह आदमी गया। जब पहुंचा तो सच में चकित हुआ। फकीर ने जो कहा था, ठीक था। मीलों उपजाऊ जमीन पड़ी थी। दूर-दूर तक कोई आदमी का पता न था। बामुश्किल तो आदमियों को खोज पाया कि किनसे खरीदनी है! किसकी है? गांव के लोगों ने कहा, भई, किसी की नहीं है। मगर हमारा यह नियम है कि अगर इतना पैसा--अगर एक हजार रुपया तुम देते हो--तो तुम दिन भर में जितनी जमीन घेर सकते हो घेर लो, वह तुम्हारी। और हमारे पास कोई मापदंड नहीं है। तुम चलना शुरू करो और खूंटियां गड़ाते जाओ; दिन भर में तुम जितनी जमीन घेर सकते हो, घेर लो; बस यही हमारा हिसाब है, इसी तरह हम जमीन बेचते हैं।
उसकी तो आंखें फटी की फटी रह गईं। भरोसा ही नहीं आया। जरा-सा जमीन का टुकड़ा था उसके पास जिसको वह बेच कर आया था--और दिन भर में तो वह न मालूम कितनी घेर लेगा! मजबूत काठी का आदमी था, किसान था। उसने कहा, अरे, दिन भर में तो मैं मीलों का चक्कर मार लूंगा! गजब हो गया! फकीर ने ठीक कहा था। दूसरे दिन सुबह ही उसने जितना पैसा लाया था दे दिया और उसने कहा कि मैं अब जमीन घेरने निकलता हूं। उन्होंने कहा कि निकलो! सुबह सूरज उदय होते हुए निकला। कहा कि सूरज डूबने के पहले लौट आना। अगर सूरज डूब गया तो पैसे डूब गए। सूरज डूबने के पहले लौट आना, तो जितनी जमीन तुमने घेर ली, वह तुम्हारी, यह शर्त है। उसने कहा कि बिलकुल लौट आऊंगा।
वह भागा! चलना क्या, ऐसा कोई मौका चलने का होता है! भागा, दौड़ा! अपने जीवन में ऐसा कभी नहीं दौड़ा था। जितनी जमीन घेर ले, उसकी होने वाली थी। दिन में कई दफा--साथ ले गया था रोटी भी, पानी भी--भूख भी लगी, दौड़ भी रहा था, ऐसा कभी दौड़ा भी नहीं था, मगर उसने कहा एक दिन अगर भोजन न किया तो कोई हर्ज है! कोई मर थोड़े ही जाऊंगा! मगर भोजन करने बैठूं, आधा घंटा खराब हो जाए, इतनी देर में तो और आधा मील जमीन घेर लूंगा। पानी भी न पीया। उसने कहा, एक दिन में कोई मर थोड़े ही जाता है! और प्यास बहुत लग रही थी, क्योंकि धूप तेज होने लगी थी। पसीना-पसीना हो रहा था, ऐसा कभी दौड़ा भी न था, मगर--पानी पास में था, थर्मस साथ ले गया था--लेकिन यह कोई समय है, पानी पीने में गंवाने का! और पानी पी लो, पेट भारी हो जाए, दौड़ न सको! बेहतर यही है कि आज तो दौड़ ही लो।

अभी थोड़े ही तो घंटों की बात है, सूरज डूबते-डूबते पहुंच जाना है, फिर जी भर कर भोजन करूंगा, विश्राम करूंगा! अरे, दो दिन सोया ही रहूंगा! फिर तो जिंदगी में चैन ही चैन है। आज एक दिन की मेहनत और फिर जिंदगी भर मजा ही मजा।
तुम भी यही सोचते। कोई भी गणित को समझने वाला आदमी यही सोचता, जो उसने सोचा। उस पर हंसना मत, वह तुम्हारे ही भीतर छिपा हुआ मन है। वह आदमी कहीं बाहर नहीं है, वह तुम ही हो।
वह आदमी दौड़ता ही रहा, दौड़ता ही रहा। उसने सोचा था कि जब सूरज ठीक मध्य में आ जाएगा, आधा दिन हो जाएगा, तब लौट पडूंगा। क्योंकि फिर लौटती यात्रा भी पूरी करनी है। सूरज मध्य में आ गया, लेकिन मन न माने, क्योंकि आगे की जमीन और उपजाऊ, आगे की जमीन और उपजाऊ! जैसे-जैसे आगे बढ़े, और उपजाऊ जमीन। सुबह जो घेरी थी, उससे बेहतर जमीन। और उससे बेहतर जमीन आगे पड़ी है। सोचने लगा कि थोड़ा तेजी से दौडूं तो जल्दी नहीं है लौटने की, थोड़ी देर में भी लौटा तो चलेगा, मगर यह जमीन छोड़ने जैसी नहीं है। और सामने विस्तार ही था, जिसका कोई अंत ही न होता था।
अब तो करीब-करीब एक चौथाई दिन ही बचा था। तब उसने कहा, अब खतरा है, अब लौटना चाहिए। अब सारी ताकत लगा दी। उसने रोटी फेंक दी, थर्मस फेंक दी, वस्त्र-कोट निकाल कर फेंक दिया। क्योंकि अब वजन रखना ठीक नहीं, अब तो ऐसे भागना है कि जैसे मौत पीछे लगी हो--क्योंकि सूरज डूबा जा रहा है। भागा! भागा! सूरज के डूबते-डूबते करीब-करीब पहुंच गया।
गांव भर इकट्ठा था, लोग जोर से हाथ हिला रहे थे, इशारा कर रहे थे कि तेजी से, तेजी से, और तेजी से, क्योंकि सूरज डूब रहा है। उसे लोग दिखाई पड़ रहे थे, उनकी आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। वे उसे बढ़ावा दे रहे थे कि भागो, भागो, चूको मत, इशारा कर रहे थे सूरज की तरफ--उसे सब दिखाई पड़ रहा था, पहाड़ी पर खड़े हुए लोग, मगर उसके पैर जवाब दे रहे थे। कंठ सूख गया था, आवाज भी नहीं निकल सकती थी। गिरा, अब गिरा तब गिरा, ऐसी हालत हो रही थी। और यह कोई समय है गिरने का! और आखिर-आखिर-आखिर पहुंचते-पहुंचते गिर ही पड़ा। वह जो खूंटी सुबह गाड़ गया था, उससे केवल छह फीट दूर। सरकने की कोशिश की, लेकिन उतनी भी ताकत बची न थी।
गांव की भीड़ इकट्ठी हो गई थी और लोग खिलखिला कर हंस रहे थे। मरते वक्त उसने इतना ही पूछा कि तुम खिलखिला क्यों रहे हो? हंस क्यों रहे हो? उन लोगों ने कहा, हम इसलिए हंस रहे हैं कि तुम पहले आदमी नहीं हो, इसी तरह यहां बहुत लोग आकर मर चुके हैं। आज तक कोई भी खूंटी तक नहीं पहुंच पाया। यह हम जो धंधा कर रहे हैं, सस्ता नहीं है। अब तुम मर ही रहे हो, तुम्हें बता देते हैं। हम सुबह से ही जानते हैं कि तुम्हारे हजार रुपए गए। तुम सोचते हो कि तुम न मालूम कितनी जमीन पा लोगे, लेकिन आज तक कोई पा नहीं सका। इसी खूंटी के पास कितने लोगों को हमने मरते देखा है! हमारे बुजुर्गों ने मरते देखा है! उनके बुजुर्गों ने मरते देखा है! सदियों से यह धंधा चलता रहा है। हम यह धंधा ही करते हैं। तुम कोई नए आदमी नहीं हो। एक आदमी और आ गया है आज, कल सुबह वह दौड़ेगा। मगर फिर भी तुम काफी करीब आ गए, केवल छह फीट दूर, शांति से मरो!
मगर क्या वह आदमी खाक शांति से मरे! जीवन भर की मेहनत का पैसा गया और दिन भर उसने जो मेहनत की थी जीवन भर में न की थी, वह भी व्यर्थ गई और यह खूंटी छह फीट दूर! आंखों के सामने दिखाई पड़ रही है, हाथ फैलाता है, लेकिन छू नहीं पाता। हाथ टटोलता है, आंखें धुंधली हुई जा रही हैं, सूरज डूबता जा रहा है और वह आदमी भी मर रहा है। सूरज के डूबते-डूबते वह आदमी मर गया। टाल्सटाय की यह प्रसिद्ध कहानी है, बहुत प्रसिद्ध कहानियों में एक है: "हाउ मच लैंड डज ए मैन रिक्वायर?" आदमी को कितनी जमीन की जरूरत है? केवल छह फीट! क्योंकि वे जो छह फीट बच रहे थे, उसी में उन्होंने उसकी कब्र खोद दी और उसी में गड़ा कर उसको दफना दिया। आदमी को कितनी जमीन की जरूरत है? केवल छह फीट। वह सब दौड़-धाप व्यर्थ गई।
वही हालत बेचारे बसंतीलाल जी बाकलीवाल की हो गई। क्या बसंत आया! बस, खूंटी छह फीट ही दूर रह गई थी। तो घर के लोगों ने सोचा: अब कोई पानी पिलाने का वक्त है! अरे, दस दिन गुजार लिए, सागर पार कर गए, अब किनारे पर आकर और

भ्रष्ट हो रहे हो! नमोकार मंत्र पढ़ा होगा, देवी-देवताओं को स्मरण किया होगा, कहा होगा कि भैया, मंत्र का स्मरण करो, नमोकार पढ़ो। नहीं तुम पढ़ सकते हो तो हम पढ़ रहे हैं।
वे नमोकार पढ़ रहे होंगे और बसंतीलाल कह रहे थे, पानी! पानी!...कोई नमोकार अब सुनाई पड़ता है ऐसी हालत में!...मुझे पानी दे दो! शायद पानी दे दिया होता तो वह आदमी बच भी जाता। उसको मार डाला इन लोगों ने। ये हत्यारे हैं।
यह तो न मालूम कैसा देश है और न मालूम कैसा कानून है इस देश का कि यहां हत्यारे भी बच जाते हैं। इन सारे लोगों की साजिश है। इस साजिश में ये तुम्हारे मुनि सन्मति सागर भी सम्मिलित हैं। शायद वही इसमें सबसे बड़े अपराधी हैं। उन्होंने उन्हें यह प्रेरणा दी होगी कि करो उपवास, इससे मोक्ष सुनिश्चित है। मौत मिली! मोक्ष वगैरह का तो कोई पता नहीं।
और सुनते हो, आखिरी मजा यह कि "जब वे मर गए तो फिर उसको शहीदी रंग देने
की कोशिश की गई।"
अहंकार हमारा पीछा ही नहीं छोड़ता। उन्हीं घर के लोगों ने जिन्होंने मारा, प्रियजनों ने, समाज के नेताओं ने, पंचायत के लोगों ने जिन्होंने मारा, उन्हीं मुनि ने जिनके आदेश से यह आदमी मरा--यह हिंसा हो गई; यह मुनि पानी तो छान कर पीते होंगे और यह आदमी को मार दिया, जिंदा मार दिया। मगर इस तरकीब से मारा, ऐसे धार्मिक ढंग से मारा कि इसको कोई जुर्म भी नहीं कहेगा-- हालांकि है यह जुर्म। यह हत्या का जुर्म है।
और यह किसी एक मुनि के ऊपर नहीं है, यह हिंदुस्तान के तुम्हारे तथाकथित सारे साधु-महात्माओं के ऊपर इस तरह की बहुत-सी हत्या है। मगर वह हत्या सब छिपी रह जाती है। सुंदर वस्त्रों में छिपी रह जाती है। उसका पता ही नहीं चलता। कानून उसको पकड़ नहीं पाता।
कानून पकड़े भी कैसे, क्योंकि यही मुनि-महात्मा वहां भी छाती पर बैठे हुए हैं। यही नीति के निर्धारक हैं। यही समाज के मूल्यों के निर्माण करने वाले हैं। यही मार्ग-द्रष्टा हैं। इन्हीं उपदेष्टाओं ने तो इस देश को पाखंड से भर दिया है। यहां हत्या भी हो जाती है और कानों-कान खबर भी पता नहीं चलती। अब उसको शहीदी रंग देने की कोशिश की गई कि ये धार्मिक शहीद हो गए। इन्होंने अपना जीवन कुर्बान कर दिया। वह आदमी कुर्बान करना ही नहीं चाहता था, वह मांग रहा था पानी; उसको पानी न दिया, जबरदस्ती शहीद करवा दिया।
और आखिरी बात उन्होंने कही कि "अगर थोड़ी देर पहले मुझे बताया होता तो मैं उसी अवस्था में दिगंबरत्व की दीक्षा दे देता और उनकी गति सुधर जाती।" तुम्हें शायद पता न हो कि दिगंबर की दीक्षा से उनका क्या प्रयोजन। मैं जानता हूं एक जैन साधु को--गणेशवर्णी को--उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी दिगंबर जैनों में। प्रतिष्ठा का कारण कुछ और न था, छोटा-सा था, मगर उसी कारण प्रतिष्ठा होती। प्रतिष्ठा का कारण यह था कि वे थे तो पैदाइशी हिंदू और फिर उन्होंने हिंदू धर्म का त्याग कर दिया और जैन धर्म की दिगंबर शाखा में वे साधु हो गए।
जब कोई हिंदू जैन हो जाए तो जैनों की छाती फूल जाती है। जब कोई जैन हिंदू हो जाए तो हिंदुओं की छाती फूल जाती है। स्वभावतः, क्योंकि इससे सिद्ध हो गया कि जैन धर्म श्रेष्ठ है, नहीं तो क्यों गणेशवर्णी जैसा बुद्धिमान आदमी--बुद्धिमानी का केवल इतना ही सबूत दिया था उन्होंने जिंदगी में कि वे जैन हो गए थे और तो कोई सबूत दिया नहीं। मगर अब उनकी बुद्धिमानी की खूब चर्चा करनी पड़ेगी।
कोई हिंदू ईसाई हो जाए, उसको खूब सम्मान मिलता है। वह दो कौड़ी का हिंदू था, ईसाई होते ही से एकदम उसका मूल्य बढ़ जाता है--ईसाइयों में बढ़ जाता है। हिंदुओं में गिर जाता है। हिंदुओं में तो दुश्मन हो गया वह, पथ-भ्रष्ट हो गया, द्रोही सिद्ध हुआ, धर्मद्रोही।
एक ईसाई साधु हो गए--सरदार सुंदर सिंह। जब तक वे सरदार थे, किसी को पता
ही नहीं था कि वे बड़े प्रतिभाशाली हैं। एक तो सरदार थे, तो किसको पता चले कि प्रतिभाशाली हैं। जब वे ईसाई हो गए तो सारी दुनिया में ईसाइयों ने उनकी दुंदुभी पीट दी कि वे महान प्रतिभाशाली हैं। ऐसा आदमी ही नहीं है। ये

महात्मा बहुत पहुंचे हुए हैं। सिक्खों में उनका बहुत अपमान हो गया। सिक्खों में पहले अपमान भी नहीं था, सम्मान भी नहीं था--किसी को पता ही नहीं था कि सरदार जी में ऐसे गुण हैं।
मगर वह पता ही जब चला--दोनों बातों का पता एक साथ चला। जब सुंदर सिंह ईसाई हो गए तो ईसाइयों को पता चला कि इनमें महान प्रतिभा छिपी है। यह तो मसीहा की हैसियत के आदमी हैं। और सिक्खों को पता चला कि यह आदमी शैतान है। इसने धर्मद्रोह किया।
ईसाइयों ने उनकी जगत भर में प्रशंसा की। जगह-जगह उनका सम्मान हुआ। पोप ने उन्हें निमंत्रित किया; दूर-दूर देशों में उन्होंने यात्राएं कीं, बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में उनको मानद उपाधियां दी गईं कि हिंदुस्तान में ऐसा आदमी ही पैदा नहीं हुआ। यह है महात्मा असली! क्योंकि उन्होंने घोषणा कर दी कि जीसस के मुकाबले और कोई भी नहीं--न नानक, न कबीर, न बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण--ये सब फीके पड़ गए हैं जीसस के सामने। बस, यही उनकी प्रतिभा थी।
मगर यहां सिक्खों की तो आग लग गई छाती में। अब सिक्ख कोई ऐसे तो नहीं
कि चुप बैठ जाएं। सिक्ख और चुप बैठ जाएं। असंभव। जब सुंदर सिंह वापस आए तो उनका पता ही नहीं चला वे कहां गए। सिक्खों ने सुनते हैं खातमा ही कर दिया उनका। किसने किया, यह भी पता नहीं है, मगर सिक्खों ने ही किया होगा और किसी को क्या पड़ी थी! किसी ने निकाल ली होगी कृपाण, सत श्री अकाल और फैसला कर दिया होगा। गए थे हिमालय की यात्रा को सुंदर सिंह, फिर लौटे ही नहीं। कोई पंच प्यारे पहुंच गए होंगे, कि अब तेरे को बताए देते हैं तेरी प्रतिभा! तूने धर्मद्रोह किया।
यही हालत गणेशवर्णी की थी। हिंदुओं में तो उनका विरोध था। जाति के वे सुनार थे। और जिस गांव से वे आते थे, दमोह से, जब मैं दमोह गया तो लोगों ने कहा, अरे वह सुनट्टा! मैंने कहा, तुम सुनट्टा कहते हो! पागल हो गए हो? दिगंबर जैनों में उनसे ज्यादा प्रतिष्ठित कोई आदमी ही नहीं है अब। जो जन्मजात दिगंबर मुनि थे, वे उनसे सब पीछे पड़ गए। और वे मुनि भी नहीं थे अभी।
दिगंबरों में पांच सीढ़ियां होती हैं। ब्रह्मचर्य से शुरू होता है; साधु पहले ब्रह्मचारी होता है, फिर छुल्लक होता है, फिर ऐसे बढ़ते-बढ़ते अंत में मुनि होता है। धीरे-धीरे छोड़ता जाता है। ब्रह्मचारी एक चादर रखता है, दो लंगोट रखता है। फिर छुल्लक चादर छोड़ देता है, दो लंगोट रखता है। फिर एलक, एक ही लंगोट रखता है। ऐसे बढ़ते-बढ़ते फिर मुनि, नग्न हो जाता है, कुछ भी नहीं रखता।
दिगंबरत्व दीक्षा का अर्थ होता है: नग्न दीक्षा। दिगंबर यानी बस आकाश
ही जिसके वस्त्र हैं। और दिगंबर होकर जो मरता है, वही मोक्ष जाता है। जब गणेशवर्णी मरे तो मरने तक वे छुल्लक ही थे। दिगंबरत्व की दीक्षा अभी उन्होंने नहीं ली थी। आकांक्षा तो थी, मगर हिम्मत नहीं जुटा पाए थे नग्न होने की। मरते वक्त, आखिरी क्षण में उन्होंने कहा कि जल्दी से मुझे दिगंबरत्व की दीक्षा दिलवा दो।
मर रहे हैं, चिकित्सकों ने कह दिया है कि बस, अब आखिरी घड़ी है। अब उन्होंने सोचा, अब आखिरी घड़ी क्या घबड़ाना? अरे, अब नंगा ही होना है, अब मरना ही है; तो घड़ी भर पहले ही नग्न हो जाओ। अगर नग्न होने से मोक्ष मिलना है तो यह अवसर चूकना ठीक नहीं। इतने सस्ते में मोक्ष मिलता हो तो चूकना ठीक है भी नहीं! मरते वक्त जल्दी से मुनि को बुलाया गया--क्योंकि मुनि की दीक्षा मुनि ही दे सकता है। कोई दिगंबर मुनि ही मुनि की दीक्षा दे सकता है। जब तक दिगंबर मुनि को बुला कर लाया गया तब तक वे बेहोश हो गए थे। उन्होंने होश खो दिया था। मगर उनको बेहोशी में ही दिगंबरत्व की दीक्षा दे दी।
अब बेहोशी में तुम किसी को भी दिगंबरत्व की दीक्षा दे दो। अरे, लंगोटी
ही थी, निकाल दी। वे बेहोश पड़े हैं, जंतर-मंतर पढ़ कर और लंगोटी अलग कर दी उनकी। और वे दिगंबर हो गए। मोक्ष प्राप्त हो गया। और बस, जीवन भर की साधना पूर्ण हो गई। और वह आदमी बेहोश है, उसको पता ही नहीं कि दिगंबर हुआ कि नहीं!

वे चाहे यही खयाल लेकर मरे हों, दुख में ही मरे हों, कि वह लंगोटी न छूटी सो न छूटी! उनको तो पता ही नहीं चलेगा।
अब तो तुम जिंदा को क्या मरे को ही दे दो। अरे, जब पता ही नहीं चलने का सवाल है, तो क्या फर्क पड़ता है। आदमी कोमा में है, बेहोश पड़ा है, कि मर गया-- सांस से क्या लेना-देना है--तो हर एक मुर्दे को ही दिगंबरत्व की दीक्षा दे दो और मोक्ष पहुंचा दो।
इन सज्जन ने, सन्मति जी सागर ने कहा, "अगर जरा देर पहले मुझे बता देते...।"
देखो तुम, दुष्टता का हिसाब कुछ आंको! कहने को तो ये अहिंसा से भरे हुए लोग हैं, मगर दुष्टता देखो! यह मुनि भी नहीं बोला कि पानी पिला देना था। आदमी मर रहा है, तो उसको पानी दे देना था; थोड़ी देर पहले मुझे कहा होता तो मैं कह देता कि पानी पिला दो, इसमें क्या बात है। छान कर पिला दो! मगर...! डिस्टिल्ड वाटर ले आओ; किसी भी तरह इस आदमी को बचा लो, मर रहा है। तुम नहीं पिला कर इसको मार रहे हो।
लेकिन मुनि ने और भी ऊंची बात बताई। उन्होंने कहा, तुमने अगर थोड़ी देर पहले मुझे कहा होता--पानी की तो बात ही नहीं उठाई, वह तो तुमने ठीक ही किया कि पानी नहीं दिया, नहीं तो भ्रष्ट हो जाता आदमी। दस दिन की साधना भी गई, उपवास भी गया, श्रम भी गया और पतित भी हो गए! वह तो अच्छा किया, वह तो सवाल ही नहीं उठता--और उन्होंने आगे का कदम बताया कि अगर मुझे बता दिया होता तो उनके कपड़े और उतार लेता।
बसंतीलाल कपड़े पकड़ते--क्योंकि अभी वे होश में थे, पानी मांग रहे थे। बसंतीलाल बड़े हैरान होते कि भैया, यह क्या कर रहे हो? मुझे पानी चाहिए और तुम कपड़े छीन रहे हो! मगर प्रियजन अगर उनके हाथ वगैरह पकड़ लेते तो करते क्या बसंतीलाल! दस दिन में कमजोर भी हो गए होंगे। भूखे दस दिन से पड़े थे, बीमार थे, उनकी हालत तो खस्ता हो रही होगी। उनको जबरदस्ती पकड़ कर कोई मुंह पर हाथ रख देता: तू चुप रह! मुनि महाराज जो कर रहे हैं करने दो! बसंतीलाल लाख चिल्लाते कि मुझे नंगा नहीं होना है; अरे, सब गांव के लोग देख रहे हैं, मुझे नंगा नहीं होना है, मुझे मोक्ष नहीं जाना है। मगर कोई सुनता! मोक्ष जैसी चीज, तुम्हें जाना हो कि न जाना हो, जिनको भेजना है वे भेजेंगे। ऐसे लोगों को पूछने लगे कि जाना है कि नहीं जाना है, कोई जाए ही नहीं! दे देंगे धक्का। और कोई बुरा काम थोड़े ही कर रहे हैं! काम तो अच्छा कर रहे हैं। इसलिए जबरदस्ती भी अगर कपड़े छीन लिए जाते तो भी घोषणा हो जाती कि वे मोक्ष को प्राप्त हो गए।
इस तरह की बातों को संन्यास कहोगे?
मैत्रेयी उपनिषद ठीक कहता है: "कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। इसी प्रकार, मैं संन्यासी हूं, ऐसा कह देने से भी कोई संन्यासी नहीं होता है।"
फिर संन्यासी कौन है?
"समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही संन्यास कहलाता है।"
अनुवाद में थोड़ी-सी भूल है। अक्सर मुझे अनुवादों में भूल दिखाई पड़ती है। और उसका कारण यह है कि अनुवाद करने वाले को खयाल भी नहीं होगा कि भूल कहां हो रही है। अनुवाद करने वाले ने तो भाव से ही अनुवाद किया है। उसने तो ठीक ही सोच कर अनुवाद किया है। लेकिन चूंकि उसको स्वयं कोई अनुभव नहीं है-- भाषा को जानता होगा, लेकिन चूंकि अनुभव नहीं है तो भूल होनी निश्चित है। "समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही...।"
एकता का कोई भाव होता है? अनुभव होता है। एकता का भाव का तो अर्थ हुआ
कि अभी हैं तो दो, मगर भाव एक का हो रहा है। जैसे दो प्रेमियों को होता है, कि दो शरीर और एक आत्मा। अरे, लाख तुम कहो कि दो शरीर और एक आत्मा, तुम्हें कोई मारेगा, तुम्हें कोई पीटेगा, तब पता चलेगा कि तुम पिट रहे हो और पत्नी खड़ी देख रही है!
फजलू बाहर खड़ा था अपने घर के और अंदर कुश्ती हो रही थी। पोस्टमैन ने आकर कहा कि तेरे पापा कहां हैं, फजलू? फजलू ने कहा कि पापा भीतर कुश्ती कर रहे हैं। पोस्टमैन ने भी खिड़की से झांक कर देखा, चीजें गिर रही हैं,

चंदूलाल और मुल्ला नसरुद्दीन में बड़े दांव-पेंच लग रहे हैं; घर के भीतर कुश्ती हो रही है, खुले बैठकखाने में, खिड़कियों में से लोग देख रहे हैं, मोहल्ले-पड़ोस के लोग झांक रहे हैं। पोस्टमैन ने पूछा कि अरे, ये दोनों आदमियों में कौन तेरे पापा हैं? फजलू ने कहा, इसी बात की तो कुश्ती हो रही है। तय कर रहे हैं कि कौन मेरे पापा हैं। यही तो झगड़ा है। और इसीलिए तो मैं यहां बैठा हूं, स्कूल नहीं गया हूं कि पक्का हो जाए कि कौन पापा है तो मैं स्कूल जाऊं। अब यह बात तो निर्णायक है कि है कौन पापा! और तुम मुझसे पूछ रहे हो, अभी तय ही नहीं हुई बात तो मैं क्या बताऊं!
यह जो जीव और परमात्मा की एकता का भाव! भाव नहीं होता, अनुभव होता है।
एक ही हैं। हां, दो हों तो फिर भाव की संभावना है। हैं तो दो मगर भाव एकता का हो रहा है। नहीं, जीव और परमात्मा दो कभी थे ही नहीं। दो की हमारी जो बात थी, वह भाव की बात थी। वह हमारी दृष्टि थी। वह हमारी भूल थी। वह हमारी भावना थी। अब जाना कि हम दो तो कभी थे ही नहीं, सदा एक थे। जब दो जानते थे तब भी दो नहीं थे, अब भी दो नहीं हैं। जिस दिन इस अनुभूति का अनावरण होता है कि अरे, मैं तो सदा ही इस अस्तित्व के साथ एक था--नहीं जानता था, यह बात और, मगर था तो सदा एक।
मूल सूत्र तो यही है: संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।
जिस दिन यह संधि अनुभव में आती है, यह जोड़ अनुभव में आता है, एक आनंद की लहर दौड़ जाती है, रोआं-रोआं पुलकित हो जाता है कि अहा, मैं तो सदा एक ही था और दो मान कर कितने दुख झेले! कितनी पीड़ा पाई! यह अवस्था ही समाधि है। समाधि का अर्थ है: मैं और परमात्मा दो नहीं। एकता का भाव नहीं, खयाल रखना, दोहरा दूं फिर, मैं और परमात्मा एक हैं, ऐसी प्रतीति नहीं। इसीलिए ज्ञानियों ने एकवाद शब्द का उपयोग नहीं किया, अद्वैतवाद शब्द का उपयोग किया--दो नहीं हैं। एक हैं, अगर ऐसा भी कहें तो खतरा है। अगर जोर दें कि मैं और परमात्मा एक, तो इस बात की संभावना है कि भीतर कहीं अभी भी लग रहा है कि हैं तो दो, मगर एक मान लिया है। इसलिए हमने इस देश में अद्वैतवाद शब्द गढ़ा। पश्चिम में जब पहली दफे उपनिषदों का अनुवाद होना शुरू हुआ तो उनको बड़ी हैरानी हुई कि अद्वैतवाद! एकवाद क्यों नहीं कहते? सीधी बात, उलटा कान क्यों पकड़ना? अगर एक ही हैं तो सिर्फ इतना कहो: एकवाद, मोनिज्म। लेकिन यह अद्वैतवाद, नान-डुआलिज्म, दो नहीं हैं, ऐसा उलटा कान क्यों पकड़ना!
उनकी समझ में बात कठिन थी, क्योंकि पश्चिम में मोनिज्म, एकवाद की धारणा के तो बहुत दार्शनिक हुए, लेकिन अद्वैतवाद शब्द ही पश्चिम की किसी भाषा में नहीं था। हो भी नहीं सकता था। क्योंकि जो एकवादी थे, वे दार्शनिक मात्र थे, और अद्वय का जो अनुभव है, दो नहीं, यह समाधि का अनुभव है। इसमें जोर इस बात का है कि दो हम कभी भी नहीं थे, अब भी नहीं हैं, कभी हो भी नहीं सकते थे, मगर भ्रांति थी हमारी।
जैसे रात तुम सोए और सपने में तुमने देखा कि तुम कहीं दूर चले गए, चांदत्तारों पर घूम रहे हो; और कोई ने हिला कर जगा दिया, तो तुम चांदत्तारों पर थोड़े ही जग जाओगे! जागोगे तो यहीं जहां सोए हो, अपने कमरे में। तुम यह थोड़े ही कहोगे कि भई, क्या किया तुमने भी, कैसी मुसीबत में डाल दिया, एकदम भागना पड़ा मुझे चांदत्तारों से! इतनी लंबी यात्रा और तुमने क्षण में करवा दी। तीर की तरह चलना पड़ा! किरण की गति से चलना पड़ा। बामुश्किल पहुंच पाया अपने कमरे में। यह कोई ढंग है किसी आदमी को ऐसा हड़बड़ा कर उठा देना! मैं कहां चांद पर था! नहीं, जागते ही तुम पाओगे कि चांद पर तुम थे ही नहीं; थे तो तुम यहीं, रात भर यहीं थे, मगर एक भ्रांति थी, एक स्वप्न था चांद पर होने का।
दो होना भ्रांति है, स्वप्न है। एक होना सत्य है। लेकिन एक होना भाव नहीं है। भाव तो फिर विचार की ही बात हो गई। विचार से थोड़ी गहरी। लेकिन भाव साधा जाता है और अनुभूति उघाड़ी जाती है।
मेरे पास एक सूफी फकीर को लाया गया था। तीस साल से उनकी यह भावदशा थी, भावाविष्ट थे, हर चीज में उन्हें परमात्मा दिखाई पड़ता था। वृक्ष के सामने खड़े हो जाएं और बातें करने लगें। उनके भक्त इससे बहुत प्रभावित होते थे। उनके शिष्य बहुत थे, शागिर्द बहुत थे। पत्थर के सामने खड़े हो जाएं और

बातें करने लगें--पत्थर से। और उनके शिष्यों का चेहरा देखने लायक था कि देखो, गुरुदेव किस अवस्था में हैं!
मैंने उनसे कहा, ऐसा करो कि इन्हें तुम तीन दिन मेरे पास छोड़ दो। जब उनके शागिर्द उन्हें छोड़ कर चले गए और उनको तीन दिन मेरे पास रहना पड़ा तो मैंने उनसे पहले दिन यह कहा कि मैं आपसे एक बात पूछता हूं: तीस साल से आपको यह अनुभव होता है? उन्होंने कहा, हां। हर चीज में मुझे परमात्मा दिखाई पड़ता है। दीवार में, छप्पर में, फर्श में, हर जगह मुझे परमात्मा दिखाई पड़ता है। परमात्मा ही परमात्मा दिखाई पड़ता है। मैंने कहा, यह तो ठीक है। शुरुआत कैसे हुई? उन्होंने कहा, शुरुआत? मैंने इस तरह का भाव करना शुरू किया कि वृक्ष नहीं है, परमात्मा है। पहाड़ नहीं है, परमात्मा है। यह सूरज नहीं ऊग रहा है, परमात्मा ऊग रहा है, परमात्मा की किरणें फैल रही हैं। ये चांदत्तारे परमात्मा हैं। मैंने भाव करना शुरू किया। मैंने कहा, भाव तो कल्पना हुई। जब तुमने भाव करना शुरू किया था तो तुम्हें पता था कि सच में ऐसा है? उन्होंने कहा, कैसे पता हो सकता था? पता तो बाद में चला। जब भावना प्रगाढ़ हो गई तब पता चला कि जो भाव किया था वह ठीक था।
मैंने कहा, यह तो बहुत अजीब बात हो गई। तुम भाव कुछ और भी करते, तो वह
भी प्रगाढ़ हो जाता। तो फिर वह भी सत्य हो जाता। बुनियाद में ही झूठ है, आधार में झूठ है, उसी झूठ पर तुमने यह सारा मंदिर खड़ा कर रखा है।
मैंने कहा, एक काम करो! तीस साल तुमने भावना की तब तुम अनुभव कर पाते
हो कि सब में परमात्मा है, तीन दिन के लिए यह भावना करना छोड़ दो। थोड़े तो वे झिझके, थोड़े तो डरे। मैंने कहा, डर रहे हो, इससे ही लगता है कि तुम्हें शक है कि तीन दिन में ही कहीं ऐसा न हो कि खिसक जाए बात।
नहीं, उन्होंने कहा, मैं क्यों डरूंगा? मुझे अनुभव ही हो रहा है कि सबमें परमात्मा है।
तो मैंने कहा, फिर तीन दिन में क्या हर्जा है? तीन दिन होने दो अनुभव, मगर तुम भाव मत करो। बोलना ही मत। न झाड़ से, न पत्थर से, न दीवार से। तीन दिन तुम यहां मेरे पास रहो--शागिर्दों को मैंने विदा कर दिया है, वे कोई आएंगे नहीं, तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं। मैं हूं और तुम हो। और तीन दिन तुम्हें कुछ करने नहीं दूंगा यह भावना।
झिझकते-झिझकते, डरते-डरते राजी हुए। और तीसरे दिन तो मुझ पर एकदम बिगड़ पड़े, नाराज ही हो गए। कहने लगे, मेरी तीस साल की साधना खराब कर दी। मैंने कहा, तुम थोड़ा सोचो तो! जो चीज सच थी, वह तीन दिन में भूल सकती है? वह सच थी ही नहीं। वह सिर्फ तुमने भाव किया हुआ था। और भाव तो आदमी कुछ भी कर ले। तीस साल तक अगर गाय में भैंस देखे तो भैंस दिखाई पड़ने लगेगी। इसमें कौन-सी खूबी की बात है। अरे, तीस साल लंबा समय है। यह तो सिर्फ आत्म-सम्मोहन हुआ। तुम जो चाहो वह हो जाएगा। सोने में मिट्टी दिख सकती है, मिट्टी में सोना दिख सकता है। इस तरह कोई अनुभूति तक नहीं पहुंचता। यह तो सिर्फ आत्म-सम्मोहित अवस्था है। और तीन दिन में फिसल गई। तीस साल में सधी और तीन दिन में फिसल गई। तो तुम खुद ही सोचो। नाराज मत होओ।
बामुश्किल वे शांत हुए। मैंने कहा, खुद विचार करो कि तीस साल का अनुभव अगर तीन दिन में गिर जाता हो तो कौन मजबूत है? और अब मत समय को गंवाओ! तीस साल तुमने यूं ही गंवाए, पानी पर लकीरें खींचते रहे। इस तरह नहीं कोई जाना जाता है कि मैं और परमात्मा एक हैं। मैं और परमात्मा एक हैं, यह तो समाधि का अनुभव है। तुम शांत हो जाओ, परमात्मा की फिकर छोड़ो--तुम्हें पता ही क्या परमात्मा का? है भी या नहीं, यह भी पता नहीं है। तो झूठों से शुरू मत करो! यात्रा का पहला कदम बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसी से सब कुछ निर्धारित होगा। उससे दूसरा कदम निकलेगा। तीसरा कदम निकलेगा। अगर पहला ही गलत है तो सब कदम गलत हो जाएंगे।
जो लोग विश्वास करके धर्म के जगत में उतरते हैं, वे झूठ में ही जीते हैं। धर्म तो अनुसंधान है, खोज है। और खोजी को विश्वासी नहीं होना चाहिए। विश्वास खोज में बाधा है। खोजी को तो कोई आकांक्षा-अभीप्सा भी नहीं होनी चाहिए। परमात्मा को पाने की भी नहीं, सत्य को पाने की भी नहीं; क्योंकि पता नहीं सत्य है भी या नहीं! अभी जिस चीज का पता ही नहीं है, उसको पाने की

अभीप्सा कैसे करोगे? अभी तो चुपचाप मौन सन्नाटे में चलना चाहिए। अभी तो मौन होना सीखो!
उनसे मैंने कहा कि निर्विचार होना सीखो। और जब निर्विचार की अवस्था सघन होगी, उस क्षण तुम्हें जो दिखाई पड़ेगा, वह सत्य होगा। फिर तीन दिन तो क्या, तीन जन्मों भी कोई चेष्टा करे तो तुम्हें सत्य से डिगा नहीं सकता। न सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश है
तेरी जुस्तजू में जो खो गई मुझे उस नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या ये नजर-नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

तुझे दो जहां की खुशी मिली मुझे दो जहां का अलम मिला वो तेरी नजर की तलाश थी ये मेरी नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

मेरी राहतों को मिटाके भी तेरे गम ने दी मुझे जिंदगी तेरा गम नहीं यूं ही मिल गया मेरी उम्र भर की तलाश है न सुकूने-दिल की है आरजू...

रही नूर मेरी ये आरजू न रहे ये गर्दिशे-जुस्तजू
जो फरेब जल्वां न खा सके मुझे उस नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

खोज क्या है?
जो फरेब जल्वां न खा सके
जो धोखा न खा सके।
मुझे उस नजर की तलाश है
लेकिन तुम तो धोखे से ही बात शुरू करते हो। लोगों ने तुमसे कहा है सदियों-सदियों से कि पहले मानो, तब जान सकोगे। मैं तुमसे कहता हूं, यह बड़ी झूठी बात है, यह बड़ी जहरीली बात है। जिसने मान लिया, वह तो कभी भी जान न सकेगा। माना कि भटका। माना कि खोया। अगर जानना है तो मानना मत! क्योंकि मान ही लिया तो फिर खोजोगे कैसे? नजर ही खराब हो गई। नजर पर चश्मा चढ़ गया। नजर पर एक रंग छा गया। जो मान लिया, उसका रंग। फिर वही तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा। अब नजर पर हरे रंग का चश्मा चढ़ा लो, दुनिया हरी दिखाई पड़ने लगेगी। और फिर तुम कहोगे, दुनिया हरी है, क्योंकि मुझे हरी दिखाई पड़ती है। और तुम गलत भी नहीं कह रहे हो, तुम्हें हरी दिखाई पड़ती है। लेकिन यह चश्मे के कारण। आंख से चश्मे उतारने हैं, पहनने नहीं हैं। आंख से पर्दे गिराने हैं। जो फरेब जल्वां न खा सके मुझे उस नजर की तलाश है
वह दृष्टि, वह निर्मल दृष्टि, वह निर्दोष दृष्टि, जो धोखा न खा सके।
लेकिन कोई गणेश जी की पूजा कर रहा है। यह कोई नजर है! कोई हनुमान जी की पूजा कर रहा है। कोई हनुमान चालीसा रट रहा है। कोई नमोकार मंत्र दोहरा रहा है! ये चश्मे हैं। कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, ईसाई है, बौद्ध है--ये सब चश्मे हैं। तुमसे मैं कहना चाहता हूं: नानक सिक्ख नहीं थे। इसलिए अगर नानक से तुम्हें थोड़ा भी प्रेम हो तो सिक्ख मत होना। महावीर जैन नहीं थे। अगर महावीर से थोड़ा भी प्रेम हो तो जैन मत होना। और ईसा ईसाई नहीं थे। शब्द ही उन्होंने नहीं सुना था कि ईसाई जैसी भी कोई चीज होती है। और बुद्ध बौद्ध नहीं थे।
जरा थोड़ा सोचो तो! बुद्ध बुद्ध हो गए बिना बौद्ध हुए, तो तुम क्यों न
हो सकोगे? और नानक बिना सिक्ख हुए सत्य को पा लिए, तो तुम क्यों न पा सकोगे? और कबीर क्या कबीरपंथी थे? आज तक जिन्होंने भी जाना है उन्होंने जाना ही

है, माना नहीं। और तुम सिर्फ मान रहे हो। मानना उधार है, जानना अपना है। मानने का अर्थ है: किसी और ने कह दिया है और तुमने मान लिया है।
जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
हनुमान जी में खोज रहे हो? पहले यह भी तो पता कर लो कि हनुमान जी! जरा इनकी शकल तो देखो! थोड़ा विचार तो करो! आदमी हो तुम, क्या कर रहे हो?
एक मैंने प्यारी कहानी सुनी है। रामदास राम की कथा कहते थे। कहानी है
कि कथा वे इतनी प्यारी कहते थे कि हनुमान भी छिप कर सुनने आते थे। और उन्हें बड़ा मजा आता था कहानी सुनने में। रामदास जिस भाव से कहते थे, जिस अहोभाव से कहते थे--हालांकि हनुमान तो प्रत्यक्षदर्शी थे, उन्होंने तो देखी थी कहानी होते, मगर उनको भी सुनने में मजा आता था। रामदास के मुंह से सुन कर उनको भी बहुत-सी बातें पहली दफा दिखाई पड़नी शुरू हुई थीं। थे तो हनुमान जी ही! देखा जरूर होगा, मगर जब रामदास जैसे व्यक्ति अर्थ करें तो नई-नई अभिव्यंजनाएं होती हैं। नए फूल खिल जाते हैं। जहां कुछ भी न था वहां मरूद्यान खड़े हो जाते हैं। मरुस्थल मरूद्यानों में बदल जाते हैं। शब्दों में नए-नए काव्य, नए-नए गीत, नए-नए स्वर प्रकट होने लगते हैं।
मगर एक दिन बहुत मुश्किल हो गई। क्योंकि रामदास वर्णन कर रहे थे हनुमान जी का ही, कि हनुमान जी गए सीता से मिलने अशोक वाटिका में और उन्होंने अशोक वाटिका में यह देखा कि चारों तरफ सफेद ही सफेद फूल खिले हुए हैं। चांदनी के, जुही के, चमेली के, सफेद ही सफेद फूल। अशोक वाटिका में सफेद ही सफेद फूल थे। हनुमान जी ही ठहरे! यूं तो वे कंबल वगैरह ओढ़ कर छिप कर बैठते थे कि पूंछ वगैरह दिखाई न पड़ जाए किसी को। खड़े हो गए। भूल ही गए कि हम हनुमान जी हैं और हमको इस तरह बीच में खड़े नहीं होना चाहिए। कहा कि बस, और सब तो ठीक है, यह बात गलत है।
रामदास जैसे लोग, इस तरह की कोई हरकत करे!...जैसे यहां कोई हनुमान जी खड़े हो जाएं!...तो रामदास ने कहा, चुप! चुपचाप बैठ जा! हनुमान जी से कह दिया कि चुपचाप बैठ जा! रामदास जैसे फक्कड़ों का तो अपना हिसाब है। वह तो हनुमान जी को क्या, रामचंद्र जी को कह दें कि चुप! बीच-बीच में नहीं बोलना! शांति रखो!
हनुमान जी ने कहा, अरे, हद हो गई। कंबल भी फेंक दिया, कहा कि पहले देखो
तो मैं कौन हूं! मैं खुद हनुमान हूं! और मुझसे तुम कह रहे हो कि चुप बैठ जा! मैं गया था अशोक वाटिका कि तुम गए थे कि तुम्हारा बाप गया था? मैं गया था! और मैं तुमसे कहता हूं कि फूल सब लाल रंग के थे, सफेद नहीं थे। अपनी कहानी में बदलाहट कर लो!
रामदास तरह के लोग तो बड़े अलग ढंग के होते हैं, उन्होंने कहा, तुम हनुमान हो या कोई, तमीज रखो, बदतमीजी नहीं चलेगी! उठाओ अपना कंबल और शांति से बैठ जाओ! और मैं कहता हूं कि फूल सफेद थे और कहानी में फूल सफेद ही लिखे जाएंगे, मेरी कहानी को कोई नहीं बदल सकता।
हनुमान जी तो बहुत गुस्से में आ गए। उन्होंने कहा कि मैं नहीं चलने दूंगा; तुम्हें मेरे साथ रामचंद्र जी के पास चलना पड़ेगा। यह फैसला उन्हीं के सामने होगा। अब तुम मानते नहीं हो और मैं चश्मदीद गवाह हूं और तुम देख रहे हो कि मैं हनुमान हूं।
सारी जनता प्रभावित हो गई कि बात तो ठीक है, हनुमान जी खुद खड़े हैं, अब
जब ये कह रहे हैं तो यह रामदास को क्या हुआ है? बहक गए हैं क्या? अरे, बदल लें, इतनी-सी बात है! मगर रामदास जैसे लोग बदलते नहीं। चाहे कुछ भी हो जाए! उन्होंने कहा, ठीक है, रामचंद्र जी के पास चलो, सीता मैया के पास चलो--जहां चलना हो।
हनुमान जी उनको बिठा कर कंधे पर रामचंद्र जी के पास ले गए। रामचंद्र
ने कहा कि हनुमान, पहले तो तुम्हें वहां जाना नहीं था। और गए अगर तुम तो अपने कंबल में छिपे रहना था। और अगर तुम्हें बात गलत जंच रही थी तो एकांत में जाकर उनसे बात करनी थी। और फिर मुझसे भी पूछ लेना था, इसके पहले कि विवाद करो। रामदास जैसे आदमी से विवाद नहीं करना चाहिए।
अरे, हनुमान जी ने कहा, हद हो गई! आप भी इस तरह से बोल रहे हो! पक्षपात
चल रहा है! न्याय का तो कहीं कोई हिसाब ही न रहा! मैं गया अशोक वाटिका कि तुम गए थे, जी? न तुम गए, न ये रामदास का बच्चा गया, कोई नहीं गया, मैं गया

था! तुम हो कौन? यह मेरी भलमनसाहत है कि मैं तुम्हारे पास लाया। रामदास का हाथ पकड़ कर कहा कि चलो जी, सीता मैया के पास चलो! वही एक गवाह हैं, क्योंकि वे वहां रही थीं। इनको क्या पता? नाहक ही बीच में अड़ंगेबाजी कर रहे हैं। न इनको पता है, न तुमको पता है।
सीता के पास ले गए वे उनको। सीता ने कहा कि हनुमान, शांत हो जाओ, फूल सफेद ही थे! रामदास जैसे आदमी से जिद्द नहीं करनी चाहिए। ये कहते हैं तो सफेद ही थे।
हनुमान थोड़े ठंडे हुए कि अब बड़ा मुश्किल हो गया मामला! अब कहां से--और
तो कोई गवाह ही नहीं है! अब सीता भी बदल गईं! जिनको मैं ही बचा कर लाया और इतने उपद्रव किए--क्या-क्या उपद्रव नहीं करने पड़े! कहां-कहां की झंझटें सिर पर नहीं आईं! और ये रामदास ऐसा कौन-सा खास काम कर दिया है जिसकी वजह से रामचंद्र जी भी इसके साथ हैं, सीता भी कहती हैं कि ठीक ही कहते हैं, सफेद ही थे। तो हनुमान ने कहा कि मैं इतना भी पूछ सकता हूं कि यह सब मेरे साथ अन्याय क्यों हो रहा है?
सीता ने कहा, अन्याय नहीं हो रहा है, हनुमान, तुम समझे नहीं; तुम इतने क्रोध में थे कि तुम्हारी आंखों में खून भरा हुआ था, इसलिए तुम्हें फूल लाल दिखाई पड़े थे। फूल तो सफेद ही थे। तुम्हारी दृष्टि क्रोध से भभक रही थी, सुर्ख हो रही थीं तुम्हारी आंखें--मैंने तुम्हारी आंखें देखी थीं--आग जल रही थी उनमें, खून उतरा हुआ था, तुम पर खून सवार था, तुम्हें कैसे सफेद फूल दिखाई पड़ते? तुम्हें हर चीज लाल दिखाई पड़ रही थी। रामदास जो कहते हैं ठीक कहते हैं, फूल सफेद ही थे।
जब दृष्टि एक रंग से भरी हो, तो यह भूल हो जानी स्वाभाविक है। क्रोधित आदमी कुछ देख लेता है, शांत आदमी कुछ और देखता है। विचार से भरा हुआ व्यक्ति कुछ देखता है, निर्विचार से भरा हुआ व्यक्ति कुछ और देखता है। यह समाधि का अनुभव है।
जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या ये नजर-नजर की तलाश है
सच्चा खोजी तो नजर की तलाश करता है। उस नजर की जिस पर कोई पर्दा न हो।
उस दृष्टि की, उस सम्यक दृष्टि की, उस सम्यक दर्शन की, उस समाधि की, उस संबोधि की।
मैत्रेयी उपनिषद का सूत्र स्पष्ट है कि समाधि में जीव और आत्मा की दुई मिट जाती है। वे दो नहीं रह जाते। कभी थे भी नहीं, यह भी अनुभव हो जाता है। दुई हमारी भ्रांति थी। जैसे तुमने दो और दो चार गलती से पांच जोड़ रखे हैं। हिसाब करने बैठे हो, दो और दो चार तुमने गलती से पांच लिख दिए। फिर किसी ने तुम्हें बताया कि दो और दो चार होते हैं, पांच नहीं।
तो क्या तुम सोचते हो जब तुमने पांच लिखे थे तब दो और दो पांच हो गए थे? जब तुमने पांच लिखे थे तब भी वे चार ही थे। तुम लाख पांच लिखो, दो और दो तो चार ही रहेंगे। और अब जब तुम्हें पता चल गया है कि दो और दो चार हैं, तो क्या तुम कहोगे कि अब मुझे भाव हुआ कि दो और दो चार ही होते हैं?
नहीं, अब तुम कहोगे, मेरा पहला भाव गलत था। पहला भाव था मेरा कि दो और
दो पांच होते हैं; अब जो हो रहा है, यह सत्य है कि दो और दो चार हैं। पहला था भाव और अब है अनुभूति।
कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु।
संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।।
समाधि में अनुभव होता है: दो नहीं हैं। और इस अनुभूति का नाम ही संन्यास है। इसलिए कोई संसार में करे कि पहाड़ में करे, कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझसे तुम पूछो तो मैं कहूंगा: संसार में रह कर ही यह अनुभव करना उचित है, क्योंकि वहां परीक्षा है; वहां अवसर है परखते रहने का; कसौटी है।

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या?
रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, हमन को इंतजारी क्या?
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सर पटकता है।

हमन हरि-नाम रांचा है, हमन दुनिया से यारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागा है, हमन को बेकरारी क्या?
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सर बोझ भारी क्या?

ये सिर पर बहुत-से विश्वासों और शास्त्रों का बोझ, सिद्धांतों का बोझ व्यर्थ का भार है।
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
दो है नहीं, दुई हमारे दिल की भ्रांति है। जब यह दुई की भ्रांति गिर जाती है, तब समाधि है। समाधि में समाधान है। और समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन का नाम संन्यास है।

अगर है शौक मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा।
जला कर खुदनुमाई को, भसम तन पर लगाता जा।।
पकड़ कर इश्क की झाडू, सफा कर हिजरए-दिल को।
दुई की धूल को लेकर मुसल्लह पर उड़ाता जा।।
मुसल्लह फाड़, तसबीह तोड़, किताबें डाल पानी में।
पकड़ तू दस्त फरिश्तों का, गुलाम उनका कहाता जा।।
न मर भूखों, न रख रोजाः, न जा मस्जिद, न कर सिजदा।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे-शौक पीता जा।।
हमेशा खा, हमेशा पी, न गफलत से रहो इकदम।
नशे में सैर कर, अपनी खुदी को तू जलाता जा।।
न हो मुल्ला, न हो ब्रह्मन, दुई को छोड़ कर पूजा।
हुक्म है शाह कलंदर का, अनलहक तू कहाता जा।।
कहे मंसूर मस्ताना, मैंने हक दिल में पहचाना।
वही मस्तों का मयखाना, उसी के बीच आता जा।।

समाधि की शराब पीओ। उसकी मस्ती में डूबो। और जब तुम्हारे जीवन में वह शराब बहेगी, तब संन्यास है। संन्यास उस मस्ती का नाम है जहां दुई गिर जाती है, जहां हम चांदत्तारों, आकाश-बादलों, सूरज-पहाड़ों, सबके साथ अपने को एकात्म रूप से, सदैव शाश्वत रूप से जुड़ा हुआ पाते हैं। कभी टूटे नहीं और न कभी टूट सकते हैं, इस बात की अपरिहार्य प्रतीति संन्यास है।
आज इतना ही।

मेरा स्वर्णिम भारत-31

धर्म है परम भोग
(Note: from Jo Bole To Harikatha (जो बोलैं तो हरिकथा) #3)

पहला प्रश्न: भगवान,
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत।।
सब सुखी हों, सब निरोग हों, सब कल्याण को प्राप्त हों, कोई भी दुखभागी
न हो।
आप्तपुरुषों का यह मंगल-वचन क्या कभी सच होगा?

पूर्णानंद!
यह तुम पर निर्भर है। यह तो आशीष है, लेकिन इसे पूरा करने के लिए भूमिका तो तुम्हें जुटानी होगी।
जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो चाहा है कि सभी जान लें। जिन्होंने पाया है, उन्होंने प्रार्थना की है प्रभु को कि सब को मिले। स्वाभाविक है कि जिन्होंने आनंद को पीया है, वे जब तुम्हें दुख में डूबा हुआ देखते हैं, तो हैरान भी होते हैं, पीड़ित भी होते हैं। हैरान इसलिए होते हैं कि दुख का कोई भी कारण नहीं--और तुम दुखी हो!
दुख तुम्हारे झूठ आधारों पर निर्भर है। दुख के तुम स्रष्टा हो। कोई
और उसे बनाता नहीं; तुम ही रोज सुबह से सांझ मेहनत करते हो। जिस चिता में तुम जल रहे हो, उसकी लकड़ियां तुमने जुटाई हैं। उसमें आग भी तुमने लगाई है। चीखते-चिल्लाते भी हो कि कैसे इस जलन से छूटूं, लेकिन हटते भी नहीं वहां से! सरकते भी नहीं! कोई सरकाना चाहे, तो दुश्मन मालूम होता है। कोई हटाना चाहे, तो तुम उससे झगड़ने को तैयार हो। तुम्हारी चिता है! तुम्हारी संस्कृति है! तुम्हारा धर्म है! तुम्हारे संस्कार हैं--कैसे तुम छोड़ दोगे! तुम्हारे शास्त्र हैं, कैसे तुम छोड़ दोगे! छाती से लगाए हुए हो--अपनी मौत को। और जब मैं कहता--अपनी मौत को--तो मेरा अर्थ है: जो भी मर चुका है, उसे जब तक तुम छाती से लगाए हो, तब तक सड़ोगे, परेशान होओगे।
आप्तपुरुष प्रार्थना करेंगे, आशीष देंगे। यूं तो बरसा भी होती है, लेकिन घड़ा उलटा रखा हो, तो बरसा क्या करे! मेघ तो आए थे कि भर देते, मगर घड़ा उलटा रखा था। और घड़ा सीधा होना न चाहे! उसके उलटे होने में भी मोह-आसक्तियां बन गई हों। उलटे होने को ही उसने जीवन-चर्या समझ लिया हो! उलटा होना ही उसकी दृष्टि हो, उसका दर्शन हो। उसका भरोसा हो कि शीर्षासन करने से ही परमात्मा मिलता है--तो लाख बरसा करें बादल, चमकें बिजलियां, लेकिन घड़ा खाली का खाली रहेगा।
फिर कुछ घड़े हैं, जो उलटे भी नहीं हैं, मगर फूटे हैं। और उन्होंने फूटे होने में अपने न्यस्त-स्वार्थ जोड़ रखे हैं। फूटे होने में वे गौरव का अनुभव करते हैं! छिद्रों को वे आभूषण मानते हैं! तो लाख बरसा करें बादल, और घड़ा सीधा भी रखा हो, लेकिन सछिद्र हो, तो कैसे भरेगा? भरता भी रहेगा और खाली भी होता रहेगा।
एक सूफी फकीर के पास एक युवक ने आकर पूछा कि मैं बहुत दार्शनिकों के पास गया हूं, बहुत मनीषियों का सत्संग किया है, लेकिन मेरी समस्याएं सुझलती नहीं। किसी ने मुझे आपके पास भेजा है। कहा है कि वहां सुलझ जाएं, तो सुलझ जाएं, नहीं तो फिर समझना कि सुलझेंगी ही नहीं। क्योंकि यह आखिरी व्यक्ति है, जो सुलझा दे तो सुलझा दे।
उस फकीर ने कहा कि तेरी समस्याएं पीछे सुलझाऊंगा। अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा था। मगर यह हो सकता है कि तू भी मेरे साथ चल, और कौन जाने पानी भरते-भरते ही बात बन जाए तो बन जाए! तेरी समस्याएं भी सुलझ जाएं--मेरा पानी भी भर जाए!
युवक तो समझा कि यह आदमी पागल है! इसके पानी भरने से और मेरी समस्याओं
का क्या संबंध? लाख यह पानी भरे, मेरी समस्याएं इसने सुनीं भी नहीं अभी;

पूछी भी नहीं! मैंने अभी कुछ कहा भी नहीं कि मेरी तकलीफ क्या है, मेरी पीड़ा क्या है! और यह पानी भरने से हल करने लगा! मैं भी किस पागल के पास आ गया! दूर से यात्रा करके आया! जिन्होंने भेजा है, मालूम होता है, मजाक किया है। लगता है: थक गए होंगे मेरे प्रश्नों से, तो इस महामूढ़ के पास भेज दिया! लेकिन अब आ ही गया हूं, तो चलो, इतना और सही। चार कदम और सही। कुएं तक और चला चलूं। रास्ते में उस फकीर ने कहा, लेकिन एक शर्त खयाल रखना। जब मैं पानी भरूं, तो बीच में मत बोलना। बोलना ही मत। अगर इतनी संवर कर सके तू, इतना संयम कर सके तो मैं पक्का वायदा करता हूं कि तेरी सारी समस्याओं को सुलझा दूंगा। समझ कि सुलझा ही दीं। तू फिक्र छोड़। मगर इतना संयम तू दिखाना कि जब मैं पानी भरूं, तो बीच में मत बोलना, चाहे लाख उत्तेजना उठे। जैसे खुजली उठती है, ऐसी उठेगी उत्तेजना!
वह युवक भी सोचने लगा कि मेरी समस्याओं का इसको पता नहीं। कहां की खुजली; कहां का पानी! ये बातें क्या कर रहा है! पर उसने कहा, मैं क्यों बोलूंगा; तू भर पानी!
लेकिन मुश्किल हो गया--न बोलना मुश्किल हो गया। क्योंकि जब उस फकीर ने बालटी अपनी कुएं में डाली, तो वह देख कर दंग रह गया। बालटी में छेद ही छेद थे! जैसे छेदों से ही मिल कर बनायी गई हो! इस बालटी में कब पानी भरेगा! अनंतकाल में भी नहीं भरने वाला है। पक्का पागल है यह आदमी--और मुझसे कहता है: बोलना मत! अब न बोलूं तो कैसे! मगर फिर भी उसने कहा कि थोड़ी देर तो संयम रखूं। देखूं--यह करता क्या है!
उस फकीर ने बालटी डाली। खड़खड़ाई बहुत। आवाज की बहुत कुएं में। और कुएं में बालटी गई, तो छेद वाली थी, तो भी भर गई। जब पानी में डूबी रही, तो भरी हुई रही। देख ली झांक कर उसने कि बालटी भर गई है, फिर खींचना शुरू किया। इधर बालटी ऊपर उठी पानी से कि पानी गिरना शुरू हुआ। बड़ा शोरगुल कुएं में मचा पानी के गिरने का। ऊपर तक आते-आते बालटी फिर खाली हो गई थी। उसने फिर बालटी डाली। जब तीसरी बार उसने बालटी डाली, उस युवक ने कहा, ठहरिए महानुभाव! अब बहुत हो गया। बर्दाश्त की एक सीमा होती है। इस बालटी में जन्मों-जन्मों तक पानी भरने वाला नहीं। मैं कब तक खड़ा रहूंगा! इस बालटी में पानी भर सकता ही नहीं!
उस फकीर ने कहा, तुमने शर्त तोड़ दी। अब तुम रास्ते लग जाओ। अब तुम बात
ही मत उठाओ। मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं। तुममें शिष्य होने की पात्रता ही नहीं है। मैंने कहा था--चुप रहना।
उस युवक ने कहा, तो मैं भी आपको कहे देता हूं कि अगर यह शिष्य होने की पात्रता है, तो तुम्हें जिंदगी में कोई शिष्य नहीं मिलेगा। कब तक चुप रहते! तीन बार देख चुका अपनी आंखों से। यह तो तीस हजार बार में भी नहीं भरने वाली! गिनती का कोई सवाल ही नहीं है। यह जन्मों-जन्मों में नहीं भरने वाली है।
उस फकीर ने कहा, अगर इतनी अकल तुझमें है, सच में अगर इतनी अकल तुझमें है, तो मेरे पास आने की जरूरत ही न होती। लग--अपने रास्ते लग जा।
जब उसने यह कहा--युवक चल तो पड़ा, लेकिन रास्ते में सोचने लगा: उसने बात
तो पते की कही कि अगर इतनी अकल तुझमें होती! कुछ मामले में राज तो मालूम पड़ता है। यह आदमी पागल तो मालूम होता है, लेकिन सुना है कि कभी-कभी परमहंसों में भी पागलों जैसी लक्षणा होती है। कौन जाने--मैं थोड़ी देर चुप ही रहता। देखता। आखिर यह भी तो थकता। मुझे तो खड़े ही रहना था; इसको तो भरना भी था। खींचता, फिर गिराता; फिर खींचता, फिर गिराता। इसको पहले थकने देना था। और यह बूढ़ा आदमी, मैं जवान आदमी; मैं देखने में थक गया। इतनी जल्दी क्या थी! थोड़ी देर रुक ही जाता घंटे दो घंटे!
रात भर सो न सका। सुबह ही वापस फकीर के पास पहुंच गया। पैरों पर गिरा
और कहा, मुझे माफ कर दो। मेरी भूल थी। मैं संयम न रख सका। मैं शर्त पूरी न कर सका।
फकीर ने कहा, लेकिन मुझे कुछ और कहना नहीं है। इतना ही कहना है कि बालटी फूटी हो, तो जन्मों-जन्मों तक भी कुएं से पानी भरो, तो नहीं भरेगा। यह तुझे दिखाई पड़ गया। अब तू अपनी बालटी की फिक्र ले। तेरी समस्याएं क्या हैं--तेरी बालटी का फूटा होना।

यूं तो अमृत प्रतिपल बरस रहा है; परमात्मा हर घड़ी मौजूद है; रोशनी चारों तरफ तैर रही है--और तुम अंधेरे में खड़े हो! जरूर आंख बंद होगी! और तुम चीख-पुकार मचा रहे हो कि बड़ा अंधेरा है! आंख भी नहीं खोलते! आंख बंद करने में तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ हैं। अंधे होने में तुम्हें सुविधा है कुछ। आंख खोलने में तुम्हें डर है।
मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन में यात्रा कर रहा था। टिकिट चेकर आया। मुल्ला से टिकिट पूछी उसने। सूटकेस खोल डाला; बिस्तरा खोल डाला। एक-एक सामान उलट-पलट डाला। पूरे डब्बे में सामान फैला दिया। टिकिट चेकर भी घबड़ा गया। उसने कहा कि भई मुझे पूरी ट्रेन के यात्रियों की टिकिटें देखनी है। अगर एक-एक यात्री इतना समय ले! ऐसा क्या छिपा कर रखा है टिकिट! मामला क्या है? सारा बिस्तर खोल डाला। तकिए की खोल खींच कर बाहर निकाल ली, जैसे उसके अंदर टिकिट हो! बिस्तर में रखे एक-एक कोट-कमीज की जेबें टटोल डालीं! तुम कर क्या रहे हो?
सारे कपड़े देख डाले। खुद के कपड़े जो पहने हुए थे वे देख डाले। और जब वह टिकिट कलेक्टर की जेब में हाथ डालने लगा, तो उसने कहा, ठहर! तू बिलकुल पागल है। तेरी टिकिट मेरी जेब में कहां से होगी! और तू तो ऐसा लगता है जैसे पूरी ट्रेन के आदमियों का सामान देखेगा! भाड़ में जाने दे टिकिट। तू जा भैया। तुझे जहां जाना हो, जा! मगर एक बात पूछना है तुझसे। कि तूने सब देख डाला, मगर यह तेरे कोट की जो ऊपर की जेब है, यह तूने नहीं देखी?
उसने कहा, उसकी तो तुम बात ही मत उठाना। उस जेब को मैं कभी देखूंगा ही नहीं। जब तक मेरी सांस चलती है, मैं उस जेब को नहीं देखूंगा!
उसने कहा, क्यों? यह...!
तब तक तो पूरा डब्बा भी उत्सुक हो गया धीरे-धीरे। भीड़ लग गई कि बात क्या है! आखिर इस जेब की क्या बात है! इसको क्यों नहीं देखते हो! दूसरों तक की जेबें देखने लगा। टिकिट कलेक्टर की जेब में कहां से तेरा टिकिट हो सकता है! मगर अपनी जेब नहीं देखता!
उसने कहा, देखो जी, यह है बात निजी। यह तो सभ्य आदमियों को पूछनी नहीं चाहिए। असभ्यता है यह। मगर अब तुम जिद्द ही किए हो, तो कहे देता हूं। यह जेब मैं जिंदा रहते नहीं देखूंगा, इसलिए नहीं देखूंगा कि यही जेब तो अब मेरी एकमात्र आशा है कि शायद इसमें टिकिट हो! अगर इसको भी मैंने देख लिया और टिकिट न पाई, फिर क्या होगा! अंतिम संभावना भी गई! पहले मुझे औरों की जेबें देख लेने दो। पूरा डब्बा छानूंगा। ट्रेन पड़ी है। अरे कहीं भी सरक गई हो; इधर-उधर हो गई हो। किसी ने उठाकर रख ली हो। इस जेब को तो मैं बचाए रखूंगा। इसमें मेरी सारी आशा सुरक्षित है!
इस पर तुम हंसते हो, मगर यह तुम्हारी दशा भी है। कुछ जेबें हैं, जो तुम कभी नहीं देखते। उनमें तुम्हारी आशा सुरक्षित है। तुम डरते हो, तुम भयभीत होते हो।
मैं विद्यार्थी था, तो मेरे एक शिक्षक थे, जो बड़े आस्तिक थे। और उनसे मेरा लगाव था। तो उनके घर मैं पहुंच जाता था और उनकी पूजा-प्रार्थना में संदेह खड़े करता कि आप यह क्या कर रहे हैं! यह पत्थर की मूर्ति के सामने आप बैठे घंटी बजा रहे हैं! कुछ तो होश लाओ! ऐसे आप होशियार आदमी हैं, बुद्धिमान आदमी हैं। आपको शरम नहीं आती, एक पत्थर की मूर्ति के सामने घंटी बजा रहे हो! अरे अगर मूर्ति भी घंटी आपके सामने बजाए, तो भी शर्म आनी चाहिए कि यह मूर्ति और मेरे सामने घंटी बजा रही है! तो भी बरदाश्त के बाहर हो जाना चाहिए। मगर तुम तो हद्द कर रहे हो! मूर्ति तो कुछ करती नहीं; बैठी है गुमसुम। तुम घंटी बजा रहे हो! और जनम हो गए तुम्हें घंटी बजाते, मिला क्या है?
वे आदमी सच्चे और ईमानदार थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मिला तो कुछ भी नहीं है। बात तो तुम ठीक कहते हो। मगर जिंदगी भर हो गया मुझे इसी पूजा में, अब तुम मत छेड़ो यह बात। अब मेरे संदेह पुनः मत जगाओ। अब मैं बूढ़ा होने के करीब हूं, अब यह मौत कब मेरे द्वार पर आ जाएगी, पता नहीं। तुम्हें देख कर मैं डरता हूं। तुम आते हो, तो कुछ संदेह खड़ा कर जाते हो। तुम तो फिर चले जाते हो; तुम्हें तो कुछ फिक्र नहीं पड़ी। लेकिन मुझे वह संदेह काटता है। मेरे भीतर चिंता बन जाता है।

फिर मैं विश्वविद्यालय चला गया, तो साल में एकाध बार ही लौटता था। जब जाता, तो उनके घर जरूर जाता। वे मुझसे एक दिन बोले कि अब तुम मत आया करो। हालांकि मैं राह देखता हूं साल भर तुम्हारी कि कब तुम आओगे। पता नहीं इस बार जीवित रहूंगा कि नहीं रहूंगा; तुमसे मिल सकूंगा या नहीं! लेकिन जब तुम आते हो, तो मुझे डर लगता है कि फिर तुम कुछ उपद्रव की बात करोगे। तुम कुछ कह जाओगे। तुम मानोगे नहीं। तुम मेरी श्रद्धा को झकझोरे डाल रहे हो। तुमने धीरे-धीरे मेरी श्रद्धा की सब ईंटें खींच लीं। पूरा मंदिर मेरा गिर गया है। अब मैं पूजा करता हूं, तो भी मैं जानता हूं कि मैं यह क्या मूढ़ता कर रहा हूं। रुक भी नहीं सकता, क्योंकि जिंदगी भर पूजा की है। अब क्या मरते वक्त-- अब कैसे पूजा छोड़ दूं! माना कि नहीं कुछ सार दिखाई पड़ता है, नहीं कुछ पाया है। मगर फिर भी कहीं एक भरोसा बना हुआ है कि इतने लोग करते हैं, तो सब गलत तो न करते होंगे! करोड़ों-करोड़ों लोग सारी दुनिया में पूजा कर रहे हैं अलग-अलग ढंग से। तो सब पागल तो नहीं हो सकते!
मैंने उनसे कहा, वे भी यही सोचते हैं। वे भी जब करोड़ों को गिनते हैं,
तो तुम भी उसमें एक होते हो। और उनको क्या पता कि तुम्हारी क्या हालत हो रही है! तुम भी उनको गिन रहे हो। और मैं बहुतों को जानता हूं, जो मुझसे परिचित हैं, उनमें से एक की पूजा भी सार्थक नहीं मैंने पाई है। और सब घबड़ाते हैं कि उनका संदेह न छेड़ देना। उनके भीतर दबी हुई शंकाएं न उठा देना। मगर अगर इन शंकाओं को नहीं जगाओगे, तो तुम्हारी आस्था सदा झूठी रहेगी।
आखिर बार मैं गया, तो उन्होंने खबर पहुंचवाई अपने लड़के से कि मेरी तबीयत बहुत खराब है, इसलिए कृपा करके देखने मत आना। क्योंकि अब मैं बिलकुल मरणशैया पर पड़ा हूं। यूं मन में बड़ी इच्छा है कि एक बार तुम्हें देख लूं, मगर नहीं, तुम आना मत। क्योंकि मैं नहीं चाहता कि किसी नास्तिक भाव में मर जाऊं!
मैंने उनके लड़के से कहा कि एक बार तो मैं आऊंगा; मुझे कोई रोक सकता नहीं। तुम जाकर कह दो कि मैं आ रहा हूं, वे तैयारी रखें। उन्हें जितनी आस्तिकता मजबूत करनी हो, वह करके रखें। मैं आ रहा हूं। और यह मेरा आखिरी आना है, फिर मैं नहीं आऊंगा।
मैं उनके पास गया। मैंने कहा कि सोचो तो, मैं न भी आऊं, तो भी यह तुम्हारी आस्तिकता कोई आस्तिकता है! जो इतनी भयभीत है, जो इतनी कायर है! यूं तुम मरोगे, तो तुम नास्तिक ही मर रहे हो। क्यों धोखा ओढ़े हुए हो! उन्होंने कहा, तुम न माने, तुम आ गए! मुझे मर जाने दो। मुझे मेरी आस्थाओं को पकड़े मर जाने दो।
मैंने कहा, अगर वे झूठी हैं आस्थाएं, तो क्या होगा पकड़ कर मर जाने से!
कम से कम मरते वक्त इस भाव से तो मरो कि मैं किसी झूठ को पकड़े हुए नहीं मर रहा हूं। भला मुझे सत्य न मिला हो, लेकिन मैंने किसी झूठ को नहीं पकड़ा है। कम से कम इतनी निष्ठा तो तुम्हारी परमात्मा के समाने रहेगी। इतना तो तुम कह सकोगे कि नहीं पा सका सत्य, मानता हूं, लेकिन झूठ को भी नहीं पकड़ा। और जिसने झूठ को नहीं पकड़ा, वह सत्य को पाने का हकदार हो जाता है। मरते वक्त तो कम से कम ईमान ले आओ। और मेरे लिए तो ईमान का अर्थ यही ही होता है: सत्य में निष्ठा--झूठे आश्वासनों में नहीं।
पूर्णानंद! तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है। तुम कहते हो: आप्तपुरुषों का यह मंगल-वचन क्या कभी सच होगा?
आप्तपुरुष तो आशीष ही देते हैं। उनके पास और कुछ देने को है भी नहीं। उनसे तो फूल ही झरते हैं। वे तो तुम्हारे लिए प्रार्थनाओं से ही भरे हुए हैं। वे तो चाहते हैं कि तुम्हारे जीवन में सुगंध उड़े, गीत जगें, नृत्य हो। तुम्हारे जीवन में हजार-हजार कलम खिलें। तुम्हारे जीवन में रसधार बहे।
लेकिन तुम बहने दो, तब ना! तुम तो हर तरह से अड़ंगा खड़ा करते हो। और तुम्हारे बिना कोई जबर्दस्ती तुम्हें सुखी नहीं कर सकता।
यह प्रार्थना तो प्यारी है: सब सुखी हों। लेकिन तुम्हारे स्वार्थ तो दुख से जुड़े हैं। तुम कैसे सुखी होओगे! तुम मेरी बात सुनकर शायद चौंको।
लेकिन मैं दोहरा दूं, ताकि तुम समझ लो ठीक से।

तुम्हारे स्वार्थ दुख से जुड़े हैं। तुम्हारा सारा जीवन दुख में जड़ें जमाए बैठा है। तुम सुखी नहीं होना चाहते, हालांकि तुम कहते हो कि मैं सुखी होना चाहता हूं। मगर तुम्हारे सुखी होना चाहने का जो ढंग है, वह भी तुम्हें सिर्फ दुखी करता है, और कुछ भी नहीं। क्योंकि सुखी होने की पहली शर्त है: सुख को मत चाहो। अब तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे। इस शर्त को जो पूरी करे, वही सुखी हो सकता है।
सुख को मत चाहो। क्योंकि जिसने सुख चाहा, वह दुखी हुआ। इस दुनिया में सारे लोग सुख चाहते हैं। कौन है जो सुख नहीं चाहता! लेकिन फिर सारे लोग दुखी क्यों हैं? सुखी की चाह में ही दुख के बीज छिपे हैं।
सुख को चाहता कौन है? पहली तो बात: दुखी आदमी चाहता है। जो दुखी है, वह सुख चाहता है। दुखी क्यों है? यह तो कभी नहीं सोचता। लेकिन सुख चाहता है। दुखी है, तो कारण होंगे। दुखी है, तो बीज उसने नीम के बोए होंगे; हां, चाहता है कि आम लग जाएं! मगर उसी चाह से थोड़े ही आम लगेंगे। बीज अगर नीम के बोता है, और चाह अगर आम की करता है, तो पागल है। तो रोज-रोज दुखी होगा। रोज-रोज विषाद से भरेगा। क्योंकि जब भी फल लगेंगे, कड़वे नीम के ही फल लगेंगे। बीज ही नीम के तुम बो रहे हो।
पहली तो भ्रांति यह है: समस्त बुद्धपुरुषों ने कहा है--तृष्णा दुष्पूर है। यह समस्त धर्म की आधारशिला है: तृष्णा दुष्पूर है। जब तक तुम मांग कर रहे हो, वासना से भरे हो, तब तक तुम दुखी रहोगे। क्योंकि तुम्हारी सारी वासना तुम्हें रोज-रोज असफलता के गङ्ढों में गिराएगी।
लाओत्सू ने कहा है: मुझे कोई दुखी तो करे! मुझे कोई दुखी नहीं कर सकता, क्योंकि मैं सुख मांगता ही नहीं। उसने यह भी कहा है: मुझे कोई हराए तो! मुझे कोई हरा ही नहीं सकता। और तुम यह मत समझना कि लाओत्सू कोई पहलवान है। कि कोई मोहम्मद अली है! लेकिन लाओत्सू कहता है: कोई मुझे हराए तो! मुझे कोई हरा नहीं सकता। क्योंकि मैं विजय मांगता ही नहीं। लाओत्सू कहता है, तुम मुझे कैसे हराओगे, अगर मैं विजय चाहता ही नहीं! अगर मैं हार से भी राजी हूं, तो तुम मुझे कैसे हराओगे! अगर मैं हार मैं भी आनंदित हूं, तो तुम मुझे कैसे हराओगे!
मैं छोटा था, तो मेरे पड़ोस में एक अखाड़ा था। पहले तो मैं यूं ही चला जाता था देखने। वहां अकसर पहलवान आते रहते। आज भी उसकी तस्वीर मुझे याद है। उसका नाम भी मुझे पता नहीं। अजनबी था। नया-नया आया था। नागपंचमी का दिन था, उस अखाड़े में कुश्तियां हो रही थीं। मैं भी देखने पहुंचता था। उस पहलवान को मैं नहीं भूला। पता नहीं क्या उसका नाम था, कहां से आया था, कौन था--कुछ पता नहीं। लेकिन उसकी तस्वीर नहीं भूलती। वह जब कुश्ती लड़ा, तो उसके लड़ने का लहजा ही कुछ और था। ऐसे मैंने बहुत पहलवान कुश्ती लड़ते देखे थे, क्योंकि मेरे मोहल्ले में ही अखाड़ा था और जब भी मुझे फुर्सत होती, चला जाता। वहां चलता ही रहता कुछ न कुछ उपद्रव। वहां बैंड-बाजा बजता ही रहता। जब देखो तब वहां अखाड़ा। जब देखो तब वहां कुश्ती! गांव में कुश्ती का शौक था और कई अखाड़े थे। छोटा-सा गांव, लेकिन बहुत अखाड़े थे। और हर अखाड़े में प्रतिद्वंदिता थी।
उस दिन जो मैंने कुश्ती देखी, वह आदमी इस मस्ती से लड़ा, जिससे लड़ा वह उससे कम से कम दुगने वजन का आदमी था। उसकी हार निश्चित थी। मगर वह इतनी प्रफुल्लता से लड़ा! हार भी गया। वह चारों खाने चित्त पड़ा है, और वह मजबूत पहलवान उसकी छाती पर बैठा है, और सारे लोग तालियां बजा रहे हैं प्रशंसा में जो जीता है उसकी! लेकिन जो नीचे पड़ा था, वह खिलखिला कर हंसा। उसकी खिलखिलाहट मुझे नहीं भूलती। उसका खिलखिला कर हंसना--एक सन्नाटा छा गया! भीड़ जो ताली बजा रही थी, वह एकदम रुक गई। हारा हुआ आदमी--और खिलखिला कर हंसे!
वह पहलवान जो उसकी छाती पर बैठा था, एक क्षण को हतप्रभ हो गया! उसकी भी समझ के बाहर था। कुश्तियां उसने जिंदगी में बहुत लड़ी होंगी; जीता होगा, हारा होगा। हारा होगा तो रोया होगा। जीता होगा तो हंसा होगा। मगर हारे हुए को हंसते उसने कभी नहीं देखा था! उसने पूछा कि तुम क्यों हंस रहे हो?

वह पहलवान कहने लगा कि मैं इसलिए हंस रहा हूं कि मेरे लिए पहलवानी सिर्फ खेल है। न हारना--न जीत। मौज है। तुम ऊपर, कि मैं ऊपर--क्या फर्क पड़ता है!
उस व्यक्ति को कुछ सूत्र है याद। इस व्यक्ति को कैसे हराओगे! क्या फर्क पड़ता है--कोई तो ऊपर होगा, कोई तो नीचे होगा! दो आदमी लड़ेंगे, तो एक नीचे आएगा एक ऊपर आएगा। यह स्वाभाविक है। दोनों तो ऊपर हो नहीं सकते! दोनों नीचे नहीं हो सकते। उसकी बात मुझे भूली ही नहीं। और जब वर्षों बाद में लाओत्सू को पढ़ा, तो तत्क्षण मुझे उस पहलवान की बात याद आ गई। शायद उसने लाओत्सू का नाम भी न सुना हो। लेकिन सूत्र तो उसे याद था। वह हार में हंस सका था, क्योंकि हार और जीत सब खेल है।
जीतने के लिए लड़ा ही नहीं था। उसके लड़ने का ढंग भी अलग था। बहुत मैंने पहलवान लड़ते देखे, मगर उसका लड़ने का ढंग अलग था। वह पहले नाचा! पूरे अखाड़े में नाचा। लोग चौंककर देखने लगे कि वह क्या कर रहा है! उछला-कूदा--बड़ा प्रफुल्लित हुआ! जैसे छोटे बच्चे, वैसा ही हलका-फुलका आदमी था। दुबला-पतला था। लड़ा भी बड़ी शानदार कुश्ती। अपने से दुगने वजनी आदमी से लड़ा। जरा भी संकोच नहीं। हार का कोई सवाल ही नहीं, कोई डर ही नहीं, कोई भय ही नहीं। यूं लड़ा जैसे खेल-खिलवाड़ हो। जैसे छोटे बच्चे से उसका बाप लड़े। तो अब बच्चे को हराता थोड़े ही है बाप, जब कुश्ती लड़ता है। खुद जल्दी से लेट जाता है। बच्चे को छाती पर चढ़ जाने देता है। और बच्चा किलकारी मारता है छाती पर बैठ कर! और बच्चा सोचता है: जीत गए! देखो, पापा को हराया! डैडी को चारों खाने चित्त कर दिया! उसे क्या पता कि पापा खुद ही चारों खाने चित्त हो गए हैं।
इस ढंग से लड़ा। लड़ने में एक मौज थी, एक नृत्य का भाव था। हार कर भी हंसा। हार कर भी नाचा। जीतने वाले की जीत को मिट्टी कर दिया उसने! जीतने वाले को लोग भूल गए! लोगों ने फूल-मालाएं उसके गले में डाल दीं। जीतने वाला यूं खड़ा रहा किनारे पर! आंखें फाड़े देखता रहा कि यह हो क्या रहा है! कि हारे हुए आदमी के गले में फूल-मालाएं डाली गईं। और जिन्होंने डालीं, वे कोई बहुत बड़े ज्ञानी नहीं थे; सीधे-सादे लोग थे। मगर उनको भी यह बात समझ में आ गई कि यह आदमी कुछ अनूठा है! यह हारना जानता ही नहीं। इसे तुम हरा ही नहीं सकते।
और उसने सारी फूल-मालाएं ले जा कर जो जीत गया था, उसको दे दीं कि तुम ऐसे दुखी न होओ; ऐसे परेशान न होओ। तुम तो जीते हो, तुम क्या उदास खड़े हो! अरे, जब मैं हार कर नाच रहा हूं, तो तुम भी नाचो। तुम तो जीते हो!
मगर वह जो जीता था, क्या खाक नाचे! वह जीतकर भी न नाच सका। वह जीतकर भी विषादग्रस्त हो गया। पछताया होगा कि कैसे आदमी से कुश्ती लड़ी! ऐसे आदमी से लड़ा ही नहीं था।
फिर वह पहलवान गांव में कोई दस-पंद्रह दिन रहा, लेकिन कोई उससे लड़ने
को राजी नहीं था। कोई लड़ा ही नहीं! मैं रोज अखाड़े पहुंचता कि उसकी कोई कुश्ती होने वाली है! मैं उससे भी पूछता कि भई, कुश्ती तुम्हारी कब होगी? वह कहता, मैं खुद परेशान हूं। कोई लड़ता ही नहीं!
मैंने कहा, फिर मैं ही हूं! मैं बहुत छोटा था। उसने कहा, भई तू! अभी तू बहुत छोटा है! मैंने कहा, रहने दो, क्या फिक्र पड़ती है! तुम्हें हारना ही है, मुझसे हार जाना। तुम्हें हंसना ही है, मुझसे हार कर हंस लेना। और तुम्हें दिल हो मुझे हराने का, तो मुझे हरा के हंस लेना!
उससे मेरी दोस्ती हो गई! वह कहने लगा, तुमसे तो मैं हारा ही हुआ हूं। तुम फिक्र मत करो। वह जब तक रहा, रोज मुझे बुला ले जाता था--नदी नहाने जाता, तो मुझे बुला लेता। खाना खाने कहीं उसका निमंत्रण होता, तो मुझे बुला ले जाता। अखाड़े में घंटों हम साथ बैठे रहते। मैं बहुत छोटा था; उसकी उम्र तो बहुत थी। मगर एक दोस्ती हमारे बीच बन गई। एक सूत्र सध गया।
तृष्णा दुष्पूर है और इसलिए दुखों में ले जाती है। यह पा लूं, वह पा लूं; यह जीत लूं--बस, फिर हार के तुमने बीज बोए। फिर तुमने अपने लिए संताप पैदा किया।
तो ऋषि तो कहे हैं: सब सुखी हों--सर्वे भवंतु सुखिनः--यह उनकी प्रार्थना शुभ; ये उनके आशीष प्यारे, मगर तुम सुखी कैसे हो सकोगे? तुम्हारे तो दुख में बहुत गहरे नियोजन हैं। पहला तो यह कि तुम सुख चाहते

हो, इसलिए सुखी न हो सकोगे। दूसरा यह कि तुम बहुत गहरे में दुख के साथ विवाहित हो, तुम्हारे गठबंधन हो गए हैं; तुम्हारे सात फेरे पड़ गए हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम प्रत्येक बच्चे को जीवन भर दुखी रहने के लिए शिक्षा देते हैं। और यह बात सच है। बच्चा जब दुखी होता है, बीमार होता है, तो मां भी उसके पास बैठती है, पिता भी उसके पास बैठता है। कोई उसका माथा दबाता है, कोई पैर दबाता है; दवा कोई लाता है। जब भी वह दुखी होता है, तब उसे संवेदना मिलती है, सहानुभूति मिलती है। और जब भी वह नाचता-कूदता है, तो डांट-फटकार मिलती है। जब भी हंसता है, किलकारी मारता है, दौड़ता है, छलांग लगाता है, चीजें गिरा देता है, चीजें तोड़ देता है, तब उसको डांट-फटकारा मिलती है। जब वह प्रफुल्लित होता है, तब डांट-फटकार; सारा घर उसका दुश्मन हो जाता है। और जब वह बीमार होता है, मुरदा होने के करीब होता है--सब उसके मित्र हो जाते हैं! कहीं गहरे में यह बात बैठ जाती है। ये फेरे पड़ने लगे। यह दुख के साथ विवाह रचाया जाने लगा। यह शहनाई बजी। एक बात किसी अचेतन में उतरने लगी कि दुख में लोगों की सहानुभूति होती है; सुख में लोगों की सहानुभूति नहीं होती।
दुखी आदमी के प्रति लोग सदभाव से भरे होते हैं! तुम्हारे घर में आग लग जाए, तो सारा मोहल्ला तुमसे सहानुभूति प्रकट करेगा। और तुम एक नया मकान बना लो, तो सारे मोहल्ले में जलन औरर् ईष्या की आग फैल जाएगी।
कोई तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहता! तुम सुखी होते हो, तो लोग दुखी होते हैं। और इतने लोगों को दुखी करना खतरे से खाली नहीं है। और तुम जब दुखी होते हो, तो सारे लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, सहानुभूति देते हैं। सहानुभूति में तुम्हें रस आने लगता है। अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है। तो दुखी होने में तुम्हारे स्वार्थ जुड़ जाते हैं
मेरे विरोध में अगर हजारों-लाखों लोग हैं, तो उसका कुल कारण इतना है
कि यहां एक आनंद का तीर्थ निर्मित हो रहा है। यहां मेरे पास आनंदमग्न लोगों की जमात इकट्ठी हो रही है। यहां मस्तों की दुनिया है, मतवालों की दुनिया है। इससेर् ईष्या जग रही है। इससे हजार तरह कीर् ईष्याएं पैदा हो रही हैं। इससे बहुत जलन पैदा हो रही है। अगर मैं भी लंगोटी लगाकर और धूप में और झाड़ के नीचे बैठ जाऊं, तो बड़ी सहानुभूति पैदा होगी। और अपने आसपास भी अगर मैं भूखे-नंगे लोगों को बिठा लूं, तो बड़ी सहानुभूति प्रकट होती है। नोबल प्राइज पक्की है!
लेकिन अभी तो मुझे सिर्फ गालियां पड़ने वाली हैं। मुझे नोबल प्राइज चाहिए भी नहीं। मुझे गालियां ही अच्छी हैं। क्योंकि एक राज मेरी समझ में आ गया है: अगर तुम्हें आनंदित होना है, तो तुम्हें इसकी फिक्र ही छोड़ देनी चाहिए। तुम्हें गालियां पड़ेंगी, तुम्हें पत्थर पड़ेंगे, मगर वे खा लेने जैसे हैं। आनंद इतनी बहुमूल्य चीज है कि उसके लिए सारीर् ईष्याएं झेल लेने जैसी हैं।
लोग, जिस भीड़ में तुम रहते हो--तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहते; तुम्हें दुखी देखना चाहते हैं। इस भीड़ के खिलाफ तुम हिम्मत कर सकोगे सुखी होने की? तुम राजी हो कि लोगों की गालियां पड़ें, तो कोई फिक्र नहीं; सहानुभूति न मिले, तो कोई फिक्र नहीं? तुम तैयार हो?--तो तुम्हारे जीवन में सुख का अवतरण हो सकता है। लेकिन गहरे में तो तुम भी जुड़े हो दुख से। स्त्रियां इतनी दुखी दिखाई पड़ती हैं; उसका कुल कारण इतना है। नहीं तो स्त्रियां आमतौर से प्रसन्न-चित्त होती हैं, पुरुषों से ज्यादा प्रसन्न-चित्त होती हैं। ज्यादा प्रफुल्लित होती हैं, क्योंकि ज्यादा पार्थिव होती हैं। उनमें पृथ्वी का अंश ज्यादा है। उनमें फूल ज्यादा खिल सकते हैं। लेकिन उदास और दुखी और परेशान। और उसका कारण--क्योंकि उनके पति की सहानुभूति मिलती ही तब उन्हें है। अगर पत्नी प्रसन्न-चित्त है, तो पति की उसे कोई सहानुभूति नहीं मिलती। वह बीमार है, तो पति की सहानुभूति मिलती है। और हम इतने दीनहीन हो गए हैं कि हम सहानुभूति को ही प्रेम समझ लेते हैं। सहानुभूति झूठा सिक्का है। वह प्रेम का धोखा है। वह प्रेम नहीं है। लेकिन क्या करें! प्रेम तो मिलता नहीं, तो चलो सहानुभूति सही। न सही असली सिक्के--नकली सिक्के सही। न कुछ से तो कुछ भी अच्छा!

तो तुम्हारे जीवन की जड़ें दुख में जमी हुई हैं। ऋषियों के आशीष बरसते रहे हैं। उन्होंने सदा चाहा कि तुम सुखी हो जाओ। मगर तुमने यह चाहा है कि तुम्हारे ऋषि भी दुखी रहें! तुम तपस्वियों की पूजा करते हो, अर्चना करते हो। तपस्वी का अर्थ क्या है? तपस्वी का अर्थ है: जिसकी मूढ़ता इतनी सघन है कि जिसे कोई दूसरा दुख नहीं दे रहा है, तो वह मूढ़ खुद ही अपने को दुख दे रहा है! तपस्वी का और क्या अर्थ होता है! जिसको कोई दुख देने वाला नहीं मिल रहा है, तो भी वह सुख से नहीं बैठ सकता। वह खुद अपने लिए दुख के सारे आयोजन करेगा। गरमी होगी, अगर बरस रही होगी, वह अंगीठी जला कर धूनी रमाएगा अपने चारों तरफ। जैसे कि वैसे ही गरमी की कोई कमी है! कम से कम इस देश में तो धूनी रमाने की कोई जरूरत नहीं है। मगर इस गरम देश में भी गरमी के दिनों में भी जब आग बरसती हो, तब भी लोग धूनी रमाए बैठे हैं! और जब कोई धूनी रमाकर बैठता है कि तुम्हें पास जाने में प्राण कंपें, और वह लपटों के बीच बैठा है--तुम्हारा चित्त कितना आह्लादित होता है कि अहा! यह है तपस्वी! यह है महात्मा! और तुम्हारे महात्मा कहने के कारण, तपस्वी मानने के कारण उसके अहंकार की तृप्ति होती है। और अहंकार की तृप्ति के लिए वह सब सुख छोड़ने को राजी है; वह हर तरह से दुखी होने को राजी है।
तुम भूखे को, उपवासी को आदर देते हो। किसी ने दस दिन का उपवास कर लिया पर्युषण के दिनों में, तो हाथी पर जुलूस निकालो! बैंड-बाजे बजाओ! कि इन्होंने बड़ा गजब का काम किया कि दस दिन भूखे रहे! कोई दस दिन मस्ती से खाया-पिया इसका तुम कभी जुलूस नहीं निकालते! कि यह आदमी बड़ा मस्त है, इसको हाथ पर बिठाएं! इसका बैंड-बाजा बजाएं। अच्छी दुनिया तो तब होगी, जब कोई आदमी दस दिन मस्त रहा, जी भर के खाया-पिया, खूब पैर-पसार कर सोया--और तुमने उसका जुलूस निकाला। तब तुम थोड़ी बुद्धिमानी का सबूत दोगे। तब तुम यह सबूत दोगे कि तुम्हारे मन में अब सुख का भी सम्मान पैदा हुआ है।
अभी तो तुम सुखी को भोगी कहते हो। और दुखी को त्यागी कहते हो। अभी दुख
को आदर देते हो; सुख को अनादर देते हो। तुम्हारे अजीब मूल्यांकन हैं! तुम्हारी जीवन-सरिणी उलटी है! तुम्हारा तर्क कैसा है!
तो लाख आप्त-वचन बोलते हैं ऋषि, आशीष देते रहें, क्या होगा? तुम्हारी जीवनचर्या, तुम्हारी जीवनशैली अभी दुख-निर्भर है। तुम कब सुख का सम्मान करोगे?
यह जो सूत्र है उपनिषद का, यह उन दिनों का सूत्र है, जब अभी हमने दुख में अपने न्यस्त-स्वार्थों को बहुत नहीं जोड़ा था। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जो अभी अंगीठी जलाकर नहीं बैठे थे। और जिन्होंने कांटों की सेज नहीं बिछाई थी। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जिन्होंने अभी तक भूखे मरने को, उपवास को समादर नहीं दिया था। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जो अभी सुख को अधार्मिक नहीं मानते थे। तब तो वे प्रार्थना कर सके: सर्वे भवंतु सुखिनः। सब के सुख के लिए प्रार्थना कर सके। नहीं तो प्रार्थना करनी थी कि हे प्रभु, सब को तपस्वी बना--सुखी नहीं! सब के लिए कांटों की सेज बिछा! कि सब कांटों पर सोएं! साधारण कांटे काम न देते हों, तो लोहे के खीले!
ईसाइयों में फकीर होते हैं, जो अपनी कमर में एक पट्टा बांधे रखते हैं, जिसमें खीले लगे होते हैं, जो उनकी कमर में अंदर धंस गए होते हैं। उन खीलों से घाव बने रहते हैं और वे खीले घावों में पड़े रहते हैं। वे चलते हैं, हिलते हैं, डुलते हैं, तो खीले चुभते रहते हैं। उनसे मवाद और खून बहता रहता है! उनका बड़ा सम्मान किया जाता है।
ईसाइयों में एक संप्रदाय होता है, जिसके फकीर अपने को कोड़े मारते हैं। सुबह से उठकर जो पहला काम है, वह है कोड़े मारना। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता है, वह उतना बड़ा तपस्वी! स्वभावतः देह का दुश्मन है। देह से मुक्त हो रहा है! जूते पहनते हैं वे, जिनमें नीचे खीले अंदर लगे होते हैं, जिनसे पैर में घाव बने रहते हैं; मवाद बहती रहती है। गैर-ईसाइयों को इसमें दिखाई पड़ेगा कि यह तो पागलपन है। मगर ईसाइयों को नहीं दिखाई पड़ेगा। ईसाइयों को पागलपन दिखाई पड़ता है जैन मुनियों में! कि यह क्या पागलपन है कि नंगे फिर रहे हो! दिगंबर जैन मुनि! शरीर को सड़ा रहे हो, सुखा रहे हो! मगर जैनों का हृदय बड़े सम्मान से भरा हुआ है, गदगद हो उठता है कि अहो! यह है तपश्चर्या! ये हैं असली मुनि!

ये सिर्फ रुग्णचित्त लोग हैं! ये सिर्फ बीमार हैं। ये मानसिक रूप से विक्षिप्त हैं। और चूंकि मैं सत्य को वैसा ही कह रहा हूं जैसा है, इसलिए मुझे गाली पड़ने वाली है। ईसाई गाली देंगे। जैन गाली देंगे। हिंदू गाली देंगे। यह मैं जानता हूं कि गालियां पड़ने वाली हैं, अगर सत्य को सत्य की तरह कहना है। मगर वक्त आ गया है कि सत्य को सत्य की तरह कहा जाए। बहुत दिन हो गया झूठ में तुम्हें जीते हुए!
इस ऋषि की प्रार्थना को मैं भी पूरी करना चाहता हूं तुम्हारे लिए, मगर तुम पूरी नहीं होने देना चाहते। तुम कुछ न कुछ उपद्रव चाहते हो, क्योंकि उपद्रव में लगता है: कुछ कर रहे हो--साधना, योग। शरीर को उलटा-तिरछा करना, मोड़ना-मरोड़ना--तुम समझते हो: योग साध रहे हो तुम! तो तो फिर सर्कस में ही सिर्फ योगी होते हैं! जिनके शरीर बिलकुल रबर जैसे हो जाते हैं! कि जैसा चाहो, वैसा मोड़ो।
सर्कस नहीं है योग। योग शब्द का अर्थ समझो। योग शब्द का अर्थ होता है-- मिलन। परमात्मा से मिलन। उसकी कला। उसकी कला प्रेम है। उसकी कला ये योगासन नहीं हैं। यह सिर के बल खड़े होना कोई परमात्मा से नहीं मिला देगा। कोई परमात्मा तुम जैसा घनचक्कर नहीं है! कि सिर के बल खड़े हो गए, तो बड़ा प्रसन्न हो जाए! अगर मिलने भी आ रहा होगा, तो लौट जाएगा कि इस उलटी खोपड़ी से क्या मिलना! पहले खोपड़ी तो सीधी करो! कम से कम आदमी की तरह खड़े होना तो सीखो! यह तो जानवर भी नहीं करते शीर्षासन, जो तुम कर रहे हो। और अगर परमात्मा को शीर्षासन ही करना था, तो सिर के बल ही खड़ा करता ना! तुम्हें पैर के बल खड़ा क्यों किया है! परमात्मा ने कुछ भूल की है, जिसमें तुम्हें सुधार करना है?
परमात्मा ने तुम्हारे भीतर आनंदमग्न होने की पूरी क्षमता दी है। मगर तुम्हारा समादर गलत है, रुग्ण है। उस कारण सुख कैसे हो!
तुम कृपण हो, कंजूस हो। और सुखी तो वही हो सकता है, जिनको बांटने में आनंद आता हो। तुम्हें तो इकट्ठा करने में आनंद आता है! हम तो कंजूसों को कहते हैं--सरल लोग हैं, सीधे-सादे लोग हैं!
मैं एक गांव में एक कंजूस के घर में मेहमान हुआ। महाकंजूस! मगर सारे गांव में उसका आदर यह कि सादगी इसको कहते हैं! सादा जीवन--ऊंचे विचार! क्या ऊंचा जीवन और ऊंचा विचार साथ-साथ नहीं हो सकता? और सादा जीवन ही जीना हो, तो यह तिजोड़ी को काहे के लिए भर कर रखे हुए हो! मगर हर गांव में तुम पाओगे: कंजूसों को लोग कहते हैं--सादा-जीवन! कि है लखपति, लेकिन देखो, कपड़े कैसे पहनता है!
सेठ धन्नालाल की पुत्री जब अट्ठाइस वर्ष की हो गई, और आसपास के लोग ताना देने लगे कि यह कंजूस दहेज देने के भय से अपनी बेटी को क्वांरी रखे हुए है, तो सेठजी ने सोचा कि अब जैसे भी हो लड़की का विवाह कर ही देना चाहिए, क्योंकि जिन लोगों के बीच रहना है, उठना-बैठना है, धंधा-व्यापार करना है, उनकी नजरों में गिरना ठीक नहीं। उन्होंने लड़के की खोज शुरू कर दी। पड़ोस के ही गांव के एक मारवाड़ी धनपति का बेटा चंदूलाल उन्हें पसंद आया। जब वे लोग सगाई करने के लिए धन्नाालाल के यहां आए तो चंदूलाल के बाप ने पूछा--आपकी बेटी बुद्धिहीन अर्थात फिजूलखर्ची व्यक्ति नहीं हुआ है, और हम नहीं चाहते कि कोई आकर हमारी परंपरा से जुड़ती चली आ रही संपत्ति को नष्ट करे; बाप-दादों की जमीन-जायदाद हमें जान से भी ज्यादा प्यारी है। यह देखिए मेरी पगड़ी; मेरे बाप को मेरे दादा ने दी थी; दादा को उनके बाप ने; उन्हें उनके पितामह ने; और उनके पितामह ने अपने एक बजाज दोस्त से उधार खरीदी थी। क्या आपके पास भी ऐसा फिजूलखर्ची न होने का कोई ठोस प्रमाण है?
धन्नालाल जी बोले--क्यों नहीं, क्यों नहीं। हम भी पक्के मारवाड़ी हैं, कोई ऐरे-गैरे नत्थू खैरे नहीं। फिर उन्होंने जोर से भीतर की ओर आवाज दे कर कहा--बेटी धन्नो, जरा मेहमानों के लिए सुपाड़ी वगैरह तो ला।
चंद क्षणोपरांत ही धन्नालाल की बेटी सुंदर अल्युमीनियम की तश्तरी में एक बड़ी-सी सुपाड़ी लेकर हाजिर हुई; सबसे पहले उसने अपने बाप के सामने प्लेट की। धन्नालाल ने सुपाड़ी को उठा कर मुंह में रखा; आधे मिनट तक यहां- वहां मुंह में घुमाया, फिर सुपाड़ी बाहर निकाल कर सावधानीपूर्वक रूमाल से

पोंछकर तश्तरी में रख अपने भावी समधी की ओर बढ़ाते हुए कहा--लीजिए, अब आप सुपाड़ी लीजिए!
चंदूलाल और उसका बाप दोनों यह देखकर ठगे से रह गए। उन्हें हतप्रभ देखकर धन्नालाल बोले--अरे संकोच की क्या बात, अपना ही घर समझिए। तकल्लुफ की कतई जरूरत नहीं। यह सुपाड़ी तो हमारी पारंपरिक संपदा है। पिछली चार शताब्दियों से हमारे परिवार के लोग इसे खाते रहे हैं। मेरे बाप, मेरे बाप के बाप, मेरे बाप के दादा, मेरे दादा के दादा सभी के मुंहों में यह रखी रही है। मेरे दादा के दादा के दादा के बादशाह अकबर के राजमहल के बाहर यह पड़ी मिली थी!
ऐसा-ऐसा सादा जीवन जीया जा रहा है! सुख हो तो कैसे हो!
सुखी होने के लिए जीवन के सारे आधार बदलने आवश्यक हैं! कृपणता में सुख नहीं हो सकता। सुख बांटने में बढ़ता है; न बांटने से घटता है। संकोच से मर जाता है; सिकोड़ने से समाप्त हो जाता है। फैलने दो--बांटो। और कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि जिनको तुम आमतौर से गलत आदमी समझते हो, वे गलत न हों।
मेरे एक प्रोफेसर थे, डाक्टर श्रीकृष्ण सक्सेना। उनसे मेरा बहुत प्रेम था। एक बात के कारण सारे विश्वविद्यालय में उनकी बदनामी थी और वह थी शराब। लेकिन मैं उनके बहुत निकट रहा। उनके घर पर भी बहुत दिनों तक रहा। मैंने उन जैसे भले आदमी बहुत मुश्किल से देखे। जब मैं उनके घर रहता, तो वे शराब न पीते। मैंने एक दिन उनको कहा कि फिर मैं आपके घर न आऊंगा। क्योंकि जब आप मुझे घर ले आते हैं कभी, कहते हैं, अब छुट्टी है विश्वविद्यालय में एक चार दिन की, तो चलो मेरे साथ मेरे घर पर रहना, तो मैं देखता हूं, आप शराब नहीं पीते। मेरे कारण यह बाधा आपको पड़े--ठीक नहीं।
उन्होंने कहा कि नहीं; तुम्हारा यहां होना मुझे शराब से भी ज्यादा मस्ती देता है। इसलिए नहीं पीता। पीने की जरूरत नहीं है। कोई कारण नहीं है।
मैंने उनसे कहा कि आपकी आदत है!
उन्होंने कहा, आदत भी नहीं है मेरी। और अकेले तो मैंने कभी जिंदगी में
पी नहीं। जब तक चार लोगों को न बुला लूं, जब तक चार पीने वाले न हों, तब तक तो मैं पीता ही नहीं। कभी-कभी महीनों नहीं पीता, क्योंकि जब पीने वाले ही साथ न हों, तो क्या पीने का मजा!
इनका बड़ा अपमान था सारे विश्वविद्यालय में कि ये शराबी हैं। बस, इस आदमी की एक खराबी कि यह शराब पीता था। एक खराब बात हो गई, तो अधार्मिक है! लेकिन इस आदमी के जीवन की धार्मिकता को कोई भी नहीं समझा।
जब भी वे मेरे साथ रहे, उन्होंने कभी शराब न पी। मैंने लाख उन्हें कहा
कि आप पियें, आपकी आदत है!
वे बोलते, आदत का सवाल ही नहीं। मेरी कोई आदत नहीं।
और यह मैंने जाना कि उनकी कोई आदत न थी। एक बार तो मैं दो महीने उनके
घर रहा। उन्होंने दो महीने शराब नहीं पी! और जरा भी रंचमात्र शराब की बात ही न उठी। मैंने उनसे कहा, दो महीने हो गए, आप शराब नहीं पीए!
उन्होंने कहा, दो साल तुम मेरे घर रहो। यह मेरी कोई आदत नहीं है।
अब मैं उस आदमी को धार्मिक कहूंगा, जो शराब भी पीता हो, और शराब पीने
की जिसे आदत न हो। आदतें तो सड़ी-सड़ी चीजों की बन जाती हैं। शराब जैसी चीज की आदत न बनना तो बड़ी साधना की बात है।
आदतें तो ऐसी छोटी-छोटी चीज की बन जाती है, जिसका हिसाब नहीं! अगर अखबार रोज सुबह पढ़ने की आदत है, एक दिन न मिले, तो दिन भर बेचैनी होती है! अब अखबार कोई शराब है! नहीं पढ़ा, तो नहीं पढ़ा। लेकिन बेचैनी होती है। सुबह से ही बस एक ही धुन लग जाती है--अखबार!
और आदत तो लोगों को पूजा तक करने की हो जाती है! अगर एक दिन पूजा न करें, तो बेचैनी! अच्छी आदतें नहीं होतीं; बुरी आदतें नहीं होतीं। सब आदतें बुरी होती हैं। आदत का मतलब--गुलामी। और गजब का है वह आदमी, जिसको शराब भी गुलाम न बना पाए! मैं तो धार्मिक कहूंगा।
और वे एक सुखी आदमी थे। धार्मिक आदमी सुखी होगा ही। हालांकि मेरी धर्म की तुम परिभाषा देखोगे, तो बड़े हैरान होओगे। न वे कभी पूजा करते थे, न कभी प्रार्थना। मैंने उनसे कहा कि आप जैसा आदत से मुक्त आदमी--आप तो

बिलकुल धार्मिक हैं! लेकिन न पूजा है, न प्रार्थना है, न आस्तिकता है! आपको कभी इन सब चीजों का खयाल नहीं उठा?
उन्होंने कहा, मैं मस्त हूं, आनंदित हूं। मैं प्रसन्न हूं, संतुष्ट हूं। और क्या करना है! किस चीज की पूजा करूं? क्यों करूं? अगर मेरा संतुष्ट होना पूजा नहीं है, तो क्या पूजा होगी और?
और निश्चित ही वे संतुष्ट व्यक्ति थे। अति संतुष्ट व्यक्ति थे। मैंने कभी उन्हें शिकायत करते न देखा। नहीं तो जिंदगी में हर आदमी शिकायत से भरा हुआ है। और तथाकथित धार्मिक आदमी तो बहुत शिकायतों से भरे होते हैं! उनको तो हर चीज में शिकायत दिखाई पड़ती है। और धार्मिक आदमी तो वही है, जिसके जीवन में संतोष, संतुष्टि की सुगंध उड़ती हो। जिसे शिकायत ही न हो, न कोई शिकवा हो। जिसे इस दुनिया में कुछ बुरा ही न दिखाई पड़ता हो।
मैंने कभी उनके मुंह से किसी की निंदा नहीं सुनी। हालांकि और जितने विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, सब उनकी निंदा करते थे। और इस सब का उन्हें पता था, लेकिन उन्होंने कभी किसी की निंदा नहीं की।
किसको मैं धार्मिक कहूं! ये निंदा करने वाले लोग धार्मिक हैं? इन निंदा करने वाले लोगों में नियमित पूजा-पाठ करने वाले लोग थे। अभी-अभी चल बसे डाक्टर रसाल; हिंदी के बड़े पुराने कवि थे। बड़े आलोचक थे। सैकड़ों किताबों के लेखक थे। उनका शब्दकोश बहुत प्रसिद्ध है। बड़े गुणी व्यक्ति थे। लेकिन जब मुझे मिल जाते, और मुझे अकसर मिल जाते, क्योंकि जिस हास्टल में मैं रहता था, उसके वे सुपरिंटेंडेंट थे। तो आते-जाते निकलते--उनके दरवाजे के सामने से मुझे निकलना ही पड़ता था, मुझे बुला लेते। और जब मुझे मिलते, तो उनका पहला काम था--डाक्टर सक्सेना की निंदा करना!
मैंने एक दिन उनसे कहा कि डाक्टर रसाल, आपको पता है कि डाक्टर सक्सेना
ने कभी आपके संबंध में एक शब्द नहीं कहा! कभी मैंने बात भी छेड़ी जानने के लिए कि वे भी आपकी निंदा करते हैं कि नहीं! क्योंकि उनको लोग खबरें देते हैं कि आप उनकी बहुत निंदा करते हैं कि शराबी है, पियक्कड़ है; इसको तो विश्वविद्यालय से निकाल देना चाहिए। ऐसा आदमी भ्रष्ट करेगा विद्यार्थियों को!
और वे निश्चित ही बड़े निष्णात धार्मिक व्यक्ति थे। सुबह से ही पूजा- पाठ। ब्रह्ममुहूर्त में उठना। शुद्ध भोजन--शाकाहारी भोजन करना। शराब की तो बात दूर, वे पान न खाएं, सुपाड़ी न खाएं। सिगरेट न पीएं; शराब तो बहुत दूर! उनमें कोई लतें नहीं। हर धार्मिक दिन पर उनके घर कभी सत्यनारायण की कथा हो रही है; कभी अखंड रामायण चल रही है। कुछ न कुछ वहां होता ही रहे। पंडित-पुजारी इकट्ठे!
मैंने कहा, वे कभी आपकी निंदा नहीं किए और आप जब मुझे मिलते हैं, मुझे लगता ही ऐसा है कि सिर्फ आप उनकी निंदा करने के लिए मुझे बुलाते हैं! मैं बाहर से निकलता हूं और आप मुझे बुलाते हैं और बात तो आप कुल इतनी करते हैं कि उनकी निंदा! आपको क्या बेचैनी है इस आदमी से! इसने आपका कुछ बिगाड़ा नहीं। होंगे शराबी, तो आपका क्या बिगाड़ते हैं? और नर्क जाएंगे, तो वे जाएंगे; कोई आपको नहीं जाना पड़ेगा। आपका तो स्वर्ग बिलकुल निश्चित है। सीढ़ी आप लगा रहे हैं। आपको उनमें इतना रस है! उनको तो मैंने कभी आप में कोई रस लेते नहीं देखा! कई दफा मैंने उकसाने की भी कोशिश की है उनको, कि रसाल आपके संबंध में ऐसा कह रहे थे; वे बात ही नहीं उठाते। वे हंस कर टाल देते हैं। वे कहते हैं, लोग कहते रहते हैं! रसाल अच्छे आदमी हैं, अच्छे कवि हैं, भले आदमी हैं। उनको कोई बात न जंचती होगी, तो मेरी निंदा करते हैं। उनको नहीं जंचती, तो अब मैं क्या करूं? लेकिन एक शब्द आपके विपरीत नहीं।
किसको मैं धार्मिक कहूं? किसको मैं आस्तिक कहूं?
जिंदगी इतनी आसान नहीं है, जितना हम ऊपर से समझ लेते हैं। मंदिर जो रोज जा रहा है, वह धार्मिक है! इतना कहीं होता सिर्फ धार्मिक होना, तो सारी दुनिया धार्मिक थी। यहां सुख ही सुख होता। यहां सुख नहीं है। सुख न होने के साफ-साफ कारण हैं।
पहली तो बात: तुम्हारे मन में दुख का आदर है। इस आदर को जड़-मूल से काट डालो। सुख को आदर देना शुरू करो, क्योंकि तुम जिस चीज को आदर दोगे, वही तुम्हें उपलब्ध होगा। फूलों की तरफ आंख उठाओगे, तो आंखों में फूलों के रंग

छा जाएंगे। चांदत्तारों की तरफ आंख उठाओगे, तो आंखों में चांदत्तारे झांकेंगे। मगर तुम सिर्फ कांटे गिनते हो।
अगर मैं कहूं कि फलां आदमी सुंदर बांसुरी बजाता है, तुम तत्क्षण कहोगे: अरे, वह क्या बांसुरी बजाएगा! शराबी कहीं का। जुआरी--वह क्या बांसुरी बजाएगा! और अगर मैं किसी आदमी के संबंध में कहूं कि वह जुआरी है, शराबी है, तो तुम कभी यह न कहोगे कि नहीं, नहीं, शराबी वह कैसे हो सकता है! वह कितनी प्यारी बांसुरी बजाता है! जुआरी नहीं हो सकता। और हो तो भी क्या हर्जा; उसकी बांसुरी इतनी प्यारी है!
और परमात्मा कांटे गिनता है कि फूल? तुम्हारे हिसाब से तो कांटे गिनता है, जैसे तुम कांटे गिनते हो। मेरे हिसाब से नहीं। मेरे हिसाब से तो वह यह पूछेगा कि कितनी बांसुरी बजाई। यह नहीं पूछेगा कि कितना जुआ खेला। यह पूछेगा कि कितने गीत आए। यह नहीं पूछेगा कि कितनी गालियां दीं।
जीवन को विधायक दृष्टि से देखो। आनंद को सम्मान देना शुरू करो। अगर तुम्हारे भीतर आनंद के प्रतिर् ईष्या है--बहुत बहुत गहनर् ईष्या है। तुम आनंदित व्यक्ति को देखकर जलन से भरते हो; प्रफुल्लित नहीं होते। तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया ऐसी गलत है, कि तुम सुखी नहीं हो सकते। ऋषि लाख प्रार्थनाएं करें, उनकी प्रार्थनाएं व्यर्थ चली जाती हैं; अब तक तो व्यर्थ गई हैं। जाहिर है: यह प्रार्थना किए कम से कम पांच हजार साल हो चुके होंगे। सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामयाः। सब निरोग हों। सब सुखी हों। सब कल्याण को प्राप्त हों। कोई भी दुख का भागी न हो।
यह प्रार्थना पांच हजार साल हो गए किए हुए, शायद उससे भी पुरानी हो, लेकिन अब तक इसका परिणाम नहीं हुआ। यह प्रार्थना खाली चली जाएगी। क्योंकि घड़े तुम्हारे उलटे रखे हैं।
तुमने तो जिद्द कर रखी है दुख उठाने की। तुमने तो कसम खा रखी है नर्क निर्मित करने की!
चंदूलाल के बेटे झुम्मन ने अचानक भोजन करना बंद कर दिया। हर तरह से प्रयत्न किए गए, मगर वह भोजन करे ही न। अंततः उसे मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक उसे जब लगातार पांच घंटे तक समझाता रहा, तो वह भोजन करने को राजी हो गया। मनोवैज्ञानिक ने प्रसन्न होकर पूछा--अच्छा बेटे, बताओ क्या खाओगे?
उसने मनोवैज्ञानिक को क्रोध से देखा। वह पांच घंटे में राजी ही इसलिए हुआ था कि उसकी खोपड़ी खाए जा रहा था समझा-समझा कर। कहां-कहां की बातें समझा रहा था! उसने सोचा: अच्छा चलो, झंझट मिटाओ। भोजन किए लेता हूं। तो उसने मनोवैज्ञानिक की तरफ गुस्से से देखा और कहा--केंचुए खाऊंगा! मनोवैज्ञानिक पहले तो थोड़ा झिझका, कि यह क्या सार निकला पांच घंटे का! मगर मनोविज्ञान में नियम है कि मरीज को आहिस्ता-आहिस्ता फुसलाओ; धीरे- धीरे राजी करो। चलो, अभी केंचुए खाने को राजी हुआ, कम से कम कुछ खाने को तो राजी हुआ। फिर अब केंचुए की जगह कुछ और खिलाने की व्यवस्था हो सकेगी। एकदम से मरीज को इनकार मत करो। उसे विरोध में मत खड़ा कर दो। उससे दोस्ती बनानी जरूरी है।
तो मनोवैज्ञानिक ने किसी तरह केंचुओं की एक प्लेट का प्रबंध करवाया। अपने माली को कहा कि बीन ला बगीचे में से जितने केंचुए मिल सकें। केंचुओं से भरी प्लेट झुम्मन की ओर बढ़ाते हुए कहा--लो बेटे, खाओ।
सोचा उसने कि कौन खाएगा केंचुए! खुद ही कहेगा कि नहीं, केंचुए मुझे नहीं खाने। क्रोध में कह गया है, केंचुए खाऊंगा। सोचता होगा--कौन केंचुए खिलाएगा।
लेकिन झुम्मन बोला--इन्हें भून कर लाओ! कच्चे नहीं खाऊंगा। क्या पेट खराब करना है!
मनोवैज्ञानिक गया और किसी तरह केंचुओं को भूना। भुने हुए केंचुए लेकर प्लेट में मनोवैज्ञानिक फिर आया और बोला, लो बेटे, अब तो खाओ!
झुम्मन बोला, मुझे केवल एक चाहिए। बाकी को फेंको। इतने मुझे नहीं खाने। मैं कोई भोजन-भट्ट हूं! एक काफी है।

चलो, मनोवैज्ञानिक ने सोचा, यह झंझट मिटी। कम से एक पर तो आया। अब धीरे-धीरे रास्ते पर आ रहा है। वह सारे केंचुए फेंक आया और एक को बचा लिया। बोला, बेटा, अब खाओ!
झुम्मन बोला, पहले आप आधा खाइए! मेरे घर में ऐसा नहीं कि हम अकेले खा लें! पहले आपको खाना पड़ेगा। शिष्टाचार मुझे मालूम है।
अब मनोवैज्ञानिक घबड़ाया कि यह तो हद्द हो गई। अब यह आधा केंचुआ खाना पड़ेगा! मगर मनोवैज्ञानिक भी आधे पागल तो होते ही हैं। नहीं तो मनोवैज्ञानिक ही क्यों होते! मनोविज्ञान की तरफ जो उत्सुक होते हैं, उनके दिमाग में कुछ न कुछ गड़बड़ होती है। पहले से ही गड़बड़ होती है, तभी वे मनोविज्ञान की तरफ उत्सुक होते हैं।
घबड़ाया। किसी तरह जी भी मिचलाया--केंचुआ देख कर। एक तो इनको भूना उसने। इनकी बास और...! अब यह क्या-क्या करना पड़ रहा है! मगर इसका इलाज करना ही है। किसी तरह आधा केंचुआ खा गया। और बाकी का आधा हिस्सा झुम्मन की तरफ बढ़ा कर बोला कि ले भैया, अब तो खा!
झुम्मन रोने लगा और बोला, मेरे हिस्से का तो खुद खा गए; अब इसे भी खा लो! वह मेरे हिस्से का था जा तुम खा गए। मैं तुम्हारे हिस्से का नहीं खाऊंगा।
अब क्या करोगे!
ऋषि तो कहे हैं: सर्वे भवंतु सुखिनः। मगर क्या करें तुम्हारे साथ! तुम केंचुए खाने पर पड़े हो। और वह भी तुम खाओगे नहीं। वह भी कुछ बहाने निकाल लोगे। तुम्हारी जिंदगी गलत ढांचों पर दौड़ रही है। तुम अपने ढांचे बदलो। तो ये आशीष पूरे हो सकते हैं। ये आशीष यूं ही नहीं दिए गए हैं। ये कल्पना नहीं हैं आशीष। ये सत्य बन सकते हैं। मगर सत्य इनको कौन बनाएगा?
सिर्फ आशीर्वाद से ही मत सोचना कि बात हो जाएगी। काश ऐसा होता, तो एक बुद्ध ने सारी पृथ्वी को मुक्त कर दिया होता।
ईसाई कहते हैं कि जीसस ने इसलिए जन्म लिया कि सारी पृथ्वी को मुक्त कर देना है। वह तो ठीक कि इन्होंने इसलिए जन्म लिया, लेकिन पृथ्वी मुक्त कहां हुई! यह कोई नहीं पूछता!
हिंदू कहते हैं कि भगवान अवतार लेते हैं। और कृष्ण ने कहा गीता में कि आऊंगा-आऊंगा। बार-बार आऊंगा--जब-जब धर्म की हानि होगी। भैया! कब होगी? बहुत हो चुकी, अब आ जाओ! हे कृष्ण कन्हैया! अब आ जाओ! लेकिन मजा यह है कि जब आए थे, तब कितना अधर्म मिटा पाए थे! तो अब क्या खाक मिटा लोगे! आदमी तब से अब और होशियार हो गया है। तब नहीं मिटा पाए, तो अब क्या मिटा पाओगे! कहते तो हो कि जब अंधकार होगा, तो आऊंगा। जब पाप बढ़ जाएगा, तो आऊंगा। साधुओं की रक्षा के लिए आऊंगा!
मगर सदियां-सदियां बीत गईं। साधु--सच्चे साधु सदा सताए गए; झूठे साधु सदा पूजे गए। और नहीं तुम आए! और आते भी तो क्या करते? जब आए थे, तब क्या कर लिया था? और ऐसा नहीं कि तुमने चेष्टा न की हो। वह मैं न कहूंगा। चेष्टा की थी, मगर परिणाम महाभारत हुआ! परिणाम महायुद्ध हुआ। जिसमें भारत की रीढ़ टूट गई। उसके बाद भारत कभी खड़ा नहीं हो सका। महाभारत सच में ही भारत को इस तरह से तोड़ गया, इसकी आत्मा को इस तरह से मरोड़ गया कि फिर उसके बाद भारत कभी अपनी गरिमा को, गौरव को उपलब्ध नहीं हो सका। अभी तक भी हम नहीं भर पाए, जो गङ्ढा उस समय हुआ था उसको। जो हमारे प्राण दीनहीन हो गए थे, वे आज भी दीनहीन हैं।
तब नहीं कर पाए, अब क्या करोगे?
ये हमारी आशाएं हैं, जो हमने शास्त्रों में प्रक्षिप्त कर दी हैं। यह हमारी आशा है कि भगवान आएंगे और सब दुखों से मुक्त करा देंगे। यह भी तरकीब है तुम्हारे दुखी बने रहने की, कि हम क्या करें, भगवान आते नहीं! आएं, तो दुख से छुटकारा हो! तब तो एक-बारगी छुटकारा हो चुका होता; वह अब तक नहीं हुआ है। आगे भी नहीं होगा।
एक बात तो समझ ही लो तुम, गांठ बांध लो, प्राणों पर खोद कर रख लो--भूलना मत, कि तुम्हारे बिना सहयोग के स्वयं परमात्मा भी कुछ नहीं कर सकता है। सब आशीष व्यर्थ चले जाएंगे। तुमने अगर आंख बंद करके जिद्द कर रखी है, तो उगता रहे सूरज, आते रहें चांदत्तारे--क्या करेंगे बेचारे! सूरज द्वार पर दस्तक

भी देता रहे, तो भी तुम कानों में सीसा पिघला कर बैठे हुए हो। तुम सुनते नहीं।
चंदूलाल का बेटा झुम्मन एक दिन उससे कह रहा था कि पापा, वह नुक्कड़ पर
जो जूतों की मरम्मत करने वाला चमार है, वह मुझसे आते-जाते अकसर कहता है कि तुम्हारे पिताजी ने जो पांच साल पहले मुझसे जूते सुधरवाए थे, उसकी मरम्मत के दो रुपए अभी तक नहीं चुकाए। उनसे कहो कि अब मेरे पैसे चुकाएं।
चंदूलाल झुम्मन से बोले कि उससे जाकर कहो कि भाई, इतना घबड़ाओ मत। जब उसकी बारी आएगी, तो उसके पैसे भी चुका दिए जाएंगे। अभी तो उस दुकानदार के पैसे ही नहीं चुकाए गए, जिससे दस साल पहले ये जूते खरीदे गए थे, और यह पांच ही साल में हायत्तौबा मचाने लगा! अरे, धैर्य भी कोई चीज है! मनुष्य को धीरज रखना चाहिए।
लोग अपनी भूल तो देखते ही नहीं। दूसरे में भूल बताने को तत्पर हो जाते हैं। कि पांच ही साल में हायत्तौबा मचाने लगा। धीरज तो नाममात्र को नहीं है! धैर्य तो दुनिया से उठ गया है! अरे आएगा जब तेरा समय! पहले जूते वाले के पैसे तो चुक जाने दो। वह दस साल हो गए। तब फिर देखा जाएगा। सुधराई के पैसे तो बाद में ही चुकेंगे न! पहले तो जूते के पैसे चुकने चाहिए!
अपनी तो कोई भूल देखता ही नहीं। और ये प्रार्थनाएं हमने अपने लिए तरकीबें बना ली हैं। हम भी सोचते हैं: भगवान का अवतरण होगा--ईसा आएंगे, बुद्ध आएंगे, महावीर आएंगे और हमें मुक्ति दिला देंगे।
आज से कोई बीस साल पहले की बात है। मैं पहली दफा बंबई बोलने आया था महावीर जयंती पर। मुझसे पहले श्री चिमनलाल चकूभाई शाह बोले। और उन्होंने एक बात कही कि भगवान महावीर का जन्म मनुष्य जाति के कल्याण के लिए हुआ था। मैं उनके बाद बोला। मुझे तो उनका तब तक कोई परिचय नहीं था। और वह पहली और आखिरी मुलाकात हो गई। मेरे लिए तो बात वहां समाप्त हो गई, मगर उनके लिए अभी भी समाप्त नहीं हुई। इन बीस सालों में जितना नुकसान वे मुझे पहुंचा सकते हैं, उन्होंने हर तरह पहुंचाने की कोशिश की। जितना मेरे खिलाफ प्रचार कर सकते हैं, हर तरह उन्होंने करने की कोशिश की। एक गांठ बांध ली दुश्मनी की! और दुश्मनी की गांठ बांधने का कारण क्या था--यह छोटी-सी बात थी। मैं तो उन्हें जानता नहीं था। मैं बंबई ही पहली दफे आया था। मैंने इतना ही निवेदन किया कि यह धारणा महावीर के संबंध में सच्ची नहीं है। यह तो हमारी आकांक्षा को महावीर पर थोपना है। महावीर ने तो कहीं भी नहीं कहा है कि मैं तुम्हारे कल्याण के लिए जन्म ले रहा हूं! कहीं भी नहीं कहा है। महावीर ऐसी गलत बात कह ही नहीं सकते।
और यही तो फर्क है अवतार की और तीर्थंकर की धारणा में। अवतार का अर्थ होता है: परमात्मा ऊपर से उतरता है नीचे जो लोग भटके हैं उनको रास्ता दिखाने के लिए। वह आता ही इसलिए है। जैसे मरीज के घर में चिकित्सक आता है। बीमार है, इसलिए आता है। लेकिन तीर्थंकर की धारणा ही और है। वही तो तीर्थंकर की धारणा का गौरव है, गरिमा है।
तीर्थंकर की धारणा यह नहीं है कि कोई ऊपर से नीचे उतरता है। ऊपर कोई
है ही नहीं। महावीर किसी परमात्मा को मानते नहीं, जो आएगा। महावीर तो मानते हैं कि व्यक्ति की आत्मा ही जब परम शुद्ध अवस्था को उपलब्ध हो जाती है, तो परमात्मा है। कहीं से कोई आता नहीं; यहां नीचे से ही उठता है, उभरता है, प्रकट होता है।
और महावीर यह भी मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ही अपने को मुक्त कर सकता है। कोई दूसरा किसी को मुक्त नहीं कर सकता। कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता। हां, कल्याण की कामना कर सकता है। मगर कल्याण की कामना से कल्याण नहीं होता।
महावीर का हृदय सब की कल्याण भावना से भरा है। लेकिन इससे क्या होगा! महावीर जीवित थे, तब भी सभी का कल्याण नहीं हो सका। सब की तो बात छोड़ दो, जो उनके निकट थे, उनका भी कल्याण नहीं हो सका! और जिन्होंने यह आशा बांध ली थी, जैसा चिमनलाल चकूभाई शाह ने कहा, उनका तो बिलकुल ही नहीं हो सका।
महावीर का प्रमुख शिष्य था गौतम। जिस दिन महावीर का इस पृथ्वी से प्रयाण हुआ, जिस दिन उन्होंने देह छोड़ी, उस दिन गौतम को उन्होंने सुबह ही पास के गांव में शिक्षा देने भेज दिया था। जब वह सांझ को लौट रहा था, तब

उसको खबर मिली कि महावीर ने प्राण छोड़ दिए हैं। वह तो रोने लगा। जिन्होंने उसे खबर दी थी, उन्होंने कहा, अब रोओ मत। अब क्या होता है!
गौतम ने कहा, यह भी मेरा दुर्भाग्य कि सदा तो साथ रहा और आज मृत्यु के क्षण में पता नहीं क्यों उन्होंने मुझे दूर भेज दिया! आज के दिन मुझे भेज दिया दूसरे गांव! मेरे लिए कोई संदेश छोड़ गए हैं? जाते वक्त मेरी याद की थी उन्होंने?
तो उन्होंने कहा, जरूर याद की थी और संदेश भी छोड़ गए हैं।
और वह संदेश बड़ा कीमती है। वही संदेश उस दिन आज से बीस साल पहले मैंने दोहराया था।
महावीर कह गए थे जाते वक्त कि गौतम जब लौटे, तो उससे कह देना कि तू पूरी नदी तो पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुक गया है! तूने सारा संसार छोड़ दिया, अब मुझको पकड़ लिया है! मुझको भी छोड़ दे। नदी पार कर गया, अब किनारे को भी छोड़ दे। किनारे को पकड़े रहेगा, तो भी नदी में ही रहेगा। अब किनारे से भी ऊपर उठ। सारा संसार छोड़ दिया, अब मुझे भी छोड़ दे। यह अपूर्व संदेश! बिलकुल मुक्त हो जा।
कोई और तुम्हारा कल्याण कर सकता है--इस धारणा में ही बंधन है। यह सीधी- सादी बात कही थी। उनको चोट लग गई--भारी चोट लग गई! वे दुश्मनी अब तक भंजाए जाते हैं। अभी भी कच्छ के संबंध को लेकर कल जो बंबई में मेरे खिलाफ सभा बुलाई गई, उसके पीछे वे ही सूत्र-धार हैं। अब सारे कच्छियों को इकट्ठा करने में लगे हैं वे। कहीं मैं कच्छ न चला जाऊं! नहीं तो कच्छ का अकल्याण हो जाएगा! अब मैं सोचता हूं: पूना का तो काफी अकल्याण कर चुका, अब कच्छ का भी तो कुछ करूं! कि कच्छ का कोई अकल्याण करेगा ही नहीं! कि कच्छ बेचारा यूं ही पड़ा रहेगा!
अब उनको एकदम प्राणों में पीड़ा पड़ी हुई है कि कहीं कच्छ का कोई अकल्याण न हो जाए!
जवाब तो नहीं दे सके, क्योंकि जो मैंने कहा था--वह सीधी-साफ बात है। मगर हम सब के भीतर यह आकांक्षा होती है कि कोई हमारा कल्याण कर दे। यह बड़े मजे की बात है।
तुम तो गंदगी फैलाओ--और कोई आकर सफाई करे! मगर अगर तुम गंदगी फैलाने में कुशल हो, तो वह सफा कर भी नहीं पाएगा और तुम फिर गंदगी फैला दोगे! तुम्हारी कुशलता कहां जाएगी! गंदगी तो साफ कर भी देगा, मगर तुम्हारी कुशलता का क्या होगा? तुम फिर गंदगी फैला लोगे।
तुमने अगर जीवन को गलत ढांचे में ढाला हुआ है, तो कोई तुम्हें ठोंक-पीट कर ठीक-ठाक कर दे; वह जा भी नहीं पाएगा कि तुम फिर अपने ढांचे पर आ जाओगे! तुम्हें जबर्दस्ती कोई मुक्त नहीं कर सकता है।
ऋषि ठीक कहते हैं: सर्वे भवंतु सुखिनः--सब सुखी हों। बड़े प्यारे लोग रहे होंगे। तुम्हारे सुख के लिए कामना की है। सर्वे संतु निरामयाः--और सब स्वास्थ्य को उपलब्ध हो जाएं। स्वास्थ्य का अर्थ सिर्फ निरोग ही नहीं होता। स्वास्थ्य का गहरा अर्थ है। उसका ऊपरी अर्थ है कि तुम्हारा शरीर स्वस्थ हो, निरोग हो। लेकिन उसका भीतरी अर्थ है--निरामय। उसका भीतरी अर्थ है कि तुम स्वयं में स्थित हो जाओ।
हमारा शब्द स्वास्थ्य बड़ा बहुमूल्य है। शरीर के लिए उसका अर्थ होता है: शरीर की जो प्रकृति है, शरीर का जो धर्म है, उसमें थिर हो जाए शरीर। जब शरीर अपनी प्रकृति से च्युत हो जाता है, तो दुख भोगता है। जब शरीर अपनी प्रकृति में ठहर जाता है, तो सुख भोगता है।
प्रकृति में ठहर जाने में सुख है; प्रकृति से हट जाने में विकृति है, दुख है। यह जो विराट विश्व है, इसके साथ एक तल्लीनता सध जाए, तो सुख है! इसके साथ टूट हो जाए, तो दुख है। और ऐसी ही बात भीतर के जगत के संबंध में भी सच है। और तब स्वास्थ्य के बड़े गहरे अर्थ प्रकट होते हैं। दुनिया की किसी भाषा में स्वास्थ्य का वैसा गहरा अर्थ नहीं है--स्वयं में स्थित हो जाना। जब तुम अपनी आत्मा में ठहर जाते हो, तब निरामय हुए। अब सब रोग गए, असली रोग गए। शरीर के रोग तो ठीक ही हैं। शरीर है--खुद ही चला जाने वाला है। उसके रोग भी चले जाएं, तो क्या फर्क पड़ता है! स्वस्थ शरीर भी चले जाएंगे, अस्वस्थ शरीर भी चले जाएंगे। लेकिन तुम्हारे भीतर कुछ बैठा है और भी, जो

अमृत है; जो न आता, न जाता। उसमें जो ठहर गया, वह परम स्वास्थ्य का भागीदार हो जाता है। उस परम स्वास्थ्य को ही धर्म कहते हैं। स्वयं की प्रकृति में ठहर जाने का नाम धर्म है।
महावीर ने धर्म की परिभाषा की है: वत्थु सहावो धम्म--वस्तु का जो स्वभाव है उसमें ठहर जाना धर्म है। अपूर्व परिभाषा है। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध--इससे कुछ लेना-देना नहीं है धर्म का। प्रकृति में, स्वभाव में, निजता में ठहर जाने का नाम धर्म है। स्वस्थ हो जाना धर्म है।
इसी चेष्टा में हम यहां संलग्न हैं। ध्यान उसकी ही प्रक्रिया है। ध्यान खोना अर्थात स्वास्थ्य से हट जाना; और ध्यान में आना जाना अर्थात वापस स्वास्थ्य में आ जाना।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु--सब कल्याण को प्राप्त हों। बुद्ध कहते थे कि
जब तुम प्रार्थना करो, जब तुम ध्यान करो, जब तुम आनंद में सरोबोर हो जाओ, तो तत्क्षण--भूलना मत--कभी भूलना मत--तत्क्षण अपने आनंद को बांट देना। कहना कि यह मेरा आनंद सारी प्रकृति को मिल जाए: पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को, पत्थरों को भी। यह मेरा आनंद सब को मिल जाए। उसे बांट देना; तत्क्षण बांट देना।
एक व्यक्ति बुद्ध को सुनने रोज आता था। उसने बुद्ध से एक दिन एकांत में कहा कि आपकी बात मानता हूं, पूरा-पूरा मानता हूं। सिर्फ एक बात आपसे आज्ञा चाहता हूं, इतनी आप आज्ञा दे दें। कि वह जो आदमी मेरा पड़ोसी है, उसको नहीं दे सकता मैं! तो मैं आपकी बात मान कर चलता हूं, जब आनंदित होता हूं, जब सुबह प्रार्थना में डूबता हूं या ध्यान में उतरता हूं, और सुख का झरना बहता है, तो मैं कहता हूं: मेरे पड़ोसी को छोड़कर सारे जगत को मिल जाए! उस हरामजादे को नहीं दे सकता!
बुद्ध ने कहा, तो फिर तू बात को ही नहीं समझा। जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है, उनको दे सकता है। अब पत्थर-पहाड़--ले लो! क्या हर्जा है! मगर यह पड़ोसी--यह तो जान पर हमेशा उपद्रव खड़े कर रखता है। इसको कैसे सुख दे दें! बुद्ध ने कहा--जब तक तू पड़ोसी को न दे पाएगा, तब तक तेरा सब देना बेकार है; तब तक तेरे पास देने को है भी नहीं। तू भ्रांति में पड़ता होगा। क्योंकि ऐसे कलुषित चित्त से कैसे आनंद उठता होगा! तू बैठता होगा ध्यान को, मगर ध्यान नहीं बैठता होगा। अगर ध्यान बैठ जाता, तो यह सवाल ही नहीं उठना था। जीसस ने दो वचन कहे हैं। अलग-अलग कहे हैं! मैं कभी-कभी हैरान होता हूं, क्यों अलग-अलग कहे हैं! एक वचन तो कहा है: अपने शत्रु को भी उतना ही प्रेम करो, जितना अपने को। और दूसरा वचन कहा है: अपने पड़ोसी को भी उतना ही प्रेम करो, जितना अपने को! मैं कभी-कभी सोचता हूं कि जीसस से कभी मिलना होगा कहीं, तो उनसे कहूंगा कि दो बार कहने की क्या जरूरत थी! क्योंकि पड़ोसी और दुश्मन कोई अलग-अलग थोड़े ही होते हैं। एक ही से बात पूरी हो जाती है कि अपने को जितना प्रेम करते हो, उतना ही पड़ोसी को करो। पड़ोसी के अलावा और कौन दुश्मन होता है? दुश्मन होने के लिए भी पास होना जरूरी है ना! जो दूर है, वह तो दुश्मन नहीं होता।
मित्र होना जरूरी है शत्रु बनने के पहले। तुम किसी को शत्रु बना सकते हो--बिना मित्र बनाए? असंभव। यह तो कैसे होगा! मित्रता पहले, फिर शत्रुता बनती है। शायद लोग इसीलिए मित्र बनाते हैं कि शत्रु बना सकें! नहीं तो शत्रु कैसे बनाएंगे? शायद इसीलिए प्रेम रचाते हैं--कि घृणा कर सकें। शायद इसीलिए मोह बनाते हैं, ताकि क्रोध कर सकें।
लोग बड़े अजीब हैं! उनके गणित को समझो। और मैं जब लोगों की बात कर रहा हूं, तो खयाल रखना--तुम्हारी बात कर रहा हूं। तुम्हीं हो--वे लोग!
यह सूत्र तो कीमती है, पूर्णानंद! लेकिन इस आशीष को पूरा करने के लिए तुम्हें तैयारी दिखानी होगी। इस आशीष के योग्य तुम्हें बनना होगा।
सेठ चंदूलाल जिनके माथे से खून बह रहा था, नाक छिली थी और एक आंख सूजी हुई थी, लंगड़ाते-लंगड़ाते हाथ में एक टूटा हुआ कीमती चश्मा लिए डाक्टर के पास पहुंचे और बोले, मेरा कीमती चश्मा फूट गया है डाक्टर साहब। मैंने तो सुना है कि आजकल ऐसी-ऐसी रासायनिक गोंदें आने लगी हैं, जिनसे कांच वगैरह भी जुड़ जाता है। क्या आपके पास उसकी टयूब है?

डाक्टर ने घबड़ा कर चंदूलाल को कोच पर लिटाते हुए पूछा, क्या हुआ सेठजी! ये चेहरे पर इतनी चोटें कैसे आ गईं? किसी से झगड़ा हो गया क्या? सेठजी बोले, अरे चोटों की बात छोड़ो भाई। शरीर तो आखिर शरीर ही है; मिट्टी का नश्वर घड़ा है; आज नहीं कल फूटेगा। तुम तो यह बताओ कि यह चश्मा जुड़ सकता है या नहीं? बहुत कीमती चश्मा है, और नया है। अभी सन पचपन में ही तो मैंने लगाना शुरू किया है! लेकिन अब दोष भी किसे दूं! किसी से झगड़ा नहीं हुआ। मेरी ही गलती से फूट गया। साली किस्मत ही खराब है। यदि नई की नई चीजें इस तरह बरबाद होने लगीं, तब तो शीघ्र ही मेरा दिवाला निकल जाएगा!
डाक्टर ने बामुश्किल हंसी रोकते हुए पूछा, जरा यह तो बताइए सेठजी, कि आपसे और भला ऐसी क्या गलती हो गई?
चंदूलाल ने अपनी सूजी हुई आंख पर हाथ रख कर कहा, आज सुबह की ही बात है, मैं और मेरी पत्नी बाथरूम में साथ-साथ नहा रहे थे। हम लोग सदा एक साथ नहाते हैं, फव्वारे के नीचे खड़े होकर, इससे पानी की बचत होती है। स्नान के बाद ऐसा हुआ कि मेरी खर्चीली पत्नी लघुशंका के लिए बैठी और उठकर उसने झट से फ्लश चला दिया। मैंने सोचा कि फ्लश तो चल ही रहा है, लगे हाथ मैं भी इसी में पेशाब कर दूं, वरना फिर व्यर्थ पानी बहाना पड़ेगा। बस इसी जल्दबाजी में मैं कमोड से खिसल पड़ा और फिर जो गति हुई, वह सब आप देख ही रहे हैं। नगद साढ़े तीन रुपए का चश्मा हाथ से गंवा बैठा, जिसे मेरे एक अभिन्न मित्र ने मुझे भेंट दिया था!
इस कथा से हमें तीन शिक्षाएं मिलती हैं:
पहली, कि जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए, इससे आर्थिक हानि होती है। दूसरी, कि कभी-कभी बहती गंगा में हाथ धोना भी ठीक नहीं।
और तीसरी, कि गंगा में हाथ धोने जब जाएं, तो कोई भी कीमती सामान अपने साथ न ले जाएं।
पूर्णानंद, कुछ तुम्हें करना पड़े। तुम्हारी जीवन की शैली को कहीं बदलना पड़े। इसमें भूलें ही भूलें हैं। इसमें तुमने सब गलत आधार दे रखे हैं। इसलिए असंभव है कि ये प्रार्थनाएं ऋषियों की पूरी हो सकें। संभव हो सकती हैं। मैं भी प्रार्थना करता हूं कि कभी ऐसा हो सके। यह पृथ्वी आनंद से भरे।
मैं तो अपने संन्यासी को एक शिक्षा दे रहा हूं--आनंदित होने की, प्रफुल्लित होने की। मैं तो त्याग नहीं सिखा रहा; मैं तो कह रहा हूं: धर्म परमभोग है, महासुख है। मैं तो कह रहा हूं कि संन्यास जीवन से विरक्ति नहीं है, जीवन को भोगने की कला है।
मेरी सारी शिक्षाओं का सार-संक्षिप्त इतना ही है: नृत्य सीखो, गीत सीखो, आनंद सीखो; बांटना सीखो, जीना सीखो। भगोड़े मत बनो, पलायनवादी मत बनो। अब तक तथाकथित धर्मों के नाम पर तुमने जो किया है, उससे पृथ्वी दुख से ही भरती गई है। उससे तुम पीड़ित ही हुए हो, परेशान ही हुए हो। मगर तुम मेरी सुनोगे, इसकी संभावना कम दिखाई पड़ती है।
तुम्हारी अपनी धारणाएं ऐसी मजबूत हैं कि तुम टस से मस नहीं होते। तुम बिलकुल जमकर बैठे हुए हो पत्थर की तरह। लाख दुख उठाने पड़ें, अगर तुम अपने दृष्टिकोणों को बदलोगे नहीं! और मेरे जैसे व्यक्ति अगर तुम्हें हिलाते- डुलाते हैं, तो दुश्मन मालूम होते हैं। लगता है कि मैं तुम्हारी संस्कृति नष्ट कर रहा हूं! जैसे दुख तुम्हारी संस्कृति है! मैं तुम्हारा धर्म नष्ट कर रहा हूं, जैसे कि दुख तुम्हारा धर्म है!
तुम आनंदित नहीं होना चाहते हो क्या? एक बार तय कर लो साफ। नहीं होना है, तो तुम स्वतंत्र हो। लेकिन तब जान कर जियो कि दुख ही हमारा जीवन का लक्ष्य है। हम तो दुखी होंगे। दुखी ही हमारी आत्यंतिक गति है। हमें तो नर्क ही जाना है। तो कम से कम बोधपूर्वक नर्क जाओ!
लेकिन तुम्हारी अजीब हालत है। जाते नर्क की तरफ हो, बातें स्वर्ग की करते हो। बनाते दुख हो, आकांक्षा सुख की करते हो। फिर छाती पीटते हो, रोते हो, परेशान होते हो! तुम्हें देख कर हंसी भी आती है, दया भी आती है। तुम्हें देखकर दोनों बातें होती हैं: आंसू भी आते हैं, मुस्कुराहट भी आती है। आंसू आते हैं, यह देख कर कि क्या दुर्दशा है आदमी की! और मुस्कुराहट इसलिए आती है कि हद्द हो गई! इतनी मूर्खतापूर्ण दशा का भी तुम्हें बोध नहीं हो पा रहा

है! यह क्या मजाक है! यह तुम किसके साथ मजाक कर रहे हो! अपने ही साथ मजाक कर रहे हो। खुद ही केले के छिलके फैलाते हो, फिर उन्हीं पर फिसल कर गिरते हो। रोते हो। पीड़ित होते हो। परेशान होते हो।
तुम्हारी सारी जिंदगी एक दुख की कथा है, व्यथा है। और कोई कसूरवार नहीं--सिवाय तुम्हारे। जिस दिन तुम यह उत्तरदायित्व समझ लोगे कि मैं ही जिम्मेवार हूं, उस दिन यह प्रार्थना पूरी हो सकती है। होनी तो चाहिए--सारी मनुष्य जाति के लिए। क्यों सारी मनुष्य जाति के लिए--पशुओं के लिए, पौधों के लिए, पक्षियों के लिए, पत्थरों के लिए भी। मगर क्या पत्थरों की बात करें, अभी तो आदमी पत्थर बना है।
मगर अब समय आ गया है कि अगर तुम न चेते, तो आदमियत नष्ट होगी। अब बहुत दुख का घड़ा भर चुका है। या तो इसे खाली करो या यह घड़ा फूटेगा। अब आदमी ज्यादा से ज्यादा और इस सदी के अंत तक जी सकता है खींचत्तान कर। तुम्हारे जीवन के जितने गलत ढांचे-ढर्रे थे, वे सब अंतिम पराकाष्ठा पर पहुंच गए हैं। उनका आखिरी परिणाम तीसरा महायुद्ध होगा, जो सारी मनुष्य जाति को, सारे जीवन को पृथ्वी से नष्ट कर देगा।
या तो तुम चौंको, जागो--और या फिर इस महामृत्यु के लिए तैयार हो जाओ। इसलिए मैं सोचता हूं कि शायद तुम्हें जागने के लिए इतने बड़े खतरे की
ही जरूरत है तो ही शायद तुम चौंको। इसलिए मैं बड़ी आशा से भरा हूं। इतना महान खतरा आदमी के सामने कभी भी नहीं था, जितना आज है। इसलिए एक आशा की किरण है कि शायद यह खतरा तुम्हें झकझोर दे। शायद धर्म की एक नई अवतारणा हो सके। शायद संन्यास का एक नया रूप निर्मित हो सके। शायद हम पृथ्वी को नाचते-गाते लोगों से भर सकें।
बहुत हो चुकी उदासी; बहुत हो चुकी विरक्ति। जीवन के रस को भोगने की कला को शायद आदमी अब सीखने के करीब आ रहा है, इतना प्रौढ़ हो रहा है। सीखना ही शायद पड़े, क्योंकि विकल्प या तो महामृत्यु है या महाक्रांति।

मेरा स्वर्णिम भारत-32

प्रार्थना या ध्यान?
(Note: from Saheb Mil Saheb Bhaye (साहेब मिल साहेब भये) #4)

पहला प्रश्न: भगवान,
तमसो मा ज्योतिर्गमय
असतो मा सदगमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय
उपनिषद की इस प्रार्थना में मनुष्य की विकसित चेतना के अनुरूप क्या कुछ जोड़ा जा सकता है?

नरेंद्र बोधिसत्व, यह प्रार्थना अपूर्व है! पृथ्वी के किसी शास्त्र में, किसी समय में, किसी काल में इतनी अपूर्व प्रार्थना को जन्म नहीं मिला। इसमें पूरब की पूरी मनीषा सन्निहित है। जैसे हजारों गुलाब से बूंद भर इत्र निकले, ऐसी यह प्रार्थना है। प्रार्थना ही नहीं है,समस्त उपनिषदों का सार है। इसमें कुछ भी जोड़ना कठिन है। लेकिन फिर भी मनुष्य निरंतर गतिमान है, यह अजस्र धारा है मनुष्य की चेतना की, जिसका कोई पारावार नहीं है। यह रोज नित नये आयाम छूती है, नित नये आकाश। बहुत बार ऐसा लगता है, आ गया पड़ाव और फिर आगे और भी उज्ज्वलत्तर शिखर दिखायी पड़ने लगते हैं। लगता है ऐसे कि आ गयी मंजिल, लेकिन हर मंजिल बस सराय ही सिद्ध होती है। और यह शुभ भी है। नहीं तो मनुष्य जीए ही कैसे? विकास है तो जीवन है। निरंतर विकास है तो निरंतर गति है। गत्यात्मकता जीवन है। इस लिए इस प्रार्थना में यूं तो कुछ जोड़ा नहीं जा सकता, ऐसे बिलकुल भरी-पूरी है, और फिर भी कुछ जोड़ा जा सकता है।
नानक के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि वे अपनी अनंत यात्राओं में--बहुत यात्राएं कीं उन्होंने। भारत में तो कीं ही, भारत के बाहर भी कीं। काबा और मक्का तक भी गये।--वे एक ऐसे गांव के पास पहुंचे जो फकीरों की ही बस्ती थी। सूफियों का गांव था। और उन सूफी दरवेशों का जो प्रमुख था, उसे खबर मिली कि भारत से एक फकीर आया है, पहुंचा हुआ सिद्ध है, गांव के बाहर ठहरा हुआ है-- गांव के बाहर ही सरहद पर, एक कुएं के पास, एक वृक्ष की छाया में।
रात नानक ने और उनके शिष्य मरदाना ने विश्राम किया था।
नानक चलते थे तो मरदाना सदा उनके साथ चलता था। मरदाना उनका एक मात्र संगी-साथी था। नानक गाते गीत,मरदाना धुन बजाता। नानक गुनगुनाते, मरदाना ताल देता। नानक प्रभु के गुणों के गीत उतारते, मरदाना स्वर साधता। मरदाना के बिना नानक अधूरे से थे। गीत तो उनके पास थे, मरदाना जैसे उनकी बांसुरी था।
सुबह-सुबह नानक गा रहे थे, सूरज उग रहा था और मरदाना ताल दे रहा था, तभी
उस फकीर का संदेशवाहक आया। उस फकीर ने सांकेतिक रूप से--सूफियों का ढंग, अलमस्तों का ढंग, अल्हड़ों का ढंग--एक स्वर्ण पात्र में दूध भरकर भेज दिया था। इतना भर दिया था दूध कि एक बूंद भी उसमें अब और न समा सके। जो लेकिन आया था पात्र, उसे भी बड़ा संभालकर लाना पड़ा थी। क्योंकि अब छलका तब छलका। इतना भरा था। ऐसा लबालब था।
पात्र लाकर उसने नानक को भेंट दिया और कहा, मेरे सदगुरु ने भेजा है; भेंट भेजी है। नानक ने एक क्षण पात्र को देखा, मरदाना सुबह-सुबह ही नानक के चरणों पर लाकर कुछ फूल चढ़ाया था, उन्होंने एक फूल उठाया और दूध से भरे पात्र में तैरा दिया। अब फूल का कोई वजन ही न था, वह वैर गया दूध पर। एक बूंद दूध भी बाहर न गिरा। और कहा नानक ने, ले जाओ वापिस, मैंने भेंट में कुछ जोड़ दिया; तुम न समझ सकोगे, तुम्हारा गुरु समझ लेगा।
और गुरु समझा।
भागा हुआ आया, नानक के चरणों में गिरा और कहा कि आप मेहमान बनें। मैंने पात्र भेजा था भर कर यह कहने कि अब और फकीरों की इस बस्ती में जरूरत नहीं। यह बस्ती फकीरों से लबालब है। यह मस्तों की बस्ती है, अब आप यहां

किसलिए आए हैं। लेकिन आपने गजब कर दिया। आने एक फूल तैरा दिया। यह तो मैंने सोचा भी न था, इसकी तो कल्पना भी न की थी, कि फूल तैर सकता है।
क्योंकि फूल कुछ डूबेगा नहीं--ऊपर ऊपर ही रहा। रहा होगा हलका-फूलका फूल।
टेसू का फूल। कि चांदनी का फूल। डूबा ही नहीं तो पात्र से दूध गिरने का सवाल ही न उठा! समझ गया आपका संदेश कि आप आए हैं बस्ती में, फूल की तरह समा जाएंगे। आएं, स्वागत हैं! बस्ती में कितने ही फकीर हों, आपके लिए जगह है। फूल ने खबर दे दी।
यह सूत्र यूं तो लबालब है, यह पात्र यूं तो दूध से भरा है, इसमें एक बूंद जोड़ने की गुंजाइश नहीं, लेकिन फूल तैराया जा सकता है। और जरूर तैराना चाहिए। तैराते ही रहना चाहिए। उपनिषद मरने नहीं चाहिए। तब तो उपनिषद पर उपनिषद लिखे गये। अन्यथा एक उपनिषद से बात पूरी हो गयी थी। एक छांदोग्य उपनिषद में सब आ जाता। एक कठोपनिषद में क्या बचता है और, सब आ गया! एक छोटे से उपनिषद ईशावास्य में, जिसको कि पोस्टकार्ड पर छापा जा सकता है, सब आ गया; सब उपनिषद आ गये, सब वेद आ गये, सब पुराण आ गये। लेकिन उपनिषद पर उपनिषद लिखे जाते रहे। तैराने वाले फूल पर फूल तैराते चले गये।
यूं ही जीवन गतिमान रहता है। नहीं तो ठहर जो, सड़ जाए। जहां पानी रुका, वहां गंदा हुआ। जहां बहता रहा, वहां निर्मल रहा।
बहता रहे यह पानी भी, इसलिए तुमसे कहता हूं--
इस सूत्र का पहला चरण है:"तमसो मा ज्योतिर्गमय। हे प्रभु,"...प्रभु को सीधा-सीधा उल्लेख नहीं किया। वह प्यारी बात है। क्योंकि शब्द में जो आ जाए, वह तो परमात्मा नहीं है। उसे अनकहा छोड़ दिया है। उसे समझो, उसे कहो मत। इसलिए सीधा-सीधा प्रभु का कोई उल्लेख नहीं। मगर उसकी उपस्थिति का एहसास है। क्योंकि यह प्रार्थना है। जहां प्रार्थना है, वहां प्रभु की उपस्थिति है। सच्ची प्रार्थना में प्रभु को कहना नहीं होता, प्रार्थना काफी होती है। प्रार्थना का धुआं--धूप--प्रार्थना की ज्योतिम जिस तरफ उठने लगती है, जिस आकाश की तरफ, जो ऊर्ध्वगमन करने लगती है वही इशारा है उसका। इशारा भार होता है। इसलिए तुम कोष्ठक में समझना: "हे प्रभु!" प्रत्यक्ष नहीं है, प्रगट नहीं है, कहा नहीं है, मगर समझना जरूर क्योंकि बिना उसके बात बनेगी नहीं। सूत्र अधूरा है बिना उसके।
सूफियों ने ईश्वर के, फकीरों के, अलमस्तों को ईश्वर के नामों की गणना पढ़ागे तो बहुत चौंकोगे। ऊपर तो लिखा होता है: परमात्म के सौ नाम--और अगर तुमने गिनती नहीं की तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, क्योंकि निन्यानबे हैं कि सौ, कैसे पता चलेगा?--गिनोगे तो बहुत चौंकोगे; गिनोगे तो निन्यानबे पाओगे, सौ कभी-नहीं।
निन्यानबे कहे हैं, सौवां असली है; जो कहा, वह तो सिर्फ इशारा है, जो नहीं कहा, वही असली है। निन्यानबे से उसी की तरफ इशारा किया है, सौवें की तरफ। मगर अनकहे को भी गिनती में है; सौ। ऊपर तो लिखा होता है: सौ नाम परमात्मा के, पाओगे निन्यानबे।
ऐसा ही कहा नहीं है, छिपा है।
सत्य को पंक्तियों के बीच में पढ़ना होता है, जहां पृष्ठ खाली होता है, लकीरों में नहीं।
तमसो मा ज्योतिर्गमय
"हे प्रभु,"...कोष्ठक लगा लेना..."मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।" मगर किससे कहा? किसी से तो कहना ही होगा। नहीं तो सूत्र बेमानी हो जाएगा। इसका कुछ अर्थ न रह जाएगा। मुझे ले चल अंधकार से आलोक की ओर। मगर कौन ले चले? इसलिए प्रार्थना में प्रभु हैं; उसकी उपस्थिति है, अभिव्यक्ति नहीं है।
असतो मा सदगमय
दूसरा चरण: कि, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल। और तीसरा चरण है-- मृत्योर्माऽमृतं गमय
"मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।"
तीनों सूत्र अलग-अलग नहीं हैं। एक-दूसरे से गुंथे हैं। एक ही सत्य के तीन पहलू हैं। यूं समझो: त्रिमूर्ति। परमात्मा जैसे तीन रूप, ऐसे तीन सूत्र। जैसे तीनों रूपों की प्रार्थना कर ली। इसमें फूल तैराया जा सकता

है। और जरूर तैराना चाहिए; ताकि उपनिषद जिंदा रहे; उपनिषद मर न जाए; उपनिषद बढ़ता रहे, बहता रहे। गंगा चलती रहे, सागर बनती रहे। सागर उड़ता रहे, बादल बनता रहे। बादल बरसता रहे, गंगा बनता रहे। यह बहाव ही जीवन है।
इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं कि इस प्रार्थना से थोड़े और ऊपर उठा जा सकता है। फूल तैराना होगा तो थोड़े ऊपर उठना होगा। क्योंकि पात्र तो लबालब है, भरपूर है, एक बूंद जगह नहीं है। थोड़ा ऊपर उठोगे तो ही बात बनेगी। अंधकार तो होता ही नहीं। अंधकार का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। इसलिए
यह प्रार्थना कि हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल, अंधकार से ही भरी हुई हो गयी। अंधकार तो होता ही नहीं। अंधकार तो केवल अभाव है। अंधकार की कोई स्थिति नहीं है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है। इसलिए तो तुम अगर अंधकार के साथ सीधा-सीधा कुछ करना चाहो तो न कर पाओगे। तुम्हारे कमरे में अंधकार भरा हो और मैं कहूं निकाल बाहर कर दो, तो तुम लाख चिल्लाओ, धक्के मारो, तलवार निकाल लो म्यान से, कि बंदूकें चलाओ, कुछ भी न होगा। कितने ही बड़े पहलवान क्यों न होओ और कितने ही दांव-पेंच क्यों न लगाओ, लेकिन हारोगे, अंधकार को बाहर न निकाल सकोगे; टूटोगे, खुद ही गिरोगे थक कर। और जब गिरोगे थक कर तो तुम्हारा तर्क कहेगा कि शायद अंधकार मुझसे ज्यादा बलवान है। यही तो तर्क की भ्रांति है।
तर्क बड़े भ्रांत निष्कर्ष दे देता है। लड़े और हारे तो जाहिर है कि जिससे हारे, वह शक्तिशाली होना चाहिए। मगर यह भी हो सकता है--यह तर्क को कभी नहीं सूझता--कि वह हो ही न इसलिए तुम हारे। अब जो है ही नहीं, उससे लड़ोगे तो जीतोगे कैसे? जीतना असंभव है। अंधकार से घूंसेबाजी करोगे तो खुद ही थक जाओगे, थक कर गिरोगे। अंधकार का क्या बिगाड़ लोगे? अंधकार होता तो जरूर कुछ बिगाड़ा जा सकता था। धक्का-मुक्की करके बाहर निकाल सकते थे। शोरगुल मचा सकते थे। हमला बोल सकते थे। लेकिन तुम अंधकार का कुछ भी न कर सकोगे, क्योंकि अंधकार है ही नहीं। तलवार चल जाएगी, काटेगा नहीं। बंदूक चल जाएगी, मरेगा नहीं। जहां का तहां रहेगा--क्योंकि है ही नहीं। होता तो कुछ न कुछ कर लेते।
न तो अंधकार को हटा सकते हो। अगर तुम हटा सकते होते तो बड़ी दिक्कतें होती। भारत की सड़कों पर चलना मुश्किल हो जाता। हर आदमी अपने घर का अंधकार सड़कों पर डाल देता। जैसे कचरा डाल देते हो।
और यहां तो हर आदमी दार्शनिक है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा था कि एक औरत ने पूरी की पूरी टोकनी कचरा-कबाड़ से भरी ऊपर से उंडेल दी। छज्जे के नीचे झांक कर भी न देखा। उस टेकरी में से एक टीन का डिब्बा नसरुद्दीन के सिर पर लगा। बड़े जार से वह चिल्लाया कि अंधी है तू, तुझे दिखायी नहीं पड़ता? अरे, स्त्री ने कहा कि यही कहो कि एक ही डिब्बा लगा; इसमें ईंट भी थी, पत्थर भी था। सौभाग्य मानो अपना, बड़े मियां! धन्यवाद दो परमात्मा का यह खाली टीन का डिब्बा बजा, इसमें क्या बिगड़ गया?
इस देश में ज्ञानी तो सभी हैं। क्या बात उसने भी पते की कहीं कि यह क्यों नहीं सोचते, आशावादी बनो, क्या निराशावादी बनते हो, यह क्यों नहीं सोचते कि ईंट भी लग सकती थी! सिर खुल जाता, अभी अस्पताल में होते! सिर्फ टीन का डिब्बा लगा, धन्यवाद तो देते नहीं, उलटे मुझ आंखवाली को अंधा कहते हो!
और मैं भी क्या करूं? अभी नयी-नयी शादी होकर आयी है, पहले दिन मेरे पति
ने कहा कि नीचे देख-दाखकर फेंकना। सो मैं आधा घंटे खड़ी रही, जब आदमी निकला एक तब मैंने फेंका। सो वह आदमी लड़ने आ गया। और मैंने पति से कहा, तुमने ही तो कहा था कि नीचे देख लेना कि आदमी है या नहीं, तब फेंकना। तो उसने अपना सिर पीट लिया मेरे पति ने और उसने कहा कि तू अब बिना ही देखे फेंका कर। तो आप झगड़ने को खड़े हो गये! आखिर आदमी कुछ करे कि न करे?
अंधेरा अगर फेंका जा सकता होता तो सड़कों पर ढेर लग जाते, निकलना मुश्किल हो जाता। तैरना पड़ता अंधेरे में से। नावें खेनी पड़ती। बड़ी मुश्किल हो जाता। तैरना पड़ता अंधेरे में से। नावें खेनी पड़ती। बड़ी मुश्किल हे जाती। मगर अच्छा है कि अंधेरे को कोई बाहर नहीं फेंक सकता। न अंधेरे को तुम बाहर फेंक सकते हो और न अंधेरे को भीतर ला सकते हो। जैसे

दोपहर में तुम्हें सोना है और तुम चाहो कि अंधेरा भीतर ले आएं ताकि अच्छी नींद आए, तो तुम अंधेरे का बटोरकर भीतर भी नहीं ले आ सकते। अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। अंधेरा हटाना है तो प्रकाश जलाओ। अंधेरा लाना है तो प्रकाश बुझाओ। प्रकाश की सत्ता है, अंधकार की काई सत्ता नहीं।
यह प्रार्थना कहती है: हे प्रभु, मुझे अंधकार से आलोक की तरफ ले चलो। अंधकार तो है ही नहीं, क्यों परमात्मा को कष्ट देते हो? इतना जान लो कि अंधकार नहीं है, इतने जान लेने में ही प्रकाश हो जाता है। इस बोध में ही प्रकाश हो जाता है।
इसलिए उपनिषदों से आगे कदम बढ़े। बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं की। परमात्मा को बीच में नहीं लाए। क्यों उस बिचारे को परेशान करना! बोध से ही बात हल हो जाती है तो प्रार्थना क्यों करनी? जब अपने से ही बात हल हो जाती हो तो क्यों द्वार पर दस्तक देनी? हो तो ठीक, न हो तो ठीक।
परमात्मा है या नहीं, इसकी भी चर्चा बुद्ध ने नहीं की। कोई पूछता था
तो हंसकर टल जाते थे। कह देते थे, अव्याख्य है, मत पूछो। न पूछो तो अच्छा। कुछ भी कहना उचित नहीं है। हो तो ठीक, न हो तो ठीक, लेना-देना क्या है? काम की बात तो कुछ और है। अंधकार नहीं है, इस सत्य की प्रतीति चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें प्रार्थना नहीं सिखाता, मैं तुम्हें ध्यान सिखाता हूं, भेद इतना ही है।
प्रार्थना और ध्यान में इतना ही भेद है: प्रार्थना सिर्फ हाथ जोड़ कर निवेदन करती है, हे प्रभु, ऐसा करो। फिर वह कितनी ही ऊंची प्रार्थना क्यों न हो, यह उपनिषद की ही प्रार्थना क्यों न हो, यह अदभुत, अपूर्व प्रार्थना ही क्यों न हो। प्रार्थना में मांग होती है। तू कुछ कर! और ध्यान में स्वयं करने का बल होता है; स्वयं करने का भाव होता है।
जब भी कोई समाज प्रार्थनाओं से भर जाता है, तो आलसी हो जाता है। हो ही जाएगा। क्योंकि वह हर चीज के लिए प्रार्थना करने लगता है। जब परम अनुभूतियों के लिए प्रार्थना की जा सकती है तो फिर छोटी-मोटी चीजों के लिए क्यों नहीं कर लेनी! जब परमात्मा अंधकार को मिटाकर और प्रकाश दे सकता है, असत्य को हटाकर और सत्य दे सकता है, मृत्यु को हटाकर अमृत दे सकता है, तो क्या गरीबी मिटाकर अमीरी नहीं दे सकेगा? बेकारी मिटाकर कारबार नहीं दे सकेगा? जरूर दे सकेगा। ये तो छोटी-मोटी बातें हैं। ये तो परमात्मा के नौकर-चाकर देवी-देवता कर देंगे। यह तो काली माई और दुर्गा माई और संतोषी मइय्या और ढांढन सती--यह तो कोई भी कर देगा। यह तो नौकर-चाकर, नौकर-चाकरों के नौकर-चाकर कर देंगे। ये छोटे-मोटे काम! और भी छोटे-मोटे करने हों, बुरे काम करवाने हों, तो भूत-प्रेत हैं, वे कर देंगे। किसी की जेब कटवानी है, किसी को जहर दिलवाना, किसी की गर्दन कटवानी है। मगर कोई कर देगा! हमें नहीं करना है।
प्रार्थना में एक बुनियादी भूल है कि यह टालती है दूसरे पर। और इसका स्वभाविक परिणाम आलस्य होता है।
मौसम था बरसात का, भादौं आधी रात,
आश्रम श्रम से दूर था, सुनो वहां की बात।
सुनो वहां की बात, जलेबी-दूध-परांठे,
खा-पी करके गुरु ले रे थे खर्राटे
आंख खुली तो चेले को आवाज लगाई,
क्यों रे छोरे! बिजली अब तक नहीं बुझाई? चेला अड़ियल आलसी, गुरु अजगरानन्द,
कहने लगा कि मान्यवर, आंखें कर लो बंद। आंखें कर लो बंद, समस्या स्वयं सुलझेगी, मुंह ढंक कर सो जाओ, समझ लो बत्ती बुझेगी। बोले गुरु, यह तो बतला आलस के चरखा,
बंद हो गयी है या अभी हो रही बरखा?
"गुरु जी, बाहर से आई है अपनी बिल्ली
हाथ फेर कर देखो,सुखी है या गिल्ली? गिल्ली है तो जानिए, चालू है बरसात,

सूखी है तो बंद है, खत्म हो गयी बात।"
"खत्म हो गई बात? न आती तुझको लज्जा
टाल रहा हर काम, बंद कर दे दरवज्जा।",
"दो मैंने कर दिये कार्य अब सोने दीजे,
काम तीसरा भगवान आप स्वयं कर लीजे।"
यह होने वाला है। यह स्वाभाविक है। जहां प्रार्थना प्रमुख हो जाएगी वहां अंतिम परिणाम आलस्य होगा। लोग भिखमंगे हो जाएंगे। भारत की पूरी मनोदशा भिखमंगे की हो गयी है। जब मांगने से मिल जाए, तो करना क्यूं? इसलिए मंदिरों में सिर पटको, कब्रों पर मनौतियां मनाओ, पीरों की प्रार्थना करो। और आशा रखो कि सब हो जाएगा। जब उसकी मर्जी होगी तब होगा। अपने किये तो कुछ होता नहीं। उसकी मर्जी के बिना तो पत्ता नहीं हिलता, यह प्रार्थना करने वाले लोग समझते रहे, समझाते रहे। सो ये पत्ता भी नहीं हिलाते। ये खुद ही नहीं हिलते।
इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ कि सारा देश गहन आलस्य में, निद्रा में, तंद्रा में डूब गया। इसका परिणाम हुआ: गरीबी, दरिद्रता, दीनता। फिर हम गरीबी, दरिद्रता और दीनता के लिए नये-नये तर्काभास खोजने लगे। पहले हमने तर्काभास खोजा कि गरीब वे ही लोग हैं, जिन्होंने पिछले जन्मों में दुष्कर्म किये थे। अमीर वे लोग हैं, जिन्होंने पिछले जन्मों में पुण्यकर्म किये थे। यूं अपने को समझाने लगे, सांत्वना देने लगे।
फिर महात्मा गांधी आए और उन्होंने कहा कि गरीब? कोई छोटी-मोटी बात नहीं। यह तो दरिद्रनारायण है। तो दरिद्रनारायण की तो पूजा करनी चाहिए। उसके तो पैर धोने चाहिए। तो वर्ष में एक दिन महात्मा गांधी किसी दरिद्र के पैर धो देते थे--औपचारिक, वर्ष में एक दिन। जैसे वृक्षारोपण समारोह होता है! आज लग जाते हैं वृक्ष, कल नदारद हे जाते हैं। आज यहां लग जाते हैं वही वृक्ष, कल दूसरी जगह वृक्षारोपण उन्हीं का हो जाता है। तीसरे दिन तीसरी जगह हो जाता है--वही वृक्ष जगह-जगह रोपित होते रहते हैं। कहीं वृक्ष ऊगते दिखायी पड़ते नहीं। करोड़ों वृक्ष रोपित हो गये इन तीस सालों में, पूरा देश हरियाली से भर गया होता; हरियाली कहीं दिखायी नहीं पड़ती! सब वैसे ही का वैसा है। कहां जाते हैं ये वृक्ष, पता नहीं। ये वृक्ष भी क्या करें, इनको रोपित ही नहीं होने दिया जाता। आज यहां, कल वहां परसों वहां-- ये तो यात्रा ही करते रहते हैं बेचारे। जैसे नेता को रोज-रोज उदघाटन करना पड़ता है, वृक्षों को रोज-रोज रोपित होना पड़ता है।
तो एक दिन प्रतीकात्मक रूप से दरिद्रनारायण की सेवा कर ली। किसी कोढ़ी
के पैर दबा दिये। फिर दरिद्र को इज्जत देना शुरू कर दी हमने। कि जैसे दरिद्र होने में बड़ी खूबी है! जैसे दरिद्र होने में बड़ी गुणवत्ता है, बड़ी महत्ता है।
पुराना तर्क था लक्ष्मीनारायण का। नया तर्क बना दरिद्रनारायण का। और मजा यह कि महात्मा गांधी सेठ जमनालाल बजाज के धन से चलते, उठते बैठते थे। जमनालाल ने मंदिर बनवाया वर्धा में: लक्ष्मीनारायण का मंदिर उस मंदिर का नाम है! मैंने जमनालाल की पत्नी जानकी देवी बजाज को पूछा, वे मुझे मिलने आयी थीं वर्धा में, मैंने कहा कि गांधीजी के भक्त थे जमनालाल, कम-से-कम इस मंदिर का नाम दरिद्रनारायण का तो रखना था; लक्ष्मीनारायण रखा! उन्होंने कहा, यह कैसे हो सकता है, हम परम वैष्णव! नाम मंदिर का तो लक्ष्मीनारायण ही होगा।
नाम तो मंदिर का लक्ष्मीनारायण हुआ--पुराना तर्क चलता रहा। वह पुरानी सांत्वना थी कि जिसके पास धन है, वह प्रभु का प्यारा है, सबूत है, नहीं तो धन क्यों होगा उसके पास। गांधी ने तर्क को बदला लेकिन सांत्वना वही है। अब जो दरिद्र है, वह प्रभु का प्यारा है। दरिद्र इसीलिए तो बनाया उसको। जरूर दरिद्र उसको ज्यादा प्यारे है, तभी तो दरिद्र ज्यादा लोग बनाता है। और अमीर तो कभी-कभी कोई बनाता है। इक्के-दुक्के, यहां-वहां। जिनको ज्यादा बनाता है, साफ है, जाहिर है बात कि उसको वे लोग ज्यादा पसंद हैं जिनको ज्यादा बनाता है। नहीं तो क्यों ज्यादा बनाए?

ये सारे तर्काभास आदमी खोजता है। मगर इनके भीतर छिपी हुई जड़ को नहीं देखता। ये हमारी मांगने की वृत्ति का परिणाम है। ये हमारे आलस्य का फल है। सारी दुनिया धनी होती चली गयी, हम गरीब होते चले गये।
मेरा जोर प्रार्थना पर नहीं है। मेरा जोर ध्यान पर है। फर्क समझ लेना! प्रार्थना कहती है:ऐसा कर दो, प्रभु! ध्यान अपने भीतर खोजता है कि कैसा है। और ध्यानी पाता है कि अंधकार तो है ही नहीं, प्रार्थना क्या करनी है! जाओ भीतर और देखो, आलोक ही आलोक है। क्या प्रार्थना में समय गंवा रहे हो! तमसो मा ज्योतिर्गमय! किस तमस से और किस ज्योति की तरफ जाने की बात कर रहे हो! नहीं भीतर गये, मालूम होता। नहीं तो तुमने अंधकार पाया ही नहीं होता। ज्योति ही ज्योति है। फिर अगर ज्योति के बाद ही तुम्हारे भीतर से धन्यवाद का रूप दूसरा होता। वह रूप यह होता--अगर धन्यवाद ही देना होता और प्रार्थना की ही भाषा का उपयोग करना होता, तो वह रूप ऐसा होता कि हे प्रभु, मुझे प्रकाश से और प्रकाश की तरफ ले चल! यूं फूल तैराया जा सकता है। अंधकार की बात ही क्यों छेड़नी! असत्य से सत्य की तरफ ले चल, ये बात क्यों छेड़नी, सत्य से और बड़े सत्य की तरफ ले चल! मृत्यु से अमृत की तरफ ले चल, ये बात क्यों छेड़नी, मृत्यु है ही नहीं, मृत्यु झूठ है। जिसको लगता है कि मृत्यु है। न तुम कभी जन्में, न तुम कभी मरे। ध्यान में यही तो उदघाटन होता है। असत्य है ही नहीं, सत्य ही सत्य है।
फिर भी अगर प्रार्थना में ही बांधना हो इस अनुभव को, अगर तुम्हें प्रार्थना का स्वर ही प्यारा हो, तो फिर यूं प्रार्थना करो: कि प्रकाश से और प्रकाश की तरफ ले चल। सत्य से और सत्य की तरफ ले चल। अमृत से और अमृत की तरफ ले चल। पूर्ण से और पूर्णतर की तरफ, पूर्णतर से पूर्णतम की तरफ। लेकिन यह जोड़ तभी संभव है जब ध्यान घटे।
उपनिषद प्रार्थना के शास्त्र हैं। उनमें अदभुत काव्य है। लेकिन मेरी रुझान प्रार्थना की तरफ नहीं है। क्योंकि प्रार्थना में एक बुनियादी बात मानकर चलनी पड़ती है कि परमात्मा है। और मैं नहीं चाहता कि तुम कुछ भी मानकर चलो। क्योंकि मानकर चलने का अर्थ हुआ कि तुमने बिना जाने कोई बात मान ली। तुम अंधविश्वासी हो गये। और अंधविश्वासी कैसे सत्य को जान सकेगा? उसने तो निष्कर्ष ले ही लिया।
निष्कर्ष किस आधार पर लिया? किस बुनियाद पर लिया?
दूसरों से सुनकर ले लिया। औरों ने कहा, इसलिए ले लिया। अब और ठीक कहते
थे या गलत, यह क्या पता। और और तो हजार तरह की बातें कहते हैं। हिंदू एक बात कहते हैं, मुसलमान दूसरी बात कहते हैं, जैन तीसरी बात कहते हैं, बौद्ध चौथी कहते हैं, किसकी मानो, किसकी न मानो। तो संयोगवशात लोग निष्कर्ष लेते हैं। संयोग का अर्थ हुआ: जिस घर में जन्म हो गया। अगर तुम भारत में पैदा हुए,तो धार्मिक होते, नास्तिक होते। हिंदू बच्चे को मुसलमान घर में पालो, कभी मंदिर नहीं जाएगा बड़ा होकर। कोई खून में थोड़े ही हिंदू धर्म होता है; न मुसलमान धर्म होता है। हड्डियों में थोड़े ही काई मुसलमान और हिंदू होता है। कोई डाक्टर परीक्षा करके तो बता दे हड्डियों की कि यह आदमी ईसाई था, कि जैन था, कि पारसी था! ये तो केवल बाहर से डाले गये संस्कार। जो सिखा दिया, वही बच्चा सीख लेता है। जो सिखा दिया, उसी का मानकर जीने लगता है।
एक आदमी पागल हो गया--दर्जी था--मगर भगवान चतुर्भुज का भक्त था-- कोई अजनबी आदमी उससे कमीज सिलवाने गया--गांव के लोग तो उसके पास जाना बंद ही कर दिये थे। क्योंकि सिलवाओ कमीज, बना दे पजामा। बटनें आगे की न लगाकर पीछे लगा दे। बनवाओ पजामा, गले में बांधने की सुथनी बना दे। उलटा-सीधा कर दे-- पागल आदमी! यह अजनबी था, आदमी बाहर का था, यह चला गया बनवाने। जब इसकी कमीज बनकर तैयार हुई और लेने गया तो देखकर बड़ा हैरान हुआ कि उसमें चार बांहें थी। उससे पूछा कि भइय्या ये चार बांहें क्यों बनायी? उसने कहा, मुझे तो...मैं चतुर्भुज भगवान का भक्त हूं, मुझे तो सभी जगह चतुर्भुज के ही दर्शन होते हैं। तुम्हारी चार बांहें नहीं हैं। तुम्हारी चार बांहें नहीं हैं? मुझे तो चार ही दिखायी पड़ रही हैं। तो तुम पहले ही कह देते कि तुम्हारी कितनी बांहें हैं, उतनी बना देता। तुम बोले क्यों नहीं? तो मुझे जैसा दिखायी पड़ता है वैसा मैंने बना दिया।

अब कोई चतुर्भुज भगवान को माननेवाला है। कोई अर्धनारीश्वर को माननेवाला है कि आधे भगवान नारी, आधे नर। कोई नरसिंह भगवान को माननेवाला है कि आधे पुरुष और आधे सिंह। फिर क्या-क्या मान्यताएं हैं! क्या-क्या धारणाएं है! जो जिसका समझा दिया। दूसरे हंसेंगे। क्योंकि दूसरों की धारणाएं और हैं। तुम उनकी धारणाओं पर हंसोगे। ईसाई हिंदुओं पर हंसते हैं, हिंदू ईसाइयों पर हंसते हैं, मुसलमान जैनियों पर हंसते हैं, जैनी बौद्धों पर हंसते हैं--सारी दुनिया एक-दूसरे पर हंसती है। समझदार अपने पर हंसता है। वह यह देखता है कि मेरी धारणाएं भी तो इतनी ही बचकानी हैं।
प्रार्थना में एक बुनियादी भूल है कि तुम्हें परमात्मा मानकर चलना होगा। नहीं तो प्रार्थना किससे करोगे? कैसे करोगे, प्रार्थना शुरू कैसे होगी? प्रार्थना की आधारशिला अंधविश्वास है। इसलिए मैं प्रार्थना का पक्षपाती नहीं हूं।
ध्यान कह एक खूबी है, उसकी एक वैज्ञानिकता है। ध्यान कहता है, कुछ भी मानने की आवश्यकता नहीं है। नास्तिक भी ध्यान कर सकता है, यह उसकी गरिमा है। नास्तिक को भी ध्यान यह नहीं कहता कि तुम आस्तिक हो जाओ, फिर ध्यान करना। मेरे मास नास्तिक आते हैं, वे कहते हैं, हम ध्यान कर सकते हैं? हम नास्तिक हैं! मैं कहते हूं, ध्यान पूछता ही नहीं कि तुम आस्तिक हो कि नास्तिक हो। ध्यान तो एक वैज्ञानिक विधि है, शांत होने की। अब नास्तिक को शांत होना है तो नास्तिक शांत हो सकता है। मौन होने की कला है ध्यान। अब नास्तिक को मौन होना है तो नास्तिक मौन हो सकता है।
आस्तिक और नास्तिक में फर्क क्या है? इसके भीतर आस्तिक बकवास चल रही है, उसके भीतर नास्तिक बकवास चल रही है। ध्यान कहता है, कोई बकवास नहीं चलनी चाहिए। ध्यान कहता है, भीतर कोई विचार नहीं चलना चाहिए, न आस्तिक, न नास्तिक। हिंदू करे, मुसलमान करे, ईसाई करे, पारसी करे, कोई भी ध्यान करे। ध्यान की एक अदभुत महिमा है। और वह यह कि न संप्रदायों की काई जरूरत है, न विश्वासों की कोई जरूरत, न मान्यताओं की काई जरूरत है,न संस्कारों की कोई जरूरत है; एक वैज्ञानिक प्रयोग है, जो कोई भी पूर्वापेक्षा नहीं करता कि पहले तुम्हें यह मानना पड़ेगा। जो कहता है, तुम जैसे हो, बस ऐसे ही शांत हो सकते हो। और शांत होने के बाद जानने का उदघाटन होता है, पर्दे उठते हैं। जो शांत हुआ उसने जाना, जो मौन हुआ उसने पहचाना।
जरूर परमात्मा जाना जाता है, लेकिन मानो क्यों? जो जाना जा सकता है,उसे कभी मानना ही मत। क्योंकि मान लिया तो फिर जान न सकोगे। माननेवाला अभागा है। सौभाग्यशाली तो जाननेवाला है। मुक्ति तो जानने से होगी। इसलिए मैं तो कहूंगा: जानो! और जानोगे, जागोगे अपने भीतर तो पाओगे अंधकार नहीं है, असत्य नहीं है, मृत्यु नहीं है। यह प्रार्थना करने की गुंजाइश ही गयी। सत्य ही है, आलोक ही है, अमृत ही है। फिर तुम्हारी मौज में आए और गाना हो गीत, गुनगुनाना हो तो मैं मना नहीं करता। मैं कौन हूं किसी को मना करूं! तुम्हें नाचना हो जानने के बाद, गीत गाना हो तो गाना, मगर तब तुम्हारे गीत का का यह भाव नहीं हो सकता कि मुझे अंधकार से आलोक की तरफ ले चल। तब यही भाव हो सकता है कि आलोक तो है ही, हे मेरे प्रभु, मुझे और आलोक की तरफ ले चल! कौन जाने, इतना आलोक है तो और भी आलोक हो! तब तुम्हारी प्रार्थना में भी एक सत्य होगा, एक अंधी धारणा नहीं। एक अनुभव होगा, एक प्रतीति होगी। इतना-सा फूल अगर आज्ञा दो तो तुम्हारे दूध से भरे पात्र में तैराना चाहता हूं।
तुम्हारा पात्र दूध से भरा है, यानी प्रार्थना से। मैं ध्यान का फूल उसमें तैरा देना चाहता हूं। यह फूल तैर जाए तो तुम्हारे जीवन में चार चांद जुड़ सकते हैं।
लेकिन मेरी बात को समझने की कोशिश करना, नरेंद्र बोधिसत्व। अक्सर खतरा हे जाता है, मेरी बात को समझने में अक्सर चूक हो जाती है। क्योंकि जो मैं तुमसे कहता हूं, वह तो मेरा अनुभव है, तुम्हारा नहीं। तुम सुनते हो उसे अपनी जगह से, अपनी धारणाओं में डूबे हुए। तुम्हारी धारणाओं को चोट लग सकती है। मेरी मजबूरी है। में असहाय हूं। चोट करना नहीं चाहता, तुम्हें दुख देना नहीं चाहता, लेकिन दुख हो सकता है। दुख इसलिए हो सकता है कि तुम एक

गलत जीवनदृष्टि को पकड़कर अगर चल रहे हो, तो तिलमिलाओगे; तो तुम्हें बेचैनी हो जाएगी; तुम कुछ का कुछ समझ लोगे।
मैं उपनिषद के विरोध में नहीं बोल रहा हूं। उपनिषद से मुझे प्रेम हैं। लेकिन उपनिषद के भी पार और जगत है। और भी आसमान हैं, और भी उड़ानें हैं। और मैं चाहता हूं कि जब उड़ने ही निकले हो, तो किसी सीमा को मत बांधना। न उपनिषद की, न वेद की, न कुरान की, न बाइबिल की। मानना ही मत सीमाओं को। जब उड़ने ही चले हो, तो पंखों को पूरी स्वतंत्रता देना।
दिल्ली की घटना है। एक आदमी रिक्शेवाले से बोला, "क्यों भाई, लाल किले
का क्या लोगे?"
रिक्शेवाला बोला,"लाल किला क्या मेरे बाप का है?"
क्या कहो और लोग क्या समझ लें!
दो अफीमची बैठे थे। पीनक में थे।...और यहां कौन पीनक में नहीं है। तरह तरह की अफीमें हैं। कार्ल माक्र्स ने तो कहा ही है कि तुम्हारा तथाकथित धर्म अफीम का नशा है। और मैं उससे निन्यानबे प्रतिशत राजी हूं। निन्यानबे प्रतिशत ही लेकिन। जहां तक भीड़ के धर्म का संबंध है, वह तो अफीम का नशा है ही। वह तुम्हें सुलाए रखता है। लेकिन कार्ल माक्र्स की बात सौ प्रतिशत सत्य नहीं है। क्योंकि उसे बुद्धों के धर्म का कोई पता नहीं है। नहीं तो वह बात बेशर्त नहीं कह सकता था। उसने बेशर्त घोषणा कर दी। उसने तो यूं कह दिया कि सभी धर्म अफीम के नशे हैं। धर्म मात्र अफीम का नशा है। वैसा मैं नहीं कहूंगा। धर्म है तो अफीम का नशा, लेकिन तुम्हारा धर्म, मेरा नहीं। वे दो अफीमची बैठे थे, पूरे चांद की रात, एक अफीमची ने कहा, "अहह, क्या प्यारा चांद है! दिल होता है खरीद ही लूं। आज अगर कोई लाख रुपये भी मांगे तो देने को राजी हूं। है कोई बेचनहार!"--दी उसने जोर से आवाज।
दूसरा अफीमची खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा,"अरे, बकवास बंद कर, अपनी हैसियत का ख्याल कर। तेरी क्या तेरे बाप की भी हैसियत नहीं कि चांद खरीद ले!"
उसने कहा,"क्या कहा? जरा संभलकर बोलना। आज सब दांव पर लगा दूंगा।"
"अरे," दूसरे ने कहा,"तू कितना भी दांव पर लगा दे, हमें बेचना ही नहीं!
तू सारी दुनिया दांव पर लगा दे मगर जब बेचना ही नहीं हमें तो कोई खरीदेगा कैसे?
तुम्हारी मान्यताओं का लोग तुम्हारी कल्पनाओं का लोग है। पीनक की बातें हैं। तुम्हें अपना पता नहीं और तुम ईश्वर की बातें करते हो! तुम्हें अपना पता नहीं, अपना ठिकाना नहीं तुम्हें, तुम कौन हो, इसका उत्तर नहीं दे सकते और तुम मोक्ष और निर्वाण और परलोक की बातें करते हो! और तुम्हें शर्म भी नहीं आती, संकोच भी नहीं लगता? तो फिर मेरी बातें सुन कर तुम्हें चोट लग सकती है।
कहां पांव धरें हम,
किसे याद करें हम,
यह अपनी डगर है,
अजनबी-सा शहर है
सभी ओर अंधेरे के
उभरते हुए चेहरे,
इधर सांप की फुफकार
उधर भूत के पहरे
यहां रात के तहखानों में मुर्दों का सफर है
अजनबी-सा शहर है
यहां शक्लें सभी बर्फ की परतों में जमी-सी,
कमरों के पिरामिड में
बंद देह ममी-सी
आंखों में बंद नींद की
टिकिया है, जहर है
अजनबी-सा शहर है

सभी ओर घूमती हैं
कबंधों की जमातें,
जिंदों को घेर करके
प्रेत जश्न मनाते
इधर जिंदगी की चीख
उधर मौत का घर है
अजनबी-सा शहर है
यहां सर्द कैदखाने-सी
हर बंद गली है
सड़कें लहूलुहान हैं
दीवारें जली हैं
हर बात यहां एक
हादसे की खबर है
अजनबी-सा शहर है
अपना पता नहीं, औरों का पता नहीं, सब अजनबी-सा है सब अपरिचित है और तुम चले जाते हो, चलते चले जाते हो-- भीड़ में, धक्कमधुक्की में, एक-दूसरे की नकल करते हुए। तुम्हारे पिता ने तुमसे कह दिया ईश्वर है, उनके पिता उनसे कह गये कि ईश्वर है और उनके पिता उनसे कह गये। इनमें से शायद किसी को भी पता नहीं। शायद हजारों साल पीछे किसी को पता रहा हो तो रहा हो। वह भी कुछ पक्का नहीं है, बात बिलकुल सुनी हो सकती है। यहां तो चिंदी के सांप बन जाते हैं। यहां तो खबरों को पंख लग जाते हैं। यहां तो बात फैलती ही चली जाती है, बड़ी होती चली जाती है। और फिर लोग उस पर जी-जान से लड़ने को तैयार हो जाते हैं। नकल से मत जीना। प्रार्थना में वही खतरा है। उसमें नकल है। ध्यान में खतरा नहीं है। उसमें नकल नहीं है। ध्यान में तुम्हें अपने भीतर जाना है, प्रार्थना में किसी के पीछे जाना है। और नकल से कभी काम होता नहीं। सिखाये पूत दरवाजे चढ़ते नहीं, दीवारें लांघते नहीं।
मैंने सुना है, दो आदमी एक जेलखाने में बंद थे। एक था मारवाड़ी चंदूलाल...आ गा था गिरफ्त में! की होगी तस्करी वगैरह!...और दूसरे थे सरदार विचित्तर सिंह। दोनों सोचते-विचारते, कैसे निकल भागें? एक रात मौका हाथ लग गया। होली की रात थी, पहरेदार डटकर भांग छान गया था, सो उन्होंने कहा आज मौका है, आज निकल भागें, आज पहरेदार नशे में है।
पहले चंदूलाल निकले। जब चंदूलाल सरक कर दरवाजे के पास से निकलने लगे,
तो यूं तो पहरेदार भंग के नशे में था मगर जिंदगी भर की पहरेदारी की आदत, सो नशे में भी बोला: कौन है? चंदूलाल तो पक्के मारवाड़ी, होशियार आदमी, बोले: म्याउं, म्याउं। पहरेदार ने कहा, भाड़ में जा! अपनी मस्ती में बैठा थी, कहां की बिल्ली आ गयी और!
सरदार विचित्तर सिंह ने सुना, उन्होंने कहा, वाह, गजब का चंदूलाल है! निकल गया पट्ठा!
सरदार विचित्तर सिंह भी निकले। फिर उस पहरेदार ने पूछा: कौन है? सरदार विचित्तर सिंह ने कहा: अरे, अभी वह मारवाड़ी बिल्ली गयी मैं पंजाबी बिल्ला हूं। नाम सरदार विचित्तर सिंह।
पकड़े गये। फौरन पकड़े गये।
जब मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम यह क्या बकवास कर रहे थे, उन्होंने कहा,
वह चंदूलाल भाग गया और उस हरामजादे ने भी सिर्फ म्याउं-म्याउं कहा था! और मैंने तो पूरा-पेरा उत्तर दिया था कि मैं पंजाबी बिल्ला हूं, सरदार विचित्तर सिंह मेरा नाम है और फिर भी पकड़ा गया। मेरी तो राज समझ में नहीं आता!
नकल में अक्सर यह भूल होनेवाली है। कुछ का कुछ हो जाएगा।
तोतों की तरह लोग दोहरा रहे हैं। यह उपनिषद की प्रार्थना कितनी दोहराई जाती है। मगर जो दोहराते हैं, उनका अंधकार मिटते दिखता है? कहीं दिये जलते दिखते हैं? कहीं दीपावली होती दिखती है उनके जीवन में? वही अंधकार। वही का वही अंधकार।
एक हिंदू संन्यासी, स्वामी दिव्यानंद, मैं जब छोटा बच्चा था तो मेरे
घर मेहमान हुए थे। मेरे पिता से उनकी काफी बनती थी, तो कई बार आकर रुकते

थे। वे इस प्रार्थना का रोज करते थे। सो जब भी आते--साल में एक-दो बार जरूर आते और महीने-पंद्रह दिन रुकते--रोज नियम से वे इस प्रार्थना को करते। और मेरे जिम्मे यह काम था कि उनको सुबह से घुमाने ले जाऊं। सो वे रास्ते भर इस प्रार्थना को करते रहते थे। एक साल मैंने सुना, दूसरी साल मैंने सुना, तीसरी साल मैंने सुना, जब चौथी साल वे फिर आए और फिर यही प्रार्थना करने लगे तो मैंने कहा कि मामला कब तक चलेगा? अभी तक आलोक हुआ नहीं? उसने सुनी नहीं? अभी भी वही बकवास जारी है? आखिर तीन साल से तो मैं सुन रहा हूं और कम से कम तीस साल से आप पहले से कर रहे होंगे। कब तक यह करते रहोगे प्रार्थना कि ले चल अंधकार से प्रकाश की ओर? न वह सुनता है, न आपकी अकल में यह आता है कि तीस साल निकल गये अभी तक सुना नहीं, अब क्या खाक सुनेगा! या तो बज्र बहरा है, जैसा कि कबीर ने कहा कि क्या बहरा हुआ खुदाय? अरे, यूं चिल्ला रहा है, इतने जोर से चिल्ला रहा है! चिल्लाता है न मुल्ला, अजान देता है सुबह से। पकड़ लिया होगा किसी मुल्ले को और कहा होगा कि क्यूं चिल्लाता है इतने जोर से, क्या तेरा खुदा बहरा है? और इतने जोर से भी चिल्लाएगा तो भी क्या खुदा सुन लेगा?
मैंने कहा, तीस साल हो गये, कब तुम्हें समझ आएगी? अपना दिया खुद क्यों नहीं जलाते? तुम्हारी हालत तो यूं है कि लालटेन लिए बैठे हैं और बस प्रार्थना कर रहे हैं, कि हे प्रभु, जला दे। तीस साल हो गये, अब तक नहीं जलाई, जाहिर है कि उसे तुम्हारी लालटेन जलाने में कोई रस नहीं है। उन्होंने कहा, देखो जी, तुम मेरी प्रार्थना में गड़बड़ नहीं कर सकते। मैंने कहा, मैं, तीन साल हो गये सुनते, जब मैं घबड़ा गया तो परमात्मा की तो सोचो! तीस साल से तुम्हारी सुन रहा है और तीन हजार साल से भारतीयों की सुन रहा है, उसकी खोपड़ी भनभना गयी होगी। और तुम क्या करोगे? जब वह तुम्हारी लालटेन जलाएगा! तुम भी कुछ करोगे कि नहीं?
फिर मैंने कहा, लालटेन कहां है, यह भी तो देखूं!
वे तो मेरे पिता से कहे कि मैं इसको साथ नहीं ले जा सकता, यह मेरी प्रार्थना में दखलंदाजी करता है। मैं तो सुबह-सुबह जाता हूं कि एकांत में, मौन से, शांति से, सुबह के ब्रह्ममुहूर्त में अपनी प्रार्थना दोहराऊं। ये ऐसे उलटे-सीधे सवाल करने लगा। ये मुझसे कहता है कि आपकी लालटेन कहां है जिसको आप जलवाना चाहते हैं? कि मैं जला दूं, यह मुझसे कह रहा था। अब नहीं जलाता परमात्म तो छोड़ो मैं जला देता हूं।
और तुम को अभी भरोसा है कि तुम मरोगे, जो तुम अमृत की प्रार्थना कर रहे हे? फिर क्या खाक जाना! फिर क्या खाक जाना! फिर जरा-सी भी पहचान नहीं, जरा- सा भी स्वाद नहीं चखा आने जीवन का, नहीं तो कहीं कोई जन्मता है या मरता है! न जन्में हो, न मरोगे। इस देह के पहले भी तुम थे, इस देह के बाद भी तुम रहोगे। तुम शाश्वत हो।
उन्होंने मुझे ले जाना बंद कर दिया मगर प्रार्थना उन्होंने जारी रखी।
वे किसी और को ले जाने लगे। मैंने उससे पूछा कि भई, तुम्हें ले जाने लगे हैं, प्रार्थना कौन-सी करते हैं? अगर वही प्रार्थना करते हों तो तुम दखलंदाजी दे देगा अगर बचना हो। नहीं जो रोज ले जाना पड़ेगा। तीन साल से मैं परेशान रहा। मैंने दखलंदाजी की कि छुट्टी मिली।
प्रार्थना से नहीं कुछ हो सकता है। प्रार्थना पर खड़ी हुई धर्म की पूरी धारणा ही बचकानी है। मांगने की बात नहीं, जीने की बात है। जीओ तो पा सकोगे। खोजो तो पा सकोगे। यूं आलस्य से न चलेगा।
ये शब्द तो प्यारे हैं। मगर शब्द कितने ही प्यारे हों, शब्दों से क्या
हो सकता है? इनमें अनुभव का अर्थ चाहिए। और अनुभव का अर्थ कौन डालेगा? वह तुम ही डाल सकते हो। उपनिषद मुर्दा हैं, जब तक तुम उनमें प्राण न फूंको। तुम प्राण फूंको तो तुम्हारे भीतर का उपनिषद बोलने लगता है। और जब तुम्हारे भीतर की कोयल कुहू-कुहू करती है, और तुम्हारे भीतर का पपीहा पिया-पिया पुकारता है, तब मजा है, तब रस है; रसो वै सः, तब तुम्हें अनुभव होगा कि परमात्मा का क्या स्वरूप है।

१४ जुलाई १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा स्वर्णिम भारत-33

जीओ--क्षण में, त्वरा से!
(Note: from Peevat Ramras Lagi Khumari (पीवत रामरस लगी खुमारी) #2)

पहला प्रश्नः ओशो, महाभारत का यह सूत्र बिलकुल आपके दर्शन से मिलता हुआ मालूम पड़ता है--
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः,
न तु धूमायितं चिरम्।
"मुहूर्त भर जलना श्रेयस्कर है, बहुत समय तक धुआंना नहीं।"
यह कैसे संभव है, यह समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद, यह सूत्र निश्चित ही मेरी जीवन-दृष्टि को एक अत्यंत संक्षिप्त संकेत में रूपांतरित कर देता है। जीवन है त्वरा का नाम, तीव्रता का नाम, सघनता का नाम। जैसे कोई धूप की किरणों को इकट्ठा कर ले, एकाग्र कर ले तो तत्क्षण आग प्रज्वलित हो जाती है। वे ही किरणें बिखरकर पड़ती हैं तो सिर्फ कुनकुनापन देती हैं; वे ही इकट्ठी हो जाती हैं तो प्रज्वलित अग्नि पैदा हो जाती है।
जीवन भी दो ढंग से जीया जा सकता हैः बिखरा-बिखरा, खंड-खंड, थोड़ा-थोड़ा, हिसाब-किताब से, गणित के ढंग और रवैए से; और जीवन यूं भी जीया जा सकता है-- सघनता से, प्रगाढ़ता से। या तो न्यूनतम ढंग से कोई जीए और या परिपूर्णतम ढंग से। जैसे सौ डिग्री पर पानी वाष्पीभूत हो जाता है, ऐसी ही जीवन की भी एक सघनता है, जहां अहंकार वाष्पीभूत हो जाता है; जहां मैं और तू का मिलन हो जाता है; जहां बूंद सागर में समा जाती है या सागर बूंद में समा जाता है। लेकिन जो कुनकुने-कुनकुने जीते हैं उन्हें कभी इस बात का पता नहीं चलता। वे जान ही नहीं पाते जीवन के नृत्य को, जीवन के उत्सव को; उनकी जीवन की बगिया में कभी वसंत नहीं आता, फूल नहीं खिलते, पक्षी गीत नहीं गाते। वे ऐसे जीते हैं जैसे न भी जीते तो भी चलता। मरे-मरे जीते हैं। और कारण है उनका हिसाबी-किताबी, व्यवसायी मन। सोच-सोचकर कदम रखते हैं, फूंक-फूंककर चलते हैं; बचाव की ज्यादा फिक्र है, जीने की कम; सुरक्षा की ज्यादा चिंता है, अनुभव की कम।
सूफी कहानी है। एक सम्राट ने महल बनाया और उसमें एक ही द्वार रखा; न कोई और खिड़की, न कोई और द्वार। क्योंकि कहीं खिड़की से कोई चोर, कोई हत्यारा, किसी द्वार से कोई दुश्मन प्रवेश कर जाए। और उस महल में वह अकेला ही रहता। अपनी पत्नी को भी उस महल में प्रविष्ट नहीं होने देता था। क्या भरोसा, किसका भरोसा? इस जगत में कौन अपना है? ऐसी बड़ी ज्ञान की बातें भी करता था, लेकिन सारी ज्ञान की बातों के पीछे था भय--मृत्यु का भय। जैसे कि सब तरह से सुरक्षित हो जाओगे, न दुश्मन आ सकेगा...मित्र ही न आ सकेगा तो शत्रु को आने की तो क्या संभावना रह जाएगी? पत्नी ही न आ सकेगी, बच्चे ही न आ सकेंगे। तो क्या तुम सोचते हो मौत न आ सकेगी? मौत तो फिर भी आएगी ही आएगी। वह तो उसी दिन आ गई जिस दिन जन्म हुआ। अब उसकी क्या चिंता? वह तो उसी दिन घट गई जिस दिन पहली सांस ली। पहली सांस और आखिरी सांस में कुछ भेद नहीं। पहली ले ली तो आखिरी भी ले ही ली।
लेकिन सोच-विचार से चलने वाला आदमी था। एक दरवाजा रखा, वह भी बड़ा संकरा। बस अकेला आ सके भीतर और जा सके। और उस दरवाजे पर उसने पहरों पर पहरे बिठाए। सात पंक्तियां थीं पहरेदारों की, क्योंकि हो सकता है एक पहरेदार धोखा दे जाए; सो जाए, न दे धोखा; इधर-उधर चला जाए। तो दूसरा पहरेदार था उस पर नजर रखने को। मगर दूसरे का भी क्या भरोसा; दोनों मिल जाएं, सांठ-गांठ हो जाए, साजिश हो जाए। तो तीसरा पहरेदार था। यूं सात पंक्तियां थीं, पहरे पर पहरा था।
पड़ोसी सम्राट उसका महल देखने आया। जब उसे खबर मिली तो स्वभावतः उसको
भी उत्सुकता जगी। सुरक्षा तो ऐसी ही होनी चाहिए। आया, देखकर बहुत प्रभावित हुआ और कहा मैं भी ऐसा ही महल बनवाता हूं। और जब अपने पड़ोसी

सम्राट को विदा करने इस महल का मालिक द्वार पर आया, उसे रथ में बिठा रहा था और वह पड़ोसी सम्राट प्रशंसा किए जा रहा था उसके महल की, ऐसी सुरक्षा उसने कभी देखी न थी--तभी सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी जोर से हंसने लगा। दोनों ने चैंककर उसकी तरफ देखा और कहा--तुम क्यों हंसे?
उसने कहा, कभी मैं भी सम्राट था और कभी मैंने भी सुरक्षा के सारे आयोजन किए थे, सब व्यर्थ हो गए। और मैं तुमसे एक बात कहूं कि अगर तुम सच में ही सुरक्षा चाहते हो, पूरी सुरक्षा कि रंच मात्र भी भय न रह जाए, तो तुम महल के भीतर बंद हो जाओ और यह दरवाजा भी बाहर से चुनवा दो। फिर कोई भी भीतर न आ सकेगा। अभी तो हवा का झोंका आ जाता है, मौत इसी पर सवार होकर आ जाएगी। अभी तो सूरज की किरणें आ जाती हैं, मौत उन पर ही सवार होकर आ जाएगी। इतना और कर लो। मैं इसलिए हंसा कि तुमने सब इंतजाम तो किया, लेकिन मौत इसी दरवाजे से आ जाएगी।
वह सम्राट बोला, अगर इस दरवाजे को भी चुनवा दूं, पागल है तू, तो फिर मैं
तो जिंदा रहते ही मर गया। यह तो कब्र हो जाएगी।
वह फकीर और भी खिलखिलाकर हंसा। उसने कहा--कब्र तो यह हो ही गई, इसमें बचा क्या है? बस, एक दरवाजा। एक दरवाजा होने से कहीं कब्र निवास बनती है? निन्यानबे प्रतिशत तो कब्र हो ही गई; एक प्रतिशत बची है, उसको भी क्यों बचाते हो? और अगर इतनी तुम्हें समझ है तो और दरवाजे भी खोलो, और खिड़कियां भी खोलो; क्योंकि जितने दरवाजे होंगे, जितनी खिड़कियां होंगी, उतना जीवन होगा।
असुरक्षा में जीओ तो ही जी सकते हो। भय तो जीने नहीं देता। और भय ही हिसाब लगवाता रहता है। तो लोग इस चिंता में ज्यादा होते हैं कि ज्यादा कैसे जीएं। ज्यादा से उनका अर्थ होता है लंबाई, गहराई नहीं। और असली में ज्यादा से अर्थ होना चाहिए--गहराई।
समय के दो आयाम हैं--एक लंबाई और एक गहराई। लंबाई यूं समझो कि अ से ब, ब
से स, ऐसी पंक्तिबद्ध यात्रा। और गहराई यूं समझो कि अ से और गहरा अ। अ--एक, अ--दो, अ--तीन, अ--चार। अ में ही डुबकी। ब आता ही नहीं। गहराई अ पर ही समाप्त हो जाती है। इसीलिए तो हमने उसको अक्षर कहा है। अक्षर, मतलब जिसका कभी क्षय न हो। दुनिया की किसी भाषा में वर्णमाला को अक्षर नहीं कहा जाता, सिर्फ हमने अक्षर कहा है। अ पर ही यात्रा पूरी हो गई। बस अ की ही गहराई में जाना, ब तक जाना ही नहीं। ब तो क्षर है, स तो क्षर है।
जीसस का तुमने सूली का चित्र देखा, वह चित्र इसी बात का प्रतीक है। ईसाई तो उस प्रतीक को समझ न पाए। सूली पर जीसस लटके हुए हैं, तो उनका धड़ तो खंभे पर है और उनके हाथ दूसरे खंभे पर। दो खंभों से ही तो सूली बन जाती है।
वस्तुतः सूली का प्रतीक भारत से ही जेरूसलम तक पहुंचा, जीसस ही ले गए।
सूली का प्रतीक भारत के प्राचीनतम प्रतीक स्वस्तिक का अंग है। स्वस्तिक का बीच का अंग, उसका आधारभूत हिस्सा। बस एक लकीर खड़ी हुई और एक लकीर आड़ी। आड़ी लकीर समय की लंबाई की सूचक है और खड़ी लकीर समय की गहराई की। या यूं कहो कि आड़ी लकीर है समय और खड़ी लकीर है शाश्वतता--अक्षर।
त्वरा में जीने का अर्थ है--ऐसे जीओ कि गहराई हो कि ऊंचाई हो। गहराई हो प्रशांत महासागर जैसी, ऊंचाई हो गौरीशंकर जैसी। मगर हम यूं जीते हैं कि हमारा जीवन एक सपाट रास्ते की तरह होता है; कोलतार की बनी सीधी सड़क, न कोई ऊंचाई, न कोई निचाई। इस सपाट जीवन में कैसे तो आनंद हो? इस सपाट जीवन में कैसे तो उत्सव हो? इस कोलतार की सड़क पर कैसे तो गुलाब खिलें, कैसे तो बीज फूटें? यह कोलतार की सड़क तो एक अंत से दूसरे अंत तक फैलती चली जाती है एक जैसी। इसमें कुछ भिन्नता भी नहीं, कोई वैविध्य भी नहीं। इसमें कोई आश्चर्य से भर देने वाला अनुभव भी नहीं।
तो मेरा संदेश क्षण में जीने का है--और क्षण में इतनी परिपूर्णता से जीने का है, जैसे कि दूसरा क्षण कभी होगा ही नहीं; जैसे बस यही क्षण है। और सच में यही क्षण है, दूसरे का क्या भरोसा है? आए न आए। बस यही क्षण है। इसको ही त्वरा से जी लो, समग्र्रता से जी लो। मत कल के लिए स्थगित करो। मत कहो कि कल जीएंगे। मत कहो कि सांझ जीएंगे। सुबह है तो सुबह जीओ। सांझ है तो सांझ जीओ। जो हाथ में मिला है उसको पूरा का पूरा पी लो, उसमें डूब जाओ। आएगा दूसरा क्षण तो उसमें भी डूब लेंगे; नहीं आएगा तो हमारा खोता क्या है? हम इस

क्षण को पूरा जी लिए। और एक क्षण को भी जिसने पूरा जी लिया, उसने शाश्वत का स्वाद पा लिया। उस स्वाद को चाहे धर्म कहो, चाहे प्रभु कहो, चाहे सत्य कहो-- जो मर्जी हो, जो नाम प्यारा हो वही दे दो।
महाभारत का यह सूत्र सारगर्भित हैः मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
यूं जलो जैसे कि कोई मशाल को दोनों तरफ से एक साथ जला दे।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
एक मुहूर्त, मुहूर्त समय का छोटे से छोटा हिस्सा है। सेकंड भी उतना छोटा नहीं। सेकंड को भी बांटा जा सकता है। इसलिए सेकंड सबसे छोटा हिस्सा नहीं है। मुहूर्त कहते हैं हम क्षण के उस हिस्से को जो फिर अविभाज्य है; फिर जिसको बांटा न जा सके। वह परम अणु, परमाणु, जिसके आगे फिर विभाजन असंभव हो जाता है। उस अविभाज्य मुहूर्त को समग्रता से जी लो।
अब इसमें दो बातें खयाल रख लेने की हैं। एक तो जीवन की समग्रता बड़ी चीज है, जैसे सागर। और मुहूर्त ऐसा छोटा है जैसे बूंद। बूंद में सागर को उतर आने दो। मुहूर्त को ऐसे जीओ, जैसे बस यही सब है। न पीछे कुछ, न आगे कुछ। न पीछे लौटकर देखो, क्योंकि उतने देखने में मुहूर्त विदा हो जाएगा। न आगे झांककर देखो, क्योंकि उतने देखने में मुहूर्त विदा हो जाएगा। खींच लो अपने को अतीत से। खींच लो अपने को भविष्य से। बस यहीं, इसी पल, अभी। और तब तुम्हारे जीवन में पहली दफा सौ डिग्री तापमान पैदा होता है। इतनी सघनता हो जाती है कि आ गया मधुमास, कि खिल उठेगा कमल। सारी ऊर्जा आ गई। नहीं तो सब बिखरा-बिखरा है, खंड-खंड है। कुछ हिस्सा बचपन में रह गया है, कुछ हिस्सा यौवन में रह गया है, कुछ हिस्सा अधेड़ अवस्था में अटका रह गया है, कुछ बुढ़ापे तक चला आया है। कुछ अभी तुम यहां हो, आगे जा चुका है। कुछ शायद मर भी चुका हो और कुुछ शायद मृत्यु के पार स्वर्गों की या मोक्षों की तलाश कर रहा हो। ऐसे फैले हुए जी रहे हो। इतने फैल जाओगे तो जीवन विरल हो जाता है। तो स्वभावतः न्यूनतम पर ही जीते हो फिर। फिर चुल्लूभर पानी हो उसमें डूबो भी तो कैसे डूबो!
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
श्रेयस्कर है एक मुहूर्त में भभककर जल उठना।
न तु धूमायितं चिरम्।
ऐसे धुआं-धुआं होते रहो न मालूम अनंतकाल तक, चिरकाल तक क्या सार है? धुआं-धुआं ही होते रहो, खुद की भी आंखें आंसुओं से भरेंगी और दूसरों की आंखें भी आंसुओं से भर जाएंगी। और रोशनी तो होगी नहीं। सच तो यह है कि अगर धुआं न हो तो अंधेरा भी बेहतर। और धुआं ही धुआं हो तो अंधेरा और बदतर हो जाता है। चले थे रोशनी की तलाश में, अंधेरे को और विक्षिप्त कर लिया। धुआं- धुआं हो गया। लेकिन लोग धुआं-धुआं ही जी रहे हैं।
इस धुंधुआती जिंदगी में कैसे तुम समझोगे कि अमृत भी छिपा है, आनंद भी छिपा है, मोक्ष भी छिपा है। नहीं भरोसा आता। नहीं भरोसा आ सकता है। जीवन कोई प्रमाण तो देता ही नहीं। कहते होंगे बुद्ध और कहते होंगे महावीर और कहते होंगे कृष्ण और क्राइस्ट और मोहम्मद, तो कहने दो। ये दो-चार सिरफिरों के कहने से कुछ होने वाला है? अपनी जिंदगी का अनुभव ही असली प्रमाण है। और अपने चारों तरफ जो हजारों-लाखों लोगों की भीड़ है, करोड़ों की भीड़ है, इसका प्रमाण। ये दो-चार सिरफिरे कहते हैं कि परम आनंद है, दुख निरोध है, हजार-हजार सूरज उगते हैं, हजार-हजार कमल खिल जाते हैं, शाश्वतता मिलती है, अमृत की झड़ी लगती है। पागल हैं, कल्पनाप्रवण हैं। कवि होंगे। सपने देखते होंगे।
और यूं नहीं कि साधारण आदमी ऐसा कहता है, बड़े विचारशील लोग, जैसे सिग्मंड फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि इन झक्कियों की बातों में न पड़ना, इनकी बातें बस मन के भुलावे हैं। बुद्ध और महावीर कहते हैं कि जगत मृग-मरीचिका और सिग्मंड फ्रायड कहते हैं कि ये दो-चार सिरफिरे होेंगे मृग-मरीचिका में। यह करोड़ों-करोड़ों लोगों का अनुभव यही वास्तविक अनुभव है, यही हकीकत है। और यह मंसूर जिस हकीकत की बात करता है, कहता है अनलहक, कि मैं हूं वह हकीकत--सिर्फ सपनों में भटक गया है, आत्म-सम्मोहित हो गया है। यह करोड़ों लोगों का अनुभव, यह सही होना चाहिए।

इसलिए भला तुम बुद्ध की मूर्ति पूजते हो और सुबह उठकर कुरान पढ़ते हो
या कि चर्च जाते हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता, तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम्हारी जिंदगी में प्रमाण नहीं। तुम्हारी जिंदगी में धुआं ही धुआं। और कृष्णमूर्ति कहते हैंः धूम्ररहित शिखा, स्मोकलेस फ्लेम। धूम्ररहित शिखा! वह तो तुमने कभी जानी नहीं। धुएं सहित भी शिखा नहीं जानी, बस धुआं ही धुआं उठता रहता है। गीली लकड़ी जलाओ तो धुआं उठता है। जितनी गीली उतना धुआं उठता है। खयाल रखना, धुआं अग्नि का हिस्सा नहीं है। आमतौर से लोग यही सोचते हैं कि धुआं उठता है अग्नि से। अग्नि से नहीं उठता। अगर लकड़ी बिलकुल सूखी हो, उसमें जरा भी पानी न हो, जरा भी आर्द्रता न हो तो धुआं नहीं उठता। धुआं उठता है लकड़ी में पानी के कारण--गीली लकड़ी।
बुद्ध ने ठीक कहा है कि जब तक तुम्हारा मन वासना से गीला है तब तक धुआं उठेगा। जिस दिन तुम वासना से मुक्त हुए, इच्छा से मुक्त हुए, कल्पना से मुक्त हुए, यह आपाधापी गई मन की; सूख गए, सूखे काष्ठवत हो गए--उस दिन शिखा ही उठेगी--प्रज्वलित शिखा, धूम्ररहित। और वही प्रज्वलित शिखा जीवन का परम धन है, परम अनुभव है।
तुमने एक बात खयाल की, पानी सदा नीचे की तरफ बहता है और अग्नि सदा ऊपर
की तरफ उठती है। वह उनका स्वभाव। एस धम्मोे सनंतनो। यह उनका धर्म है। पानी नीचे की तरफ बहता है। अपने आप तुमने कभी पानी को ऊपर चढ़ते देखा? चढ़ाना हो तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, श्रम करना पड़ता है। बिना श्रम के नहीं चढ़ता। चाहे नल चलाओ, चाहे कुएं से पानी भरो और पहाड़ी पर पानी चढ़ाना हो तो और मुश्किल हो जाती है। पानी नीचे की तरफ बिना श्रम के बहता है। पहाड़ों से उतर आती है गंगा, किसी को कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती। चढ़ाओ तो गंगा को पहाड़ पर, बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
एडीसन बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ। उसने एक हजार आविष्कार किए, संभवतः किसी दूसरे आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। लेकिन लोग बड़े हैरान थे कि जब भी उसके घर में जाते थे, उसका दरवाजा खोलते थे बगीचे का, तो बड़ा भारी। आखिर उसके एक मित्र ने कहा कि एडीसन, तुमने इतने आविष्कार किए, कम से कम इतना तो करो कि कुछ ढंग के स्प्रिंग बनाओ। यह कहां का तुमने बाबा आदम के जमाने का दरवाजा लगा रखा है! इसको खोलने में इतनी मेहनत होती है।
एडीसन हंसने लगा। उसने कहा कि उस मेहनत का कारण है। एक बार कोई दरवाजा खोलता है तो मेरी टंकी में पानी भर जाता है। कौन पंचायत करे भरने की। दिनभर लोग आते-जाते रहते हैं, वे पानी भरते रहते हैं टंकी में। वह दरवाजा जो है, ऐसा नहीं कि उसके स्प्रिंग खराब हैं या कोई और बात है, तुम्हें पता नहीं कि एक बार तुमने दरवाजा खोला कि मेरी पूरी टंकी पानी से भर गई। वह उसका आविष्कार था।
पानी ऊपर चढ़ाना हो तो श्रम तो हो जाएगा। और आग को नीचे ले जाना बहुत मुश्किल है। जलती हुई मशाल को तुम उलटा भी कर दो, तो भी आग ऊपर की तरफ ही भागेगी। आग की लपट को नीचे की तरफ ले जाना बहुत मुश्किल है। उसके लिए फिर श्रम करना पड़ेगा, आयोजन करना पड़ेगा। इन दोनों की प्रक्रिया अलग, स्वभाव अलग, प्रकृति अलग। और लकड़ी में दोनों छिपे हैं। लकड़ी में जल भी है और आग भी है। शायद आग के कारण ही वृक्ष ऊपर उठ पाता है और जल के कारण ही उसकी जड़ें जमीन में गहरे पहुंच पाती हैं। तो वृक्ष में दोनों का तालमेल है। आग उसे ऊपर की तरफ उठाती है। वे जो फूल खिलते हैं, आग के कारण खिलते हैं। इसलिए तो जब कभी जंगल में पलाश के फूल खिल जाते हैं तो यूं लगता है जैसे पूरे जंगल में आग लग गई। पलाश के फूलों की जब पंक्तिबद्ध खिलावट होती है, जब पूरा जंगल पलाश के फूलों से भर जाता है, फूल ही फूल! और पलाश क्या फूलता है, कोई दूसरा वैसा फूलना जानता नहीं। सब पत्ते झर जाते हैं, फूल ही रह जाते हैं-- तो सारा जंगल यूं लगता है कि आग पकड़ गया; लपटें उठ रही हैं।
फूल आग का हिस्सा है। इसलिए बिना सूरज के फूल नहीं खिल सकेगा। तुम फूल वाले पौधे को भी अगर ऐसी जगह लगा दो जहां सूरज न आता हो, तो पत्ते तो लग जाएंगे, लेकिन फूल न खिल पाएंगे। या भूल-चूक से कुछ थोड़ी किरणें पहुंच भी जाती हों तो यूं मुर्झाए-मुर्झाए फूल खिलेंगे। इसलिए तो कमरे के भीतर तुम गुलाब नहीं उगा सकते हो। सूरज चाहिए। फूल में सूरज ही छिपा है। और जड़ें पानी की तलाश कर रही हैं, गहरी जा रही हैं।

वैज्ञानिक बहुत चकित हुए हैं यह बात जानकर कि जड़ों को कुछ संवेदनशीलता है कि पानी कहां है। जिस तरफ पानी है, जड़ें उसी तरफ जाती हैं। इसलिए जो बहुत संवेदनशील लोग हैं, वे तो एक गीली टहनी को वृक्ष की, हाथ में लेकर और चलते हैं और पता लगा लेते हैं कि पानी जमीन में कहां है। वह जो गीली टहनी है, वह तत्क्षण खबर दे देती है। मगर उसके लिए बहुत संवेदनशील लोग चाहिए। जो जल के खोजी होते हैं, जो जमीन में जल खोजने का काम ही करते हैं, वे एक गीली टहनी को, तत्क्षण तोड़ी गई वृक्ष की टहनी को हाथ में ले लेते हैं और उसको बिलकुल आहिस्ता से पकड़ते हैं कि उस पर कोई जोर न पड़े और उसको पकड़कर चलते जाते हैं। जहां वह टहनी झटका दे देती है, खबर दे देती है उनके हाथ को, उनका संवेदनशील हाथ फौरन उस झटके को पहचान लेता है। टहनी कह रही है कि यहां जल है। टहनी के भीतर छिपा हुआ जल जल की भाषा को पहचानता है। वह नीचे, जमीन के नीचे, हो सकता है पचास फीट नीचे जल हो, मगर पचास फीट जमीन की पर्तों को पार करके जल जल की भाषा पहचान लेता है। तत्क्षण टहनी खबर दे देती है कि यहां जल है। ठिठक जाता है जल का खोजी। और सौ प्रतिशत सही साबित होते हैं जल के खोजी। रेगिस्तानों में भी खोज लेते हैं; जहां कि दो सौ फीट तीन सौ फीट गहरा पानी होगा वहां भी वृक्ष को कुछ अपनी अंतर-अनुभूति है। एक वैज्ञानिक इसकी तलाश में लगा हुआ था, हैरान हुआ जानकर कि बड़ के एक वृक्ष ने और कहीं पानी न था, तो अपनी जड़ों को सड़क के उस पार पहुंचाया जहां से म्युनिस्पिल कमेटी का पाइप निकलता था। पाइप! वह तो बंद है। वह तो सीमेंट का पाइप है, उसके भीतर जल जा रहा है। लेकिन बड़ के वृक्ष को कहीं भीतरी कोई सूझ-बूझ है। कोई भीतरी प्रज्ञा है। जब वृक्ष खोदा गया तो किसी तरफ उसकी जड़ें नहीं गई थीं, सारी जड़ें पाइप की तरफ गई थीं और उन्होंने जाकर पाइप को फोड़ लिया था। तो वे पाइप के भीतर प्रविष्ट हो गई थीं और पाइप से पानी ले रही थीं। चूंकि पानी वहां था नहीं और वृक्ष हरा हो रहा था और वृक्ष बड़ा हो रहा था, इसलिए वैज्ञानिक उत्सुक हुए थे कि इसको पानी मिल कहां गया, पानी यहां है नहीं। किसी को सूझा भी न था कि वृक्ष भी होशियार होते हैं कि इसने पाइप खोज लिया म्युनिस्पिल कमेटी का। न केवल खोज लिया, उसको तोड़ भी लिया। कोमल जड़ों ने सीमेंट की पर्तों को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश कर लिया है।
जल वृक्ष की जड़ों का हिस्सा है और आग वृक्ष के फूलों का हिस्सा है। आग उसे ऊपर की तरफ ले जाती है, जल उसे नीचे की तरफ ले जाता है। और जब तुम लकड़ी जलाते हो तो उसमें दोनों होते हैं। इसलिए तो अगर दो लकड़ियां सूखी हों तो दोनों के रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। सिर्फ रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। वह आग पैदा करने का पुराने से पुराना ढंग है। दो लकड़ियों को रगड़ा और आग पैदा हुई। मगर लकड़ियां होनी चाहिए बिलकुल सूखी।
बुद्ध ने कहा हैः मनुष्य में भी जब वासना...वासना नीचे की तरफ ले जाती
है और प्रार्थना ऊपर की तरफ ले जाती है। या कहो प्रेम। मोह और प्रेम। मोह नीचे की तरफ ले जाता है; वह जलवत है। और प्रेम अग्निवत है; वह ऊपर की तरफ ले जाता है। प्रेम का ही अंतिम परिष्कार प्रार्थना है। और मोह की अंतिम गहराई वासना है। मनुष्य में दोनों हैं--वासना भी है, प्रार्थना भी है। अगर वासनारहित हो जाए मनुष्य तो उसके जीवन में मुहूर्त भर में ऐसी रोशनी प्रगट होती है ऐसी ज्वलंत कि एक मुहूर्त में वह सारे जीवन के सार को पहचान लेता है, सारे जीवन का अर्थ अनुभव में आ जाता है। और कुछ लोग हैं जो रहते हैं, जीते हैं, सौ-सौ वर्ष जीते हैं, मगर उनके हाथ राख भी नहीं लगती, खाक भी नहीं लगती।
मैं क्षण में जीने का पक्षपाती हूं। मत जीवन को लंबाने की चिंता करो, जीवन को गहराओ।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः, न तु धूमायितं चिरम्।
क्या करोगे चिरकाल तक धुआं-धुआं होकर? चिरकाल से धुआं-धुआं ही तो होते रहे हो। अब तो चैंको, अब तो जागो! और तुम्हारे भीतर अग्नि छिपी है; वह सूत्र छिपा है जो तुम्हें उठा दे आकाश की आखिरी ऊंचाइयों तक। तुम्हारे भीतर परमात्मा का गीत छिपा है।
योग प्रीतम की यह कविता--
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो

ऐसी कोई प्रीत न, जिसमें तेरा मदिर सुहाग नहीं हो इस जीवन की अंधियारी में
पूर्ण चंद्र-से तुम खिल आए
इस जीवन के सूनेपन में तुमने ये मधुमास जगाए ऐसा रस बरसाया तुमने, जीवन नई बहार हो गया
ऐसा कोई फूल न, जिसमें तेरा मधुर पराग नहीं हो
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
इस जीवन के हर नर्तन में
तेरी ही प्यारी रुनझुन है
इस जीवन में जो कीर्तन है
बस उसमें तेरी ही धुन है
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो प्राणों के गुंजन बिना तुम्हारे खेला जाए, ऐसा कोई फाग नहीं है
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
ऐसी कोई प्रीत न, जिसमें तेरा मदिर सुहाग नहीं हो मेरे भावाकुल अंतस में
शोभित है शृंगार तुम्हारा
मेरा यह संन्यास तुम्हारा
मेरा यह संसार तुम्हारा
मेरे मन के वृन्दावन में, निशि-दिन रास रचाते हो तुम
ऐसी कोई लगन नहीं है, जिसमें तेरी आग नहीं हो
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो
प्राणों के गुंजन बिना तुम्हारे खेला जाए,
ऐसा कोई फाग नहीं है ऐसा कोई गीत नहीं है,
जिसमें तेरा राग नहीं हो
वह तो छिपा पड़ा है तुम्हारे भीतर। चित चकमक लागे नहीं! बस जरा चित्त
को चकमक लगानी है, जरा सूखा करना है। जरा वासना की आर्द्रता कम करनी है। और फिर तुम एक क्षण में प्रज्वलित हो उठोगे।
ठीक कहता है महाभारत का यह सूत्र। ज्वलित हो उठोगे, प्रज्वलित हो उठोगे। और वही श्रेयस्कर है। नहीं कि बहुत दिन जीए। लोग कैसे-कैसे जी रहे हैं--सड़ रहे हैं और जी रहे हैं! जैसे जीना अपने आप में ही कोई मूल्य है! गल रहे हैं, मर रहे हैं और जी रहे हैं! जैसे जीवन का कोई अपने आप में अर्थ है! तुम इतने दिन तो जी लिए, क्या यह बात भी समझ में नहीं आई कि बस सांस लिए जाने में ही कुछ अर्थ नहीं है? कि रोज भोजन खा लिया, कि रोज भोजन पचा लिया, इसमें ही कुछ अर्थ नहीं है? पचास वर्ष किया यह काम कि सौ वर्ष किया यह काम कि डेढ़ सौ वर्ष किया यह काम, क्या प्रयोजन है?
वैज्ञानिक चिंतित हैं कि आदमी को औैर कैसे लंबाएं। वैज्ञानिकों के हिसाब से आदमी कम से कम तीन सौ वर्ष तो जी ही सकता है। भगवान न करे कि वे कहीं सफल हो जाएं इस कार्य में। ऐसे ही आदमी परेशान है। सत्तर-अस्सी साल में ही इतना ऊधम मचाता है, इतने उपद्रव करता है, तीन सौ साल जीएगा तो बहुत कठिन हो जाएगा। और वैज्ञानिकों के तो और भी लंबे इरादे हैं। वे तो कहते हैं, तीन सौ साल तो कम से कम जी ही सकता है। कम से कम। सात सौ साल ज्यादा से ज्यादा जी सकता है। कोई उन्हें अड़चन नहीं मालूम पड़ती।
लेकिन करोगे क्या? सड़ते रहोगे। सात सौ साल जीकर करोगे क्या? न मालूम कितनी पीढ़ियां इस बीच पैदा हो जाएंगी। तुम्हारे बच्चों के बच्चों के बच्चों के बच्चे तुम्हें पहचानेंगे भी नहीं। कोई परिचय भी न रह जाएगा। और इतने दिन जीने के बाद क्या यही खेल फिर भी सार्थक मालूम होंगे? यही राजनीति, यही खिलौने, यही धन, यही पद-प्रतिष्ठा, इसमें कुछ रस मालूम होगा? सत्तर साल में तो आदमी किसी तरह भरमाए रखता है अपने को। भरमाए-भरमाए ही दिन बीत जाते हैं, रात आ जाती है। झूले से लेकर कब्र तक ज्यादा देर नहीं लगती। मगर सात सौ साल तो बहुत कठिन हो जाएगा।
वैज्ञानिक सात सौ साल की बात कर रहे हैं। और जिन देशों में उम्र अस्सी साल के औसत को पार कर गई है, वहां बूढ़े आत्ममरण की मांग कर रहे हैं; आत्मघात का जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए। और मैं भी समझता हूं, उनकी बात में अर्थ

है। और आज नहीं कल, दुनिया के विधानों में इसको जोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि आज रूस में ऐसे सैकड़ों बूढ़े हैं जिनकी उम्र डेढ़ सौ वर्ष के करीब पहुंच गई है-- जो अब मरना चाहते हैं। मगर कैसे मरें? मरना गैर-कानूनी है। और उससे भी बुरी हालत अमरीका में है।
अमरीका में ऐसे हजारों लोग हैं जो अस्पतालों में पड़े हैं, बिस्तरों
पर पड़े हैं। न उठ सकते हैं, न बैठ सकते हैं; मगर मर भी नहीं सकते। न जी सकते हैं, न मर सकते हैं। कैसी दुविधा! अदालतों में मुकदमे चल रहे हैं, मरना चाहते हैं, लेकिन अदालत आज्ञा नहीं देती, क्योंकि कानून नहीं है कोई। आत्महत्या की आज्ञा कैसे दी जाए? दवाइयों से उनको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं, नलियों से भोजन दिया जा रहा है। नलियों से मल-मूत्र निकाला जा रहा है। किसी का हृदय ठीक से नहीं चल रहा है, तो मशीन चला रही है, बैटरी से चल रहा है। किसी की सांस नहीं चल रही है, तो मशीन चला रही है। अब सवाल यह है कि इस मशीन को बंद करना कि नहीं करना? और बंद किया जाए तो वह कानूनी है या गैर-कानूनी? अगर इस मशीन को बंद करते हैं तो हत्या का पाप लगेगा कि नहीं? यह अपराध होगा कि नहीं? कौन बंद करे? डाक्टर बंद करे, बेटे बंद करें, पत्नी बंद करे, कौन बंद करे? कौन झंझट ले? कुछ लोग तो बेहोश हालत में पड़े हैं, उनको होश ही नहीं, इसलिए उनसे पूछने का भी सवाल नहीं है अब। अब उनकी हालत बिलकुल गाजर-मूली जैसी है। आदमी अब उन्हें कहना ठीक भी नहीं है, गोभी के फूल हो गए। गोभी के फूल से भी गए बीते, क्योंकि गोभी के फूल का भी कुछ उपयोग है, कम से कम सब्जी बन सकती है, वे उस काम के भी न रहे। मगर कानून अधिकार नहीं देता मरने का। जरूर यह अधिकार देना पड़ेगा। जैसे और जन्मसिद्ध अधिकार हैं, उन्हीं में यह भी जोड़ना पड़ेगा, अथनाशिया का, आत्मघात का जन्मसिद्ध अधिकार। बड़ा उलटा सा लगेगा देखने में। जन्मसिद्ध जीवन का अधिकार और बात मरने की!
लंबे जीवन का यही परिणाम होने वाला है। गहन जीवन होना चाहिए। विज्ञान लंबाने की कोशिश करता है और धर्म गहराने की। इसलिए विज्ञान से मैं कहूंगा कि जितने दिन आदमी जीता है, स्वस्थ जीए इसकी फिक्र करो। लंबाने की चिंता में मत पड़ो। परिपूर्ण स्वास्थ्य से जी सके, इसकी चिंता करो। और धर्म इसकी चिंता करे कि यह स्वास्थ्य का उपयोग आदमी जीवन को गहराने में कैसे कर सके। ध्यान से जीवन गहराया जा सकता है, विज्ञान से स्वस्थ बनाया जा सकता है। विज्ञान के बिना जीवन स्वस्थ नहीं होगा और ध्यान के बिना जीवन गहराई को नहीं पाएगा। विज्ञान बाहर से सहारा दे और ध्यान भीतर से, तो आदमी के जीवन में बड़ी क्रांति घट सकती है। एक-एक मुहूर्त एक-एक शाश्वतता बन सकता है।
मैं तो जीवन को प्रेम करता हूं। मेरे लिए तो जीवन परमात्मा का ही दूसरा नाम है--जीवन, उसके सारे रंगरूपों में। मैं पलायनवादी नहीं हूं। मैं सारे पलायनवादियों का विरोधी हूं। और इसलिए तो पुरानी धर्म की जो जड़ आधारशिलाएं हैं, उनको उखाड़ने में लगा हूं। क्योंकि उन सब में पलायन छिपा हुआ है--भागो, छोड़ो! मैं कहता हूंः जीओ, जागो। भागो मत, छोड़ो मत। जो मिला है अवसर, उसका उपयोग करो।
ऐ काश कि सोजे-गम अश्कों में न ढल जाए
दामन से अगर पोछूं दामन मेरा जल जाए
हमको तो गुलिस्तां के हर गुल से मुहब्बत है
गुलचीं को जो नफरत हो, गुलशन से निकल जाए
हर खार हमारा है, हर फूल हमारा है
हमने ही लहू देकर गुलशन को संवारा है
हम डूबने वालों को, काफी ये सहारा है, साहिल पे तू आ जाना, हर मौज कनारा है
सौ जुल्म किए तुमने, इक आह न की हमने
वो दर्द तुम्हारा था, ये दर्द हमारा है हम तश्नालबी अपनी दुनिया से छुपा लेंगे साकी से रुसवाई अब हमको गवारा है
अब उनका हंसीं आंचल किस्मत में नहीं शायद आंसू भी हमारे हैं, दामन भी हमारा है

खामोश फजाओं में बजने लगी शहनाई
ये तूने सजा दी है या दिल में उतारा है
आंखों में जब अश्कों के तूफान मचलते थे
हमने वो जमाना भी हंस-हंस के गुजारा है
उनके लबे-नाजुक को क्या राज बताएंगे
कुछ तू ही बता ऐ दिल, क्या हाल हमारा है
आंसू भी हमारे हैं दामन भी हमारा है
यहां कांटे भी हमारे हैं, फूल भी हमारे हैं। यहां जिंदगी के दुख भी हमारे हैं सुख भी हमारे हैं। क्योंकि सुखों से ही आदमी नहीं सीखता, दुखों से और भी ज्यादा सीखता है। फूल तो भरमा भी लें, कांटे जगा देते हैं।
हर खार हमारा है, हर फूल हमारा हैहमने ही लहू देकर गुलशन को संवारा है
और यह हमारी ही बगिया है। हम ही इसके मालिक हैं। बस इतनी ही बात घट जाए--
हम डूबने वालों को, काफी ये सहारा है
बस इतना हो जाए--
साहिल पे तू आ जाना, हर मौज कनारा है
फिर कोई चिंता नहीं किनारे की। हम डूब जाएंगे मझधार में, फिर मझधार ही किनारा है। बस तू साहिल पर आ जाना। परमात्मा की झलक भर मिल जाए, साहिल पर सही, फिर मझधार भी किनारा है। उस प्रेमी की थोड़ी सी झलक मिल जाए। और वह झलक कभी भी मिल सकती है, अभी भी मिल सकती है। मगर उसके लिए हमें अपने जीवन को फैलाव से खींचना होगा; एक बिंदु पर थिर कर लेना होगा, हमें अखंड हो जाना होगा, खंड-खंड नहीं। और हमें एक जीवन की पूरी शैली का आविष्कार करना होगा। यूं समझो कि एक सीधी पंक्ति में जीना, लकीर में जीना, लकीर के फकीर होकर जीना, लीक पर जीना, भीड़ के साथ जीना--संसार है। और गहराई में जीना, अ से ब और ब से स की तरफ नहीं, अ से और गहरे अ की तरफ, और और गहरे अ की तरफ, अक्षर तक पहुंच जाने की डुबकी संन्यास है। मुहूर्त को ही जीवन बना लेना संन्यास है। और कल जीएंगे, परसों जीएंगे--यह आकांक्षा संसार है।

मेरा स्वर्णिम भारत-34

धर्म का गहन तत्व
(Note: from Peevat Ramras Lagi Khumari (पीवत रामरस लगी खुमारी) #5)

पहला प्रश्नः ओशो,
श्रुतिः विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना,
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पंथाः।।
"अर्थात श्रुतियां विभिन्न हैं, स्मृतियां भी भिन्न हैं और एक भी मुनि के वचन प्रमाण नहीं हैं। धर्म का तत्व तो गहन है। इसलिए उसे जानने के लिए तो महाजन जिस मार्ग पर चलते हैं, वही केवल मार्ग है।"
ओशो, महाजन की पहचान क्या है? उनके मार्ग पर चलने का अर्थ क्या है? समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद किरण, यह सूत्र अत्यंत सारगर्भित है। श्रुतिः विभिन्ना...। शास्त्र दो प्रकार के हैं--एक श्रुति और एक स्मृति। श्रुति का अर्थ होता है प्रबुद्ध पुरुष से सीधा-सीधा सुना गया। जिन्होंने गौतम बुद्ध के पास बैठकर सुना और उसे संकलित किया, वह श्रुति। जो महावीर के पास उठे-बैठे, जिन्होंने कबीर का सत्संग किया; जीवंत गुरु के पास जिन्होंने प्रेम के सेतु बनाए; जिन्होंने समर्पण किया--और सुना; जिन्होंने अपने को बाद दी--और सुना; जिन्होंने अपनी बुद्धि को एक तरफ रख दिया हटाकर--और सुना; जिन्होंने स्वयं के तर्क को बाधा न देने दी, स्वयं की जानकारियों को बीच में न आने दिया--और सुना; इस तरह जो शास्त्र संकलित हुए, वे हैं श्रुतियां। लेकिन फिर श्रुतियों को सुनकर जिन्होंने समझा, जैसे बुद्ध को आनंद ने सुना और बुद्ध के वचन संकलित किए...इसलिए सारे बुद्ध-शास्त्र इस वचन से शुरू होते हैंः मैंने ऐसा सुना है। आनंद यह नहीं कहता कि मैं ऐसा जानता हूं; इतना ही कहता है कि मैंने ऐसा सुना है। पता नहीं ठीक भी हो, ठीक न भी हो। पता नहीं मैंने कुछ बाधा दे दी हो। मेरे विचार की कोई तरंग आड़े आ गई हो। पता नहीं मेरा मन धुंधवा गया हो। मेरी आंखों में जमी धूल कुछ का कुछ दिखा गई हो। मैंने कोई और अर्थ निकाल लिए हों, कि अर्थ का अनर्थ हो गया हो। इसलिए पता नहीं बुद्ध ने क्या कहा था; इतना ही मुझे पता है कि ऐसा मैंने सुना था।
यह बड़े ईमानदारी का वचन है कि मैंने ऐसा सुना है। नहीं कि बुद्ध ने ऐसा कहा है। बुद्ध ने क्या कहा था, यह तो बुद्ध जानें, या कभी कोई बुद्ध होगा तो जानेगा। लेकिन फिर आनंद ने जो संकलित किया, आज उसे भी ढाई हजार वर्ष हो गए। उसको लोग पढ़ रहे हैं, गुन रहे हैं, मनन कर रहे हैं, चिंतन कर रहे हैं, उस पर व्याख्याएं कर रहे हैं। ये जो शास्त्र निर्मित होते हैं, ये स्मृतियां।
ये तो जैसे कि कोई आकाश का चांद झील में अपना प्रतिबिंब बनाए और तुम झील को भी दर्पण में देखो तो तुम्हारे दर्पण में भी चांद का प्रतिबिंब बने--प्रतिबिंब का प्रतिबिंब। श्रुति तो ऐसे है जैसे चांद झील में छा गया और स्मृति ऐसे है जैसे झील की तस्वीर उतारी, कि झील को दर्पण में बांधा। स्मृति दूर की ध्वनि है, और दूर हो गई। श्रुति भी दूर है, पर बहुत दूर नहीं; कम से कम गुरु और शिष्य के बीच सीधा-सीधा संबंध है। कुछ तो बात पते की कान में पड़ ही गई होगी। सौ बातों में एक बात तो सार की पकड़ में आ ही गई होगी।
किसी संधि से, किसी द्वार से, किसी झरोखे से कोई किरण तो उतर ही गई होगी।
लेकिन स्मृति तो बहुत दूर है--प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि है।
यह सूत्र कहता हैः श्रुतिः विभिन्ना...।
यूं तो सुनने में ही बात बड़ी भिन्न-भिन्न हो जाती है। अब जैसे तुम मुझे यहां सुन रहे, जितने लोग सुन रहे, उतनी श्रुतियां हो गईं। मैं तो जो कह रहा हूं, एक ही बात कह रहा हूं। लेकिन तुम सुनने वाले तो अनेक हो, तुम्हारी अलग पृष्ठभूमि है, तुम्हारी अलग धारणा हैं, अलग विचार हैं। तुम

अपने-अपने ढंग से सुनोगे। तुम्हारा ढंग, तुम्हारी शैली निश्चित रूप से जो तुम सुनोगे उसे प्रभावित करेगी। हिंदू एक ढंग से सुनेगा, जैन दूसरे ढंग से, बौद्ध तीसरे ढंग से। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्मों के कोई तीन हजार संप्रदाय हैं और तीन हजार संप्रदायों के कोई तीस हजार उपसंप्रदाय हैं। तुम अपनी-अपनी धारणाओं के जाल में बंधे हो। मेरी बात तुम तक पहुंचेगी, पहुंचते-पहुंचते कुछ की कुछ हो जाएगी। आस्तिक सुनेगा एक ढंग से, नास्तिक सुनेगा और ढंग से; दोनों के पास कान एक जैसे हैं, मगर कानों के भीतर बैठा हुआ मन और मन के संस्कार तो भिन्न-भिन्न हैं।
बुद्ध ने एक दिन कहा कि तुम जितने लोग हो उतने ही ढंग से मुझे सुन रहे हो, उतने ही ढंग से मेरी व्याख्या कर रहे हो। आनंद ने रात्रि उनसे पूछा कि मैं समझा नहीं। आप अकेले हैं, जो आप बोलते हैं हम वही तो सुनते हैं। अन्य कैसे हो जाएगा, भिन्न कैसे हो जाएगा?
बुद्ध ने तीन नाम दिए आनंद को और कहाः कल इन तीनों से पूछना कि क्या सुना था। मैंने जब प्रवचन पूरा किया था और अंतिम बात कही थी। रोज अपने प्रवचन के अंत पर बुद्ध कहते थे--अब रात बहुत हो गई, अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। यह केवल एक संकेत था भिक्षुओं को कि अब जाओ, सोने के पहले ध्यान में उतरो और ध्यान में उतरते-उतरते ही निद्रा में लीन हो जाओ। क्योंकि सुुषुप्ति में और समाधि में बहुत भेद नहीं है। सुषुप्ति मूच्र्छित समाधि है। समाधि जाग्रत सुषुप्ति है। इसलिए नींद को समाधि में बदल लेना सबसे सुगम उपाय है आत्मसाक्षात्कार का। जरा सी बात जोड़नी है।
सुषुप्ति का अर्थ है जब स्वप्न भी नहीं रह जाते, ऐसी गहन निद्रा। जब सारे स्वप्न भी तिरोहित हो गए, जहां स्वप्न भी न बचे, विचार भी न बचे, वासना भी न बची, वहां मन भी न बचा, तो अ-मनी दशा हो गई। लेकिन बेहोशी है, होश नहीं है। सन्नाटा है, गहन शांति है, प्रगाढ़ मौन है। लेकिन काश, एक दीया और जल जाता, जरा सा होश और होता! काश, हम इस प्रगाढ़ शांति को देख भी लेते, पहचान भी लेते! काश, हम जागे-जागे इसका अनुभव भी कर लेते! इसलिए नींद के पहले का ध्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसमें जो गहरा उतर जाए तो रातभर एक अखंडित धारा शून्य की भीतर बहती चली जाती है, ज्योति जलती रहती है। उस ज्योति में पहले सपने दिखाई पड़ते हैं, फिर सपने खो जाते हैं, फिर सुषुप्ति दिखाई पड़ती है। और जब सुषुप्ति दिखाई पड़ती है तो वही समाधि है। देखने वाला मौजूद हो तो सुषुुप्ति समाधि है।
इसलिए बुद्ध ने--रोज-रोज क्या कहना कि अब ध्यान करो, इतना ही कह देते
थे प्रतीक कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य--अब दिवस पूरा हुआ, अब आखिरी काम कर लो और सो जाओ। उसको करते-करते ही सो जाओ।
बुद्ध ने आनंद से कहाः कल तू, तीन व्यक्ति हैं, इनसे पूछ लेना कि उन्होंने क्या समझा जब मैंने यह वचन कहा था। वे मेरे तीनों सामने ही बैठे हुए थे और तीनों को देखकर ही मैंने समझा कि उन्होंने अलग-अलग समझा है। आनंद ने कल उन तीनों को पकड़ा और पूछा, और कहा कि बुद्ध ने ही ये नाम दिए हैं, इसलिए सच-सच कहना। मैं नहीं पूछ रहा हूं, जैसे उन्होंने ही पुछवाया है।
थोड़ा तो संकोच हुआ उन तीनों को, लेकिन फिर जब बुद्ध ने ही पुछवाया था
तो अपना हृदय उघाड़ दिया। उनमें एक था भिक्षु--गहन साधना में लीन। उसने कहा, और क्या समझूंगा! यही समझा कि अब जाऊं, ध्यान में डूबूं और ध्यान में डूबा- डूबा ही निद्रा में उतर जाऊं। यही समझा। यही बुद्ध ने कहा था।
दूसरे से पूछा; वह एक चोर था। उसने कहा, छिपाना क्या, छिपाऊं कैसे? बुद्ध स्वयं पूछते हैं तो सत्य कहना ही होगा। जब बुद्ध ने यह वचन कहा तो मुझे याद आया कि अरे, रात गहरी होने लगी, मेरे काम का समय हुआ, अब जाऊं, चोरी वगैरह करके जल्दी घर लौटूं और सोऊं।
और तीसरी एक वेश्या थी। और जब आनंद ने उससे पूछा तो वह बहुत सकुचाई, बहुत लजाई। बड़ी प्रसिद्ध वेश्या थी--आम्रपाली, जो बाद में बुद्ध की भिक्षुणी बनी। बुद्ध की भिक्षुणी बनी, इससे ही जाहिर होता है कि एक प्रामाणिक स्त्री थी। सकुचाई जरूर, लेकिन फिर भी सत्य उसने कहा। उसने कहा कि छिपाना कैसे, छिपाना नहीं हो सकता। उन्होंने पूछा है तो वही कहना होगा

जो मेरे भीतर हुआ था। यही हुआ कि अब जाऊं, अपने व्यवसाय में लगूं। मेरा व्यवसाय तो वेश्या का व्यवसाय है।
तो एक ध्यान में लगा, एक चोरी करने निकल गया, एक अपनी वेश्यागिरी में संलग्न हो गई। और बुद्ध ने तो एक ही बात कही थी।
श्रुतिः विभिन्ना।
जितने सुनने वाले लोग हैं उतने ही अर्थ हो जाएंगे।
स्मृतयश्च भिन्ना।
और स्मृतियों का तो कहना ही क्या! वह तो मूलस्रोत से और भी बहुत दूर की बात हो गई। मैंने तुमसे कही, तुमने किसी और से कही, उसने किसी और से कही; फिर बात का बतंगड़ हो जाता है। बात न भी हो तो बतंगड़ हो जाता है। चिंदी का सांप हो जाता है, कुछ का कुछ होने लगता है। और सदियां बीत जाती हैं और लोग स्मृतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को देते चले जाते हैं और हर पीढ़ी उसमें कुछ जोड़ती चली जाती है। हर पीढ़ी उसको वैसा ही थोड़े ही लेती है।
एक स्त्री अपनी पड़ोसिन को, झगड़ा हो गया था दो महिलाओं का, उसकी बात बता रही थी। पड़ोसिन रस से सुन रही थी। फिर उस स्त्री ने कहा, अब मैं जाऊं, पति के घर आने का समय हुआ।
लेकिन पड़ोसिन ने कहा, कुछ और तो बताओ।
वह स्त्री बोली कि सच तो यह है कि जितना मैंने सुना उससे ज्यादा तो मैं पहले ही बता चुकी। अब और क्या बताना। जितना मैंने सुना उससे ज्यादा तो मैं पहले ही बता चुकी।
तुम जब कुछ बात किसी से कहते हो तो कुछ तो जोड़ ही देते हो, कुछ काट देते हो, कुछ संवार देते हो, कुछ रंग भर देते हो अपने। तो स्मृतियां तो फिर और बहुत हो जाएंगी।
यह सूत्र अदभुत हैः श्रुतिः विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना।
श्रुतियां विभिन्न हैं, स्मृतियां भी भिन्न हैं। इसलिए श्रुतियों और स्मृतियों में अगर तुमने धर्म खोजा, कभी न पा सकोगे। सत्य खोजा, कभी न पा सकोगे। सावधान! यह सूत्र सावचेत कर रहा है। सजग रहना। शब्दों में मत उलझ जाना। शब्दों के बड़े जंगल हैं, सिद्धांतों के बड़े मरुस्थल हैं। उनमें खो गए तो लौटना मुश्किल हो जाता है। अपने ही घर लौटना मुश्किल हो जाता है। और एक भी मुनि के वचन भी प्रमाण नहीं है। लेकिन कोई कहे कि चलो, नहीं शब्दों में खोएंगे, नहीं शास्त्रों में, न स्मृतियों में, न श्रुतियों में; लेकिन किसी महात्मा के, किसी मुनि के वचन पर तो भरोसा कर सकते हैं; किसी जानने वाले की बात पर तो विश्वास कर सकते हैं। सूत्र कह रहा हैः यह भी नहीं, यह भी नहीं। क्योंकि विश्वास अनुभव नहीं है। तुम जिसको मान लोगे, पहले तो तुमने उसे माना क्यों? तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी धारणाओं में अनुकूलता आ गई होगी, उस व्यक्ति के और तुम्हारी धारणाओं के बीच कुछ अनुकूल पड़ गया होगा। जैसे कि कोई जैन रामकृष्ण को परमहंस नहीं मान सकता; मछली खाते देखे और परमहंस माने, असंभव है। एक जैन भी रामकृष्ण के पास नहीं पहुंचा। कैसे पहुंचता!
कल ही मुझे एक जैन महिला का बड़ा लंबा पत्र मिला है। बड़ी ज्ञानी महिला होगी। सारे जैन शास्त्रों का सार निचोड़ कर रख दिया है। लिखा है कि आपकी बातें बहुत प्यारी लगती हैं, लेकिन आप महावीर जैसे वीतराग पुरुष के साथ कृष्ण का, क्राइस्ट का, मोहम्मद का, बुद्ध का, इनका नाम क्यों ले देते हैं। वीतराग ही केवल भगवान है। वीतरागता ही एकमात्र कसौटी है। वीतरागता की कसौटी पर राम तो न उतरेंगे, कृष्ण तो न उतरेंगे। कृष्ण और राम की तो बात ही छोड़ दो, बुद्ध भी नहीं उतरते, क्योंकि बुद्ध भी कम से कम वस्त्रों का तो उपयोग करते हैं, भिक्षापात्र तो रखते हैं--इतना राग तो है, इतना परिग्रह तो है। महावीर दिगंबर हैं, करपात्री हैं, हाथ से ही भोजन लेते हैं; लंगोटी भी नहीं। दिगंबरत्व वीतरागता का प्रमाण है।
तो इस स्त्री को अड़चन हो रही कि कैसे मोहम्मद का नाम लेते हो--मोहम्मद,
जो कि तलवार लिए हैं। कृष्ण जो कि सभी तरह के राजनैतिक दांव-पेंचों में उलझे हैं। राम, जो कि युद्ध पर निकले हैं। यह सब माया-मोह है। यह तो राग का ही जाल है।

उस बेचारी को मेरी बातें प्रीतिकर लगती हैं लेकिन अड़चन सिर्फ एक आ जाती है कि मैं महावीर के साथ कभी बुद्ध का, कभी महावीर का, कभी जरथुस्त्र का, कभी लाओत्सु का, कभी मोहम्मद का साथ-साथ उल्लेख कर देता हूं, उससे ही कष्ट हो जाता है।
अब अपनी धारणा के अनुकूल जो होगा, तुम उसी को तो मुनि कहोगे। तुम्हारी धारणा के जरा अनुकूल न हुआ कि मुनि न हुआ। तुम ही निर्णायक हो। तुम्हारे पास कसौटी है। फिर किसको मुनि कहो? और अड़चन इसलिए भी आ जाएगी कि प्रत्येक मुनि के वचन भिन्न हैं, प्रत्येक ने अपने ढंग से कहा, अपने रंग से कहा। प्रत्येक की अपनी अद्वितीयता है, अपनी मौलिकता है और तुम्हारे सड़े-गले ढांचों में कोई जिंदा, कोई जीवंत बुद्ध, कोई जीवंत जिन नहीं बैठ सकता। तुम्हारे ढांचे मुर्दों के आधार पर बनते हैं और तुम जिंदा लोगों को उन ढांचों पर बिठाना चाहो, यह संभव नहीं है।
फिर यह भी तो हो सकता है कि कोई कहता हो कि मैंने जाना, लेकिन विक्षिप्त हो या बेईमान हो। क्या प्रमाण कि उसने जाना? क्योंकि जानने वालों की बातें इतनी भिन्न हैं कि प्रमाण कैसे मानो? कृष्ण तो मानते हैं परमात्मा में भी, आत्मा में भी। महावीर परमात्मा में नहीं मानते, सिर्फ आत्मा में मानते हैं। और बुद्ध तो न परमात्मा में मानते, न आत्मा में मानते। फिर क्या करोगे? किस मुनि का वचन प्रमाण होगा? और एक भी मुनि का वचन प्रमाण नहीं।
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
फिर वचन प्रमाण हो भी कैसे सकता है? क्योंकि सत्य विराट है और शब्द बहुत छोटे हैं। सत्य शब्दों में समाता नहीं। कहो, लाख कहो, फिर भी अनकहा रह जाता है। सत्य है आकाश जैसा और शब्द तो छोटे-छोटे घरघूले हैं। सत्य है सागर जैसा और शब्द तो छोटी-छोटी बूंदें भी नहीं। तो वचन कैसे प्रमाण होंगे? वचन प्रमाण नहीं हो सकते। सच तो यह है सत्य का सिवाय अनुभव के और कोई प्रमाण नहीं होता। और अनुभव अपना हो तो ही प्रमाण होता है। पर-अनुभव कैसे प्रमाण हो सकता है? लाख कोई सिर पटके और कहे कि मैंने परमात्मा देखा है। लेकिन तुम्हें कैसे भरोसा आए? या आदमी आत्मवंचना में हो सकता है या दूसरों को वंचना में डाल रहा हो सकता है। खुद सम्मोहित हो गया हो किसी धारणा से।
और इस तरह के लोग हैं जो कृष्ण को भजते हैं, निरंतर भजते रहते हैं, उनको कृष्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। उनका ही प्रक्षेपण है। उनकी ही कल्पना है। कहां कौन कृष्ण हैं? क्राइस्ट को भजने वाले को कृष्ण कभी प्रकट नहीं होते, उसे क्राइस्ट दिखाई पड़ते हैं। और कृष्ण के भजने वाले को क्राइस्ट कभी दिखाई नहीं पड़ते। कभी भूल-चूक से अगर ये आ भी जाएं बीच में तो कहेगा--धत तेरे की, हटो! कहां बीच में आ रहे हो? नहाएगा, धोएगा, गंगा-जल से अपने को स्वच्छ करेगा।
जैन विचार-सरणी के अनुसार तीर्थंकर को कांटा भी नहीं चुभ सकता है, क्योंकि उनके सारे पाप समाप्त हो गए, उनके सारे कर्म समाप्त हो गए। इसलिए तो वे तीर्थंकर हैं--कांटा भी नहीं चुभ सकता। अगर तीर्थंकर निकलते हों और रास्ते पर कांटा पड़ा हो सीधा, तो उलटा हो जाता है। तो फिर जीसस को वे कैसे मानें कि ये तीर्थंकर की कोटि के हैं, क्योंकि इनको तो सूली लग जाती; कांटा चुभना तो दूर, सूली लग जाती। जरूर पिछले जन्मों के किसी महापाप का फल भोग रहे हैं!
लेकिन ईसाई को महावीर बिलकुल नहीं जंचते। क्या सार है कि नंग-धड़ंग खड़े हो गए? और आंखें बंद कर लीं और अपने मोक्ष की तलाश भी करने लगे, यह तो निपट स्वार्थ है। माना कि शांत हो गए होओगे, और माना कि प्रफुल्लित भी हुए, आनंदित भी हुए, लेकिन सेवा कहां? न अस्पताल खोला, न स्कूल चलाए, न अनाथों की सेवा की, न लूले-लंगड़ों के पैर दबाए, न कोढ़ियों का कोई इंतजाम किया। यह कैसा धर्म है? जीसस ने अंधों को आंखें दीं, बहरों को कान दिए, लंगड़ों को पैर दिए, बीमारों को चंगा किया, मुर्दों को जिलाया। ये लक्षण हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त कोई कैसे भगवत्ता को उपलब्ध माना जा सकता है?
तो ईसाइयों के हिसाब से महावीर और बुद्ध स्वार्थी हैं, निपट स्वार्थी हैं। अपने सुख की तलाश, यह तो वही की वही बात हुई, कोई अपना धन खोज रहा है,

कोई अपना धर्म खोज रहा है। मगर अपना! कोई संसार में जीत जाना चाहता है, कोई मोक्ष में--मगर अपनी जीत! अपनी विजय-पताका फहरानी है। कोई यहां जीतकर कहना चाहता है कि मैं महावीर हूं, कोई वहां जीतकर कहना चाहता है कि मैं महावीर हूं। कोई यहां विजेता बनना चाहता, कोई वहां। और जो वहां विजेता हो जाते हैं, उनको हम जिन कहते हैं, जिन्होंने जीत लिया। मगर वही जीत की भाषा हुई। ईसाइयों को नहीं जमती।
मुसलमानों से पूछो; न महावीर जमेंगे, न ईसा जमेंगे, न बुद्ध जमेंगे। मुसलमानों के हिसाब से तो मोहम्मद ही सच्चे पैगंबर हैं, असली पैगंबर! क्यों? क्योंकि जीवनभर जूझे, अज्ञानियों को रूपांतरित करने के लिए तलवार उठाई, जान जोखिम में डाली। लेकिन कस्त किया था, संकल्प किया था कि जो-जो भटके हुए हैं उन्हें रास्ते पर लाएंगे। मुसलमान बनाना यानी रास्ते पर लाना। जो-जो गुमराह हैं, मार्गच्युत हो गए हैं, अगर अपनी मर्जी से आ जाएं तो ठीक, लेकिन न आएं तो जबर्दस्ती भी लाना पड़े तो लाएंगे।
यूं समझो न, जैसे तुम्हारा छोटा सा बच्चा आग में हाथ डालना चाहे। मान जाए समझाने से तो ठीक, नहीं तो थप्पड़ भी मारोगे, झपटकर उसे खींच भी लोगे। मोहम्मद की महाकरुणा है--मुसलमान के हिसाब से--कि वे तलवार लेकर तुम्हारे पीछे पड़े, कि गर्दन उतार दूंगा, चलते हो मस्जिद कि नहीं, पढ़ते हो कुरान या नहीं? लो अल्लाह का नाम, क्योंकि जो अल्लाह को याद करेगा और कुरान के मार्ग पर चलेगा, वही मोक्ष पाएगा, वही स्वर्ग पाएगा। शेष सब तो नर्क की अग्नि में गिर जाएंगे। तुम्हें नर्क की अग्नि से बचाने के लिए कैसा अथक श्रम किया मोहम्मद ने! तुम्हारे विपरीत भी। तुम्हारी ही फिकर न की। यह भी फिकर न की कि तुम जाना भी चाहते हो स्वर्ग या नहीं। ये इसे कहते हैं महाकरुणा! न तो जीसस ने ऐसी करुणा दिखाई। अंधों को आंखें देने से क्या हो जाएगा? इतने लोगों को तो आंखें वैसे ही हैं, उनको क्या हो गया है? और बहरों को कान मिल गए तो क्या फायदा? वही फिल्मी गाने सुनेंगे जो तुम सुन रहे हो। और लंगड़े चलने भी लगे तो क्या करेंगे, जाएंगे कहां? वही शराब-घर, वही वेश्या के मुहल्ले में। और मुर्दों को जिला भी दिया, तो पहले ही जिंदा थे, पहले ही कौन सा बड़ा काम कर लिया था, अब क्या कर लेंगे?
लजारस को जिंदा कर दिया जीसस ने, फिर क्या किया, इसका तो कोई बताए? लजारस ने फिर किया क्या? फिर कुछ पता ही नहीं चलता कि लजारस का हुआ क्या? चलो जिंदा ही हो गए तो फिर वही गोरखधंधा किया होगा, जो पहले करते थे। सूफियों के पास तो एक कहानी भी है कि जीसस एक गांव में आए और उन्होंने देखा एक आदमी नाली में पड़ा हुआ गालियां बक रहा है। उसके पास गए समझाने कि भाई, क्यों गालियां बकता है? परमात्मा ने यह वाणी दी है, भजन गाओ, कीर्तन करो, प्रभु का नाम लो। जब पास गए तो देखा यह तो शकल पहचानी हुई मालूम पड़ती है। याद किया तो पता चला--अरे, यह आदमी तो गूंगा था! उस आदमी को हिलाया और कहा कि भई याद कर, मुझे भूल गया?
तो उसने कहा, भूलूूं? सात जन्म नहीं भूलूंगा। मैं तो गूंगा था, भला था।
यह तुमने ही मुझे जबान दी, अब इस जबान का क्या करूं? गालियां न दूं तो और क्या करूं, इस संसार में है क्या? सब तरह के दुष्ट हैं। पहले तो गूंगा था तो पी जाता था भीतर ही भीतर, अब जबान है तो कह देता हूं। इससे और अड़चन हो गई है। इससे और मुश्किल हो गई है। इससे रोज झगड़ा-फसाद खड़ा हो जाता है। यह तुमने जबान क्या दे दी, जिंदगी में झगड़े-फसाद दे दिए। और झगड़े-फसाद और चिंता और उपद्रव के कारण शराब पीने लगा हूं। यह सबका जुम्मा तुम्हारा है। जीसस तो बहुत हैरान हुए। थोड़े आगे बढ़े तो उन्होंने देखा एक जवान आदमी
एक वेश्या के पीछे चला जा रहा है--सीटी बजाता हुआ, एकदम मस्ती में गुनगुनाता हुआ! शकल पहचानी हुई मालूम पड़ी। रोका और कहा कि जवान आदमी हो और अभी से गलत रास्ते पर चले हो। अरे, इस जिंदगी को परमात्मा ने किसलिए दिया है?
उस आदमी ने कहा कि चुप, यह तू ही है। मैं तो बीमार था, मैं तो खाट से लगा था, खराब काम करना भी चाहता तो नहीं कर सकता था। तूने ही मुझे स्वस्थ किया। अब मुझे बता, इस स्वास्थ्य का क्या करूं? तूने मुझे जवानी दी, अब इस जवानी का क्या करूं? और अब बाधा डालने आया है? मैं तो इस झंझट से मुक्त ही था। हड्डी-हड्डी हो रहा था, उठ नहीं सकता था, बैठ नहीं सकता था, खांसता-खंखारता

बिस्तर से लगा था। तूने मुझे जवान किया, स्वस्थ किया, चंगा किया, अब क्या करूं? सीटी न बजाऊं तो और क्या करूं? और सुंदर स्त्रियों के पीछे न जाऊं तो कहां जाऊं?
जीसस तो इतने उदास हो गए कि गांव छोड़कर बाहर निकले। वहां देखा कि एक आदमी इंतजाम कर रहा है मरने का। हो सकता है लजारस ही हो। फंदा लगाकर झाड़ में लटकने के करीब ही है कि जीसस ने जाकर रोका कि रुक भाई, यह तू क्या कर रहा है?
उस आदमी ने कहा कि पहचानो कि मैं कौन हूं। मैं तो मर गया था, उस वक्त भी
तू आ गया और मुझे जिंदा कर दिया। और जिंदगी में मुझे कुछ सार मालूम होता नहीं। सिवाय दुख, सिवाय संताप के, चिंताओं के कुछ भी नहीं। अब तू जा, राह से लग अपनी। मुझे मरने दे। मुझे नहीं चाहिए यह जिंदगी। मुझे माफ कर। अब और चमत्कार न दिखा, देख चुका बहुत चमत्कार। अपने चमत्कार अपने पास रख। सूफियों की यह कहानी बड़ी अदभुत है। इसमें बात तो कुछ पते की है। क्या होगा आदमी को जिंदगी भी देने से? आंख दे दिए, पैर दे दिए, जबान दे दी, क्या होगा? आदमी वही करेगा जो सारे दुनिया के लोग कर रहे हैं। तो मुसलमान नहीं कहता कि यह कोई चमत्कार है। चमत्कार तो सिर्फ एक है कि लोगों को अगर मर्जी से हो तो मर्जी से, और अगर न मर्जी से हो तो न मर्जी से। लेकिन अल्लाह की याद दिलाओ, उनको मुसलमान बनाओ।
तुम्हें लगेगा कि यह बात बड़ी जबर्दस्ती की है, स्वतंत्रता छिन रही है। यह तो बच्चे को भी लगेगा कि वह आग की तरफ जा रहा है और मां उसकी खींच रही है, स्वतंत्रता छिन रही है। लेकिन ये सारे लोग इतनी विभिन्न भाषा में बोलते हैं; इतने अलग-अलग ढंग और अलग-अलग लहजे हैं इनके। इनकी शैलियां और व्यवस्थाएं ऐसी हैं कि तुम किसको प्रमाण मानोगे?
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
किसी भी एक मुनि का कोई वचन प्रमाण नहीं है। फिर क्या रास्ता है?
सूत्र कहता हैः धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
आनंद किरण, तुमने इसका अनुवाद किया कि धर्म का तत्व तो गहन है। उस अनुवाद में यूं तो कुछ भूल नहीं, भाषा के लिहाज से अनुवाद बिलकुल ठीक है; मगर अनुभव के लिहाज से भूल है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
सिर्फ भाषांतर, शुद्ध भाषा का ही रूपांतरण करना हो, तो तुम्हारा अनुवाद ठीक है कि धर्म का तत्व तो गहन है। लेकिन अगर इसके भाव में उतरना हो, भाषा को ही न पकड़ना हो, तो इसका अर्थ बहुत और है। इसका अर्थ है धर्म का तत्व तो स्वयं के भीतर की गुहा में छिपा हुआ है। गुहायाम्! वह जो अंतर-गुहा है, वह जो हृदय की गुफा है, वहां छिपा हुआ है। न तो मुनि के वचनों में मिलेगा, न श्रुतियों में, न स्मृतियों में। अंतर-गुहा में। हिमालय की गुफाओं में नहीं, भीतर की गुफा में। अपनी ही चेतना में डुबकी लगाओगे तो पाओगे।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
क्योंकि श्रुतियां भी बाहर हैं, स्मृतियां भी बाहर हैं, मुनियों के वचन भी बाहर हैं और धर्म तो तुम्हारे भीतर है। धर्म तो तुम्हारा स्वभाव है, स्वरूप है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
खोजो उसे अपनी ही गुहा में। धर्म का तत्व तो मिलेगा समाधि से, क्योंकि समाधि है अपने में डुबकी।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
और महाजन जिस मार्ग पर चलते हैं वही केवल मार्ग है।
तुम पूछते हो, "महाजन की पहचान क्या है?"
बुद्धि के लिए तो महाजन की कोई पहचान नहीं हो सकती, क्योंकि महाजन की प्रतीति ही बुद्धि की प्रतीति नहीं। और पहचान की भाषा बुद्धि की भाषा है। तुम पूछ रहे हो, "कौन से लक्षण?"
फिर उपद्रव शुरू हो जाएगा--वही उपद्रव जो मुनियों के लिए है, वही महाजन के लिए हो जाएगा। किस बात को लक्षण मानोगे? दिगंबरत्व लक्षण है महापुरुष का? तो फिर नग्न दिगंबर जैन मुनि ही केवल महाजन रह जाएंगे। फिर

ईसा और जरथुस्त्र और बुद्ध और लाओत्सु और च्वांगत्सु जैसे अदभुत पुरुष महापुरुष न रह जाएंगे, महाजन न रह जाएंगे। किस बात को लक्षण मानोगे? अगर लोगों की सेवा करना ही लक्षण है तो महावीर ने कभी किसी की कोई सेवा नहीं की।
मेरे पास पत्र आ जाते हैं लोगों के। जैैन भी मुझे पत्र लिख देते हैं
कि आप गरीबों की सेवा क्यों नहीं करते? अगर ये महावीर को मिल जाएं, महावीर से भी कहेंगे कि गरीबों की सेवा क्यों नहीं करते! क्या तुम सोचते हो महावीर के समय में गरीब नहीं थे, कोढ़ी नहीं थे, अंधे नहीं थे, लंगड़े नहीं थे, लूले नहीं थे? सब थे। महावीर ने किसी की सेवा नहीं की, न बुद्ध ने किसी की सेवा की। लक्षण क्या है? अगर सेवा लक्षण है तो फिर ईसाई मिशनरी--महाजन। वे सेवा में ही लगे रहते हैं। उनका काम ही सेवा करना है। उनका धर्म ही सेवा है।
अगर समाधि लक्षण है तो समाधि बड़ी भीतर की बात है। किसको मिली, किसको नहीं मिली--कौन तय करे? कैसे तय करे? रामकृष्ण मूच्र्छित हो जाते थे समाधि में। बुद्ध कभी मूच्र्छित नहीं हुए। अगर बौद्धों से पूछो तो रामकृष्ण की समाधि--जड़ समाधि, असली समाधि नहीं। यह कोई समाधि हुई? समाधि में तो चैतन्य प्रगाढ़ होना चाहिए। यह तो चेतना और खो गई। और बौद्धों से मनोचिकित्सक भी राजी हैं। मनोचिकित्सक भी रामकृष्ण के संबंध में यही कहते हैं कि यह एक तरह का मिर्गी का फिट है। और लक्षण मिलते हैं कि मिर्गी में भी जो घटना घटती है वही रामकृष्ण को घटती थी। मुंह से फसूकर बहता था, आंखें ऊपर चढ़ जाती थीं, हाथ-पैर अकड़ जाते थे। अब बहुत मुश्किल है कि महाजन का लक्षण क्या? यह मिर्गी आ रही है कि समाधि लग रही है? बुद्ध को तो ऐसी कभी समाधि लगी नहीं। लेकिन अगर रामकृष्ण को मनाने वाला इसको समाधि मानता हो तो उसको बुद्ध की समाधि में शक होगा कि न तो हाथ-पैर अकड़ते हैं, न आंखें ऊपर चढ़ती हैं। दोनों आंखें ऊपर चढ़नी चाहिए, तब तो तृतीय नेत्र का अनुभव होगा। दांत भिंच जाने चाहिए, उस बात का लक्षण है कि ऊर्जा ऊपर जा रही है। रामकृष्ण की जीभ कट जाती थी कभी-कभी दांतों के बीच पड़ जाती थी। फसूकर तो निकलना ही चाहिए? वह इस बात का लक्षण है कि देह और आत्मा का तादात्म छूट गया। अब किसको लक्षण मानोगे?
तो महाजन कौन है, बुद्धि के द्वारा कोई निर्णय नहीं हो सकता। फिर निर्णय होता है--हृदय से। जिससे तुम्हारी प्रीति लग जाए, जिससे तुम्हारे हृदय का छंद मिल जाए, जिसके पास बैठकर तुम्हारा आनंद-कमल खिले--वही महाजन है। बाकी ऊपरी बातें छोड़ दो। जिसको कार्ल गुस्ताव जुंग ने सिंक्रानिसिटी कहा है। जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर संगीत बज उठे। जिसके भीतर जीवन अपनी परिपूर्णता में जागा हो, निश्चित ही उसके पास अगर कोई मौन समर्पित भाव से बैठे तो उस जीवन की छाप, उस जीवन का धक्का तुम्हारी सोई हुई चेतना को भी लगेगा। वे किरणें तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करेंगी और तुम्हारे भीतर भी एक नई शृंखला का सूत्रपात होगा। तो जिसका जहां तालमेल बैठ जाए। सिंक्रानिसिटी का अर्थ हैः तालमेल, छंदबद्धता, लयबद्धता। जिसकी बांसुरी सुनकर तुम्हारे भीतर कोई नाच उठे, तुम्हारे पैरों में अचानक घूंघर बजने लगें--वही महाजन है।
महाजन की परीक्षा बौद्धिक नहीं है, हार्दिक है; तार्किक नहीं है, प्रीतिगत है। और प्रेम तो पागल होता है। प्रेम कोई हिसाब-किताब मानता है? जहां तुम्हारा मन-मयूर नाचे, वह महाजन है। फिर तुम किसी की न सुनना, दुनिया कुछ भी कहे। अगर तुम्हारा मन-मयूर मोहम्मद के पास नाचे तो तुम फिर फिक्र मत करना कि कौन क्या कहता है, कि वीतराग हैं या नहीं? तुम्हारा मन-मयूर नाचा तो मोहम्मद तुम्हारे लिए महाजन तो हैं ही और दुनिया में बहुत तरह के लोग हैं। किसी को बांसुरी प्यारी लगती है और किसी को न भी लगे। और किसी को सितार प्यारा लगता है और किसी को न भी लगे।
तुम्हारा रुझान इतना भिन्न-भिन्न है कि कोई बुद्ध के साथ नाच उठेगा, कोई महावीर के साथ नाच उठेगा, कोई मोहम्मद के साथ, कोई जीसस के साथ, कोई कबीर के साथ। कहां तुम्हारी गुनगुन पैदा हो जाए--जहां तुम्हारे भीतर गुंजन आ जाए, जिसके माध्यम से तुम्हारे भीतर का पक्षी पर फड़फड़ा दे, आकाश में उड़ने को आतुर हो जाए--वही महाजन है।

महाजनो येन गतः स पंथाः।
फिर महाजन क्या कहता है, इसकी बहुत फिक्र मत करना। कैसे जीता है, इसकी चिंता करना। कहने में मत उलझना। उसके जीवन को, उसके जीवन के सौंदर्य को, उसके जीवन के प्रसाद को पीना। कैसे उठता, कैसे बैठता। गीता में कृष्ण ने स्थितिधी की परिभाषा की है--कैसे उठता, कैसे बैठता, कैसे चलता। हर हाल में, दुख हो कि सुख, सम रहता। जीत हो कि हार, उसे अंतर नहीं पड़ता।
तुम महापुरुष के या महाजन के शब्दों की बहुत चिंता मत करना। तुम उसके जीवन की पहचान में उतरना। उसकी आंखों में झांकना। उसके प्राणों के साथ अपना तालमेल जोड़ना। उसकी जीवन-चर्या को ही तुम उसका संदेश समझना।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
जैसे महाजन चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, जीते हैं--बस वैसे ही जीना।
और ध्यान रहे, इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम उनका अनुकरण करना, कि नकल करना। इसका कुल इतना अर्थ है कि तुम उनके साथ अपने छंद को जोड़ना। तुम इतने शून्य हो जाना कि तुम्हारे भीतर अहंकार न बचे, ताकि जिस महापुरुष से, जिस महाजन से तुम्हारी प्रीति लग गई हो, उसका जीवन तुम्हें पूरा का पूरा आच्छादित कर ले, उसकी वर्षा तुम पर पूरी-पूरी हो जाए। अपने पात्र को खुला कर देना, ढांक कर मत बैठे रहना। अपने सब पर्दे गिरा देना, ताकि उसकी किरणें तुम्हारे भीतर आ जाएं। अपने सब द्वार-दरवाजे खोल देना, ताकि उसकी हवाएं आएं और तुम्हारी धूल-धवांस को झाड़ ले जाएं।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
इसलिए न तो श्रुतियों में भटकना, न स्मृतियों में, न मुनियों के वचनों में। क्योंकि सत्य तो तुम्हारे भीतर छिपा है। लेकिन तुम्हें अपने सत्य का अभी पता नहीं है; इसलिए जिसे पता हो...और किसे पता है? जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर का सत्य अंगड़ाई लेने लगे, उसे पता है बस; इसके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं है। जिसके पास बैठकर तुम्हें खुमारी छाने लगे, मस्ती आने लगे, समझ लेना इशारा, कि यही है वह जगह, कि यही है वह मंजिल, जिसकी मैं तलाश करता था; कि यही है वह मंदिर जिसकी चैखट पर मेरे सिर को झुका देना है, फिर उठाना नहीं। तो वह जो धर्म का अत्यंत गहराइयों में छुपा हुआ तत्व है, उसका साक्षात्कार हो सकता है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पंथाः।।
योग प्रीतम का यह गीत--
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरेबहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
महाजन की पहचान भाव-निर्झर से होगी। जिसके पास तुम्हारे भाव का झरना बहने लगे--वह झरना जो सदियों से अवरुद्ध पड़ा है।
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरे
बहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
बहो यों, जमाना बहे साथ तेरे
बनो इक तराना कि सब गुनगुनाएं
हृदय के वनों में--गहन घाटियों में
कहो मौन-मुखरित स्वयं की कथाएं उड़ो मेरी मैना, उड़ो हौले-हौले
उड़ो मेरे सुगना, उड़ो धीरे-धीरे
उड़ो इस तरह चित्त-आकाश में तुम
तुम्हें देखकर पंख सब फड़फड़ाएं
उड़ो यों, उन्हें याद आ जाए खुद की
जुड़ो यों कि सबके हृदय भी जुड़ाएं
खिलो मेरी कलियां, हृदय-वृन्त पर तुम
खिलो मेरे फुलवा, खिलो धीरे-धीरे
खिलो, देख तुमको खिलें चित्त सारे कोई गीत गाओ,
गजल गुनगुनाओ डुबा दो सभी को सुरभि-सिंधु में तुमकि सौंदर्य का राज सबको सुनाओ
झरो मेरी बदली--सुधा-वर्षिणी बनझरो मेरे मेहा,
झरो धीरे-धीरे

झरो यों, बहारों के मेले जुड़ें नित कहीं मोर नाचे, पपीहा पुकारे
धरा लहलहाए, हृदय झूम गाए
बहे सुख-सरित तोड़कर सब किनारे
कहो मेरी मस्ती, बहकते हुए कुछ
कहो मेरे मनवा, कहो धीरे-धीरे
मदिर सा कहो कुछ, मधुर सा कहो
कुछ कि ज्यों कोकिला की कुहू आम्रवन से कि जैसे चटक कर कली कह उठे कुछ
छिड़े तान, जोड़े धरा को गगन से
रहो मेरे मितवा, रहो साथ मेरे
हृदय की कहानी, कहो धीरे-धीरे
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरे
बहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
महाजन की पहचान भावों से होती है, तर्कों से नहीं, सिद्धांतों से नहीं। इसलिए महाजन की पहचान केवल दीवाने कर पाते हैं। शमा जलती है तो परवाने खिंचे चले आते हैं। बस परवाने ही पहचान पाते हैं। परवाने मरने चले आते हैं।
धर्म का तत्व तो अत्यंत गहरी गुफाओं में छिपा पड़ा है--उन गुफाओं में
जो तुम्हारे भीतर हैं, लेकिन जिनका तुम्हें कोई पता नहीं, कोई पहचान नहीं। लेकिन जिसके भीतर धर्म का अनुभव प्रगाढ़ हो गया हो, उसकी मौजूदगी में तुम्हारे भीतर भी टंकार पड़ सकती है, तुम्हारे वीणा के तार भी उसकी बजती वीणा के कारण झंकृत हो सकते हैं। जो जाग गया है उसकी मौजूदगी तुम्हारी नींद को भी तोड़ने का कारण हो सकती है।
इसलिए महाजन की पहचान, आनंद किरण, बुद्धि की बात नहीं। बुद्धि के लक्षणों से कुछ भी न होगा। भाव की बात है, दीवानगी की बात है, मस्ती की बात है, खुमारी की बात है। यह मामला पियक्कड़ों का है, रिन्दों का है; मंदिरों का कम, मयकदों का ज्यादा है। शराबियों का ज्यादा, जुआरियों का ज्यादा, दुकानदारों का कम।
यह पूरी प्रक्रिया प्रेम की प्रक्रिया है। कैसे तुम पहचान लेते हो कि किसी स्त्री से तुम्हारा प्रेम हो गया, कि किसी पुरुष से तुम्हारा प्रेम हो गया? कैसे? क्या प्रमाण होता है? कौन सी श्रुति, कौन सी स्मृति? होता है तो हो जाता है, नहीं होता तो नहीं होता। लाख उपाय करो तो नहीं होता। और हो जाए तो लाख उपाय करो, तो मिटा नहीं पाते। ठीक ऐसी ही घटना, प्रेम की ही घटना एक बहुत ऊंचे तल पर गुरु और शिष्य के बीच भी घटती है। मगर वह घटना प्रेम की है।

मेरा स्वर्णिम भारत-35

मनुष्य बीज है भगवत्ता का
(Note: from Ramnam Janyo Nahin (रामनाम जान्यो नहीं) #10)

पहला प्रश्न: भगवान,
शतपथ ब्राह्मण में एक प्रश्न है: को वेद मनुष्यस्य? मनुष्य को कौन जानता है?
भगवान, क्या मनुष्य इतना जटिल और रहस्यपूर्ण है कि उसे कोई नहीं जान सकता है?

पुरुषोत्तम महंती,
मनुष्य जटिल नहीं है, रहस्यपूर्ण जरूर है। जटिल होता तो जानना कठिन न होता। कितना ही जटिल हो, जटिलता सुलझाई जा सकती है। जटिलता एक पहेली है, जो बुद्धि की सीमा के पार नहीं, बुद्धि की सीमा के भीतर है। जो जटिल था उसे मनुष्य ने सुलझा लिया है, या नहीं सुलझाया है तो सुलझा लेगा। जो कल अज्ञात था, आज ज्ञात है। जो आज अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा।
विज्ञान ये दो कोटियां ही मानता है--ज्ञात और अज्ञात। इन दोनों के बीच कोई गुणात्मक भेद नहीं है; थोड़ा समय का अंतराल है। अज्ञात वह है जो ज्ञात होने में समर्थ है। सिर्फ थोड़ी और चेष्टा, थोड़ी और खोज, थोड़ी और शोध, थोड़ा और तर्क, थोड़ा और विज्ञान। लेकिन रहस्य गुणात्मक रूप से भिन्न है, परिमाणात्मक रूप से ही नहीं। रहस्य का अर्थ अज्ञात नहीं है; रहस्य का अर्थ है अज्ञेय, जो जाना ही न जा सके; जो बुद्धि की सीमा के पार है; जिसे जीया तो जा सकता है, लेकिन जाना नहीं जा सकता। जानने का अर्थ होता है--शब्द में ढाला जा सके, तर्क में तौला जा सके, बुद्धि माप सके। रहस्य का अर्थ होता है--अमाप; जिसको जानने का, तौलने का कोई उपाय नहीं, लेकिन जो है; लेकिन अनंत है, असीम है। जितना जानोगे उतना ही पाओगे कि जानना मुश्किल है। जितना पहचानोगे उतना ही पाओगे पहचानने को बहुत और शेष है, सदा शेष है।
सुकरात का वचन प्रीतिकर है। सुकरात कहता है: मैं एक ही बात जान पाया
कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं! उपनिषद कहते हैं: जो जानता है वह नहीं जानता। जो नहीं जानता है, वही जानता है। यह भी उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटक जाते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। यह वचन बहुत आग्नेय है, बहुत क्रांतिकारी है। इसकी चिनगारी भी तुम्हारे भीतर पड़ जाए तो तुम्हारे जीवन के जंगल में आग लग जाए। सब कूड़ा-कर्कट जल जाए। फिर वही बचे जो खालिस सोना है।
तुम पूछते हो: "क्या मनुष्य इतना जटिल और रहस्यपूर्ण है कि उसे कोई नहीं जान सकता?"
तुम जटिलता और रहस्य को पर्यायवाची समझ रहे हो। वे पर्यायवाची नहीं हैं। जटिलता तो सिर्फ एक चुनौती है बुद्धि के लिए। रहस्य बड़ी गहरी बात है। बुद्धि तो सतही है। रहस्य को जानना हो तो जानने का ढंग काम नहीं आता। वहां तो सुकरात जैसा अज्ञानी हो जाना पड़े।
जीसस ने कहा है: जो बच्चों की भांति निर्दोष होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
वहां ज्ञानी की बिसात नहीं। वहां जानने वाले के लिए कोई प्रवेश नहीं; वहां निर्दोष, सरल-चित्तता, इतनी सरल-चित्तता जैसे कोरा कागज! जब तुम कोरे कागज की भांति हो जाते हो, तो परिचय होता है, प्रत्यभिज्ञा होती है, तो स्वाद आता है, तो रस बहता है, तो जीवन में उत्सव सधता है।
और शतपथ ब्राह्मण का यह सूत्र ठीक कहता है: "को वेद मनुष्यस्य?"
मनुष्य को कौन जानता है? कौन सा वेद है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा ज्ञान है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा सिद्धांत है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा धर्म है जो दावा कर सके मनुष्य को जानने का? और मनुष्य को ही क्यों चुना है? क्योंकि मनुष्य पराकाष्ठा है जीवन के रहस्य की। यूं तो

सारा जीवन रहस्यपूर्ण है। यूं तो एक गुलाब के फूल को भी जानना कहां संभव है!
अंग्रेजी के महाकवि टेनीसन ने कहा है...एक सुबह घूमते हुए, पत्थर की एक दीवाल में घास का एक पौधा वर्षा के दिनों में ऊग आया है, और उस पर एक छोटा सा घास का फूल खिला है। सुबह की ताजी हवा, सूरज की ऊगती हुई नयी-नयी किरणें, पक्षियों के गीत और पत्थर को तोड़ कर ऊग आए इस घास के पौधे का राज! नहीं कि सिर्फ पौधा ऊग आया है, वरन फूला भी है। टेनीसन ठिठक कर खड़ा हो गया। और टेनीसन ने जो वचन कहा...कहा कि काश! मैं इस घास के फूल को पूरा का पूरा जान लूं, जड़ से लेकर शिखर तक, तो मैं सारे अस्तित्व को जान लूंगा। फिर कुछ और जानने को शेष न रह जाएगा।
घास का एक छोटा सा फूल भी पूरा-पूरा नहीं जाना जा सकता है, कुछ छूट ही जाता है। जो छूट जाता है वही राज है। जो छूट जाता है वही रहस्य है। जो पकड़ में आ जाता है, दो कौड़ी का है। जो पकड़ में नहीं आता वही प्राण है।
घास का फूल अगर इतना रहस्यपूर्ण हो तो फिर गुलाब की तो क्या बात है! फिर झील में खिल आए कमल को तो समझना बहुत मुश्किल होगा। और यह जो चेतना का सहस्रदल कमल है, यह जो मनुष्य के भीतर छिपा हुआ सहस्रार है, यह जो मनुष्य की चेतना का फूल है, यह तो इस पृथ्वी पर, इस सारे अस्तित्व में अनूठा है, अद्वितीय है। पदार्थ में खिले फूलों को भी नहीं जाना जा सकता तो चेतना के फूल को तो कैसे जाना जा सकेगा?
"को वेद मनुष्यस्य?"
कौन जानता है मनुष्य को? कौन सा वेद जानता है? कौन सा शास्त्र जानता है? कौन सी किताब है जो मनुष्य के राज को खोल सकी है?
सारे शास्त्रों ने, सारी किताबों ने, सारे ज्ञानियों ने, सारे प्रबुद्ध पुरुषों ने मनुष्य के रहस्य की तरफ ही इशारा किया है। यही कहा है: चुप हो जाओ तो शायद कुछ पहचान हो; खोजो मत, ठहर जाओ, तो शायद कुछ झलक मिले। मन का उपयोग न करो, क्योंकि मन की सीमा है और यह चेतना असीम है। सीमित साधन का उपयोग करोगे तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। साधन ही बाधा बन जाएगा।
मनुष्य को पहचानना हो तो मन से गहरे जाना होगा। मनुष्य शरीर नहीं है,
मन भी नहीं है; इन दोनों के पीछे छिपा हुआ चैतन्य है, साक्षी है। जो मन के पार है, उसे जानने की भाषा में नहीं जाना जा सकता। उसे तो प्रेम की भाषा में पीया जा सकता है।
और मन के पार हो जाने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। इसलिए जिसे ध्यान में प्रवेश करना है उसे सारे शास्त्रों को अग्नि को समर्पित कर देना होता है। वही एक यज्ञ करने जैसा है। वही एक हवन धार्मिक व्यक्ति के योग्य है। खाक कर दे सारे शब्दों को, चाहे वे कितने ही सुंदर हों, कितने ही प्यारे लोगों ने कहे हों, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। क्योंकि शब्द तो मन तक ही जाएंगे। उनकी दौड़ उसके आगे नहीं। जहां निःशब्द शुरू होता है, वहीं मनुष्य की असली सत्ता का प्रारंभ है। जहां विचार गिर जाते हैं और निर्विचार का आयाम खुलता है, वहीं मनुष्य की चेतना में पहली दफे तुम्हारा प्रवेश होता है। जहां तक मन वहां तक तुम नहीं। जहां अ-मन आया वहीं तुम हो। फिर स्वभावतः इस रहस्य को कोई और नहीं जी सकता है। प्रत्येक व्यक्ति
को अपना रहस्य स्वयं जानना होगा। इसलिए यह शतपथ ब्राह्मण ठीक ही कहता है-- "को वेद मनुष्यस्य? मनुष्य को कौन जानता है?"
तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई भी नहीं जान सकता है। और तुम भी तभी जान सकोगे जब अतिक्रमण कर जाओ देह, मन का। जब इन दोनों की सीढ़ियों पर चढ़ जाओ तो मंदिर में प्रवेश हो। केवल तुम्हारे और कोई तुम्हें नहीं जान सकता। और तुम्हारा भी जानना जानना नहीं कहा जा सकता, जीना ही कहा जा सकता है। जानने में फासला होता है। जिसे तुम जानते हो वह और, जो जानता है वह और। जानने में द्वैत होता है--अनिवार्य, बिना द्वैत के जानना सधेगा नहीं। वहां जिसको तुम जान रहे हो, ज्ञेय; जो जान रहा है, ज्ञाता--इन दोनों के बीच के संबंध का नाम ही ज्ञान है। लेकिन स्वयं को जानने में तो द्वैत नहीं हो सकता। वहां तो जानने वाला और जाना जाने वाला एक है। इसलिए जानने की भाषा

वहां काम नहीं आएगी। जीने की भाषा काम आएगी। जीना ही वहां जानना है, जीना ही वहां पहचानना है।
और तुम्हारे जीवन को सब तरह से अवरुद्ध कर दिया गया है। जीवन की इतनी निंदा की गई है और शास्त्रों की इतनी प्रशंसा की गई है। शब्दों को सिर पर ढोओ और अपनी निंदा और ग्लानि के बोझ से दबे रहो--यही सिखाया गया है सदियों से। जब कि यह स्वयं से परिचित होने का मार्ग नहीं है; स्वयं से अपरिचित रह जाने की विधि है।
लेकिन सत्ताधारी यही चाहते हैं कि तुम अपने को न जान पाओ, तुम अपने को
न पहचान पाओ, तुम अपने को न जी पाओ, ताकि तुम्हें गुलाम बनाया जा सके। और गुलामियों के बहुत नाम हैं। धर्मों के नाम पर गुलामी है; राष्ट्रों के नाम पर गुलामी है; सिद्धांतों के नाम पर गुलामी है। गुलामी के इतने ढंग हैं, इतने रूप हैं, जंजीरें ऐसे-ऐसे सुंदर रंगों में सोने और चांदी से मढ़ी हुई हैं कि लगता है आभूषण हैं। लोग भूल ही गए हैं कि चाहे सोने से ही मढ़ी क्यों न हो जंजीर, चाहे बेड़ियां हीरे-जवाहरातों से क्यों न टंकी पड़ी हों, बेड़ियां बेड़ियां हैं, हथकड़ियां हथकड़ियां हैं। और कारागृह चाहे संगमरमर से ही क्यों न बनाया गया हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, कारागृह कारागृह है। वह खुला आकाश नहीं है। उसमें आकाश के न चांद हैं, न सूरज हैं, न तारे हैं, न आकाश में उड़ने की संभावना है।
तुम सब पिंजड़ों में बंद हो और खुले आकाश में उड़ता हुआ पक्षी--बात और। वही पक्षी पिंजड़े में बंद हो जाए तो बात और। खुले आकाश में उड़ते हुए उसके पंखों का जादू, उसकी स्वच्छंदता, उसकी मुक्ति, और सारा आकाश उसका अपना, चांदत्तारे उसके, सूरज उसका, वृक्ष उसके, फूल उसके। आकाश में उड़ते हुए बादलों को पार करने का आनंद उसका। दूर-दूर के सितारों को लक्ष्य बना लेने की मौज उसकी। और फिर इस मौज से उठता हुआ गीत, खुलते हुए पंख, खुलता हुआ कंठ भी।
वही पक्षी तुम बंद कर लो सोने के पिंजड़े में सही, सारी सुविधाएं जुटा दो, भोजन की चिंता न रहे उसे, लेकिन फिर भी यह पक्षी वही नहीं है जिसे तुमने आकाश में पंखों को तौलते देखा था। यह पक्षी वही नहीं है जो बादलों को पार करता हुआ देखा गया था। यह पक्षी वही नहीं है जिसने सुबह-सुबह सूरज का स्वागत किया था और गीत गाए थे। यह पक्षी वही नहीं है जो सांझ अपने आनंद से अपने नीड़ में वापस लौटता था। यह चहल-पहल वही नहीं है। यह पक्षी मर गया, नाम-मात्र को जिंदा है।
यूं ही हिंदू हैं, यूं ही मुसलमान हैं, यूं ही ईसाई हैं, यूं ही जैन हैं। ये सब पिंजड़ों में बंद लोग हैं। इनमें से कोई भी मनुष्य की चेतना को नहीं जान सकता। इन सबके सिद्धांत हैं। और जो सिद्धांतों को पकड़ कर चलता है, मन के पार कैसे जाएगा? उसके सिद्धांत ही उसे अटका लेंगे। उसके सिद्धांत ही उसके पैरों को खींच लेंगे, उसके पंखों को काट देंगे। वह अपने सिद्धांतों को सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न रहेगा। उसकी आतुरता सत्य के लिए नहीं है, उसकी आतुरता एक है कि मेरा सिद्धांत सत्य सिद्ध होना चाहिए।
सत्य का अन्वेषण सिद्धांतों को छोड़ कर ही हो सकता है। जब तुम्हारी आंखों पर सिद्धांत लदे हों तो तुम कैसे सत्य को देख पाओगे? और सारे लोग सिद्धांतों से भरे हुए हैं। उनकी आंखें सिद्धांतों ने अंधी कर दी हैं। वे वही देख पाते हैं जो उनके सिद्धांत उन्हें आज्ञा देते हैं।
सत्ताधिकारी चाहे धार्मिक हों, चाहे राजनैतिक हों, उनकी आकांक्षा नहीं है कि तुम सत्य को जान लो। क्योंकि जो सत्य को जान लेगा उसे गुलाम नहीं बनाया जा सकता। जो सत्य को जान लेगा, फिर उसे इन टुच्ची और क्षुद्र सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। वह न तो भारतीय होगा, न चीनी होगा, न जापानी होगा। वह न काला होगा, न गोरा होगा। जिसने सत्य को जाना वस्तुतः वह न स्त्री होगा, न पुरुष होगा। वह सिर्फ शुद्ध चैतन्य होगा। वहां कोई कोटियां काम न आएंगी। वहां विभाजन नहीं हो सकता।
और विभाजन सत्ताधिकारी का सूत्र है: बांटो और राज्य करो। पुरोहित वही करता है, राजनेता वही करता है। बांटो, लोग बंटे रहें, लोग आपस में लड़ते रहें, यही सत्ताधिकारी का बल है। और लोग अंधे रहें तो ही तो नेताओं की कीमत

है। तो ही धर्मगुरुओं की जरूरत है। आंख तुम्हारी खुल जाए तो फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। आंख खुल गई तो फिर किसी नेता की तुम्हें कोई जरूरत नहीं है। तुम अपने मार्ग-द्रष्टा हो। तुम अपने प्रकाश स्वयं हो। तुम्हारी भीतर की ज्योति जल उठी।
मनुष्य को जटिल मत समझना। मनुष्य बहुत सरल है। लेकिन जितना सरल है उतना ही रहस्यपूर्ण है। जटिलता को समझना आसान है, क्योंकि जटिलता को बांटा जा सकता है, काटा जा सकता है, विभाजित किया जा सकता है। सरलता को जानना असंभव है, क्योंकि उसका कोई विश्लेषण नहीं हो सकता।
यूं समझो, वैज्ञानिक से अगर पूछो कि पानी क्या है? तो वह जवाब देगा कि उदजन और अक्षजन का जोड़ है--एच टू ओ। दो हिस्सा उदजन, एक हिस्सा अक्षजन; बस इन तीन हिस्सों से मिल कर पानी बन जाता है। उससे पूछो, उदजन क्या है? तो भी वह जवाब देने में समर्थ है कि उदजन कितने इलेक्ट्रान, कितने न्यूट्रान और प्रोटान से बनती है। लेकिन उससे अगर तुम पूछो कि इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान क्या हैं? तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। क्योंकि उनका विभाजन नहीं हो सकता। इलेक्ट्रान का कोई विभाजन नहीं हो सकता। पानी को विभाजित किया जा सकता है, इसलिए उत्तर दिया जा सकता है कि यह दो का जोड़ है। लेकिन इलेक्ट्रान का कोई विभाजन संभव नहीं है--अविभाज्य है, सरल है; उसमें द्वैत नहीं है, दुविधा नहीं है; एक है। क्या उत्तर दो! इलेक्ट्रान इलेक्ट्रान है। इसलिए वैज्ञानिक के पास कोई उत्तर नहीं है। वहां जाकर सब उत्तर गिर जाते हैं।
पदार्थ की दुनिया में जब यह घटता है तो चेतना की दुनिया में तुम सोच सकते हो, और भी अनंत गुने रूप में यह घटना घटती है। चेतना तो बिलकुल सरल है, बिलकुल अविभाज्य है। यह हो सकता है कभी इलेक्ट्रान का भी विभाजन हो सके, तब उत्तर हो जाएगा। लेकिन उत्तर केवल प्रश्न को थोड़ा और आगे सरका देगा। जिनसे इलेक्ट्रान बना होगा उन पर प्रश्न चला जाएगा। बात बनेगी भी और बनेगी भी नहीं। विज्ञान प्रश्नों को पीछे सरकाता जाता है, लेकिन अंततः एक जगह आकर तो रुक ही जाना पड़ता है। वह चेतना है।
चेतना को न विभाजित किया जा सकता, न विज्ञान के दूरदर्शक यंत्रों से देखा जा सकता, न सूक्ष्मदर्शक यंत्रों से देखा जा सकता, न विज्ञान के तराजुओं के पास ऐसे कोई मापदंड हैं जिन पर तौला जा सके। इसलिए विज्ञान तो इनकार ही कर देता है कि चेतना है ही नहीं। यह झंझट से बचने के लिए। क्योंकि अगर चेतना है तो विज्ञान को उत्तर देना होगा। और उत्तर नहीं है पास। और कोई अपने अज्ञान को मानने को राजी नहीं है। अहंकार मानने नहीं देता अज्ञान को। इसलिए यही उचित है कि जो हल न होता हो, कह दो कि है ही नहीं। लेकिन ध्यान में चेतना का साक्षात्कार होता है। इनकार तो किया नहीं
जा सकता। निरपवाद रूप से जब भी किसी व्यक्ति ने मन के पार छलांग लगाई है और ध्यान को जन्म दिया है, उसने जाना है चेतना को। इस एक सत्य के संबंध में कोई प्रबुद्ध पुरुष किसी दूसरे से भिन्न नहीं है। यह एक ही तत्व है जिसके संबंध में सारे प्रबुद्ध पुरुष राजी हैं, सहमत हैं।
लेकिन जानना होगा स्वयं ही, खुद ही। तुम्हारे भीतर ही यह रहस्य है। तुम्हें उस गहराई में अपने भीतर डूबना होगा जहां इस रहस्य से तुम्हारा तालमेल हो जाए, जहां संगीत बज उठे, जहां एक हाथ की ताली बजे, जहां अद्वैत का बोध हो।
शतपथ ब्राह्मण ठीक ही कहता है: "को वेद मनुष्यस्य? कौन जान सका मनुष्य को?"
नहीं कोई दूसरा कभी जान सका। और जब तक मनुष्य भी मनुष्य ही है...मनुष्य शब्द को सोचना, विचारना--मन से बना है। जिसके पास मन है वह मनुष्य। इसलिए मनुष्य भी जब तक मनुष्य है, इसे न जान सकेगा। मनुष्य से थोड़ा पार जाना होगा। मन के पार जाओगे तो मनुष्य के पार चले जाओगे। वही भगवत्ता का लोक है।
मेरे लिए कोई भगवान नहीं है अस्तित्व में, भगवत्ता है। प्रत्येक मनुष्य बीज है भगवत्ता का। मनुष्यता पीछे छूट जाए तो भगवत्ता का फूल खिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति छिपा हुआ भगवान है। नहीं जानता, नहीं पहचानता-- यह और बात है। और यही उसका रहस्य है।

भगवत्ता है रहस्य मनुष्यता का। और जब तक तुम भगवत्ता से परिचित न हो जाओ, तब तक नहीं अपने को जान सकोगे, नहीं पहचान सकोगे। शास्त्रों को दोहराते रहो तोतों की तरह, प्यारे वचन हैं, सुंदर शब्द हैं, मधुर काव्य है, सब है, मगर मुर्दा है। जीवंत तो तभी होगा जब स्वयं की प्रतीति होगी। और वह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।
लेकिन अपने भीतर जाना होगा। मंदिरों में जाने से नहीं होगा, मस्जिदों में जाने से नहीं होगा, चर्चों और गुरुद्वारों में वह नहीं मिलेगा। वह तुम्हारे भीतर विराजमान है। ठहरो, आंख बंद करो, अपने भीतर डूबो। जब सब ठहर जाएगा तुम्हारे भीतर, कोई हलन-चलन न होगी, कोई विकल्प न होगा, निर्विकल्पता होगी--तत्क्षण जैसे सूर्य ऊग आए, सुबह हो जाए, और तुम्हारे प्राणों की वीणा भी बज उठेगी! तुम्हारे गीत भी मुखर हो उठेंगे। तब तुम जानोगे। मगर गूंगे का गुड़ ही रहेगा जानना। जान लोगे, लेकिन कह न सकोगे। जीने लगोगे, मगर अभिव्यक्ति न दे सकोगे।
इसलिए सदगुरु सत्य नहीं दे सकता, लेकिन उसके जीने की आभा, उसकी मौजूदगी का प्रसाद, उसकी उपस्थिति निश्चित ही, तुम्हारे भीतर जो सोया है, उसे सुगबुगा सकती है। तुम्हारे भीतर जो जागा नहीं सदियों से, शायद करवट ले ले। तुम्हारे भीतर जो मूर्च्छा है वह उसके जागरण की चोट से टूट सकती है। और तुम्हारा बुझा दीया उसके जले दीये के करीब आ जाए...। और यही सत्संग का अर्थ है: जले दीये के करीब बुझे दीये का आ जाना। यही गुरु और शिष्य का संबंध और नाता है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है--जले हुए दीये के करीब बुझे हुए दीये का आ जाना। और एक घड़ी ऐसी है, एक स्थान ऐसा है, जहां जले दीये से ज्योति एक क्षण में बुझे दीये में प्रवेश कर जाती है। और इसका गणित बड़ा अनूठा है। बुझे दीये को सब कुछ मिल जाता है और जले दीये का कुछ भी खोता नहीं है।

मेरा स्वर्णिम भारत-36

दो पक्षी: कर्ता और साक्षी
(Note: from Nahin Ram Bin Thanv (नहिं राम बिन ठांव) #9)

प्रश्न:
भगवान, उपनिषद का प्रसिद्ध रूपक है, जिसका उल्लेख आपके वचनों में भी आया है।
दो पक्षी साथ रहने वाले हैं, और दोनों मित्र हैं। वे एक ही वृक्ष को आलिंगन किए हुए हैं।
उनमें से एक स्वाद वाले फल को खाता है और दूसरा फल न खाता हुआ केवल साक्षीरूप से रहता है।
उस वृक्ष पर एक पक्षी--जीव--आसक्त होकर, असमर्थता से धोखा खाता हुआ शोक करता है।
किंतु जब अपने दूसरे साथी--ईश--और उसकी महिमा को देखता है, तब शोक के पार हो जाता है।
कृपापूर्वक इस रूपक के महत्व को हमें बताएं।

इस छोटे-से रूपक में जीवन की सारी व्यथा, जीवन का सारा संताप और उस वरदान की भी पूरी संभावना छिपी है, जो समाधिस्थ व्यक्ति को उपलब्ध होता है। व्यथा और समाधि, एगनी और एक्सटेसी, दोनों इस छोटे से रूपक में छिपे हैं। पहले हम जीवन की व्यथा को समझ लें, फिर जीवन के परम आनंद को। और तब इस रूपक का अर्थ सहज ही स्पष्ट हो जाएगा।
रात आप एक सपना देखते हैं: भटक गए हैं घने वन में; खोजते हैं, मार्ग नहीं मिलता; पूछते हैं, कोई बताने वाला नहीं; प्यासे हैं, जल का कोई झरना नहीं दिखाई पड़ता; भूखे हैं, दूर-दूर तक कोई फल दृष्टि नहीं आता। रोते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं, बड़े व्यथित होते हैं। फिर नींद खुल जाती है। एक क्षण में सब बदल जाता है। जहां व्यथा थी वहां हंसी आ जाती है। आप मुस्कुराने लगते हैं, यह सोचकर कि यह व्यथा एक स्वप्न थी।
लेकिन स्वप्न इतना निकट कैसे आ गया? स्वप्न इतना सत्य क्यों मालूम हुआ? स्वप्न में आप इतने क्यों खो गए? याद क्यों न कर पाए स्वप्न में कि यह स्वप्न है? क्यों यह बोध न जगा कि जो मैं देख रहा हूं, वह वास्तविक नहीं, मेरी ही कल्पना है।
नहीं जगा बोध, क्योंकि जागते भी साक्षी होना मुश्किल है, तो निद्रित, स्वप्न में तो साक्षी कैसे हुआ जा सकता है? जागते भी हम कर्ता हो जाते हैं, तो नींद में तो कर्ता हो ही जाएंगे। और कर्ता हो जाना जीवन की व्यथा है, वही जीवन की पीड़ा है।
कर्ता का अर्थ है, जो अपने आप हो रहा है, उसमें हम मान लेते हैं कि मैं
कर रहा हूं। जो इंद्रियों में घटित हो रहा है, मान लेते हैं, मुझमें घट रहा है। जो मुझसे बाहर हो रहा है, समझ लेते हैं कि भीतर हो रहा है। कर्ता होने का अर्थ है, जिसके होने में मैं केवल साक्षीमात्र हूं, जहां मेरी उपस्थिति एक देखने वाले की है, वहां भ्रांति से मैंने अपने को नाटक का पात्र समझ रखा है, दर्शक नहीं।
स्वप्न में वह जो भटका है, वह आप नहीं हैं, क्योंकि आप तो भलीभांति अपने बिस्तर पर विश्राम कर रहे हैं। वह जो जंगल में भटक गया है, वह मन का ही एक रूप है।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ कि एक आदमी की पत्नी मरी। पत्नी जब जिंदा थी,
तब भी पति को सब तरफ से बांधे हुई थी। जरा भी हिलने-डुलने का उपाय न था। पति ऐसे ही दब्बू था, डरता था; कोई ज्यादा उत्पात खड़ा न हो, तो पत्नी जो कहती, मानता था। पत्नी मरी, तो मरने के पहले उससे कह गई कि ध्यान रखना, कभी दूसरी स्त्री पर विचार भी मत लाना, अन्यथा मैं भूत बनकर तुम्हें सताऊंगी।

डरा हुआ आदमी था। और डरा हुआ खुद ही भूत को पैदा करने में समर्थ हो जाता है। भय भूत बन जाता है। पत्नी मर गई। कुछ दिन तक तो उसने संयम रखा, भय के कारण।
और ध्यान रखें, जो संयम भय के कारण है, वह क्या संयम हो सकता है? तुम्हारे अधिक साधु-संन्यासी भय के कारण संयम रखे हैं। वैसे ही उस पति की दशा थी। भय कि कहीं नर्क न जाना पड़े, भय कि कहीं दंड न मिले, भय कि कहीं परमात्मा पकड़ न ले कुछ गलत करते हुए और पीड़ा न भोगनी पड़े--इससे संयम साधा हुआ है।
भय पर खड़ा हुआ संयम न केवल असत्य है, बल्कि बड़ी प्रवंचना है। और जो भय
से संयम को साधता है, वह वास्तविक संयम को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। कुछ दिन चल सकता है।
कुछ दिन आदमी ने सम्हाला अपने को, लेकिन कब तक सम्हालता! फिर मन की वासनाएं कहने लगीं, तू भी क्या पागल है, जीते जी उससे डरा, अब मरकर भी उससे डरता है! और क्या पता, वह प्रेत हुई हो, न हुई हो! और उसके बस में थोड़े ही है प्रेत हो जाना! तो उसने एक स्त्री से प्रेम का खेल शुरू किया।
उस रात घर लौटा कि पत्नी मौजूद थी। वह बिस्तर पर बैठी थी। हाथ-पैर कंप गए, घबड़ाकर वहीं गिर पड़ा। पत्नी ने कहा, कहां से आ रहे हो, मुझे पता है। यह है नाम उस स्त्री का, ऐसा है उसका घर। क्या-क्या तुमने उससे कहा--यहऱ्यह तुमने उससे कहा। और अभी भी सावधान हो जाओ, पहला कदम ही तुमने उठाया है।
अब तो पक्का था। न केवल पत्नी प्रेत हो गई है, बल्कि एक-एक शब्द जो उसने उस दूसरी स्त्री से कहा था, वे जो प्रेम की बातें और कविताएं कही थीं, वे भी सब उसने दोहराईं। मकान का सब नक्शा बताया, स्त्री का ढंग, रूप-रंग, सब बताया। बात साफ थी कि पत्नी वहां भी मौजूद थी।
बहुत परेशान हो गया। और पत्नी रोज सताने लगी। वह एक झेन फकीर के पास गया, नानइन उस फकीर का नाम था। नानइन सुनकर खूब हंसने लगा, उसने कहा कि तू जिस पत्नी से परेशान है, वह तो है ही नहीं। जिनकी पत्नियां नहीं मरी हैं, वे भी परेशान हैं, उन पत्नियों से, जो नहीं हैं। सभी पत्नियां प्रेत हैं, और सभी पति प्रेत हैं। वास्तविकता तो मन देता है। इस जगत में जिस चीज को भी हम मन दे देते हैं, वही वास्तविक हो जाता है; मन हटा लेते हैं, वास्तविकता तिरोहित हो जाती है।
लेकिन उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें न करो। तुम्हें पता नहीं कि किस मुसीबत में हूं! घर नहीं लौट सकता, दरवाजे पर खड़ी मिलती है। और ऐसे हाथ-पैर कंप जाते हैं; जिंदा थी तो इतना डर नहीं लगता था कि जिंदा है। अब वह मर चुकी है। कुछ तरकीब बताओ। और उसे सब पता है। जाते ही से वह कहेगी, नानइन के पास गए थे? पूछने तरकीब गए थे? मुझसे छुटकारा चाहते हो? मैं जो कहूंगा, वह भी सुन रही है वह; आप जो कहेंगे, वह भी सुन रही है। आप जो तरकीब बताएंगे, मुसीबत तो यह है कि वह सुन रही होगी, वह तरकीब काम न करेगी।
नानइन ने कहा, तरकीब ऐसी बताता हूं कि वह काम करेगी। वहां पास ही कोई फूलों के बीज नानइन को भेंट कर गया था, उसने एक मुट्ठी भरकर उस आदमी को दे दिए और कहा कि मुट्ठी बांध लो बीजों पर, घर चले जाओ। और सब बातें तो पत्नी बताएगी, तुम सुनते रहना। फिर उससे पूछना कि कितने बीज हैं, इनकी संख्या बता! और अगर संख्या ठीक न बता पाए तो समझ लेना कि सब झूठ है।
आदमी भागा बीज लेकर, तरकीब काम कर गई। पत्नी ने सब बताया कि नानइन क्या बोला, तूने क्या कहा। नानइन ने कहा कि बीज उठा ले, मुट्ठी में बांध ले और जाकर पूछ पत्नी से कि कितनी संख्या है और अब तू पूछने की तैयारी कर रहा है। डरा तो आदमी, कि यह बीज की संख्या बता देगी, यह काम होने वाला नहीं। लेकिन फिर भी उसने कहा, एक आखिरी कोशिश। पूछा। पत्नी तिरोहित हो गई। हैरान हुआ। लौटकर नानइन से कहा कि तरकीब क्या थी इसमें?
नानइन ने कहा कि तेरा मन जो जानता है, वही वह प्रेत बता सकता है। जो तेरा मन नहीं जानता, तेरा प्रेत नहीं बता सकता। क्योंकि तेरा प्रेत तेरे मन का विस्तार है। अगर तूने गिन लिए होते बीज, तो वह प्रेत भी बता देता। क्योंकि वह तेरा ही प्रोजेक्शन है, वह तेरी ही छाया है।
लेकिन हम प्रेत से डर सकते हैं। हम प्रेतों से ही डरे हुए हैं। शंकर
इस जगत को माया कहते हैं, उसका अर्थ है, यह सारा जगत प्रेत है। यह है नहीं

और दिखाई पड़ता है। यह है नहीं और है। और इसमें जितना है-पन है, वह तुमने डाला है। पहले तुम इसमें है-पन डालते हो, फिर फंस जाते हो, फिर बंध जाते हो। सपने को सच करने की सामर्थ्य तुम्हारी है। तुम खो जाते हो, तुम भूल जाते हो कि तुम हो।
भूख लगती है और तुम्हें लगता है कि मुझे भूख लगी, वहीं भ्रांति हो जाती है। भूख शरीर को लगती है, तुम्हें कभी लगी नहीं। और कभी लग भी नहीं सकती। तुम बहुत करीब हो, यह सच है। तुममें और शरीर के बीच जरा-सा भी फासला नहीं है, लेकिन तुम अलग हो। बहुत निकट खड़े हो।
पुराने शास्त्र कहते हैं, जैसे नीलमणि के पास अगर कोई कांच के टुकड़े
को रख दे, तो वह कांच का टुकड़ा भी नीला दिखाई पड़ने लगता है। वह नीला हुआ नहीं है, लेकिन नीलमणि की छाया उस पर पड़ने लगती है। ऐसे ही तुम पास हो शरीर के, शरीर तुम नहीं हो। शरीर में जो भी घटता है, वह इतने पास घटता है कि तुम्हारे ऊपर उसकी छाया पड़ने लगती है। तुम कहते हो, मुझे भूख लगी। और वहीं भ्रांति हो गई, वहीं संसार खड़ा हो गया।
भूख लगी शरीर को, और तुमने कहा, मुझे भूख लगी। चोट लगी शरीर को, और तुमने कहा, मुझे चोट लगी। शरीर बूढ़ा हुआ, और तुमने कहा, मैं बूढ़ा हुआ। शरीर मरने लगा, और तुमने कहा, मैं मरा। बस वहीं भ्रांति हो गई।
काश! तुम देख पाओ कि शरीर को भूख लगी और मैं देख रहा हूं, जान रहा हूं। काश! तुम समझ पाओ कि शरीर बीमार हुआ, शरीर बूढ़ा हुआ, शरीर मरने के करीब आया, मैं जान रहा हूं, मैं देख रहा हूं, मैं द्रष्टा हूं। सारा नाटक शरीर पर हो रहा है। शरीर जैसे एक विराट मंच है और उस सारे नाटक के पात्र तुम्हारे मन के ही प्रक्षेप हैं। और तुम खड़े दूर दर्शक-दीर्घा में देख रहे हो।
एक तुम्हारा कर्ता-पन है, जिससे संसार पैदा होता है। एक तुम्हारा साक्षी-पन है, जिससे ब्रह्म के दर्शन होते हैं। निद्रा में तो याद रह ही नहीं जाता, जागते में तुम भूल-भूल जाते हो। शरीर को चोट लगती है, तत्क्षण तुम भूल ही जाते हो कि शरीर को चोट लगी, मैंने जाना।
बस इतना ही साधना का सूत्र है कि कर्ता निर्मित जब होता हो, तब तुम होश
से भर जाओ और कर्ता को निर्मित मत होने दो। सब कर्म शरीर पर छोड़ दो। सब वासनाएं, सब क्षुधाएं, सब आकांक्षाएं शरीर पर छोड़ दो। अपने पास तुम सिर्फ जानने की क्षमता बचाओ, सिर्फ होश, सिर्फ देखने की कला बचाओ।
इसलिए हमने इस मुल्क में दर्शन, फिलासफी को दर्शन का नाम दिया है।
देखने की क्षमता तुम बचा लो। बस जैसे ही तुम देखने में समर्थ हो जाओगे, उसी क्षण तुम पाओगे, सारे स्वप्न खो गए, सारे भूत-प्रेत तिरोहित हो गए, संसार नहीं है। स्वप्न लीन हो गया। तुम जाग गए।
इस परम जागरण को हम बुद्धत्व कहते हैं। बुद्ध का अर्थ है, जागा हुआ।
और यह परम जागा हुआ परम आनंद को उपलब्ध होता है। हम सोए हुए पीड़ा और व्यथा और दुख को उपलब्ध होते हैं।
एक ही दुख है, स्वयं की वास्तविकता को भूल जाना। और एक ही आनंद है, स्वयं की वास्तविकता को पुनः उपलब्ध कर लेना। आत्म-साक्षात्कार कहें, ब्रह्म-साक्षात्कार कहें, समाधि कहें, जो भी नाम रुचिकर लगे वह नाम दें, पर एक ही बात है।
उपनिषद की यह छोटी कथा, यह छोटा-सा रूपक! एक वृक्ष, जिस पर दो पक्षियों
का वास है।
वृक्ष बहुत पुराने दिनों से जीवन का प्रतीक है। जैसे बीज से वृक्ष फैलता है, खुले आकाश में उसकी शाखाएं दूर-दूर तक जाती हैं, बड़ी आकांक्षाएं लेकर वृक्ष आकाश को छूने चलता है, ऐसे ही जीवन फैलता है एक छोटे-से बीज से, एक वीर्य-कण से। फिर बड़ी आकांक्षाएं हैं, बड़ा फैलाव, बड़ी महत्वाकांक्षाएं, सारे आकाश को ढंक लेने का मन है, दूर-दिगंत तक पहुंच जाने की वासना है। जीवन का वृक्ष है। इस जीवन के वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी है, जो स्वाद लेता है, फलों को चखता है। और एक पक्षी है, जो सिर्फ देखता है, जो न फलों को चखता है, जो न स्वाद लेता है, जो किसी भी कर्म में नीचे नहीं उतरता। तो वह जो भोगी पक्षी है, वह नीचे की शाखा पर बैठा है। वह जो साक्षी पक्षी है, वह ऊपर की शाखा पर बैठा है।

वह जो भोग है, उसका अंतिम परिणाम व्यथा है। सुख तो मिलते हैं, लेकिन सुख सदा दुख मिश्रित मिलते हैं। और हर सुख अपने साथ अपने ढंग का दुख लाता है। और सुख तो ठहरता है क्षणभर, दुख पीछे लंबी धूमिल रेखा की भांति छूट जाता है। एक सुख के लिए हमें नामालूम कितने दुख उठाने पड़ते हैं।
और सुख को भी थोड़ा गौर से देखें, तो बहुत भ्रांत सिद्ध होता है। गौर से देखें, तो मिला भी या नहीं मिला, यह भी संदिग्ध हो जाता है। गौर से न देखें, तो लगता है मिला। पीछे लौटकर देखें, पचास साल गुजर गए, चालीस साल गुजर गए, साठ साल गुजर गए, इन साठ वर्षों में सच में कोई क्षण याद आता है, जिसकी आप ठीक से कसौटी करें और जो सुख का सिद्ध हो?
सुकरात का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है, जिसमें उसने कहा है, अनएक्जामिन्ड लाइफ इज नाट वर्थ लिविंग, अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं है।
लेकिन अगर तुम जीवन की परीक्षा करोगे, तो तुम हैरान हो जाओगे कि वहां परीक्षा करने पर कुछ बचता ही नहीं।
लौटो और देखो, कब मिला सुख? शायद थोड़े से खयाल आएंगे। पहली दफा प्रेम में किसी के पड़े थे, तब सुख मिला था। लेकिन अब याददाश्त बड़ी धूमिल हो गई। और बड़ी धूल जम गई। उस धूल को निखारो और फिर से खोजो, हाथ-पैर भीतर कंपने लगेंगे। क्योंकि खोज करने से पता चलेगा कि तब भी आभास हुआ था, मिला नहीं था। और जितना ही खोजेंगे, उतना ही खो जाएगा।
बहुत विचार जो करेगा, उसे लगेगा, जीवन रिक्त है। इसलिए विचारक हमेशा जीवन में एंपटीनेस, रिक्तता अनुभव करेगा। सिर्फ मूढ़ हैं, जिनका जीवन भरा हुआ मालूम पड़ता है। चाहे वे रास्ते के किनारे कंकड़-पत्थर इकट्ठे करके जीवन की झोली भर रहे हों, लेकिन उन्हें यह खयाल होता है कि वे हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर रहे हैं। झोली खोलकर देखेंगे, कंकड़-पत्थर पाएंगे, झोली गिर जाएगी और जीवन बड़ा रिक्त मालूम पड़ेगा।
जिसको अपने जीवन की रिक्तता नहीं दिखाई पड़ी, उसके जीवन में अभी धर्म
का द्वार खुल नहीं सकता। क्योंकि जब भोग व्यर्थ दिखाई पड़ता है, तभी योग का जन्म होता है।
एक भी क्षण सुख का नहीं है और इतना दुख हम झेलते हैं उसे पाने के लिए।
एक आदमी एक भवन बनाता है। बड़े कष्ट लेता है, दौड़ता है, धूपता है, मुश्किल से धन इकट्ठा करता है। फिर भवन में आकर खड़ा हो जाता है और सोचता है, कहां सुख! लेकिन पुरानी आदत के कारण कुछ और बनाने में लग जाता है। दस रुपए पास हैं, दस हजार कर लेता है। दस हजार रखकर बैठ जाता है, सोचता है, कहां सुख! लेकिन इतनी भी फुर्सत हम मन को देते नहीं, क्योंकि इतनी फुर्सत खतरनाक है। दस हजार हो भी नहीं पाते कि दस लाख की हम चिंता में पड़ जाते हैं और सोचते हैं, दस लाख जब मिलेंगे, तब सुख होगा।
यह मन का ढांचा हो जाएगा। दस लाख मिलकर भी सुख नहीं होगा, क्योंकि तब
दस करोड़ की वासना पैदा हो जाएगी। और हम कभी खाली जगह न छोड़ेंगे, जिसमें हम विचार कर लें, लौटकर देख लें, पुनर्विचार कर लें, फिर से खयाल में ले लें कि इतने दिन तक मेहनत करके दस लाख इकट्ठे किए; सुख, जो सोचा था, वह मिला या नहीं?
अगर आप अपना श्रम और अपनी उपलब्धि को सामने रखकर सोचेंगे, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। उपलब्धि बिलकुल भी नहीं है, श्रम बहुत है। मेहनत में आपके कोई कमी नहीं, मेहनत इतनी ज्यादा है कि अपने को उसमें गंवाए ही दे रहे हैं। लेकिन डर लगता है, जांचने में डर लगता है। और डर इस बात का लगता है कि अगर जांचने से पता चला कि मुझे कुछ भी नहीं मिला, तो मैं असफल हो गया। असफलता का भय भारी है।
मैंने सुना है कि दो भिखारी एक सड़क के किनारे बैठकर बात कर रहे थे। एक भिखारी रोना रो रहा था, जैसा कि सभी भिखारी रोते हैं, फिर चाहे वे धनी भिखारी हों और चाहे निर्धन।
वह रोना रो रहा था अपने धंधे के संबंध में कि सब धंधा बिगड़ गया है। काम
ही नहीं चलता। कोई देने को उत्सुक ही नहीं है। लोगों की नजर ही खराब हो गई है। जिसके सामने हाथ फैलाओ, वही और कहीं देखने लगता है। किसी से मांगो, तो पच्चीस उपदेश देता है, एक धेला देने की तैयारी नहीं है। संसार बिलकुल

बिगड़ा जा रहा है, कलियुग आ गया है। लोगों में न दया है, न दान है, न ममता रही, न मनुष्यता का कोई प्रेम रहा। बस पैसे पर लोगों की पकड़ हो गई है, एक पैसा कोई देने को तैयार नहीं है। और अब मैं बहुत थक गया इस आवारागर्दी से, एक गांव से दूसरे गांव, न कोई इज्जत, न कोई प्रतिष्ठा। ट्रेनों में धक्के खाओ, बिना टिकिट सफर करो, जबर्दस्ती जगह-जगह उतारे जाओ। पुलिस है कि पीछे पड़ी रहती है, जैसे इसी के लिए नियुक्त किया है। जीवन बड़ा बदतर है।
तो दूसरे ने कहा कि फिर तू यह भिखारी का धंधा छोड़ ही क्यों नहीं देता?
उस पहले आदमी ने सिर ऊंचा करके, रीढ़ ऊंची करके कहा कि क्या तुम समझते हो, मैं अपनी असफलता स्वीकार कर लूं?
भिखारी भी अपनी असफलता स्वीकार करने को राजी नहीं है, तो आप तो कैसे राजी होंगे! और चूंकि अहंकार असफलता स्वीकार करने को राजी नहीं होता, इसलिए अहंकार जीवन पर विचार करने को राजी नहीं होता। क्योंकि विचार की निष्पत्ति असफलता होगी। साफ दिखाई पड़ जाएगा कि सब असफल हुआ है, सब असफल गया है। सुख जरा भी नहीं है, दुख की बड़ी भीड़ है।
यह पहले पक्षी का जीवन-ढंग और ढांचा है। यह उसके जीवन की शैली है। बड़ी व्यथा उसे होती है, बड़े दुख में वह भरता है। और तब किसी क्षण में वह ऊपर सिर उठाकर देखता है।
उसका ही साथी, ठीक उसके ही जैसा, कहें कि दोनों जैसे साथ-साथ जन्मे; कहें, जैसे एक दूसरे के प्रतिरूप, एक दूसरे की छाया! वह दूसरा शांत और आनंदित बैठा है। वहां कोई कंपन नहीं, वहां दुख की कोई कालिमा नहीं, वहां आनंद का सूरज सदा ही उगा हुआ है, कभी डूबता नहीं।
उस दूसरे के आनंद का राज क्या है? उसका राज यह है कि वह भोक्ता नहीं है, कर्ता नहीं है। वह मात्र नीचे जो उछल-कूद चल रही है, उसे देखता है। और जब आप कर्ता नहीं होते, भोक्ता नहीं होते, तो सुख तो आपका हो ही नहीं सकता, दुख कैसे आपका होगा! जिसने सुख को अपना बनाना चाहा, दुख उसका हुआ। जिसने सुख को भी कह दिया, मेरा नहीं, सिर्फ देखने वाला हूं, दुख उससे सदा के लिए दूर हो गया।
दूरी तो हम भी चाहते हैं, लेकिन दुख से चाहते हैं। सुख से निकटता चाहते हैं। चाहते हैं, सुख तो मेरा हो, मैं भोक्ता रहूं; दुख मेरा न हो। दुख में बहुत लोग साक्षी होने का उपाय करते हैं।
दुखी लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि बहुत उपाय करते हैं साक्षी होने का, कुछ हो नहीं रहा। मैं उनसे कहता हूं, दुख में उपाय मत करो, सुख में उपाय करो साक्षी होने का। और अगर तुम सुख में सफल हुए, तो ही दुख में सफल हो पाओगे।
दुख से दूर होने की आकांक्षा तो सभी की है, वह कोई साधना नहीं है। सुख
से दूर होने की आकांक्षा सभी की नहीं है, वही साधना है। तो जब तुम्हारे जीवन में सुख का क्षण हो, तब तुम बैठकर अपने को दूर करना। जब तुम्हारे जीवन में शांति का क्षण हो, तब तुम बैठकर अपने को शांति से भी दूर कर लेना। यदि तुम ध्यान के मार्ग पर हो और किसी दिन ध्यान में परम शांति उतरने लगे, तत्क्षण अपने को दूर कर लेना।
बड़ा कठिन होगा। क्योंकि लोग सोचते हैं, शरीर के भोग से दूर करना है। ध्यान का भोग भी भोग है। किसी दिन प्रार्थना में लीन हो गए हो और तुम्हारे चारों तरफ एक नई सुगंध आ गई, जैसे अंधेरे में अचानक घी के दिए जल गए; या भीतर जहां कभी कुछ नहीं खिला था, कोई कमल खिल गया और तुम बड़े आनंदित हो, तत्क्षण दूर कर लेना।
स्त्री से जो सुख मिलता है, पुरुष से जो सुख मिलता है, भोजन से जो सुख मिलता है, सुंदर वस्त्र पहन लेने से जो सुख मिलता है, स्वास्थ्य से जो सुख मिलता है, उससे तो अलग करना ही है, ध्यान से जो सुख मिलता है, उससे भी अलग कर लेना है। जहां भी सुख मिलता है, वहां तुम साक्षी होना, भोक्ता मत होना।
बस तुमने नींव रख दी जीवन को बदलने की। अचानक तुम पाओगे कि दुख अब तुम्हें नहीं छूता। दुख उसी को छूता है, जो सुख को पकड़ना चाहता है। सुख को पकड़ना, दुख के लिए निमंत्रण है। और तुम सभी सुख को पकड़ने को आतुर हो, हालांकि पकड़ में हमेशा दुख आता है। फिर भी तुमने कभी सोचा नहीं कि पकड़ना सदा चाहा सुख, पकड़ में सदा आया दुख! तुमने यह हिसाब भी कभी नहीं लगाया।

इतनी तेजी में हो, इतनी जल्दी में हो, और नए सुख को पकड़ने के लिए इतनी भाग-दौड़ है, इतनी आपा-धापी है कि पीछे का हिसाब कौन लगाए?
जब भी सुख का कोई क्षण तुम पर उतरने लगे, सुख का कोई घूंघर तुम्हारे भीतर बजने लगे, तत्क्षण होश सम्हाल लेना। यही वास्तविक ध्यान है। यह होश का सम्हालना सुख में, यही वास्तविक ध्यान है।
मुश्किल होगा, क्योंकि कभी तो ऐसी शांति मिली और उससे भी अलग होने की बात की जा रही है! कभी तो झलक आई प्रकाश की एक!
तो जब भी मैं अपने साधकों को कहता हूं कि ध्यान में जो मिले, उसके साथ
एक मत हो जाना तो वे मेरी तरफ ऐसे देखते हैं कि बामुश्किल तो थोड़ी-सी झलक मिली, उसको भी मैं नष्ट करवाने की तैयारी कर रहा हूं। उनकी आंखों को देखकर मुझे लगता है, वे कहते हैं कि इतनी जल्दी नहीं, थोड़ा इस सुख को ले लेने दें, थोड़ा इसमें डूबने दें। और हम तो पूछने आए थे कि यह सुख कैसे बढ़े? और हम तो पूछने आए थे कि जो सुख आज मिला, वह कल भी कैसे मिले? और जो सुख अभी क्षणभर दिखा, वह शाश्वत कैसे हो जाए? और आप कहते हैं, इससे दूर कर लेना!
यह जो मैं कह रहा हूं, इससे दूर कर लेना, यही इसके शाश्वत होने का उपाय है। अगर तुम दूर न कर पाए, तो जो मिला है, वह भी खो जाएगा। कल तुम फिर खाली हाथ हो जाओगे और दुख पैदा होगा। ध्यान करने वालों को अगर सुख मिल जाए थोड़ा, तो दूसरे दिन दुख मिलता है। क्योंकि फिर वह जो सुख मिला था, वह नहीं आ रहा। फिर वे पूछते हैं कि कैसे वह फिर वापस आए। वह जो झरोखा खुला था, वह फिर कैसे खुले? और कुछ ऐसी तरकीब कि वह झरोखा बंद हो ही न, खुला ही रहे।
बस, दुख का उपाय शुरू हो गया। जिसने भी सुख को पकड़ना चाहा, उसने दुख को पकड़ लिया। जिसने सुख की पुनरुक्ति चाही, वह जो मिला था, वह भी खो गया। जीसस का एक वचन है, जिनके पास है, उनसे छीन लिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उन्हें दे दिया जाएगा। इसे तुम सुख के संबंध में याद रखना। किसी भी भांति का सुख है, वह छिनेगा। अगर तुम खुद ही उसे फेंक दोगे, तब तुमसे उसे छीनने वाला कोई भी नहीं। और जिसके पास नहीं है, उन्हें अनंतगुना मिलता रहेगा। और जब भी मिले, तब तुम उसे फेंकते जाना। तुम हर बार अनंत को अनंतगुना करते जाओगे।
और एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम समझ जाओगे कि सुख फेंकने की कला है और दुख पकड़ने की कला है।
जितना पकड़ोगे, उतने दुखी। नर्क में जो लोग हैं, उनका दुख और कुछ नहीं है, उन्होंने बड़े सुख पकड़ रखे हैं। स्वर्ग में जो लोग हैं, उनका सुख और कुछ भी नहीं है, उन्होंने सब सुख छोड़ रखे हैं।
अगर यह समझ में तुम्हें आ जाए, तो सुख का अर्थ हुआ स्वतंत्रता और दुख
का अर्थ हुआ परतंत्रता। इसलिए हमने परम आनंद को मोक्ष कहा है। मोक्ष का अर्थ है परम-स्वातंत्र्य, जहां सब छोड़ दिया गया है।
वह जो ऊपर बैठा पक्षी है, वह तुम्हारे भीतर भी बैठा है, तुम्हारे वृक्ष पर भी बैठा है। कभी-कभी उसकी तुम्हें झलक भी मिलती है। जब तुम देखने वाले हो जाते हो, तब तुम्हारी चेतना, नीचे के पक्षी से हट जाती है और ऊपर के पक्षी में लीन हो जाती है। कभी-कभी तुम्हें भी झलक मिली है। और उस झलक में जैसे बादल हट गए हों और नीला आकाश पीछे दिखाई पड़ा हो, तुम्हें भी दिखाई पड़ा है। चाहे तुम पहचान पाए न पहचान पाए, चाहे तुम समझ पाए इस घटना को न समझ पाए। लेकिन ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसे कभी न कभी, साक्षी होने की क्षणभर को प्रतीति न हुई हो।
और जब भी ऐसी प्रतीति हुई है, तभी आनंद बरस गया है। तभी एक झोंका आया
है और तुम्हारे चारों तरफ सब जीवित हो गया है।
कर्ता होने की प्रतीति तो हमको चौबीस घंटे है। चौबीस घंटे हम नीचे के पक्षी के साथ तादात्म्य साधे हुए हैं। दुख भोग रहे हैं। अब समय आया है कि आंख उठाओ और ऊपर के पक्षी को देखो। और वह तुम्हारे ही वृक्ष पर बैठा हुआ है। और अनंतकाल से प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तक तुम दुख भोगते रहोगे? और दुख भोगकर भी तुम आंख नहीं उठाते!
कुछ ऐसा लगता है कि दुख में भी तुम्हें रस आ रहा है। अगर विरोधाभास न दिखे, तो कुछ ऐसा लगता है कि दुख में तुम कुछ सुख अनुभव कर रहे हो। दुख में भी हमारा इनवेस्टमेंट है। इसलिए तुम कहते जरूर हो कि हम दुख छोड़ना चाहते

हैं, लेकिन तुम छोड़ना नहीं चाहते। तुम आते भी ऐसे लोगों के पास हो, जहां दुख छूट जाए, लेकिन तुम पूरी तरह नहीं आते। शायद तुम अपनी आत्मा को घर ही छोड़ आते हो। आधे-आधे आते हो, अंश-अंश में आते हो। दुख में तुम्हारा कुछ न्यस्त स्वार्थ है।
एक महिला को मैं जानता था। वह जब भी आती तो उसका एक ही रोना था कि पति शराबी, जुआरी, सब पाप जो हो सकते हैं पति में, शिकायत और शिकायत। और मैं ही घर को चलाती हूं, न पति काम करता, न नौकरी पर जाता। और निश्चित ही वह चलाती थी घर को, खुद काम भी करती, कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय भी सम्हालती। पति की भी चिंता रखती। और एक लड़की घर में, वह पंगु, उसको लकवा लग गया है। उसका भी एक बोझ उसके ऊपर, वह उठ भी न सके बिस्तर से। उठाना हो तो भी सहायता की जरूरत, भोजन भी करवाना हो तो उसी को करवाना पड़े। उसका जीवन एक शहीद का जीवन था। वह जब भी आती, यही दुख सुनाती। लेकिन उसकी आंखों और चेहरे में मैं गौर करता, तो मुझे लगता, उसे इसमें रस है। क्योंकि इस पति के शराबी और जुआरी होने के कारण उसके अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही है। पति दो कौड़ी का है, तो वह लाख का हीरा हो गई है। जीते हम तुलना में हैं। अगर पति श्रेष्ठ हो, तो पत्नी साधारण हो जाएगी। वह जो पत्नी की असाधारणता है, और गांवभर उसकी प्रशंसा करता है कि स्त्री हो तो ऐसी हो, वह पति के शराबी और जुआरी होने पर निर्भर है।
तो वह कहती है कि मैं बड़ी दुखी हूं, लेकिन सच में ही वह उस दुख से छुटकारा चाहेगी नहीं। क्योंकि उस दुख का छुटकारा, उसके सम्मान और गौरव-गरिमा का भी अंत होगा। वह लड़की दुखी है, बीमार है, परेशान है। और उसके लिए वह दुखी है, रोती है, इलाज का इंतजाम करती है। लेकिन वह भी उसकी शहीदगी का हिस्सा है। लोग दुख में रस लेते हैं, क्योंकि दुख तुम्हें शहीद बनाता है। और इसलिए शिकायत नहीं कर रही है वह असल में, प्रचार कर रही है। उसकी आंखों में देखो तो शिकायत का भाव नहीं दिखता, प्रचार का भाव दिखाई देता है।
फिर दुर्भाग्य से ऐसा हुआ कि लड़की मर गई। जिस दिन लड़की मरी, उसी दिन से उसके जीवन में आधा सुख चला गया। होना तो उसे प्रसन्न चाहिए था; कि चलो, लड़की दुख से छूटी और मैं भी दुख से छूटी। और भी दुर्भाग्य की बात कि आखिर में परेशान होकर पति भाग गया।
इस सबको मैं निरंतर अध्ययन करता रहा, क्योंकि वह अक्सर आती थी। जिस दिन उसका पति भाग गया, उस दिन सब दुख का अंत हो जाना चाहिए था। क्योंकि यही वह कहती थी कि यह कैसे मर भी जाए तो भी ठीक है। यह चला जाए, इसका चेहरा मुझे नहीं देखना। आखिर वह चला भी गया, फिर लौटा भी नहीं। लेकिन उसी दिन से उसके चेहरे पर जो चमक थी, पत्नी के, वह खो गई। उसी दिन से वह उदास हो गई, उसके जीवन का सारा सार ही खो गया। वह उस जुआरी और शराबी पति में ही था। उसके कारण ही उसके जीवन में व्यस्तता थी। उसके कारण ही अर्थ था, अभिप्राय था। सब अभिप्राय खो गया, सब अर्थ खो गया।
आखिरी बार जब उस स्त्री को मैंने देखा, तो वह साधारण स्त्री हो गई थी।
अब न कोई उसकी प्रशंसा करता है, न कोई उसके गीत गाता है। वह स्त्री जल्दी मर जाएगी, क्योंकि जीवन में जो भी धारा भी, गति थी, वह सब खो गई।
आप अपने दुखों की बात करते हैं। थोड़ा सोचना, उन दुखों के कारण कहीं आप शहीद तो नहीं हैं? थोड़ा सोचना, उन दुखों में कहीं आपका कोई सुख तो नहीं छिपा है?
आदमी बड़ा जालसाज है। वह अपने दुख को भी लीप-पोत लेता है, अपने दुख को
भी साज-संवार लेता है, वह अपने दुख को भी शृंगार बना लेता है। और तब मुश्किल हो जाती है, क्योंकि वह शृंगार को कैसे फेंके? दुख तुम कभी का फेंक देते, अगर शृंगार तुमने न बनाया होता। कारागृह के तुम कभी के बाहर आ गए होते, लेकिन कारागृह को तुमने निवास समझा है। जंजीरें तुम्हारी, तुम्हारे सिवाय कोई नहीं पकड़े हुए है, लेकिन जंजीरों को तुम आभूषण माने हुए हो।
इसलिए ऊपर का पक्षी बैठा प्रतीक्षा करता है और तुम नीचे बड़ा दुख भोग रहे हो, बड़ा प्रचार कर रहे हो दुख का। और ऊपर का पक्षी हंसता होगा। वह तुम्हारे ही भीतर बैठा हंस रहा है, तुम जानते हो भलीभांति। कभी-कभी तुम्हें उसकी झलक भी मिली है। क्योंकि वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है,

तुम कितना ही उसे भूलो, कैसे भूल पाओगे? कभी न कभी उसकी याद आ ही जाएगी।
कभी न कभी तुम्हारी शांति के क्षण में उसका स्वर तुम्हें सुनाई पड़ जाएगा।
कभी न कभी खाली बैठे वह तुम्हें भर देगा।
लेकिन तुम उससे बच रहे हो। कर्ता होने में तुम्हें इतना मजा आ रहा है
कि तुम साक्षी होने से बच रहे हो। मजे के कारण तुम काफी दुख उठा रहे हो, दुखों का प्रचार भी कर रहे हो। लेकिन शायद दुख अभी उस वाष्पीकरण के बिंदु तक नहीं पहुंचे हैं, उस जगह दुख नहीं आ गए हैं, जहां तुम्हारी गर्दन बिलकुल घुट जाए और तुम सिर उठाकर ऊपर देखो।
एक बार भी तुम सिर उठाकर ऊपर देख लो, तो तुम हैरान होओगे कि अब तक तुमने जन्मों-जन्मों में जो भोगा, वह एक लंबे दुखद स्वप्न से ज्यादा नहीं था। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप सदा उसके बाहर रहा है।
इसलिए हिंदू कहते हैं कि तुम नित्य, सच्चिदानंद ब्रह्म हो। तुमने कभी कोई पाप नहीं किया, तुमसे कभी कोई बुराई नहीं हुई। हो नहीं सकती, क्योंकि करना तुम्हारा स्वभाव नहीं है।
जब पहली बार पश्चिम में उपनिषदों का अनुवाद हुआ, तो पश्चिम के विचारक राजी न हो सके। और पश्चिम के विचारकों को लगा कि ये कैसे धर्म-शास्त्र हैं! क्योंकि पश्चिम तो एक ही धर्म को जानता था, ईसाइयत को। और ईसाइयत का सारा आधार अपराध और पाप के भाव पर है, कि तुम पापी हो, पुण्य की चेष्टा करो; कि तुम भटक गए हो, मार्ग पर आओ; कि तुम निष्कासित किए गए हो परमात्मा के राज्य से, तो वापस लौटने के लिए परमात्मा को प्रसन्न करो; कि तुमने अपराध किया है, उसका पश्चात्ताप करो।
ईसाइयत का तो पूरा आधार ही पश्चात्ताप है, रिपेंटेन्स है। और ये उपनिषद कहते हैं कि तुमने कभी कोई पाप नहीं किया। किया ही नहीं, तुम करना भी चाहो, तो कर नहीं करते, क्योंकि कर्ता तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम सिर्फ सपना देख सकते हो कि तुमने पाप किया या कर रहे हो, लेकिन कर नहीं सकते। तुम चाहो तो भी परमात्मा के राज्य से बाहर जाने का उपाय नहीं, क्योंकि उसके बाहर कुछ है ही नहीं। इस बगीचे के बाहर तुम्हें फेंका जा सकता है, लेकिन परमात्मा के बगीचे के बाहर तुम्हें नहीं फेंका जा सकता। क्योंकि जहां भी है, जो भी है, उसका ही बगीचा है।
ईसाइयों का इदन का बगीचा छोटा रहा होगा। हिंदुओं का इदन का बगीचा विराट है। वे कहते हैं, उसके बाहर कोई जगह नहीं, जहां तुम्हें भेज दें। परमात्मा तुम्हें भगाना भी चाहे, तो कहां भगाएगा? निकालना भी चाहे, तो कहां भेजेगा? वही है। तुम जहां भी रहोगे, उसी में रहोगे। और वह सब जगह एक ही मात्रा में है, कहीं कम और कहीं ज्यादा भी नहीं हो सकता।
क्योंकि अस्तित्व...इसे थोड़ा समझ लें। सब चीजों में मात्रा में भेद हो सकते हैं, अस्तित्व की मात्रा में भेद नहीं होते। यह वृक्ष है, इसका रंग हरा है; दूसरा वृक्ष है, उसका रंग पीला है, रंग का भेद है। एक पक्षी है, छोटा है, एक पक्षी बड़ा है, वजन का भेद है। एक आदमी है, थोड़ी बुद्धि है, एक आदमी है, बड़ी बुद्धि है, बुद्धि का भेद है। लेकिन अस्तित्व है वृक्ष का, अस्तित्व है पक्षी का, अस्तित्व है पत्थर का, अस्तित्व है आदमी का, उसमें जरा भी भेद नहीं है। अस्तित्व कम-ज्यादा नहीं है, अस्तित्व छोटा-बड़ा नहीं है। अस्तित्व एकमात्र चीज है जो बराबर और सम है। पत्थर भी उतना ही अस्तित्ववान है, जितने तुम। उसके होने का ढंग अलग, तुम्हारे होने का ढंग अलग, लेकिन दोनों का होना बराबर है, होने में कोई भेद नहीं है। हम उस होने को ही ब्रह्म कहते हैं।
तो जब उपनिषद पहली दफा गए तो बड़ा मुश्किल हुआ पश्चिम के लोगों को समझना, कि यह कैसा धर्म है? यह तो बड़ा खतरनाक है! अगर लोग ऐसा समझ लें कि पाप उनसे न हुआ है, न हो सकता है, तो फिर पश्चात्ताप वे क्यों करेंगे? और बिना पश्चात्ताप के प्रभु के मंदिर में प्रवेश कैसे होगा? और अगर पापी यह समझ लें कि हम स्वयं ब्रह्म हैं, तो फिर पुरोहित की क्या जरूरत? फिर पुरोहित क्या समझाएगा? किसको सुधारेगा? किसको ठीक करेगा? चर्च खो जाएगा। इसलिए यह जानकर आपको हैरानी होगी कि हिंदू-धर्म अकेला धर्म है, जिसके पास कोई चर्च नहीं है, जिसके पास पुरोहितों का कोई संगठित समाज नहीं है, जिसके मंदिर में पादरी जैसा कोई व्यक्ति नहीं है और जिसका धर्म निजी और

व्यक्तिगत सूझ-बूझ से चलता है, किसी व्यवस्था से नहीं। कोई व्यवस्थापक नहीं है ऊपर। धर्म निजी, अंतर्भूत, स्वयं की प्रतीति से संचालित होता है। हिंदू-धर्म बहती हुई नदियों की भांति है। ईसाइयत पटरियों पर चलती हुई रेलगाड़ियों की भांति है, सब आयोजित है, सब व्यवस्थित है। हिंदू-धर्म एक अराजकता है, एक अनार्की।
और धर्म अराजक ही हो सकता है। क्योंकि धर्म कोई राज्य नहीं है। धर्म परम स्वतंत्रता है। तो परम स्वतंत्रता तो अराजकता के माध्यम से ही उपलब्ध होगी। और यह सबसे बड़ा अराजक सूत्र है कि तुमने न कभी कुछ किया है, न तुम चाहो तो भी कुछ कर सकते हो, न तुम कभी कुछ कर सकोगे! तुम्हारा होना परम शुद्धता है। तुम्हें शुद्ध नहीं होना है, क्योंकि तुम अशुद्ध हुए नहीं। तुम्हें सिर्फ यह पहचान, यह प्रत्यभिज्ञा, यह रिकग्नीशन लाना है कि मैं शुद्ध हूं।
इसलिए हिंदुस्तान में हम ब्रह्म को खोज नहीं रहे हैं, सिर्फ ब्रह्म
को पुनः स्मरण कर रहे हैं। संत इसलिए अपने साधना के सूत्र को स्मृति कहते हैं। कबीर सुरति कहते हैं, वह स्मृति का ही बिगड़ा हुआ नाम है। बस, एक याद आनी है। जैसे कोई सम्राट का पुत्र हो और भीख मांग रहा हो और उसे याद आ जाए कि यह मैं क्या कर रहा हूं, मैं सम्राट का पुत्र हूं, बात खतम हो गई।
इस याद के साथ ही उसकी चेतना का गुण-धर्म बदल जाएगा।
जिस दिन तुम्हारा दुख काफी हो जाए और जिस दिन तुम अपने दुखों में रस लेना बंद कर दो...। क्योंकि जब तक तुम्हें रस आता हो, तब तक रोकने वाला मैं भी कौन हूं? और जब तक तुम्हें रस आता हो, रस लेना ही चाहिए। और जल्दी से कुछ भी न होगा, फल पकेंगे, तो ही गिरेंगे। और कच्चे फल तोड़ना उचित भी नहीं है। अगर तुम्हें अभी भी दुखों में रस आ रहा हो, तो वही तुम्हारी नियति है, खूब रस लेना। और जल्दी मत करना, किसी की सुनकर बीच रास्ते से मत मुड़ आना, नहीं तो वह रास्ता फिर पूरा करना पड़ेगा। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।
इस जगत में कोई भी विकास, कोई भी ग्रोथ उधार नहीं हो सकती। अगर तुम्हें अभी दुख में रस आ रहा है, तो तुम ठीक से रस लेना। ताकि पूरा रस ले लो और दुख अपनी परिपूर्णता पर पहुंच जाएं, उनकी निष्पत्ति आ जाए। अगर जहर ही पीना है, तो आकंठ पी लेना। ताकि तुम उसमें डूबो, तो उबर सको।
तुम्हारी तकलीफ क्या है कि न तुम अमृत की तरफ जाते, न तुम जहर को पूरी तरह पीते, इसलिए तुम उलझ गए हो, तुम बीच में अटक गए हो। जहर तुम पीना चाहते हो, उसमें रस तुम्हें है। लेकिन उससे जो दुख आता है, वह भी तुम नहीं झेलना चाहते। तुम एक असंभव की कोशिश कर रहे हो कि जहर तो पीऊं और आनंद अमृत जैसा आए। यह नहीं होगा। यह नहीं होगा, क्योंकि यह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है। अमृत पीओगे तो आनंद आएगा, जहर पीओगे तो दुख आएगा। और जहर में रस है, तो पूरी तरह पीओ। ताकि पूरा दुख हो जाए, तुम दुख के द्वारा पक जाओ।
व्यथा पकाती है। और दुख तुम्हें तैयार करता है आत्यंतिक छलांग के लिए। एक न एक दिन तुम लौटकर पीछे देखोगे और उस दूसरे पक्षी को बैठा हुआ पाओगे।
और ध्यान रहे, दूसरे पक्षी के संबंध में सुनी हुई बातों से कुछ भी न होगा, तुम्हें स्वयं ही देखना पड़ेगा। ये उपनिषद कितना ही कहें, उपनिषदों के द्वारा जो कहा गया है, वह ऐसा ही है जैसे किसी ने हिमालय को चित्रों में देखा हो। हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर छाई हुई सफेद बर्फ देखी हो। लेकिन उससे शीतलता नहीं मिलेगी। जो हिमालय के उस उत्तुंग शिखर पर गया है, उसने जो जाना है, वह तुम न जानोगे। कागज पर खींची हुई लकीरें हिमालय कैसे हो सकती हैं? उसको छाती से लगाकर तुम बैठ जाओ और यह मान लो कि तुम पहुंच गए हिमालय और पा लिया तुमने वह शांति और सुख का साम्राज्य, तो तुम्हारी यात्रा ही समाप्त हो गई। तुम उठोगे और चलोगे भी नहीं।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ एक बार। दुर्भाग्य से काशी का एक गधा पढ़-लिख गया। दुर्भाग्य इसलिए कि एक तो वैसे ही गधा और फिर पढ़ा-लिखा। वह जैसे कोई नीम के झाड़ पर करेले को चढ़ा दे। वैसे ही कडुवा फिर नीम का सत्संग। काशी का गधा था, चारों तरफ पांडित्य की हवा थी, जल्दी ही पंडित हो गया। शास्त्र उसे कंठस्थ हो गए।

गधों की स्मृति अक्सर अच्छी होती है। बुद्धि जितनी कम होती है, स्मृति उसको पूरा करती है। बहुत बुद्धिमान लोग अक्सर भुलक्कड़ हो जाते हैं। बुद्धू बुद्धि पर तो टिक नहीं सकते, तो उन्हें याददाश्त से ही अपने जीवन को चलाना पड़ता है।
तो इस गधे की याददाश्त बड़ी अच्छी थी। जो भी पढ़ता, बिलकुल कंठस्थ हो जाता। पंडितों के आस-पास जहां चर्चाएं चलतीं, सत्संग होते, वह भी खड़ा सुनता था। अक्सर उसे सुनाई पड़ता था, काशी की हवा, वहां भंग और भंग का पीना और भंग का आनंद और भंग का घुटना और जय भवानी, वह सब सुनता था। भंग के संबंध में उसने इतनी बातें सुनीं और काशी की सड़कों पर चलते हुए भंगेड़ियों को ऐसे आनंद से डोलते देखा कि उसके मन में भी वासना जगी कि यह भंग तो ब्रह्म का द्वार है और इसके बिना कोई प्रवेश हो नहीं सकता, इस भंग को खोजूं। शास्त्रों में बड़ी महिमा पढ़ी, महिमा कंठस्थ भी हो गई।
फिर एक दिन एक कबाड़ी की दुकान पर उसे एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका दिखाई पड़ गया। तो उसमें उसने उलटकर देखा तो भंग के पौधे की तस्वीर बनी थी।
तो उसने तस्वीर को बिलकुल आंखों में बसा लिया।
अब उसके पास पूरी साधना के सूत्र थे। भंग की पूरी महिमा उसे पता थी। भंगेड़ियों के कृत्य भी उसने देखे थे, उनका आनंद भी देखा था, उनकी आंखों की मस्ती, उसकी भी उसे खबर थी। भंगेड़ियों के सत्संग में खड़े होकर उनकी चर्चा भी सुनी थी। किसी अलौकिक लोक की वे बातें कर रहे थे! किसी अज्ञात का हल्का स्पर्श उसे इनकी चर्चाओं में हुआ था। शब्दों से उसे खबर मिल गई थी। और अब उसके पास चित्र भी था। अब वह जल्दी ही तलाश कर लेगा।
गंगा के किनारे चरते उसने एक दिन देखा कि एक पौधा ठीक वैसा, जैसा ब्रिटानिका में चित्र बना था, वैसा ही है। लेकिन पक्का कैसा हो कि वह भंग ही है, मिलता-जुलता कोई पौधा हो सकता है। उचित यही है कि उस पौधे से ही पूछ लिया जाए।
वह पौधा साधारण घास-पात था। अक्सर उग आता है, तो लोग बगीचे से उसे उखाड़कर फेंक देते हैं, क्योंकि उसकी कोई उपयोगिता नहीं।
इस गधे ने जाकर पूछा कि क्या मेरे भाई, तुम भंग के पौधे हो? वही जिसकी महिमा शास्त्रों में है? और ब्रिटानिका में तुम्हारा चित्र देखा, हूबहू वही हो। जहां तक मेरी समझ जाती है और स्मृति, तुम ही हो वह, जिसकी मैं तलाश में हूं।
वह पौधा साधारण घास-पात का था। कभी किसी ने इतनी महिमा उसे न दी थी कि कहे कि जय भंग-भवानी या ऐसा धार्मिक पद और ऐसी ऊंचाई की प्रतिष्ठा कभी किसी ने न दी थी। माना कि यह गधा है, फिर भी गधे भी प्रशंसा करें तो अहंकार को अच्छी लगती है। अहंकार यह नहीं देखता कि कौन कर रहा है, अन्यथा दुनिया में खुशामद बंद हो जाए।
पौधा थोड़ा तो सकुचाया कि न कर दूं, लेकिन यह मौका दुबारा जीवन में आएगा, इसकी आशा नहीं है। यह सम्मान का क्षण खोने जैसा नहीं है। तो उस पौधे ने कहा कि हां, मैं ही हूं वह, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। झटपट गधे ने जो भी सीखा था भंगेड़ियों से, जो भी क्रियाकलाप, कर्म-कांड करना था, वह किया। पौधे को चर गया।
चरकर उसने देखा, लेकिन कोई मस्ती आती नहीं मालूम पड़ रही। शायद अभ्यास
न होने से ऐसा हो। तो पैर डांवाडोल किए, झूला, भंगेड़ियों को देखा था, वैसा चलने भी लगा, अनर्गल बकने भी लगा। लेकिन भीतर उसे शक तो बना ही हुआ है। यह सब हो रहा है ठीक, लेकिन यह हो रहा है ऊपर-ऊपर। या तो ब्रिटानिका में कहीं कोई भूल हो गई, या बाकी भंगेड़ी भी ऐसा ही कर रहे हैं और या यह पौधा धोखा दे गया। समझाने की सब तरफ कोशिश करता है कि ठीक ही हो रहा है, लेकिन भीतर तो कोई देख ही रहा है कि यह सब ठीक हो नहीं रहा, यह सब मैं कर रहा हूं, यह मैं करता हूं।
शास्त्र से तुम ब्रह्मज्ञान सुन लो, उपनिषद तुम्हें बता दें ऊपर के पक्षी की बात, तुम्हें कंठस्थ भी हो जाए, तुम ऐसे ही जीने भी लगो, ऐसे ही चलने भी लगो, जैसा संन्यासी को उठना-बैठना, चलना चाहिए--बाकी तुम्हें भीतर लगता ही रहेगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

स्वानुभव के बिना, स्वयं जाने बिना, कोई और जानना किसी भी अर्थ का नहीं है। उपनिषद की कथा समझ में आने से कुछ भी समझ में न आएगा। जब तुम्हारे भीतर की कथा खुलेगी, और तुम्हारे जीवन के वृक्ष पर तुम दूसरे पक्षी को बैठा देख पाओगे, तब तुम्हें उपनिषद भी समझ में आएगा। उसके पहले उपनिषद भी समझ में नहीं आ सकता।
तो मेरी तकलीफ तुम्हें खयाल में ले लेनी चाहिए। यह रूपक मैंने तुम्हें समझाया, यह भलीभांति जानते कि तुम इसे कैसे समझोगे! भलीभांति जानते हुए कि मेरे शब्दों को अगर तुमने समझ लिया कि समझ गए, तो नुकसान हुआ। लेकिन फिर भी यह रूपक समझाया कि यह भी तुम्हारे खयाल में आ जाए कि ऐसी संभावना है। अभी तुम इसे मान मत लेना कि तुम्हारे पीछे एक साक्षी बैठा ही हुआ है। कौन जाने उपनिषद गलत कहते हों, ब्रिटानिका में गलत तस्वीर छपी हो, पौधा धोखा दे रहा हो, कोई नहीं जानता। तुम जल्दी मत कर लेना, मानने की जल्दी करना ही मत। क्योंकि जो जल्दी-जल्दी मान लेता है, वह जानने से वंचित रह जाता है। सिर्फ एक संभावना।
मेरी सारी कोशिश इतनी ही है कि तुम्हारे जीवन में एक संभावना की प्रतीति हो जाए। इतना भर हो कि तुम जो हो, उतना ही तुम्हारा पूरा होना नहीं, कुछ बाकी है। इतना ही कि जहां तुम खड़े हो, वहां से थोड़ा आगे जाया जा सकता है, यात्रा समाप्त नहीं हो गई है। इतना ही कि तुमने जो पाया है, वही पाने को नहीं था, और भी कुछ पाने को है। बहुत धुंधला-धुंधला खयाल हो, कोई हर्जा नहीं, धुंधला ही होगा, खयाल ही होगा।
इस खयाल के पैदा करने के लिए तो तुम्हें समझा रहा हूं। उस खयाल के पैदा होने पर दो रास्ते निकलते हैं। एक कि तुम उस खयाल को ही कंठस्थ करते चले जाओ तो बिना भंग पीए तुम्हारे पैर थोड़े दिनों में डगमगाने लगेंगे, बिना भंग पीए थोड़े दिन में तुम मस्ती में आ जाओगे। वह मस्ती झूठी होगी, वह डगमगाहट झूठी होगी, तब तुम भटक गए।
दूसरा एक उपाय है कि वह जो खयाल तुम्हारे मन में पैदा हो जाए कि कुछ और संभव है, मैं चुक नहीं गया हूं, अभी और भी अस्तित्व मेरा बाकी है जो खुल सकता है; यह किताब पूरी नहीं हो गई, इसमें अभी कुछ बंधे हुए अध्याय शेष रह गए हैं; यह घर मैंने पूरा नहीं छान लिया, अभी कुछ तलघरे बाकी हैं, जिनमें खजाना हो सकता है--ऐसा आभास! लेकिन यह आभास तुम्हारा बौद्धिक ज्ञान न बने, बल्कि तुम्हारे जीवन की साधना बन जाए। इसे तुम मानकर न बैठ जाओ, बुद्धि में प्रत्यय न बना लो, बल्कि ध्यान और समाधि की दिशा में तुम कुछ करना शुरू कर दो।
वह जो दूसरा पक्षी है, उसे देखने के लिए कुछ बातें सूत्र की तरह खयाल
ले लेनी चाहिए। पहला, तुम अभी पहले पक्षी हो, जो नीचे बैठा है। इस पक्षी से ठीक से परिचित हो जाओ। इसका दुख पूरा भोगो, इसकी जलन, इसका दंश पूरा अनुभव करो। इसके जो कांटे सब तरफ से चुभ रहे हैं, उन्हें चुभ जाने दो, ताकि उनकी पूरी पीड़ा तुम्हारे हृदय को घेर ले। इसमें तुम झूठे, मादकता के, भुलावे के उपाय मत करो।
तुम कई तरकीबें निकालते हो। तुम कहते हो, पिछले जन्मों के कर्मों के कारण जरा दुख भोग रहा हूं। इस जन्म के कर्मों के कारण नहीं, पिछले जन्मों के कर्मों के कारण।
इससे तुम्हें क्या आश्वासन मिलता होगा? एक आश्वासन मिलता है कि पिछले जन्मों के कर्मों के संबंध में अब कुछ किया नहीं जा सकता। जो हो गया, सो हो गया, भोगना पड़ेगा।
अगर मैं कहूं, इस जन्म के कर्मों के कारण, तो थोड़ी निकट है बात, कुछ किया जा सकता है। और अगर मैं कहूं कि इसी क्षण कर्ता होने के कारण, तब तुम बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। क्योंकि कर्मों के कारण भी दूर की बात हुई। कर्म का अर्थ, जो हो चुका।
तुम कर्मों के कारण दुख नहीं भोग रहे हो, तुम कर्ता होने के कारण दुख भोग रहे हो। कर्ता तुम पिछले जन्मों में थे, उसका भी भोग रहे हो; कर्ता तुम अभी भी हो, उसका भी भोग रहे हो। लेकिन भोग का कारण तुमने क्या किया, वह नहीं है, तुम करने के साथ एक हो जाते हो, वह है। इसे तुम इसी क्षण छोड़ सकते हो।

तो धीरे-धीरे कर्ता होना कम करो। बजाय उस दूसरे की खोज के, तुम जहां हो, वहां थोड़े रूपांतरण करो, कर्ता होना कम करो। और देखने की प्रक्रिया पर ज्यादा जोर दो, जहां भी तुम्हें मौका मिले। ये दो उपाय हैं--या तो कर्ता हो जाओ या द्रष्टा। तुम कोशिश करो द्रष्टा होने की।
यहां मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो। अगर तुम सुन ही रहे हो, तो तुम कर्ता हो गए, क्योंकि सुनना तुम्हारी क्रिया हो गई। अगर तुम द्रष्टा होने की कोशिश करोगे, तो यहां फिर मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो और तुम देख भी रहे हो। अगर मेरा द्रष्टा भी जागा हुआ है और तुम्हारा द्रष्टा भी जागा हुआ है, तो जहां दो व्यक्ति हैं, वहां चार हो गए। एक बोलने वाला, एक देखने वाला, एक सुनने वाला और एक देखने वाला। सुनो भी और देखो भी कि तुम सुन रहे हो। यह इसी क्षण तुम कर सकते हो। इसके करने के लिए कुछ उपाय-आयोजन नहीं है। तुम सुन रहे हो। सुनने की घटना शरीर और मन में घट रही है, तुम इस सुनने की घटना को भी पीछे खड़े देख रहे हो कि यह सुनना हो रहा है। जरा-सी भी झलक तुम्हें मिलेगी, तत्क्षण तुम पाओगे कि उसी क्षण में दुख खो जाता है, अशांति खो जाती है, तनाव खो जाता है।
तो जहां-जहां द्रष्टा और कर्ता का मौका हो, वहां-वहां तुम द्रष्टा की तरफ ढलो, झुको। कर्ता की पुरानी पकड़ है लंबी, संस्कार गहरे हैं, जरा ही भूल हो गई कि कर्ता तुम्हें खींच लेगा। लेकिन कोई हर्जा नहीं। कर्ता के संस्कार कितने ही गहरे हों, वह झूठ है। झूठ के संस्कार कितने ही गहरे हों, तो भी उनका कोई बड़ा वजन और कोई बड़ा मूल्य नहीं है। साक्षी तुम्हें कितना ही भूल गया हो, वह स्वभाव है; कितनी ही विस्मृति हो गई हो, उसे पाना कठिन नहीं है, उसे पुनः जगाया जा सकता है।
भोजन करते, रास्ते पर चलते, स्नान करते, करने पर भाव कम, देखने पर भाव ज्यादा। अपने बाथरूम में खड़े हो, स्नान कर रहे हो शावर के नीचे, स्नान भी करो और देखो भी कि शरीर स्नान कर रहा है। भोजन कर रहे हो, करो भी और देखो भी कि शरीर भोजन कर रहा है।
जल्दी ही दूसरा पक्षी फड़फड़ाता हुआ तुम्हें मालूम पड़ने लगेगा। दूसरा पक्षी जल्दी ही पर फड़फड़ाएगा, जल्दी ही तुम सचेत हो जाओगे कि कोई और भी वृक्ष पर मौजूद है, तुम कर्ता की तरह अकेले नहीं हो। और जैसे-जैसे दूसरे की प्रतीति सघन होगी, पहले की प्रतीति विरल होती जाएगी। जैसे-जैसे दूसरा दिखाई पड़ेगा, पहला खोता जाएगा।
और कथा में जो नहीं कहा है, वह मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम्हारी प्रतीति पूरी हो जाएगी साक्षी की, उस दिन दूसरा खो जाएगा, तुम वृक्ष पर पाओगे कि एक ही पक्षी है।
अज्ञानी भी पाता है कि एक ही पक्षी है, कर्ता। दूसरा उसे दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञानी भी पाता है कि एक ही पक्षी है, साक्षी। दूसरा उसे दिखाई नहीं पड़ता।
यह उपनिषद ने दो पक्षी कहे हैं, अज्ञानी और ज्ञानी दोनों की समझ को एक साथ समाहित करने के लिए। दो पक्षी वहां हैं नहीं। अज्ञानी के लिए भी एक है, वह कर्ता है। ज्ञानी के लिए भी एक है, साक्षी। चूंकि ज्ञानी अज्ञानियों से बोल रहा है उपनिषद में, इसलिए दो पक्षियों की बात है। ज्ञानी अपने अनुभव को भी रख रहा है और अज्ञानी के अनुभव को भी रख रहा है। क्योंकि तुम्हारे अनुभव को भी स्वीकार करना पड़े, तभी तुम यात्रा करोगे। एक घड़ी आएगी, जब तुम्हें खुद ही दिखाई पड़ जाएगा कि पक्षी एक है। और जिस दिन एक ही पक्षी रह जाता है, उस दिन अद्वैत का अनुभव हुआ। उस एक का नाम ही अद्वैत है।

मेरा स्वर्णिम भारत-37

धर्म: एकमात्र कीमिया
(Note: from Jo Bole To Harikatha (जो बोलैं तो हरिकथा) #6)

पहला प्रश्न: भगवान, निरुक्त में यह श्लोक आता है:
मनुष्या वा ऋषिसूत्क्रामत्सु
देवानब्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति।
तेभ्य एतं तर्कमूषिं प्रायच्छन।।
(इस लोक से जब ऋषिजन जाने लगे, जब उनकी परंपरा समाप्त होने लगी तब मनुष्यों ने देवताओं से कहा कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होगा? उस अवस्था में देवताओं ने तर्क को ही ऋषि-रूप में उनको दिया। अर्थात देवताओं ने मनुष्यों से कहा कि आगे को तर्क को ही ऋषि-स्थानीय समझो।)
भगवान, हमें निरुक्त के इस वचन का अभिप्राय समझाने की कृपा करें।

सहजानंद!
पहली बात; ऋषि कभी गए नहीं; जा सकते नहीं। जैसे रात हो, तो आकाश में तारे होंगे; जैसे पृथ्वी हो, तो कहीं न कहीं फूल खिलेंगे; ऐसे ही मनुष्य-चेतना मौजूद हो, तो ऋषि विलुप्त नहीं हो सकते। कहीं न कहीं कोई झरना फूटेगा; कोई गीत उठेगा; कोई बांसुरी बजेगी।
मनुष्य इतना बांझ नहीं है कि ऋषियों की परंपरा समाप्त हो जाए! कभी समाप्त नहीं हुई। लेकिन निरुक्त जिन्होंने लिखा है, वे ऋषि नहीं हैं। वे भाषाशास्त्री हैं। व्याकरण के जानकार हैं। उनकी निष्ठा तर्क में है--उनकी निष्ठा काव्य में नहीं है। उनकी निष्ठा विचार में है--उनकी निष्ठा ध्यान में नहीं है। और अपनी निष्ठा को लोग हजार तरकीबों से प्रतिपादित करते हैं, चालाकियों से प्रतिपादित करते हैं।
निरुक्त कोई धर्म-शास्त्र नहीं है। वह तो भाषा का विज्ञान है। और भाषा का विज्ञान तो तर्क पर ही आधारित होगा। वह तो गणित है। व्याकरण गणित है। और इसलिए गणितज्ञ नहीं चाहेगा कि ऋषि हों। गणितज्ञ के लिए सबसे बड़ा खतरा ऋषियों से है।
गणितज्ञ तो चाहेगा कि तर्क परम हो--तर्क ही ऋषि हो। यह नहीं हो सकता। तर्क कैसे ऋषि हो सकता है?
तर्क का अर्थ क्या होता है? तर्क का अर्थ होता है: मनुष्य के सोचने- विचारने की प्रक्रिया। लेकिन क्या सत्य को सोचने-विचारने से जाना गया है कभी? जिसे तुम नहीं जानते हो, उसे सोचोगे कैसे, विचारोगे कैसे? सोच-विचार तो ज्ञात की परिधि में ही परिभ्रमण करते हैं। और सत्य तो अज्ञात है। अज्ञात ही नहीं--अज्ञेय भी।
विज्ञान समस्त अस्तित्व को दो हिस्सों में बांटता है--धर्म तीन हिस्सों में। विज्ञान कहता है, जगत दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है, और कोई कोटि नहीं है। एक ज्ञात और एक अज्ञात। जो आज ज्ञात है, वह कल अज्ञात था; और जो आज अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जाएगा। अज्ञात की सीमा रोज सिकुड़ती जा रही है। और ज्ञात की सीमा रोज बढ़ती जा रही है। इसी को विज्ञान विकास कहता है। जिस दिन अज्ञात शून्य हो जाएगा, बचेगा ही नहीं, सभी कुछ ज्ञात हो जाएगा--उस दिन विज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाएगा, उस दिन विज्ञान गौरीशंकर का शिखर होगा।
लेकिन धर्म कहता है, एक और भी तीसरी श्रेणी है--अज्ञेय--जिसे तुम लाख जानो, तो भी अनजाना रह जाता है। जानते जाओ, जानते जाओ, फिर भी जानने को शेष बना ही रहता है। ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिसके तुम दावेदार बन सको कि मैंने जान लिया। उस अज्ञेय को ही ईश्वर कहा है। इसलिए उसे कभी भी जाना नहीं जा सकेगा। जानने वाले होते रहेंगे, उसका स्वाद लेने वाले होते रहेंगे, उसके गीत गाने वाले होते रहेंगे; जिसके हाथ भी उसकी बूंद पड़ जाएगी, वही स्वर्णिम हो उठेगा। जिसके हाथ में एक स्वर लग जाएगा, वही ऋषि हो जाएगा। लेकिन सागर को छू लेना, सागर को पा लेना नहीं है। सागर में डुबकी भी मार ली,

तो भी सागर को पा लेना नहीं है। सागर में लीन भी हो गए, तो भी सागर विराट है। हम तो बूंदें हैं।
जान कर भी--जान-जान कर भी, फिर भी जो जानने को शेष रह जाता है, वही धर्म
का रहस्यवाद है। और ध्यान रखना: विज्ञान की विभाजन प्रक्रिया खतरनाक है। उसका अर्थ है कि एक दिन सब जान लिया जाएगा। फिर क्या करोगे? फिर तो आत्मघात के अतिरिक्त कुछ भी न बचेगा। इसलिए मनुष्य जाति जितनी जानकार होती जाती है, उतनी ही आत्महत्याएं बढ़ती जाती हैं। जितना सुशिक्षित देश होता है, उतनी ज्यादा आत्महत्याएं! जितना सुसंस्कृत देश समझा जाता है, उतना ही आत्मघाती! क्यों? क्योंकि जीवन में फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता। जब कुछ जानने को ही नहीं बचता, सब जान लिया--पहचान लिया, तो अब कल जी कर क्या करना है? किसलिए जीना है? क्यों जीना है? फिर यही पुनरुक्ति करनी होगी? फिर जीवन को इसी वर्तुल में घुमाना होगा। और उसी-उसी की पुनरुक्ति ही तो ऊब पैदा करती है।
सोरेन कीर्केगार्ड ने, जो पश्चिम के महानतम, महततम प्रतिभाशाली लोगों में एक हुआ--उसने कहा है कि मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या ऊब है, बोर्डम है। क्यों? इसीलिए मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या ऊब है, कि जो जान लिया, उससे ही ऊब पैदा हो जाती है। पति पत्नियों से ऊबे हुई हैं, पत्नियां पतियों से ऊबी हुई हैं! क्यों? जान लिया। अब जानने को कुछ बचा नहीं। पहचान ली एक दूसरे की भूगोल, झांक लिया एक दूसरे के इतिहास में, सब परिचित हो गया। अब फिर वही- वही है।
क्यों लोग एक धर्म से दूसरे धर्म में प्रविष्ट हो जाते हैं? क्यों हिंदू ईसाई बन जाते हैं? क्यों ईसाई हिंदू बन जाते हैं? ऊब गए पढ़-पढ़ कर गीता, दोहरा-दोहरा कर गीता--बाइबिल थोड़ी नई लगती है! बाइबिल से ऊब गए--गीता थोड़ी नई लगती है। लोग बदलते रहते हैं!
मन हमेशा बदलाहट की मांग करता है। मकान बदल लो; काम बदल लो; पत्नी बदल लो; कपड़े बदल लो; फैशन बदल लो। बदलते रहो, ताकि ऊब न पकड़ ले। न बदलो, तो ऊब पकड़ती है। लेकिन ये सब बदलाहटें ऊब को मिटा नहीं पातीं, ढांक भला देती हों।
धर्म की एकमात्र कीमिया है, जिससे ऊब सदा के लिए समाप्त हो जाती है। किसी ने बुद्ध को ऊबा नहीं देखा! किसी ने महावीर के चेहरे पर ऊब नहीं देखी, उदासी नहीं देखी, हारापन नहीं देखा, थकापन नहीं देखा।
तुम्हारे तथाकथित धार्मिक धार्मिक नहीं हैं। उनके लिए तो धर्म भी एक
ऊब है। इसलिए तुम मंदिरों में, धर्म-सभाओं में लोगों को सोते देखोगे। क्या है वहां जानने को? रामलीला लोग देखने जाते हैं, तो सोते हैं। रामलीला तो पता ही है! सब वही-वही बार-बार देख चुके हैं।
एक स्कूल में ऐसा हुआ...। गांव में रामलीला चल रही थी। सारे बच्चे रामलीला देखने जाते थे। अध्यापक उनको दिखाने ले जाता था। धर्म की शिक्षा हो रही थी। और तभी स्कूल का इंस्पेक्टर जांच करने आ गया। अध्यापक ने सोचा कि अभी सब बच्चे रामलीला देख रहे हैं, ऐसे अवसर पर अगर यह रामलीला के संबंध में ही कुछ प्रश्न पूछ ले, तो अच्छा होगा।
इंस्पेक्टर ने पूछा कि किस संबंध में बच्चों से पूछूं? उसने कहा कि अभी ये रोज रामलीला देखते हैं; मैं भी देखने जाता हूं; इनको दिखाने ले जाता हूं। अभी रामलीला के ही संबंध में कुछ पूछ लें।
तो इंस्पेक्टर ने कहा, यही ठीक। तो उसने पूछा कि बताओ बच्चो, शिवजी का धनुष किसने तोड़ा?
एक लड़का एकदम से हाथ हिलाने लगा ऊपर उठाकर। शिक्षक भी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि वह एक नंबर का गधा था! इसने कभी हाथ हिलाया ही नहीं था जिंदगी में! यह पहला ही मौका था। शिक्षक भी चौंका। मगर अब क्या कर सकता था। कहीं यह भद्द न खुलवा दे और!
अध्यापक तो चुपचाप रहा। इंस्पेक्टर ने कहा, हां बेटा, बोलो। किसने शिवजी का धनुष तोड़ा--तुम्हें मालूम है?
उसने कहा कि मुझे मालूम नहीं कि किसने तोड़ा। मैं तो इसलिए सबसे पहले हाथ हिला रहा हूं कि पहले आपको बता दूं कि मैंने नहीं तोड़ा! नहीं तो कोई भी

चीज टूटती है कहीं--घर में कि बाहर, कि स्कूल में--मैं ही फंसता हूं। अब यह पता नहीं, किसने तोड़ा है!
इंस्पेक्टर तो अवाक रहा कि यह कैसी रामलीला देखी जा रही है! इसके पहले
कि वह कुछ बोले, सम्हले कि शिक्षक बोला कि इंस्पेक्टर साहब, इसकी बातों में मत आना। इसी हरामजादे ने तोड़ा होगा! यह सामने देख रहे हैं आप गुलमोहर का झाड़, इसकी डाल इसी ने तोड़ी। यह खिड़की देख रहे हैं, कांच टूटा हुआ--इसी ने तोड़ा! यह मेरी कुर्सी का हत्था देख रहे हैं--इसी ने तोड़ा। यह देखने में भोला-भाला लगता है; शैतान है शैतान! मैं तो कसम खाकर कह सकता हूं कि मैं इसकी नस-नस पहचानता हूं। इसी हरामजादे ने तोड़ा है!
इंस्पेक्टर तो बिलकुल भौंचक्का रह गया कि अब करना क्या है! अब कहने को
भी कुछ नहीं बचा।
और, शिक्षक ने कहा, आप अगर मेरी न मानते हों, तो और लड़कों से पूछ लो?
लड़कों ने कहा कि जो गुरुजी कह रहे हैं, ठीक कह रहे हैं!
एक लड़के ने अपनी टांग बताई कि यह जो पलस्तर बंधा है; इसी ने मेरी टांग तोड़ी! शिवजी का धनुष अगर कोई तोड़ सकता है, तो यही लड़का है। यह जो चीज न तोड़ दे...!
इंस्पेक्टर तो वहां से भागा। प्रधान अध्यापक से जा कर उसने कहा कि यह क्या माजरा है?
लेकिन प्रधान अध्यापक बोला कि अब आप ज्यादा खयाल न करें। अरे, ये तो लड़के हैं, चीजें तोड़ते ही रहते हैं! लड़के ही ठहरे। आप इतने व्यथित न हों। अब यह तो स्कूल है। हजार लड़के पढ़ते हैं! अब तोड़ दिया होगा किसी ने शिवजी का धनुष। और जरूरत भी क्या है शिवजी के धनुष की! अरे टूट गया--तो टूट गया! भाड़ में जाए शिवजी का धनुष। आप क्यों चिंता कर रहे हैं!
उसकी तो सांसें रुकने लगीं इंस्पेक्टर की कि क्या रामलीला हो रही है गांव में! और सारा स्कूल जा रहा है। अध्यापक, प्रधान अध्यापक--सब रामलीला देखने जा रहे हैं! वह वहां से भागा, सीधा म्युनिसिपल कमेटी के दफ्तर में पहुंचा, जिसका कि स्कूल था। और उसने कहा कि मैं शिक्षा समिति का जो अध्यक्ष है, उससे मिलना चाहता हूं। उसने कहा कि उसको कहूं कि यह क्या माजरा--यह क्या शिक्षा हो रही है!
मगर इसके पहले...वह पूरी बात कर भी नहीं पाया था...उसने कहा कि आप फिक्र
न करो। अरे, जुड़वा देंगे। टूट गया, तो जुड़वा देंगे! ऐसा कौन करोड़ों का दिवाला निकल गया है! अब यह तो टूटती फूटती रहती हैं चीजें; जुड़ती रहती हैं! और हम किसलिए बैठे हैं? कहां है धनुष? एक बढ़ई को तो हमें लगाए ही रखना पड़ता है। स्कूल में कहीं कुर्सी टूटी, कहीं टेबल टूटी, कहीं कुछ टूटा, कहीं कुछ टूटा। जोड़ देगा धनुष को! इसमें इतने क्यों आप पसीना-पसीना हो रहे हैं! रामलीला सब देख रहे हैं! मगर यह बात, यह कहावत सच है कि लोग रात भर रामलीला देखते हैं और सुबह पूछते हैं कि सीतामैया रामजी की कौन थीं! क्योंकि देखता कौन है? लोग सोते हैं। इतनी बार देख चुके हैं कि अब ऊब पैदा हो गई है। कोई नई घटना घट जाए, तो भला देख लें।
जैसे एक रामलीला में यह हुआ कि हनुमानजी गए तो थे लंका जलाने, अयोध्या
को जला दिया! तो सारी सभा आंख खोलकर बैठ गई! लोग खड़े हो गए! कि भैया, क्या हो रहा है?
रामजी भी बोले कि अरे हनुमानजी, तुम बंदर के बंदर ही रहे! तुमसे किसने कहा, अयोध्या जलाने को?
हनुमानजी भी गुस्से में आ गए! उन्होंने कहा कि तुम भी समझ लो साफ कि मुझे दूसरी रामलीला में ज्यादा तनख्वाह पर नौकरी मिल रही है! मैं कुछ डरता नहीं। जला दी। कर लो, जो कुछ करना हो! बहुत दिन जला चुका लंका। बार-बार लंका ही लंका जलाओ! मैं भी ऊब गया। कर ले जिसको जो कुछ करना है!
वह था गांव का पहलवान, उसको कोई क्या करे! रामजी तो छोटे-से लड़के थे। उसने कहा, वह धौल दूंगा एक कि छठी का दूध याद आ जाएगा! है कोई माई का लाल, जो मुझे रोक ले! जला दिया अयोध्या--कर ले कोई कुछ!
बामुश्किल परदा गिरा कर, समझा-बुझा कर उसको कहा कि भैया, अब तू घर जा। तुझे दूसरी रामलीला में जगह मिल गई है, वहां काम कर!

उस रात गांव में जरा चर्चा रही! लोगों ने आंख खोलकर देखा। नहीं तो किसको पड़ी है--अब लंका जलती ही रहती है!
आदमी का मन नए की तलाश करता है। विज्ञान के हिसाब से तो नया बहुत दिन बचेगा नहीं। कब तक नया बचेगा! इसलिए विज्ञान उबा ही देगा। इसलिए पश्चिम में जितनी ऊब है, पूरब में नहीं है। क्योंकि पूरब विज्ञान में पिछड़ा हुआ है। पश्चिम में जैसी उदासी छाई जा रही है, लोगों को जीवन का अर्थ नहीं दिखाई पड़ रहा है। सब अर्थ खो गए हैं। वैसा पूरब में नहीं हुआ है अभी। लेकिन होगा--आज नहीं कल। पूरब जरा घसिटता है, धीरे-धीरे घसिटता है; पहुंचता वहीं है, जहां पश्चिम। मगर वे जरा तेज गति से जाते हैं; ये बैलगाड़ी में चलते हैं! पहुंच रहे हैं वहीं। हम भी विज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं।
मैं कोई विज्ञान के विरोध में नहीं हूं। मैं चाहता हूं, विज्ञान की शिक्षा होनी चाहिए। लेकिन यह भ्रांति होगी कि विज्ञान धर्म का स्थान भरने लगे।
धर्म की तीसरी कोटि तो हमारे खयाल में बनी ही रहनी चाहिए कि कुछ है, जो रहस्यमय है। और कुछ है जो ऐसा रहस्यमय है कि हम जान-जान कर भी न जान पाएंगे। जान लेंगे, और कह न पाएंगे। पहचान लेंगे, और बता न पाएंगे। जानेंगे, कि गूंगे हो जाएंगे--गूंगे का गुड़ हो जाएगा! स्वाद तो आ जाएगा, मगर बोल भी न सकेंगे! जो बोलेंगे--सो गलत होगा।
लाओत्सू ने कहा है, मत पूछो मुझसे सत्य की बात। क्योंकि सत्य के संबंध में कुछ भी कहो, कहते से ही गलत हो जाता है; असत्य हो जाता है। क्योंकि सत्य इतना विराट है! और शब्द इतने छोटे हैं!
निरुक्त कोई धर्म की अनुभूति पर आधारित शास्त्र नहीं है। वह तो भाषा, व्याकरण--उनका गणित है। निश्चित ही गणित तर्क का ही विस्तार होता है। इसलिए इस परोक्ष कथा से निरुक्त यह कह रहा है कि अब ऋषियों की कोई जरूरत नहीं है। जा चुके दि!
मगर भारतीयों के कहने के ढंग भी बेईमान होते हैं! सीधी बात भी न कहेंगे। नाहक देवताओं को घसीट लाए! यहां कोई सीधी बात कहता ही नहीं! यहां सीधी बात कहो, तो लोगों को जहर जैसी लगती है। यहां तो गोल, घुमा-फिरा कर कहो कि किसी को पता ही नहीं चले--क्या कह रहे हो! और पता भी चल जाए, तो उसके कई अर्थ किए जा सकें!
अब देवताओं की कोई जरूरत नहीं है इसमें। और देवताओं को क्या खाक पता है! कोई देवता ऋषियों से ऊपर है? देवता ऋषियों से ऊपर नहीं हैं। ऋषि से ऊपर तो कोई भी नहीं है।
हमारा देश अकेला देश है इस अर्थ में, जिसके पास कवि के लिए दो शब्द हैं: एक कवि और एक ऋषि। दुनिया की किसी भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं है। क्योंकि कविता का दूसरा रूप ही किसी भाषा में नहीं निखरा। वह बात ही नहीं उतरी पृथ्वी पर। इसलिए एक ही शब्द है--कविता या कवि। ऋषा और ऋषि--बड़ी और बात है! उस भेद को खयाल में लो, तो समझ में बहुत कुछ आ सकेगा।
कवि हम उसे कहते हैं, जिसे कभी-कभी झरोखा खुल जाता--सत्य की थोड़ी-सी झलक मिल जाती--एक किरण। आंख में एक ज्योति जगमगा जाती और तिरोहित हो जाती। फिर गहन अंधेरा हो जाता है। कवि को पता भी नहीं है, यह क्यों होता है, कैसे होता है! यह उसके हाथ के, बस की बात भी नहीं है कि वह जब चाहे, तब हो जाए। यूं अगर कोई कविता लिखने बैठते, तो तुकबंदी होगी--कविता नहीं होगी।
तुकबंदी कोई भी कर सकता है। और इधर तो नई कविता चली है, उसमें तुकबंदी
की भी जरूरत नहीं है! इसलिए कोई भी मूढ़ कवि हो जाता है! अब तो कवि होने में भी अड़चन न रही--ऋषि होना तो दूर की बात है। अब तो कवि होने में भी अड़चन नहीं है। अतुकांत कविता! अब तो तुम भी नहीं बिठानी पड़ती! अब तो कुछ भी उलटा-सीधा जोड़ो! कविता बनाने में कोई अड़चन नहीं है। इसलिए इतने कवि हैं! गांव-गांव मोहल्ले-मोहल्ले इतने कवि-सम्मेलन होते हैं! सुनने वाले नहीं मिले! और सुनने वाले भी क्या आते हैं! सब गांव के सड़े टमाटर, अंडे, केलों के छिलके-- सब ले आते हैं, क्योंकि कवियों का स्वागत करना पड़ता है!
असल में जिस गांव में कवि-सम्मेलन होता है, कवि पहले जाते हैं सब्जी- मंडी में और सब खरीद लेते हैं! ताकि फेंकने को कुछ बचे ही नहीं! और जनता केवल एक काम करती है--हूट करने का!

कविताओं में है भी क्या अब! कविता भी नहीं है उसमें। ऋचाओं की तो बात
ही बहुत दूर हो गई!
कवि उसको हम कहते थे, जिसके जीवन में अनायास, बिना किसी साधना के, पता नहीं क्यों, एक रहस्य की भांति, कभी-कभी किसी रंध्र से कोई किरण प्रवेश कर जाती है। और वह किरण को बांध लेता है शब्दों में। किरण को धुन दे देता है। किरण को गीत बना लेता है।
कूलरिज मरा, अंग्रेज महाकवि, तो कहते हैं, चालीस हजार कविताएं उसके घर में अधूरी मिलीं। सारा घर अधूरी कविताओं से भरा था। और उसके मित्र जानते थे, और वे मित्र उससे कहते थे कि इनको पूरा क्यों नहीं करते!
लेकिन कूलरिज ईमानदार कवि था। वह कहता, मैं कैसे पूरा करूं! कोई कविता उतरती है, कुछ पंक्तियां उतरती हैं, फिर नहीं उतरती आगे, तो मैं अपनी तरफ से नहीं जोडूंगा। कविता जब उतरेगी--उतरेगी। जब आएगी, तब आएगी। जितनी आ गई, उतनी मैंने लिख दी। अब प्रतीक्षा करूंगा। क्योंकि जब भी मैंने जोड़ा है, तभी मैंने पाया कि कविता खो जाती है। वह जो रहस्य होता है, रस होता है, सूख जाता है। मेरे द्वार जोड़ा गया अलग दिखाई पड़ता है।
ऐसा रवींद्रनाथ के जीवन में हुआ। जब उन्होंने गीतांजलि अंग्रेजी में अनुवादित की, तो उन्हें थोड़ा-सा संदेह था कि पता नहीं अंग्रेजी में बात पहुंच पाई या नहीं, जो बंगला में थी! तो सी.एफ.एंडरूज को अपनी अंग्रेजी अनुवाद की गीतांजलि दिखाई। एंडरूज ने कहा कि और तो सब ठीक है, चार जगह भाषा की भूलें हैं। ये सुधार लें।
जो एंडरूज ने सुझाया, वह रवींद्रनाथ ने बदल दिया। स्वभावतः वह उनकी मातृभाषा नहीं थी अंग्रेजी। और एंडरूज विद्वान पुरुष थे; भाषा पर उनका अधिकार था। जो कह रहे थे, ठीक कह रहे थे। रवींद्रनाथ को यह बात जंची।
फिर जब उन्होंने योरोप में पहली दफा कवियों की एक छोटी-सी गोष्ठी में जाकर गीतांजलि का अनुवाद सुनाया, तो वे बड़े हैरान हुए। भरोसा न आया। एक युवक कवि खड़ा हुआ, यीट्स उसका नाम था, और उसने कहा कि कविता बड़ी मधुर है। अदभुत है। नोबल पुरस्कार इस पर मिलेगा आज नहीं कल। यीट्स ने यह मिलने के पहले कह दिया था। भविष्यवाणी कर दी थी कि इस सदी में अंग्रेजी में कोई इतना अदभुत काव्य नहीं लिखा गया है। लेकिन चार जगह भूल है।
रवींद्रनाथ ने कहा, कौन-सी चार जगह? सुधार लेता हूं।
हैरान हुए वे तो। वे ही चार जगह थीं, जहां सी.एफ.एंडरूज ने सुधार करवाया था। रवींद्रनाथ ने कहा, आप क्या कह रहे हैं! ये तो वे जगहें हैं, जहां मैंने भूल की थीं और सी.एफ. एंडरूज ने सुधार करवा दिया है!
यीटस ने पूछा कि आप बताइए, आपने क्या शब्द पहले रखे थे! रवींद्रनाथ ने अपने पुराने शब्द बताए। उनको ही काट कर तो उन्होंने नए शब्द लिख दिए थे। यीटस ने कहा कि आपके शब्द भाषा की दृष्टि से गलत हैं, लेकिन काव्य की दृष्टि से सही हैं। वे चलेंगे। एंडरूज के शब्द भाषा की दृष्टि से सही हैं, लेकिन काव्य की दृष्टि से गलत हैं। वे नहीं चलेंगे। वे पत्थर की तरह पड़े हैं। उनमें आपकी जो सतत धारा है काव्य की, विच्छिन्न हो गई, टूट गई। वे दीवाल की तरह अड़ गए हैं।
एंडरूज ने भाषा की दृष्टि से बिलकुल ठीक कहा है, लेकिन कविता भाषा थोड़े ही है। भाषा से कुछ ऊपर है। जो भाषा में आ जाता है, उसे तो हम गद्य में लिख देते हैं। जो भाषा में नहीं आता, उसे पद्य में लिखते हैं। पद्य का अर्थ ही यही है कि गद्य में नहीं बंधता। गाना होगा, गुनगुनाना होगा। नृत्य देना होगा। तर्क के जाल को थोड़ा ढीला करना होगा। व्याकरण की उतनी चुस्ती नहीं रखनी होगी, जितनी गद्य पर होती है। इसलिए कवि को स्वतंत्रता होती है थोड़ी, शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की; शब्दों को नए अर्थ, नई भाव-भंगिमाएं देने की। नई मुद्राएं देने की। शब्दों को नया रस देने की।
यीटस ने कहा, आप अपने शब्द वापस रखें। आपके शब्द प्यारे हैं। वे उतरे हैं। इसलिए हमने वेदों को अपौरुषेय कहा है। अपौरुषेय का अर्थ है: हमने लिखा जरूर, मगर हम सिर्फ लिखने वाले थे, हम रचयिता न थे, लेखक थे। रचयिता तो परमात्मा था। वह बोला--हमने लिखा। वह गुनगुनाया--हमने भाषा में उतारा। हम तो केवल माध्यम थे, हम स्रष्टा न थे।

यह वेदों के अपौरुषेय होने की बात प्रीतिकर है। सारा काव्य अपौरुषेय होता है। आती है बात किसी अज्ञात लोक से, तुम्हारे प्राणों को थरथरा जाती है। वही थरथराहट जब तुम देने में समर्थ हो जाते हो भाषा को, तो कविता का जन्म होता है।
लेकिन काव्य आकस्मिक है। तुम उसके मालिक नहीं हो।
रवींद्रनाथ महीनों कविता नहीं लिखते थे। और कभी ऐसा होता था कि फिर दिनों लिखते रहते थे। तो द्वार-दरवाजे बंद कर देते थे। तीनत्तीन दिन तक खाना नहीं खाते थे, स्नान नहीं करते थे। क्योंकि कहीं धारा न टूट जाए। तो घर के लोगों को सूचना थी कि जब वे द्वार-दरवाजे बंद कर लें, तो कोई दस्तक भी न दे, कि धारा न टूट जाए। क्योंकि नाजुक मामला है! बड़े सूक्ष्म तंतुओं में उतरती है कविता, जैसे मकड़ी का जाला, जरा से धक्के में टूट जा सकता है। फिर लाख बनाओ, न बनेगा। कौन आदमी है, जो मकड़ी का जाला बना दे! कितना ही कुशल हो। तो रवींद्रनाथ भूखे-प्यासे, बिना नहाए-धोए...सोते नहीं थे, इस डर से कि पता नहीं, जो धारा बह रही है, वह कहीं रात खो न जाए! कहीं सपनों के कारण बाधा न आ जाए। लिखते ही रहते थे; लिखते ही जाते थे--पागल की तरह। हां, जब धारा अपने आप रुक जाती थी, तब वे रुकते थे। फिर लौट कर देखते थे कि क्या उतरा। फिर प्रत्यभिज्ञा करते थे कि यह उतरा, ऐसा उतरा।
सच्चा कवि सुधार नहीं करता। क्योंकि सुधार करने वाले तुम कौन हो! तुमसे जो आया ही नहीं, तुम उसमें कैसे सुधार करोगे? वह तो अपने हाथ परमात्मा के हाथ में छोड़ देता है, वह जो चाहे लिखवा ले। वह जो चाहे, बोला ले।
लेकिन इसके ऊपर भी एक काव्य का लोक है, जिसको हम ऋचा का लोक कहते हैं-- ऋषि का लोक। ऋषि वह है, जिसके जीवन में कविता आकस्मिक नहीं है। जिसके जीवन में कविता शैली हो गई। जिसका उठना काव्य है, जिसका बैठना काव्य है। जो बोले, तो काव्य; जो न बोले, तो काव्य। जिसके मौन में भी काव्य है। जिसके पास तुम बैठो, तो तुम्हारे हृदय की वीणा बजने लगे। जिसका हाथ तुम हाथ में ले लो, तो तुम्हारे भीतर ऊर्जा का एक प्रवाह हो जाए।
कविता पढ़ कर कवि से मिलने कभी मत जाना, क्योंकि अकसर यह होगा कि कविता
पढ़ कर तो तुम बहुत आह्लादित हो जाओगे; कवि से मिलकर बहुत उदास हो जाओगे! क्योंकि काव्य को पढ़कर तो ऐसा लगेगा कि किसी अपूर्व व्यक्ति से मिलने जा रहे हैं। और जब तुम कवि को मिलोगे, तो तुम बहुत हैरान होओगे। हो सकता है, तुमसे गया-बीता हो। बैठा हो किसी शराबघर में, शराब पी रहा हो। गालियां बक रहा हो। कि नाली में पड़ा हो। कि झगड़ा-झांसा कर रहा हो।
तुम कभी भूलकर भी कविता पढ़ कर कवि से मिलने मत जाना, नहीं तो कविता पर तुम्हें जो आनंद-भाव जगा था, वह मिट जाएगा। जैसे खलील जिब्रान की अगर तुमने किताबें पढ़ीं; खलील जिब्रान से मिलने मत जाना। क्योंकि जो भी खलील जिब्रान से मिले, उनको बहुत उदास हो जाना पड़ा। कहां खलील जिब्रान की किताब प्राफेट, जिसका एक-एक शब्द हीरों में तौला जाए; ऐसा है। लेकिन खलील जिब्रान से मिलोगे, तो वह साधारण आदमी है। वही क्रोध, वहीर् ईष्या, वही वैमनस्य, वही अहंकार, वही झगड़ा-फसाद, वही तिकड़म बाजियां, वही राजनीति--सब वही, जो तुममें है। और उससे भी गया-बीता!
ऐसा अकसर हो जाता है ना! रास्ते पर तुम जा रहे हो अंधेरे में। अंधेरे में चलते-चलते अंधेरे में भी थोड़ा दिखाई पड़ने लगता है। फिर पास से ही कोई कार गुजर जाए। तेज रोशनी तुम्हारी आंखों में भर जाए। एक क्षण को तुम तिलमिला जाते हो। कार तो गई। आई और गई। लेकिन एक हैरानी की बात पीछे अनुभव होती है कि कार के चले जाने के बाद अंधेरा, और अंधेरा हो गया! इतना अंधेरा पहले न था। अंधेरा तो वही है, मगर तुम्हारी आंखों ने रोशनी जो देख ली। अब तुम्हारी आंखों को फिर से इस अंधेरे को देखने में तुलना पैदा हो गई।
तो अकसर यह होता है: कवि उड़ान भरता है आकाश की, क्षण भर को। और फिर जब गिरता है, तो तुमसे भी नीचे के गङ्ढे में गिर जाता है! उसकी आंखों में चकाचौंध भर जाती है। इसलिए कवियों के जीवन बड़े साधारण होते हैं; बड़े क्षुद्र होते हैं।
मैं बहुत कवियों को जानता हूं। उनकी कविताएं प्यारी हैं। उनकी कविताओं के मैं कभी उल्लेख करता हूं, उद्धरण देता हूं। मगर उन कवियों के

नाम नहीं लेता। मुझसे कई दफे पूछा गया है कि मैं किसी कवि का जब उल्लेख करता हूं, तो नाम क्यों नहीं लेता? नाम इसलिए नहीं लेता, कि कविता ही तुम समझो, उतना ही अच्छा है। कवि को भूलो। कवि को बीच में न लाओ। क्योंकि वह कवि किसी क्षण में कवि था, फिर तो वह साधारण आदमी है। क्षण भर को उछला था। पंख लग गए थे। फिर क्षण भर बाद गिर पड़ा है। और जब गिरता है कोई उछल कर, तो हड्डी-पसली टूट जाती है। जब उछल कर कोई गिरता है, तो चारोंखाने चित्त गिरता है। तुम समतल भूमि पर चलते हो। कवि की जिंदगी कभी पहाड़ों पर, और कभी खाइयों में। वह समतल भूमि पर चलता ही नहीं।
ऋषि वह है, जिसने पहाड़ों पर ही चलने की कला सीख ली। जो एक शिखर से दूसरे शिखर पर पैर रखता है। जिसके लिए पहाड़ों की ऊंचाइयां ही अब समतल भूमि हो गई हैं।
कवि की कोई साधना नहीं होती। उसका कोई योग नहीं होता। उसका कोई ध्यान नहीं होता। कोई प्रार्थना नहीं होती। कोई पूजा नहीं, कोई अर्चना नहीं। वह तुम्हारे जैसा ही व्यक्ति है। पता नहीं किन पिछले जन्मों के पुण्य के कारण कभी झरोखे खुल जाते हैं। पता नहीं क्यों। उसे पता नहीं है कि क्यों द्वार खुल जाता है और अचानक सूरज झांक जाता है! पानी की बूंदें बरस जाती हैं। आकाश के तारे दिखाई पड़ जाते हैं। कैसे द्वार खुलता है, इसका भी उसे पता नहीं; कैसे द्वार बंद हो जाता है, इसका भी उसे पता नहीं। क्यों उसके जीवन में कभी काव्य का आकाश खुल जाता है और क्यों सब बंद हो जाता है--उसे कुछ भी पता नहीं है।
ऋषि के हाथ में चाबी है। वह जानकर द्वार खोलता है। उसे पता है--आकाश तक जाने का रास्ता। उसकी साधना है। उसने अपने को निखारा है। उसने आकाश और अपने बीच एक तालमेल बिठाया है। उसकी आत्मा और आकाश एक हो गए हैं। भीतर का आकाश बाहर के आकाश से मिल गया है। उसमें कोई भेद नहीं रह गया। अभेद हो गया है, अद्वैत हो गया है।
कवि में से तो कभी-कभी ईश्वर बोलता है; कभी-कभी। जब कवि बोलता है, तो सब साधारण होता है। और जब कभी अपने को मिला देता है, तो कचरा हो जाता है। उसकी श्रेष्ठ कविता में भी कचरा आ जाता है।
ऋषि में से ईश्वर नहीं बोलता; ऋषि ईश्वर के साथ एक हो गया है। ऋषि माध्यम नहीं है। कवि माध्यम है। ऋषि तो स्वयं ईश्वर है। वह भगवद-स्वरूप है।
इसलिए यह बात मैं मानने को राजी नहीं हूं कि ऐसा कोई दिन आया, जिस दिन ऋषिजन इस जगत से जाने लगे। अभी भी नहीं गए। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं। यह निरुक्त का श्लोक जब लिखा गया, उसके बाद कितने ऋषि हो चुके! बुद्ध हुए, महावीर हुए, गोरख हुए, कबीर हुए, नानक हुए, फरीद हुए, दादू हुए--यह तो भारत की बात हुई। भारत के बाहर भी हुए। जीसस हुए। मोहम्मद हुए! मोहम्मद से बड़ा कोई ऋषि हुआ! कुरान जैसी ऋचाएं उतरीं कहीं! कुरान की ऋचाओं का जो रस है, जो तरन्नुम है, उनकी जो गेयता है, वह किसी और शास्त्र की नहीं।
तुम कुरान न भी समझो, उसकी एक खूबी, लेकिन अगर कोई कुरान को गा कर तुम्हें सुना दे, तो तुम डोल जाओगे। अब शराब को कोई समझना थोड़े ही पड़ता है कि कैसे बनती है। पी ली--कि डोले। शराब का कोई अर्थ थोड़े ही जानता होता है। कि कैसे अंगूर से ढली! कि किस देश के अंगूर से ढली! पीओगे--और जान लोगे--ऐसी कुरान है।
कुरान को पढ़ना नहीं चाहिए। जो कुरान को पढ़ता है, वह चूक जाता है।
कुरान तो गाई ही जा सकती है। कुरान को पढ़ा कि मजा ही चला गया। उसका सारा राज गेय में है। कुरान शब्द का भी अर्थ होता है--गा। कुरान शब्द का भी अर्थ होता है--गा, गुनगुना।
मोहम्मद पर जब पहली दफा कुरान उतरी, तो मोहम्मद बहुत घबड़ा गए। क्योंकि आकाश से कोई वाणी जैसे गूंजने लगी कि गा--गुनगुना। उठ--क्या सोया पड़ा है। मोहम्मद ने कहा, न मैं पढ़ा हूं न मैं लिखा हूं! न मुझे शास्त्रों का कुछ पता है! (वे बे पढ़े-लिखे आदमी थे।) मैं क्या गुनगुनाऊं, मैं कैसे गाऊं? लेकिन आवाज आई, तू फिक्र छोड़े शास्त्रों की। शास्त्रों को जानने वाले
कब गुनगुना पाते हैं! कब गा पाते हैं! तू तो गा। अरे, पक्षी गाते हैं। कोयल गाती है। पपीहा गाता है। तू गा। तू गुनगुना। तू संकोच छोड़।

वे तो इतने घबड़ा गए कि घर आकर उन्होंने पत्नी से कहा कि मेरे ऊपर दुलाइयों पर दुलाइयां डाल दो। मुझे बुखार चढ़ा है! मेरे हाथ-पैर थरथरा रहे हैं। मुझे ठंड लग रही है। बहुत शीत लग रही है। मैं कंपा जा रहा हूं।
पत्नी ने कहा, क्या हुआ! तुम अभी-अभी ठीक गए थे!
जो शब्द मोहम्मद ने कहे, वे बड़े प्यारे हैं। अगर वे भारत में हुए होते,
तो उन्होंने एक शब्द नहीं कहा होता। लेकिन मजबूरी थी; वे भारत में नहीं पैदा हुए थे।
उन्होंने कहा कि मुझे लगता है, या तो मैं पागल हो गया--या कवि हो गया!
अगर भारत में पैदा होते, तो वे कहते, या तो मैं पागल हो गया--या ऋषि हो गया!
लेकिन क्या...। मजबूरी थी। अरबी में ऋषि के लिए कोई शब्द नहीं है। कवि
ही एकमात्र शब्द था। मगर तुम सुनो। उन्होंने कहा कि बस, दो में से कुछ एक बात हो गई है। या तो मैं पगला गया! मेरे भीतर ऐसी गूंज उठ रही है, जो कि मेरी है ही नहीं! जो मैंने कभी जानी नहीं; पहचानी नहीं। मेरी तैयारी नहीं! मगर झरनों पर झरने फूट रहे हैं! कोई मेरे प्राणों को धक्के दे रहा है। कह रहा है--गा--गुनगुना! गुनगुनाऊं! गाऊं! या तो मैं पागल हो गया--या कवि हो गया! मैं तुमसे कहता हूं, अगर वे भारत में यह पैदा होते, तो उन्होंने कहा होता, या तो मैं पागल हो गया--या ऋषि हो गया! क्योंकि उसके बाद गुनगुनाहट चलती रही, चलती रही। कुरान एक दिन में नहीं लिखी गई। वर्षों लगे। ऋचाएं उतरती रहीं। जिसको मुसलमान आयत कहते हैं, उसको ही हम ऋचा कहते हैं। ऋचाएं उतरती रहीं।
मोहम्मद ऋषि हैं।
तो कौन कहता है? लाख निरुक्त कहे, मैं मानने को राजी नहीं। निरुक्त लिखी गई, उसके बाद चीन में लाओत्सू हुआ। च्वांगत्सू हुआ, लीहत्जू हुआ! क्या अदभुत लोग हुए! जिनके एक-एक शब्द में स्वर्ग का राज्य समाया हुआ है। और तुम कहते हो, ऋषिजन जब जाने लगे...! कभी गए नहीं।
नानक को तो अभी पांच सौ साल ही हुए हैं। नानक के शब्द-शब्द में ऋचा है, गीत है। नानक तो गलत आदमियों के हाथों में पड़ गए; सैनिकों के हाथ में पड़ गए! संन्यासियों के हाथ में पड़ना था। कहां तलवारें चमकने लगीं! नानक के हाथ में कोई तलवार नहीं थी कभी।
नानक के साथ तो उनका एक शिष्य था--मरदाना--उनका साजिंदा था वह। उसके हाथ में तो एकतारा था। कहां नानक, कहां उनका साजिंदा मरदाना--कहां एकतारा-- और कहां आज का सिक्ख! कि जरा कुछ कह दो कि वह एकदम कृपाण निकालने को तैयार है! जरा में तलवारें चमकाने लगे!
नानक गाते फिरे। उनके शब्द गेय हैं। गाए गा सकते हैं। और बड़े प्यारे हैं। नानक के गाने के कारण एक नई भाषा पैदा हो गई। क्योंकि नानक जैसा व्यक्ति जब गाता है, तो वह किसी पुरानी भाषाओं के नियम थोड़े ही मानता है। गुरुमुखी पैदा हो गई।
गुरुमुखी शब्द तुम समझते हो--गुरु के मुख से जो निकली। भाषा का नाम भी गुरुमुखी!
शुद्ध हिंदी कठोर होती है। शुद्ध हिंदी में कोने होते हैं। पंजाबी में एक माधुर्य है, एक मिठास है। शुद्ध नहीं है पंजाबी; बिलकुल अशुद्ध है।
निरुक्त से पूछो, तो अशुद्ध है। लेकिन निरुक्त से पूछो क्यों? किसी ऋषि से पूछो, तो वह कहेगा, भाषा का क्या लेना-देना है? यह गायक की स्वतंत्रता है।
और यह हमेशा दुनिया में रही है।
महावीर संस्कृत में नहीं बोले, क्योंकि संस्कृत बड़ी व्याकरणबद्ध है।
और इतनी व्याकरण की सीमाएं हैं कि स्वतंत्रता बरतनी बड़ी मुश्किल है।
महावीर प्राकृत में बोले।
प्राकृत और संस्कृत शब्द भी बड़े विचारणीय हैं। प्राकृत का अर्थ होता है, जिसको सहज, साधारण लोग बोलते हैं। जो स्वाभाविक है। संस्कृत का अर्थ होता है: जिसमें स्वाभाविकता को काट-छांट कर संस्कार दे दिया गया। सुधार दे दिया गया; जिसको ढांचा दे दिया गया; जो प्राकृत आदमी की भाषा नहीं है। बुद्ध संस्कृत में नहीं बोले; पाली में बोले। पाली का अपना माधुर्य है।

नानक से एक नई भाषा का जन्म हो गया--गुरुमुखी। गाई--गुनगुनाई।
ये ऋषि तो पैदा होते रहे। निरुक्त गलत कहता है।
सहजानंद! मैं निरुक्त से राजी नहीं। तुम कहते हो कि यह सूत्र कहता है,
इस लोक से जब ऋषिगण जाने लगे...। कभी गए ही नहीं; कभी जाएंगे भी नहीं। जिस दिन इस लोक से ऋषिगण चले जाएंगे, यह लोक ही समाप्त हो जाएगा। फिर इस लोक में क्या नमक रह जाएगा? क्या स्वाद रह जाएगा? क्या मिठास रह जाएगी? इन थोड़े-से लोगों के बल से तो यहां सुगंध है। नहीं तो यहां कांटे ही कांटे हैं। कुछ थोड़े से फूलों के बल तो इस जिंदगी में थोड़ा सौंदर्य है।
नहीं, ऋषिगण कभी भी नहीं गए। संत फ्रांसिस, इकहार्ट--ये लोग दुनिया के कोने-कोने में होते रहे; कोई भारत का ठेका थोड़े ही है! कोई ब्राह्मण का ठेका थोड़े ही है! ये क्षत्रियों में हुए। महावीर और बुद्ध क्षत्रिय थे। ये वैश्यों में हुए; तुलाधर वैश्य की कथा है उपनिषदों में।
एक गुरु ने अपने शिष्य को तुलाधर वैश्य के पास ज्ञान लेने भेजा। शिष्य ने कहा आप ब्राह्मण हैं। आप महापंडित हैं और एक बनिए के पास मुझे भेज रहे हैं ज्ञान लेने?
तो उसके गुरु ने कहा, ज्ञान न तो ब्राह्मण को देखता है, न वैश्य को देखता है, न क्षत्रिय को देखता है। जिसकी पात्रता होती है, उसका पात्र अमृत से भर जाता है। तो तू तुलाधर के पास जा।
जाना पड़ा; गुरु ने कहा था शिष्य को। तो तुलाधर के पास बैठा। उसे कुछ समझ में न आया कि क्या इस आदमी में...! तुलाधर उसका नाम ही हो गया था कि दिन भर वह तराजू लेकर तौलता रहता, तौलता रहता! उसने पूछा कि तुम्हारा राज क्या है?
उसने कहा कि मैं डांडी नहीं मारता। इतना ही मेरा राज है। चोर नहीं हूं। समभाव से तौलता हूं। समता, समत्व, सम्यक्त्व। मेरे तराजू को देखो, और मुझसे पहचान लो। जैसा मेरा तराजू सधा हुआ होता है; जैसे मेरे तराजू का कांटा ठीक मध्य में खड़ा हुआ है, ऐसा मैं भी मध्य में खड़ा हूं। न मेरा तराजू धोखा दे रहा है, न मैं धोखा दे रहा हूं। धोखा छोड़ दिया। पाखंड छोड़ दिया। जैसा हूं, वैसा हूं। बस, जिस दिन से जैसा हूं, वैसा ही रह गया हूं, उसी दिन से न मालूम कहां-कहां से लोग आने लगे पूछने--सत्य का राज!
शूद्रों में भी हुए। सेना नाई हुआ। नाई था, लेकिन ऋषि तो कहना ही होगा उसे। रैदास चमार हुआ। चमार था, लेकिन ऋषि तो कहना ही होगा उसे। गोरा कुम्हार हुआ। उसके पास हजारों लोग दूर-दूर से आते थे पूछने जीवन का सत्य। और कुम्हार था, तो कुम्हार की भाषा में बोलता था। किसी ने पूछा कि गुरु करता क्या है? आखिर गुरु का कृत्य क्या है?
तो गोरा कुम्हार उस वक्त अपने चाक पर घड़े को बना रहा था। उसने कहा, गौर
से देख। एक हाथ मैं घड़े को भीतर से लगाए हुए हूं, और दूसरे हाथ से बाहर से चोटें मार रहा हूं। बस, इतना ही काम गुरु का है। एक हाथ से सम्हालता है शिष्य को, दूसरे हाथ से मारता है शिष्य को। ऐसा भी नहीं मारता कि घड़ा ही फूट जाए। कि सम्हाल ही न दे! और ऐसा भी नहीं सम्हलता कि घड़ा बन ही न पाए! इन दोनों के बीच शिष्य निर्मित होता है। गुरु मारता है; जी भर कर मारता है--और सम्हालता भी है। मार ही नहीं डालता। यूं मिटाता भी है--बनाता भी है। यूं मारता भी है, नया जीवन भी देता है।
कुम्हार है, कुम्हार की भाषा बोला है, लेकिन बात कह दी। और बात इस तरह
से कही कि शायद किसी ने कभी नहीं कही थी।
मैंने दुनिया के करीब-करीब सारे शास्त्र देखे हैं, लेकिन गुरु के कृत्य को जैसा गोरा कुम्हार ने समझा दिया, यूं सरलता से, यूं बात की बात में--ऐसा किसी ने नहीं समझाया। कि गुरु भीतर से तो सम्हालता है...। भीतर से सम्हालता है, और बाहर से मारता है। बाहर से काटता है, छांटता है। बाहर बड़ा कठोर--भीतर बड़ा कोमल! भीतर यूं कि क्या गुलाब की पंखुड़ी में कोमलता होगी! और बाहर यूं कठोर कि क्या तलवारों में धार होगी!
तो जो मिटने और बनने को राजी हो एक साथ, वही शिष्य है। और जो मिटाने और बनाने में कुशल हो, वही गुरु है।
ऋषि तो होते रहे। होते रहेंगे।

यह बात ही गलत है कि मनुष्यता वा ऋषिसूत्क्रामत्सु--कि इस लोक से जब ऋषिगण जाने लगे, जब उनकी परंपरा समाप्त होने लगी...।
पहली तो बात: ऋषियों की कोई परंपरा होती ही नहीं। ऋषियों की तो निजता होती है, परंपरा नहीं होती। प्रत्येक ऋषि अनूठा होता है, उसकी परंपरा हो ही नहीं सकती। कोई तुमने दूसरा बुद्ध होते देखा? और यूं न सोचना कि बुद्ध होने की कोशिश नहीं की गई है। पच्चीस सौ वर्षों में लाखों लोगों ने कोशिश की है बुद्ध होने की। ठीक बुद्ध जैसे कपड़े पहने हैं। बुद्ध जैसा आसन लगाया है। बुद्ध जैसी आंखें बंद की हैं। बुद्ध जैसे ध्यान में बैठे हैं। बुद्ध जैसा भोजन किया है। बुद्ध जैसे उठे हैं, बैठे हैं, चले हैं--सब किया है। मगर नकल नकल है। एक भी बुद्ध नहीं हो सका। नकल से कभी कोई बुद्ध हुआ है? बुद्ध की कोई परंपरा होती है?
कोई जीसस हुआ दूसरा? कोई महावीर हुआ दूसरा? कितने जैन मुनि हैं भारत में! कोई है एकाध माई का लाल जो कह सके कि मैं महावीर हूं? और न कह सका, तो क्यों चुल्लू भर पानी में नहीं डूब मरते! क्या कर रहे हो? क्या भाड़ झोंक रहे हो?
पच्चीस सौ साल में एक जैन मुनि की हिम्मत नहीं पड़ी कहने की कि मैं महावीर हूं! हिम्मत पड़ती भी कैसे! होते--तो हिम्मत पड़ती। और ऐसा नहीं है कि उन्होंने कुछ नकल करने में कमी की हो। जो-जो महावीर ने किया, वह-वह किया! अगर महावीर नग्न रहे, तो हजारों लोग नग्न रहे। शीत झेली, धूप झेली। मगर महावीर की नग्नता कुछ और थी; इनकी नग्नता कुछ और। नकल कभी भी असल नहीं हो सकती।
मेरे एक मित्र हैं...। जैन संन्यास की पांच सीढ़ियां होती हैं। महावीर
ने कोई सीढ़ियां पार नहीं कीं, खयाल रखना! महावीर तो महावीर हो गए। छलांग होती है महावीर की, जैन मुनि की सीढ़ियां होती हैं! बस, वहीं फर्क पड़ जाता है। महावीर ने तो एक दिन कपड़े छोड़ दिए। यूं थोड़े कि धीरे-धीरे अभ्यास किया! ये दस वर्ष से जैन मुनि हो गए थे। तो मैं पास से गुजर रहा था, कोई पांच-सात मील के फासले पर उनका ठहराव था, तो मैंने ड्राइवर को कहा कि ले चलो। एक पांच-सात मील का चक्कर लगा लें। दस साल से उन्हें देखा नहीं।
हम पहुंचे। मैंने खिड़की से देखा, जब उनके मकान के करीब पहुंच रहा था,
कि अंदर वे नग्न टहल रहे हैं! और जब मैंने दरवाजे पर दस्तक दी, तो वे एक तौलिया लपेट कर आ गए! मैंने उनसे पूछा कि खिड़की से मैंने देखा कि आप नग्न थे। अब यह तौलिया क्यों लपेट ली?
उन्होंने कहा, अभ्यास कर रहा हूं!
नग्न होने का अभ्यास।
मतलब, पहले कमरे में नग्न होंगे, यूं टहलेंगे। कभी कोई खिड़की से देख लेगा। ऐसे धीरे-धीरे संकोच मिटेगा। फिर धीरे-धीरे बाहर भी बैठने लगेंगे तख्त पर आ कर। फिर धीरे-धीरे बाजार में भी जाने लगेंगे। ऐसे आहिस्ता- आहिस्ता अभ्यास करते-करते, करते-करते एक दिन नग्न हो जाएंगे!
मैंने उनसे कहा कि जरूर अभ्यास करोगे, तो हो ही जाओगे। मगर सर्कस में भरती हो जाना फिर! क्योंकि अभ्यास से जो नग्नता आए, वह सर्कस में ले जाएगी। महावीर ने कब अभ्यास किया था--मुझे यह तो बताओ? महावीर ने नग्न होने का कब अभ्यास किया था, इसका कोई उल्लेख है?
बोले, नहीं।
तो, मैंने कहा, फिर फर्क समझो। महावीर की नग्नता एक छलांग थी। एक निर्दोष भाव था। एक बात समझ में आ गई कि छिपाने को क्या है! जैसा हूं--हूं। उघड़ गए। यह एक क्षण में घटने वाले क्रांति है। यह तुम दस साल से अभ्यास कर रहे हो!
लेकिन जैन मुनि ने पांच सीढ़ियां बना ली हैं। एक-एक सीढ़ी चलता है। पहली सीढ़ी का नाम ब्रह्मचर्य। तो उसमें तीन चादर रख सकता है या चार चादर रख सकता है। गणित है उसका। फिर दूसरी सीढ़ी आ जाती है, तो छुल्लक हो जाता है। फिर एक चादर कम हो जाती है। फिर तीसरी सीढ़ी आ जाती है, तो झलक हो जाता है! अभी बंबई में एक एलाचार्य आए हुए थे ना! और कहां उन्होंने अड्डा जमाया था! चौपाटी पर--जहां भेलाचार्य पहले से ही जमे हुए हैं! मैंने भी सोचा कि

ठीक है। एलाचार्य और भेलाचार्य में कोई फर्क है नहीं! कोई भेल बेच रहा है, कोई ऐल बेच रहा है! और चौपाटी पर चौपट लोग ही इकट्ठे होते हैं!
अभी बंबई का नाम बदलने की इतनी चर्चा चलती है न। इसका नाम चौपट नगरी
रख दो! क्या मुंबई, क्या बंबई, क्या बाम्बे! छोड़ो यह बकवास। चौपट नगरी अंधेर राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा! और चौपाटी को ही राजधानी बना दो! फिर इलक हो जाता है आदमी, तो फिर उसकी और कमी हो जाती है। फिर ऐसे बढ़ते- बढ़ते मुनि होता है। जब मुनि होता है, तब सब वस्त्र छोड़ कर नग्न।
यह अभ्यासजन्य नग्नता और एक बच्चे की नग्नता में तुम फर्क नहीं समझोगे! एक बच्चा भी नग्न होता है; वह अभ्यासजन्य नहीं होता। उसकी नग्नता में एक सरलता होती है, एक निर्दोषता होती है। उसे पता ही नहीं कि नग्न होने में कुछ खराबी है। उसे कुछ चिंता ही नहीं। उसे अभी इतनी चालबाजी नहीं। ऐसे ही एक दिन महावीर पुनः बालवत हो गए। फिर दो हजार, ढाई हजार साल बीत गए, कितने लोग नग्न होते रहे, मगर कोई महावीर नहीं! एक आदमी ने हिम्मत करके घोषणा की, वर्धा के एक स्वामी सत्य भक्त--उन्होंने घोषणा कि कि वे पच्चीसवें तीर्थंकर हैं! तो जैनियों ने उनका त्याग कर दिया फौरन। क्योंकि जैन शास्त्रों में चौबीस के अलावा पच्चीसवां तीर्थंकर हो ही नहीं सकता। एक महाकल्प में, एक सृष्टि में, सृष्टि और प्रलय के बीच में, अनंत काल बीतता है--उसमें सिर्फ चौबीस तीर्थंकर हो सकते हैं। पच्चीसवां हो नहीं सकता। महावीर के बाद उन्होंने चौबीसवें पर ठहरा दी बात। सभी धर्म यह कोशिश करते हैं।
सिक्खों ने दसवें गुरु के बाद बात ठहरा दी कि अब गुरु-ग्रंथ ही गुरु होगा। क्योंकि डर यह लगता है कि बाद में आने वाले लोग कुछ नई बातें न कह दें! कहीं ऐसा न हो जाए कि बदलाहट कर दें! तो रोक दो दरवाजा। ठहरा दो प्रवाह को।
जैनों ने चौबीसवें तीर्थंकर पर बात रोक दी। मुसलमानों ने मोहम्मद पर
ही बात रोक दी! ईसाइयों ने जीसस पर ही बात रोक दी; आगे नहीं बढ़ने दी!
मैं वर्धा गया हुआ था। जिनके घर में मेहमान था, वे बोले कि स्वामी सत्य भक्त को जैनियों ने तो निकाल बाहर कर दिया, कि उन्होंने अपने को पच्चीसवां तीर्थंकर कह दिया! लेकिन आपकी भी बेबूझ बातें हैं। शायद आप दोनों का मेल बैठ जाए! तो मुलाकात करवा दूं।
जरूर मुलाकात करवाइए। मेल तो शायद ही बैठे।
उन्होंने कहा, क्यों?
मैंने कहा कि जो आदमी अपने को पच्चीसवां बता रहा है, उन आदमियों को मैं कोई आदमी नहीं गिनता। मैं भी इसके खिलाफ हूं कि पच्चीसवां नहीं! उन्होंने कहा, अरे! मैं तो सोचता था कि आप क्रांतिकारी हैं!
मैंने कहा, उनको आने दो।
वे आए। कहने लगे कि आप भी कहते हैं कि कोई पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं हो सकता!
मैंने कहा, चौबीस ही नहीं हो सकते; पच्चीस की बात क्या उठा रहे हो! प्रत्येक तीर्थंकर एक ही होता है। उस जैसा दूसरा होता ही नहीं। और मैंने कहा, तुम भी हद गधेपन की बात कर रहे हो। अरे, जब घोषणा ही करनी हो, तो प्रथम होने की घोषणा करो। क्या पच्चीसवां! क्यू में खड़े हैं! कुछ अकल की बात करो। यहां भी क्यू लगाए हो! तुम्हें क्यू में खड़े होने की आदत हो गई! यह कोई बस है? कि सिनेमा की टिकिट बेचने वाली खिड़की है--कि खड़े हैं! चौबीस नंग-धड़ंग पहले खड़े हैं, पच्चीसवें तुम खड़े हो!
मैंने कहा, मुझे घोषणा करनी हो, तो मैं कहूंगा--प्रथम। और प्रथम भी क्या कहना, क्योंकि द्वितीय कोई हो नहीं सकता, इसलिए बकवास में ही क्यों पड़ना! मैं मैं हूं, तुम तुम हो। महावीर महावीर थे, और सुंदर थे। और मुझे उनसे प्रेम है। लेकिन मैं मैं हूं। और मुझे मुझसे कहीं ज्यादा प्रेम है, जितना किसी और महावीर से होगा। स्वभावतः मुझे मेरी निजता से प्रेम है। मैं पच्चीसवें नंबर पर अपने को क्यों रखूंगा?
किसी व्यक्ति को किसी नंबर पर होने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता...यही फर्क तुम समझने की कोशिश करो।

विज्ञान की परंपरा होती है। तुम चौंकोगे, जब मैं यह कहता हूं कि विज्ञान की परंपरा होती है, धर्म की परंपरा नहीं होती। विज्ञान बिना परंपरा के जिंदा ही नहीं रह सकता। उसका अतीत होता है। जैसे समझो तुम: अगर न्यूटन पैदा न हो, तो आइंस्टीन कभी पैदा नहीं हो सकता। न्यूटन के बिना आइंस्टीन के होने की कोई संभावना नहीं है। वह न्यूटन की ईंट चाहिए ही चाहिए। तभी आइंस्टीन पैदा हो सकता है। अगर न्यूटन को हटा लो, तो आइंस्टीन के लिए आधार ही नहीं मिलेगा खड़े होने का।
विज्ञान की परंपरा होती है। हर वैज्ञानिक विज्ञान में कुछ जोड़ता चला जाता है। लेकिन धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। बुद्ध हुए हों या न हुए हों, मैं फिर भी हो सकता हूं। क्योंकि बुद्ध के होने से क्या लेना-देना है! अगर बुद्ध के पहले कृष्ण न भी हुए होते, तो भी बुद्ध होते। क्योंकि कृष्ण से क्या लेना-देना? बुद्ध ने अपने को जाना। अपने को जानने में दूसरा कहीं आता नहीं! उसकी कोई अपरिहार्य नहीं है। आखिर जीसस को तो कृष्ण का कुछ भी पता नहीं था, फिर भी हो सके। और लाओत्सू को तो कुछ भी पता नहीं था कृष्ण का, फिर भी हो सके! बुद्ध को तो लाओत्सू का कोई पता नहीं था, फिर भी हो सके। जरथुस्त्र को तो कोई पता नहीं था पतंजलि का, फिर भी हो सका। न पतंजलि को जरथुस्त्र का कोई पता था।
विज्ञान में यह नहीं हो सकता। विज्ञान में पूरा अतीत पता होना चाहिए।
जो हो चुका है पहले, उसी की बुनियाद पर तुम आगे काम करोगे। विज्ञान में शृंखला होती है, परंपरा होती है, कड़ियां होती हैं। कड़ियों में कड़ियां जुड़ती चली जाती हैं। लेकिन धर्म में कोई परंपरा नहीं होती। धर्म में प्रत्येक व्यक्ति आणविक होता है। बुद्ध की निजता अपने में है। महावीर न हों तो, कृष्ण न हों तो--हों तो--कोई भेद नहीं पड़ता।
इसलिए धर्म की कोई परंपरा नहीं होती; ऋषियों की कोई परंपरा नहीं होती।
तुम कहते हो, जब उनकी परंपरा समाप्त होने लगी...। परंपरा ही नहीं होती,
तो समाप्त कैसे होगी! मैं इस निरुक्त के वचन के बिलकुल विपरीत हूं। मैं इसको कोई समर्थन नहीं दे सकता। क्योंकि यह ऋषि का वचन ही नहीं है।
लेकिन कुछ लोग ऐसे पागल हैं कि वे भाषा को और व्याकरण को सब कुछ समझते हैं!
जब स्वामी राम अमरीका से भारत वापस लौटे, तो उन्होंने सोचा...। इतना प्रेम उन्हें मिला था अमरीका में, कल्पनातीत--इतना समादर हुआ था! लोगों ने उनकी बातें ऐसे पी थीं कि जैसे अमृत के घूंट। तो सोचा कि अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में, नास्तिकों के बीच जब मेरी बातें का इतना मूल्य हुआ है, लोगों ने इस तरह पिया है, तो भारत में तो क्या नहीं होगा! तो उन्होंने सोचा, भारत चल कर काशी से ही काम शुरू करूं। स्वभावतः। कि काशी से ही शुरू करूं काम को। तो वे काशी ही पहुंचे। और काशी में जो पहला प्रवचन दिया उन्होंने, उसी में गड़बड़ खड़ी हो गई!
एक पंडित खड़ा हो गया। और उसने कहा, पहले रुकिए। (आधे ही प्रवचन में!) आपको संस्कृत आती है?
उनको संस्कृत नहीं आती थी। वे तो पंजाब में पैदा हुए, तो फारसी आती थी। उर्दू आती थी। पंजाबी आती थी। उनको संस्कृत नहीं आती थी। उन्होंने कहा, नहीं, मुझे संस्कृत नहीं आती है।
वह पंडित हंसा। उसके साथ और भी पंडित हंसे। हू-हल्लड़ हो गई। उस पंडित
ने कहा, पहले संस्कृत सीखो, फिर ब्रह्मज्ञान की बातें करना! अरे, जब संस्कृत ही नहीं आती, तो क्या खाक ब्रह्मज्ञान की बातें कर रहे हो! स्वामी राम को इतना सदमा पहुंचा--कल्पनातीत! उन्होंने कभी सोचा न था
कि यह दर्ुव्यवहार होगा! उन्होंने प्रवचन पूरा भी नहीं किया। उन्हें भारत में उत्सुकता ही खो गई। भारत में ही उत्सुकता नहीं खो गई, उन्हें भारत के पुराने संन्यास में तक उत्सुकता खो गई। तुम यह जानकर चकित होओगे, हालांकि यह बात आमतौर से कही नहीं जाती, कि स्वामी राम ने उसी दिन अपने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए। और वे गढ़वाल चले गए, हिमालय। और फिर कभी भारत में उतरे नहीं।

क्या जाना ऐसे मूढ़ों के पास! जिनका खयाल है कि संस्कृत आई हो, तो ब्रह्मज्ञान। तब जो जिन देशों में संस्कृत नहीं है, वहां ब्रह्मज्ञानी हुए ही नहीं! तो बुद्ध ब्रह्मज्ञानी नहीं! उनको भी संस्कृत नहीं आती थी! और जीसस तो कैसे होंगे! और जरथुस्त्र तो कैसे होंगे! इन बेचारों का तो कहां हिसाब लगेगा!
मैं तुमसे कहता हूं, भाषा से कुछ लेना-देना नहीं है। ब्रह्मज्ञान भाव
की बात है--भाषा की नहीं।
न तो ऋषियों की कोई परंपरा है; और न ऋषि कहीं चले गए हैं। तुम ऋषि हो सकते हो। मेरी उदघोषणा सुनो: तुम ऋषि हो सकते हो। तुम्हारे भीतर ऋषि होने का बीज उतना ही है, जितना किसी और ऋषि के भीतर रहा हो।
अपनी ऊर्जा को विकसित होने दो, मौका दो। अपनी ऊर्जा को ध्यान बनने दो, प्रार्थना बनने दो। बीज को फूटने दो, अंकुरित होने दो। तुममें भी फूल लगेंगे। तुममें भी ऋचाएं जगेंगी। तुम्हारे भीतर भी कोई एक दिन पुकारेगा कि गा, गुनगुना। तुमसे भी आयतें उठेंगी। तुमसे भी कुरान बहेगा।
मगर यह सूत्र चालबाजों का सूत्र है। वे कहते हैं, जब ऋषिजन जाने लगे, उनकी परंपरा समाप्त होने लगी, तब मनुष्यों ने देवताओं से कहा कि अब हमारे लिए कौन होगा? उस अवस्था में देवताओं ने तर्क को ही ऋषि-रूप में उनको दिया।
वह जो गणितज्ञ है, भाषा का हो या किसी और का, जिसके जीवन की शैली गणित है, तर्क उसका प्राण होता है। इसलिए उन्होंने कहा कि तर्क तुम्हारा ऋषि होगा।
अब इससे बेहूदी और कोई बात नहीं हो सकती। क्योंकि ऋषि का जन्म ही तर्कातीत है। जब तुम तर्क के पार जाते हो, तभी तुम्हारे जीवन में परमात्मा का अवतरण होता है। तर्क तो कभी भी धर्म का स्थान नहीं ले सका। तर्क तुम लाख करो, कुछ पा न सकोगे। तर्क तो बचकानी बात है।
और तर्क तो वेश्या जैसा होता है--क्या ऋषि होगा! तर्क का कोई ठिकाना है! तर्क तो पत्नी भी नहीं होता, वेश्या जैसा होता है। किसी के भी साथ हो ले।
मैं सागर विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। उस विश्वविद्यालय का निर्माण किया सर हरिसिंह गौर ने। वे भारत के बहुत बड़े वकील थे। बड़े तर्क-शास्त्री थे। और भारत में ही उनकी वकालत नहीं थी। वे तीन दफ्तर रखते थे। एक पेकिंग में, एक दिल्ली में, एक लंदन में। सारी दुनिया में उनकी वकालत की शोहरत थी।
मैंने उनसे एक दिन कहा कि आपकी वकालत की शोहरत कितनी ही हो, वकील और वेश्या को मैं बराबर मानता हूं!
उन्होंने कहा, क्या कहते हो!
वे गुस्से में आ गए। वे संस्थापक थे विश्वविद्यालय के। प्रथम उपकुलपति थे। और मैं तो सिर्फ एक विद्यार्थी था। मैंने कहा कि मैं फिर कहता हूं कि वकील वेश्या होता है! अगर वेश्याएं नर्क जाती हैं, तो वकील उनके आगे-आगे झंडा लिए जाएंगे! और तुम पक्के--झंडा ऊंचा रहे हमारा--उन्हीं लोगों में रहोगे।
उन्होंने कहा, तू बात कैसी करता है? तुझे यह भी सम्मान नहीं कि उपकुलपति से कैसे बोलना!
मैंने कहा, मैं वकील से बात कर रहा हूं, उपकुलपति कहां! मैं सर हरिसिंह गौर से बात कर रहा हूं।
वे कहने लगे, मैं मतलब नहीं समझा कि क्यों वकील को तू वेश्या के साथ गिनती करता है!
मैंने कहा, इसीलिए कि वकील को जो पैसा दे दे, उसके साथ। वह कहता है कि तुम्हीं जीत जाओगे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा अपने वकील के पास गया। उसने अपना सारा मामला समझाया। और वकील ने कहा कि बिलकुल मत घबड़ाओ। पांच हजार रुपए तुम्हारी फीस होगी। मामला खतरनाक है, मगर जीत निश्चित है।
उसने कहा, धन्यवाद। चलता हूं!
जाते कहां हो? फीस नहीं भरनी! काम नहीं मुझे देना!

उसने कहा कि जो मैंने वर्णन आपको दिया, यह मेरे विरोधी का वर्णन है। अगर उसकी जीत निश्चित है, तो लड़ना ही क्यों!
यह मुल्ला भी पहुंचा हुआ पुरुष है!
जब तुम कह रहे हो खुले आम कि इसमें जीत निश्चित ही है--यह तो मैं अपने विरोधी का पूरा का पूरा ब्यौरा बताया। अपना तो मैंने बताया ही नहीं! तो अब मेरी हार निश्चित ही है। अब पांच हजार और क्यों गंवाने! नमस्कार! तुम अपने घर भले, हम अपने घर भले!
वकील को भी चकमा दे गया। वकील ने भी सिर पर हाथ ठोंक लिया होगा। सोचा
ही नहीं होगा कि यह भी हालत होगी! वह तो अपना मामला बताता तो उसमें भी वकील कहता कि जीत निश्चित है। आखिर दोनों ही तरफ के वकील कहते हैं, जीत निश्चित है! वकील को कहना ही पड़ता है कि जीत निश्चित है। तभी तो तुम्हारी जेबें खाली करवा पाता है।
तो मैंने कहा वकील की कोई निष्ठा होती है? उसका सत्य से कोई लगाव होता है? तो मैं उसकी वेश्या में गिनती क्यों न करूं! वेश्या तो अपनी देह ही बेचती है। वकील अपनी बुद्धि बेचता है। यह और गया-बीता है।
उन्होंने मेरी बात सुनी। आंख बंद कर ली। थोड़ी देर चुप रहे और कहा कि शायद तुम्हारी बात ठीक है। मुझे अपनी एक घटना याद आ गई। तुम्हें सुनाता हूं।
प्रीव्ही काउन्सिल में एक मुकदमा था, जयपुर नरेश का। मैं उनका वकील था। करोड़ों का मामला था। जायदाद का मामला था, जमीन का मामला था। और तुम जानते हो कि मुझे शराब पीने की आदत है। रात ज्यादा पी गया। दूसरे दिन जब गया अदालत में, तो नशा मेरा बिलकुल टूटा नहीं था। कुछ न कुछ नशे की हवा बाकी रह गई थी। नशा कुछ झूलता रह गया था। सो मैं भूल गया कि मैं किसके पक्ष में हूं! सो मैं अपने मुवक्किल के खिलाफ बोल गया। और वह धुआंधार दो घंटे बोला! और मैं चौंकूं जरूर कि न्यायाधीश भी हैरान होकर सुन रहे हैं! मेरा मुवक्किल तो बिलकुल पीला पड़ गया है! और वह जो विरोधी है, वह भी चकित है! विरोधी का वकील भी एकदम ठंडा है, वह भी कुछ बोलता नहीं! और मेरा जो असिस्टेंट है, वह बार-बार मेरा कोट खींचे! मामला क्या है!
जब चाय पीने की बीच में छुट्टी मिली, तो मेरे असिस्टेंट ने कहा कि जान
ले ली आपने! आप अपने ही आदमी के खिलाफ बोल गए! बरबाद कर दिया केस! अब जीत मुश्किल है।
हरिसिंह ने कहा, क्या मामला है, तू मुझे ठीक से समझा। बात क्या है! मुझे थोड़ा नशा उतरा नहीं। रात ज्यादा पी गया एक पार्टी में। चल पड़ा सो चल पड़ा, ज्यादा पी गया।
तो उसने बताया कि मामला यह है कि जो-जो आप बोले हो, यह तो विपरीत पक्ष
को बोलना था! और वे भी इतनी कुशलता से नहीं बोल सकते, जिस कुशलता से आप बोले हो। इसलिए तो बेचारे वे खड़े थे चौंके हुए, कि अब हमें तो बोलने को कुछ बचा ही नहीं। और मुकदमा तो गया अपने हाथ से!
कहा, मत घबड़ाओ। हरिसिंह गौर ने कहा, मत घबड़ाओ। और जब चाय पीने के बाद फिर अदालत शुरू हुई, तो उन्होंने कहा कि न्यायाधीश महोदय! अब तक मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरे विरोधी वकील देने वाले होंगे। अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं!
और खंडन किया उन्होंने। और मुकदमा जीते!
तो वे मुझसे बोले कि शायद तुम ठीक कहते हो। यह काम भी वेश्या का ही है। तर्क वेश्या है। तर्क कैसे ऋषि होगा? तर्क तो किसी भी पक्ष में हो सकता है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं होती। वही तर्क तुम्हें आस्तिक बना सकता है; वही तर्क तुम्हें नास्तिक बना सकता है। इसलिए तो जो सच्चे धार्मिक हैं, उनकी आस्तिकता तर्क-निर्भर नहीं होती। तर्क पर जिसकी आस्तिकता टिकी है, वह आस्तिक होता ही नहीं। वह तो कभी भी नास्तिक हो सकता है। उसके तर्क को गिरा देना कोई कठिन काम नहीं है।
आस्तिक कहता है कि मैं ईश्वर को मानता हूं, क्योंकि दुनिया को कोई बनाने वाला चाहिए। और नास्तिक भी यही कहता है कि अगर यह सच है, तो हम पूछते हैं कि ईश्वर को किसने बनाया? तर्क तो दोनों के एक हैं। आस्तिक कहता है, ईश्वर बिना बनाया है। तो नास्तिक कहता है, जब ईश्वर बिना बनाया हो सकता है,

तो फिर सारी प्रकृति बिना बनाई क्यों नहीं हो सकती? क्या अड़चन है? और अगर कोई भी चीज बिना बनाई नहीं हो सकती, तो फिर ईश्वर को भी कोई बनाने वाला होना चाहिए। इसका जवाब दो।
अब यह तर्क तो एक ही है। अब कौन कितना कुशल है, कौन कितना होशियार है, किसने अपनी तर्क को कितनी धार दी है, इस पर निर्भर करता है। इसलिए आस्तिक नास्तिकों से बात करने में डरता है। तुम्हारे शास्त्रों में लिखा है: नास्तिकों की बात मत सुनना। सुनना ही मत। ये आस्तिकों के शास्त्र नहीं हैं। ये नपुंसकों के शास्त्र हैं। नास्तिक की बात मत सुनना? दूसरे धर्म वालों की बात मत सुनना! क्यों? क्योंकि डर है कि अपनी ही बात तर्क पर खड़ी है, और उसी तर्क के आधार पर गिराई भी जा सकती है।
जैन शास्त्रों में लिखा हुआ है कि अगर पागल हाथी भी तुम्हारा पीछा कर रहा हो, और खतरा हो कि तुम उसके पैर के नीचे दब कर मर जाओगे, और पास में ही हिंदू मंदिर हो, तो पैर के नीचे दबकर मर जाना पागल हाथी के, मगर हिंदू मंदिर में मत जाना, क्योंकि पता नहीं वहां कोई बात सुनाई पड़ जाए, जिससे तुम्हारे धर्म में श्रद्धा का अंत हो जाए! मर जाना बेहतर है अपने धर्म में रहते हुए, बजाय जीने के, धर्म रूपांतरित करके।
और यही बात हिंदू ग्रंथों में भी लिखी है, बिलकुल ऐसी की ऐसी! जरा भी फर्क नहीं! कि जैन मंदिर में प्रवेश मत करना, चाहे पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना। अरे, अपने धर्म में मर कर भी आदमी स्वर्ग पहुंचता है। स्व-धर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मरना तो श्रेयस्कर है। पर धर्मो भयावहः--दूसरे के धर्म से भयभीत रहना। मगर यही दूसरे भी कह रहे हैं! दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। प्रत्येक धर्म के खिलाफ दो सौ निन्यानबे धर्म हैं! अब तुम जरा सोचो, जिस धर्म के खिलाफ दो सौ निन्यानबे धर्म हों, उसमें क्या जान होगी! कितनी जान होगी! जान इसमें है कि कान बंद रखो! सुनो मत, बहरे रहो।
तुमने घंटाकर्ण की तो कहानी सुनी है न कि वह भक्त था राम का और कृष्ण
का नाम नहीं सुन सकता था! कृष्ण का नाम सुनकर उसको आग लग जाती थी। और स्वभावतः राम का भक्त कृष्ण का नाम कैसे सुने! कहां राम, मर्यादा पुरुषोत्तम! और कहां कृष्ण--न कोई मर्यादा, न कोई अनुशासन, न कोई साधना! कृष्ण से तो मेरी दोस्ती हो सकती है! किसी और की नहीं हो सकती। राम से मेरा नहीं बन सकता। एक ही कमरे में हम घंटे भर नहीं ठहर सकते दोनों! क्योंकि उनकी मर्यादा भंग होने लगेगी! और मैं तो अपने ढंग से जीऊंगा। कृष्ण के साथ जम सकती है बैठक।
तो घंटाकर्ण बहुत घबड़ाता था। उसका नाम ही घंटाकर्ण इसलिए पड़ गया था
कि उसने कानों में घंटे लटका लिए थे। वह घंटे बजाता रहता था। और राम-राम, राम-राम--घंटे; राम-राम, राम-राम--घंटे बजता रहता और राम-राम करता रहता! कि कोई दुष्ट कृष्ण का नाम न ले दे!
मेरे गांव में एक सज्जन थे, वे भी राम के भक्त थे, ऐसे ही घंटाकर्ण जैसे। नदी मेरे गांव से दूर नहीं है। जहां वे रहते थे, वहां से मुश्किल से पांच मिनट का रास्ता। मगर उसको पार करने में कभी उनको घंटा लगे, कभी दो घंटे लग जाएं! आधे नहाते में से बाहर निकल आएं वे, अगर कोई कृष्ण का नाम ले दे। चिढ़ते थे, बस इतना ही कह दो--हरे कृष्ण, हरे कृष्ण! दौड़े डंडा ले कर पीछे। मेरे पीछे वे इतना दौड़े हैं, इतनी कवायत मैंने उनकी करवाई और उन्होंने मेरी करवाई कि जब भी बाद में मैं कभी गांव जाता था, तो वे मुझसे कहते थे कि तुझे देखकर मुझे भरोसा ही नहीं आता कि तू कभी ढंग का आदमी भी हो सकता है! मुझ बूढ़े को तूने इतना दौड़वाया है!
खाना खा रहे हैं वे, मैं घर जाकर उनका दरवाजा बजा दूं--हरे कृष्ण! वे खाना छोड़ कर आ गए बाहर! और मुझे आनंद आता था। उनको गांव भर में दौड़ाना! और वे गालियां बक रहे हैं, और मैं हरे कृष्ण कह रहा हूं! वे गालियां बक रहे हैं। और मैं उनसे कहूं, तुम यह तो सोचो कि भक्त कौन है!
वे एकदम मां-बहन की गाली से नीचे नहीं उतरते थे! तो उनका धर्म भ्रष्ट
कर दिया! वे नदी में नहा रहे हैं, मैं पहुंच जाऊं--हरे कृष्ण! वे वैसे ही निकल आएं, कपड़ा-वपड़ा वहीं छोड़ दें। भागें मेरे पीछे!

मेरे पिता जी से आ-आ कर शिकायत करें। मुझे बुलाया जाए, कि तुमने क्यों परेशानी की? क्या बात है?
मैं पूछूं उनसे कि यह तो बताएं कि मैंने क्या कहा! वह तो कह ही नहीं सकते। हरे कृष्ण शब्द तो वे बोल ही नहीं सकते। तो वे गुमसुम खड़े रहें। मैं कहूं, बोलो जी! कहा क्या मैंने, जिससे आपको तकलीफ हुई!
वे कहें, अबे तू चुप रह! वह बात मैं कभी मुंह से नहीं कह सकता!
अब मैं अपने पिता जी से कहूं कि लो। अब यह भी आप सोचो...! अच्छा लिखकर बता दो! पिता जी के कान में कह दो। इतनी बुरी बात हो! मगर पता तो चले कि मैंने तुमसे कहा क्या है! अब मुझे ही नहीं मालूम कि मैंने तुमसे क्या कहा है। सजा किस बात की?
अरे तुझे मालूम है! चौबीस घंटे मेरी जान खाता है। रात-आधी-रात मैं सो रहा हूं, पहुंच जाता है। और घंटी बजाता है। और वही बात...!
कौन-सी बात महाराज!
वह वे कभी न कहें। कि वह बात मैं कभी कह ही नहीं सकता!
अब ये भक्त हैं! गालियां दे सकते हैं, लेकिन वह बात कैसे कहें!
जब वे मर रहे थे, तब भी मैं पहुंच गया। मैंने कहा, हरे कृष्ण!
उन्होंने कहा, अरे, अब तो तू चुप रह! अब तो मैं दौड़ भी नहीं सकता। और अब
तो मेरे मुंह से गालियां न निकलवा! तू भैया घर जा! तू कोई और काम कर। मुझे शांति से मर जाने दे! नहीं तो मैं तेरी ही भावना से क्रोध में मरूंगा और फल भोगूंगा! तू मरते वक्त तो मुझे शांत रहने दे! जिंदगी भर तूने मुझे सताया! मैंने कहा, मैंने अभी कुछ आप से कहा नहीं। सिर्फ ईश्वर की याद दिलाने आया, कि जाते-जाते हरे कृष्ण की याद तो कर लो!
ये जो लोग हैं, ये धार्मिक लोग हैं! ये आस्तिक हैं! इनकी आस्तिकता कैसी आस्तिकता है? ये डरे हुए लोग हैं। ये घबड़ाए हुए लोग हैं, कि कहीं तर्क दिक्कत में न डाल दे! कहीं अड़चन न खड़ी कर दे!
ये जबर्दस्ती विश्वास बिठाए हुए हैं। मगर इनका विश्वास भी किसी तरह
के तर्कों पर खड़ा हुआ है। विश्वास का मतलब ही होता है--किसी तरह के तर्कों पर सम्हाल कर बनाया गया मकान। संदेह को दबा लिया है; तर्क को उसकी छाती पर चढ़ा दिया है। अपनी मन पसंद तर्क को छाती पर चढ़ा दिया है। हिंदू का तर्क है, मुसलमान का तर्क है। सबके तर्क हैं! और उनके तर्कों के आधार से वे दबे हुए हैं।
धार्मिक व्यक्ति का कोई तर्क नहीं होता--अनुभव होता है, अनुभूति होती है। विश्वास नहीं होता--श्रद्धा होती है। श्रद्धा और विश्वास में जमीन-आसमान का फर्क है। शब्दकोश में तो एक ही अर्थ लिखा हुआ है। क्योंकि शब्द जानने वालों को यह भेद कैसे पता चले!
श्रद्धा का अर्थ है, जिसने जाना, जिसने पहचाना, जिसने अनुभव किया, जिसने जीया, जिसने पिया, जो हो गया। और विश्वास का अर्थ है--जिसने मान लिया किन्हीं तर्कों के सहारे।
यह निरुक्त जो कहता है कि देवताओं ने मनुष्यों से कहा कि आगे को तर्क
को ही ऋषि-स्थानीय समझो। यह बात बिलकुल ही गलत है; बुनियादी रूप से गलत है। तर्क कहीं ऋषि हो सकता है? तर्क से कहीं काव्य उठेगा? तर्क से कहीं अतर्क की तरफ आंख उठेगी? असंभव। तर्क से तो मुक्त होना है। संदेह से भी मुक्त होना है, तर्क से भी मुक्त होना है। विश्वास से भी मुक्त होना है। धारणाओं मात्र से मुक्त होना है। शून्य में उतरना है। निर्विचार में उतरना है, निर्विकल्प में उतरना है। जहां कोई विचार न रह जाए, वहां कैसा कोई तर्क? जहां कोई पक्ष न रह जाए, वहां कैसा कोई तर्क?
चुनावरहित शून्य में प्रभु मिलन है। चाहे प्रभु कहो--यह नाम की बात है। चाहे ईश्वर का राज्य कहो, चाहे मोक्ष कहो, कैवल्य कहो, निर्वाण कहो--जो मर्जी हो--सत्य कहो--लेकिन विचारशून्य अवस्था में पूर्ण का साक्षात्कार है। और जैसे ही तुम विचारशून्य हुए, पूर्ण उतरा। पूर्ण उतरा, कि तुम ऋषि हुए, कि तुम फिर जो बोलोगे, वही ऋचा है। तुम जहां बैठोगे, वहां तीर्थ बन जाएंगे। तुम जहां चलोगे, वहां मंदिर खड़े हो जाएंगे। तुम्हारी मस्ती जहां झरेगी--वहां काबा, वहां काशी।

सिर्फ विक्षिप्त लोग काशी और काबा जाते हैं। जिनको परमात्मा के संबंध में थोड़ा भी अनुभव है, वे क्यों कहीं जाएंगे? अपने भीतर उसे पाते हैं। और निश्चित ही तर्क पर उनका आधार नहीं होता।
रामकृष्ण के पास बंगाल के बड़े तार्किक मिलने गए थे। महापंडित थे। रामकृष्ण को हराने गए थे। केशवचंद्र सेन उनका नाम था। बंगाल ने ऐसा तार्किक फिर नहीं दिया। केशवचंद्र अद्वितीय तार्किक थे। उनकी मेधा बड़ी प्रखर थी। सब को हरा चुके थे। किसी को भी हरा देते थे। सोचा, अब इस गंवार रामकृष्ण को भी हरा आएं। क्योंकि ये तो बेपढ़े-लिखे थे। दूसरी बंगाली तक पढ़े थे। न जानें शास्त्र, न जानें पुराण--इनको हराने में क्या देर लगेगी! और भी उनके संगी-साथी देखने पहुंच गए थे कि रामकृष्ण की फजीहत होते देख कर मजा आएगा। लेकिन फजीहत केशवचंद्र की हो गई।
रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को तर्क से नहीं हराया जा सकता, क्योंकि रामकृष्ण जैसे व्यक्ति का आधार ही तर्क पर नहीं होता। तर्क पर आधार हो, तो तर्क को खींच लो, तो गिर पड़ें। तर्क पर जिसका आधार ही नहीं है, तुम क्या खींचोगे?
केशवचंद्र ने तर्क पर तर्क दिए और रामकृष्ण उठ-उठकर उनको छाती से लगा लें! और कहें, क्या गजब की बात कही! वाह! वहा! अहा! आनंद आ गया!
वे जो साथ गए थे, वे भी हतप्रभ हो गए, और केशवचंद्र भी थोड़ी देर में सोचने लगे कि मामला क्या है! मैं भी किस पागल के चक्कर में पड़ गया! मैं इसके खिलाफ बोल रहा हूं, ईश्वर के खिलाफ बोल रहा हूं, शास्त्रों के खिलाफ बोल रहा हूं, और यह किस तरह का पगला है! कि यह उठ-उठ कर मुझे गले लगाता है! केशवचंद्र ने कहा, एक बात पूछूं! कि मैं जो बोल रहा हूं, यह धर्म के विपरीत बोल रहा हूं; ईश्वर के विपरीत बोल रहा हूं; शास्त्र के विपरीत बोल रहा हूं। मैं आपको उकसा रहा हूं--आप विवाद करने को तत्पर हो जाएं। और आप क्या करते हैं! आप मुझे गले लगाते हैं! और आप कहते हैं: अहा, आनंद आ गया! रामकृष्ण ने कहा, आनंद आ रहा है--कहता नहीं हूं। बड़ा आनंद आ रहा है। थोड़ा-बहुत अगर संदेह भी था परमात्मा में, वह भी तुमने मिटा दिया! केशवचंद्र ने कहा, वह कैसे?
तो कहा कि तुम्हें देखकर मिट गया। जहां ऐसी प्रतिभा मनुष्य में हो सकती है, जहां ऐसी अदभुत चमकदार प्रतिभा हो सकती है, तो जरूर किसी महास्रोत से आती होगी। इस जगत के स्रोत में महा प्रतिभा होनी ही चाहिए, नहीं तो तुममें प्रतिभा कहां से आती? जब फूल खिलते हैं, तो उसका अर्थ है कि जमीन गंध से भरी होगी। छिपी है गंध, तभी तो फूलों में प्रकट होती है। तुम्हारी गंध को देखकर...मैं तो बेपढ़ा-लिखा आदमी हूं, रामकृष्ण कहने लगे, मेरी तो क्या प्रतिभा है! कुछ प्रतिभा नहीं। लेकिन तुम्हें तो देखकर ही ईश्वर प्रमाणित होता है!
केशवचंद्र का सिर झुक गया। चरण पर गिर पड़े। और कहा, मुझे क्षमा कर दो। मैं तो सोचता था, तर्क ही सब कुछ है। लेकिन आज मैंने प्रेम देखा। मैं तो सोचता था--तर्क ही सब कुछ है--आज मैंने अनुभव देखा। आपने मुझे हराया भी नहीं, और हरा भी दिया! यूं तो मुझे हारने का कोई कारण नहीं था, अगर आप तर्क करते तो। मगर आपने अतक्र्य बात कह दी। अब मैं क्या करूं! मेरी जबान बंद कर दी।
रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को मैं धार्मिक कहता हूं। मैं विवेकानंद को भी धार्मिक नहीं कहता। क्योंकि विवेकानंद मूलतः तार्किक ही रहे। उनको केशवचंद्र की परंपरा में ही गिना जाना चाहिए। रामकृष्ण की परंपरा में नहीं। रामकृष्ण बात और। कहां रामकृष्ण--और कहां विवेकानंद! रामकृष्ण कोहिनूर हीरा हैं; विवेकानंद तो दो कौड़ी की बात है। मगर लोगों को विवेकानंद जंचते हैं, क्योंकि वे तर्क में जी रहे हैं। रामकृष्ण की बात तो बेबूझ लगेगी। अतक्र्य है।
लेकिन धर्म ही अतक्र्य है। तर्क के पार जाने में ही धर्म है।
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २६ जुलाई, १९८०

मेरा स्वर्णिम भारत-38

स्वयं का बोध: मुक्ति
(Note: from Sanch Sanch So Sanch (सांच सांच सो सांच) #2)

पहला प्रश्न: भगवान,
आद्य शंकराचार्य की एक प्रश्नोत्तरी इस प्रकार है--
कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
शल्यं परं किम् निजमूर्खतेव
के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः।।
किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही। किसमें सर्वथा भय नहीं है? मोक्ष में। सबसे बड़ा कांटा कौन है? अपनी मूर्खता ही। कौन-कौन उपासना के योग्य हैं? गुरु, देवता और वृद्ध।
भगवान, इन प्रश्नों पर आप क्या कहते हैं?

अभयानंद, यह सूत्र प्यारा है--सोचने योग्य। ध्याने योग्य।
कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः।
"किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही।"
मन ही बंधन है। और बंधन भी ऐसा, जो केवल हमारी प्रतीति में है। नाश करने को वस्तुतः कुछ भी नहीं है, सिर्फ आंख खोल कर देखने की बात है और मन नष्ट हो जाता है। आंख बंद है तो मन है; आंख खुली कि मन गया।
यूं है जैसे सांझ के धुंधलके में राह पर पड़ी रस्सी को देख कर तुम सांप समझ बैठे; फिर लगे भागने; फिर घबड़ाए बहुत। फिर यूं भी हो सकता है कि फिसल जाए भागने में पैर, तोड़ लो हड्डी-पसली। यूं भी हो सकता है कि इतने घबड़ा जाओ कि हृदय का दौरा पड़ जाए। और वहां कुछ भी न था, बस रस्सी थी। सांप तुम्हारा प्रक्षेपण था। तुमने जरूर देख लिया था; तुम्हारी भ्रांति थी। तुमने रस्सी के ऊपर अपने भय को आच्छादित कर दिया था। सांप था नहीं, फिर भी तुम्हारी हड्डी तो टूट गई, जो थी। और तुम्हारा हृदय तो हानि को पहुंच गया, जो था।
जो नहीं है, उसके भी परिणाम हो सकते हैं। अंधेरा भी नहीं है, मगर उसके
भी परिणाम तो होते हैं। अंधेरे में चलोगे तो दीवारों से टकरा जाओगे; दरवाजे से निकलना आवश्यक तो नहीं; निकल जाओ, संयोग है। ज्यादा संभावना यही है कि दीवारों से टकराओगे। अंधेरे में चलोगे, फर्नीचर से टकरा कर गिर पड़ो, कुछ भी हो सकता है। और अंधेरा नहीं है। अंधेरे की कोई सत्ता नहीं है। अंधेरा केवल प्रकाश का अभाव है। इसीलिए तो दीए के जलाते ही अंधेरा नहीं पाया जाता है। और ऐसे ही बोध के जगते ही मन नहीं पाया जाता है। जैसे कोई ले आए रोशनी तो रस्सी मिलेगी, सांप नहीं। फिर क्या पूछोगे, सांप कहां गया? फिर तो प्रश्न भी व्यर्थ हो जाएगा। था ही नहीं, तो जाएगा कैसे?
इसलिए एक बात खयाल रखना: मन के नाश का ऐसा अर्थ मत ले लेना कि मन है और उसका नाश करना है। क्योंकि जो है उसका तो नाश हो ही नहीं सकता। थोड़ी तुम्हें असुविधा होगी, जो मैं कह रहा हूं उसे समझने में। इसलिए ठीक-ठीक उसे दोहरा दूं: जो है उसका नाश नहीं है; और जो नहीं है, बस केवल उसका नाश है। एक छोटे-से रेत के कण को भी मिटा न सकोगे। विज्ञान की सारी सामर्थ्य भी, जो पूरी मनुष्य-जाति को नष्ट कर सकती है, जो इस तरह की सात सौ पृथ्वियों को जीवन से विहीन कर सकती है--आज इतने उदजन बम, एटम बम इकट्ठे हो गए हैं--लेकिन विज्ञान भी एक छोटे-से रेत के कण को मिटा नहीं सकता। जो है, उसे मिटाने का कोई उपाय ही नहीं है। वह रहेगा। रूप बदल सकता है, आकृति बदल सकती है; रहेगा--नए रूपों में, नई आकृतियों में। और जो नहीं है, केवल वही मिटाया जा सकता है।
इसलिए मैं अपने संन्यासियों से कहता हूं: मैं तुमसे वही छीन लूंगा जो तुम्हारे पास नहीं है और तुम्हें वही दे दूंगा जो तुम्हारे पास है ही। न मुझे कुछ छीनना है; न मुझे कुछ देना है। जो है उसका तुम्हें होश आ जाए और जो नहीं है उसकी तुम्हारी भ्रांति टूट जाए।

मन आभास मात्र है: रस्सी में देखा गया सांप। जरा-सी रोशनी ध्यान की--और
मन नहीं पाया जाता है।
शंकराचार्य का यह सूत्र ठीक है: कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः।
मोक्ष क्या है? किसमें मोक्ष है? कहां मोक्ष है? छोड़ दो धारणाएं कि कहीं दूर सात आसमानों के पार मोक्ष है। मोक्ष तुम्हारे भीतर है। मन की भ्रांति में उलझे हो, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। सांप में अटक गए, इसलिए रस्सी दिखाई नहीं पड़ती। जैसे ही मन की भ्रांति से जगे--और मन सच में एक तंद्रा है, एक मूर्च्छा है--जैसे ही मन का ऊहापोह गया, मन के विचारों का तांता टूटा, ये मन के रास्ते पर दौड़ते हुए सपने, स्मृतियां, कल्पनाएं, वासनाएं, एष्णाएं, तृष्णाएं, ये ठहरीं, एक क्षण को भी ठहर जाएं तो तत्क्षण तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि मैं कौन हूं। मन के ठहरते ही स्वयं का बोध है। और स्वयं का बोध ही मुक्ति है।
मोक्ष से फिर कहीं भूल न कर लेना। मोक्ष शब्द में ऐसा लगता है जैसे कुछ भौगोलिक है, कहीं। मैं पसंद करता हूं मुक्ति बजाय मोक्ष के। क्योंकि मुक्ति में आंतरिकता है। मोक्ष में हमने मुक्ति को बाह्य रूप दे दिया। जो भेद मैं भगवत्ता और भगवान में करता हूं, जो भेद मैं धर्म और धार्मिकता में करता हूं, वही भेद मैं मुक्ति और मोक्ष में करता हूं। मेरा जोर मुक्ति पर है, मोक्ष पर नहीं। मोक्ष में खतरा है। उस शब्द में ऐसा इशारा मालूम होता है--कहीं और, किसी और समय में, किसी और लोक में।
और अगर कहीं और है मोक्ष तो मन फिर मिटेगा नहीं। धन को छोड़ देगा, पद को छोड़ देगा, फिर मोक्ष की आकांक्षा से भर जाएगा। और आकांक्षाएं सब एक जैसी हैं। हर आकांक्षा मन को जिलाए रखने के लिए काफी है, मन को बनाए रखने के लिए काफी है। हर आकांक्षा मन का पोषण है। आकांक्षा मन की जड़ है। तुमने कुछ भी चाहा तो मन बना रहेगा। और तुमने चाहा ही नहीं, तुमने चाह को ही जाने दिया, कि मन गया। मन यानी चाह। मन यानी एष्णा, तृष्णा, महत्वाकांक्षा।
इसलिए खयाल रहे, तुम्हारे साधु हैं, संत हैं, महात्मा हैं, अगर तुम उन्हें गौर से जांचोगे, परखोगे, तो पाओगे उनके जीवन में कोई क्रांति नहीं घटी है। हां, आकांक्षा के विषय बदल गए, लेकिन आकांक्षा पूर्ववत है। कणमात्र भी भेद नहीं पड़ा है। वे वहीं के वहीं खड़े हैं। धन चाहते थे, अब धर्म चाहते हैं। पद चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हैं। संसार चाहते थे, अब कैवल्य चाहते हैं। और सारी आकांक्षाओं से अपने मन को सिकोड़ लिया और सारी आकांक्षाओं को एक ही आकांक्षा पर आरोपित कर दिया है।
खयाल रहे, जब आकांक्षाएं बहुत बंटी होती हैं तो मन कमजोर होता है, क्योंकि विभाजित होता है। धन भी चाहिए, पद भी चाहिए, प्रतिष्ठा भी चाहिए, यह भी चाहिए, वह भी चाहिए, हजार चीजें चाहिए, तो मन बंटा होता है, कटा होता है, खंड-खंड होता है। खंड-खंड होता है तो उसकी शक्ति भी कम होती है। लेकिन जिसने अपनी सारी आकांक्षाओं को एक ही बिंदु पर केंद्रित कर दिया--मोक्ष चाहिए! पद की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, धन की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, प्रतिष्ठा की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, सारे तीर एक ही दिशा में चलने लगे--उसका मन और भी मजबूत हो जाता है।
इसलिए मेरा अनुभव यह है कि सांसारिक लोगों के पास कमजोर मन होता है और तुम्हारे तथाकथित आध्यात्मिक लोगों के पास बहुत मजबूत मन होता है। उनके बंधन कम न हुए। तुम्हारे बंधन पतले धागों जैसे हैं; उनके बंधन मोटे रस्से हो गए, सब धागों से बुन कर बन गए, सब धागों ने एक ही रस्सा बना दिया। तुम्हारी जंजीरें क्षीण हैं, क्योंकि बहुत हैं। आसानी से तोड़ी जा सकती हैं। उनकी जंजीर को तोड़ना बहुत मुश्किल है। उनकी महाजंजीर हो गई है। सब जंजीरों को ढाल लिया उन्होंने एक जंजीर में।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं: साधु मत बनना, महात्मा मत बनना, संत मत बनना। भागना मत संसार को छोड़ कर, क्योंकि अगर भागोगे संसार को छोड़ कर तो आगे कुछ लक्ष्य रखना पड़ेगा। भागोगे किसके लिए? भागना केवल नकारात्मक नहीं हो सकता। भागने में विधायकता होगी। सामने कोई गंतव्य चाहिए, तब कोई भाग सकता है। तुम जब भागते हो तो किसी चीज से नहीं भागते, किसी चीज के लिए भागते हो। और तुम जिस चीज के लिए भाग रहे हो संसार छोड़ कर,

वह और भी कठिन है, वह और भी मुश्किल है। मन मजबूत हो जाएगा। मन जितना था, उससे कहीं ज्यादा सबल हो जाएगा।
इसलिए तुम्हारे महात्माओं में जितना अहंकार होगा उतना सांसारिकों में नहीं होता। सांसारिक आदमी तो बेचारा कहता है, हम दीन-हीन, संसार के बंधनों में पड़े! महात्मा की अकड़ ही और! लात मार दी है धन पर, पद पर, प्रतिष्ठा पर! अरे, मोक्ष के लिए सब कुछ छोड़ दिया! मगर मोक्ष के लिए। तो यह मोक्ष अब आखिरी फांसी बनी।
ऐसे मन नहीं जाता। यह मन के जाने का ढंग नहीं है। मन के जाने का तो एक
ही ढंग है और वह है: जाग कर मन के स्वरूप को समझ लेना। मन का स्वरूप क्या है? मन का स्वरूप है: और मिले, और मिले, और मिले! मन का स्वरूप यही है: जितना है काफी नहीं, जो है काफी नहीं, जहां हूं वह ठीक जगह नहीं, जैसा हूं वह ठीक होना नहीं। कहीं और होना है, कुछ और होना है, कुछ और पाना है--बस यही मन का स्वरूप है। और की दौड़ मन का दूसरा नाम। जिस क्षण तुमने जाना कि जहां हूं, जैसा हूं, जो हूं, मस्त हूं, आनंदित हूं, न कहीं जाना है, न कुछ होना है, न कुछ पाना है--उसी बोध के क्षण में वह ज्योति तुम्हारे भीतर जगमगा उठती है जिसमें मन नहीं पाया जाता; वह दीया जल उठता है जिसमें मन का अंधेरा खो जाता है।
लेकिन शंकराचार्य का सूत्र सुंदर है: "किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही।"
पर सावधान तुम्हें कर देना चाहता हूं कि मोक्ष पाने के लिए मन का नाश करना मत सोचने लगना, नहीं तो चूक गए; बात आई-आई हाथ में और निकल गई। शंकराचार्य यह नहीं कह रहे हैं कि मन का नाश करो तो मोक्ष पा लोगे। वे यह कह रहे हैं कि मन का नाश जहां हो जाता है वहां जो बचता है वही मोक्ष है। मोक्ष तुम्हारे भीतर है, मन के पर्दे उसके ऊपर पड़े हैं। मन के पर्दे हटा दिए, मोक्ष प्रकट हो गया। मोक्ष तुम्हारी नग्नता है, तुम्हारा स्वरूप है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारी निजता है। और मन? मन है तुम्हारा भटकाव; अपने से च्युत हो जाना, अपने केंद्र से कहीं और चले जाना। मन है समय--अतीत, भविष्य। और मोक्ष है वर्तमान--अभी और यहीं। इस क्षण के पार देखना ही नहीं; न पीछे, न आगे। इस क्षण में ही ठहर जाओ और तुम्हें मोक्ष मिल गया, क्योंकि इस क्षण में ठहर जाना ही मोक्ष है।
और उन्होंने कहा: क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
"किसमें सर्वथा भय नहीं है?" अभयानंद ने फिर अनुवाद किया है, "मोक्ष में।" मैं कहना चाहूंगा, शंकराचार्य का शब्द बिलकुल साफ है। क्यों उसका तुमने मोक्ष में अनुवाद कर दिया? हमारा मन कितनी जल्दी गलतियों में उतर जाता है!
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
विमुक्तौ! उसको तुम कैसे मोक्ष कह रहे हो? विमुक्तता में! विमुक्ति में! तुम्हारे विमुक्त होने में ही भय का नाश है। तुमने उसको भी तत्क्षण मोक्ष कर दिया। हम भीतर की बात को बड़ी जल्दी बाहर की बना देते हैं। हम भीतर टिकने ही नहीं देते, जल्दी बाहर की बना देते हैं। क्योंकि बाहर बनाते से ही फिर हमारे लिए गंतव्य मिल जाता है, लक्ष्य मिल जाता है--अब पाकर रहेंगे। अहंकार के लिए नए आयोजन हो जाते हैं--तो अब विमुक्ति पानी है, मोक्ष पाना है। मगर बाहर का कुछ कर लिया। बात सदा भीतर की है; तुम सुनते हो और तुम्हारे सुनने में ही तत्क्षण भूल हो जाती है, रूपांतरण हो जाता है। अभयानंद ने अनुवाद किया है, "किसमें सर्वथा भय नहीं है? मोक्ष में।"
इसका मतलब हुआ कि जब मोक्ष पहुंचेंगे तब भय मिटेगा।
कल ही मुझे पत्र मिला है अमरीका से। हरे कृष्ण आंदोलन के प्रधान ने धमकी दी है--धार्मिक धमकी है, जैसा कि धार्मिक लोग सदा से देते रहे, कुछ नई नहीं--धमकी दी है कि अगर आपने हरे कृष्ण आंदोलन के खिलाफ कुछ भी कहा तो आप गोलोक में कभी नहीं पहुंच सकेंगे। और आपको सातवें नर्क में पड़ना पड़ेगा। गोलोक जाना किसको है? कोई सांड हो तो गोलोक जाना चाहे। गोलोक किसको जाना है? अजीब लोग हैं! पहले पूछ भी तो लेना चाहिए कि मुझे गोलोक जाना भी है या नहीं। क्या-क्या लोक बना रखे हैं। महात्मा गांधी बकरी-लोक में गए होंगे, क्योंकि वे बकरी का ही दूध पीते रहे जिंदगी भर; गोलोक में तो उनको

कौन घुसने देगा! और भैंस का दूध सम्हल कर पीना! मगर गोलोक में तुम करोगे क्या और गोलोक में तुम होओगे क्या?
इससे मैं चौंका बहुत। चौंका इसलिए कि बेचारे भक्ति वेदांत प्रभुपाद
चल बसे, गोलोक में सांड हो गए होंगे।
एक आदमी मरा। उसकी पत्नी एक ज्ञानी के पास गई, जिसके संबंध में यह खबर
थी कि वह प्रेतात्माओं से संबंध जोड़ लेता है। उसकी पत्नी ने कहा, बस एक बार मुझे मेरे पति से बात करवा दो। इतना मुझे भरोसा आ जाए कि वे ठीक जगह पहुंच गए, तो मेरा दुख हलका हो जाए। उस प्रेतात्मविद ने जंतर-मंतर पढ़े, कुछ धूप-दीप जलाए, लोभान चढ़ाया, हिला-डुला, कुछ अल्ल-बल्ल बका, आंखें ऊपर चढ़ाईं--और फिर एकदम आवाज बदल कर बोला कि मैं आ गया। पत्नी ने पूछा कि आप कैसे हैं? उसने कहा, बहुत मजे में हूं, बहुत आनंद में हूं। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली है, घास ही घास उगा है, फूल खिल रहे हैं, गउएं चर रही हैं।
तो पत्नी ने कहा, अरे! यह घास और गउएं, इनकी बात पीछे करना, पहले स्वर्ग
के संबंध में और कुछ तो बताओ।
उसने कहा, अरे यह पास में ही जो गाय खड़ी है, ऐसी सुंदर, हेमामालिनी को मात दे रही है। पत्नी बोली कि तुम भ्रष्ट तो नहीं हो गए, तुम्हारा दिमाग कैसा हो गया? अरे स्वर्ग में पहुंच कर और कहां की बातें कर रहे हो!
पति ने कहा, कौन कहता है कि मैं स्वर्ग में आया? अरे मैं यहीं पूना में
एक सांड हो गया हूं। और क्या प्यारी गऊमाता खड़ी है! लार टपकी जा रही है मेरी! और तू कहां की स्वर्ग की बातें कर रही है! स्वर्ग जाए भाड़ में, मैं चला गऊमाता के पीछे।
गोलोक में जाना किसको है? गोलोक छोड़ कर और कहीं भी मैं जाने को तैयार हूं। गोलोक में करना क्या है? सातवें नर्क में भेजने की मुझे धमकी दी है। मुझे कोई अड़चन नहीं है। सातवां हो कि चौदहवां हो, कोई भी नर्क हो, मैं जाने को राजी हूं। क्योंकि मैं जहां हूं, जैसा हूं, वहीं आनंदित हूं, तो वहीं आनंदित होंगे। सातवें नर्क में क्या बिगड़ जाएगा? मेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं। वहीं संन्यासियों को इकट्ठा कर लेंगे, वहीं सत्संग जमेगा। और ऐसे भी जब मुझे सातवें नर्क जाना पड़ेगा तो मेरे संन्यासी भी वहीं जाएंगे, और कहां जाएंगे! वहीं फिर बसा लेंगे।
ये जो पार की कल्पनाएं हैं--गोलोक, बैकुंठ, स्वर्ग, मोक्ष--सब पागलपन है। न तो कहीं कोई स्वर्ग है, न कहीं कोई नर्क। जब तुम अपने में नहीं हो तो नर्क में हो और जब तुम अपने में हो तो स्वर्ग में हो। ये धमकियां किन्हीं और पागलों को देना। जो अपने में है, वह अपना स्वर्ग अपने साथ लिए चलता है। और जो अपने में नहीं है वह कहीं भी पहुंच जाए, नर्क में ही रहेगा; वह अपना नर्क अपने साथ लिए चलता है।
अभयानंद, शंकर ठीक कहते हैं, "किसमें सर्वथा भय नहीं है?" मोक्ष अनुवाद न करो। "विमुक्ति में।" और विमुक्ति का अर्थ हुआ: मन से मुक्ति।
विमुक्ति का अर्थ हुआ: समाधि, ध्यान की परम अवस्था।
शल्यं परं किम् निजमूर्खतेव।
और सबसे बड़ा कांटा कौन है? सबसे बड़ा अवरोध क्या है? शल्य क्या है, रुकावट क्या है?
"अपनी मूढ़ता ही।"
और तो किसकी मूर्खता तुम्हें बाधा देगी! अपनी मूढ़ता ही। क्या है हमारी मूढ़ता? हमारी सबसे बड़ी मूढ़ता यही है कि हम अज्ञानी हैं और अपने को ज्ञानी समझे बैठे हैं। पता कुछ भी नहीं है और शास्त्रों को अपने चारों तरफ लपेट लिया है, शास्त्रों के वस्त्र बना लिए हैं, राम-नाम की चदरिया ओढ़े बैठे हैं। भीतर राम-रस बहता नहीं, भीतर कुछ राम का अनुभव नहीं, भीतर तो काम ही काम भरा हुआ है, लेकिन बाहर राम-नाम की चदरिया ओढ़े हुए हैं, वेद पढ़ रहे हैं, कुरान पढ़ रहे हैं, बाइबिल पढ़ रहे हैं, गुरुग्रंथ साहब पढ़ रहे हैं। लेकिन पढ़ने वाला कहां है? किस अवस्था में है? मूर्च्छित है या होश में है? एक बात खयाल रहे, अगर मूर्च्छा में हो तो वेद भी पढ़ोगे तो क्या खाक पढ़ोगे! तुम्हारा वेद भी कोकशास्त्र हो जाएगा, और कुछ भी नहीं। तुम कुरान भी पढ़ोगे तो कचरा कर दोगे, तुम ही तो पढ़ोगे न! तुम ही तो अर्थ निकालोगे! कुरान में तो शब्द होंगे, अर्थ कौन देगा? उन शब्दों को भाव-भंगिमा कौन

देगा? उन शब्दों को रूप-रंग कौन देगा? तुम्हारे भीतर जाते-जाते वे तुम्हारे रंग में रंग जाएंगे; तुम जैसे ही मूर्च्छित हो जाएंगे।
लेकिन अगर तुम होश में हो, अगर तुम ध्यान में हो, अगर तुम शांत हो, मौन हो, तो फिर वेद को पढ़ने की जरूरत नहीं, क्योंकि तुम्हारे भीतर के वेदों का द्वार खुल गया। फिर कुरान दोहराने की जरूरत नहीं; तुम्हारे भीतर खुद ही आयतें उतरने लगीं। तुम्हारे भीतर वही होने लगा जो मोहम्मद के भीतर हुआ था। फिर क्या तुम उधार और बासे में अटकोगे!
मूढ़ता क्या है? मूढ़ता एक ही है। हम सब अज्ञानी पैदा होते हैं। अज्ञान में कोई खतरा नहीं है। अज्ञानी हम सभी पैदा होते हैं। खतरा तब शुरू होता है जब हम अज्ञान को उधार ज्ञान से ढांक लेते हैं। उधार ज्ञान से ढंका हुआ अज्ञान--यह मूर्खता है। मूर्खता का दूसरा नाम पांडित्य, तोतापन।
कितने तोते हैं! कोई इमाम है, कोई अयातुल्ला है, कोई पोप है। कितने पुरोहित, कितने पंडित, कितने शास्त्री! और ये सब दोहरा रहे हैं--यंत्रवत, मशीन की तरह। इन्हें कुछ भी पता नहीं कि ये क्या दोहरा रहे हैं। इन्हें यह भी पता नहीं कि ये क्यों दोहरा रहे हैं। इन्हें यह भी पता नहीं कि इनके भीतर ही शास्त्रों का शास्त्र पड़ा हुआ है, जिसे इन्होंने अभी खोला भी नहीं, जिस पर सदियों की गर्त जम गई है। इनके भीतर वह दर्पण है, जिसमें सत्य की छवि बने। मगर वह दर्पण ऐसा धूल में दब गया है कि इन्हें उसका कुछ पता ही नहीं। और धूल इनके ज्ञान की है। इनके शास्त्रों का कचरा ही इनके दर्पण को ढांक लिया है। आच्छादित हो गए हैं ये।
अज्ञान में खतरा नहीं है। अज्ञान तो निर्दोषता है। हर बच्चा अज्ञानी पैदा होता है। लेकिन उसका दर्पण साफ होता है। बच्चा मूर्ख नहीं होता। मूर्ख होने के लिए तो यूनिवर्सिटी जाना पड़ता है। मूर्ख होने के लिए तो कम से कम पीएच.डी., डी.लिट. होना ही चाहिए। मूर्ख होने के लिए उपाधियां चाहिए। उपाधि शब्द बड़ा प्यारा है, कम से कम हमारी भाषा में तो बड़ा प्यारा है। उपाधि का एक अर्थ बीमारी भी होता है और उपाधि का एक अर्थ सम्मानित डिग्री भी होता है। बीमारियां ही हैं, लेकिन अपनी बीमारियों को लोग लगाए फिरते हैं। आदमी को बंदरों जैसी पूंछ नहीं है, तो बेचारा अपनी उपाधियों की पूंछ लगा लेता है; एम.ए., पीएच.डी., डी.लिट, यह पूंछ बन जाती है उसकी। इससे उसकी पूछ होने लगती है। पूंछ बढ़ जाती है तो पूछ होने लगती है। जितनी लंबी पूंछ...देखा न हनुमान जी अपनी पूंछ को बड़ा करते गए, बड़ा करते गए, मतलब यह कि वे होते गए पंडित, होते गए पंडित। अपनी पूंछ का ही उन्होंने सिंहासन बना लिया, उस पर बैठ गए। सभी यही कर रहे हैं: पूंछ को बड़ी करते जा रहे हैं। मूढ़ता, तुम्हारा तथाकथित जो शास्त्रीय ज्ञान है, उसका ही नाम है। इससे तुम्हारा अज्ञान तो मिटता नहीं, सिर्फ अज्ञान ढंक जाता है। काश तुम अपने अज्ञान को पहचान लो तो मिटाना बहुत आसान है। मगर ढांक लो तो फिर तो पहचानना ही मुश्किल हो गया। जैसे किसी को घाव हो जाए, वह उसको ढांक ले, गुलाब का फूल उसके ऊपर चिपका ले। फिर तो घाव का इलाज कौन करेगा? भीतर मवाद इकट्ठी होती रहेगी, ऊपर फूल सुगंध देता रहेगा। बस ऐसी ही अवस्था है। शल्यं परं किम् निजमूर्खतेव।
एक ही शल्य है। एक ही कांटा है कि तुमने अपने अज्ञान को ढांक लिया। उघाड़ो। अज्ञान को पहचानो। अज्ञान को पहचानने से ही ज्ञान की वर्षा होनी शुरू होती है। जिसने अज्ञान को पहचाना, उस पहचानने में ही वह ज्ञानी हो गया। जिसने अपने अज्ञान को गौर से देखा, उस गौर से देखने में ही वह अज्ञान से अलग हो गया। देखने वाला हमेशा दृश्य से अलग हो जाता है, दृश्य से मुक्त हो जाता है।
और तीसरी बात शंकराचार्य ने कही: के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः। "कौन-कौन उपासना के योग्य हैं? गुरु, देवता और वृद्ध।"
अभयानंद, शंकराचार्य का वचन तो बहुत प्यारा है, मगर उसके जो अर्थ लोगों ने किए हैं, बड़े ही नासमझी से भरे हुए हैं। गुरु कौन? जो ज्ञान दे। और ज्ञान दिया नहीं जा सकता। सत्य दिया नहीं जा सकता। मगर लोगों का अर्थ यही है कि गुरु वह जो तुम्हें कुछ सिखाए--वेद सिखाए, कुरान सिखाए, बाइबिल सिखाए, सिद्धांत सिखाए--वही गुरु। जो तुम्हें सिखावन दे, वह गुरु। और देवता कौन? इंद्र और वे सारे लोग जो खूब पुण्य अर्जन करके--धर्मशालाएं बना

कर, प्याऊएं खुलवा कर, मंदिर खड़े करवा कर--स्वर्ग पहुंच गए हैं, वे सब देवता। यहां उन्होंने धर्मशाला खुलवाई, अब वहां गुलछर्रे कर रहे हैं। अरे धर्मशाला खुलवाओगे तो गुलछर्रे तो होने ही वाले हैं फिर। नहीं तो कोई धर्मशाला ही किस लिए खुलवाए! यहां झाड़ लगवाए, वहां कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। कल्पवृक्ष के नीचे क्या बैठे हैं, मजा कर रहे हैं। जो चाहिए, यहां चाहा और वहां चीज मौजूद हुई। दुनिया में तो ऐसा है: चाहो आज, वर्षों मेहनत करो, घुटो-पिटो, भारी भीड़-भड़क्का है, सौ-सौ जूते खाओ तब कहीं तमाशा देख पाओ! पहले खुद तमाशा बनो। और जब तक तमाशा देखने की हालत आए, तब तक तुम्हारी हालत देखने योग्य न रह जाए। लेकिन कल्पवृक्ष के नीचे तत्क्षण घटना घटती है। तो देवता कौन हैं? जैसे जुगलकिशोर बिड़ला। कितने बिड़ला मंदिर बनवाए!
वे देवता हो गए। कहते हैं उनका स्वर्ग के द्वार पर स्वागत किया गया, खूब शहनाई बजी, खूब देवी-देवताओं ने घंटाल पीटे, खूब भजन-कीर्तन हुआ। थोड़े तो जुगलकिशोर बिड़ला भी हैरान हुए। मेरे परिचित थे। परिचित थे सो उनके संबंध में सच्ची-सच्ची बात ही कहे देता हूं। थोड़ा संकोच भी हुआ; सोचा तो था कि स्वर्ग मिलेगा, मगर ऐसा स्वागत-समारंभ भी होगा, रेड कार्पेट वाला स्वागत, एकदम लाल मखमली दरी बिछा कर स्वर्ग के द्वार पर, फूलों की मालाएं--फूल जो कभी कुम्हलाते नहीं; अप्सराएं, उर्वशी, मेनका फूलों के हार लिए। जुगलकिशोर जरा चौंके। मंदिर तो उन्होंने बनवाए थे; स्वर्ग जाएंगे, यह भी आश्वासन था। मुझसे पूछा भी था उन्होंने कि मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतना पुण्य किया, इतना दान किया, इतने ट्रस्ट, इस सबका क्या लाभ होगा? मन में कहीं संकोच तो रहा ही होगा, तभी आदमी पूछता है। कहीं भय भी रहा होगा कि कहीं यूं ही तो हाथ से सब पैसा बेकार नहीं जा रहा, कि इधर भी गए और उधर भी गए, न रहे घर के न घाट के, हो गए धोबी के गधे।
मैं तो हंस कर टाल गया था, क्योंकि सच्ची बात कहूं तो बूढ़े आदमी, मरने
के करीब, अब नाहक इनको क्या दुख देना! मरण-शय्या पर ही पड़े हैं। सच बात इनसे अब क्या कहो, बहुत देर हो गई। और झूठ तो मैं कह सकता नहीं, चाहे कोई मरण-शय्या पर ही पड़ा हो। सो मैं तो हंस कर टाल गया था। मगर जब उन्होंने देखा, तो पूछा उन्होंने द्वारपाल से, क्या इसी तरह सभी का स्वागत होता है? उन्होंने कहा कि नहीं, आपका स्वागत इसलिए हो रहा है कि आपने एंबेसेडर कार बनवाई। जुगलकिशोर और चौंके कि हद हो गई, मंदिर बनवाए, धर्मशालाएं खुलवाईं, यज्ञ-हवन करवाए, उनके कारण स्वर्ग नहीं मिल रहा है; एंबेसेडर कार बनवाई, उसके कारण स्वर्ग मिल रहा है! उन्होंने कहा, मैं कुछ समझा नहीं।
उन्होंने कहा, समझे नहीं, आप समझो। आपकी कार के कारण जितने लोगों को राम का स्मरण आया, और किसी के कारण नहीं आया। जो भीतर बैठते हैं, वे राम-राम कहते रहते हैं। जो उसको सड़क से निकलते देखते हैं, वे एकदम राम-राम कह कर बगल में हट जाते हैं। क्या गजब की चीज आपने बनवाई, जिसमें हर चीज बजती है, सिवाय हार्न को छोड़कर! मीलों तक एकदम राम-राम जप जाता है। जहां से निकल जाती है एंबेसेडर कार, दूर-दूर तक सन्नाटा हो जाता है। एकदम लोग ध्यानस्थ हो जाते हैं। उसी के कारण आपका स्वागत हो रहा है।
अब बैठे होंगे कल्पवृक्ष के नीचे, हालांकि करेंगे क्या कल्पवृक्ष के नीचे! यही सोच रहे होंगे कि अब यहां कैसे एंबेसेडर कार का कारखाना खोलें। खुल जाएगा एकदम कारखाना। यहां सोचा कि वहां खुला।
यहां वृक्ष लगवाओ, वहां कल्पवृक्ष मिलेंगे। शास्त्र कहते हैं: यहां
एक रुपया दान दो, वहां करोड़ गुना पाओ। देखा, लाटरी बहुत पुरानी चीज है! यह कोई नई बात नहीं। भारतीय सरकारों को नाहक गालियां मत दो कि ये लाटरी खिलाना सिखाती हैं लोगों को। ये तो शास्त्रीय हैं बातें। ये तो धार्मिक हैं। यह तो महात्मा पहले से ही खिलाते रहे। और कम से कम यहां लाटरी है तो यहीं पैसा मिलता है; वह लाटरी तो ऐसी है कि पता नहीं आगे मिले कि न मिले, यह रुपया भी गया। मगर पंडित-पुरोहित धंधा ही अदृश्य का करते हैं; नगद रुपया लेते हैं और उधार आश्वासन देते हैं। वह मिलेगा मरने के बाद। चिट्ठियां लिख देते हैं। हुंडियां लिखी जाती हैं। हुंडी लिखी जाती है और मुर्दे के साथ रख दी जाती है कि दिखा देना, भंजा लेना।
तो देवता वे हैं जो पुण्य करके धर्मशालाएं वगैरह बना कर स्वर्ग में पहुंच गए हैं। यह तुम्हारी धारणा है। फिर स्वभावतः वहां भी वही राजनीति

चलेगी, क्योंकि एक पहुंच गया स्वर्ग में, इंद्र हो गया, तो वह दूसरे महात्मा को इंद्र नहीं होने देता। क्योंकि अब दूसरा महात्मा तैयारी कर रहा है, तो इंद्रासन डोलता रहता है। इंद्रासन डोलता ही रहता है, शास्त्रों में जब देखो तब ज्यादा काम यही होता है कि इंद्रासन डोल रहा है। कोई बेचारा ऋषि-मुनि...बस भेज दी अप्सराएं। और ऋषि-मुनि एकदम अप्सराओं के कारण भ्रष्ट हो जाते हैं, देर नहीं लगती।
सिर्फ मेरे संन्यासियों को कोई अप्सराएं भ्रष्ट नहीं कर सकतीं, क्योंकि वे अप्सराओं को पहले ही भ्रष्ट कर चुके हैं। अब क्या अप्सराएं उनको भ्रष्ट करेंगी! अगर मेरे संन्यासी के पास उर्वशी वगैरह आए, तो वह कहेगा: बाई, जा, आगे बढ़। किसी पुराने ढंग के ऋषि-मुनि को खोज। मेरे संन्यासी से तो इंद्र की छाती कंपती होगी कि अगर ये संन्यासी यहां आ गए तो इन पर कोई पुराने दांव-पेंच चलेंगे नहीं। पुराने दांव-पेंच चल जाते थे बेचारे ऋषि-मुनियों पर, भूखे बैठे हैं, दबाए बैठे हैं वासना को, पत्नियों को छोड़ आए हैं, तो वही-वही उबल रहा है भीतर। और यहीं आ गई इसी बीच उर्वशी, अब करें भी तो क्या करें! अब एकदम से भ्रष्ट न हों तो और क्या करें! तो योग-भ्रष्ट होते थे। देवताओं का धंधा यह कि दूसरों को भ्रष्ट करें। यह भी खूब देवता हुए।
ऐसा अर्थ मत करना, नहीं तो शंकराचार्य का पूरा पद व्यर्थ हो जाएगा। और वृद्ध से ऐसा अर्थ मत करना कि जिनकी उम्र ज्यादा है। वृद्ध से उम्र का कोई लेना-देना नहीं। नहीं तो बूढ़े गधे बहुत हैं। एक से एक पहुंचे हुए गधे हैं। उम्र ही उनकी बस एकमात्र काफी प्रमाण है कि वे जो कहते हैं सो ठीक कहते हैं।
उम्र से कुछ भी नहीं होता। अनुभव ही प्रौढ़ता लाता है। और अगर उम्र से
ही शंकराचार्य का मतलब हो, तो खुद शंकराचार्य को कोई सम्मान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वे तो तैंतीस साल में चल ही बसे। बूढ़े तो हुए ही नहीं, तैंतीस साल में ही तो खातमा हो गया। तो उनका अर्थ वृद्ध से उम्र नहीं है, प्रौढ़ता है, अनुभव की परिपक्वता है।
और उपासना से भी अर्थ तुम पूजा का मत लेना, नहीं तो सब खराब कर दोगे। मेरा अर्थ समझने की कोशिश करो।
"कौन-कौन उपासना के योग्य हैं?"
उपासना शब्द बहुत सीधा है। वे कौन-कौन हैं, जिनके पास बैठने के योग्य हो। उपासना का अर्थ होता है: पास बैठना, उप-आसन। जैसे तुम मेरे पास बैठे हो, यह उपासना है। पास किसके बैठा जा सकता है? पूजा का कोई सवाल नहीं है। पूजा तो मूढ़ करते हैं, लोभी करते हैं, किसी लोभ के कारण करते हैं।
उपासना का अर्थ है सत्संग। सत्संग के कौन योग्य है? किसके पास बैठें?
वह कौन है जिसके पास बैठने से क्रांति हो जाएगी? जले हुए दीए के पास अगर बुझा हुआ दीया बिठा सको, तो एक निकटता का क्षण है, एक फासला है, जिस फासले की सीमा को पार करते ही बुझा दीया भी जला हुआ दीया हो जाता है।
तुमने हजारों बार जले दीए से बुझे दीए जलाए हैं, हर दीपावली को जलाते हो। वही प्रक्रिया उपासना की है। किसी जले हुए दीए के पास बैठो, और पास से पास आते जाओ। ऐसे पास आ जाओ कि तुम्हारा बुझा दीया भी जल उठे। अर्थ है इसका सत्संग।

उनको देखा है...।
उनको इक बार फिर से देखा है।
यूं तो देखा है पहले भी उन्हें,
आज जानो-जिगर से देखा है।
खुद को देखा है उनकी आंखों से,
उनको उनकी नजर से देखा है।
जहां खो जाते हैं राहो-मंजिल, उनको उस रहगुजर से देखा है।
इधर से देखी है सीढ़ियों पर धूप चांदनी को उधर से देखा है।
उनमें देखा है इक शब्दों का सनम,

एक चुप्पी को मुखर देखा है।
एक खुशबू जो इस जहां की नहीं,
उनका गुल उस खुशबू से तर देखा है।
सम्हाले चलते हैं वो इक छलकता सागर, ये उनके पांवों-सर से देखा है।
आंखों से पी है उनके रूप की मय,
और शायद अधर से देखा है।
आंखें ये जब लगीं होने खाली,
तब उन्हें आंख भर के देखा है।
उनको देखा था शहर में इक दिन
अब उन्हें उनके घर से देखा है।
चांद को देखा है जमीं से बहुत जमीं को चांद पर से देखा है।
हसीं है वादियों का अंधेरा भी, रोशनी के शिखर से देखा है।
डुबोने वाले हैं अक्सर साहिल ही, ये नजारा लहर से देखा है।
कितने नाजुक हैं हकीकतों के महल, ख्वाब के कांचघर से देखा है।
यूं तो देखा है घड़ी भर को उन्हें, पर लगे उम्र भर से देखा है।
लंबी पहचान भी है कुछ यूं ताजी, ज्यूं प्यार की पहली नजर से देखा है।
जले हैं उस तरफ चिरागों पे चिराग, उनका जलवा जिधर से देखा है।
इश्क में बुझके भी जलने की अदा,
इन पतंगों के पर से देखा है।
लफ्जों के दायरे हैं कितने छोटे,
ये लफ्जों से गुजर के देखा है।
हम भला देखते उन्हें कैसे?
उनके मेहरो-असर से देखा है।
उनको एक बार फिर से देखा है।

उपासना का अर्थ है: किसी बुद्ध पुरुष के पास बैठना। और बैठने में ही पीना शुरू हो जाता है। बैठना भर आ जाए--मौन, शून्य, खाली, निर्विचार, निर्विकल्प--और पीना शुरू हो जाता है।

दीवानगी से काम लिया और पी गए
बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।

दैरो-हरम के नाम पे पीना हराम है
हमने तुम्हारा नाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।
याद आ गईं किसी की निगाहें झुकी हुई नजरों से इक सलाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।

दुनिया की बेवफाई पे हंस कर उठाया जाम दुनिया से इंतकाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।

बैठो भर, उपासना भर हो जाए कि पीना भी हो जाता है। क्योंकि किसी भी सदगुरु का सत्संग मयकदा है। कोई भी सदगुरु शराब से भरी हुई सुराही है। तुम जाम बनो, तुम पास आओ कि शराब छलकने को राजी है, तुम्हारे जाम को भर देने को राजी है। दूर-दूर नहीं, पास-पास, करीब से करीब, निकट से निकट--उस सामीप्य का नाम है उपासना।
"कौन-कौन उपासना के योग्य हैं?"
के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः।
गुरु उपासना के योग्य है। गुरु कौन है? वह नहीं जो तुम्हें सत्य दे देता है; वरन वह जो तुम्हें सत्य की प्यास दे देता है; जो तुम्हें तिश्नाकाम बना देता है; जो तुम्हें प्यास से भर देता है। सत्य तो नहीं दिया जा सकता।
सत्य के संबंध में एक बात, एक शाश्वत नियम: सत्य दिया नहीं जा सकता, मगर लिया जा सकता है। जब एक जलते हुए दीए से दूसरे बुझे हुए दीए में ज्योति जाती है, तो क्या तुम सोचते हो जलते हुए दीए का कुछ खो जाता है, कुछ कम हो जाता है?
नहीं, बिलकुल नहीं। न कुछ खोता, न कुछ कम होता। इसलिए जले हुए दीए ने कुछ भी दिया नहीं, लेकिन बुझे हुए दीए ने कुछ लिया जरूर, बहुत कुछ लिया, सब कुछ लिया। कहां बुझा था, कहां जला हो गया! असल में दीया न कह कर लिया कहना चाहिए, क्योंकि दीया देता तो कुछ भी नहीं, जब भी लेता है तो लेता ही है। मगर हमारी भाषा अजीब तरह के लोग बनाते हैं। चलती हुई चीज को गाड़ी कहते हैं। गाड़ी कहना चाहिए गड़ी हुई चीज को। क्या गजब के लोग हैं, चलती को गाड़ी कहते हैं। कहते हैं--चलती का नाम गाड़ी! अरे तो फिर गाड़ी का नाम क्या? ऐसे ही लिए का नाम दीया रख छोड़ा है।
सदगुरु देता नहीं, लेकिन शिष्य लेता है। यही उपासना का जादू है। गुरु
का कुछ खोता नहीं, शिष्य को सब मिल जाता है। गुरु कौन है? जिसके पास बैठने से मिल जाए। जो दे नहीं और तुम्हें मिल जाए। जिसका कुछ घटे नहीं और तुम्हारा सब भर जाए। जो जितना भरा था उतना ही रहे।
ईशावास्य का प्रसिद्ध वचन है: वह भी पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। पूर्ण
से पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। पूर्ण में पूर्ण को जोड़ भी दें तो भी पूर्ण में कुछ बढ़ती नहीं होती, उतना ही पूर्ण। सदगुरु उस पूर्ण अवस्था को उपलब्ध है, जिससे तुम जितना चाहो ले लो, पीछे फिर भी पूर्ण शेष ही रहेगा।
और देवता कौन है? इस शब्द को भी हम समझने की कोशिश करें। देवता शब्द बनता है दिव से। दिव से ही बनता है दिव्य। दिव से ही बनता है दिवस। दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डिवाइन। दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डे। और तुम चकित होओगे, दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डेविल भी। दिव का अर्थ होता है: प्रकाश। जो प्रकाशवान है। इसलिए दिवस कहते हैं हम, डे कहते हैं। जो प्रकाशवान है वही दिव्य है। जो ज्योतिर्मय है।
उपनिषद के ऋषियों ने गाया है: तमसो मा ज्योतिर्गमय। अंधेरे से मुझे ज्योति की तरफ ले चलो। मृत्योर्मा अमृतंगमय। मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो। असतो मा सदगमय। असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चलो। मगर सारी बात आ गई है एक ही सूत्र में--तमसो मा ज्योतिर्गमय। मुझे अंधेरे से रोशनी की तरफ ले चलो।
जो भी ज्योतिर्मय है, वह देवता। सच में इसीलिए चांद को भी देवता कहा, सूरज को भी देवता कहा, अग्नि को भी देवता कहा, क्योंकि वे सब ज्योतिर्मय हैं। और इसीलिए गुरु को भी देवता कहा, क्योंकि वह भी ज्योतिर्मय है। और चांद से, सूरज से, अग्नि से ज्यादा ज्योतिर्मय है, क्योंकि चांद एक दिन बुझ जाएगा और सूरज भी एक दिन बुझ जाएगा। कभी नहीं था, कभी नहीं हो जाएगा। एक दिन उसका तेल चुक जाएगा। रोज चुक रहा है। चौबीस घंटे जलेगा तो तेल तो चुकता ही रहेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि संभवतः चार हजार सालों में सूरज बुझ जाएगा। अगर उसके पहले आदमी ने पृथ्वी से किसी और पृथ्वी पर अपना आवास कर लिया तो ठीक, अन्यथा पृथ्वी बरबाद हो जाएगी, अपने आप बरबाद हो जाएगी। सूरज बुझा कि सब बुझ जाएगा, जीवन समाप्त हो जाएगा।

कुछ आश्चर्य की बात न होगी कि शायद इसीलिए ही एक गहन आकांक्षा आदमी के किसी अचेतन तल से उठी है कि चलो चांद पर चलें, कि चलो मंगल पर चलें, कि चलो दूर चांदत्तारों की खोज करें। आज उसका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है, लेकिन अचेतन में कहीं यह प्रतीति भीतर मनुष्य के उठ रही है कि यह पृथ्वी के दिन अब थोड़े ही बचे हैं, इस पृथ्वी को छोड़ना ही पड़ेगा। साफ नहीं है यह सब, धुंधला-धुंधला है; लेकिन प्रकृति और जीवन बड़े धुंधलके में काम करता है।
तुमने देखा सेमर में बीज लगते हैं। तो बीज के चारों तरफ सेमर की रुई लपटी रहती है। वह क्यों लपटी रहती है? सेमर बड़ा वृक्ष है। अगर बीज उसमें से गिरें, और वृक्ष के नीचे ही गिरेंगे, तो उनमें से कभी पौधे पैदा न हो सकेंगे। इसलिए सेमर का अचेतन चित्त अपने बीजों के पास रुई को पैदा करता है, ताकि बीज नीचे न गिर सकें। रुई लगी रहेगी तो हवा में उड़ जाएंगे। दूर-दूर निकल जाएंगे। नीचे गिरेंगे तो मर जाएंगे। दूर निकल जाना जरूरी है। कोई सेमर इसलिए अपने बीजों में रुई नहीं चिपकाता कि तुम्हारे तकिए बनें और गद्दे बनें। तुम्हारे तकिए-गद्दों से सेमर को क्या लेना! अपनी संतति को बचाना है, अपने बीजों को बचाना है। मगर सेमर को इसका कुछ पता नहीं, यह सब अचेतन है।
जिन लोगों ने लोगों को सूलियां लगते देखा, उन्होंने एक अजीब बात देखी
कि जब किसी व्यक्ति को सूली लगाई जाती है तो तत्क्षण उसकी जननेंद्रिय से वीर्य निकल भागता है--तत्क्षण, सूली लगते ही! वैज्ञानिक कहते हैं, इसका एक ही कारण है कि वे जो वीर्य-कण हैं, वे घबड़ा उठते हैं कि यह आदमी तो मरा, हम कोई राह खोज लें, कहीं जीवन मिल जाए, हम किसी ठीक गर्भ को पा लें! मिलता नहीं उन्हें कोई गर्भ, यह और बात है। मगर निकल भागते हैं, तेजी से निकल भागते हैं। इधर सूली लग रही है, उधर वीर्य-कण एकदम निकल भागते हैं।
शायद पृथ्वी के दिन लद गए हैं, यह प्रकृति के अचेतन में साफ है। सूरज
के ढलने के दिन करीब आ गए हैं। कोई चार अरब वर्ष से रोशनी दे रहा है, बहुत हो चुका। चुका जा रहा है। जल्दी ही एक दिन बुझ जाएगा। सूरज भी बुझ जाता है और चांद तो बेचारा बिलकुल उधार है; वह तो सूरज की ही रोशनी लेकर दोहराता रहता है। उसका धंधा तो बिचवइए का है, दलाल का है। वह तो फली भाई जहां काम करते हैं शेयर मार्केट में, वहीं काम करता है। इधर से लेना, उधर देना। उसके पास अपनी कोई रोशनी नहीं है। सूरज की रोशनी ले लेता है और लौटा देता है। जैसे दर्पण पर तुम टार्च से रोशनी डालो तो दर्पण लौटा देता है, ऐसे ही चांद लौटाता है। सूरज बुझेगा तो चांद बुझ जाएगा।
लेकिन सदगुरु की रोशनी कभी नहीं बुझती, क्योंकि वह बिना ईंधन के जलती है। वह अकेली रोशनी है जो बिना ईंधन के जलती है। ईंधन ही नहीं है, इसलिए बुझने का कोई सवाल नहीं। इसलिए सदगुरु को ही देवता कहा है। वह सदगुरु का ही दूसरा नाम है, दिव्यता का ही दूसरा नाम है। और सदगुरु को ही वृद्ध कहा है, उसकी उम्र कुछ भी हो।
शंकराचार्य की उम्र तैंतीस ही वर्ष थी, लेकिन वे वृद्ध थे। जीसस की उम्र तैंतीस ही वर्ष थी, लेकिन वे वृद्ध थे। और मोरारजी देसाई की उम्र पचासी वर्ष है, वे वृद्ध नहीं हैं, अभी बाल-बुद्धि से भरे हुए हैं। बाल-बुद्धि मूढ़ता के लिए अच्छा शब्द है। उम्र इनकी तेरह-चौदह साल से ज्यादा नहीं मानी जा सकती मानसिक रूप से। इससे ज्यादा बुद्धिमत्ता नहीं है। इससे ज्यादा औसत मानसिक उम्र नहीं है।
क्या गजब की बातें करते हैं! ब्रेजनेव आया तो कह दिया कि मुझसे कहा था ब्रेजनेव ने कि पाकिस्तान को खतम करो, इसको सबक सिखाओ।
अब ये गांधीवादी, सत्यवादी। एक हो गया राजा हरिश्चंद्र सत्यवादी, एक हुए मोरारजी देसाई सत्यवादी। दो ही तो सत्यवादी हुए दुनिया में! क्योंकि राजा हरिश्चंद्र ने सपने में देखा था कि किसी ब्राह्मण को दान कर दिया; इन्होंने पता नहीं किस सपने में सुन लिया कि ब्रेजनेव ने इनसे कहा है। सपने में ही सुना होगा।
ब्रेजनेव भी चौंका, सारा रूस चौंका कि यह बात तो कभी कही नहीं गई। मगर
वे जिद पर रहे कि नहीं, कही है। और अब बदल गए, क्योंकि वे कोई प्रमाण तो दे

नहीं पाए। अब कहने लगे, ब्रेजनेव ने नहीं कही थी, किसी और ने कही थी। उसका नाम मैं बताना नहीं चाहता।
अब नाम बताएं भी कैसे उसका! पहले तो यह कि ब्रेजनेव ने कही थी, यह कहा;
अब कहने लगे ब्रेजनेव ने नहीं कही थी, किसी और ने कही थी। अब उसका नाम नहीं बताना चाहते, क्योंकि नाम बताएंगे तो फिर सवाल उठेगा कि प्रमाण देना पड़ेगा।
ये बचकानी बातें हैं। अभी रोज कहते फिरते हैं वे जगह-जगह कि आसाम की समस्या का हल मेरे पास है। तो तुम जब प्रधानमंत्री थे तो भाड़ झोंकते रहे? आसाम की समस्या कोई नई समस्या है? तब तुम क्या करते रहे? तब तुम शिवांबुपान करते रहे और अब तुम्हारे पास आसाम की समस्या का हल है! लेकिन वह भी मैं तब तक नहीं बताऊंगा, जब तक सरकार मुझसे खुद न पूछे। तो ज्ञानी जैलसिंह ने उनको पत्र लिखा कि मैं पूछता हूं, आप आ जाइए। तो कल मैंने देखा उन्होंने कहा है कि पहले टिकट भेजिए।
किस तरह के लोग हैं! इन पर टिकट भी नहीं है दिल्ली जाने की! तो इनको मदर टेरेसा के किसी अनाथालय में भरती क्यों नहीं कर देते! दोनों का बड़ा सत्संग रहेगा। क्या बातें करते हैं लोग!
और मैं कहे देता हूं, इनको टिकट मैं देने को राजी हूं और जो हल निकलेगा
वह वही निकलेगा जो मैं तुम्हें कई दफा कह चुका हूं।
एक गांव में चोरी हो गई थी। कोई बता न सके हल; गांव में एक शेखचिल्ली था, उसने कहा मैं बता सकता हूं। पुलिस इंस्पेक्टर बहुत खुश हुआ। अधिकारियों ने कहा कि भई बता दो, हम यही तो परेशान हैं, कोई नहीं बता पा रहा।
गांव के लोगों ने कहा कि भाई, हो न हो यह शायद बता दे। क्योंकि एक दफा गांव में से हाथी निकला था, कोई न बता सका, क्योंकि रात को निकल गया और सुबह हमने उसके पैर रेत में बने देखे। किसी ने हाथी देखा नहीं था, सो इसी ने बताया था। कोई न बता सका, इसने तत्क्षण कह दिया, अरे यह कुछ भी नहीं। पांव में चक्की बांध के हरिणा कूदा होय! कुछ भी नहीं, पैर में चक्की बांध कर कोई हरिण कूदा है। इसमें कुछ चिंता की बात नहीं। यह है तो बड़ा ज्ञानी। हम सब रह गए थे, कि इसने बता दिया। तो शायद बता दे।
तो पुलिस अधिकारी ने कहा कि भाई, बता दो। उसने कहा कि यहां नहीं बताऊंगा; एकांत, बिलकुल अकेले में बताऊंगा। उसने कहा कि चलो भाई अकेले में...। ले चला गांव के बाहर। काफी दूर निकल गया। अधिकारी भी घबड़ाने लगा कि भई, यहां कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। आदमी क्या जानवर भी नहीं हैं। कोई गऊमाता भी नहीं चर रही है आस-पास, गोलोक भी पीछे छूट चुका। अब तो बता दे। उसने कहा, पास आओ, कान में कहूंगा। मजबूरी में उसने कान इसके पास कर दिया। कान में फुसफुसाया कि हो न हो, किसी चोर ने चोरी की है।
टिकट मोरारजी देसाई को मैं दे दूंगा। तुम जाकर ज्ञानी जैलसिंह के कान में इतना बता दो।
ये शेखचिल्लियों की बातें हैं। ये बचकानी बातें हैं। अब इनको टिकट चाहिए! टिकट मिल जाए तो शायद कुछ और, कि लेने के लिए ज्ञानी जैलसिंह को आना चाहिए।
उम्र हो जाने से ही कोई वृद्ध नहीं होता। केवल सदगुरु को ही वृद्ध कहा
जा सकता है। वृद्ध का अर्थ होता है: जिसने जीवन को देख लिया, पहचान लिया कि व्यर्थ है; जिसने जीवन की असारता देख ली; जिसने जीवन की क्षणभंगुरता पहचान ली; जिसने जीवन में कुछ भी सार न पाया और जीवन में सार न देख कर जिसने मन की सारी दौड़ को समाप्त कर दिया। जो समाधिस्थ है वही सदगुरु है; वही देवता है, क्योंकि वही दिव्य है, वही ज्योतिर्मय है। और वही है उपासना के योग्य। शंकराचार्य का सूत्र यह प्यारा है।

मेरा स्वर्णिम भारत-39

ऋषि पृथ्वी के नमक हैं
(Note: from Anahad Mein Bisram (अनहद में बिसराम) #6)

पहला प्रश्नः ओशो,
लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।
लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है; लेकिन जो आदि ऋषि थे, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता था।
ओशो, वसिष्ठ के इस सूत्र को समझाने की अनुकंपा करें। क्या आदि ऋषि वास्तव में इतने ही श्रेष्ठ थे?

योग प्रतीक्षा!
साधु, और लौकिक! वह बात ही विरोधाभासी है। फिर साधु और असाधु में भेद क्या रहा? असाधु वह, जो लौकिक; जिसकी दृष्टि पदार्थ के पार नहीं देख पाती, पदार्थ में ही अटक जाती है; अंधा है जो। क्योंकि पदार्थ को ही देखने से बड़ा और क्या अंधापन होगा!
अस्तित्व परमात्मा से भरपूर है--सौंदर्य से, सत्य से, आनंद से; और तुम्हें केवल पदार्थ ही दिखाई पड़ता हो! एक बात जाहिर होती है उससे कि तुम्हारे पास सूक्ष्म को देखने की दृष्टि नहीं; सिर्फ स्थूल तुम्हारी पकड़ में आता है।
असाधु वह, जो स्थूल को ही पहचानता है। इतना ही नहीं, जो अपने अहंकार की रक्षा के लिए सूक्ष्म को इनकार भी करता है। क्षमा किया जा सकता है वह व्यक्ति, जो कहे कि मैं क्या करूं, अभी तो मुझे स्थूल ही दिखाई पड़ता है! हो सकता है, सूक्ष्म भी हो। खोजूंगा, तलाशूंगा, जिज्ञासा करूंगा। मैंने अपने चित्त के द्वार बंद नहीं कर लिए हैं। लेकिन वह व्यक्ति क्षमा नहीं किया जा सकता, जो कहता हो, पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। क्योंकि उसने सूक्ष्म के प्रवेश का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया। अब उसे व्यर्थ ही दिखाई पड़ेगा, सार्थक की कोई प्रतीति नहीं होगी।
इसलिए वसिष्ठ के इस सूत्र में पहला आक्षेप तो मुझे यह है कि वे कहते हैंः "लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते। वह जो लौकिक साधु है, उसकी वाणी अर्थ का अनुसरण करती है।"
लौकिक साधु जैसी कोई घटना ही नहीं होती। और अगर होती है, तो फिर उसे साधु न कहो। जिसको परमात्मा की जरा सी झलक भी न मिलती हो, उसे साधु कहोगे? जिसे किरण भी दिखाई न पड़ती हो, उसे आंख वाला कहोगे? जिसे सौंदर्य का बोध ही न होता हो, उसे कवि कहोगे? सौंदर्य-मर्मज्ञ कहोगे? जिसके जीवन में प्रेम की बूंदा-बांदी भी न हुई हो, उसे प्रेमी कहोगे?
लौकिक साधु तो सिर्फ पाखंडी है। यद्यपि यह सच है--और शायद इसीलिए वसिष्ठ ने यह सूत्र कहा--कि सौ साधुओं में से निन्यानबे लौकिक साधु हैं। ऐसा लगता है, वसिष्ठ कठोर नहीं होना चाहते होंगे, इसलिए बात को मिठास से कह दिया। कबीर जैसे न रहे होंगे।
कबीर ने कहा हैः कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
कि कबीर बाजार में खड़ा है, लट्ठ हाथ में लिए हुए।
कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना, चलै हमारे साथ।।
हो हिम्मत घर को जलाने की, तो आ जाओ, चलो हमारे साथ। लट्ठ लिए, कबीर कहते हैं, मैं खड़ा हूं बाजार में!
कबीर सीधी चोट करते हैं। उस चोट में कहीं कोई समझौता नहीं होता। वसिष्ठ सत्य को भी कहते हैं, तो लीप-पोत देते हैं। उसको भी थोड़ी सी मिठास, थोड़ी सी चासनी दे देते हैं!

लौकिक साधु? ऐसी कोई बात ही नहीं होती। लौकिक होगा, तो साधु नहीं। साधु होगा, तो लौकिक नहीं। यह तो विपरीत को एक साथ जोड़ देना हो गया। यह तो यूं हुआ, जैसे कोई कहे, अंधेरा दिन! यह तो आधी रात ऊगा हुआ सूरज हो गया! लेकिन एक अर्थ में वसिष्ठ ठीक कहते हैं कि निन्यानबे साधु, सौ में से, ऐसे ही हैं। नाम-मात्र के साधु! साधु का वेश है, साधु की आत्मा नहीं। साधु का आवरण है, साधु का अंतस नहीं। और आवरण बड़ी सस्ती बात है। आचरण भी बड़ी सस्ती बात है। कोई कठिनाई नहीं है साधु के आचरण में। थोड़े अभ्यास की बात है। दो बार भोजन न किया, एक बार भोजन किया। यह न खाया, वह न पीया। या जैसा कल डोंगरे महाराज ने बताया कि पानी पीओ, तो पहले प्रभु का स्मरण करो। पानी भी पीओ, तो प्रभु का स्मरण करो। भोजन करो, तो प्रभु का स्मरण करो। अगर अन्न बिना प्रभु के स्मरण के खाया, तो पाप खाया! पानी बिना प्रभु के स्मरण के पीया, तो पाप पीया!
ऐसे एक महापुरुष से मेरा मिलना हो गया था। मैं आगरा से गुजर रहा था; जयपुर से लौटता था, आगरा में कोई छह घंटे का समय था गाड़ी बदलने में। एक मित्र बहुत दिन से पत्र लिखते थे कि कभी आगरा से गुजरें--और आप जरूर गुजरते होंगे, क्योंकि जयपुर की खबरें मिलती हैं; और यहां छह घंटे स्टेशन पर रुकना ही होता होगा, तो मेरे घर को ही पवित्र करें।
तो मैंने कहा, ठीक। उन्हें खबर कर दी।
जानता तो नहीं था, पहचानता तो नहीं था; पत्र से ही मुलाकात थी। जो सज्जन लेने आए थे, उन्होंने आते ही से कहा कि बस, जल्दी करिए! कहीं मेरे बड़े भाई न आ जाएं!
मैंने पूछा कि आप ही मुझे पत्र लिखते थे?
उन्होंने कहा कि नहीं, पत्र तो मेरे बड़े भाई लिखते हैं। मगर मेरी और उनकी जानी दुश्मनी है। यह मौका मैं नहीं दे सकता कि आपका स्वागत वे करें। सो मैं पहले से ही हाजिर हूं! बंटवारा हो गया है। आधे मकान में वे रहते हैं, आधे में मैं रहता हूं। और आपको तो मेरा ही आतिथ्य-ग्रहण स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि मैं ही पहले आया हूं!
मैंने कहा, मुझे क्या फर्क पड़ता है! और आधा घर तुम्हारा, आधा बड़े भाई का! चलो, तुम्हारे साथ ही चल पड़ता हूं; तुम आ गए।
उनको लेकर बीच रास्ते पर ही पहुंचा था कि बड़े भाई आ गए! एकदम भागे हुए चले आ रहे थे! आते ही से बोल, ओम! मैंने पत्र लिखा था, उन्होंने कहा, और यह छोटा भाई आपको कहां ले जा रहा है? यह दुष्ट यहां भी आ गया! चलिए, बैठिए मेरे तांगे में!
छोटे भाई ने कहा कि देखिए, मैंने पहले ही कहा था कि जल्दी करिए। अगर बड़ा भाई आ गया, तो बस मुश्किल हो जाएगी!
और बड़ा भाई था भी पहलवान-छाप! छोटे भाई थे भी दुबले-पतले। तो बड़े भाई
ने आव देखा न ताव, उन्होंने तो सामान ही उतार कर मेरा भी हाथ पकड़ कर अपने तांगे में ही बिठा लिया! लेकिन एक उनकी खूबी थी कि कोई भी काम करते थे, तो पहले ओम कहते थे! मेरा हाथ पकड़ कर उतारा, तो ओम! मेरा बिस्तर उतारा, तो ओम! हालांकि कर रहे थे बिल्कुल गलत काम। क्योंकि वह छोटा भाई बेचारा चुपचाप खड़ा था। अब क्या कहे! और मैं देख रहा था कि अगर वे उसकी पिटाई भी करेंगे, तो पहले, ओम! और वही हुआ।
उनके घर पहुंच गया। बंटवारा कर लिया था घर का, लेकिन एक कक्ष बीच का, बड़ा कमरा था, वह खाली छोड़ रखा था; वह बांटा नहीं था। उसमें दोनों आ-जा सकते थे। बाकी तो प्रवेश असंभव था एक-दूसरे के घर में, मगर एक कमरा छोड़ रखा था। तो जैसे ही मैं बड़े भाई के घर में प्रविष्ट हुआ, दरवाजे पर ही उन्होंने कहा, ओम। आइए भीतर!
छोटे भाई ने अपने दरवाजे से कहा कि देखिए, आप इतनी कृपा करिए कि कम से
कम बीच के कमरे में रुकिए, वहां मैं भी आ सकता हूं, बड़े भाई भी आ सकते हैं। अगर आप उनके ही घर में रुके, तो मैं नहीं आ सकूंगा। मेरे घर में रुके, तो वे नहीं आ सकेंगे!
मैंने कहा, यह बात तो ठीक है।
लेकिन बड़े भाई ने कहा, ओम! और सामान उठा कर वे तो अपने घर में ही ले गए!

बड़े भाई फोटोग्राफर थे। सो उन्होंने कहा, इसके पहले कि छोटा भाई उपद्रव करे, और यह आएगा बार-बार दरवाजे पर और कहेगा कि मेरे घर आइए, और भोजन करिए; यह करिए, वह करिए; मैं आपकी तस्वीर उतार लूं। इसी के लिए असल में मैंने आपको पत्र लिखा था। यही एक आकांक्षा थी।
मैंने कहा, जैसी मर्जी! अब आपके हाथ में हूं, छह घंटे जो करना हो, करिए! तस्वीर भी क्या उतारी! हर चीज में ओम! बिल्कुल डोंगरे महाराज के भक्त थे! प्लग भी लगाएं, तो ओम! प्लग निकालें, तो ओम! मुझे कुर्सी पर बिठालें, तो ओम! कैमरा घुमाएं, तो ओम! प्लेट लगाएं, तो ओम! ओम से ही सब चीज शुरू हो!
एक कंघी ले आए और मेरे बाल बनाने लगे, और बोले, ओम!
मैंने कहा, देखें, मैं जैसा हूं, तुम मुझे वैसा ही छोड़ो!
एकदम नाराज हो गए। आदमी तो गुस्सेबाज थे ही। कहा, जैसी मर्जी! ओम कह कर कंघी फेंक दी और मेरे बाल एकदम छितरा दिए!
जब यह सब चल रहा था, तभी पड़ोस के एक सज्जन आ गए। उनको भी खबर मिल गई कि मैं आया हूं, तो आकर बैठ गए। यह फोटो उतर जाए, तो फिर वे मुझसे कुछ बात करना चाहते थे। तभी बड़े भाई की नौकरानी निकली, और उन सज्जन ने कहा कि बाई, एक गिलास पानी! गरमी के दिन थे। बस, एकदम बोले, ओम! अरे, मर्द बच्चा होकर शर्म नहीं आती स्त्री से पानी मांगते हो! नल सामने लगा है, भर लो और पी लो! मर्द होकर और स्त्री से पानी मांगना! फिर मेरी तरफ धीरे से बोले, ओम! यह मेरे भाई का दोस्त है। साले को ठीक किया!
ओम भी कहते जाते हैं!
ये जो तुम्हारे तथाकथित साधु हैं, ये ओम का उच्चार भी करते रहेंगे और
ओम के भीतर क्या-क्या नहीं भरा होगा! क्या-क्या नहीं उपद्रव होंगे! आचरण भी साध लेंगे, मगर ठीक आचरण से विपरीत इनका भीतर का जीवन होगा--ठीक विपरीत। दो दिगंबर जैन मुनियों में मार-पीट हो गई। होनी तो असंभव ही चाहिए यह बात। एक तो दिगंबर जैन मुनि, जिसने सब छोड़ दिया, कपड़े भी छोड़ दिए, अब क्या मार-पीट को बचा! लोग कहते हैंः जर, जोरू, जमीन, झगड़े की जड़ तीन! वे तो तीनों ही छूट गईं! मगर गजब के लोग हैं, फिर भी झगड़ा निकाल लिया! न जर है, न जोरू है, न जमीन है। कुछ भी नहीं है। दिगंबर जैन मुनि--कपड़े भी नहीं हैं, लंगोटी भी नहीं है--अब झगड़े का क्या उपाय है!
उसी दिन मुझे पता चला कि वह सूत्र पर्याप्त नहीं है। अरे, झगड़ा ही करना हो तो आदमी कर लेगा। जर, जोरू, जमीन की कोई जरूरत नहीं। जर, जोरू, जमीन तो बहाने हैं, खूंटियां हैं। झगड़ा टांगना है, कहीं भी टांग दो। खूंटी हुई, खूंटी पर टांग दो। न हुई, तो खीली पर टांग दो। खीली न हुई, तो खिड़की पर टांग दो, कुर्सी पर टांग दो। नहीं तो अपने ही कंधे पर टांग लो। मगर टांग लोगे। कुछ न कुछ उपाय...!
झगड़ा कहां हुआ? दोनों गए थे सुबह मल-विसर्जन को। एकांत में झगड़ा हो गया। एक-दूसरे की पिटाई कर दी। पिटाई काहे से की? और तो कुछ था नहीं; पिच्छी रखते हैं जैन मुनि। पिच्छी रखी जाती है कि कोई चींटी भी न मर जाए। पिच्छी में ऊन का बना हुआ गुच्छा होता है। छोटी सी डंडी होती है, ऊन का गुच्छा होता है। तो जैन मुनि कहीं बैठे, तो पहले पिच्छी से वह जगह को साफ कर ले। ऊन का गुच्छा इसलिए ताकि पिच्छी की चोट भी न लगे। अगर चींटी भी हो, तो ऊन के धक्के से उसे कोई चोट न लगे, हटा दी जाए; फिर बैठे। स्थान को साफ करके बैठे।
वही पिच्छी थी उनके पास। उसमें डंडा भी होता है लेकिन पिच्छी में! यह महावीर ने सोचा ही न होगा कि पिच्छी तो ठीक है कि चींटी बच जाएंगी, मगर डंडा! कभी मौका आ गया, तो काम आ जाएगा। आ गया उस दिन काम। एक-दूसरे ने पिच्छी से पिटाई कर दी! वह डंडे का उपयोग हो गया!
कुछ गांव के ग्रामीण लोगों ने पकड़ लिया उनको एक-दूसरे को मारते हुए।
वे पुलिस थाने ले गए। बामुश्किल उनको बचाया गया। जैनियों में बड़ी हड़कंप मची, क्योंकि उनके जैन मुनि इस तरह का व्यवहार करें, जो निरंतर आत्मज्ञान की बात करते हैं! जो जीवन को तपाते, तपश्चर्या करते, साधना करते!
और इनके झगड़े का कारण क्या? जब पुलिस ने पूछताछ की, तो जो झगड़े का कारण
था वह और भी बड़ा मजेदार था! वह जो पिच्छी का डंडा था, बांस का डंडा, उसको

भीतर से पोला करके उसमें सौ-सौ के नोट भरे हुए थे! वह उनका बटुआ था, वह जो डंडा था!
अगर जैन मुनियों की पिच्छी देखो, तो डंडा जरूर गौर से देख लेना! क्योंकि वही है उनके पास। और कोई उपाय नहीं है मगर। आदमी इतना होशियार है कि उसको डंडे को पोला करके अंदर उसमें गिड्डियों पर गिड्डियां उन्होंने भर रखी थीं! झगड़ा यह हो गया कि बंटवारा, जो बड़े मुनि थे वे ज्यादा चाहते थे छोटे मुनि से। सीनियारिटी का सवाल था! और छोटे मुनि भी बराबर चाहते थे; नहीं तो, वे कहते थे, हम पोल-पट्टी उखाड़ देंगे! शड्यंत्र में कहीं कोई सीनियर-जूनियर होता है! यह कोई सरकारी दफ्तर थोड़े ही है!
इसी पर झगड़ा हुआ। इसी पर मार-पीट हो गई। रुपए भी पकड़े गए। और जैनियों
ने किसी तरह रिश्वत खिला कर मामले को दबाया कि कहीं यह पता न चल जाए सबको! मेरे पास आए कि क्या करना चाहिए?
मैंने कहा कि अखबारों में खबर देनी चाहिए! फोटो छापने चाहिए!
उन्होंने कहा, आप क्या कहते हो! अरे, हम यह पूछने आए हैं कि इसको किस तरह रफा-दफा करना! क्योंकि मुनि की प्रतिष्ठा का सवाल है। उसमें हमारे धर्म की भी प्रतिष्ठा का सवाल है।
मैंने कहा कि मेरे लिए भी धर्म की प्रतिष्ठा का सवाल है और मुनि की प्रतिष्ठा का सवाल है। निन्यानबे इस तरह के मुनि उस एक मुनि को डुबाए दे रहे हैं, जो सच्चा होगा। उसको बचाना है कि इन निन्यानबे को बचाना है! लेकिन लोग निन्यानबे को बचाने में लगे हैं; एक डूबे तो डूब जाए! संख्या का मूल्य है। हर जगह संख्या का मूल्य है।
तो वसिष्ठ इस अर्थों में, प्रतीक्षा, ठीक कहते हैं कि लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते। वे जो लौकिक साधु हैं...!
लौकिक अर्थात जो साधु नहीं हैं, बस दिखाई पड़ते हैं; नाम-मात्र को हैं। लेबिल साधु का है, भीतर कुछ और है। भीतर तो लोक ही है। अभी अलोक से कोई संबंध नहीं हुआ; अलौकिक से कोई नाता नहीं हुआ।
मगर यही तो तुम्हें मिलेंगे। फिर चाहे मुक्तानंद हों, चाहे अखंडानंद हों, और चाहे स्वरूपानंद हों, यही तुम्हें मिलेंगे। लौकिक साधु ही तुम्हें मिलेंगे। और तब यह सूत्र बड़ा सार्थक है। लौकिक साधु की बात को तुम ठीक से ख्याल में ले लो, तो सूत्र में बड़ी सार्थकता है।
सूत्र कहता है, ऐसे साधुओं की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है।
ऐसे साधुओं के पास अपनी कोई अंतरवाणी तो होती नहीं। अपना कोई अनुभव
तो होता नहीं। ऐसी तो कोई प्रतीति होती नहीं कि जिस शब्द को छू दें, वह जीवित हो जाए। ऐसा कोई जादू तो होता नहीं कि मिट्टी को छुएं और सोना हो जाए।
तो ऐसे व्यक्तियों की वाणी तो शास्त्रों का अनुसरण करेगी। शास्त्र में उनका अर्थ है; जीवन में उनके कोई अर्थ नहीं है। अर्थ गीता में है, वेद में है, कुरान में है, बाइबिल में है, धम्मपद में है। अर्थ स्वयं में नहीं है। और जो अर्थ स्वयं में नहीं है, वह अनर्थ है। उसे अर्थ कहो ही मत। क्योंकि गीता में जो अर्थ है, वह कृष्ण का अर्थ होगा, वह कृष्ण का अनुभव होगा। वह अर्जुन का भी नहीं बन सका! तो तुम्हारा क्या बनेगा?
कभी सोचो इस बात को। कितना सिर मारा कृष्ण ने, तभी तो गीता बनी! काफी सिर मारा! मगर अर्जुन भी बचाव करता गया। वह भी दांव-पेंच लगाता रहा। बड़ी देर तक यह मल्लयुद्ध चला। और अर्जुन ने जब अंततः यह कहा कि मेरे सब संदेह गिर गए; निरसन हो गया मेरे संदेहों का; तो भी मुझे भरोसा नहीं आता! मुझे तो यही लगता है कि वह घबड़ा गया कि बकवास कब तक करनी! मतलब यह आदमी मानेगा नहीं। यह खोपड़ी खाए चला जाएगा। यहां से बचाऊंगा, तो वहां से हमला करेगा। तर्क उसका हार गया, वह स्वयं नहीं हारा। क्योंकि महाभारत की कथा इस बात को प्रकट करती है कि जब पांडव मरे और उनका स्वर्गारोहण हुआ, तो सब गल गए रास्ते में ही; अर्जुन भी गल गया उसमें! सिर्फ युधिष्ठिर और उनका कुत्ता, दो पहुंचे स्वर्ग के द्वार तक। अगर अर्जुन को कृष्ण की बात समझ में आ गई थी और जीवन रूपांतरित हो गया था, तो गल नहीं जाना चाहिए था। महाभारत की कथा इस बात की सूचना दे रही है कि अर्जुन को भी अनुभव नहीं हुआ। मान लिया, कि अब कब तक तर्क करो! कब तक प्रश्न करो! इससे बेहतर है निपट ही

लो। उठाओ गांडीव, जूझ जाओ युद्ध में। मरो, मारो, झंझट खत्म करो। इस आदमी से बचाव नहीं है! इस आदमी के पास प्रबल तर्क हैं।
मगर तर्क से कोई रूपांतरित नहीं होता। अर्जुन भी रूपांतरित नहीं हुआ। कृष्ण का अर्थ अर्जुन का भी अर्थ नहीं बन सका, जो कि आमने-सामने थे; जिनमें मैत्री थी, संबंध था, एक-दूसरे के प्रति सदभाव था। तो तुम्हारे और कृष्ण के बीच तो पांच हजार साल का फासला हो गया। तुम क्या खाक कृष्ण के अर्थ को अपना अर्थ बना पाओगे! तुम्हें तो अपना अर्थ खुद खोजना होगा।
हां, यह बात जरूर सच है, तुम अगर अपना अर्थ खोज लो, तो तुम्हें कृष्ण का अर्थ भी अनायास मिल जाएगा। क्योंकि सत्य के अनुभव अलग-अलग नहीं होते। सत्य को मैं जानूं, कि तुम जानो, कि कोई और जाने; अ जाने, कि ब जाने, कि स जाने; सत्य का अनुभव तो एक होता है। सत्य का अनुभव हो जाए, तो बाइबिल और वेद और जेन्दावेस्ता, सब के अर्थ एक साथ खुल जाएंगे।
लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आपने ये सारे शास्त्र पढ़े हैं?
अब जैसे यह सूत्र मैंने इसके पहले कभी पढ़ा ही नहीं। यह वसिष्ठ का सूत्र भी है, यह भी मुझे पक्का नहीं। यह तो जो प्रश्न पूछा है प्रश्नकर्ता ने, उसको मान कर मैं उत्तर दे रहा हूं। मैंने यह सूत्र कभी पढ़ा नहीं। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं।
लोग मुझसे पूछते हैं, क्या आपने ये सारे शास्त्र पढ़े हैं?
पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। एक शास्त्र मैंने पढ़ा--अपने भीतर। और उसको
पढ़ लेने के साथ ही सारे शास्त्रों के अर्थ प्रकट हो गए। अब तुम कोई भी शास्त्र उठा लाओ, मेरे पास अपनी रोशनी है जिसमें मैं उसका अर्थ देख लूंगा। इससे क्या फर्क पड़ता है! मेरे पास दीया जला हुआ है, तुम वेद लाओगे, तो वेद उस दीए की रोशनी में झलकेगा। और तुम कुरान लाओगे, तो कुरान झलकेगी। और तुम धम्मपद लाओगे, तो धम्मपद झलकेगा। तुम जो भी ले आओगे, उस रोशनी में झलकेगा। दीए को क्या फर्क पड़ता है कि वेद सामने रखा है, कि कुरान, कि बाइबिल! दीए की रोशनी तो पड़ेगी सब पर समान, सम-भाव से।
तो मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि यह वसिष्ठ का सूत्र ही है। हो या न हो, इतना साफ है कि वह जो लौकिक साधु है, जिसको वसिष्ठ ने लौकिक साधु कहा है, उसके पास कोई अपनी अनुभूति की संपदा नहीं होती। भीतर तो वह बिल्कुल थोथा होता है। ईश्वर को मानता है, जानता नहीं। और जब तक जाना नहीं, तब तक मानने में कुछ मूल्य है? तब तक मानना असत्य है, बेईमानी है, पाखंड है। जो जाना है, बस उसको मानना। और जो न जाना हो, तब तक साफ रहे कि मैंने नहीं जाना है, तो कैसे मानूं? कम से कम ईमानदारी तो मत गंवा देना। धार्मिक होने के लिए कम से कम ईमानदारी तो अनिवार्य है।
और तुम्हारे तथाकथित विश्वासियों ने उतनी निष्ठा भी नहीं बरती। कोई हिंदू बन गया, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन। किसी ने जाना नहीं। यहां तक कि जो नास्तिक बना बैठा है, उसने भी कुछ जाना नहीं; उसने नास्तिकता उधार ले ली है। किसी ने आस्तिकता उधार ले ली है! तुम्हारा सारा जीवन उधार है! स्वभावतः, तुम्हारी वाणी किसी और के अर्थ का अनुसरण करेगी। तुम किसी
और का गीत गाओगे। गीत तो गा लोगे, मगर वह थोथा होगा। उसमें कोई गहराई न होगी, ऊपर-ऊपर होगा। शब्द ही शब्द होंगे, शब्दों के भीतर कोई संपदा न होगी। बुझे हुए दीयों की कतार होगी, मगर एक भी दीया जला हुआ नहीं होगा। क्योंकि अगर एक दीया भी जला हो, तो पूरी कतार ही जलाई जा सकती है, सारी दीपावली मनाई जा सकती है।
तो यूं सूत्र ठीक है; सिर्फ लौकिक साधु शब्द पर मेरा एतराज है। उसे साधु नहीं कहना चाहिए। समय आ गया कि हम उसे साधु न कहें। उसकी दृष्टि लौकिक है, तो क्यों साधु कहना? हां, यह हो सकता है, घर छोड़ कर चला गया हो। लेकिन घर छोड़ कर गया, वह भी लौकिकता है।
कैसा मजा है! एक तरफ तो ये तुम्हारे साधु कहते हैंः संसार माया। और दूसरी तरफ कहते हैंः संसार त्याग करो! माया का भी त्याग हो सकता है? जो है ही नहीं, उसका भी त्याग हो सकता है? यह क्या पागलपन की बात है!
रात तुमने सपना देखा कि तुम सम्राट थे। बड़ा तुम्हारा साम्राज्य था। स्वर्ण तुम्हारे महलों में ढेरों से भरा था। हीरे-जवाहरात के अंबार लगे थे। और सुबह तुम्हारी आंख खुली; तुम जाग गए। और तुमने पाया कि वह सपना था!

फिर क्या तुमसे यह कहना होगा कि भैया, सपने का अब त्याग करो! छोड़ो सपने को; वह सपना था! और क्या तुम यह कहोगे, छोड़ेंगे भाई। धीरे-धीरे छोड़ेंगे। अभी कैसे छोड़ें! शास्त्र के अनुसार छोड़ेंगे। पचहत्तर वर्ष की उम्र में संन्यास लेंगे, तब छोड़ेंगे! अभी कैसे छोड़ दें! अभी तो भोग लेने दो थोड़ा। अभी तो यह स्वर्ण-महल, ये हीरे-जवाहरात, यह साम्राज्य, यह मजा-मौज, अभी तो भोग लेने दो! अभी तो मैं जवान हूं। अभी छोड़ने की बात न करो। माना कि तुम जो कहते हो, ठीक ही कहते हो; ठीक ही कहते होओगे। क्यों तुम गलत कहोगे! क्यों तुम मुझे भरमाओगे! तुम साधु पुरुष हो! नमन करता हूं; चरण छूता हूं। तुम्हारी पूजा करूंगा, और याद रखूंगा। मगर समय पकने दो। जब पचहत्तर साल का हो जाऊंगा, तब इस सपने का बिल्कुल त्याग कर दूंगा। अरे, छोड़ना तो है ही। संसार माया है। कौन नहीं जानता है! मगर अभी नहीं। अभी समय नहीं। अभी समय आया नहीं। क्या तुम ऐसा कहोगे?
सपने को सपने की तरह जानने में ही सपना छूट गया। इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं कहता हूं, जब सपना ही है, तो छोड़ना क्या!
छोड़ना नहीं है, जागना है। भागना नहीं है, जागना है।
सदियों से तुम्हें भगोड़ापन सिखाया गया है। और भागने का अर्थ है, मूल्य बदलते नहीं; मूल्य वही के वही रहते हैं। कुछ लोग धन की तरफ दौड़े जा रहे हैं। उनका मूल्य भी धन है--कितना इकट्ठा कर लें! और फिर कुछ लोग हैं जो धन छोड़ कर भागे जा रहे हैं। उनका मूल्य भी धन है; उनकी कसौटी भी धन है-- कितना छोड़ दें! तुम त्यागियों को भी नापते हो, तो तराजू वही। राकफेलर को और बिड़ला को और टाटा को भी नापते हो, तो तराजू वही। और महावीर को और बुद्ध को नापते हो, तो भी तराजू वही! असली सवाल तराजू का है।
जैन शास्त्र वर्णन करते हैं, इतने हाथी, इतने घोड़े, इतना धन, इतना महल,
सब महावीर ने छोड़ दिया! यह हाथी-घोड़ों की गिनती, ये धन के अंबार, इनकी चर्चा शास्त्र इतने रस से करते हैं कि बात जाहिर है, वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हमारे महावीर कोई छोटे-मोटे साधु नहीं थे; बड़े साधु थे! महासाधु थे! देखो, कितना छोड़ा!
मापदंड क्या है? इसीलिए तो कोई गरीब आज तक, न तो हिंदुओं ने उसे अवतार माना, न बौद्धों ने उसे बुद्ध माना, न जैनों ने उसे तीर्थंकर माना! क्योंकि कसौटी ही पूरी नहीं होती। सवाल यह है, छोड़ा क्या? कितना छोड़ा? अब तुम कहो, हमने एक लंगोटी छोड़ दी। तो वे कहेंगे, भाग जाओ यहां से! लंगोटी छोड़ कर और तीर्थंकर होने के इरादे रख रहे हो! राजपाट कहां है? हाथी-घोड़े कितने हैं? अब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी भविष्य में। तीर्थंकर होने ही मुश्किल हो जाएंगे, क्योंकि राजपाट न रहे। अब तो सिर्फ इंग्लैंड में ही तीर्थंकर हो सकते हैं! या ताश के पत्तों में! कहते हैं, बस पांच ही राजा बचेंगे दुनिया मेंः चार तो ताश के पत्तों के और एक इंग्लैंड का। और इंग्लैंड का राजा ताश के पत्तों से भी गया-बीता है। ताश के पत्तों में भी कुछ अकड़ होती है; इंग्लैंड के राजा में वह भी नहीं! वह सिर्फ नाम-मात्र का!
तो अब तो इंग्लैंड में ही आशा समझो कि बुद्ध पैदा हों; तीर्थंकर पैदा हों; अवतार पैदा हों। भारत में तो असंभव। अब तो राजपाट रहे नहीं। अब साम्राज्य नहीं, हाथी-घोड़े नहीं, छोड़ोगे क्या? क्या कहोगे कि मैंने एक साइकिल छोड़ दी! कम से कम घोड़ा तो हो! क्या छोड़ोगे? और साइकिल छोड़ कर दावा करोगे तीर्थंकर होने का! लोग कहेंगे, लाज-संकोच न आई! अरे, शरम खाओ! है क्या तुम्हारे पास?
इसीलिए तो कोई कबीर को तीर्थंकर नहीं कहता। हालांकि कबीर में क्या कमी है किसी तीर्थंकर से! मगर कैसे कबीर को तीर्थंकर कहो? जुलाहे! छोड़ने वगैरह को कुछ है ही नहीं। पकड़ने को ही नहीं है; छोड़ने को कहां से लाओ! रोज बुन लेते हैं कपड़ा, रोज बेच लेते हैं। बस, किसी तरह खाना-पीना चल जाए। वह भी पूरा नहीं चल पाता; उसमें भी बड़ी झंझटें आ जाती हैं। बड़ी अदभुत कहानी है; सत्य वेदांत ने लिख कर मुझे भेजी है। बहुत प्यारी है। खूब सोचने जैसी है। और सिर्फ कबीर जैसे आदमी की जिंदगी में हो सकती है। कबीर की कीमत आंकनी मुश्किल है।

कहानी यह है कि कबीर को तो जो भी घर में आ जाए--और सुबह से बहुत से लोग आ जाते! कबीर की मस्ती में कौन न डूबना चाहे! कबीर के आनंद में कौन भागीदार न होना चाहे! दूर-दूर से लोग आ जाते। सुबह से कीर्तन छिड़ जाता। नाच होता, गीत होता। भीतर की शराब बहती। लोग मदमस्त होकर पीते। फिर भोजन का समय हो जाता, तो कबीर की आदत थी, वे लोगों से कहते कि भैया, यूं ही मत चले जाना। अरे, भोजन तो कर जाओ। अब आ ही गए, तो भोजन कर जाओ।
कभी दो सौ आदमी, कभी तीन सौ आदमी, कभी पांच सौ आदमी। गरीब कबीर की हैसियत क्या! बामुश्किल दिन भर कपड़ा बुन कर कितना बुनोगे? उधारी चढ़ती जाती! पत्नी परेशान, बेटा परेशान! एक दिन यह हालत हो गई कि जब पत्नी बाजार गई और दुकानदार से उसने भोजन के लिए प्रार्थना की कि घर में दो सौ आदमी बैठे हैं और मेरे पति ने निमंत्रण दे दिया है! मैं पीछे के दरवाजे से भाग कर आई हूं! जल्दी से कुछ चावल दो, घी दो, आटा दो।
उस दुकानदार ने कहा, अब बहुत हो गया। पहले का कर्ज चुकाओ। यह कर्ज बढ़ता ही जा रहा है। यह चुकेगा कैसे? मेरी दुकान तुम डुबा दोगे! यह कबीर का तो भजन चले और मेरा भंडा फूटा जा रहा है। कबीर तो हर किसी को निमंत्रण दे देते हैं! कबीर को पता है कि बर्बादी मेरी हो रही है! यह चुकेगा कैसे? कर्ज इतना हो गया है कि अब मैं और नहीं दे सकता।
पत्नी ने कहा, कुछ भी करो, आज तो देना ही होगा; इज्जत का सवाल है। मैं किस मुंह से जाकर कहूं! लोग बैठे हैं। भोजन तो कराना ही होगा।
उस दुकानदार की बहुत दिन से कबीर की पत्नी पर नजर थी। कबीर की पत्नी थी, सुंदर रही होगी। कबीर जैसे व्यक्ति की पत्नी हो, असुंदर भी रही होगी तो सुंदर हो गई होगी। कबीर का संग-साथ मिला होगा, रंग-रूप निखर आया होगा, प्रसाद उतर आया होगा। जहां चैबीस घंटे कबीर के आनंद की वर्षा हो रही थी, वहां कोई कुरूप कैसे रह जाएगा! सुंदर थी, बहुत सुंदर थी। नजर तो दुकानदार की बहुत दिन से थी, आज मौका देख लिया उसने कि आज यह फंस गई। उसने कहा कि अगर तेरी सच में ही ऐसी निष्ठा है, तो वायदा कर कि आज रात मेरे पास सोएगी। तो सारा कर्ज समाप्त कर दूंगा।
पत्नी ने कहा, जैसी मर्जी। भोजन तो कराना ही होगा।
कबीर की ही पत्नी थी। कोई साधारण लौकिक साधु की पत्नी नहीं थी। कबीर
की ही पत्नी थी। यह कबीर के ही योग्य थी बात। उसने कहा, ठीक है। अगर तुझे इससे ही हल हो जाता हो, तो ठीक है। यह निपटारा हुआ। और यह अच्छा रास्ता मिल गया। तूने पहले ही क्यों न कहा! यह रोज-रोज की परेशानी कभी की मिट गई होती। ठीक है, सांझ मैं आ जाऊंगी।
वह तो ले आई। उसने सब को भोजन करवाया। सांझ वर्षा होने लगी। बड़े जोर
से वर्षा होने लगी। वह सजी-संवरी बैठी। कबीर ने पूछा, कहीं जाना है या क्या बात है? तू सजी-संवरी बैठी है। बरसा जोर से हो रही है।
उसने कहा, जाना है, और जरूर जाना है। तुमसे क्या छिपाना है!
इसको प्रेम कहते हैं। तुमसे क्या छिपाना है!
पूरी कहानी कह दी कि यूं-यूं मामला है। कर्ज बहुत बढ़ गया है। आज दुकानदार देने को राजी न था। उसने तो कहा, आज रात अगर तू मेरे पास आकर रुक जाए पूरी रात, तो सारा कर्ज माफ कर दूंगा। तो कुंजी हाथ लग गई। अब कोई चिंता नहीं। अब तुम जितनों को निमंत्रण देना हो दो। यह मूरख इतने दिन तक बोला क्यों नहीं! यह बोल देता, तो कभी की बात ही खतम हो जाती। यह रोज-रोज की अड़चन तो न होती। तो मुझे जाना है।
कबीर ने कहा कि बरसा बहुत जोर की हो रही है। मैं तुझे छोड़ आता हूं!
यह सिर्फ कबीर ही कह सकते हैं। कबीर ने छाता लिया, पत्नी को छाते में छिपाया, उसे ले गए। और कहा कि तू भीतर जा, मैं बाहर बैठा हूं, क्योंकि बरसा बंद हो नहीं रही। जब निपट चुके, तो मैं तुझे घर वापस ले चलूंगा। रात भी अंधेरी है; बरसा भी जोर की है; तो मैं यहां बाहर छप्पर में बैठा रहूंगा! कबीर छप्पर में बैठ रहे। पत्नी ने दरवाजे पर दस्तक दी। दुकानदार वैसे
तो बड़ी उत्सुकता से राह देख रहा था, लेकिन डर भी रहा था। डर इसलिए रहा था कि पत्नी ने इतनी सहजता से हां भर दी थी कि उसे भरोसा ही न आ रहा था! कि एक दफे भी इनकार न किया! अरे, कोई सती-सावित्री होती, तो फौरन चप्पल निकाल लेती!

जो चप्पल निकाले, समझ लेना कि यह सती-सावित्री नहीं है! वह चप्पल निकालना ही जाहिर कर रहा है कि लंपट है।
एकदम हां भर दिया! भरोसा नहीं आ रहा था। और कबीर की पत्नी ऐसा हां भर दे! न लाज, न संकोच, न विरोध! एक चेहरे पर बदली भी न आई! जैसे कोई खास बात ही न हो। आएगी भी कि नहीं, यह भरोसा नहीं था। सोचता था कि धोखा दे गई। सोचता था कि ले गई सामान, आने-वाने वाली नहीं है।
लेकिन जब द्वार पर उसने दस्तक दी और दरवाजा खोला और पत्नी सामने खड़ी थी! सज-बज कर आई थी। जो भी घर में सुंदर था, पहन कर आई थी। घबड़ा गया; दुकानदार घबड़ा गया! पसीना छूट गया! सोचा न था कि पत्नी आ जाएगी। एक दफा तो आंख पर भरोसा न आया। और दूसरी बात देख कर और हैरान हुआ कि इतनी धुआंधार बरसा हो रही है, मूसलाधार, और पत्नी बिल्कुल भीगी नहीं है!
उसने पूछा कि इतनी मूसलाधार बरसा में मुझे भरोसा न था कि तू आएगी। मगर आई, यह ठीक। मगर यह चमत्कार क्या है कि तुझ पर तो बूंद भी नहीं पड़ी! तेरे कपड़े तो भीगे भी नहीं!
उसने कहा, भीगते कैसे! अरे, कबीर जो मुझे साथ लेकर आए; खुद भीगते रहे, छाते में मुझे छिपाए रहे। कहने लगे, मैं भीग जाऊं तो कोई बात नहीं, लेकिन तुझे तो अब उस दुकानदार के पास जाना है। उस बेचारे का क्या कसूर कि आज बरसा हो रही है!
वह तो दुकानदार और भी लड़खड़ा गया। उसने कहा, कबीर छोड़ गए! कबीर कहां हैं? गए कि यहीं हैं?
उसने कहा, गए नहीं। छप्पर में बैठे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, तू निपट जाए, पता नहीं बरसा रुके न रुके, रात अंधेरी है, तो ले जाने के लिए बैठे हैं! तो जल्दी निपट लो, तुम्हें जो करना हो कर लो, क्योंकि उनको ज्यादा देर बिठाए रखना भी ठीक नहीं। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में फिर उठ आना होता है, और फिर भजन-कीर्तन, और भक्त इकट्ठे होंगे!
पैरों पर गिर पड़ा वह दुकानदार। भागा; कबीर के पैर छुए। कबीर ने कहा कि
तू समय खराब न कर। तू अपना काम निपटा; हमें अपना काम करने दे। तू इन बातों में मत उलझ। अरे, यह पैर छूना वगैरह पीछे हो लेगा। सुबह आ जाना; भजन-कीर्तन कर लेना; वहीं पैर भी छू लेना। मगर अभी तू अपना काम निपटा।
उसने कहा, आप कहते क्या हैं! और मुझे न मारो। और मुझे न दुत्कारो। और मुझे गर्हित न करो। और मुझे अपमानित न करो!
कबीर ने कहा, नहीं, तेरा हम कोई अपमान नहीं कर रहे हैं। इन बातों का मूल्य ही क्या है?
यह होगी ज्ञानी की दृष्टि। कबीर को मैं कहूंगा तीर्थंकर। मेरे लिए कबीर ने कितने घोड़े और कितने हाथी छोड़े, यह सवाल नहीं। एक बात देख ली कि यह संसार और इसके मूल्यों का कोई मूल्य नहीं। इसकी नीति कुछ नीति नहीं, इसकी अनीति कुछ अनीति नहीं। सब व्यावहारिक बातें हैं। और उस परम सत्य को कुछ भी नहीं छूता है। वह परम सत्य सदा कुंवारा है, अछूता है। वह जल में कमलवत है। मगर कबीर को कौन तीर्थंकर माने? कौन अवतार माने? कौन कबीर को बुद्ध माने? वही मूल्य है। एक बंधा हुआ मूल्य है, धन का। तो जिनको तुम साधु भी कहते हो, उनको भी तुम साधु लौकिक कारणों से ही कहते हो। उन्होंने कुछ छोड़ दिया। जो तुम्हारे लिए बहुत मूल्यवान था, उन्होंने छोड़ दिया। बस, साधु हो गए!
मगर वसिष्ठ के सूत्र में बात कीमत की है। बात यह है कि ऐसे साधु की वाणी थोथी होगी। वह किसी और के अर्थ का अनुसरण करेगी। उसके पास अपना तो कोई अर्थ नहीं है; अपना कोई साक्षात्कार नहीं है। कहेगा कि मधु मीठा होता है, मगर यह उसका अपना स्वाद नहीं है।
और वसिष्ठ ने कहाः "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। और आदि ऋषि थे, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता था।"
प्रतीक्षा, इसमें आदि तूने कहां से जोड़ दिया? सूत्र तो सिर्फ इतना है, ऋषीणां! वे जो ऋषि हैं; वे जो ऋषि की अनुदशा को उपलब्ध हुए हैं। इसमें आदि का कोई सवाल नहीं है। लेकिन हम अनुवाद भी जब करते हैं, तो भी हमारी बुद्धि बीच-बीच में व्याघात उत्पन्न करती है। यह जिसने भी अनुवाद किया हो, उसने आदि ऋषि जोड़ दिया! क्योंकि हमारी धारणा यह है कि जो भी होना था श्रेष्ठ,

पहले हो चुका। स्वर्णयुग तो बीत चुका; अब तो कलियुग चल रहा है। अब कहां ऋषि! इसलिए आदि ऋषि! हालांकि सूत्र में कुछ आदि का सवाल नहीं है।
सिर्फ सूत्र तो इतना कह रहा हैः "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।"
वे जो ऋषि हैं, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। वे जो भी बोल देते हैं, वही सार्थक हो जाता है। वे जो भी बोल देते हैं...। वे बोलें तो, न बोलें तो; उनका मौन भी सार्थक होता है, उनकी वाणी भी सार्थक होती है। उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। उन्हें अपनी वाणी को किसी अर्थ के पीछे नहीं चलाना होता। वे तो बहते हैं, सरिता की भांति। अर्थ उनके साथ बहता है। इसलिए वे जो भी कहें, उसमें ही गरिमा होती है, गौरव होता है। वे जो भी कहें, उसमें ही सौंदर्य होता है।
ऋषि शब्द बड़ा प्यारा है। पहले उस शब्द को समझ लो। हमारे पास दो शब्द हैं--सिर्फ हमारे पास दो शब्द हैं सारी दुनिया में--कवि और ऋषि। दुनिया की सभी भाषाओं में कवि शब्द तो है, लेकिन ऋषि शब्द नहीं है। दोनों का अर्थ एक होता है, लेकिन थोड़े भेद से; जरा सा बारीक भेद, यूं बाल बराबर भेद, लेकिन जमीन और आसमान को अलग कर देता है।
कवि का अर्थ है, जिसे सत्य की कभी-कभी झलक मिलती है। और ऋषि का अर्थ है,
जो सत्य में ही ठहर गया। कवि का अर्थ है, जो दूर से, बहुत दूर से हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों को देखता है--मगर दूर से। और ऋषि का अर्थ है, जिसने वहीं निवास बना लिया; वह जो हिमाच्छादित शिखरों पर रहने लगा।
कवि के लिए सत्य एक किरण की तरह आता है और चला जाता है; एक झलक की तरह;
एक हवा का झोंका; यह आया, वह गया! मगर उस झोंके में भी कवि के भीतर फूल खिल जाते हैं। ऋषि स्वयं ही फूल हो गया। कवि का वसंत आता है, जाता है। ऋषि के लिए वसंत ही एकमात्र ऋतु है, चैबीस घंटे वसंत है। ऋषि का अर्थ है, जिसने ध्यान से सत्य को अनुभव किया; जिसकी आंखें खुल गईं, असली आंखें खुल गईं; जिसने पदार्थ में परमात्मा को देख लिया; जिसने संसार में मोक्ष को अनुभव कर लिया!
ऐसे ऋषि जो भी बोलें, साधारण से साधारण शब्द भी उनके हाथों में असाधारण अर्थ ले लेते हैं। और जिनको तुम साधु कहते हो, इनके हाथों में सुंदर से सुंदर शब्द भी बड़े कुरूप हो जाते हैं; अपंग हो जाते हैं।
सारी बात आदमी की है। शब्दों में कुछ नहीं होता, व्यक्तियों में होता है, व्यक्तियों की अनुभूतियों में होता है। अगर व्यक्ति के भीतर आह्लाद है, ईश्वर का उन्माद है, मोक्ष की मस्ती है, तो वह जो भी बोल दे, वही मंत्र है, वही श्लोक है, वही ऋचा है। और अगर व्यक्ति के भीतर वह परम उन्माद नहीं है, तो वह सुंदर-सुंदर शब्दों को बिठाता रहे, जमाता रहे--शायद कविता रच लेगा, भाषा के हिसाब से, व्याकरण के हिसाब से, छंद के हिसाब से, मात्रा के हिसाब से--लेकिन उसमें आत्मा नहीं होगी, वह लाश ही होगी।
लाश भी दिखाई पड़ सकती है बिल्कुल आदमी जैसी; लाश को भी तुम खूब सजा सकते हो। पश्चिम में तो लाश को सजाने का धंधा होता है। पश्चिम में तो बड़ा भय है मृत्यु का। होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि ईसाइयत, यहूदी, मुसलमान-- भारत के बाहर पैदा हुए तीनों धर्म--एक ही जीवन में भरोसा करते हैं। बस, एक ही जीवन; और कोई जीवन नहीं! तो घबड़ाहट स्वाभाविक है। यूं भी आदमी मौत से घबड़ाता है। यहां भी आदमी मौत से घबड़ाता है, जहां कि अनंत जीवनों का विश्वास है। पहले भी हम थे, आगे भी हम होंगे। मगर वह विश्वास ही है। घबड़ाहट तो भीतर होती है कि कौन जाने बचे न बचे! मगर पश्चिम में तो साफ ही है कि बचना नहीं है; एक ही जीवन है। बस, फिर दुबारा लौटना नहीं है। फिर तो कयामत की रात तक पड़े रहना है कब्र में। तो घबड़ाहट स्वाभाविक है।
जरा सोचो तो, कब आएगी कयामत! अनंत-अनंत काल तक कब्र में ही सड़ते रहोगे, सड़ते रहोगे, सड़ते रहोगे। गल जाओगे, हड्डी-हड्डी गल कर मिट्टी हो जाएगी, तब आएगी कयामत! पता नहीं, आएगी भी कि नहीं आएगी। और इतने काल तक तुम्हें पड़े रहना पड़ेगा कब्र में ही। घबड़ाहट है।
तो मृत्यु को झुठलाने का पश्चिम में बहुत उपाय होता है। इसलिए पश्चिम में एक धंधा ही हो गया है; पूरब में वैसा कोई धंधा नहीं है अभी। पश्चिम में धंधा है, मौत को सजाने वालों का धंधा! काफी लाभ वाला धंधा है। जब कोई मर

जाता है, तो उस पर हजारों रुपए खर्च होते हैं। उसको सजाया जाता है। जैसे कि कोई अभिनेताओं को सजाता है नाटक में। अब यह नाटक का अंत ही हो रहा है, आखिरी सजावट कर ही लेनी चाहिए। पटाक्षेप हो रहा है। पर्दा गिरने को है। गिर ही चुका है।
तो उसके चेहरे को सुंदर बनाते हैं, रंगते हैं; लाली देते हैं उसके गालों को, उसके ओंठों को। उसकी आंखों को काजल देते हैं। उसके बालों को रंग देते हैं। अगर बाल न हों, तो झूठे बाल लगा देते हैं। अगर दांत गिर गए हों, तो झूठे दांत लगा देते हैं। सुंदर कपड़े पहनाते हैं। इत्र छिड़कते हैं। फूलों से सजा देते हैं। आदमी यूं लगने लगता है, जैसे दूल्हा हो! दूल्हा भी फीका लगे। आदमी यूं लगने लगता है, जैसे यह कोई मरघट नहीं जा रहा है; यह कोई बारात निकल रही है! फिर खूबसूरत से खूबसूरत ताबूत, कीमती से कीमती ताबूत, उनमें उसकी लाश को सजाया जाता है। धोखा! हर तरह का धोखा!
लेकिन लाख उपाय करो, तो भी जिंदा आदमी जिंदा आदमी है और मरा हुआ आदमी मरा हुआ आदमी है। कितना ही सुंदर लगे!
उतना ही भेद कविता में और ऋचा में है। उतना ही भेद कवि में और ऋषि में है। ऋषि है जीवंत। मात्रा का उसे पता नहीं। अब कोई मीरा की कविताओं में मात्राएं हैं, कि कोई छंद है! अगर भाषा और मात्रा और छंद के हिसाब से तौला जाए, तो कबीर और मीरा की गिनती कहीं भी नहीं होगी। तब तो तुलसीदास बड़े कवि मालूम होंगे। कहते भी हैं कि तुलसीदास महाकवि। हैं भी वे महाकवि। बस लेकिन कवि ही हैं, ऋषि नहीं। कबीर कवि नहीं हैं, ऋषि हैं। शब्द अटपटे हैं, लेकिन उन शब्दों के पीछे गहन अर्थ चला आ रहा है। शब्द जीवंत हैं; पंख हैं उनमें, यूं कि अभी उड़ जाएं! किन्हीं पिंजड़ों में बंद नहीं।
तुलसीदास के शब्द कितने ही सुंदर हों, पिंजड़ों में बंद हैं। लेकिन तुलसीदास की महिमा! क्योंकि लोग तो व्यर्थ से प्रभावित होते हैं, सार्थक से तो घबड़ाते हैं। क्योंकि सार्थक तो झकझोर देता है। सार्थक तो आता है झंझावात की तरह, धूल झाड़ देता है। और तुमने धूल को समझ रखा है बड़ी कीमती! सो जो तुम्हारी धूल को और जमा दे, वही प्यारा लगता है।
तुलसीदास महाकवि! कबीरदास तो अटपटे हैं। सधुक्कड़ी उनकी भाषा है। पंडित कहते हैं, सधुक्कड़ी। उसके लिए भाषा ही अलग रख लिया है नाम, सधुक्कड़ी भाषा! संध्या भाषा! उलटबांसी! सीधी बात ही नहीं करते, उलटी बांसुरी बजाते हैं! कुछ का कुछ कहते हैं!
मगर कारण? कारण यह है कि कबीर कोई पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं हैं, कबीर कोई शास्त्रीय व्यक्ति नहीं हैं, मगर सत्य को जाना है। इसलिए बोलचाल की भाषा ही बोलते हैं, मगर उसमें ही वह सारा रस भर दिया है कि फूल फीके पड़ जाएं, वह सारी रोशनी भर दी है कि चांद-तारे फीके पड़ जाएं। छोटे-छोटे वचन, मगर बड़े से बड़े शास्त्रों का निचोड़ आ गया है।
इसलिए प्रतीक्षा, आदि ऋषि शब्द मत जोड़ो। आदि से क्या लेना-देना है? ऋषि का आदि से क्या संबंध? ऋषि तो आज भी होते हैं। जब भी सत्य को जाना, तभी ऋषि का जन्म हुआ।
ऋषि का अर्थ तो है, जिसे भीतर की देखने की आंख मिल गई। और तब यह बात सच
है कि ऋषि की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। वह अर्थ की चिंता नहीं करता, न व्याकरण की चिंता करता, न भाषा की चिंता करता। और इसलिए अनेक बार ऐसा हुआ है कि ऋषियों के बोलने के कारण नई भाषाएं पैदा हो गईं।
महावीर ने संस्कृत में नहीं बोला, प्राकृत में बोला। महावीर के बोलने
के कारण प्राकृत बनी। संस्कृत में एक पांडित्य है, एक आभिजात्य है। महावीर ने संस्कृत का उपयोग नहीं किया, बोलचाल की भाषा में बोले। उसमें वह पांडित्य नहीं है, लेकिन जीवंतता है।
बुद्ध पाली में बोले। पाली बोलचाल की भाषा है, बेपढ़े-लिखे आदमी की भाषा है। मगर बड़ी प्यारी! जब लोग शब्दों का उपयोग करते हैं, तो शब्दों के किनारे घिस जाते हैं, शब्दों में गोलाई आ जाती है, सौंदर्य आ जाता है। लोगों के शब्द घिसते-घिसते बड़े प्यारे हो जाते हैं! और जब भी कभी लोगों पर ऊपर से भाषा थोपी जाती है, तो कभी उस भाषा में प्राण नहीं आते। जैसा इस देश में उपयोग किया गया।

स्वतंत्रता के बाद इस देश में जिन्होंने सबसे बड़ी हानि हिंदी को पहुंचाई, वे थे डाक्टर रघुवीर, सेठ गोविंददास। दोनों मेरे निकट से परिचित व्यक्ति थे। और दोनों को मैंने कहा था कि तुम दुश्मन हो हिंदी के! हालांकि दोनों समझे जाते थे कि हिंदी के सबसे बड़े समर्थक हैं। मगर उन्हीं ने नष्ट किया।
भाषाएं ऐसे ऊपर से नहीं थोपी जातीं। रघुवीर ने कैसी भाषा थोपने की कोशिश की! हालांकि गणित ठीक था उनका; व्याकरण ठीक थी उनकी; सब बातें ठीक थीं। मगर भाषाएं जन्मती हैं; ऐसी थोपी नहीं जातीं। भाषाएं कृत्रिम नहीं होतीं। जनता जब सैकड़ों वर्ष तक उपयोग करती है शब्दों का, तो उन शब्दों में एक रस आ जाता है, एक जीवंतता आ जाती है। निरंतर के चलन से उनमें गोलाई आ जाती है। जैसे नदी में बहते हुए पत्थर गोल हो जाते हैं, शंकरजी की पिंडी बन जाते हैं। ऐसे प्रत्येक शब्द में...।
रघुवीर के शब्दों में गोलाई नहीं है और बेहूदापन है। हालांकि हिसाब
की दृष्टि से बिल्कुल ठीक हैं। अब जैसे रेलगाड़ी। तो रेलगाड़ी शब्द का ठीक-ठीक अनुवाद भाषा में करना हो, तो रघुवीर ने बिल्कुल ठीक किया, लोह-पथ-गामिनी!
मगर कौन इसका उपयोग करेगा? जिससे कहोगे, वही हंसेगा! किसी से कहोगे कि लोह-पथ-गामिनी से जा रहे हैं, तो वह पहले चैंक कर देखेगा, तुम होश में हो कि ज्यादा पी गए! क्या हो गया तुम्हें! लोह-पथ-गामिनी से जा रहे हो? तुम्हें जाने के लिए कुछ और उपाय न बचा? हालांकि लोह-पथ-गामिनी बिल्कुल ठीक रेलगाड़ी का ही अनुवाद है। रेल का अर्थ होता है, लोह-पथ। और लोह-पथ पर जो दौड़ती है, वह गामिनी, गमन करती है। बिल्कुल ठीक है, लोह-पथ-गामिनी!
इससे तो डाक्टर राममनोहर लोहिया बेहतर आदमी थे। उन्होंने जनता के शब्द चुनने की फिक्र की है। जैसे रिपोर्ट की जगह वे रपट लिखते थे। क्योंकि गांव का किसान जब कहता है, तो वह कहता है, भइया, रपट लिखवाई कि नहीं? रिपोर्ट घिस-घिस कर रपट हो गई! स्टेशन घिस-घिस कर टेशन हो गया! मगर जो टेशन में मजा है वह स्टेशन में नहीं। और जो रपट में बात है वह रिपोर्ट में नहीं। रपट में एक सचाई है। कबीर तो रपट लिखवाएंगे; रिपोर्ट नहीं लिखवाएंगे! कबीर टेशन जाएंगे, स्टेशन नहीं जा सकते!
अभी पांच सौ साल पहले ही नानक के कारण गुरमुखी भाषा पैदा हुई। सिर्फ नानक के कारण! क्योंकि नानक ने पंजाब की लोक-भाषा का उपयोग किया, और एक नई भाषा को जन्म दे दिया। मगर वह जन्म ऊपर से थोपा हुआ नहीं है; वह कोई कृत्रिम नहीं है। लोग जिस भाषा का उपयोग कर रहे थे सदियों से, उसी भाषा को छू दिया, और जादू हो गया!
ऋषि की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। ऋषि फिक्र नहीं करता कि शब्द क्या हैं, किन्हीं भी शब्दों को चला देता है, चलते हुए शब्दों को उपयोग में ले आता है, और उनमें बड़े अर्थ के फूल खिल जाते हैं।
यह सूत्र उपयोगी है। लेकिन इसमें से दो बातें छोड़ देना। एक तो लौकिक साधु जैसा कोई व्यक्ति होता नहीं। या तो कोई साधु होता है, या लौकिक होता है।
और दूसरी बात, आदि ऋषि गलत अनुवाद है। ऋषि सदा होते रहे, आज भी हैं, कल
भी होंगे। यह दुनिया उस दिन स्वाद खो देगी जिस दिन ऋषि पैदा न होंगे। जब तक ऋषि हैं, तब तक जमीन पर नमक है, तब तक जीवन में स्वाद है।
ऋषि का अर्थ केवल इतना ही है, जिसने देखा, अनुभव किया, जीया; जो जीकर बोला; जिसके बोलने में हृदय की धड़कन है।

मेरा स्वर्णिम भारत-40

चरैवेति, चरैवेति... ओ स्वर्णयुग!
(Note: from Bahutere Hain Ghat (बहुतेरे हैं घाट) #3)

पहला प्रश्नः कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।।
चरैवेति। चरैवेति।।
"जो सो रहा है वह कलि है, निद्रा से उठ बैठने वाला द्वापर है,
उठ कर खड़ा हो जाने वाला त्रेता है, लेकिन जो चल पड़ता है
वह कृतयुग, सतयुग, स्वर्ण-युग बन जाता है।
इसलिए चलते रहो, चलते रहो।"
ऐतरेय ब्राह्मण के इस सुभाषित का अभिप्राय समझाने का अनुग्रह करें।

नित्यानंद, यह सूत्र मेरे अत्यंत प्यारे सूत्रों में से एक है। जैसे मैंने ही कहा हो। मेरे प्राणों की झनकार है इसमें। सौ प्रतिशत मैं इससे राजी हूं। इस सूत्र के अतिरिक्त सतयुग की, द्वापर की, त्रेता की, कलियुग की जो भी परिभाषाएं शास्त्रों में की गईं, सभी गलत हैं। यह अकेला सूत्र है जो सम्यक दिशा में इशारा करता है।
यह सूत्र सतयुग से लेकर कलियुग तक की धारणा को समय से मुक्त कर लेता है; समाज से मुक्त कर लेता है; अतीत, भविष्य, वर्तमान से मुक्त कर लेता है और इसे प्रतिष्ठित कर देता है व्यक्ति की चेतना में, व्यक्ति के जागरण में, उसकी समाधि में।
और मेरे लेखे, न तो समाज सत्य है, न समय सत्य है; सत्य है तो केवल व्यक्ति। चूंकि व्यक्ति के पास स्पंदित प्राण है, जीवन है, बोध है, आत्मा है। समाज के पास न तो कोई आत्मा है, न कोई हृदय का स्पंदन है, न जागने की कोई संभावना है। जागने वाला ही वहां कोई नहीं; विवेक ही वहां कोई नहीं।
और समय तो मनुष्य की वासनाओं का विस्तार है।
अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। जो बीता सो बीता, अब कहीं भी नहीं है, सिवाय तुम्हारी स्मृतियों में। जैसे यात्री गुजर जाए और धूल उड़ती रह जाए; उड़ती हुई धूल यात्री नहीं है। जैसे गीत विदा हो जाए और गूंज रह जाए; गूंज गीत नहीं है। मंदिर की घंटियां बज चुकी हों और मंदिर के सन्नाटे में उनकी गूंज थोड़ी देर तक छाई रहे, वैसी ही तुम्हारी स्मृति है--अतीत की धूल से ज्यादा नहीं; अतीत के धुएं से ज्यादा नहीं। जो जा चुका है उसकी अनुगूंज। तुम्हारी स्मृति के सिवाय अस्तित्व नहीं है कोई अतीत का। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। भविष्य अभी आया ही नहीं है, उसका अस्तित्व कैसे होगा? लेकिन जो विक्षिप्त हैं वे अतीत में और भविष्य में ही जीते हैं। जो विमुक्त हैं वे वर्तमान में जीते हैं। क्योंकि वर्तमान ही केवल है। उसका न तुम्हारी स्मृति से कोई संबंध है और न तुम्हारी वासना से।
अतीत है स्मृतियों का संग्रह। जिन मुर्दों को तुम ढो रहे हो, वह अतीत है। जिन्हें तुम ढो रहे हो वे लाशें हैं--सड़ गईं, उनसे दुर्गंध उठ रही है। उस दुर्गंध ने तुम्हारा नर्क बना दिया है। मगर तुम लाशों को छोड़ते नहीं। तुम लाशों को सजाते हो। तुम लाशों की पूजा करते हो। तुम मुर्दों के भक्त हो। तुम मृत्यु के आराधक हो। और फिर अगर तुम्हारा जीवन इसी मृत्यु के नीचे दब जाता है, इसी जहर से विषाक्त हो जाता है, तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह स्वाभाविक निष्पत्ति है। और अगर किसी तरह अतीत से छूटे भी तो एक पागलपन से छूटते नहीं कि तत्क्षण दूसरे पागलपन में प्रवेश कर जाते हो। वह दूसरा पागलपन हैः भविष्य। अतीत है स्मृति और भविष्य है वासना, कल्पना--ऐसा हो, ऐसा हो जाए। और जैसा तुम चाहते हो वैसा कभी न होगा। कभी हो भी जाए भूल-चूक से, कभी संयोगवशात वैसा हो भी जाए--तुम्हारे किए तो नहीं, लेकिन संयोग से हो जाए--तो भी तृप्ति नहीं आएगी।
यहां जो असफल होते हैं वे तो असफल होते ही हैं और सौ में निन्यानबे प्रतिशत असफल होते हैं, और यहां जो सफल होते हैं, उनकी असफलता और भी बड़ी

है। असफलों से भी ज्यादा बड़ी है। क्योंकि जो असफल हुआ उसके मन में तो अभी भी आशा होती है कि शायद कल जीत द्वार खटखटाए। अभी उसका भविष्य समाप्त नहीं होता। अभी वासना आज से हट कर कल पर चली जाती है। वही तो वासना का ढंग है। वह हमेशा आगे सरकती रहती है। अतीत है तुम्हारी पीछे पड़ने वाली छाया और भविष्य है तुम्हारी आगे पड़ने वाली छाया। छायाओं का क्या भरोसा? तुम आगे हटते हो, छाया और आगे हट जाती है। छाया माया है। इस छाया को तो तुम माया नहीं कहते, संसार को माया कहते हो। जो है उसको माया कहते हो और जो नहीं है उसके साथ विवाह रचाए बैठे हो, उसके साथ गठबंधन कर लिया है। और जो "नहीं है" में जीएगा, वह खाली ही रह जाएगा, रिक्त ही मरेगा।
कभी संयोग से यह भविष्य पूरा भी हो जाए...याद रखना, संयोग से; तुम्हारे किए से कुछ भी नहीं हो सकता। तुम बहुत छोटे हो, अस्तित्व बहुत बड़ा है। जैसे बूंद सागर से लड़े, क्या जीतने की उम्मीद? जैसे पत्ता उसी वृक्ष से लड़े जिससे उसे रसधार मिल रही है, क्या कोई संभावना है विजय की? हार सुनिश्चित है। लेकिन कभी भूले-चूके, दांव कहीं ठीक ही लग जाए, तो और भी बड़ी हार, और भी बड़ी पराजय, और भी बड़ा विषाद घेर लेता है। क्योंकि जीत तो हाथ लगती है, लेकिन जीत ने जो भरोसे दिए थे, जो वायदे किए थे, वे कुछ भी पूरे नहीं होते। जिस दिन जीत हाथ में लगती है, उस दिन पता चलता हैः जीत से बड़ी कोई हार नहीं। क्योंकि जीवन जिसके लिए लगा दिया, जिसे सोना समझ कर दौड़े थे...।
और छोटे-छोटे लोग ही नहीं, तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़ रहे हैं! असली सीता को गंवा बैठे नकली स्वर्ण-मृग के पीछे! और यह सबकी कथा हैः असली को गंवा बैठते हैं लोग नकली के पीछे। सोने के मृग के पीछे भागे। पागल से पागल आदमी को भी समझ में आ जाएगा कि सोने के मृग कहीं होते हैं!
जगत को तो कहते हैं मृग-मरीचिका। यही राम जगत को तो कहते हैं कि जैसे सपने में देखा गया, माया, मृग-मरीचिका, जैसे कि मृग प्यासा भटक जाए मरुस्थल में और दूर उसे सरोवर दिखाई पड़े। और यही राम सोने के मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। किसकी मरीचिका बड़ी है? अगर मृग को मरुस्थल में प्यास के कारण दूर सूरज की किरणों के पड़ने से...।
सूरज की किरणों का एक ढंग है। जब खाली रेत पर वे पड़ती हैं और रेत उत्तप्त हो जाती है, तो उत्तप्त रेत किरणों को वापस लौटाने लगती है। उन किरणों की लौटती हुई तरंगें दूर से यूं मालूम पड़ती हैं जैसे कि पानी लहरें ले रहा हो। मालूम ही नहीं पड़तीं, प्रमाण सहित मालूम पड़ती हैं। क्योंकि जब सूरज की किरणें वापस लौटती हैं तो उनकी लहरें जलवत ही होती हैं। तरंगें होती हैं और उन तरंगों में पास खड़े वृक्षों की प्रतिछाया बनती है, जैसे सरोवर में बनती है। उस प्रतिछाया को देख कर मृग को भरोसा आ जाता है, तर्क पूरा हो जाता हैः पानी होना ही चाहिए, नहीं तो छाया कैसे बनेगी? और प्यास इतनी है कि पानी को मान लेने की स्वाभाविकता है। प्यास जितनी बढ़ जाती है उतनी ही आंखें प्यास से आच्छादित हो जाती हैं। जहां पानी नहीं है वहां भी पानी दिखाई पड़ने लगता है। और फिर प्रमाण सहित।
तो मृग अगर धोखा खा जाए, क्षमा-योग्य है; मगर राम को मैं क्षमा न कर सकूंगा, राम तो बिल्कुल अक्षम्य हैं। ये बातें तो ज्ञान की, और जो कर रहे हैं वह मृग से भी गया-बीता। सोने का मृग नहीं होता, इसे बुद्धू से बुद्धू आदमी को भी समझने में अड़चन न आएगी। लेकिन राम सोने के मृग के पीछे चले गए और गंवा बैठे सीता को।
और राम ही गलती में थे, ऐसा नहीं था; सीता भी गलती में थी। क्योंकि जब राम चिल्लाए दूर जंगल से कि मुझे बचाओ, मैं खतरे में पड़ गया हूं, तो सीता ने धक्के दिए लक्ष्मण को कि तू जा। राम कह गए थे पहरा देना। लक्ष्मण दुविधा में पड़ गया--राम की मानूं कि सीता की मानूं? और सीता ने ऐसी चोट की लक्ष्मण पर कि तिलमिला उठा। कहीं घाव तो था, छू दिया सीता ने। वह घाव और सीता का छूना बड़ा अर्थपूर्ण है। सीता ने कहा, "मुझे पहले से ही पता है कि तेरी नजर मुझ पर है, कि राम अगर मर जाएं तो तू मुझ पर कब्जा कर ले।"
और सीता ने यह बात यूं ही नहीं कही होगी। लक्ष्मण के इरादे नेक इरादे रहे होंगे! और इसीलिए तो हम पति के छोटे भाई को देवर कहते थे। देवर का मतलब होता थाः दूसरा वर। बड़ा विदा हो तो सीनियारिटी देवर की है। देवर का मतलब

ही यह होता है कि नंबर दो। पहला नंबर हटे कि नंबर दो कब्जा करे। "देवर" शब्द अच्छा नहीं है, घृणित है। उस शब्द का उपयोग भी नहीं होना चाहिए। दूसरा वर! पंक्ति में खड़ा है कि बड़े भैया, अब जाओ भी! अब बहुत हो गया। अब कुछ थोड़ा जो बचा-खुचा है, मुझ गरीबदास को भी मिले!
यह लक्ष्मणदास पहले से ही इरादा यूं रखते थे। सीता ने चोट गहरी की। और चोट असली रही होगी, नहीं तो लक्ष्मण मुस्कुरा कर टाल जाता। कहताः "हंसी- मजाक न कर भाभी। मैं जाने वाला नहीं हूं।" लेकिन यह चोट कहीं पड़ी, घाव को छू गई, मवाद निकल आई होगी। गुस्से में आ गया।
यह गुस्सा यूं ही नहीं आता। जब तुम्हें कोई गाली देता है, और गाली अगर
खल जाती है तो मतलब यह था कि उसने छू दिया कोई तुम्हारा कोमल अंग, जिसे तुम बचाए फिरते थे।
मुझे इतनी गालियां पड़ती हैं, कोई चिंता नहीं, कोई कोमल अंग नहीं, कुछ छिपाया नहीं। मजा लेता हूं कि कैसे-कैसे प्यारे लोग हैं! कितना श्रम उठाते हैं! जितनी मेहनत गालियां देने में करते हैं, इतने में उनका गीत फूट सकता है। जितना श्रम मुझे गालियां देने में बिता रहे हैं, इतना श्रम अगर गीतों में लगा दें तो उनके जीवन में भी झरने बह उठें! उन पर मुझे दया आती है। लेकिन लक्ष्मण क्रोध में आ गया। चल पड़ा। इधर लक्ष्मण भी छोड़ कर चला गया, मतलब वह भी मानता है कि खतरा है, स्वर्ण-मृग सच्चा है, स्वर्ण-मृग के साथ पैदा हुआ खतरा सच्चा है। राम, जो कि परमात्मा के पर्यायवाची हैं इस देश में, अर्थात सर्वव्यापी हैं, लेकिन इतना न समझ पाए, यह सोने के मृग में व्याप्त न हो पाए। सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं, और इतना न जान पाए कि सोने के मृग नहीं होते! यह कैसी सर्वज्ञता? यह कैसा सर्वव्यापीपन? यह सब बकवास है। और सर्वशक्तिशाली हैं, तो सर्वशक्तिशाली को क्या खतरा हो सकता है जो वह चिल्लाए कि मुझे बचाओ? अब इसको कौन बचाएगा, सर्वशक्तिशाली को कौन बचाएगा?
लेकिन अंधे लोग अंधी धारणाओं में जीते चले जाते हैं--न प्रश्न उठाते,
न पूछते, कि एक बार पुनर्विचार तो करें। और यूं सीता चोरी गई। और सीता वास्तविक थी। और सीता का यह अपहरण, इसमें तीनों का हाथ है--राम का, लक्ष्मण का, सीता का। रावण का अकेला जिम्मा नहीं है। रावण नंबर चार है। अगर इन तीन ने गलती न की होती तो रावण चुरा न सकता था।
लेकिन यही सबकी दशा है। अतीत में जी रहे हैं--जो नहीं है। और भविष्य में जी रहे हैं--जो नहीं है। और "जो है" उसको गंवा रहे हैं।
इस सूत्र ने समय से सतयुग की और कलियुग की धारणा को मुक्त कर दिया। वही चेष्टा मैं कर रहा हूं। तुम्हें समझाया गया है कि सबसे पहले कृतयुग था, सतयुग था, स्वर्ण-युग था। यह बकवास है। इसका तो मतलब हुआ--आदमी का ह्रास हो रहा है, पतन हो रहा है, आदमी नीचे गिर रहा है। पहले सब श्रेष्ठ था, अब सब अश्रेष्ठ हो गया है। समय जब पूर्ण संतुलित था, तब कृतयुग था, सतयुग था। जो करते, उसका तत्क्षण फल मिलता था--इसलिए कृतयुग। सतयुगः क्योंकि जो बोलते वही सत्य होता, कहीं कोई झूठ न था। स्वर्ण-युगः कहीं कोई दीनता न थी, दासता न थी, दरिद्रता न थी।
ये सब बातें झूठ हैं। जितने पीछे जाओगे उतनी दरिद्रता थी, उतनी दीनता थी, उतनी गुलामी थी। राम के समय में बाजारों में आदमी बिकते थे। गोभी, टमाटर, आलू--इसी तरह आदमी, उनकी नीलामी होती थी। उनको टिकटियों पर खड़ा करके दाम लगाए जाते थे।
मुल्ला नसरुद्दीन कल पिटा-पिटाया आया था। पट्टियां बंधी थीं, पलस्तर हाथ पर चढ़ा था। मैंने कहा, "क्या हुआ? किसी कार, ट्रक, रेलगाड़ी, किसके नीचे आ गए?"
उसने कहा, "कुछ नहीं। पति हूं, पत्नी के नीचे आ गया। जरा सी भूल हो गई
और ऐसी गति हुई, ऐसा मारा उसने कि छठी का दूध याद दिला दिया।"
मैंने पूछा, "ऐसी क्या भूल हो गई जो इतना नाराज पत्नी हो गई? आखिर क्या?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "अब क्या कहूं! अब क्या और कह कर अपनी फजीहत कराऊं! एक सपने के पीछे सब हुआ।"
मैंने पूछा, "सपने के पीछे?"

उसने कहा, "हां, पत्नी ने एक रात पहले सपना देखा और कहने लगी कि बड़ा अजीब सपना था, फजलू के पिता, कहे बिना नहीं रहा जाता। मैंने देखा एक जगह मस्तिष्क नीलाम हो रहे हैं। कोई मस्तिष्क दस हजार में, कोई पच्चीस हजार में, कोई पचास हजार में। पूछा मैंने कि ये मस्तिष्क इतने-इतने दाम के? तो पता चला कि कोई वैज्ञानिक का मस्तिष्क है, कोई संत का मस्तिष्क है, कोई गणितज्ञ का, कोई संगीतज्ञ का, कोई कवि का, कोई चित्रकार का, बड़े कीमती हैं।" मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा, "यह भी तो बता, मेरा भी मस्तिष्क नीलाम हो रहा था कि नहीं?"
उसने कहा, "हो रहा था। उसी नीलामी को देख कर तो मेरी नींद टूटी। एक रुपये के दर्जन! बंडल में बंधे थे। बाकी सब तो अलग-अलग बिक रहे थे, तुम्हारा तो दर्जन में बिक रहा था। और रुपये के दर्जन भर! और बेचने वाला कह रहा था कि अगर और चाहिए तो और भी दे दूं। इनको खरीदता ही कौन है!" स्वभावतः मुल्ला को चोट लगी, सदमा पहुंचा भारी। सो उसने कहा, "मैंने
भी दूसरे दिन बना कर एक सपना बोल दिया। उसी से यह मेरी हालत हुई। दूसरे दिन सुबह मैंने भी कहा कि मैंने भी एक सपना देखा कि नीलाम हो रहे हैं मुंह। एक से एक बकवासी! किसी की कीमत पचास हजार, क्योंकि वह राष्ट्रपति। किसी की कीमत लाख, क्योंकि वह प्रधानमंत्री। किसी की कीमत पच्चीस हजार, क्योंकि वह बड़ा कवि। किसी की कीमत पंद्रह हजार, वह बड़ा संगीतज्ञ, बड़ा गायक।"
पत्नी ने कहा, "और मेरा भी मुंह नीलाम हो रहा था कि नहीं?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "हो रहा था। अरे तेरे मुंह में ही तो नीलामी
चल रही थी!"
"बस यह सुनते ही अब आप देख ही रहे हैं कि जो मेरी गति हो गई!"
तुम जी रहे हो सपनों में। अतीत भी सपना है, भविष्य भी सपना है। एक जा चुका, एक आया नहीं। और इन दो पाटों के बीच पिस रहे हो। लेकिन ये कहानियां तुम्हें यही कही जा रही हैं कि पहले था कृतयुग; वहां तुम जो करते वही हो जाता। उस समय यह कहावत सच न थीः मैन प्रपोजेज एंड गॉड डिस्पोजेज। आदमी प्रस्तावित करता है और ईश्वर इनकार कर देता है--यह उस समय बात नहीं होती थी। तुमने प्रस्ताव किया और परमात्मा ने स्वीकार किया, तत्क्षण; वह कृतयुग था। सभी लोग कल्पवृक्षों के नीचे बैठे थे, यूं समझो। जो चाहा, हुआ। सतयुग था, कोई झूठ नहीं बोलता था। लोग मकानों पर ताले नहीं लगाते थे।
यह सब बकवास है। यह बिल्कुल बकवास है। दीनता भयंकर थी। राम के समय में बाजारों में स्त्रियां और पुरुष बिक रहे थे, इससे ज्यादा दीनता और क्या होगी? दरिद्रता भयंकर थी। हां, यह और बात है कि दरिद्र की दरिद्रता इतनी भयंकर थी कि वह बगावत भी करने का विचार नहीं कर सकता था। बगावत के लिए भी थोड़े सुख का स्वाद चाहिए।
बगावत हमेशा मध्यवर्गीय लोगों से उठती है, दरिद्रों से नहीं उठती, दीनों से नहीं उठती, भिखमंगों से नहीं उठती। तुमने कोई क्रांतियां भिखमंगों से होते हुए नहीं देखी होंगी कि भिखमंगों ने क्रांति कर दी। भिखमंगे ने तो स्वाद ही नहीं जाना सुख का, क्रांति कैसे करेगा? ये तो मध्यवर्गीय लोग, कार्ल माक्र्स और लेनिन और एंजिल्स और माओत्से तुंग और स्टैलिन, सब मध्यवर्गीय लोग हैं। बातें करते हैं गरीब की। गरीब को भड़काते हैं, क्योंकि उसी के बल पर खड़े हो सकते हैं। अमीर के खिलाफ खड़े होना है। अमीर को तो भड़का नहीं सकते। गरीब को भड़का सकते हैं। मगर ध्यान रखना कि जो भड़काने वाला है वह दोनों के बीच में है; न वह गरीब है, न वह अमीर है, वह मध्य में है, त्रिशंकु की भांति है। उसने थोड़ा सा सुख पाया है अमीरी का और बहुत दुख पाया है गरीबी का। अब उसको भरोसा है कि अगर थोड़ी चेष्टा करे तो अमीर हो सकता है। गरीब का सहारा लेना पड़ेगा।
इसलिए क्रांतियां मध्यवर्गीय लोग करते हैं। गरीब का उपयोग करते हैं क्रांति में। कटता हमेशा गरीब है। चाहे अमीर काटे, चाहे मध्यवर्गीय काटे-- कटेगा गरीब।
मेरे पिता के पिता सीधे-सादे ग्रामीण आदमी थे, मगर वे कुछ कहावतें बड़ी कीमती बोलते थे। कपड़े की उनकी छोटी सी दुकान थी और वे ग्राहक से पहले ही पूछ लेते थे, "क्या इरादे हैं? दाम ठीक-ठीक बता दूं? मोल-भाव नहीं होगा फिर। या कि मोल-भाव करना है? तो फिर उस हिसाब से चलूं। एक बात ख्याल रखना

कि तरबूज छुरे पर गिरे कि छुरा तरबूज पर गिरे, हर हालत में तरबूज कटेगा। इसलिए जो तुम्हारी मर्जी। कटोगे तुम ही।"
और उनसे लोग राजी होते थे, यह कहावत ग्रामीणों को जंचती थी कि बात तो
सच है, चाहे खरबूज को गिराओ छुरे पर और चाहे छुरे को गिराओ खरबूज पर, कोई छुरा कटने वाला नहीं है। सो वे उनसे राजी हो जाते थे कि आप, मोल-भाव करने में कोई सार नहीं, जो ठीक-ठीक भाव हो वह बता दें; कि जब कटना ही मुझे है तो जितना कम कटूं उतना ही बेहतर। तो छुरे पर ही छोड़ देना ठीक है।
गरीब कटता रहा हमेशा। उस समय में इतना कटता था कि उसकी चीख भी नहीं निकलती थी। और यह भी बात झूठ है कि घरों में ताले नहीं लगते थे। नहीं तो बुद्ध और महावीर और ऋग्वेद के समय में हुए जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, ये सब किसको समझा रहे हैं कि चोरी मत करो? अगर चोरी होती नहीं थी तो ये पागल हैं, ये तीर्थंकर और ये बुद्ध और ये सारे संत-महात्मा, सब विक्षिप्त हैं, इनका दिमाग खराब है।
यह हो सकता है कि लोगों को ताला बनाना न आता हो, यह मेरी समझ में आ सकता है। ताला बनाने के लिए भी थोड़े विज्ञान का विकास चाहिए। या यह भी हो सकता है कि ताला लगाएं क्या, भीतर कुछ हो बचाने को तो ताला लगाएं! और ताले पर खर्चा क्या करना! ताला भी तो खरीदने के लिए कुछ हैसियत चाहिए। फिर ताला लगाने के लिए भी तो भीतर कुछ चाहिए, नहीं तो ताला वैसे ही लगा कर चोरों को निमंत्रण दो! वे ताला देख कर ही आएंगे। जिस घर में ताला ही नहीं लगा है उसमें कोई चोर आएगा?
लेकिन चोरी निश्चित होती थी, क्योंकि वेदों तक में चोरी के खिलाफ वक्तव्य हैं। दुनिया में जो सबसे पुराना शिलालेख मिला है, वह शिलालेख कहता हैः चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, धोखाधड़ी मत करो, यह आदमियत का पतन है। वह सात हजार साल पुराना शिलालेख बेबीलोन में मिला है। उसमें जो वक्तव्य हैं वे विचारणीय हैं। उसमें कहा गया है कि पत्नियां पतियों की नहीं मानतीं; बाप की बेटे नहीं मानते; कोई किसी की नहीं सुनता; शिष्य गुरुओं के साथ बगावत कर रहे हैं। ये किस बात की खबर देते हैं ये शिलालेख? ये इस बात की खबर देते हैं कि दुनिया आज से भी बदतर थी, आज से भी बुरी थी। युद्धों के समर्थन में सारे शास्त्र हैं। एक शास्त्र ने भी युद्ध का विरोध नहीं किया है। आज दुनिया में लाखों लोग हैं जो युद्ध के विरोध में हैं। सारे शास्त्र स्त्रियों की गुलामी के पक्ष में हैं। आज करोड़ों लोग हैं जो स्त्रियों की मुक्ति के आंदोलन में सहयोगी हैं। सभी शास्त्रों ने गुलाम को, दास को समझाया है कि यही तेरी नियति है, यही तेरा भाग्य है, विधाता ने तेरी खोपड़ी में लिख दिया है, अब इससे बचने का कोई उपाय नहीं, सहज भाव से गुजार ले। लेकिन किसी ने क्रांति का उदघोष नहीं दिया है। क्या खाक कृतयुग था यह? क्या खाक सतयुग था यह?
हां, रहा होगा स्वर्ण-युग कुछ लोगों के लिए। लोग कहते हैं कि भारत कभी सोने की चिड़िया थी। जिनके लिए तब थी, उनके लिए अब भी है। बिड़ला के लिए, टाटा के लिए, सिंघानिया के लिए, साहू के लिए अब भी सोने की चिड़िया है। इनके लिए तब भी थी। इनके लिए हमेशा थी। लेकिन यह कोई पूरे भारत के संबंध में सचाई नहीं है।
असल में जिस देश में जितनी गरीबी होती है उस देश में थोड़े से लोगों के पास अपार संपदा जुड़ ही जाएगी। यह अनिवार्य है। अपार संपदा जुड़ ही तब सकती है जब कि बहुत बड़ी गरीबी का विस्तार हो। जैसे कि पिरामिड बनाया जाता है तो नीचे बड़ी बुनियाद रखनी होती है, फिर धीरे-धीरे पिरामिड छोटा होता जाता है, फिर शिखर होता है पिरामिड का। अगर शिखर लाना हो तो नीचे बड़ी बुनियाद डालनी होगी।
और तुम्हें याद होना चाहिए, पिरामिड किन लोगों ने बनाए? जिन्होंने बनाए उनके पास सोना था, खूब सोना था। लेकिन पिरामिड, एक-एक पिरामिड के बनने में हजारों लोगों की जानें गईं। क्योंकि उन पत्थरों को चढ़ाने में...आसान मामला नहीं था, मशीनें न थीं...कोड़ों के बल वे पत्थर चढ़वाए गए। एक-एक पत्थर को ढोने में कभी-कभी हजार-हजार लोगों की पीठों पर कोड़े पड़ते थे। हजार लोग घोड़ों की तरह जुटे हुए थे और उनके पीछे कोड़े पड़ रहे थे। उन कोड़ों की मार के

पीछे, अपनी जान को बचाने के लिए, लहूलुहान छातियों को लिए हुए लोगों ने वे पत्थर चढ़ाए। अब पिरामिड के सौंदर्य की खूब चर्चा होती है।
अब ताजमहल को देखने दूर-दूर से लोग आते हैं। जरूर जिसके पास सोना था, उसने ताजमहल बनवाया। लेकिन जिन लोगों ने बनाया--तीन पीढ़ियां लगीं ताजमहल के बनने में--उन सबके हाथ कटवा दिए गए, ताकि फिर ताजमहल जैसी कोई दूसरी कृति न बन सके। और जिस स्त्री के लिए ताजमहल बनवाया गया था, उससे कुछ खास लगाव था बनवाने वाले का, ऐसा नहीं। क्योंकि उसकी और भी सैकड़ों स्त्रियां थीं। यह अपने ही अहंकार की उदघोषणा थी। यह किसी मुमताज के लिए बनवाई गई कब्र न थी। ऐसी तो बहुत मुमताजें बादशाह के पास थीं। यह मुमताज भी किसी और की औरत थी और जबरदस्ती छीनी गई थी। इससे क्या लेना-देना था! बादशाह को तो मकबरा बनाना था।
और शाहजहां, जिसने यह मकबरा बनवाया, उसके बेटे को यह बात साफ थी, औरंगजेब को, कि यह मकबरा अहंकार का प्रतीक है। शाहजहां एक और मकबरा बनवा रहा था यमुना के दूसरी तरफ। यह मकबरा सफेद संगमरमर से बनवाया गया है, दूसरा मकबरा काले संगमरमर से बनवाया जा रहा था। वह मकबरा खुद शाहजहां की कब्र बनने वाली थी। वह इससे भी बड़ा होने वाला था। स्वभावतः, पत्नी के मुकाबले पति का मकबरा बड़ा होना चाहिए! वह इससे भी विशाल होने वाला था। दुनिया वंचित ही रह गई, उसकी सिर्फ बुनियाद रखी जा सकी। और औरंगजेब ने शाहजहां को कैद कर लिया। और उसने कहा, "यह मकबरा नहीं बनेगा। ये अहंकार के शिखर नहीं उठेंगे।" उसने मकबरा नहीं बनने दिया।
जब शाहजहां कैद कर लिया गया तो उसने एक ही प्रार्थना की औरंगजेब से कि
और मुझे कुछ नहीं चाहिए, लेकिन तीस बच्चे मुझे दे दो जिनको मैं पढ़ाऊं- लिखाऊं। दिन भर बैठा-बैठा खाली, दिन गुजारना मुश्किल।
औरंगजेब ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि शाहजहां को हुकूमत करने
का रस जाता नहीं। अब तीस बच्चों की छाती पर मूंग दलेगा। अब इन तीस बच्चों के बीच में ही सम्राट बन कर बैठेगा। अब इन तीस बच्चों को ही सताएगा, आज्ञा देगा। पुरानी आदतें नहीं जातीं।
जरूर कुछ लोगों के पास धन था, होने ही वाला था, क्योंकि सबका धन छीन लिया गया था। सोने की चिड़िया भारत न कभी थी, न आज है। लेकिन कुछ लोगों के पास सोना था, खूब सोना था। सारा देश चूस लिया गया था। इसको स्वर्ण-युग कहते हो?
यह धारणा प्रचारित की गई है पंडितों के द्वारा कि सब सुंदर बीत चुका;
अब आगे सिर्फ अंधेरा है, निराशा है। इसलिए अब निराशा को अंगीकार करो, अंधेरे को जीओ। शांति से जीओ, संतोष से जीओ, ताकि भविष्य में परमात्मा तुम्हारे संतोष के लिए तुम्हें पुरस्कार दे।
यह क्रांति का गला घोंटने का उपाय है। इन पंडितों ने यह प्रचारित किया है कि जब सतयुग था तो समय चार पैरों पर खड़ा था। जैसे कुर्सी में चार पैर होते हैं तो संतुलित होती है। फिर आया त्रेता; तो समय की एक टांग टूट गई। जैसे तिपाई होती है, तीन पैरों पर। संतुलन अब भी रहा, लेकिन वह संतुलन न रहा जो चार पैरों से होता है। तिपाई जल्दी उलट सकती है, जरा सा धक्का देने से उलट सकती है। तीन ही टांगें हैं उसकी, इसलिए त्रेता। फिर द्वापर; एक टांग और टूट गई। अब तो दो पैर पर समय खड़ा हुआ। और ये दो पैर भी ऐसे नहीं जैसे बैलगाड़ी के होते हैं, बल्कि यूं समझो जैसे साइकिल के होते हैं। पैडल मारते रहो, मारते रहो, तो चलता है; जरा पैडल रुका कि साइकिल भी गिरी, तुम भी गिरे, हाथ-पैर भी टूटे। और सबसे बुरी हालत है कलियुग की; कलियुग यानी जब एक ही पैर बचा। अब हर आदमी लंगड़ा है और हर आदमी बैसाखी लिए है। हर आदमी काना है और हर आदमी का एक कान सड़ चुका है। हर आदमी का एक फेफड़ा मर चुका है। हर आदमी आधा लकवा खा गया है। यह कलियुग है। अब आगे सिर्फ कब्र है और कुछ भी नहीं। प्रतीक्षा करो। एक पैर तो कब्र में तुम्हारा जा ही चुका है; एक ही बाहर बचा है। अब ज्यादा की कुछ आशा न करो। अब जीवन में सुख की संभावना मत मानो। अब क्या तीर्थंकर होंगे? अब क्या अवतार होंगे? अब क्या बुद्ध होंगे? अब तो बुद्धुओं में ही रहना है और बुद्धू ही रहना है। कोई इस बुद्धूपन से छुटकारे का उपाय नहीं।

यह निराशा पंडित फैला रहे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है। और जिस देश
के मन में ये निराशा के भाव बैठ जाएं, उसका भविष्य धूमिल हो गया। इसलिए नहीं कि भविष्य धूमिल था; इस धारणा ने धूमिल कर दिया। और स्वभावतः, हर धारणा में एक दुष्ट-चक्र होता है। जब तुम एक धारणा मान कर चलते हो कि अब भविष्य अंधकारपूर्ण है तो तुम इस ढंग से जीते हो कि प्रकाश तो होना नहीं है, इसलिए प्रकाश लाने की जरूरत क्या? घर में तेल हो, बाती हो, दीया हो, माचिस हो, तो भी तुम दीया जलाते नहीं। जब दीया जलना ही नहीं है, जब यह समय के ही अनुकूल नहीं है, तो क्यों खाक मेहनत करनी, अंधेरे में ही जीओ! और जब अंधेरे में जीते हो तो स्वभावतः तुम्हारी धारणा को पोषण मिलता है कि ठीक कह गए संत, ठीक कह गए महंत, ठीक कह गए ऋषि-मुनि कि आगे अंधेरा ही अंधेरा है। अंधेरा ही तो दिख रहा है। अंधेरा बढ़ता ही जा रहा है। तुम्हारी धारणा के कारण दीया नहीं जलाते हो, क्योंकि आगे अंधेरा है, दीया जलने वाला नहीं। जैसे कि अंधेरे ने कभी दीये को बुझाया है! अंधेरे की क्या कुव्वत है, क्या बिसात है कि दीये को बुझा दे? अंधेरा नपुंसक है। अंधेरा है ही नहीं। जब दीया जलता है तो तुम लाकर टोकरी भर अंधेरा भी उसके ऊपर डाल दो तो भी दीया बुझेगा नहीं। लेकिन अंधेरे के डर से लोग दीया नहीं जला रहे हैं, तो फिर तो अंधेरा रहेगा। और जब अंधेरा रहेगा तो स्वभावतः धारणा को पोषण मिलेगा कि ठीक कहा, ठीक कहा शास्त्रों ने कि अंधेरा ही अंधेरा है!
तुम जीवन को सुंदर बनाने की चेष्टा छोड़ दिए तो सड़ गए। सड़ गए तो तुम्हारे ऋषि-मुनि सही सिद्ध हो रहे हैं कि यह तो होना ही था, यह तो पहले ही कह गए थे लोग। मानो या न मानो, मगर जो होना है वह होना है। जो बदा है वह होना है। इस तरह भारत को भाग्यवादी बना दिया है।
मैं इस सूत्र से पूरा राजी हूं, क्योंकि यह सूत्र क्रांतिकारी है, आग्नेय है। यह सूत्र तुम्हारी समझ में आ जाए तो तुम्हें धर्म की नयी परिभाषा, एक नया बोध पैदा हो, एक नयी किरण जगे।
कलिः शयानो भवति...।
इसने अर्थ ही बदल दिया। यह सूत्र कहता हैः "जो सो रहा है वह कलि है।"
इसने संबंध ही तोड़ दिया समय से। इसने संबंध जोड़ दिया मूच्र्छा से।
और यही बुद्ध पुरुषों का अनुदान है इस जगत को कि तुम्हारे कांटों को
भी फूलों में बदल देते हैं; तुम्हारी मूढ़ताओं को भी बोध की दिशा दे देते हैं; तुम्हारे अंधविश्वासों को भी श्रद्धा का आयाम बना देते हैं।
"जो सो रहा है वह कलि है।"
जो मूच्र्छित है वह अगर हजार साल पहले था तो भी कलियुग में था और दस हजार साल पहले था तो भी कलियुग में था। उसके सोने में कलियुग है।
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
"निद्रा से उठ बैठने वाला द्वापर है।"
और जो कभी भी निद्रा से उठ बैठा, जिसने झाड़ दी निद्रा, जो लेटा नहीं, बैठ गया, वह द्वापर है। जब भी बैठ गया--आज तो आज, अतीत में तो अतीत में, भविष्य में तो भविष्य में--जब भी बैठ गया तब द्वापर है। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति...।
"और जो उठ खड़ा हुआ वह त्रेता है।"
सो रहे हैं सारे लोग। मूच्र्छित हैं सारे लोग। उन्हें यह भी पता नहीं--वे कौन हैं, क्यों हैं, किसलिए हैं, कहां से आते हैं, कहां जाते हैं, क्या है उनका स्वभाव? यह मूच्र्छा है। अपने से अपरिचित होना मूच्र्छा है। अपने से परिचित होने की पहली किरण--जब तुम नींद से उठ बैठे, आंख खोली, बैठ गए--तो द्वापर का प्रारंभ है। ये तुम्हारे चेतना के चरण हैं, समय के नहीं। ...कृतं संपद्यते चरन्।
"और जो चल पड़ता है वह कृतयुग बन जाता है।"
सोना, उठ बैठना, चल पड़ना। जो चल पड़ा वह कृतयुग है। उसके जीवन में स्वर्ण-विहान आ गया। गति आ गई तो जीवन आ गया। गत्यात्मकता आ गई तो ऊषा आ गई। तो रात टूट गई, पूरी तरह टूट गई।
चरैवेति। चरैवेति।।
इसलिए ऐतरेय उपनिषद यह सूत्र देता हैः "चलते रहो, चलते रहो।"

रुकना ही मत। अनंत यात्रा है यह। इसकी कोई मंजिल नहीं। यात्रा ही मंजिल है। यात्रा का हर कदम मंजिल है। अगर तुम हर कदम को उसकी परिपूर्णता में जीओ तो कहीं और मंजिल नहीं; यहीं है, अभी है, वर्तमान में है। भविष्य में नहीं, अतीत में नहीं; तुम्हारे बोध में है, तुम्हारे बोध की समग्रता में है।
मैं इस सूत्र से पूर्णतया राजी हूंः चरैवेति! चरैवेति! चलते रहो। चलते रहो। कहीं रुकना नहीं है। रुके कि मरे। रुके कि सड़े। बहते रहे तो स्वच्छ रहे।
और यह देश सड़ा इसलिए कि रुक गया। और कब का रुक गया! यह अब भी स्वर्ण-युग
की बातें कर रहा है, सतयुग की, कृतयुग की बातें कर रहा है। यह अभी भी बकवास में पड़ा हुआ है। अभी भी रामलीला देखी जा रही है। अभी भी बुद्धू रासलीला कर रहे हैं। हर साल वही नाटक। सदियों से चल रहा है वही नाटक। नाटक में भी कुछ नया जोड़ने की सामथ्र्य नहीं है। और कहीं कुछ नया जोड़ दिया जाए तो उपद्रव हो जाता है।
रीवां के एक कालेज में रामलीला खेली उन्होंने--युवकों ने। जरा बुद्धि
का उपयोग किया। युवक थे, जवान थे, तो थोड़ी बुद्धि का उपयोग किया। सो उन्होंने रामचंद्र जी को सूट-बूट पहना दिए, टाई बांध दी, हैट लगा दिया। अब हैट, सूट-बूट और टाई के साथ धनुष-बाण जंचता नहीं, सो बंदूक लटका दी। स्वाभाविक है, हर चीज की एक संगति होती है। अब इसमें कहां धनुष-बाण जमेगा! अब इनके पीछे सीता मैया को चलाओ तो उनमें भी बदलाहट करनी पड़ी। सो एड़ीदार जूते पहना दिए, मिनी स्कर्ट पहना दी। जनता नाराज भी हो और झांक-झांक कर भी देखे। भारतीय जनता! भारतीय मन तो बड़ा अदभुत मन है! लोग बिल्कुल झुके जा रहे। किसी से पूछो क्या ढूंढ़ रहे हो? कोई कहता मेरी टोपी गिर गई, कोई कहता मेरी टिकट गिर गई। सभी का कुछ न कुछ गिर गया है। लोग झांक-झांक कर देख रहे हैं। और नाराज भी हो रहे हैं कि यह क्या मजाक है! रामलीला के साथ मजाक!
और जब सीता मैया ने सिगरेट जलाया, तब बात बिगड़ गई। लोग उचक कर मंच पर
चढ़ गए। जिन रामचंद्र जी और सीता मैया के हमेशा पैर छूते थे, उनकी पिटाई कर दी, पर्दा फाड़ डाला। और इसी धूम-धक्का में सीता मैया की स्कर्ट भी फाड़ डाली। अरे ऐसा अवसर कौन चूके! सीता मैया की फजीहत हो गई। ब्लाउज वगैरह फाड़ दिया। वह तो भला हो कि सीता मैया वहां थीं ही नहीं, गांव का एक छोकरा था। सो और गुस्सा आया। सो छोकरे की और पिटाई की कि हरामजादे, शर्म नहीं आती, सीता मैया बना है!
वही रामलीला, वही नाटक। सदियां बीत गईं, हम रुके पड़े हैं। हम डबरे हो
गए हैं।
चरैवेति! चरैवेति! बहो, चलो, गतिमान होओ। छोड़ो अतीत को। ये जंजीरें तोड़ो। यह मूच्र्छा छोड़ो। थोड़ा होश सम्हालो। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं होश को सम्हालने की प्रक्रियाएं हैं। ध्यान से ही यह सूत्र पूरा हो सकता है।
कलिः शयानो भवति।
ध्यान से ही तो तुम उठोगे। यह विचारों की तंद्रा तभी तो टूटेगी। यह खोपड़ी में भरा कचरा सदियों-सदियों का, तभी तो जलेगा। ध्यान की अग्नि ही इसे राख कर सकती है।
संजिहानस्तु द्वापरः।
और आंख खुली तो उठ ही बैठोगे। कब तक पड़े रहोगे? जिसकी आंख खुली उसे दिखाई पड़ने लगेगाः फूल खिल गए हैं, सूरज निकल आया, पक्षी गीत गा रहे हैं। अब पड़े रहना मुश्किल हो जाएगा। यह जीवन का आकर्षण और जीवन का सौंदर्य! ये परमात्मा के छुपे हुए ढंग तुम्हें बुलाने के! यह उसका निमंत्रण है। जागे कि सुनाई पड़ा। और तब उठ कर चल पड़ोगे--तलाश में सत्य की; तलाश में सौंदर्य की; तलाश में भगवत्ता की। और जो चल पड़ा उसने पा लिया। क्योंकि जो चल पड़ा वही कृतयुग बन जाता है, वही सतयुग बन जाता है।
सतयुग में कोई पैदा नहीं होता। सतयुग अर्जित करना होता है। पैदा तो
हम सब कलियुग में होते हैं। फिर हममें से जो जाग जाता है, वह त्रेता। जो उठ बैठता है, चल पड़ता है, वह कृत। और जो चलता ही रहता है, वही भगवान है, वही

भगवत्ता को उपलब्ध है। इसलिए भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति के साथ चलना भी मुश्किल हो जाता है। वह चलता ही जाता है।
कितने लोग मेरे साथ चले और ठहर गए! जगह-जगह रुक गए, मील के पत्थरों पर रुक गए! जिसकी जितनी औकात थी, सामथ्र्य थी, वहां तक साथ आया और रुक गया। फिर उसे डर लगने लगा कि और चलना अब खतरे से खाली नहीं। किसी मील के पत्थर को उसने मंजिल बना लिया। और वह मुझसे नाराज हुआ कि मैं भी क्यों नहीं रुकता हूं? मैं भी क्यों और आगे की बात किए जाता हूं?
मेरे साथ सब तरह के लोग चले। जैन मेरे साथ चले, मगर वहीं तक चले जहां
तक महावीर का पत्थर उन्हें ले जा सकता था। महावीर का मील का पत्थर आ गया कि वे रुक गए। और मैंने उनसे कहा, महावीर से आगे जाना होगा। महावीर को हुए पच्चीस सौ साल हो चुके। इन पच्चीस सौ सालों में जीवन कहां से कहां पहुंच गया, गंगा का कितना पानी बह गया! महावीर तक आ गए, यह सुंदर, मगर आगे जाना होगा। उनके लिए महावीर अंतिम थे; वहीं पड़ाव आ जाता है, वहीं मंजिल हो जाती है।
मेरे साथ बौद्ध चले, मगर बुद्ध पर रुक गए। मेरे साथ कृष्ण को मानने वाले चले, लेकिन कृष्ण पर रुक गए। मेरे साथ गांधी को मानने वाले चले, लेकिन गांधी पर रुक गए। जहां उन्हें लगा कि उनकी बात के मैं पार जा रहा हूं, वहां वे मेरे दुश्मन हो गए। मैंने बहुत मित्र बनाए, लेकिन उनमें से धीरे-धीरे दुश्मन होते चले गए। यह स्वाभाविक था। जब तक उनकी धारणा के मैं अनुकूल पड़ता रहा, वे मेरे साथ खड़े रहे।
मेरे साथ तो वही चल सकते हैं, जिनकी धारणा ही चरैवेति-चरैवेति की है;
जो चलने में ही मंजिल मानते हैं; जो अन्वेषण में ही, जो शोध में ही, अभियान में ही गंतव्य देखते हैं। गति ही जिनके लिए गंतव्य है, वही मेरे साथ चल सकते हैं। क्योंकि मैं तो रोज नयी बात कहता रहूंगा। मेरे लिए तो रोज नया है। हर रोज नया सूरज ऊगता है। जो डूबता है वह डूब गया; जो जा चुका जा चुका। बीती ताहि बिसार दे।
लेकिन यहां भी लोग आ जाते हैं, वे प्रश्न लिख कर पूछते हैं--उनके मैं जवाब नहीं देता हूं--कि आपने पंद्रह साल पहले यह कहा था।
पंद्रह साल पहले जिसने कहा था वह कब का मर चुका। मैं कोई वह आदमी हूं
जो पंद्रह साल पहले था? कितने वसंत आए, कितने वसंत गए! कितने दिन ऊगे, कितनी रातें आईं! कितना बीत गया पंद्रह साल में! वे पंद्रह साल पहले को पकड़े बैठे हैं। वे प्रश्न पूछते हैं कि अब हम उसको मानें कि आज जो आप कह रहे हैं उसको मानें?
मैं जो आज कह रहा हूं उसको मानो और वह भी सिर्फ आज कह रहा हूं; कल भी कहूंगा, इसका कोई पक्का मत समझना। मुझे कहीं नहीं ठहरना है। ठहरना मृत्यु है। ठहर-ठहर कर ही तो गंदे डबरे हो गए। कोई मोहम्मद पर ठहर गया, मुसलमान हो गया--एक गंदा डबरा हो गया। अब लाख तुम इसके आस-पास शोरगुल मचाओ, बैंड-बाजे बजाओ, कि कुरान की आयतें पढ़ो, कि कपूर जलाओ, कि लोभान का धुआं उड़ाओ, कि ताज-ताजिए बनाओ, कि वली साहब नचाओ, सब कुछ करो, वह गंदा डबरा वहां है। और उसकी गंदगी छिपती नहीं।
जो कृष्ण के साथ रुक गए वे कब के रुक गए! वहां तो कीचड़ ही कीचड़ है। अब
तो वहां पानी पीने योग्य भी नहीं। उस कीचड़ में अब कुछ केंचुए मिल जाएं तो मिल जाएं, कृष्ण तो न मिलेंगे। और हंस अब उस कीचड़ में नहीं उतरेंगे। और परमहंसों की तो तुम बात ही मत करो। कहां कीचड़ और कहां परमहंस! मगर उस कीचड़ को ही लपेटे जो बैठे हैं, तुमको परमहंस मालूम पड़ते हैं, क्योंकि कीचड़ कृष्ण की है। कृष्ण की राख चढ़ाए जो बैठे हैं, तुम सोचते हो--"अहा, यह रहे महात्मा!"
यह सब धोखाधड़ी है। कृष्ण खुद आज लौट कर आएं तो इनके साथ राजी नहीं हो सकते। कृष्ण तो चरैवेति-चरैवेति को मानेंगे। कृष्ण को तो फिर से गीता कहनी पड़ेगी, जैसे मुझे कहनी पड़ रही है।
मैंने कृष्ण की गीता कह दी है, अब शीघ्र ही मुझे अपनी गीता कहनी पड़ेगी। निश्चित ही उसमें कृष्ण की काफी फजीहत होने वाली है। उसी की तैयारी करवा रहा हूं, धीरे-धीरे राजी कर रहा हूं तुम्हें। अब राम की रामायण फिर से लिखनी पड़ेगी। और राम से ऐसी बातें कहलवानी होंगी जो कि

हिंदुओं को बिल्कुल न जंचेंगी। क्योंकि वे तो वही बातें सुनना चाहेंगे जो राम ने पहले कही थीं--चाहे उन बातों का अब कोई संदर्भ हो या न हो, कोई पृष्ठभूमि हो या न हो।
इसलिए मुझसे कभी भूल कर न पूछो कि मैंने पंद्रह साल पहले क्या कहा था।
पंद्रह साल की तो बात छोड़ो, पंद्रह दिन पहले क्या कहा था उसकी भी मत पूछो। उसकी भी छोड़ो, कल मैंने क्या कहा था उसकी भी मत पूछो।
पिकासो एक चित्र बना रहा था और उसके एक मित्र ने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं। तुमने हजारों चित्र बनाए, सबसे सुंदर चित्र कौन सा है? पिकासो ने कहा, यही जो अभी मैं बना रहा हूं। और यह तभी तक जब तक बन नहीं गया है; बन गया कि मेरा इससे नाता टूट गया। फिर मैं दूसरा बनाऊंगा। और निश्चित ही दूसरा मेरा श्रेष्ठतम होगा, क्योंकि इसको बनाने में मैंने कुछ और सीखा; इसको बनाने में मेरे हाथ और सधे; इसको बनाने में मेरे रंगों में और निखार आया; इसको बनाने में और सूझ-बूझ जगी।
अब तुम मुझसे पूछते हो मैंने गीता पर यह कहा था पंद्रह साल पहले, कि महावीर पर बीस साल पहले यह कहा था।
तब से मेरे हाथ बहुत सधे। तब से मेरी तूलिका बहुत निखरी। तब से मेरे रंगों में नये उभार आए। उस बकवास को जाने दो। वह बात ऐतिहासिक हो गई। मैं तो आज जो कह रहा हूं, बस उससे जो राजी है वह मेरे साथ है। और उसे यह स्मरण रखना है कि मुझसे राजी होना चरैवेति-चरैवेति से राजी होना है। कल मैं आगे चल पडूंगा, तब तुम यह न कह सकोगे कि कल ही तो हमने यह तंबू गाड़ा था और अब उखाड़ना है! और हम तो इस भरोसे में गाड़े थे कि आ गए!
मैं तुम्हारे सब भरोसे तोड़ दूंगा। मैं तो तुम्हें खानाबदोश बनाना चाहता हूं।
"खानाबदोश" शब्द बड़ा प्यारा है। खाना का अर्थ होता है घर; जैसे मयखाना। खाना का अर्थ होता है घर; दवाखाना। बदोश का अर्थ होता है कंधे पर। "दोश" यानी कंधा, बदोश यानी कंधे पर। खानाबदोश बड़ा प्यारा शब्द है। इसका मतलब--जिसका घर कंधे पर; जो चल पड़ा है, चलता ही रहता है, चलता ही जाता है, जो रुकता ही नहीं सत्य की इस अनंत यात्रा में। और इसका सौंदर्य यही है कि यह यात्रा अनंत है, कहीं समाप्त नहीं होती, इसका पूर्ण-विराम नहीं आता। जिस दिन पूर्ण-विराम आ जाएगा उस दिन फिर करोगे क्या? फिर जीवन व्यर्थ हुआ। फिर आत्महत्या के सिवाय कुछ भी न सूझेगा।
इसलिए जिन्होंने तुम्हें धारणा दी है कि मोक्ष आ गया कि सब आ गया, कि मुक्ति आ गई कि सब आ गया, कि समाधि आ गई कि सब आ गया, उन्होंने तुम्हें गलत धारणा दी है। उन सबने तुम्हें कहीं ठहर जाने का मुकाम बता दिया है।
और तुम सब ठहर जाने को इतने आतुर हो, चलना ही नहीं चाहते तुम, पहली तो बात। तुम कलि में ही रहना चाहते हो। कलिः शयानो भवति। कोई कह दे कि शय्या ही, जहां तुम सो रहे हो, यही जगह तो है! देखो न विष्णु शयन कर रहे हैं शेषनाग पर! ये विष्णु सदा से कलियुग में हैं। इनकी नींद नहीं टूटी। और वह जो नाग है, वह हजार-हजार फनों से उनकी रक्षा कर रहा है। बड़ी जहरीली रक्षा है यह। वह इन्हें उठने भी नहीं देगा। वे उठे कि उसने फुफकारा--"कहां जाते? लेट रह! बच्चा कहां जाता है?" यह शय्या कोई छोड़ने वाली नहीं है। और अगर किसी तरह इनसे बच भी जाए तो लक्ष्मी मैया हैं, वे पैर दबा रही हैं।
सावधान उन लोगों से जो पैर दबाते हैं, क्योंकि दबाते-दबाते वे गर्दन दबाएंगे। आखिर वे भी तो आगे बढ़ेंगे न--चरैवेति! चरैवेति! कोई पैर पर ही रुके रहेंगे? बचना हो तो पैर ही दबाने से बचना। इसलिए मैं किसी को पैर नहीं दबाने देता। क्योंकि मैं जानता हूं, पैर दबाने वाला धीरे-धीरे आगे बढ़ेगा और अंततः गर्दन पर आएगा। सब सेवक गर्दन पर आ जाते हैं। सभी सेवक नेता हो जाते हैं। वही गर्दन पर आ जाना है। वे कहते हैं, "देखो हमने कितनी देश-सेवा की! अब क्या जरा तुम्हारी गर्दन न दबाएं? तो फिर देश-सेवा किसलिए की? अरे इतनी सेवा की, कुछ तो पुरस्कार दो! इतने पैर दबाए, अब थोड़ी तो गर्दन भी दबाने दो! अब यह मजा हम ही लेंगे, कोई दूसरा तो नहीं ले सकता। पैर हमने दबाए और गर्दन कोई और दबाए, यह कभी न होने देंगे।" और जो पैर दबाते-दबाते गर्दन तक आ गया है, उसको तुम रोक भी न पाओगे। तुम रोकने का समय पहले ही चूक गए।

दो शिष्य एक गुरु के पैर दबा रहे थे। दोपहर का वक्त, गरमी के दिन। गुरु रहे होंगे कोई गुरुघंटाल। असली गुरु पैर नहीं दबवाता। असली गुरु क्यों पैर दबवाएगा? और लंगड़ों से क्या पैर दबवाना? अंधों से क्या पैर दबवाना? सोए हुओं से क्या पैर दबवाना? ये तो कुछ उपद्रव करेंगे ही। तो गुरु तो नहीं रहे होंगे, गुरुघंटाल रहे होंगे। दोनों पैर दबा रहे थे। दो ही शिष्य थे उनके। सो हर चीज में बंटवारा करना पड़ता था। एक ने बायां पैर लिया था, एक ने दायां। गुरु ने करवट बदली। बायां पैर दाएं पैर पर चढ़ गया। जिसका दायां पैर था उसने कहा, "हटा ले अपने बाएं पैर को! अगर मेरे पैर पर तेरा पैर चढ़ा तो भला नहीं।"
लेकिन जिसका पैर चढ़ गया था उसने कहा, "अरे देख लिए ऐसे धमकी देने वाले! किसकी हिम्मत है जो मेरे पैर को नीचे उतार दे? जब चढ़ ही गया तो चढ़ ही गया। चढ़ेगा! कर ले जो तुझे करना हो!"
उसने कहा, "देख, हटा ले! मान जा!" वह उठा लाया लट्ठ। उसने कहा, "वह दुचली बनाऊंगा तेरे पैर की...।"
मगर दूसरा भी कुछ पीछे तो छूट जाने वाला नहीं था। सोए हुए आदमियों के साथ यही तो खतरा है। दूसरा तलवार उठा लाया। उसने कहा, "हाथ लगा, लकड़ी चला मेरे पैर पर, और देख तेरे पैर की क्या गति होती है! एक ही झटके में फैसला कर दूंगा।"
इस आवाज में, शोरगुल में गुरु की नींद खुल गई। सुना आंखें बंद किए-किए
कि यह मामला बिगड़ा जा रहा है। उसने कहा, "भाइयो, जरा ठहरो! यह भी तो ख्याल करो कि पैर मेरे हैं।"
उन्होंने कहा, "आप शांत रहिए! आपको बीच-बीच में बोलने की कोई जरूरत नहीं। जब बंटवारा हो चुका तो हो चुका। यह इज्जत का सवाल है। आप शांत रहो।" यही हाल विष्णु का होगाः इधर सांप फनफना रहा, उधर लक्ष्मी मैया पैर दबाते-दबाते जमाने हो गए, गर्दन तक तो पहुंच ही गई होंगी। वह गर्दन दबा रही होंगी। विष्णु उठ भी नहीं सकते, वे कलि-काल में ही हैं। और वही तुम्हारे अवतार बनते हैं। वही कभी राम बन जाते, कभी परशुराम बन जाते। वही कभी कृष्ण बन जाते। उनका धंधा एक ही है। यूं समझो कि असलियत में तो वे वहीं रहते हैं अपनी शय्या पर, पता नहीं कौन उनकी जगह नाटक कर जाता है! यह सब नाटक-चेटक चल रहा है। यह एक ही आदमी भारत की छाती पर चढ़ा हुआ है, और वह शय्या पर सो रहा है। कलियुग जारी है, सदियों से जारी है।
इसको तोड़ने का समय आ गया है। उठो! निद्रा छोड़ कर बैठो। उठ कर खड़े हो जाओ। और फिर चलो। जो चल पड़ता, वही कृतयुग बन जाता है। इसलिए मैं तुम्हारे इन सारे धर्मों की धारणाओं का स्पष्ट विरोध करता हूं, जो कहते हैं आज कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। तीर्थंकर होने का किसी समय से कोई संबंध नहीं। जैन कहते हैंः "तीर्थंकर चैबीस ही हो सकते हैं, वे हो गए।"
अगर चैबीस ही हो सकते हैं, समझ लो, यह भी मान लो। एक जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। वे कहते थे, चैबीस ही हो सकते हैं। मैंने कहा, "चलो यह भी मान लो। तो जो चैबीस हुए, यही वे चैबीस थे इसका कोई प्रमाण है? इनमें हो सकता है एक भी असली न हो और अभी चैबीस होने को हों। प्रमाण क्या है इनके चैबीस होने का? यह भी मान लो कि चैबीस ही हो सकते हैं, चलो कौन झगड़ा करे, चैबीस-पच्चीस कोई भी संख्या चलेगी। मगर ये ही चैबीस थे, महावीर ही चैबीसवें थे और ऋषभदेव ही पहले थे, यह क्या पक्का?"
ऋग्वेद में ऋषभदेव का नाम है, तो जैन घोषणा करते हैं कि हमारा धर्म ऋग्वेद से पुराना है। मगर हिंदू, दयानंद जैसे व्यक्ति यह मान नहीं सकते। वे ऋषभदेव को ऋषभदेव पढ़ते ही नहीं। वे पढ़ते हैं वृषभदेव! सांड! नंदीबाबा! वे ऋषभदेव को ऋषभदेव मानते ही नहीं, वे वृषभदेव मानते हैं। अब वृषभदेव तुम्हारे पहले तीर्थंकर थे? यह जैन मानने को राजी न होंगे। और क्या सबूत कि जो प्रथम था वह कोई छाती पर लिखवा कर आया था? कोई सर्टिफिकेट, प्रमाण-पत्र लेकर आया था?
मेरी आलोचना निरंतर अखबारों में की जाती है कि मैं स्व-घोषित भगवान हूं। मैं तुमसे पूछता हूं, तुम्हारा कौन सा भगवान था जो सर्टिफिकेट लेकर आया था? अगर मैं स्व-घोषित हूं, तो कौन था जो स्व-घोषित नहीं था? आखिर महावीर का दावा खुद का दावा था। महावीर के समय में आठ और लोग थे जो दावेदार

थे। यह और बात है कि वे आठों हार गए महावीर से तर्क में। मगर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो तर्क में जीत गया था, जो वकालत में जीत गया था, वह असली था। और तर्क में ही जीतना हो तो मुझे कोई अड़चन है? अगर तर्क ही प्रमाणित हो सकता हो, तब तो मेरी जीत सुनिश्चित है। तर्क का तो बखिया मैं अच्छी तरह उखेड़ सकता हूं, इसमें मुझे कोई अड़चन नहीं है। तुम्हारे बड़े से बड़े तार्किकों की धज्जी उड़ाई जा सकती है, इसमें कुछ भी नहीं है। इनको चारों खाने चित्त करने में कोई अड़चन नहीं, क्योंकि इनके तर्क भी पिटे-पिटाए हैं और पुराने हैं। अब तर्क नये दिए जा सकते हैं, जिनका इनको पता भी नहीं था, जिनका इनको होश भी नहीं था, जिनको उठाने की इनकी हिम्मत भी नहीं हो सकती। अब कौन कहेगा कि विष्णु महाराज कलियुग में जी रहे हैं? किसी ने आज तक नहीं कहा। मगर साफ है। शय्या पर--जब देखो तब शय्या पर लेटे हुए हैं। जिंदा भी हैं कि मर गए, यह भी शक है। और सांप फुफकार रहा है, मर ही चुके होंगे। कब तक जिंदा रहोगे सांप पर? और सोना, यह भी कोई ढंग है? अरे उठो भी, नहाओ-धोओ भी, कम से कम दतौन वगैरह करो, कुछ चाय-नाश्ता करो, कुछ भजन-पूजन करो, कुछ तो करो! यह मुर्दे की तरह पड़े हो; यह आसन न हुआ, शवासन हो गया।
कौन लेकर आया था प्रमाण-पत्र? महावीर के समय में संजय वेलट्ठिपुत्त था, जो कह रहा था, "मैं चैबीसवां तीर्थंकर हूं।" उसका कसूर अगर कोई था तो एक ही था कि वह आदमी जरा दीवाना था और मस्त था। महावीर जैसा नियमबद्ध नहीं था, इसलिए भीड़-भाड़ इकट्ठी न कर पाया। मस्तों का वह दुर्भाग्य है। उनकी मस्ती के कारण भीड़ उनके पास इकट्ठी नहीं हो सकती, कुछ मस्त इकट्ठे हो सकते हैं। संजय वेलट्ठिपुत्त जोरदार बातें कहता था। जैसे महावीर ने कहा कि सात नर्क होते हैं। उसने कहा, "गलत! ये सात तक ही गए होंगे। अरे सात सौ नर्क हैं, मैं सब पूरी आखिरी छानबीन कर आया। और सात सौ ही स्वर्ग हैं। ये सातवें स्वर्ग तक गए होंगे, इसलिए बेचारे सातवें तक की बातें करते हैं। जो जहां तक गया वहां तक की बात करता है। मैंने ऊपर से नीचे तक सब छानबीन कर डाली है।"
यह मस्ती में कही हुई बात है। यह मजाक कर रहा है वह कि क्या बकवास लगा रखी है सात की! और फिर सात की ही बात हो तो सात सौ की क्यों न हो! अरे फिर कंजूसी क्या?
संजय वेलट्ठिपुत्त मस्ताना आदमी था। मक्खली गोशालक दावेदार था कि मैं असली चैबीसवां तीर्थंकर हूं! वह महावीर का पहले शिष्य था। फिर देखा उसने, जब महावीर हो सकते हैं चैबीसवें तीर्थंकर तो मैं क्यों नहीं हो सकता! सो अलग हो गया और उसने घोषणा कर दी। महावीर को स्वभावतः नाराजगी तो हुई कि मेरा ही शिष्य, बारह साल मेरे साथ रहा और मेरी ही बातें करता है और मेरे ही खिलाफ दावेदारी करता है! महावीर उस गांव गए जहां मक्खली गोशालक ठहरा हुआ था। उस धर्मशाला में ठहरे और मक्खली गोशालक से कहा कि मैं मिलना चाहता हूं। मक्खली गोशालक मिला। उन्होंने पूछा कि तू मेरा शिष्य था! उसने कहा, "इससे ही सिद्ध होता है कि आप अज्ञानी।" महावीर ने कहा, "इससे कैसे सिद्ध होता है कि मैं अज्ञानी?" गोशालक ने कहा, "आप पहचान ही नहीं पाए। यह देह वही है, मगर वह आत्मा तो गई। इसमें चैबीसवें तीर्थंकर की आत्मा प्रविष्ट हो गई, जो तुम्हारी शिष्य कभी नहीं रही। तुम अभी तक देह पर अटके हो। तुम्हें देह ही दिखाई पड़ रही है। अरे आत्मा को देखो! यह क्या अज्ञान!" महावीर कहते रहे, "यह झूठ बोल रहा है।"
और लोगों को भी बात जंची कि यह आदमी अजीब बातें कर रहा है, कि इसकी आत्मा तो जा चुकी और चैबीसवें तीर्थंकर की आत्मा इसमें प्रविष्ट कर गई! मगर वह भी मस्त किस्म का आदमी था, उसके शिष्य भी मस्तमौला थे, इसलिए भीड़-भाड़ इकट्ठी नहीं हो सकी। मगर बात तो उसने मजे की कही। वह भी मजाक में ही कही थी।
ऐसे और भी लोग थे। अजित केशकंबली था। खुद गौतम बुद्ध थे। गौतम बुद्ध
ने इनकार किया है कि महावीर तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ हैं। कैसे सर्वज्ञ? क्योंकि बुद्ध ने कहा, "मैंने उन्हें ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखी जिस घर में वर्षों से कोई नहीं रहता। ये क्या खाक सर्वज्ञ हैं! इनको यह भी पता नहीं कि यह घर खाली है, उसके सामने भिक्षा मांगने खड़े हैं! जब पड़ोस के लोग कहते हैं कि वहां कोई रहता ही नहीं, आप बेकार खड़े हैं, तब ये आगे हटते हैं। और ये तीन काल के ज्ञाता और इनको इतना भी ज्ञान नहीं कि यह

घर खाली है! दरवाजे के पीछे देख नहीं पाते और तीन काल देख रहे हैं! त्रिलोक इनकी आंखों के सामने है! ये कैसे तीर्थंकर? सुबह उठ कर चलते हैं रास्ते पर अंधेरे में, कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है; जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है कि पूंछ पर पैर पड़ गया।"
ये बुद्ध ने महावीर के संबंध में बातें कही हैं। तो कौन तीर्थंकर है? किसके पास दावा है? किसके पास सर्टिफिकेट है? या कि तुम सोचते हो कि कोई तीर्थंकर, कोई अवतार वोट से तय होता है? तो किसको वोट मिली थी? और वोट अगर मिलतीं तो ये सब हार गए होते। बुद्ध को कितनी वोट मिलतीं? जीसस को कितनी वोट मिलतीं? मोहम्मद को कितनी वोट मिलतीं?
आज की संख्या मत गिनना। आज तो करोड़ों की संख्या है जीसस के पीछे। कोई
एक अरब आदमी ईसाई हैं। मगर जीसस को जब सूली लगी तो एक भी शिष्य वहां मौजूद नहीं था, सब भाग खड़े हुए। एक शिष्य ने पीछा करने की कोशिश की थी रात में, तो जीसस ने कहा था कि देख, मत पीछे आ। मैं तुझे जानता हूं। सुबह मुर्गा बोले, इसके पहले तीन बार तू मुझे इनकार करेगा। लेकिन उसने कहा, "कभी नहीं, कभी नहीं! मैं और इनकार करूं? मेरा समर्पण पूरा है!"
वह चल पड़ा। दुश्मन जीसस को पकड़ कर चले, जंजीरें बांध कर चले। रात थी अंधेरी, मशालें लेकर चले। और वह भी उस भीड़ में सम्मिलित हो लिया। लेकिन भीड़ को शक हुआ--यह आदमी कुछ अपरिचित मालूम पड़ता है। यह अपने वाला नहीं। और कुछ संदिग्ध दिखता है, कुछ डरा-डरा भी, कुछ भयभीत भी, कुछ आह्लादित भी नहीं मालूम होता कि जीसस पकड़ लिए गए हैं, सब प्रसन्न हो रहे हैं कि अब खात्मा हो गया इस आदमी का, यह उपद्रव मचा रहा था। सिर्फ यह आदमी उदास दिखता है। पकड़ लिया कि तुम कौन हो? क्या तुम जीसस के शिष्य हो? उसने कहा कि नहीं, मैं तो एक परदेसी हूं। जेरुसलम की तरफ जा रहा था। रात अंधेरी है, तुम्हारे पास मशालें हैं, इसलिए साथ हो लिया। और तुम भी जेरुसलम जा रहे हो, सोचा कि ठीक है, रास्ते में किस-किस से पूछूंगा! अंधेरी रात है, कोई मिले न मिले।
जीसस पीछे लौटे और उन्होंने कहा, "देख, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी!" और यह घटना तीन बार घटी; मुर्गे के बांग देने के पहले तीन बार घटी। इनसे वोट मिल सकता था? और ये दस-बारह लोग थे कुल, उनमें से ही एक ने तीस रुपये में जीसस को बेचा था--जुदास ने। कितने लोग उन्हें वोट देने जाते? कौन हिम्मत करता वोट देने की, जो मुर्गे के बांग देने के पहले इनकार कर दिए थे! और जीसस के पास कौन सा सर्टिफिकेट था परमात्मा का कि वे ही ईश्वर के इकलौते बेटे हैं?
मुझ पर आलोचना की जाती है कि मैं स्व-घोषित भगवान हूं।
मैं तुमसे कहता हूं, इसके सिवाय तो कोई उपाय ही नहीं। कभी नहीं रहा। आखिर आंख वाला ही घोषणा कर सकता है कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। अंधों से वोट लेनी पड़ेगी? कि अंधों का सर्टिफिकेट चाहिए पड़ेगा?
मैं जब विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हुआ तो मैं प्रथम कोटि में विश्वविद्यालय में प्रथम आया था। स्वभावतः मुझे निमंत्रण मिला शिक्षा- मंत्रालय से कि अगर मैं चाहूं तो मेरे लिए पहला अवसर है प्रोफेसर हो जाने का। मैं गया।
मैंने कहा, "ठीक, आपका निमंत्रण आया, मैं राजी हूं।"
उन्होंने कहा, "लेकिन कागज-पत्र आप सब ले आए हैं?"
मैंने कहा, "यह रहा सर्टिफिकेट जो जाहिर करता है कि मैं प्रथम श्रेणी में प्रथम आया हूं। और क्या चाहिए?"
उन्होंने कहा, "चरित्र का प्रमाण-पत्र चाहिए।"
मैंने कहा, "यह जरा मुश्किल है।"
उन्होंने कहा, "क्यों इसमें क्या मुश्किल है? क्या आप अपने विश्वविद्यालय के उपकुलपति का चरित्र का प्रमाण-पत्र नहीं ला सकते?" मैंने कहा, "ला सकता हूं, लाने में कोई अड़चन नहीं। आ रहा था तो उन्होंने मुझसे कहा था, लेकिन मैंने इनकार किया। क्योंकि मैं उनको चरित्र का सर्टिफिकेट नहीं दे सकता तो उनसे मैं कैसे चरित्र का सर्टिफिकेट लूं? शराबी-कबाबी, वेश्यागामी--कौन से गुण हैं जो उनमें नहीं हैं! उनसे मैं क्या चरित्र का सर्टिफिकेट लूं? मैंने उनसे पूछा, आप सोचते हैं आपसे मैं

चरित्र का सर्टिफिकेट ले सकता हूं? पहले आप यह तो पूछो कि मैं आपको चरित्र का सर्टिफिकेट दे सकता हूं? सो बात वहीं बिगड़ गई।"
शिक्षा-मंत्री ने कहा, "फिर जरा मुश्किल आएगी। फिर क्या किया जाए?"
मैंने कहा, "मैं ही चरित्र का सर्टिफिकेट लिख सकता हूं अपने बाबत।" उन्होंने कहा, "ऐसा नियम नहीं।"
तो मैंने कहा, "आप जिसके दस्तखत कहें उसके दस्तखत कर सकता हूं।"
उन्होंने कहा, "यह कैसे होगा?"
मैंने कहा, "यह आप कार्बन-कापी समझें। और जिसके दस्तखत मैं करता हूं उससे दस्तखत मैं ले लूंगा, मूल कापी मेरे पास रहेगी। आप मूल कापी चाहेंगे तो मूल कापी आपको लाकर दे दूंगा।"
तो मेरे प्रोफेसर थे डाक्टर एस.के.सक्सेना, उनके नाम से मैंने सर्टिफिकेट लिख दिया। शिक्षा-मंत्री थोड़े हिचके-बिचके, मगर मेरा रंग-ढंग देख कर उनको समझ में आ गया कि इस आदमी से झंझट लेना ठीक भी नहीं। सो उन्होंने सर्टिफिकेट रख लिया, मुझे नौकरी भी मिल गई। मैंने डाक्टर एस.के.सक्सेना से जाकर कहा कि यह मेरा सर्टिफिकेट है, आपके दस्तखत मैंने किए हैं, आप इसकी मूल प्रति बना दें। उन्होंने कहा, "जिंदगी हो गई मेरी सर्टिफिकेट लिखते, मूल प्रति पहले बनाई जाती है, फिर उसकी सर्टिफाइड कापी होती है।"
मैंने कहा, "मेरे साथ कोई नियम काम नहीं करता। आपको एतराज अगर हो जो मैंने अपने बाबत लिखा है इसमें, तो आप मत मूल प्रति दें। आप सर्टिफिकेट पढ़ लें।"
सर्टिफिकेट में मैंने जो लिखा था वह शिक्षा-मंत्री ने भी पढ़ा नहीं था, सिर्फ रख लिया था। जब डाक्टर एस.के.सक्सेना ने उसको पढ़ा, कहने लगे कि यह तुमने क्या लिखा है कि मैं परम अज्ञानी हूं, कि मेरे चरित्र का कोई ठिकाना नहीं, कि मैं आज कुछ हूं कल कुछ हूं, मैं भरोसे का आदमी नहीं! यह चरित्र का सर्टिफिकेट है?
मैंने कहा, "अंधों को देना है, अंधों से लेना है। आंख वाला और करे क्या? तुम सिर्फ दस्तखत करो। न शिक्षा-मंत्री ने पढ़ा, न तुम पढ़ो।" उन्होंने जल्दी से दस्तखत किए। उन्होंने कहा कि तुम मुझसे कहते, मैं सुंदर सर्टिफिकेट लिखता। मैंने कहा, "तुमसे मैं सर्टिफिकेट ले सकता नहीं था। वही अड़चन। तुम भी जानते हो कि मैं तुमसे सर्टिफिकेट नहीं ले सकता।" उन्होंने कहा, "वह मैं जानता हूं। सच में मैं अधिकारी भी नहीं हूं।"
वे आदमी बड़े ईमानदार थे। वे इतने ईमानदार आदमी थे कि उनके घर मैं ठहरता था तो वे सिगरेट भी नहीं पीते थे, शराब भी नहीं पीते थे।
मैंने उनसे कहा, "यह बात अनाचार की है। इससे मुझे कष्ट होता है। मैं आपके घर ठहरना बंद कर दूंगा। क्योंकि मैं किसी में दमन नहीं लाना चाहता। यह दमन है। आप दिन भर सिगरेट पीते हैं। मेरी मौजूदगी में आप बिल्कुल सिगरेट नहीं पीते, तकलीफ होती होगी। यह पाप मैं सिर पर न लूंगा। और सिगरेट पीने में हर्ज क्या है? अरे साल, दो साल पहले जल्दी मरोगे। सो ऐसे भी जीकर क्या कर रहे हो? और कई लोग कतार में खड़े हैं जो राह देख रहे हैं, तुम मरो तो वे प्रधान हो जाएं। तुम जब तक न मरो तब तक वे विभाग के अध्यक्ष नहीं हो सकते। सो जी भर कर पीओ। शराब में क्या हर्जा है? यूं ही बेहोश हो, अब और क्या बेहोश होओगे? और बेहोश आदमी से और क्या अपेक्षा की जा सकती है? क्या ध्यान पीएगा? तुम मेरा लाज-संकोच करोगे तो मैं यहां नहीं आऊंगा, क्योंकि मेरा लाज-संकोच दमन बने तो जिम्मेवारी मेरी हो जाती है। हां, तुम्हारी समझ में आ जाए कि यह मूर्खता है और छूट जाए, तब बात और। तब फिर मैं रहूं या न रहूं तुम्हारे घर में, फिर तुम्हें सिगरेट नहीं पीनी चाहिए, शराब नहीं पीनी चाहिए। मेरी मौजूदगी के कारण, तो दमन होगा।"
इसलिए वे कहने लगे, यह तो मैं जानता हूं कि मेरे प्रमाण-पत्र का कोई अर्थ नहीं। मगर इसी तरह के प्रमाण-पत्रों के अर्थ समझे जा रहे हैं।
जो लोग मुझसे पूछते हैं स्व-घोषित भगवान आप कैसे, उनसे मैं कहना चाहता हूंः जिसने भगवत्ता जानी वही घोषणा करेगा। बुद्ध ने स्वयं घोषणा की कि मैं परम निर्वाण को उपलब्ध हुआ हूं। किसका और सर्टिफिकेट है? मोहम्मद ने

खुद घोषणा की कि मेरे ऊपर परमात्मा की किताब उतरी है। किसका और सर्टिफिकेट है? कोई गवाह है?
हालत तो यह है कि खुद मोहम्मद को भी शक हुआ था कि यह किताब परमात्मा की मुझ पर उतर रही है या मैं पागल हो रहा हूं! और जब किताब उतरी तो वे घर भागे हुए आए और उन्हें बुखार चढ़ गया। यह मोहम्मद की सादगी, सरलता का सबूत है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि जितनी भी दुलाइयां हों घर में, सब मेरे ऊपर डाल दे। मुझे कुछ हो गया है। या तो मैं सन्निपात में हूं, क्योंकि मुझसे ऐसी बातें निकल रही हैं जो मेरी नहीं हैं, मैंने कभी सोची नहीं हैं। ऐसी सुंदर आयतें मेरे भीतर गूंज रही हैं, ऐसे सुंदर गीत, जो निश्चित ही मेरे नहीं हैं, जिन पर मेरा कोई हस्ताक्षर नहीं है। तो या तो मैं सन्निपात में हूं कि मुझे कुछ का कुछ हो रहा है, अल्ल-बल्ल, जो मेरे वश के बाहर है; और या फिर मैं कवि हो गया हूं, जो कि और भी बदतर है। क्योंकि सन्निपात से तो आदमी का इलाज है, कवि हो गए तो फिर कोई इलाज ही नहीं। जहां न पहुंचे शशि, वहां पहुंचे कवि! इनका तो कुछ हिसाब ही नहीं है।
लेकिन आयशा, उनकी पत्नी ने कहा कि मुझे कुछ कहो, क्या हो रहा है तुम्हारे भीतर? मोहम्मद ने अपने पहली आयतें सुनाईं। आयशा ने कहा, "तुम भूल में हो।"
आयशा उनसे उम्र में बहुत बड़ी थी। इसलिए कभी-कभी अपनी उम्र से ज्यादा उम्र की स्त्री से शादी करना फायदे की बात है। काफी बड़ी थी। मोहम्मद छब्बीस साल के थे, आयशा चालीस साल की थी। अनुभवी थी। मां की उम्र की थी। उसने आयतें सुनीं। उसने कहा, "इससे सुंदर सूत्र तो मैंने कभी सुने नहीं! न तो तुम सन्निपात में हो, न तुम कवि हो। तुम पर परमात्मा के वचन उतरे हैं। ये वचन इतने प्यारे हैं कि परमात्मा के ही हो सकते हैं।"
उसने भरोसा दिलाया, तब कहीं मोहम्मद को भरोसा आया। आयशा उनकी पहली शिष्या थी--पहली मुसलमान। उसने ही सहारा दिया तो मोहम्मद हिम्मत जुटा पाए औरों से कहने की। मगर बहुत सम्हल-सम्हल कर कदम चले। लेकिन प्रमाण क्या था? भीड़-भाड़ ने तो मोहम्मद को माना नहीं। जगह-जगह से उखाड़े गए। एक-एक गांव से भगाए गए। जिंदगी भर लोग उनके मारने के पीछे पड़े रहे। इनसे तुम वोट ले सकते थे?
मेरे जैसे व्यक्ति को तो अपनी घोषणा स्वयं ही करनी होगी। और मेरे जैसे व्यक्ति को पचाना केवल थोड़े से छाती वाले लोगों की बात हो सकती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः यह सूत्र मैंने ही कहा होगा। यह सूत्र और कौन कहेगा? यह सूत्र बिल्कुल मेरे हृदय की आवाज है। यह मेरी आयत है!
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।।
चरैवेति। चरैवेति।।

मेरा स्वर्णिम भारत
परिशिष्ट-1

भारत: एक अनूठी संपदा
(Note: translation from The Osho Upanishad #21)

प्रश्न- प्यारे ओशो!
भारत में आपके पास होना, दुनिया में और कहीं भी आपके सान्निध्य में होने से अधिक प्रभावमय है। प्रवचन के समय आपके चरणों में बैठना ऐसा लगता है जैसे संसार के केन्द्र में, हृदय-स्थल में स्थित हों। कभी-कभी तो बस होटल के कमरे में बैठे-बैठे ही आंख बंद कर लेने पर मुझे महसूस होता है कि मेरा हृदय आपके हृदय के साथ धड़क रहा है।
सुबह जागने पर जब आसपास से आ रही आवाजों को सुनती हूं, तो वे किसी भी
और स्थान की अपेक्षा, मेरे भीतर अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं। ऐसा अनुभव होता है कि यहां पर ध्यान बड़ी सहजता से, बिना किसी प्रयास के, नैसर्गिक रूप से घटित हो रहा है।
क्या भारत में आपके कार्य करने की शैली भिन्न है, अथवा यहां कोई "प्राकृतिक बुद्ध क्षेत्र" जैसा कुछ है?

लतीफा! भारत केवल एक भूगोल या इतिहास का अंग ही नहीं है। यह सिर्फ एक देश, एक राष्ट्र, एक जमीन का टुकड़ा मात्र नहीं है। यह कुछ और भी है-एक प्रतीक, एक काव्य, कुछ अदृश्य सा-किंतु फिर भी जिसे छुआ जा सके! कुछ विशेष ऊर्जा-तरंगों से स्पंदित है यह जगह, जिसका दावा कोई और देश नहीं कर सकता। इधर दस हजार वर्षों में सहस्रों लोग चेतना की चरम विस्फोट की स्थिति
तक पहुंचे हैं। उनकी तरंगें अभी भी जीवंत है। उनका असर अभी भी हवाओं में मौजूद है। तुम्हें सिर्फ एक विशेष तरह की ग्राहकता की, संवेदनशीलता की, उस अदृश्य को ग्रहण करने को क्षमता की जरूरत है- जो इस अद्भुत भूमि को घेरे हुए है।
अदूभुत इसलिए कहा, क्योंकि इसने सिर्फ एक ही खोज- सत्य की खोज के लिए
सब कुछ न्यौछावर कर दिया। इस देश ने बड़े फिलासफर पैदा नहीं किए- तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा- न प्लेटो, न अरस्तू; न थामस एक्युनस, न कांट; न हीगल, न ब्राडले; और न ही बट्र्रेंड रसेल। भारत के पूरे अतीत ने एक भी फिलासफर को जन्म नहीं दिया- और वे सत्य की खोज में संलग्न थे।
निश्चित ही उनकी खोज, अन्य देशों में की जा रही खोज से सर्वथा भिन्न थी। दूसरे देशों में लोग सत्य के संबंध में चितन कर रहे थे। भारत में वे सत्य के बारे में विचार नहीं कर रहे थे- क्योंकि कोई सत्य के विषय में भला क्या विचार कर सकता है! या तो सत्य को जानते हो, या नहीं जानते हो। चिंतन-मनन असंभव है, फिलासफी की संभावना ही नहीं, वह तो बिल्कुल ही फिजूल और व्यर्थ की मेहनत है। वह तो एक अंधे आदमी द्वारा प्रकाश के संबंध में सोचने-विचारने जैसी बात है- क्या खाक चिंतन कर सकता है वह? है हो सकता है वह बड़ा प्रतिभाशाली हो, महान तर्कशास्वी हो, पर इससे क्या फर्क पड़ता है? है न प्रतिभा की जरूरत है और न तर्कों की। जरूरत तो है बस आंखों की- जो देख सकें।
प्रकाश देखा जा सकता है, पर सोचा नहीं जा सकता। सत्य भी देखा जा सकता है, किंतु विचारा नहीं जा सकता। इसीलिए भारत में हमारे पास "फिलासफी" का समानार्थी शब्द ही नहीं है। सत्य की खोज को हम दर्शन कहते हैं, और "दर्शन" का मतलब होता है- "देखना"। फिलासफी का अर्थ है सोचना-विचारना और स्मरण रहे कि विचार-प्रक्रिया हमेशा वर्तुलाकार होती है, इर्द-गिर्द घूमती है... बस विषय में, विषय में और विषय में... वह कभी भी अनुभूति के केंद्र बिंदु पर नहीं पहुंचती।
पूरी दुनिया में भारत ही एक ऐसी भूमि है, जिसने अद्भुत रूप से अपनी सारी प्रतिभा को, सत्य को जानने और सत्य ही हो जाने के प्रयास में एकाग्र कर दिया, समर्पित कर दिया।

भारत के पूरे इतिहास में एक भी बड़ा वैज्ञानिक तुम न पाओगे। ऐसा नहीं
कि यहाँ बुद्धिमान और कुशल लोग न हुए, कि प्रतिभाएं नहीं जन्मीं। गणित की आधारशिला भारत में रखी गई थी, किंतु अल्बर्ट आइंस्टीन यहाँ पैदा नहीं हुआ। चमत्कारिक रूप से यह पूरा देश किसी बाह्य खोज में उत्सुक ही नहीं था। "पर" की पहचान नहीं, वरन् स्वयं को जानना ही यहाँ एकमात्र लक्ष्य रहा।
कम से कम दस हजार सालों से लाखों-करोडों लोग सतत एक ही प्रयास में जुटे रहे, उसके पीछे सब कुछ बलिदान का दिया- विज्ञान, तकनीकी विकास, समृद्धि। उन्होंने दरिद्रता, रुग्णता, बीमारियां और मृत्यु को भी स्वीकार कर लिया, परंतु सत्य की खोज को किसी भी कीमत पर नहीं छोडा... इससे एक खास किस्म का वातावरण निर्मित हुआ, कुछ विशेष तरह की तरंगों का सागर जो चारों ओर से तुम्हें घेरे है।
यदि कोई थोड़े से भी ध्यानी चित्त को लेकर यहाँ आता है, तो उसे उन तरंगों का संस्पर्श होगा। हो, अगर एक पर्यटक की भांति आते हो तो तुम चूक जाओगे। तुम मंदिरों, महलों, खंडहरों को, ताजमहल, खजुराहो, और हिमालय को तो देख लोगे, पर भारत को नहीं देख पाओगे। तुम असली भारत से बिना मिले ही भारत से गुजर जाओगे। यद्यपि वह सब ओर व्याप्त था, पर तुम संवेदनशील न थे, ग्राहक न थे। तुम कुछ ऐसा देखकर लौटोगे जो वास्तविक भारत नहीं, सिर्फ उसका अस्थि- पंजर है, आत्मा नहीं। तुम्हारे पास उस अस्थि-पंजर के फोटोग्राफ्स होंगे, उनका एलबम बनाओगे और सोचोगे कि भारत धूम आए, भारत को जान लिया... यह स्वयं को धोखा दे रहे हो तुम।
एक आध्यात्मिक पहलू भी है। न तो तुम्हारे कैमरा उसके चित्र लेने में,
और न ही तुम्हारे शिक्षा-संस्कार उसे पकड़ने में सक्षम हैं। जर्मनी, इटली, फ्रांस, इंग्लैंड किसी भी देश में जाकर तुम वहाँ के लोगों से मिल सकते हो। वहाँ के भूगोल से, इतिहास और अतीत से भलीभांति परिचित हो सकते हो। लेकिन जहाँ तक भारत का प्रश्न है, ऐसा नहीं किया जा सकता। यदि अन्य देशों की श्रेणी में भारत को गिना, तो प्रारंभ से ही तुमने चूक कर दी, क्योंकि उन देशों में वैसा आध्यात्मिक आमामंडल नहीं है। उन्होंने एक भी गौतम बुद्ध, महावीर, नेमिनाथ और आदिनाथ को जन्म नहीं दिया। एक भी कबीर, फरीद या दादू पैदा नहीं किया। उन्होंने बड़े वैज्ञानिकों, कवियों, कलाकारों, चित्रकारों और सभी प्रकार के प्रतिभा-संपन्न व्यक्तियों को तो पैदा किया, पर रहस्यदर्शी ऋषि भारत की मोनोपली है, एकाधिकार है, कम से कम अभी तक तो रहा है।
और ऋषि एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का का मनुष्य है। वह मात्र प्रतिभावान ही नहीं, एक महान् चित्रकार या कवि ही नहीं- वह तो दिव्यता का माध्यम है, भगवत्ता के लिए एक पुकार और आमत्रण है। वह भीतर दिव्यता के उतरने के लिए द्वार खोलता है। और हजारों सालों से लाखों ऋषियों ने द्वार खोले हैं- इस देश की हवाओं को दिव्यता से मरने के लिए। मेरे लिए वह दिव्य वातावरण ही वास्तविक भारत है। परंतु उसे जानने के लिए तुम्हें एक विशेष प्रकार की भावदशा में होना होगा।
लतीफा, चूंकि तुम शांत होने का प्रयास कर रही हो, ध्यान में डूब रही हो, इसलिए वास्तविक भारत को तुम स्वयं के संपर्क में आने दे पा रही हो। हां, तुम ठीक कहती हो जिस सरलता से इस गरीब देश में तुम सत्य को उपलब्ध कर सकती हो, वैसा किसी और जगह पर संभव नहीं। यह अत्यंत दीन-हीन है पर फिर भी इसकी आध्यात्मिक वसीयत इतनी समृद्ध है कि अगर तुम अपनी आखें खोलकर उसे देख सको तो बहुत आश्चर्यचकित हो जाओगी। शायद यही एकमात्र मुल्क है जो बडी गहनता से चैतन्य के विकास में संलग्न रहा, किसी और चीज में नहीं। दूसरे सभी मुल्क और हजारों चीजों में व्यस्त। लेकिन इस मुल्क का एक ही लक्ष्य, एक ही उदेश्य रहा कि कैसे मनुष्य की चेतना उस बिंदु तक उठ सके, जहाँ भगवत्ता से मिलन हो। कैसे भगवता और मनुष्य करीब आएं।
और यह किसी इक्के-दुक्के आदमी की नहीं, करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियों के जीवन की बात है। कोई एक दिन, महीना, या साल का सवाल नहीं, सहस्रों वर्षों की सतत् साधना है। स्वभावतः इस देश में सब ओर एक अत्यंत ऊर्जामय क्षेत्र निर्मित हो गया है, वह पूरी जगह पर छाया है। तुम्हें सिर्फ तैयार (संवेदनशील) होना है।

यहां संयोग मात्र ही नहीं है कि जब भी कोई सत्य के लिए प्यासा होता है, अनायास ही वह भारत में उत्सुक हो उठता हे, अचानक वह पूरब की यात्रा पर निकल पड़ता है। और यह केवल आज की ही बात नहीं यह उतनी ही प्राचीन बात है जितने पुराने प्रमाण और उल्लेख मौजूद हैं। आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, सत्य की खोज में पाइथागोरस भारत आया था। ईसामसीह भी भारत आए थे।
ईसामसीह की तेरह से तीस वर्ष की उम्र के बीच का बाइबिल में कोई उल्लेख नहीं है। और यही उनकी लगभग पूरी जिंदगी थी, क्योंकि तैंतीस की उम्र में तो उन्हें सूली पर ही चढ़ा दिया गया था। तेरह से तीस तक के सत्रह सालों का हिसाब गायब है। इतने समय वे कहां रहे, और बाइबिल में उन सालों को क्यों नहीं रिकार्ड किया गया? उन्हें जान-बूझकर छोड़ा गया है, कि वह एक मौलिक धर्म नहीं है, कि ईसामसीह जो भी कर रहे हैं वे उसे भारत से लाए हैं।
यह बहुत ही विचारणीय बात है। वे एक यहूदी की तरह जन्में, यहूदी की तरह जिए, और यहूदी की तरह मरे। स्मरण रहे कि वे ईसाई नहीं थे, उन्होंने तो-ईसा और ईसाई ये शब्द भी नहीं सुने थे। फिर क्यों यहूदी उनके इतने खिलाफ थे? यह सोचने जैसी बात है, आखिर क्यों? न तो ईसाइयों के पास इस सवाल का ठीक-ठीक जवाब है, न ही यहूदियों के पास। क्योंकि इस व्यक्ति ने किसी को कोई नुकसान नहीं पहुचाया। वे उतने ही निर्दोष थे, जितनी कि कल्पना की जा सकती है। ...पर उनका अपराध बहुत सूक्ष्म था। पढे़-लिखे यहूदियों और चतुर रबाईयों ने स्पष्ट देख लिया कि वे पूरब से विचार ला रहे हैं, जो कि गैर-यहूदी हैं। वे कुछ अजीबोगरीब और विजातीय बातंे ला रहे हैं। और यदि इस दृष्टिकोण से देखो तो तुम्हें समझ आएगा कि क्यों वे बार-बार कहते हैं- "अतीत के पैगम्बरों ने तुमसे कहा था कि यदि कोई तुम पर क्रोध करे, हिंसा करे, तो आंख के बदले में आंख लेने और ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार रहना। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हें चोट पहुंचाता है, एक गाल पर चांटा मारता है, तो उसे अपना दूसरा गाल भी दिखा देना।" यह पृर्णतः गैर-यहूदी बात है। उन्होंने ये बातें गौतम बुद्ध और महावीर की देशनाओं से सीखी थीं।
वे जब भारत आए थे-तब बौद्ध धर्म बहुत जीवंत था, यद्यपि बुद्ध की मृत्यु हो चुकी थी। गौतम बुद्ध के पांच सौ साल बाद जीसस यहां आए, पर बुद्ध ने इतना विराट आंदोलन, इतना बडा तूफान खड़ा किया था कि तब तक भी पूरा मुल्क उसमें डूबा हुआ था। उनकी करुणा, क्षमा, पे्रेम के उपदेशों को पिए हुआ था। जीसस कहते हैं कि "अतीत के पैंराम्बरों द्वारा यह कहा गया था"- कौन हैं ये पराने पैगम्बर? वे सभी प्राचीन यहूदी पैगम्बर हैंः इजेकिएल, इलिजाह, मोसेस,-"कि ईश्वर बहुत ही हिंसक है, और वह कभी क्षमा नहीं करता।?"
यहां तक कि उन्होंने ईश्वर के मुंह से भी ये शब्द कहलवा दिए हैं। पुराने टेस्टामेंट के ईश्वर के वचन हैं, " मैं कोई सज्जन पुरुष नहीं हूं, तुम्हारा चाचा नहीं हूं। मैं बहुत क्रोधी और ईष्र्यालु हूं, और याद रहे जो भी मेरे साथ नहीं हैं वे सब मेरे शत्रु हैं।"
और ईसामसीह कहते हैं कि "मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा पे्रम है।" यह ख्याल उन्हें कहां से आया कि परमात्मा पे्रम है? गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के सिवाय दुनिया में कहीं भी परमात्मा को पे्रम कहने का कोई और उल्लेख नहीं है।
उन सत्रह वर्षों में जीसस इजिप्त, भारत, लद्दारव और तिब्बत की यात्रा करते रहे। और यही उनका अपराध था कि वे यहूदी परंपरा में बिल्कुल अपरिचित और अजनबी विचारधाराएं ला रहे थे। न केवल अपरिचित बल्कि वे बातें यहूंदी धारणाओं से एकदम विपरीत थीं।
तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि अंततः उनकी मृत्यु भी भारत में हुई।
और ईसाई रिकार्ड्स इस तथ्य को नजरअंदाज करते रहे हैं। यदि उनकी बात सच है कि जीसस पुनर्जीवित हुए थे, तो फिर पुनर्जीवित होने के बाद उनका क्या हुआ? आजकल वे कहा हैं? क्योंकि उनकी मृत्यु का तो कोई उल्लेख है ही नहीं! सच्चाई यह है कि वे कभी पुनर्जीवित नहीं हुए। वास्तव में वे सूली पर कभी मरे ही नहीं थे। क्योंकि यहूदियों की सूली आदमी को मारने की सर्वाधिक बेहूदी तरकीब है। उसमें आदमी को मरने में करीब-करीब अड़तालीस घंटे लग जाते हैं। चूंकि हाथों में और पैरों में कीलें ठोंक दी जाती हैं, तो बूंद-बंूद

करके उनसे खून टपकता रहता है। यदि आदमी स्वस्थ है तो साठ घंटे से भी ज्यादा लोग जीवित रहे ऐसे उल्लेख हैं। औसत अड़तालीस घंटे तो लग ही जाते हैं। और जीसस को तो सिर्फ छः घंटे बाद ही सूली से उतार दिया गया था। यहूदी सूली पर कोई भी छः घंटे में कभी नहीं मरा है, कोई मर ही नहीं सकता है।
यह एक मिलीभगत थी (जीसस के शिष्यों की) पोंटियस पॅायलट के साथ। पोंटियस यहूदी नहीं था, वह रोमन वाससराय था। क्योंकि जूडिया उन दिनों रोमन साम्राज्य के आधीन था, और इस निर्दोष युवक की हत्या में उसे कोई रुचि नहीं थी। उसके दस्तखत के बगैर यह हत्या नहीं हो सकती थी, और उसे अपराध भाव अनुभव हो रहा था कि वह इस भद्दे और क्रूर नाटक में भाग ले रहा है। चूंकि पूरी यहूदी भीड़ पीछे पड़ी थी कि जीसस को सूली लगनी चाहिए, वह एक जीसस मुद्दा बन चुका था। पोंटियस पॅायलट दुविधा में था; यदि वह जीसस को छोड़ देता है, तो वह पूरी जूडिया को, जो कि यहूदी है, अपना दुश्मन बना लेता है। यह कूटनीतिक नहीं होगा। और यदि वह इस व्यक्ति को सूली देता है तो उसे सारे देश का समर्थन तो मिल जाएगा मगर उसके स्वयं के अंतःकरण में एक घाव छूट जाएगा कि राजनैतिक परिस्थिति के कारण एक निरपराध व्यक्ति की हत्या की गई, जिसने कुछ भी गलत नहीं किया था।
तो उसने शिष्यों के साथ यह व्यवस्था की कि शुक्रवार को, जितनी संभव तो सके उतनी देर से सूली दी जाए। चूंकि सूर्यास्त होते ही शुक्रवार की शाम को यहूदी सब प्रकार के कामधाम बंद का देते हैं; फिर शनिवार को कुछ भी काम नहीं होता, वह उनका पवित्र दिन है। यद्यपि सूली दी जानी थी शुक्रवार की सुबह, पर उसे स्थगित किया जाता रहा; ब्यूरोक्रेसो तो किसी भी कार्य में देर लगा सकती है। अतः जीसस को दोपहर के बाद सूली पर चढ़ाया, और सूर्यास्त के पूर्व ही उन्हें जीवित उतार लिया गया, यद्यपि वे बेहोश थे, क्योंकि शरीर से रक्त स्राव हुआ था, और कमजोरी आ गई थी। फिर जिस गुफा में उनकी देह को रखा गया वहां का चैकीदार... पवित्र दिन के पश्वात् यहूदी उन्हें पुनः सूली पर चढ़ाने वाले थे, मगर वह चैकीदार, गुफा का रक्षक रोमन था...इसीलिए यह संभव हो सका कि शिष्यगण जीसस को बाहर निकाल लिए और फिर जूडिया के भी बाहर गए। जीसस ने भारत में जाना क्यों पसंद किया? क्योंकि अपनी युवावस्था में
भी वे वर्षों तक भारत में रह चुके थे। उन्होंने अध्यात्म का और ब्रह्म का परम स्वाद इतनी निकटता से चखा था, कि उन्होंने वहीं लौटना चाहा। तो जैसे ही स्वस्थ हुए, वे वापस भारत आए, और फिर एक सौ बारह साल की उम्र तक जिए। काश्मीर में अभी भी उनकी कब्र है। उस पर जो लिखा है, वह हिब्रु भाषा में है...स्मस्ण रहे भारत में कोई यहूदी नहीं रहते। उस शिलालेख पर खुदा है "जोशुआ"-वह हिबु्र भाषा में ईसामसीह का नाम है। "जीसस" "जोशुआ" का ग्रीक रूपांतरण है। "जोशुआ यहां आए"- एमय, तारीख वगैरह सब दी हैं। "एक महान सद्गुरु, जो स्वयं को भेड़ों का गडरिया पुकारते थे, अपने शिष्यों के साथ शांतिपूर्वक एक सौ बारह माल की दीर्घायु तक यहां रहे" इसी वजह से वह स्थान "भेडों के चरवाहे का गांव" कहलाने लगा। तुम वहाँ जा सकते हो, वह शहर अभी भी है- "पहलगाम", उसका काश्मीरी में वही अर्थ है- "गड़रिए का गांव।"
वे यहाँ रहना चाहते थे, ताकि और अधिक आत्मिक विकास कर सके। एक छोटे से शिष्य समूह के साथ वे रहना चाहते थे ताकि वे सभी शांति में, मौन में डूबकर आध्यात्मिक प्रगति कर सकें। और उन्होंने मरना भी यहीं चाहा, क्योंकि यदि तुम जीने की कला जानते हो तो यहाँ जीवन एक सौंदर्य है, और यदि तुम मरने की कला जानते हो तो यहाँ मरना भी अत्यंत अर्थपूर्ण है।
केवल भारत में ही मृत्यु की कला खोजी गई है, ठीक वैसे ही जैसे जीने की कला खोजी गई है। वस्तुतः तो वे एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं।
इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि मूसा ने भी भारत में आकर देह त्यागी। उनकी और जीसस की समाधियां एक ही स्थान में बनी है। शायद जीसस ने ही महान सद्गरु मूसा के बगल वाला स्थान स्वयं के लिए चुना होगा। पर मूसा ने क्यों काश्मीर में आकर मृत्यु में प्रवेश किया।
मूसा ईश्वर के देश "इजराइल" की खोज में यहूदियों को इजिप्त के बाहर ले
गए थे। उन्हें चालीस वर्ष लगे, जब इजराइल पहुंचकर उन्होंने घोषणा की कि "यही है वह जमीन, परमात्मा की जमीन, जिसका वादा किया गया था। और मैं अब

वृद्ध हो गया हूं तथा अवकाश लेना चाहता हूं। हे नई पीढ़ी वालो, अब तुम संभालो।"
क्योंकि जब उन्होंने इजिप्त से यात्रा प्रारंभ की थी, तब की पीढ़ी लगभग समाप्त हो चुकी थी। बढ़ू मरते गये, जवान बूढ़े हो गये, नए बच्चे पैदा होते रहे। जिस मूल समूह ने मूसा के साथ शुरूआत की थी, वह अब बचा ही नहीं था। मूसा करीब-करीब एक अजनबी की भांति अनुभव कर रहे थे। उन्होंने युवा लोगों को शासन और व्यवस्था का कार्यभार सौंपा और इजराइल से विदा हो लिए।
यह अजीब बात है कि यहूदी धर्मशास्त्रों में भी, उनकी मृत्यु के संबंध में, उनका क्या हुआ इस बारे में कोई उल्लेख नहीं है। हमारे यहां (काश्मीर में) उनकी कब्र है। उस समाधि पर भी जो शिलालेख है, वह हिबु्र भाषा में ही है। और पिछले चार हजार सालों से एक यहूदी परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी उन दोनों समाधियों की देखभाल कर रहा है।
मूसा भारत आना क्यों चाहते थे? केवल मृत्यु के लिए? हां, कई रहस्यों में से एक रहस्य यह भी है कि यदि तुम्हारी मृत्यु एक बुद्धक्षेत्र में हो सके, जहां केवल मानवीय ही नहीं वरन् भगवत्ता की ऊर्जा-तरंगें हों, तो तुम्हारी मृत्यु भी एक उत्सव और निर्वाण बन जाती है।
सदियों से, सारी दुनिया से साधक इस धरती पर आते रहे हैं। यह देश दरिद्र है, उसके पास भेंट देने को कुछ भी नहीं, पर जो संवेदनाशील हैं; उनके लिए सबसे अधिक समृद्ध कौम इस पृथ्वी पर कहीं और नहीं है। लेकिन यह समृद्धि आंतरिक है।
लतीफा, तुम ठीक कहती हो। सिर्फ थोड़ा और खुलो, शांत और शिथिल होओ, थोड़ा
और समर्पण की भावदशा में डूबो, तो मनुष्य के लिए जो बड़े से बड़ा संभव है- ऐसा महानतम खजाना यह गरीब देश तुम्हें दे सकता है।
दि ओशो उपनिषद-21 से अनुवादित